कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला ३२



भारतीय तन्त्रशास्त्र-सिद्धान्त और साधना

लेखक

डॉ. श्यामा कान्त द्विवेदी 'आनन्द'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी


सम्पादकीय
विभाग
शान्ति कुंज, हरिद्वार





कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
३२

भारतीय तन्त्रशास्त्र-सिद्धान्त और साधना

लेखक

डॉ. श्यामा कान्त द्विवेदी 'आनन्द'

एम्.ए., एम्. एड्., व्याकरणाचार्य

पी-एच्.डी., डी.लिट्.

[उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ('संस्कृत संस्थानम्') के
'शङ्कर' एवं 'विविध' पुरस्कारों से सम्मानित एवं पुरस्कृत]

एवं

मध्यप्रदेश सरकार की
'कालिदास एकेडेमी उज्जैन' संस्था द्वारा
'भोजराज पुरस्कार' से पुरस्कृत एवं सम्मानित



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, विक्रम सम्वत् २०६८, सन् २०१२

ISBN : 978-81-7080-383-6

के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बॉक्स नं० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : आफिस : ०५४२-२३३३४५८
आवास : ०५४२-२३३४०३२ एवं ०५४२-२३३५०२०
फैक्स : ०५४२-२३३३४५८
e-mail : cssoffice@sify.com
www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
निकट गोलघर (मैदागिन), पोस्ट बॉक्स नं० १११८
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
दूरभाष : ०५४२-२३३५०२०

KRISHNADAS PRACHYAVIDYA SERIES

33

Bhāratīya Tantra Shāstra-Siddhānta aur Sādhanā

Writer

Dr. Shyama Kant Dwivedi 'Ananda'

M.A.; M.Ed.; Vyākarṇāchārya

Ph.D., D. Litt.

(Awarded by 'Sanskrit Sansthānam' of U.P. Govt. with **'Shankar'** and **'Vividha Sammān'** and awarded by 'KĀLIDĀS ACADEMY' of M.P. Govt. with **'Bhojarāja Puraskār'**)



CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 2012

ISBN : 978-81-7080-383-6

K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : Office : 0542-2333458,
Res. : 0542-2334032 & 0542-2335020
Fax : 0542-2333458
E-mail : cssoffice@sify.com
www.chowkhambasanskritseries.com

Also can be had from :
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin), Post Box No. 1118
Varanasi-221001 (India)
Phone : 0542-2335020

दो शब्द

प्रस्तुत रचना तन्त्र के स्वरूपोद्घाटन के उद्देश्य से प्रणीत की गई है और इसका नाम है— "**भारतीय तन्त्रशास्त्र— सिद्धान्त और साधना**"। '**तन्त्र**' का अर्थ है विस्तार। 'तनु विस्तारे' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगाने से 'तन्त्र' शब्द निष्पन्न होता है।

यदि हम **समस्त भारतीय धार्मिक-दार्शनिक साहित्य** का वर्गीकरण करें तो हमें इसमें अन्तर्भूत निम्न ग्रन्थ-समुदाय मिलेंगे—

(१) वेद (२) पुराण (३) स्मृति (४) दर्शनशास्त्र (५) रामायण (६) गीता और (७) तन्त्रशास्त्र। तन्त्रशास्त्र अथर्ववेद में सर्वप्रथम प्रकाश में आया और उसके बाद भारत का कोई भी साहित्य इससे अस्पृष्ट नहीं रह सका। तन्त्रशास्त्र की सर्वव्यापी जड़ों से सारे भारतीय वाङ्मय ने जल पिया है। तन्त्र से पूर्णतया मुक्त किसी भी भारतीय साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। 'तन्त्र' शब्द अपने अभिधेयार्थ '**विस्तार**' से भी इसी तथ्य को द्योतित करता है। 'अमरकोष' में कहा गया है— "तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सूत्रवाये परिच्छदे।" **मेदिनी कोष** में कहा गया है कि— '**तन्त्रं** कुटुम्बकृत्येस्यात्सिद्धान्ते चौषधोत्तमे। प्रधाने तन्तुवाये च शास्त्रभेदे परिच्छदे। श्रुति-शाखान्तरे हेतावुभयार्थप्रयोजके। इति कर्तव्यतायां च (तन्त्री वीणागुणे मता)॥

'आगम' 'निगम' 'यामल' और वेद का स्वरूप क्या है?

'**निगमात्मा** महेशानि! **परमात्मागमो** ध्रुवम्।
जीवात्मा यामलं प्रोक्तं **बाह्यात्मा** वेदरूपकम्॥ (सर्वो. तन्त्र)

तन्त्रादि शास्त्रों के आविर्भाव के विषय में जो तान्त्रिकी दृष्टि है वह यह है कि पञ्चास्य शिव के पाँचों मुखों से '**पञ्चाम्नाय**' उत्पन्न हुए। अन्य शास्त्रों की उत्पत्ति इस प्रकार है— (१) '**ब्रह्मयामल**' → **सामवेद**, (२) '**रुद्रयामल**' → **ऋग्वेद**, (३) **विष्णुयामल** → **यजुर्वेद**, (४) '**शक्तियामल**' → **अथर्ववेद**। 'ब्रह्मयामल सम्भूतं सामवेदमतं शिवे। रुद्रयामलसञ्जातं ऋग्वेदं परमं महत्' (सर्वो. तन्त्रम्)।

युगानुसार शास्त्रों के चयन के विषय में तान्त्रिक दृष्टि इस प्रकार है— 'सत्ये श्रुत्युक्तकर्माणि त्रेतायां स्मृतिसम्मतम्। द्वापरे च पुराणानि कलावागमसम्मतम्॥ (सर्वो. तन्त्र)।

अतः "आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः। न हि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः॥" (सर्वो. तन्त्र)

'**तन्त्र**' साधना की दृष्टि से 'शक्ति-साधना' एवं शक्ति के आयत्तीकरण की

साधना है। इसका लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार भी है— "आत्मत्लामात्र परं विद्यते॥" (परशुराम कल्पसूत्र २८)।

तथापि यह भी सत्य है कि जो शक्तिहीन हैं— बलहीन हैं उन्हें आत्मा का साक्षात्कार कभी नहीं हो पाता— 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:॥'

तन्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई? आगम-निगम की उत्पत्ति कैसे हुई? तन्त्रशास्त्र की दृष्टि यह है कि—

'निगमादागमो जात: आगमाद् यामलो भवेत्।
यमलात् वेदसञ्जात: वेदाज्जातं पुराणकम्।
पुराणात् स्मृति सञ्जातं स्मृते: शास्त्राणि यानि च॥'

निगमागमादि की उत्पत्ति के विषय में भी तन्त्रशास्त्र की अपनी धारणा है। इसके अनुसार—निगम→आगम→यामल→वेद→पुराण→स्मृति→गृह्यसूत्र।

— सर्वोल्लास तन्त्र

'तन्त्र' को 'आगम' एवं 'निगम' दोनों कहा गया है—

(१) **'आगम का अर्थ'**— 'आगत: शिव वक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजाननम्। मत: श्री वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥'

(२) **'निगम'** का अर्थ— 'निर्गत: शङ्करवक्त्राद् गतश्च गिरिजानने। मत: श्री वासुदेवस्य तस्मान्निगम उच्यते॥'

तन्त्रशास्त्र ने नारी जाति को महत्व देकर समाज में उसकी सर्वातिशायी महनीयता की प्राण-प्रतिष्ठा करके कहा—

'स्त्रीमात्रे हरपत्नी स्यात् पुमान् मात्रे च शङ्कर:॥ (निगमतत्त्व)

तान्त्रिकों ने 'पिण्डब्रह्माण्डैक्यवाद' के सिद्धान्त की स्थापना की थी जिसके अनुसार **"यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे॥"** इसकी मान्यता यह है कि—

'ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि तानि सन्ति कलेवरे।
बृहद् ब्रह्माण्डं यद्रूपं तद्रूपं क्षुद्ररूपकं।
ब्रह्माण्डे वर्तते तीर्थं सार्धकोटित्रयात्मकम्॥
द्विसप्तति सहस्राणि प्रकाशं वीरवन्दिते॥ (तोडल तन्त्र)

तान्त्रिकों को ज्ञात था कि षट्चक्रभेदन के बिना पिण्डब्रह्माण्डैक्य का साक्षात्कार करना सम्भव नहीं है और मुक्ति भी सम्भव नहीं है अत: वे कहते हैं—

"प्रातरुत्थाय मन्त्रज्ञ: सहस्रारे गुरुं यजेत्।
षट्चक्रं भेदयित्वा तु चाष्टोत्तरशतं जपेत्॥ (तोडल तन्त्र)

शास्त्रों का विश्वास है कि 'शक्ति' की साधना में साफल्य तभी प्राप्त होता है जब साधक **'शव'** बन जाय; क्योंकि—

'शक्त्या युक्तो यदा देवि तदैव शवरूपकः।
शक्तिहीने शवः साक्षात् पुरुषत्वं न मुञ्चति॥ (तोडलतन्त्र)

तन्त्र **'गुरुवाद'** के सिद्धान्त को स्वीकार करके भी 'गुरु' के यथार्थस्वरूप को ही स्वीकार करता है। तन्त्र की मान्यता है कि—

'सहस्रारे स्थितं ब्रह्म तदेव गुरुरुच्यते।
ध्यानपूजादिकं सर्वं सहस्रारे प्रकल्पयेत्॥[१]

'ज्ञानार्णवतन्त्र' में तो अपने देह को ही देव देह कहा गया है। अतः अपने देह में ही तर्पण का भी विधान किया गया है—

''स्वदेहे तर्पणं भद्रं स्वदेहं देवदेहकम्''

'तन्त्र' देवता का तर्पण सामान्य एवं क्षर भौतिक पदार्थों से करने में विश्वास न करके 'अमृत तत्त्व का अमृत तत्त्व से तर्पण' करने के सिद्धान्त में विश्वास करता हुआ निर्देश देता है—

''यस्मात् कुण्डलिनी स्फूर्जत्सोमसूर्याग्निमण्डलात्।
भिन्दन्ती ब्रह्मणो ग्रन्थिं गच्छन्ती मध्यवर्त्मना॥
छिन्दन्ती पाशजालानि ज्वलन्ती स्वेन तेजसा।
विशन्ती पूर्णपीठं सा द्रावयन्त्यसमां कलाम्॥
श्रावयन्ती सुधापूरं प्लावयन्ती चराचरम्।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेद् देवतां पराम्॥''

तन्त्र ने **गर्हित तन्त्राचार की निन्दा** भी की है। आचार्य गौड़पाद **'सुभगोदय'** में कहते हैं—

'अतो बाह्यपूजा भवति भगरूपेण च ततो।
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्य चरिते॥'

सुषुप्त शक्ति को जागृत करके अमृतस्थान में समासीन परमशिव से उसे मिलाना एवं चन्द्रामृत प्राप्त करके **शरीर को अमृतमय एवं चिन्मय बनाना** शैवशाक्त तान्त्रिकों की मुख्य साधना रही है। साधना के क्षेत्र में **'भैरवापत्ति'**, **'चिन्मयीकरणं'**, **'शक्तिसमावेश'**, **'योभोगसामञ्जस्यवाद'**, **'विश्वाहन्ता'**— **'पूर्णाहन्ता'** की

१. गुरुतन्त्र।

अनुभूति, शक्तिसायुज्य, 'शक्ति-जागरण', 'ग्रन्थिभेदन, चक्रभेदन एवं 'सामरस्य' ही शैवशाक्त साधना के मुख्य विषय रहे. हैं

तान्त्रिकों की साधना की लक्ष्यभूत जो परावस्था है वह **शिवशक्ति का 'सामरस्य'** ही है—

'सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।

सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निवृतिकारणम्॥ (वामके. तन्त्र)

देवी की आदर्श पूजा वह है जिसमें साधक स्वयं शिव बनकर देवी की पूजा करे उसका क्रीत दास बनकर नहीं—

'शिवरूपी स्वयं भूत्वा देवीपूजां समाचरेत्॥' (तोडल तन्त्र)

क्योंकि तभी उसको अनुभव हो सकेगा कि—

'अहं देवी न चान्योऽस्मि।'

'चौखम्बा संस्कृत सिरीज़' एवं 'चौखम्बा कृष्णदास एकेडेमी' के व्यवस्थापक श्री ब्रजमोहन दास के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के दुर्वह दायित्व को वहन करने की सहमति व्यक्त करके मुझे अनुग्रहीत किया।

जमुआ : पो. बैढ़त **श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'**

जि. सीधी (म. प्र.)

मोबाइल : ०९८२६३०७०१७



प्रस्तावना

'सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्षयेत्।
यदि न स्यात् प्रत्ययस्तत्र तदामेतन्मृषा वचः॥

सेकोद्देश्य टीका — नारोपा

[निःशेष चिन्ताओं का त्याग करके केवल एक दिन तन्त्र की साधना करके इसकी प्रामाणिकता की परीक्षा कर लीजिए। यदि साधना करने पर भी आपको इस पर विश्वास न हुआ हो तब मैं अवश्य मान लूँगा कि मेरे कथन मिथ्या हैं।]

'तन्त्र' की प्रामाणिकता एवं उसकी सर्वोच्चता के विषय में इतना अटल विश्वास तो अन्य किसी भी शास्त्र के प्रति कथमपि नहीं किया जा सकता। — यही 'तन्त्र' की विशेषता है। यही उसकी सर्वोच्चता का निदर्शन भी है। ''तन्त्रशास्त्र का मुख्य सिद्धान्त सत्य का एक पक्ष है अर्थात् 'शक्तिपूजा' है। शक्ति की महिमा तो सर्वत्र है। 'ह्लादिनी सन्धिनी संविद्वभिधानान्तरङ्गिका। तटस्था बहिरङ्गा च जयन्ति प्रभुशक्तयः॥' 'शक्ति' ही सब कुछ प्राप्त कराने वाली एकमात्र अमोघ शक्ति है।'' भारतवर्ष में प्रचलित योग-पद्धति से पृथक् एक अन्य योगपद्धति भी है और वह है तान्त्रिक योग-पद्धति। 'तन्त्र' मूलतः एक महान वस्तु थी और इसमें बड़ी बलवती योग-पद्धति थी। योग के जो वैदिक मार्ग हैं उनसे तन्त्र सर्वथा भिन्न है।''[१] **'तन्त्र'** एक प्रतीकोपासना की पद्धति है जिसमें प्रकृति, सिद्धान्त, साधना एवं शाश्वतिक मूल्य निगूढ़ हैं। तन्त्र कहता है ''जिन द्रव्यों के द्वारा किसी देवता की पूजा की जाती है और जिससे शक्ति-समन्वित परशिव तृप्त होकर प्रसन्न होते हैं और जो शिव शक्ति का यह पूजक है ये — सभी एक ही तो हैं अतः किससे किसकी पूजा की जाय? पूजन-व्यापार का अवसर ही कहाँ है?

''यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परापरः।
यश्चैव पूजकः सर्वः स एवैकः क्व पूजनम्?''[२]

इस कथन में साधना के उच्चादर्शों की कितनी उच्चता है और शोध की कितनी अतल गहराई है, यही उच्चता है तन्त्र की।

तन्त्र के दो मार्ग हैं— (१) 'वाममार्ग' एवं (२) 'दक्षिणमार्ग'। ये दोनों ही

---

१. अरविन्द घोष 'तन्त्र और वेदान्त'।

२. विज्ञान भैरव (१५०)।

मार्ग एक बड़ी गम्भीर अनुभूति के फल थे। 'दक्षिण' और 'वाम' इन शब्दों के जो प्राचीन लाक्षणिक अर्थ हैं वे यही हैं कि एक है **ज्ञान का मार्ग** और दूसरा **आनन्द** का मार्ग। अपने आपको मुक्त करना ज्ञानमार्ग (दक्षिणमार्ग) है और बल सञ्चय और प्रयोग में आनन्द की स्थिति बनाये रहना और इस प्रकार अपने आपको मुक्त करना 'आनन्दमार्ग' या 'वाममार्ग' है।[१]

'वैष्णव' भी तान्त्रिक हैं और 'शैव' भी; 'शाक्त' भी तान्त्रिक हैं और 'स्मार्त' भी; 'गाणपत्य' भी तान्त्रिक हैं और 'सौर' भी; 'जैन' भी तान्त्रिक हैं और 'बौद्ध' भी; किन्तु कोई भी वैष्णव न तो शैव है और न तो कोई शैव सौर, न तो कोई सौर गाणपत्य है और न तो कोई गाणपत्य बौद्ध, न तो कोई बौद्ध जैन है और न तो कोई जैन बौद्ध; किन्तु फिर भी हैं सभी तान्त्रिक। वह कौन सी ऐन्द्रिजालिक समसूत्रता है जो सारे दर्शनों एवं सारे विपरीत दृष्टियों वाले सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न होते हुए भी उन्हें एकता के सूत्र में ग्रथित किए हुए है? माला की भिन्न-भिन्न गुरियों को एक सूत्र में ग्रथित करने वाला तत्त्व तो सूत्र है किन्तु इन भिन्न-भिन्न विचारधाराओं वाले एवं परस्परविरोधी दर्शनों एवं सम्प्रदायों को एकसूत्रता में आबद्ध करने वाला सूत्र कौन है? यही सूत्र है **'तन्त्र'**। इसी तत्त्व की सर्वानुस्यूतता के कारण सारे परस्परविरोधी दर्शन एवं सम्प्रदाय एक ध्वज के नीचे खड़े हैं और वह ध्वज है— 'तन्त्र'।

क्या 'तन्त्र' कोई दार्शनिक सिद्धान्त है या कि कोई विशिष्ट साधना-पद्धति? यह कोई विशिष्ट दर्शन है या कि कोई विशिष्ट आचार-पद्धति? यह कोई विशिष्ट तत्त्व-विज्ञान है या कि जीवन जीने की कोई विशिष्ट एवं नवीन दृष्टि?

सत्य तो यह है कि तन्त्र सब कुछ है। यदि यह एक ओर विशिष्ट सिद्धान्त है तो दूसरी ओर यह एक विशिष्ट साधना भी है; यदि यह एक ओर विशिष्ट दर्शन है तो दूसरी ओर यह एक विशिष्ट धर्म भी है।

यह सर्वसमन्वयवादी, सर्वसमत्ववादी एवं सर्वसामञ्जस्यवादी वह दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टि है जो 'शुचि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः' के गीतोक्त समत्ववादी दर्शन का अनुयायी है।

यदि 'तन्त्र' एक ओर ज्ञानमार्गियों के 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म' के अद्वैतवाद को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर यह शैवों के 'शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं' एवं शाक्तों के—''अहं देवी न चान्योस्मि'' की अद्वयवादी दृष्टि का भी प्रेमालिङ्गन करता है। यदि यह एक ओर **'ज्ञानमार्ग'** को

---

१. अरविन्द घोष 'तन्त्र और वेदान्त'।

स्वीकार करता है तो यह दूसरी ओर '**भक्तिमार्ग**' को भी; यदि यह एक ओर '**कर्ममार्ग**' को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर '**योगमार्ग**' को भी। यदि यह एक ओर ज्ञानमार्गियों के रागातीत निर्विकल्प भाव को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर यह रागारुण सविकल्प महाभाव एवं प्रेम को भी। यदि यह एक ओर कर्मकाण्डीय विधानों को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर यह कर्मकाण्ड से अतीत ज्ञान की सप्तम भूमि को भी।'' यदि यह एक ओर स्थूलभूमिक '**मन्त्रयोग**' एवं '**हठयोग**' को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर सूक्ष्मभूमिक '**लययोग' एवं 'राजयोग**' को भी। यह एक ओर वैराग्य को आलिङ्गित करता है तो दूसरी ओर रागरञ्जित 'भावभक्ति', 'प्रेमाभक्ति', 'नारदीया भक्ति' एवं 'अद्वैत भक्ति' को भी।

'**तन्त्र**' भारतीय धर्मसाधना का यह अतल रत्नाकर है जहाँ 'ज्ञान', 'भक्ति', 'प्रेम' एवं 'योग' की सारी सरितायें अपने-अपने सारे भिन्न भिन्न स्वरूपों को आत्मसात करके भी इसमें मिलते ही सारे विरोधों को भूलकर अविरुद्धधर्मा हो जाती हैं— सारे अन्तर्विरोध अविरोध में परिणत हो उठते हैं; क्योंकि तन्त्र अतिवादी नहीं प्रत्युत् सर्वग्राही है— यह अतिवादी नहीं मध्यमार्गी है। यह सर्वसमन्वयवादी, सर्वसमत्ववादी एवं सर्वैक्यवादी हैं।

यहाँ जाति है भी और नहीं भी है। यहाँ **वेद** (वेद के प्रति निष्ठा—यथा 'समयाचार' में) है भी और नहीं भी है। यहाँ '**आश्रम**' है भी और नहीं भी है। यहाँ **वर्णाश्रम** धर्म है भी और नहीं भी है। यहाँ '**आचार**' है भी और नहीं भी है। यहाँ **नियमों का पालन** तथा **विधि-निषेध** है भी और नहीं भी है। यहाँ '**उपचार**' हैं और नहीं भी। यहाँ **शास्त्रप्रतिष्ठा** है भी और नहीं भी। यहाँ **स्वेच्छाचारिता** है भी और नहीं भी।

यदि यहाँ परात्पर तत्त्व (या सत्ता) के उच्चतम शृङ्ग पर 'शिव' दृष्टिगोचर होता है तो '**शक्ति**' भी, यदि '**महालक्ष्मी**' दृष्टिगोचर होती हैं तो '**महात्रिपुरसुन्दरी**' भी, यदि बौद्धों के शून्य एवं '**तथागत**' दृष्टिगोचर होते हैं तो जैनियों के '**पञ्च परमेष्ठी**' एवं '**अरिहन्त**' भी।

जहाँ '**जल्प**' ही जप हो, 'शिल्प' ही मुद्रा हो, '**गति**' ही प्रदक्षिणा हो, **अशनादि** ही आहुति हो, '**संवेश**' ही प्रणाम हो और सारे **सुखोपभोग** ही भगवान की सपर्या (पूजा) हो वहाँ बाह्य सपर्या की क्या आवश्यकता? इसी भावभूमि में प्रतिष्ठित शङ्कर ने (महाभाव की स्थिति में) कहा था—

'जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना।
गतिः प्रादक्षिण्य क्रमणमशनाद्याहुतिविधिः॥

प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा।
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्॥"[१]

इसीलिए **समयाचारी तान्त्रिकों** ने कहा था कि— "समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सत्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम्। एतच्च— 'जपो जल्पशिशल्पम्' इत्यादिश्लोक-व्याख्यानावसरे किञ्चिदुक्तम्॥"[२]

"समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्यां सहस्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ। ये ये समयिनो योगीश्वरा जीवन्मुक्ताः संसारयात्रामनुवर्तमानाः सादाख्य-तत्त्वमनुचिन्तयन्तः आत्मैकप्रवणाः वर्तन्ते तेषां तपो 'जल्पशिशल्पम्' इत्यादिनो सपर्याप्रकारो निरूपितः।"[३]

इसलिए तान्त्रिकों ने **बाह्यपूजा का प्रत्याख्यान** करते हुए कहा था कि सारे बाह्याडम्बर एवं बाह्याचार व्यर्थ हैं; क्योंकि—

'तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः।
हरिणादिमृगा देवि! तापसास्ते भवन्ति किम्?
पारावताः शिलाहाराः परमेश्वरि चातकाः।
न पिबन्ति महीतोयं योगिनस्ते भवन्ति किम्?

'शीतवातातपसहा जम्बालश्मशयाः प्रिये। तिष्ठन्ति शूकराद्यश्च योगिनस्ते भवन्ति किम्?'

'तन्त्र' स्वेच्छाचरणा को बढ़ावा नहीं देता। यदि ऐसा होता तो 'परशुराम कल्पसूत्र' में यह क्यों कहा जाता कि—

'काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्यविहित हिंसा-स्तेय-लोकविद्विष्टि-वर्जनम्।' (प. क. सूत्र)

पञ्चमकारों के सेवन के सम्बन्ध में भी एक संयम एवं नियमपालन आवश्यक है; क्योंकि '**कुलार्णव तन्त्र** पञ्चमकारों का विधान करते हुए भी कहता है—

'व्योमपङ्कजनिस्यन्दसुधापानरतो नरः।
मधुपायी समं प्रोक्तस्त्वितरे मद्यपायिनः॥ (कुलार्णव तन्त्र)

---

१. सौन्दर्यलहरी।
२. लक्ष्मीधरा।
३. लक्ष्मीधरा।

जब **'स्वविमर्श' ही जीवन का पुरुषार्थ है**—"स्वविमर्शः पुरुषार्थः" (प.क.सू.) और **सततं शिवता समावेशः॥** (प.क.सू.) ही **साधना का चरम लक्ष्य** है, तो साधना में बाह्याचार, बाह्यार्चा कर्मकाण्ड एवं बाह्योपचारों का क्या महत्त्व?

'अधिकारवाद' तन्त्र की मनोवैज्ञानिक विशिष्ट दृष्टि है। तान्त्रिक आचार्यों ने सारी साधनाओं, सारे अनुष्ठानों एवं सारी साधना-प्रणालियों में **साधकों की पात्रता या अधिकार** का ध्यान रक्खा है और कोई भी विधान सभी साधकों पर नहीं थोपा है। **'अधिकारवाद'** प्रधान दृष्टि है। तन्त्र में 'कर्मकाण्ड' एवं 'बाह्योपचार'-'बाह्याचार' नहीं है? है तो **'परशुरामकल्पसूत्र'** की 'दीक्षाविधि' 'महागणपति क्रम' 'श्रीक्रम' 'ललिताक्रम' 'श्याम क्रम' 'वाराही क्रम' 'पराक्रम' आदि सभी अध्यायों में कर्मकाण्ड विधान है। जब तान्त्रिक **आचार्य परशुराम** 'कल्पसूत्र' में कहते हैं कि साधना का आदर्श आन्तर साधना है न कि बाह्याचार। तो तन्त्र में बाह्योपचारों एवं बाह्याचारों का खण्डन होना तो स्वाभाविक ही है। आचार्य परशुराम की दृष्टि में यथार्थ यज्ञ (अर्चन, पूजा) का स्वरूप इस प्रकार है—

'सर्वं वेद्यं हव्यम्, इन्द्रियाणि स्रुचः, शक्तयो ज्वालाः स्वात्मा शिवः पावकः स्वयमेव होता॥"

—परशुराम कल्पसूत्र (२६)

'परशुराम कल्पसूत्र' में साधना का लक्ष्य 'सतत शिवतासमावेश' (सततं शिवता समावेशः) (१/१८) कहा गया है। अतः बाह्याचार के लिए स्थान कहाँ है?

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा क्षुद्रकलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्॥'
'बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेति हासा वामकास्तन्त्रवादिनः।
आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा॥[1]

समयाचारियों ने तो 'बाह्यपूजा' 'कौल' 'क्षपणक' 'कापालिक' 'दिगम्बर' 'इतिहास' वाममार्गी तान्त्रिक आदि सभी का खण्डन किया है। यद्यपि **'समयाचारी'** भी तान्त्रिक हैं, किन्तु उनकी दो दृष्टियाँ हैं—

(१) बाह्याचार एवं वामाचार एवं तान्त्रिकों का खण्डन।

(२) वेदानुष्ठान, वेददर्शन एवं वैदिक साधना का प्रतिपादन।

---

१. सनत्कुमार संहिता।

कौल तान्त्रिकों ने इसके विरुद्ध कहा कि '**वेद**' तो त्याज्य है; क्योंकि—

(१) न **वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न** शास्त्रपठनादपि॥[1]

(२) वेदशास्त्रपुराणानि सामान्य गणिका इव॥[2]

(३) वहीं 'कौल मत' यह भी स्वीकार करता है कि—

'न हि **वेदाधिकाविद्या** न कौलसमदर्शनम्॥'' (कु. तं.)

तान्त्रिकों ने सप्ताचारों में '**वेदाचार**' को भी एक आचार स्वीकार किया है।

(४) 'न **शास्त्र**पठनादपि' कहकर भी कुलार्णव शास्त्र में कहा गया है— 'यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। स सिद्धिमिह नाप्नोति परत्र नरके गतिम्। स्वेच्छया रममाणो यो दीक्षा संस्कारवर्जितः। न तस्य सद्गतिः क्वापि तपस्तीर्थव्रतादिभिः।''

(५) **वेदशास्त्रों का खण्डन** करने पर भी तान्त्रिकों ने यह भी कहा है कि— 'सर्वदर्शनानिन्दा'[3] (१/१४) अर्थात् किसी भी दर्शन की निन्दा नहीं की जानी चाहिये॥

यह कहकर भी परशुराम कहते हैं—

''**वेश्या इव प्रकटा वेदादिविद्याः। सर्वेषु दर्शनेषु गुप्तेयं विद्या**'' क्यों कहा? कहना तो नहीं चाहिए था किन्तु यहाँ परशुराम की वेद-निन्दा के पीछे उद्देश्य पर ध्यान दीजिये। वे कहते हैं कि ''वेद अच्छे हैं या बुरे'' मैं यह नहीं कहता किन्तु वे गोपनीय नहीं हैं अतः गोपनीय एवं गुह्यविद्या तन्त्रशास्त्र की तुलना में गोपनीयता की तुलना में इतने निचले स्तररपर हैं यथा वेश्यायें। तान्त्रिकों की दृष्टि में साधना में जितना '**अधिकारवाद**' (पात्र-चयन) महत्त्वपूर्ण हैं उतना ही 'गोपनीयतावाद' क्योंकि— 'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं मातृजारवत्' के तान्त्रिक सिद्धान्त का पालन न करने पर किसी भी साधना में निरापद सिद्धि अधिगत नहीं हो सकती।''

योगशास्त्र में '**तज्जस्तदर्थ भावनम्**'[4] कहकर ही जप की व्याख्या कर दी थी और सामान्य साधकों ने कतिपय वर्णों के बार-बार उच्चारण को ही जप की आख्या दे डाली है किन्तु 'तन्त्र' की व्याख्या देखिये—

''एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चरणं तु तपः॥''

---

१. कुलार्णव तन्त्र।

२. कुलार्णव तन्त्र।

३. परशुराम कल्पसूत्र।

४. योगशास्त्र।

(मन्त्रों के वर्णों का उच्चारण करते हुए ५ अवस्थाओं, शून्यों, विषुवों एवं ९ चक्रों का स्मरण एवं मन्त्र के अर्थ का चिन्तन ही 'जप' है।)[१]

कितनी तात्त्विक व्याख्या है!!

विज्ञानभैरवकार ने 'विज्ञातभैरव' (१४२) में जप की व्याख्या और भी अधिक सूक्ष्म धरातल पर की है—

'भूयोभूयः परे भावे भावना भाव्यते हि या।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः।।'[२]

स्पष्ट है कि ''पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिध्यति कदाचन'। **'पूजा'** गौणी या वैधी पूजा नहीं है प्रत्युत् यह है—

(१) 'पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मतिः क्रियते दृढा।
निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः॥'[३]

(२) न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्नद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः॥ (सङ्केत पद्धति)

(३) पूजा नाम विभिन्नस्य भावौघस्यापि सङ्गतिः।
स्वतन्त्रविमलानन्तभैरवीय चिदात्मना॥ (तन्त्रालोक)

(४) ध्यानायासतिरस्कारसिद्धस्त्वत्स्पर्शनोत्सवः।
पूजाविधिरिति ख्यातो भक्तानां स सदाऽस्तुमे। (१७/४)

भट्ट उत्पल— शिवस्तोत्रावली

'होम' तो यज्ञाग्नि में हवि डालना मात्र है किन्तु तन्त्र की दृष्टि में इसका स्वरूप इस प्रकार है—

'महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम्।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतनास्रुचा॥ (१४६)

—विज्ञान भैरव

'स्वच्छन्द तन्त्र' इसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है

एवं हृदयम्बुजावस्थो यष्टव्यो भैरवो विभुः।
स बाह्याभ्यन्तरं कृत्वा पश्चाद्यजनमारभेत्॥ (२/१५४)

---

१. वीरवस्थारहस्यम् (प्रथमोंशः ५२)।
२. विज्ञान भैरव (१४२)।
३. विज्ञान भैरव।

योगिनीहृदयदीपिकाकार ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया—

"धर्माधर्म हविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्याहम्॥
नैदानैस्तर्पणैः सम्यग् विशुद्धैरमृतात्मभिः।
मदहन्तां करोमीदं विश्वं हव्यपुरस्सरम्॥"

तन्त्र का उदय समत्वभावसम्पन्न समाज की नवस्थापना के अतिरिक्त साधना के क्षेत्र में हिंसा, बाह्याचार, बाह्यप्रदर्शन, कर्मकाण्डबाहुल्य, जातिवाद के स्वेच्छाचारी एवं निरङ्कुश समादर एवं जातीय विघटन के प्रत्याख्यान के उद्देश्य को लेकर हुआ था। इसी कारण तन्त्र में क्रान्ति, विरोध खण्डन एवं शास्त्रों के खण्डन की चेतना अत्यधिक मुखरित हुई है। यह समझना सङ्गत नहीं है कि तन्त्र ने स्वेच्छाचारिता को पुरस्सर किया। यदि ऐसा होता तो 'कुलार्णव तन्त्र' में तत्ववाद की व्याख्या में मानवीय दौर्बल्य पर ही प्रहार करते हुए क्यों कहा गया कि—

'यावत् कामादि दीप्येत् यावत् संसार वासना।
यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः?
यावत् प्रयत्न रोगोऽस्ति यावत् सङ्कल्प कल्पना।
यावन्त मनसः स्थैर्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः?
यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदस्ति हि।
यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्व कथा कुतः॥
यावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।
वेदशास्त्रगम कथा तावत्तत्त्व कथा कुतः?
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।
तत्त्वनिष्ठो भवेद्देवि ! यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।

(शिव-पार्वती संवाद) —कुलार्णव तन्त्र

तान्त्रिकों का यह कथन नहीं था कि शास्त्रों का अध्ययन ही न किया जाय बल्कि उनका कथन यह था कि 'ज्ञेय' के स्वरूप का शास्त्रों से बोध तो प्राप्त करो किन्तु यह शास्त्रबोध या तत्त्वबोध ही यथार्थ बोध नहीं है; क्योंकि बोध के दो प्रकार हैं उनमें जो (१) 'आगमोत्थ' ज्ञान वाला बोध है वह वरेण्य नहीं है।

(२) 'विवेकोत्थ' (आत्मानुभूतिजन्य) ज्ञान का बोध ही वरेण्य है—

'आगमोत्थं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं चक्षते।
शब्दब्रह्मागममयं परंब्रह्म विवेकजम्।'

क्योंकि जो विद्या (ज्ञान या बोध) मुक्ति प्रदान कर सके वह विद्या ही

नहीं है—

"तत् कर्म यन्न बन्धाय सा **विद्या** या विमुक्तये॥"

चूँकि **'आगमोत्थ ज्ञान'** मुक्ति नहीं दे सकता अतः **'विवेकोत्थ ज्ञान'** (आत्मानुभूतिप्रवण ज्ञान) ही श्रेयस्कर है। तान्त्रिकों का यह कथन असङ्गत तो नहीं है।

तान्त्रिक दृष्टि में याग कुछ विलक्षण ही अर्थ देता है वह केवल हवियों का अग्नि में समर्पण मात्र नहीं है—

'यागोऽत्र परमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा।
क्षपणात् सर्वपापानां त्राणात् सर्वस्य पार्वति।
रुद्रशक्तिसमावेशस्तत्क्षेत्रं भावना परा।
अन्यथा तस्य तत्त्वस्य का पूजा कश्च तृप्यति?'[१]

तान्त्रिक अर्थ में स्नान जल को शरीर पर छोड़कर शरीर को भिगोना नहीं है प्रत्युत् स्नान क्रिया कोई रहस्यात्मक सङ्केत भी है—

'स्वतन्त्रानन्दचिन्मात्रसारः स्वात्मा हि सर्वतः।
आवेशनं तत्स्वरूपे स्वात्मतः स्नानमीरितम्॥'[२]

जहाँ पारमार्थिक तत्त्व-सिद्धि के अन्तिम (उच्चतम) शृङ्ग पर पहुँचने पर **'सर्वशिववाद'** एवं **'सर्वशक्तिवाद'** या शिवोऽहं **'शिवोऽहं' 'शिवोऽहं' 'शिवोऽहं'** तथा **'अहं देवी न चान्योऽस्मि'** की निरन्तर अखण्डानुभूति होने लगती है वहाँ कैसी और किसकी पूजा? इसीलिए विज्ञान भैरव में कहा गया है कि—

"यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परापरः।
यश्चैव पूजकः सर्वः स एवैकः क्व पूजनम्?"

"यावत् तत् परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि !
तावत् **पूजाजपध्यानहोम**लिङ्गार्चनादिकम्।
विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा क्व जपो होमः **क्व** च लिङ्गपरिग्रहः?"

— प्रभाकौल

बात भी सही है कि 'तस्मञ्ज्ञाते सर्वं विज्ञातमुच्यते वेदे' (वरिवस्या-रहस्यम्)॥

---

१. विज्ञान भैरव (१४७-१४८)।
२. विज्ञान भैरव (१४९)।

जहाँ तक तन्त्र द्वारा वेद को हीनतर दिखाने का प्रश्न है वहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि भगवान श्री कृष्ण ने भी वेद के प्रति वह आस्था नहीं दिखाई जो कि वेदवादी मीमांसक दिखाते हैं। इसी कारण उन्होंने अर्जुन से कहा कि तुम वेदों से भी ऊँचे उठे; क्योंकि ये वेद तो गुणत्रय की दासता के पाश से आबद्ध हैं—

'त्रैगुण्यविषया वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन॥'

जहाँ कोई एक दूसरे से पृथक् है वहीं एक व्यक्ति दूसरे की पूजा कर सकता है— वहीं कोई एक व्यक्ति पूजक होता है तो दूसरा पूज्य। किन्तु जब सभी 'एक' ही हो जाते हैं और एक के अतिरिक्त दूसरे का अस्तित्व ही शेष नहीं रह जाता तब वहाँ कौन '**पूजक**', कौन '**पूज्य**', कौन '**साधक**', कौन '**साध्य**'? कौन '**ध्याता**' कौन '**ध्येय**' कौन '**भक्त**' और कौन '**भगवान**'? अद्वैतभाव (ब्राह्मी भाव) के इसी उच्चतम शृङ्ग पर आरूढ़ होने पर '**आश्रम**' '**वर्ण**' '**जाति**' '**धर्म**' '**विधि-निषेध**' **नियम-संयम** आदि सारे **धर्म** एवं सारे **धार्मिक अनुष्ठान**, सारे **जप**, **तप**, **व्रत** एवं **तीर्थयात्रा** आदि सारे बाह्याचार निरर्थक हो जाते हैं; क्योंकि वह तो— 'सा तु कर्मज्ञायोगेभ्योऽप्य-धिकतरा। (ना. भ. सूत्र २५)

वहाँ वेद भी स्वीकार्य नहीं है— '**वेदानपि** संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते॥ ४९॥

तन्त्र की आदर्श भूमि द्वैताद्वैतविलक्षण तत्त्व की भूमि है क्योंकि— 'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे। मम तत्त्वं विजानन्तो **द्वैताद्वैतविवर्जितम्**।'

यही तान्त्रिकों की '**भैरवीभावापति**' '**शिवीभाव**' '**जीवन्मुक्ति**' '**चकेश्वरत्व**' '**सर्वात्मवाद**' '**सामरस्यवाद**' '**विश्वाहन्ता**' एवं '**शिवात्मैक्य**' की सिद्धावस्था है। यही वेदान्तियों का अद्वैतमूलक 'ब्राह्मीभाव' है और योगियों का 'कैवल्य' या 'द्रष्टा का स्वरूपावस्थान'—

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥'[१]

यही है त्रिकदर्शन की '**पूर्णाहन्ता**' की अवस्था। यही स्थिति 'जीवन्मुक्ति' की भी है—

''कण्ठलुण्ठत्प्राण इव व्यक्तं **जीवमृतो** लोकः॥''[२]

यहाँ विश्व भी अपना शरीर दृष्टिगत होने लगता है— ''इत्थं चितिमखिलेऽ-ध्वनि धारयतो विश्वदेहत्वम्।''[३]

---

१. योगसूत्र।

२. विरूपाक्षपञ्चाशिका।

३. विरूपाक्षपञ्चाशिका।

इस विराट अहन्ता ('पूर्णाहन्ता') में 'ईश्वरता' निरपेक्ष 'स्वतन्त्रता' एवं 'सर्व-कर्तृत्व' एकीभूत हैं—

'ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वरूपा चेति।
एतेऽहन्तायाः किल पर्यायाः सद्भिरुच्यते॥'[१]

तन्त्र में जो विरोधाभास दृष्टिगत होता है, वह साधकों की पात्रता को लेकर है। 'अधिकारवाद' या पात्रता के आधार पर ही यहाँ 'जाति है भी और नहीं भी है, **शास्त्र** प्रणम्य हैं भी और नहीं भी हैं, **वेद** ग्राह्य हैं भी और नहीं भी हैं, **आचार** आवश्यक भी हैं और नहीं भी हैं। यहाँ **राग और वैराग्य** स्वीकृत भी हैं और नहीं भी हैं। यहाँ एक ओर **राग** ग्राह्य है तो दूसरी और अग्राह्य है। यदि यहाँ भोग काम्य है तो दूसरी ओर अकाम्य भी। यहाँ एक ओर भौतिक पञ्चमकार श्रेयस्कर हैं तो दूसरी ओर नहीं भी हैं। यहाँ ध्यान, तप, अर्चा, धर्म, सत्क्रिया, मन्त्र, देवता, गुरु, आत्मा हैं भी और नहीं भी—

"न ध्यानं न तपो नार्चा न धर्मो न च सत्क्रिया।
न मन्त्रदेवगुर्वात्मा विचारो न हि कौलिकः॥"

किन्तु विषयासक्ति नरक भी ले जाती है—

'केवलं विषयासक्तः पतत्येव न संशयः।
मद्यासक्तो न पूजार्थी मांसाशी स्त्रीनिवेशकः।.....नरकं व्रजेत्॥

यहाँ सकामता है तो निष्कामता भी— "फलं त्यक्त्वा कर्म करणम्॥" (१/२२) 'सर्वत्र निष्परिग्रहता।' (२१)[२] यहाँ सविकल्पता है तो निर्विकल्पकता भी। यहाँ सारे द्वन्द्व द्वन्द्वातीतावस्था में लुप्त हो जाते हैं।

तान्त्रिकों की भी अन्तिम सिद्धि 'आत्मसिद्धि' है। '**आत्मलाभान्न परं विद्यते॥**' (परशुराम कल्पससूत्र २८)।

यहाँ प्रत्येक बाह्यवस्तु दृष्टि बदलते ही आन्तर वस्तु बन जाती है। यहाँ प्रत्येक अनात्मिक वस्तु 'सर्वात्मवाद' के कारण आत्मिक बन जाता है। यहाँ सारे बाह्याचार भी (दिव्याचार में) आत्मिक आचार बन जाते हैं और समस्त गोचर विश्व अगोचर शिव-शक्ति बन जाते हैं।

विज्ञानभैरवकार कहते हैं कि 'अदृश्य' को पाने के लिए किसी अदृश्य जगत में जाने की आवश्यकता नहीं है प्रत्युत इसी दृश्य जगत की 'तिमिरभावना' पर भैरव का स्वरूप प्राप्त हो जाता है—

---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका (८)।
२. परशुराम कल्पसूत्र।

'एवमेव दुर्निशायां कृष्णपक्षागमे चिरम्।
तैमिरं भावयन् रूपं भैरवं रूपमेष्यति॥' (८५)

'एवमेव निमील्यादौ नेत्रे कृष्णाभमग्रतः।
प्रसार्य भैरवं रूपं भावयंस्तन्मयो भवेत्॥' (८६)

तन्त्र की साधना-भूमि पर आत्मज्ञान ही **'दान'** है— 'दानमात्मज्ञानम्॥' (२८) शरीरवृत्ति ही **'व्रत'** है— 'शरीरवृत्तिर्व्रतम्' (२६) कथा ही **'जप'** है— 'कथा जपः' (२७) अपनी शक्ति का प्रचय ही **'विश्व'** है— 'स्वशक्ति प्रचयोऽस्य विश्वम्' (३०) किन्तु यह भी आवश्यक है कि तीनों अवस्थाओं को (जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति की अवस्था को) चतुर्थावस्था (तुरीयावस्था-आत्मचैतन्य की परावस्था) से सींचते रहना चाहिये—

'त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम्॥' (२०) (शिवसूत्र)

यहाँ शरीर ही 'हवि' है— 'शरीरं हविः' (८)[१]

यहाँ ज्ञान ही 'अन्न' है— 'ज्ञानं अन्नम्' (९)[२]

यहाँ स्वयं चित्त ही 'मन्त्र' है— 'चित्तं मन्त्रः' (१)[३]

यहाँ वितर्क ही 'आत्मज्ञान' है— 'वितर्क आत्मज्ञानम्'[४]

'तन्त्र' एक शक्ति-प्रधान विशिष्ट धर्म है जो कि अपनी स्वतन्त्र दार्शनिक दृष्टि एवं स्वतन्त्र साधना पद्धति से संवलित है।

'तन्त्र' शब्द मुख्यतः **'तन्'** (फैलाना, तानना) एवं **'त्रै'** (त्राण करना) धातुओं से निष्पन्न माना जाता है। यह 'बहुत से विषयों को, जिनमें **तत्त्व** एवं **मन्त्र** भी सम्मिलित हैं विस्तारित करता है और रक्षा करता है अतः इसे 'तन्त्र' कहते हैं—

''तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्र समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥''

तन्त्र और योग— कर्मकाण्डियों, ज्ञानमार्गियों एवं भक्तिमार्गियों ने केवल 'कर्म', 'ज्ञान' एवं 'भक्ति' मात्र को आध्यात्मिक यात्रा का अकेला मार्ग माना किन्तु तान्त्रिकों ने अपनी साधना को अनेक मार्गों से अग्रपद किया अतः उन्होंने 'ज्ञान', 'भक्ति' एवं 'योग' तीनों को समान महत्त्व दिया।

---

१. शिवसूत्रम्।
२. शिवसूत्रम्।
३. शिवसूत्रम्।
४. शिवसूत्रम्।

लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'भजन' के दो प्रकार हैं— (१) षट् चक्रसेवात्मक (२) धारणात्मक। उनकी दृष्टि में आधार-स्वाधिष्ठान तो 'तामिश्र लोक' होने के कारण उपास्य है ही नहीं किन्तु अन्य उपास्य हैं—

'मणिपूरप्रभृतिसहस्रकमलपर्यन्तं पञ्चचक्राणि पूज्यानि॥'

(१) तत्र मणिपूरकपूजापराणां **'सार्ष्टिरूपा मुक्तिः।'**

(सष्टिर्नाम देव्याः पुरसमीपे पुरान्तरं निर्माय सेवां कुर्वाणस्य अवस्थितिः।)

(२) संवित्कमलपूजारतानां **'सालोक्यमुक्तिः।'**

((सालोक्यं नाम देव्याः पदृणे निवासः)

(३) विशुद्धिचक्रोपासकानां **'सामीप्यं मुक्तिः।'**

(सामीप्यं नाम अङ्गसेवकत्वम्।)

(४) आज्ञाचक्रोपासकानां **'स्वारूप्य मुक्तिः।'**

(सारूप्यं नाम समानरूपत्वम्।)

(५) पृथग्देहधारित्वेनेति **'सायुज्याद्भेदः।'**

(एतत् चतुर्विधं बाह्यदुखातिवर्तित्वमात्रात् भुक्तिरिति व्यपदिश्यते। परं तु सायुज्यात्मिकैव **शश्वती मुक्तिः** सहस्र कमलोपासकानामेवेति। परं तु सायुज्यात्मिकैव शाश्वती मुक्तिः॥)

'शैव-शाक्त-वैष्णव-बौद्ध-जैन आदि सभी तन्त्रमार्गों में ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग एवं योगमार्ग तीनों को साधनपथ के रूप में स्वीकार किया गया है।

'तन्त्र शब्द तन्त्र-साहित्य के अर्थ में कब प्रयुक्त हुआ यह कहना कठिन है और यह भी निश्चित करना सम्भव नहीं है कि किन लोगों ने सर्वप्रथम तन्त्र-सिद्धान्तों एवं प्रयोगों (व्यवहारों) को आरम्भ किया और न यही जानना सरल है कि यह सब कहाँ हुआ?[1]

महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री का कथन है कि 'तन्त्र' के सिद्धान्त एवं व्यवहार **भारत के बाहर से आये** और यह **'कुब्जिका मत तन्त्र' के एक श्लोक** से सिद्ध है। उस श्लोक का अर्थ यह है कि— ''सभी स्थानों पर अधिकार करने के लिए भारतवर्ष में जाओ और पीठों, उपपीठों एवं क्षेत्रों में अनेक प्रकार से इसकी सृष्टि करो।''

डॉ. काणे की समीक्षा— हर प्रसाद जी के इस उदाहरण से यह स्पष्ट नहीं

---

१. वामन काणे 'धर्मशास्त्र का इतिहास'।

होता कि भारत में तन्त्र-सिद्धान्तों का प्रचलन इस श्लोक के उपरान्त ही हुआ। भारत में तन्त्र-सिद्धान्तों की प्राचीनतर काल से विद्यमानता रहने पर भी उस वचन का कथन सम्भव था और पीठों तथा क्षेत्रों की ओर जो भी निर्देश उक्त श्लोक मे व्यक्त किया गया है वह इस बात की पुष्टि सी करता है कि उनमें तन्त्र-सिद्धान्त प्रचलित थे।

'गच्छ त्वं भारते वर्षे अधिकाराय सर्वत:।
पीठोपपीठक्षेत्रेषु कुरु सृष्टि मनेकधा॥'

(पुराणों आदि में हमें भविष्यवाणी के रूप में वही तथ्य प्राप्त होता है जो बीत चुका रहता है।)

यह सम्भव है कि 'कुलाचार' एवं 'वामाचार' ऐसे कुछ रहस्यवादी प्रयोग बाह्य तत्त्वों से प्रभावित रहे हों या वे मौलिक रूप से बाह्य रहे हों किन्तु उस श्लोक पर महा. हर प्रसाद शास्त्री ने जो निर्भरता दिखाई है वह इसे सिद्ध करने में कदापि उपयुक्त नहीं है।[१]

रुद्रयामल में 'अथर्ववेद' (१७वाँ पटल, चौथा श्लोक) की यह प्रशस्ति की गई है कि उसमें सभी देवों, सभी प्राणियों (जलचर, स्थलचर एवं नभचर), सभी विद्याओं, कामविद्या एवं महाविद्या का निवास है। श्लोक १०-१७ में रहस्यमयी **कुण्डलिनी का भी वर्णन** किया गया है। ३१वें श्लोक में यौगिक प्रयोगों का, ६ **श्लोकों में शरीर के चक्रों का, उल्लेख है।**

प्राचीनतर तन्त्र बौद्ध हैं या कि हिन्दू?

तन्त्रों में बौद्धतन्त्र भी बहुत प्राचीन है। प्र. पहले हिन्दू तन्त्रों का उद्भव हुआ या कि बौद्धतन्त्रों का? **डॉ. वामन काणे** का कथन है कि इसका निर्णय करना बहुत कठिन है।

'साधनमाला' (३१२ ग्रन्थों का संग्रह) की भूमिका में **डॉ. भट्टाचार्य** ने कहा है कि हिन्दू तन्त्रों का मूल बौद्धतन्त्रों में पाया जाता है। **विन्टरनिट्ज़** ने 'History of Indian Literature' में इस मत का खण्डन किया है। **डॉ. काणे** भी विन्टरनिट्ज़ के मत के समर्थक हैं। डॉ. भट्टाचार्य ने 'बुद्धिस्ट इसोटेरिज़्म' की भूमिका में कहा था कि— "बिना विरोधाभास के भय के ऐसी घोषणा करना सम्भव है कि बौद्धों ने ही सर्वप्रथम अपने धर्म में तन्त्रवाद का श्रीगणेश किया और हिन्दुओं ने उनसे आगे चलकर उसे उधार लिया॥" **श्री वैल्ली पोशिन** ने ('इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रेलिजिन एण्ड एथिक्स' में) **विन्टरनिट्ज़ ने** ('भा. सा.' में) एवं **ई. ए. पेंयने** ने

---

१. वामन काणे।

('दि शाक्ताज़' नामक ग्रन्थ में) डॉ. भट्टाचार्य के मत का खण्डन किया है।

यथार्थता तो यह है कि संस्कृत के सैकड़ों ग्रन्थ तिब्बत और चीन की भाषा में अनूदित किये गये। तिब्बतियों एवं चीनियों ने भारत से ही ऋण लिया है न कि भारत ने। चीनी प्रो. लियाँग ची चाओ ने 'China's Date to India' में लिखा है कि सन् ६७ से ७८९ तक भारत में २४ हिन्दू विद्वान् चीन आए, कश्मीर से १३ विद्वान् आए। सन् २६५ से ७९० तक जो चीनी विद्यार्थी बनकर भारत आये उनकी संख्या है— १८७। इनमें १०५ का नाम भी ज्ञात है।

तिब्बती एवं चीनी ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद तो पाया नहीं जाता। **७वीं शती के पूर्व भारत में तन्त्र एवं शाक्त पूजा प्रचलित थी; क्योंकि 'युवांच्वांग्स ट्रैवेल्स इन इण्डिया' में वाटर्स** ने लिखा है कि एक नौकासवार चीनी यात्री को अयोध्या के पास लूट लिया गया और उसकी बलि 'दुर्गा' को देने के लिए पकड़ लिया था। स्पष्ट है कि उस समय तन्त्र प्रचलित थे। स्ट्रांगत्सान गैम्पो (६३०-६९३) के शासनकाल में बौद्ध धर्म तिब्बत में पहुँचा और ७५० में लगभग ७५० संस्कृत पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया।

'तन्त्र' और 'आगम'

(१) 'तन्त्र' शब्द विस्तारार्थक 'तनु' धातु से 'सर्वधातुभ्य ष्ट्रन' इस सूत्र से 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। —'काशिका वृत्ति'

(२) **'कामिकागम'** 'तनोति विपुलानर्थान् तन्त्रमन्त्रसमन्वितान्। त्राणञ्च कुरुते यस्मात्तन्त्रमित्यभिधीयते।

(३) 'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेति, त्रायते साधकान् इति तन्त्रम्॥'

(४) **'आगम'** किसे कहते हैं?

(वाचस्पति मिश्रः) आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदय निःश्रेयसोपायाः स **आगमः**॥

(५) **(वाराही तन्त्र)**—

'सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम्
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च।
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः।
सद्यभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधाः॥'

(६) (पदार्थादर्श)—

आगतं शिव वक्तातु गतन्तु गिरिजामुखम्।

मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥

(७) (अभिनवगुप्तः 'तन्त्रालोक')—

इह तावत्समस्तोऽयं व्यवहारः पुरातनः।
प्रसिद्धिमनुसन्धाय सैव चागम उच्यते॥ (३५/१)

(८) ['स्वच्छन्द तन्त्र' (पटल ४)]— 'परमेश्वर तच्छक्तिसदाशिवे शानान्त श्रीकण्ठादिरूपं पारम्परं तत **आगतम्**॥

(९) 'प्रसिद्धिरागमो लोके....' 'विमर्शः आगमः सा प्रसिद्धिरविगीतिका॥'— यह प्रसिद्धि भी अन्ततः परा परामर्श ही है जिसकी स्थिति पूर्णाहं परामर्शमय सर्वज्ञ परमेश्वर में है।

(१०) आर. डी. रानाडे महोदय के अनुसार—

'Tantrism recognises itself to be the practical Counterpart of Adavaitism. Tantrism recognises Shiva as embodiment of Supreme consciousness and Shakti as the embodiment of Supreme power both being merely the aspects of that eternal variety.

— Mysticism in Maharashtra

(११) सात्वत संहिता— अपर ज्ञान ही 'तन्त्र' है। (शिव की ज्ञानात्मिका शक्ति के दो रूप हैं— (१) पर एवं (२) अपर) यह अपर ज्ञान ही 'सात्वत संहिता' की दृष्टि से 'तन्त्र' है।

(१२) **गोपीनाथ कविराज** जी कहते हैं कि तान्त्रिक उपासना शक्ति की उपासना है। बौद्धों की दृष्टि से 'प्रज्ञा' ही शक्ति है।

(१३) **वरदकान्त मजूमदार** महोदय के मतानुसार द्वैत में अद्वैत (एकत्व) ही तन्त्र का मूल सिद्धान्त है। इसे ही वैष्णवागम लक्ष्मी-नारायण तथा कृष्ण और राधा के बीच या हरि और लक्ष्मी के मध्य स्वीकार किया गया है—

'Duality in unity is the root principle of the Tantra. This quality, for want of the expression be called 'Palanity'. The Vaishnava have adopted the idea in their Krishna and Radha, Hari and Laxmi.'

गोपीनाथ जी की यही दृष्टि है— 'आगम के मत में अद्वैत का अर्थ है— द्वैत का नित्य सामरस्य॥'

(१४) 'महास्वच्छन्द' के अनुसार—

आगतं पञ्चवक्त्रात्तु गतं च गिरिजानने।
मतं च वासुदेवस्य **तस्मादागम** उच्यते॥

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपदैर्वाचस्तन्त्रं समवतारयत्॥

(१५) 'स्वच्छन्द तन्त्र' (टीका)

"**आसमन्ताद् गमयति** अभेदेन विमृशति पारमेशं स्वरूपमिति कृत्वा पराशक्तिरेवागमस्तत्प्रतिपादकस्तु शब्दसन्दर्भस्तदुपायत्वात् शास्त्रस्य॥"

तन्त्र और तान्त्रिक दृष्टि

'तान्त्रिक दृष्टि' उन बिन्दुओं से निर्मित दृष्टि है जो सभी आगमों में समान रूप से उपलब्ध होकर अनागमिक वाङ्मय से उन्हें पृथक् करती हैं। अनागमिक वाङ्मय से आगमिक वाङ्मय को पृथक् करने वाले किन्तु सभी आगमों में समान रूप से उपलब्ध होने वाले बिन्दुओं से निर्मित दृष्टि की आगमिक तथा तान्त्रिक दृष्टि है।

'आगम' और 'तन्त्र' 'अर्थ सङ्कोच' पूर्वक प्रयुक्त हैं। **क्या आगम (तन्त्र) की अवैदिकता अनिवार्य है?** सामान्यतया तो ऐसा माना जाता है किन्तु 'समयाचार' तो वैदिक अनुशासन का पूर्ण पक्षधर है।

सामान्यतः लोग 'तन्त्रों' से तात्पर्य लगाते हैं— शक्ति (काली देवी) की पूजा, मुद्रायें, मन्त्र, मण्डल, पञ्चमकार, दक्षिणमार्ग, वाममार्ग एवं ऐन्द्रजालिक क्रियायें।[१]

'अमरकोष' के अनुसार 'तन्त्र' का अर्थ है— 'प्रमुख विषय या भाग' 'सिद्धान्त' (अर्थात् मत, तत्त्व, वाद या शास्त्र) करघा (कपड़ा बुनने का एक यन्त्र) या सामग्री (उपकरण)।

'अमरकोश' के काल में—

(१) तन्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन नहीं हुआ था।

(२) या हुआ भी रहा होगा तो वे ग्रन्थ अभी जनसामान्य की बुद्धि में बैठ नहीं सके थे।[२]

'तन्त्र' शब्द के प्रयोग— 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग वेदों से लेकर उत्तरवर्ती साहित्य तक सर्वत्र हुआ है।

(१) **ऋ.** (१०/७/९) 'तन्त्र' शब्द करघा अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

(२) **अथर्ववेद** (१०/७/४२) 'तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्॥'

(३) **तैत्तिरीय ब्राह्मण** (२/५/५/३) (उसी अर्थ में तन्त्र का प्रयोग)।

---

१. धर्मशास्त्र का इतिहास (डॉ. पा. वामन काणे)।

२. वामन काणे।

(४) **पाणिनि** (५/२/७०) : 'तन्त्रक' (तत्काल करघे से उतारा गया वस्त्र)।

(५) **आ. श्रौ. सूत्र** (१/१५/१) 'तन्त्र' का अर्थ है— 'कई भागों वाली विधि'।

(६) **शांखायन श्रौ.** (१/१६/६) : 'तन्त्र' वही है जो एक बार हो जाने पर (किये जाने पर) बहुत से अन्य कर्मों का उपयोग सिद्ध करता है।

(७) **महाभाष्य** ने **पाणिनि** (४/२/६०) एवं **'वार्तिक'** 'सर्वसादेर्द्विगोश्चलः' पर **'सर्वतन्त्रः'** एवं **'द्वितन्त्रः'** को उदा. के रूप में ग्रहण किया है जिनका तात्पर्य है "जिसने सभी तन्त्रों का अध्ययन कर लिया हो' 'जिसने दो तन्त्रों का अध्ययन कर लिया हो।' यहाँ पर **'तन्त्र'** का अर्थ संगवतः **'सिद्धान्त'** है।

(८) **याज्ञवल्क्य** (१/२२८) : 'तन्त्रं वावैश्वदेविकम्' में प्रयुक्त तन्त्र शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, जिसमें 'शांखायनश्रौतसूत्र' में किया गया है।

(९) **कौटिल्य का अर्थशास्त्र** (१५वाँ अधिकरण) नाम है— 'तन्त्र युक्ति' : अर्थात् किसी शास्त्र की व्याख्या के मुख्य नियम विधियाँ एवं सिद्धान्त।

(१०) 'चरक' (सिद्धिस्थान, अध्याय १२/४०-४५) : '३६ तन्त्रस्य युक्तयः'। **'सुश्रुत'** (उत्तर तन्त्र : अध्याय ६५) ने ३२ तन्त्रयुक्तियों का उल्लेख किया है।

(११) **बृहस्पति, कात्यायन एवं भागवत** में **'तन्त्र'** = 'सिद्धान्त' 'शास्त्र'।

(१२) **शबर ने जैमिनि** (११/१/१) के भाष्य में कहा है कि जब कोई कार्य या पदार्थ एक बार हो जाता है तो वह बहुत-सी अन्य बातों या विषयों में उपयोगी हो जाता है और उसे ही **'तन्त्र'** कहा जाता है।

(१३) **शङ्कराचार्य** (वेदान्त सूत्र भाष्य में कई स्थानों पर तन्त्र शब्द का प्रयोग प्राप्त) : सांख्य सिद्धान्त : शङ्कराचार्य ने 'सांख्य तन्त्र' एवं 'पूर्वमीमांसा' को **'प्रथमतन्त्र'** कहा है। (वे. सू. २/२/१; २/१/१; ३/३/५३) में 'पूर्वमीमांसा' को 'प्रथम तन्त्र' कहा गया है।

(१४) **'कालिका पुराण'** (८७/१३०) में उशना एवं बृहस्पति के **राजनीतिक विषयक ग्रन्थों को 'तन्त्र'** कहा गया है और **विष्णुधर्मोत्तर पुराण को 'तन्त्र'** (९/२/२) कहा गया है।

(१५) **आप. श्रौ.** (१/१५/१)— 'उदित आदित्ये पौर्णमास्यास्तन्त्रं प्रक्रमयति प्रागुदयादमावास्यायाः' टीकाकार— अंगसमुदायस्तन्त्रम्। तत्प्रक्रमयति यजमानोऽ-ध्वर्युणा॥" **'तन्त्र लक्षणम्'**।

(१६) **शांखायन श्रौतसूत्र** (१/१६/६) टीकाकार— 'यत्सकृत्कृतं बहूनामुपकरोति तत्तन्त्रमित्युच्यते।'

(१७) 'आम्नोय **स्मृतितन्त्रे** च लोकाचारे च सूरिभिः। शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्य कले समा।'

बृहस्पति, अपरार्क (पृ. ७४०) दायभाग (११.१.२) पृ. १४९ कुल्लूक (मनु. ९.१८७) द्वारा उद्धृत है।

'**आत्मतन्त्रे** तु यन्नोक्तं तत्कुर्यात् पारतन्त्रिकम्'— कात्यायन द्वारा 'स्मृति चन्द्रिका' (पृ. ५) द्वारा उद्धृत।

(१८) '**तन्त्रं** सात्वतमाचष्ट नैकर्म्यं कर्मणो यतः।'[१] (भागवत १.३.८) यहाँ पाञ्चरात्र को 'सात्वत तन्त्र' कहा गया है।

(१९) शबर का भाष्य (जैमिनि : ११/४/१)— 'यत्सकृत्कृतं बहूनामुपकरोति **तत्तन्त्र**मित्युच्यते यथा बहूनां ब्राह्मणानां मध्ये कृतः प्रदीपः।

५१-५३ के श्लोकों में 'कामरूप' 'जालन्धर' 'पूर्णगिरि' उड्डियान एवं कालिका पीठों आदि का विवेचन किया गया है।

(२०) 'रुद्रयामल' (पटल १७, श्लोक ११९-१२५) में कहा गया है कि '**महाविद्या**' वसिष्ठ ऋषि के समक्ष प्रकट हुईं अऔर उनसे चीन देश एवं बुद्ध के यहाँ जाने के लिए कहा। बुद्ध ने सिद्धि प्राप्त्यर्थ **वसिष्ठ को कौलमार्ग एवं योग के प्रयोगों में दीक्षित किया** और उन्हें पूर्ण योगी होने की साधना के लिए पञ्चमकारों के उपयोग का भी निर्देश दिया—

'यः कुलार्थी सिद्धमन्त्री भवेदाचारनिर्मलः।
प्राप्नोति साधनं पुण्यं वेदानामप्यगोचरम्।
बौद्धदेशेऽथर्ववेदे महाचीने सदा व्रज।....
मत्कुलज्ञो महर्षि त्वं महासिद्धो भविष्यसि॥
ततो मुनिवरः श्रुत्वा महाविद्यासरस्वतीम्।
जगाम चीनभूमौ च यत्र बुद्ध प्रतिष्ठति।
वसिष्ठ शृणु कुलमार्गमनुत्तमम्।
येन विज्ञानमात्रेण रुद्ररूपी भवेत्क्षणात्॥
अतः कुलं समाश्रित्य सर्वसिद्धीश्वरो भव।
मासेनाकर्षणां सिद्धिर्द्विमासे वाक्पतिर्भवेत्।

---

१. शबर भाष्य : जैमिनि : ११/४/१।

शक्तिं विना शिवोऽशक्तः किमन्ये जडबुद्धयः।
इत्युक्त्वा बुद्धरूपीं च कारयामास साधनम्॥
कुरु विप्र ! महाशक्तिसेवनं **मद्यसाधनम्**।
मदिरासाधनं कर्तुं जगाम कुरुमण्डले।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च।
पुनः पुनः साधयित्वा पूर्णयोगी बभूव सः।[1]

इससे प्रकट होता है कि जब 'रुद्रयामल' का प्रणयन हुआ था तब भारत में पीठ थे, चीन या तिब्बत में तान्त्रिक प्रयोगों का प्रचलन था। बुद्ध ने ही ऐसे प्रयोगों की शिक्षा दी थी। यह कथन 'बुद्ध की उदात्त शिक्षा के प्रति एक कृत्रिम लेख एवं दुष्ट उपहास-सा प्रतीत होता है।[2]

(२१) आर्थर एवेलान महोदय ने 'महानिर्वाण तन्त्र' में लिखा है कि "तन्त्र भारत में **चाल्डीआ** या **शकद्वीप** से आया।" प्रो. एन. एन. चौधरी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि **भारतीय तन्त्रवाद का मूल तिब्बत के बानधर्म में पाया जाता है।** असंग ने भारत में तन्त्रवाद चलाया था। प्रो. चौधरी ने यह भी कहा कि तन्त्रग्रन्थों में गुरु की स्थिति न तो वैदिक है और न तो पौराणिक। किन्तु यह कथन सत्य नहीं है; क्योंकि 'निरुक्त ' (२/४) विद्या सूक्त एवं 'श्वेताश्वेतरोपनिषद' (६/१८) 'लिङ्गपुराण' एवं 'देवीभागवत' (११/१/४९) 'श्वेताश्व.' (६/२३) एवं 'अग्नि पुराण' (३९२/६) आदि ग्रन्थों में गुरु की महिमा की सशक्त विवेचना की गई है।

(२२) ऐन्द्रजालिक (मायावी) मन्त्रों का उल्लेख अथर्ववेद में बहुत बड़ी संख्या में पाया जाता है। ऋग्वेद (७/९९७; ७/१००/७ आदि) में 'वषट्' तथा ऋग्वेद (१/१३/१२; ५/५/११; ७/२/११) में **'स्वाहा'** जैसे रहस्यात्मक शब्दों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

नींद लाने वाला मन्त्र ऋग्वेद (७/५५/५-८) एवं अथर्ववेद (४/५/६, ५/१/३) में पाया जाता है।

(२३) ऋग्वेद में ऐसे जादूगरों का उल्लेख मिलता है जो अधिकांशतः 'अनार्य' कहे गये हैं और उन्हें 'अदेव' 'अनृतदेव' (मिथ्या देवों के उपासक) 'शिश्नदेव' (लम्पट) ऋ ७/२१/५, १०/९९/३ भी कहा गया है।

(२४) तान्त्रिक ग्रन्थों में ६ क्रूर कर्मों का भी वर्णन पाया जाता है। वैदिक काल में यह मान्यता भी थी कि कुछ दुष्ट लोग 'माया' 'मन्त्र' एवं अभिचार प्रयोग

---

१. रुद्रयामल (पटल १७) श्लोक १२१-१२३, १२५, १३५, १५२-१५३, १५७-१५८, १६०-१६१।
२. वामन काणे।

द्वारा लोगों को या पशुओं को अस्वस्थ कर सकते हैं या मार सकते हैं। ऋग्वेद काल में लोग अभिचार से डरते थे (सूक्त : ७/१०४, १०/१८७, २५ मन्त्रों का समूह)। इन सूक्तों में 'यातुधान' (अभिचारकर्ता) एवं 'रक्षस्' (दुष्ट आत्मा) शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। 'यातु' शब्द जादू ही है जो भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होता है। पिशाचिनियों का भी ऋग्वेद (१/१३३/५) में उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के मन्त्र में कहा गया है कि "मैं (वसिष्ठ आज ही मर जाऊँ यदि मैं अभिचार प्रयोक्ता होऊँ या यदि मैंने किसी व्यक्ति के जीवन को जला डाला। वह व्यक्ति जिसने मुझे असत्य ही **अभिचार करने वाला** कहा हो अपने २० पुत्रों से रहित हो जाय। जिसने मुझे **'यातुधान'** कहा हो उसे इन्द्रदेव भयंकर शस्त्र से मार डालें। यद्यपि मैं उस प्रकार का नहीं हूँ और वह जो स्वयं **'रक्षस्'** है अपने को पवित्र घोषित करता है; जो अत्यन्त **दुष्ट** है वह सभी प्राणियों से निम्नतर हो जाय। (ऋ. ७/१०४/१५-१६)

'हे मरुतगणो ! तुम लोगों के मध्य विभिन्न स्थानों में फैल जाओ और दुष्टों को पकड़ लो और इन राक्षसों को, जो पक्षियों का रूप धारण करके रात्रि में विचरण करते हैं और यज्ञ के समय भयंकर विघ्न उपस्थित करते हैं उन्हें चूर्ण-चूर्ण कर दो।' (मन्त्र १८)

"**हे इन्द्र !** उन पुरुषों को जो जादू टोना करते हैं और उन नारियों को (जादूगरनियों को) जो माया से विनाश कर डालती हैं मार डालो, जो मूर्ख देवों के पूजक हैं वे गर्दन कटाकर मर जायँ, वे सूर्य का उदय न देख सकें।" (ऋ. ७/१०४/२४)।

"**हे अग्नि ! यातुधान** के चर्म के टुकडे कर दो। तुम्हारा नाशकारी वज्र ऊष्णता से उसे मार डाले॥

"**हे जातवेदा !** उसकी 'गाँठों को छिन्नभिन्न कर दो। इस छिन्न-भिन्न यातुधान को मांसेच्छा रखने वाले मांसाहारी पशु खा डालें।

'हे अग्नि ! तुम **यातुधानों** को अपनी ऊष्णता से, **रक्षसों** को अपनी ज्वाला से चूर-चूर कर डालो। (ऋग्वेद : १०/८७/५; १४)।

आप. गृह्यसूत्र (३/९/५-८) के अनुसार सौतें **'पाठा'** पौधा के द्वारा सौतों को हानि पहुँचाती थीं तथा पतियों को वश में रखती थीं। (ऋ. १०/१४५ में भी यह मिलता है।)

'ऋग्वेद' (१/१९१) **मोहन मन्त्र**, 'अथर्ववेद' (२/१२-२४; ३/६; ४/३; ४०/५/८, ६-८। ६५-६७ एवं १३४ २/११) में शत्रुनाशक सूक्तों का, 'अथर्ववेद' (२/११/३) में 'कृत्यादूषण' (अभिचार प्रभाव को दूर करने वाला) का उल्लेख प्राप्त होता है।

(२५) 'शुक्रनीतिसार' (४/२/३९) में कहा गया है कि 'तन्त्र' 'अथर्ववेद' के उपवेद हैं।

अथर्ववेद (३/२५, ६/१३०) में प्रेमी-प्रेमिकाओं को वश में करने वाले मन्त्र भी मिलते हैं। 'अथवेवेद' (२/३० एवं ३१) में ऐसे मन्त्र भी पाये जाते हैं जो रोगोत्पादक कीड़ों को नष्ट कर देते हैं या पिशाचों को नष्ट कर देते हैं (यथा अथर्व. ५/३६)।

(२६) तन्त्र ग्रन्थों में प्रयुक्त 'फट्' शब्द स्वतः 'बाजसनेयी संहिता' में भी आया है— 'उपरि प्रुताभङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणायात्वा व्यानायत्वा।' (वाज. सं. ७/३)

असौ द्वेषो हतो निहतः सन् फट् विशीर्णो भवतु।

...स्वाहाकारस्थाने फडिति **अभिचारे** प्रयुज्यते॥[1]

श्रौ. सू. में भी 'फट्' का प्रयोग 'अभिचार' (दुष्ट उद्देश्य लेकर मन्त्रों के प्रयोग) के लिए सोम उण्डलों की आहुति के प्रसंग में किया हुआ मिलता है। तन्त्र-ग्रन्थों में देवी पूजन के प्रसंग में 'फट्' शब्द का प्रयोग मिलता है।

(२७) शान्तरक्षित (७०५-७६२) ने 'तत्त्वसंग्रह' में बुद्ध को जादू के प्रयोगों से सम्बद्ध बताया है, किन्तु त्रिपिटक में ऐसा वर्णन नहीं मिलता अतः उक्त तथ्य की पुष्टि नहीं हो पाती।

(२८) युवाँच्वाँग (ह्वेनसाँग) या **इत्सिंग** ने तन्त्रों की चर्चा नहीं की।

'हिन्दू तन्त्र' शिव-पार्वती संवाद के रूप में है।

तन्त्रों के प्राचीनतम नेपाली **हस्तलेख ७वीं से लेकर ९वीं सदी के** मध्य स्थित है। **'कुब्जिका मत तन्त्र'** सातवीं सदी का कहा जाता है तथा **'निश्वासतत्व-संहिता'** आठवीं सदी की रचना मानी जाती है।[2] **विंटरनिट्ज़** यह भी कहते हैं कि बहुत सम्भव है कि **पाँचवीं-छठवीं सदी के पूर्व** भी तन्त्र साहित्य की उत्पत्ति हुई हो। महाभारत में पुराणों के साथ तन्त्रों का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया गया है।[3]

'अमरकोश' में **तन्त्र शब्द** 'धार्मिक पुस्तक' के अर्थ में कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। चीनी यात्रियों ने भी 'तन्त्र' का उल्लेख नहीं किया है। सातवीं और आठवीं शताब्दियों में 'तन्त्र' ने बौद्धधर्म में प्रवेश करना प्रारम्भ किया है और आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चीनी भाषा में एवं ९वीं सदी में तिब्बती भाषा में तन्त्रों का अनुवाद

---

१. महीधर की टीका।

२. हरप्रसाद शास्त्री।

३. विंटरनिट्ज़, भारतीय साहित्य।

हुआ।

एल वियेगर (L. Wieger) का कथन है कि **सातवीं सदी में ही चीनी अनुवाद** हुए। तन्त्रों में दुर्गा की पूजा का बहुत बड़ा स्थान है। यह दुर्गा परवर्ती वैदिक काल की देवी हैं।[१] विण्टरनिट्ज़ कहते हैं कि इस तथ्य से यह सिद्ध नहीं होता कि तन्त्र और तान्त्रिक सम्प्रदाय भी दुर्गा जितने ही प्राचीन हैं। दुर्गा और दुर्गा पूजा में आर्य-अनार्य देवताओं की विशेषताएँ एकत्र मिलती हैं। यह भी सम्भव है कि तन्त्र सम्प्रदाय में अनार्य एवं अब्राह्मण सम्प्रदायों की बातें ली गई हों।

तन्त्रों के अनेक तत्त्व **अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों** में भी प्राप्त होते हैं।

विंटरनिट्ज़ महोदय कहते हैं कि तन्त्र और उनमें सम्प्राप्त धर्म की अवनति के रूप न तो भारत के मूल निवासियों की लोक प्रचलित परम्पराओं या विश्वासों की देन हैं और न तो आगन्तुक आर्यों की। ये धर्माचार्यों की **अर्धवैज्ञानक क्रियायें हैं जिनमें योग के सिद्धान्तों और आचारों को तथा अद्वैत दर्शन को प्रतीक विद्या एवं रहस्यानुभूति के साथ मिलाकर उपस्थित किया गया है।**[२]

विंटरनिट्ज़ यह भी कहते हैं कि—

(१) **पुराणों और तन्त्रों** का अध्ययन कोई आनन्दायक कार्य नहीं है। (२) ये सारे के सारे **हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ** हैं और असंस्कृत और **व्याकरण के नियमों** से अस्पृष्ट भाषा में लिखित हैं।

(१) **संहितायें** वैष्णवों के **(२) आगम** शैवों के एवं **'तन्त्र'** शाक्तों के पवित्र ग्रन्थ हैं। तथापि वैष्णवों की **'पाद्म संहिता'** को **'पाद्म तन्त्र'** कहा गया है। भागवत पुराण में निर्दिष्ट **'सात्वतं तन्त्रम्' 'सात्वत संहिता'** ही है। **'लक्ष्मी तन्त्र'** वैष्णव ग्रन्थ है। **'पाञ्चरात्र आगम'** एवं **'पाञ्चरात्रसंहिता'** दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है।

मि. Eliot महोदय ने 'Hindunism and Buddhism' (II page 188) में कहा है कि—

(१) **'तन्त्र'** का अर्थ है— 'सिद्धान्तों का समुदाय' और ग्रन्थ।

(२) **'आगम'** का अर्थ है— 'परम्परा'।

(३) **'संहिता'** का अर्थ है— 'पवित्र ग्रन्थों का संग्रह'।

विंटरनिट्ज़ महोदय का कथन है कि यद्यपि तन्त्र स्पष्टतः वेदों के विरोधी

---

१. जैकोबी (४), विंटरनिट्ज़ (भा. सा.) (५)।

२. भारतीय साहित्य।

नहीं हैं तथापि उनका कथन है कि वेदविहित कर्म हमारे युग में नहीं चल सकते। 'वेदशास्त्र पुराणानि सामान्य गणिका इव' कहकर 'कुलार्णव तन्त्र' में वेदों-शास्त्रों की निन्दा की गई है तथापि समयमार्ग का सम्पूर्ण तन्त्र-साहित्य (पञ्चशुभागम) वेदों को ही प्रमाण मानता है तथा आचार्य हयग्रीव का 'शाक्तदर्शनम्' भी वेदों में निष्ठा व्यक्त करता है।

'आगम' और 'निगम'— सामान्यत: तो यह माना जाता है कि **'आगम'** तन्त्राम्नाय और 'निगम' वेदाम्नाय है किन्तु इसके अन्य अर्थ भी हैं। जब पार्वती शिष्य की भाँति प्रश्न करती हैं और शिव गुरु की भाँति उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं तब उसे **'आगम'** कहते हैं और जब शिव प्रश्न करते हैं और पार्वती गुरु की भाँति उत्तर देती हैं तब उस ग्रन्थ को **'निगम'** कहते हैं।

विंटरनिट्ज़ महोदय कहते हैं कि तन्त्रों का उद्भव बंगाल में होना प्रतीत होता है। यहाँ से ये आसाम और नेपाल गए और बौद्ध धर्म के माध्यम से ये भारत के बाहर तिब्बत और चीन में पहुँचे।

'महानिर्वाण तन्त्र' एक आगम ग्रन्थ है जिसमें शाक्त सम्प्रदाय का सर्वोत्तम स्वरूप पाया जाता है। यद्यपि यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन तो नहीं है तथापि तन्त्र का उत्कृष्ट उदाहरण है। हर प्रसाद शास्त्री तो कहते हैं कि— ''भगवद्गीता के बाद यही महान रचना शायद सबसे अधिक लोकप्रिय है।''

'महानिर्नाण तन्त्र' में उपनिषदों की भाँति ब्रह्म चिन्तन भी है। शाक्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म नित्य और मूल शक्ति है और वही जगत का स्त्रष्टा है। तन्त्र के ग्रन्थों में **'शक्ति'** की प्रधानता है। यहाँ परमात्माा 'पिता' के रूप में नहीं 'माता' के रूप में अधिक चिन्त्य, ध्यात एवं पूज्य रहा है। 'परा प्रकृति' 'मूल प्रकृति' 'जगन्माता' आदि शब्द 'शक्ति' के ही पर्याय हैं, जो कि शाक्तदर्शन में परमात्मा के रूप में उपास्य हैं।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' 'अथातो धर्म जिज्ञासा' ही नहीं 'अथातो शक्ति जिज्ञासा' के भी स्वर भारतीय जनमानस में अनादिकाल से गूँजते रहे हैं। अगस्त्य का **'शक्तिसूत्र'** और हयग्रीव का **'शाक्तदर्शनम्'** उसी स्वर के सूत्रात्मक दार्शनिक ग्रन्थ हैं।

समस्त पौराणिक देवियाँ यथा— पार्वती, उमा, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, राधा, सरस्वती एवं भैरवी आदि जगन्माता के रूप में भी स्वीकार की जाती रही हैं।

'अद्वैतवाद' इस संस्कृति की प्रधान विशेषता रही है और अनेक में 'एक' की खोज इस सभ्यता की विशेष पहचान है। **विंटरनिट्ज़** महोदय का यह कथन ठीक ही है कि— ''भारतीय बुद्धि बहुत पहले से अनेक दिखाई देने वाले तत्त्वों में एकता

ढूँढ़ने की अभ्यस्त रही है। जैसे एक चन्द्रमा पानी से भरे अनेक पात्रों में दृष्टिगत होता है उसी प्रकार हम देवी को चाहे जितने नामों से पुकारें वह सारे देवों की शक्तियों का ही एक रूप है। स्रष्टा ब्रह्मा और उनकी शक्ति, पालक विष्णु और उनकी शक्ति तथा महाकाल रूप संहारक शिव उसी में स्थित हैं। जब वह देवी स्वयं '**महाकाल**' को भी आत्मसात कर लेती है तब उसे '**आद्या काली**' कहते हैं। वही शक्ति '**महायोगिनी**' के रूप में जगत की सृष्टि, पालन एवं संहार करती हैं। वे महाकाल की माता हैं।

यदि हम पञ्चतत्त्वों पर विचार करें तो शक्ति की आनन्दपूर्ण सृष्टि का भौतिक कारण पञ्चतत्त्व हैं और उनके सेवन से ही मनुष्य आनन्द की अनुभूति करता है। ये पञ्चतत्त्व पञ्च मकार के ही रूप हैं। 'निर्वाण तन्त्र' के अनुसार इन पञ्चतत्त्वों (पञ्च मकारों) का स्वरूप इस प्रकार है—

प्रथम तत्त्व— 'महौषधं यज्जीवानां दुःखविस्मारकं महत्।
आनन्ददायकं यच्च **तदाद्यतत्त्वलक्षणम्**॥१०३॥
असंस्कृतञ्च यत्तत्वं मोहदं भ्रमकारणम्।
विवादरोगजननं त्याज्यं कौलैः सदा प्रिये॥१०४॥

द्वितीय तत्त्व—ग्राम्यवायव्यवन्यानामूढभूतं पुष्टिवर्धनम्।
बुद्धितेजोबलकरं **द्वितीयं तत्त्वलक्षणम्**॥

तृतीय तत्त्व— जलोद्भवं यत् कल्याणि कमनीयं सुखप्रदम्।
प्रजावृद्धिकरञ्चापि **तृतीयं तत्त्वलक्षणम्**॥१०६॥

चतुर्थ तत्त्व— सुलभं भूतिजातञ्च जीवानां जीवतञ्च यत्।
आयुर्मूलं त्रिजगतां **चतुर्थं तत्त्वलक्षणम्**॥१०७॥

पञ्चम तत्त्व— महानन्दकरं देवि! प्राणिनां सृष्टिकारणम्।
अनाद्यन्तजगन्मूलं **शेषतत्त्वस्य लक्षणम्**॥

पञ्चमकार एवं पञ्चतत्त्व : अन्तर्सम्बन्ध

आद्यतत्त्वं विद्धितेजो **द्वितीयं** पवनं प्रिये।
अपस्तृतीयं जानीहि, **चतुर्थं** पृथ्वी शिवे॥
पञ्चमं जगदाधारा वियद्विद्धि वरानने।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलन्तत्त्वानि पञ्च वै।
आचारं कुलधर्मस्य **जीवन्मुक्तो** भवेन्नरः॥

—महानिर्वाणतन्त्र, ७-१०३, १११

पञ्चतत्त्वों का महत्त्व— 'महानिर्वाणतन्त्र' में पञ्चतत्त्वों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है और कहा गया है कि—

'पञ्चतत्त्वं विना पूजा अभिचाराय पदे पदे।
नेष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य विघ्नस्तस्य पदे-पदे॥
शिलायां शस्यवापे च यथा नैवाङ्कुरो भवेत्।
पञ्चतत्त्वविहीनायां पूजायां न कलोदभवः॥'

—महानिर्वाणतन्त्र : ५-२३, २४

पञ्चतत्त्व-सेवन में प्रतिबन्ध— 'महानिर्वाणतन्त्र' में कहा गया है कि इन पाँचों तत्त्वों का प्रयोग दीक्षितों के चक्र में ही हो सकता है और वहाँ भी इनका प्रयोग तभी हो सकता है जब पवित्र मन्त्रों और क्रियाओं से लोग पवित्र हो चुके हों। दीक्षित पुरुषों एवं स्त्रियों के इन चक्रों में प्रत्येक व्यक्ति के वाम भाग में उसकी 'शक्ति' बैठी होती है।

('**शतपथब्राह्मण**' में भी कहा गया है कि "स्त्री का स्थान पुरुष के वामभाग में है"— शायद इसी कारण चक्रपूजा को '**वामाचार**' कहा जाता है।)

यह भी विधान है कि चक्रपूजा में जाति का भेद नहीं किया जाता और पापी एवं अविश्वासी भी चक्र में सम्मिलित नहीं हो सकते। स्पष्ट है पञ्च तत्त्वों का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता।

'महानिर्वाणतन्त्र' में कहा गया है कि—

(१) जो अत्यधिक मद्यपी हैं वे देवी के सच्चे भक्त नहीं है।

(२) घोर कलियुग में व्यक्ति '**शक्ति**' के रूप में अपनी पत्नी का ही उपयोग कर सकता है।

(३) इन्द्रियों पर अनुशासन स्थापित न कर सकने वाला गृहस्थ 'मद्य' के स्थान पर दूध, चीनी, शहद आदि मीठी वस्तुओं का प्रयोग कर सकता है।

(४) मैथुन के स्थान पर देवी के चरणकमल की पूजा की जा सकती है।

(५) '**वीर**' पराई स्त्री रूप शक्ति के साथ साधना कर सकता है। एतदर्थ उसे विशेष पूजा करनी पड़ती है।

(६) सांसारिक पदार्थों एवं विषयों से पूर्ण विरक्त, दिव्य भाव में स्थित साधक के लिए ही पञ्चतत्त्वों के स्थान पर शुद्ध प्रतीकात्मक वस्तुओं का प्रयोग विहित है।

'न्यास' और शक्तिका आयत्तीकरण— उँगली के अग्रभाग और हथेली

को शरीर के विभिन्न भागों पर रखकर मन्त्र पढ़ना 'न्यास' कहलाता है। इससे शरीर **देवी की शक्ति से भर जाता है।** इससे देवी प्रसन्न होती हैं।

'मन्त्र', 'यन्त्र', 'न्यास', 'कीलक', 'कवच', 'स्तोत्र' 'हृदय' 'शतनाम' 'सहस्त्रनाम' आदि सारे विधानों का लक्ष्य देवी को प्रसन्न करके शक्ति का आयत्तीकरण करना है।

सारे भारतीय सम्प्रदायों और धर्मों का लक्ष्य **मोक्ष** है।

'महानिर्वाणतन्त्र' **देवी के साथ एकाकारता** प्राप्त करने का लक्ष्य रखकर साधना करता है और **'अहं देवी न चान्योस्मि'** की **अद्वैत भूमि पर प्रतिष्ठित होने** को साधना की चरम भूमि मानता है। **'जीवन्मुक्ति'** ही कौलों का परम लक्ष्य है।

तन्त्रमार्ग की सर्वोच्चता— 'कुलार्णवतन्त्र' में कलियुग में मात्र आगम मार्ग को ही प्रशस्त माना गया है; क्योंकि—

'कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः **कलावागम** सम्मतः॥'

तन्त्र की दो पद्धतियाँ या शाखायें— द्विमुखी है। इसकी एक शाखा वैदिकी है औरा दूसरी शाखा या पद्धति तान्त्रिकी है—

'वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुतिकीर्तिता॥'

— कुल्लूक भट्ट

तन्त्र की दार्शनिक दृष्टियाँ

तन्त्र शास्त्र की काश्मीरीय शाखा को 'त्रिक शास्त्र' कहा गया है। त्रिक शास्त्र का त्रिकत्व सारे तन्त्र शास्त्र पर लागू होता है; क्योंकि वे दृष्टियाँ सम्पूर्ण तन्त्रशास्त्र में विद्यमान हैं।

त्रिक (अभिनव गुप्तपादाचार्य की दृष्टि)

(क)	(ख)	(ग)	(घ)	(काश्मीरी त्रिक)
(१) भेद	(१) परा	(१) पति	(१) शिव	(क) सिद्धा
(२) अभेद	(२) अपरा	(२) पाश	(२) शक्ति	(ख) नामक
(३) भेदाभेद	(३) परापरा	(३) पशु	(३) अणु	(ग) मालिनी

क्या तन्त्र भी शूद्रों को वेदाधिकार से वञ्चित रखता है?

हाँ! शाक्त दर्शन में कहा गया है—

"न शूद्रो वेदाधकारी॥" (४/२/११)

उसमें वेदों के विषय में कहा गया है कि—

(क) काण्डत्रययुता वेदाः

(१) **कर्मकाण्डं** मलनाशाय (२) **उपासनं** विक्षेपशान्त्यै (३) ज्ञान-आवरणनाशाय॥ त्रिवर्णिनो वेदाधिकारिणः। न शूद्रो वेदाधिकारी॥ (शाक्त दर्शनम्)

चतुर्थ अध्यायः द्वितीयः पादः (४/३/६-१०) तन्त्र की यह विशेषता है कि इसमें—

(१) 'कर्ममार्ग' (२) 'भक्तिमार्ग' (३) 'ज्ञानमार्ग' एवं (४) 'योगमार्ग'—चारों साधन-मार्ग स्वीकृत हैं।

यहाँ 'मोक्ष' दुखरूपसंसृति का नाश है और ज्ञान जीवेशैक्य है— 'न भेदो ब्रह्मात्मनोः॥ (७/२/२२)

जन्ममरणादिदुःखरूपसंसृतिनाशो **मोक्षः**।
जीवेशाभेदबोधकं ज्ञानम्॥ (५/४/१-२)

ज्ञान के विना सिद्धि सम्भव नहीं है— 'न सिद्धिर्ज्ञानं विना' (शा. द. ७/१/११) 'सर्वलोकं मणिद्वीप' है— 'सर्वलोकोमणिद्वीपम्' (८/४/१)) 'मुक्ति' मणिद्वीप वास' है— 'मणिद्वीप वासो भुक्तिरेवेति हयग्रीवः॥ (९/२/१९) 'सर्वलोकमणि-द्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः॥ (९/४/१४)

स्वानन्दभवनम्, अद्वैतभाव एवं ब्राह्मीभाव ही शाक्तों का लक्ष्य है और मणिद्वीपवास मुक्ति है— 'अद्वैतभावनारूपनिर्विकल्पसमाधिपरः प्रपञ्चत्रय वासनारहितः स्वानन्दभवनम्। अद्वैतावस्थानं रूपनिर्विकल्पसम्पन्नो ब्रह्मीभूतः॥ (शा. द. १०/३/१४-१५) 'तदानन्दं मणिद्वीप एव। १५। अतोमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः॥ (१०/४/१५/१८)

ब्रह्म, आत्मा एवं सत में ऐक्य

(१) ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्। आत्मा वा इदमग्र आसीत्।
सदेवेदमग्र आसीत्। वाक्यत्रयेण त्रिधाभिधेययुतं ब्रह्मैव॥ (१२/३/१-४)

साधनाङ्ग के रूप में १० साधन स्वीकृत हैं—

'जपेन्नित्यं दशाङ्गानि। कवच-हृदय-सहस्रनाम-स्तवराज-लहरी-वेद-पादस्त-वावरणस्तव गीताथर्वशीर्षसूक्तान्यङ्गानि। १६/२/१७-१८।'

जाति पूर्णतः निरथर्क नहीं है तथापि—

'भैरवी चक्रस्थ चाण्डालाद्यां अपि ब्रह्मणाः॥' (१७/२/१६) शाक्तों का अद्वैतमार्ग ब्रह्ममार्ग है— 'अद्वैत ब्रह्मविद्यामार्गमेव' (१७/३/१६)

शाक्तों का दर्शन ब्रह्मैक्य प्रधान है—

'शाक्त ज्ञानी न पुनरावर्तते। इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी॥ (१८/४/२४)

शक्तिसूत्रकार अगस्त्य का भी शुद्ध प्रत्यगात्मभाव का उदय ही साधना का लक्ष्य है जो कि यथार्थतः अद्वैत ही है। ऋषि अगस्त्य 'शक्तिसूत्र' में कहते हैं—

''प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोवशिष्यते।।५३॥ मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति॥'' (शक्तिसूत्रः ५३-५४/४)।

प्रश्न— तन्त्रशास्त्र में जो विधि-निषेध की मर्यादा का अतिक्रमण किया गया है क्या वह उचित कहा जा सकता है?

उत्तर— बन्धनग्रस्त लोगों के संसार में तो यह अनुचित है किन्तु सिद्धों के धरातल पर तो ''को विधिः? को निषेधः?' का सिद्धान्त ही समीचीन है। कारण यह है कि हम **'तीर्थयात्रा'** अपने को पवित्र करने के लिए करते हैं। तीर्थ अपवित्रों को पवित्र कर देते हैं किन्तु जो **तीर्थों** को भी पवित्र कर देते हों, **सत्कर्मों** को भी पवित्र कर देते हों और **शास्त्रों** को भी महानता का वैभव प्रदान कर देते हों उनके लिए किसी **'तीर्थ'** किसी **'कर्म'** एवं **'शास्त्रों'** के सेवन की क्या आवश्यकता है। सिद्ध महात्मा तो इन सारे अनुष्ठानों एवं धार्मिक कृत्यों की अनिवार्यता के पाश से परे हैं; क्योंकि वे—''तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि॥''[१]

क्योंकि उनको देखकर तो— ''मोदन्ते पितरो, नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति॥''[२]

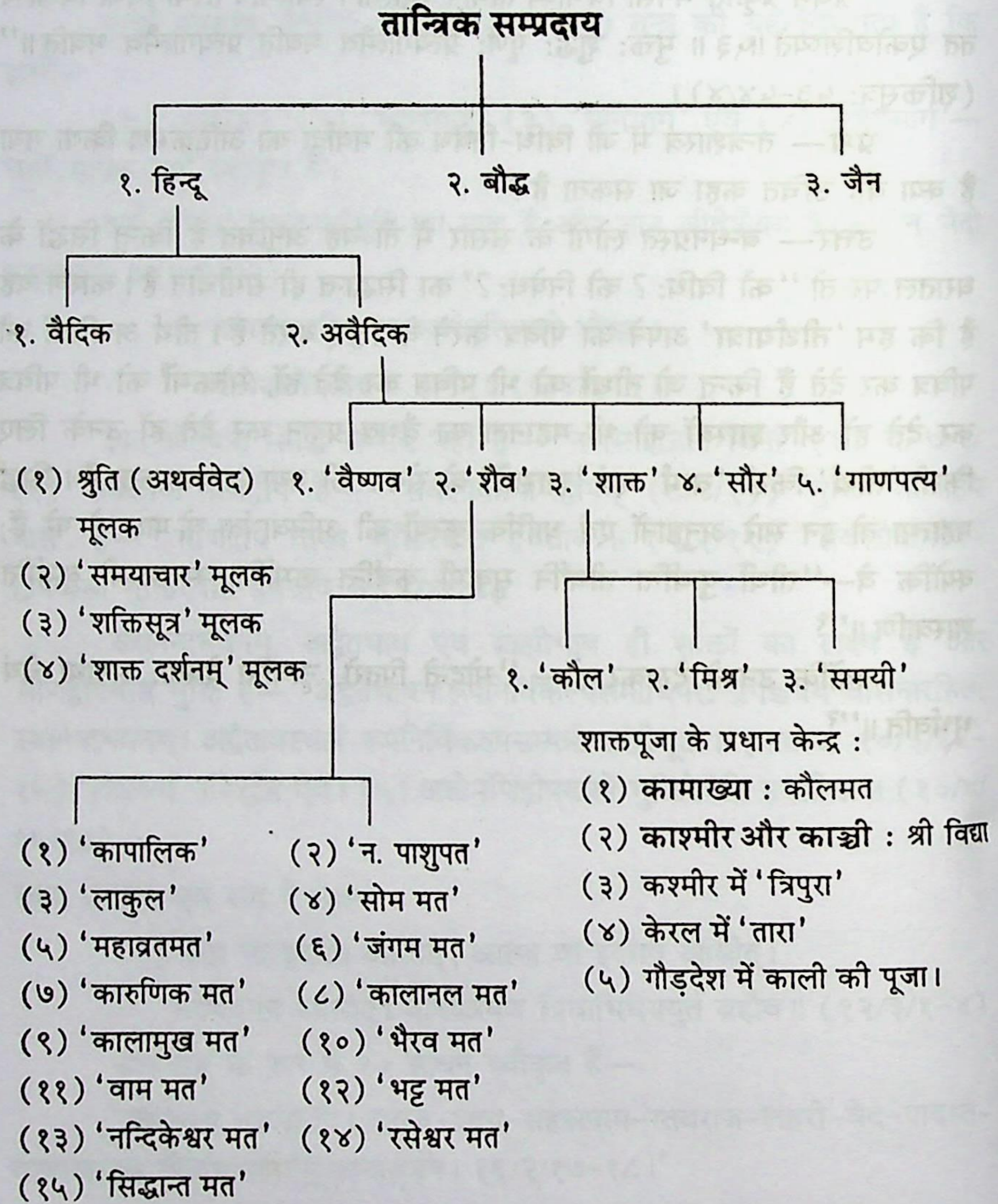
---

१. नारदभक्ति सूत्र (६९)।

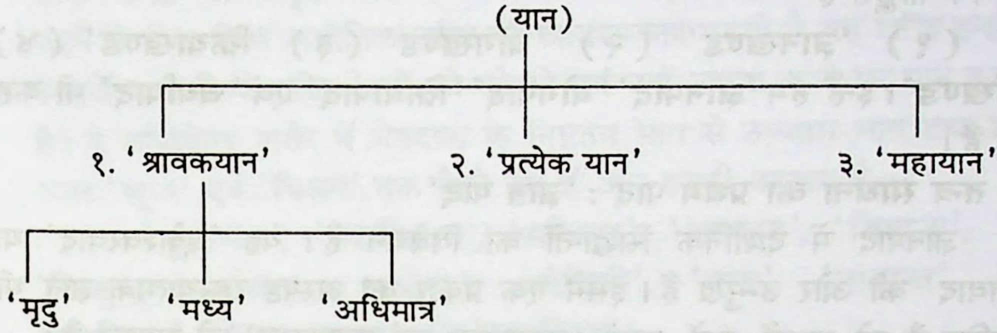
२. ना. भ. सूत्र (७१)

तान्त्रिक सम्प्रदाय

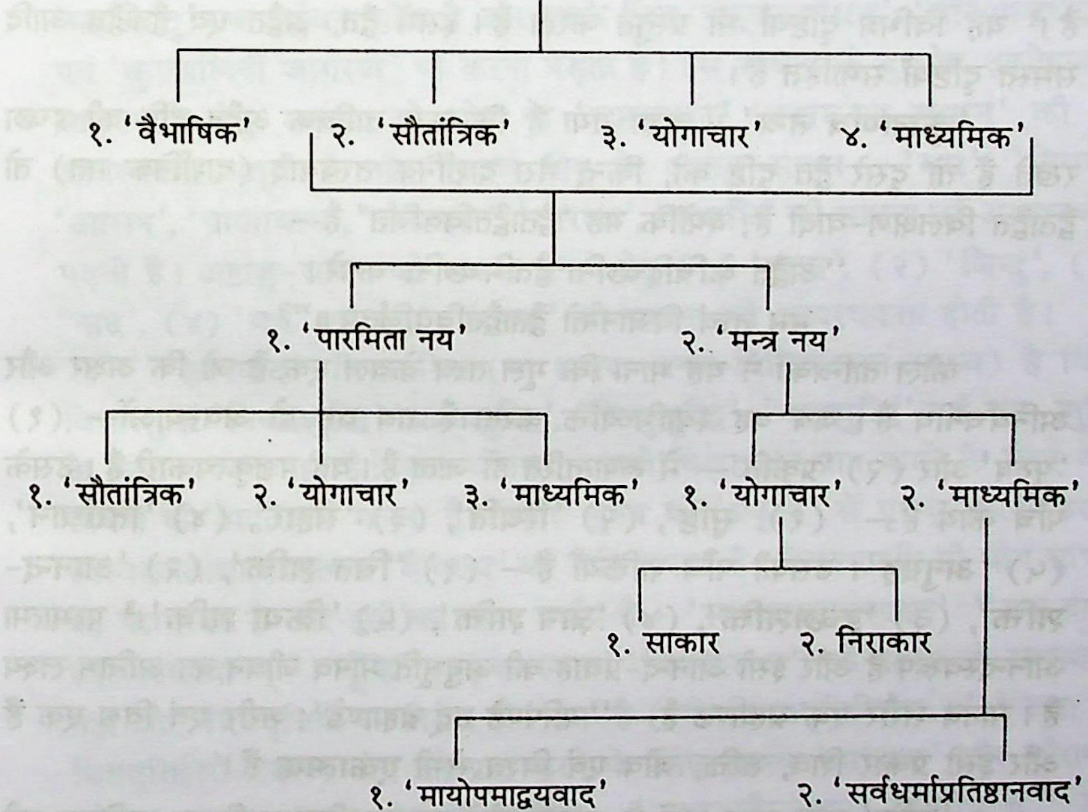
तान्त्रिकों के विभिन्न सम्प्रदाय हैं—



अद्वयवज्र द्वारा कृत तान्त्रिक बौद्ध सम्प्रदाय-विभाजन



कश्मीर का वैभाषिक सम्प्रदाय



तन्त्र साधना के चार खण्ड या पाद चतुष्टय

'तन्त्र' के चार खण्ड होते हैं जो कि चार मुख्य विषयों का प्रतिपादन करते हैं। ये निम्नाङ्कित हैं—

(१) 'ज्ञानखण्ड' (२) 'योगखण्ड' (३) 'क्रियाखण्ड' (४) 'चर्याखण्ड'। इन्हें हम **'ज्ञानपाद' 'योगपाद' 'क्रियापाद'** एवं **'चर्यापाद'** भी कह सकते हैं।

(१) तन्त्र साधना का प्रथम पाद : 'ज्ञान पाद'

ज्ञानपाद में दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन है। यह 'एकेश्वरवाद' या 'अद्वैतवाद' की ओर उन्मुख हैं। इसमें एक प्रकार का अस्पष्ट रहस्यात्मक ज्ञान भी प्रतिपादित है जो अक्षरों, पदों, मन्त्रों (मन्त्रशास्त्र एवं यन्त्रशास्त्र))से सम्बद्ध है।

तन्त्रशास्त्र का प्रथमस्तम्भ उसका अपना निजी दर्शन है अर्थात् उसकी आत्मीय स्वतन्त्र दार्शनिक दृष्टि है। इसका दर्शन **सांख्यशास्त्र** और **वेदान्त** से मिलता है।[१] यह विभिन्न दृष्टियाँ भी प्रस्तुत करता है। इसमें द्वैत, अद्वैत एवं द्वैताद्वैत आदि समस्त दृष्टियाँ समाहित हैं।

'कुलार्णव तन्त्र' में कहा गया है कि कुछ तान्त्रिक अद्वैत दृष्टि की इच्छा रखते हैं तो दूसरे द्वैत दृष्टि की, किन्तु मेरा दार्शनिक तत्त्ववाद (दार्शनिक मत) तो द्वैताद्वैत विलक्षण-वादी है; क्योंकि यह 'द्वैताद्वैतविवर्जित' है—

''अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥''[२]

कौल तान्त्रिकों ने यह माना कि मूल तत्त्व केवल एक है जो कि अक्षर और अनिर्वचनीय है। जब वह स्वाभिव्यक्ति करता है तब वह दो अवस्थाओं— (१) 'पुरुष' और (२) 'प्रकृति'— में रूपान्तरित हो जाता है। वह पञ्चकृत्यकारी है। उसके पाँच कार्य हैं— (१) **'सृष्टि'**, (२) **'स्थिति'**, (३) **'संहार'**, (४) **'तिरोधान'**, (५) **'अनुग्रह'**। उसकी पाँच शक्तियाँ हैं— (१) **'चित शक्ति'**, (२) **'आनन्द-शक्ति'**, (३) **'इच्छाशक्ति'**, (४) **'ज्ञान शक्ति'**, (५) **'क्रिया शक्ति'**।[३] परमात्मा आनन्दस्वरूप है और इसी आनन्द-प्रवाह की अनुभूति मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। मानव शरीर एक ब्रह्माण्ड है— ''यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'। शरीर एवं विश्व एक हैं और इसी प्रकार शिव, शक्ति, जीव एवं विश्व सभी **एकात्मक** हैं।

'मुक्ति' कुछ पाना नहीं है प्रत्युत् खोये हुए या विस्मृत विराट व्यक्तित्व की पुनर्स्मृति और स्थायी **'प्रत्यभिज्ञा'** है। अपने शिवत्व की अभिव्यक्ति ही जीवन-साधना का परम लक्ष्य है।

---

१. विण्टरनिट्ज़ : Indischen Litteratur. २. कुलार्णव तन्त्र। ३. तन्त्रालोक।

(२) तन्त्र साधना का द्वितीय पाद : 'योग पाद'

आध्यात्मिक साधना की अन्तर्यात्रा के पथ पर अग्रपद होने के लिए आत्मिक शक्ति-केन्द्रों को जागृत करने की आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि इस पथ पर आगे बढ़ने के लिए जिस अभौतिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है वह शक्ति इन्हीं आवृत्त कपाटों वाले दिव्य शक्ति केन्द्रों को खोलने एवं उन्हें जागृत करने पर प्राप्त हुआ करती है। ये शक्तिकेन्द्र शरीर में मेरुदण्ड के निम्नतम भाग से उच्चतम भाग तथा उससे भी ऊपर 'शून्य' एवं 'विसर्ग' तक फैले हुए हैं और इनकी आख्या है—

'मूलाधार', 'स्वाधिष्ठान', 'मणिपुर', 'अनाहत', 'विशुद्ध', 'आज्ञा', 'बिन्दु', 'अर्धचन्द्र (अर्द्धेन्दु), 'रोधिनी', 'नाद', 'नादान्त', 'शक्ति', 'व्यापिका', समना, उन्मना और 'महाबिन्दु'।

इसी अन्तर्यात्रा पर चलते हुए साधक को **'जाग्रत'**, **'स्वप्न'**, **'सुषुप्ति'**, **'तुरीय'** एवं **'तुरीयातीत'** रूपी चेतना के विभिन्न पहाड़ियों को डाँकते हुए **'महाबिन्दु'** तक पहुँचना होता है और इसके लिए **'षट्चक्रवेधन'**, **'ग्रन्थित्रयभेदन'** एवं **'कुण्डलिनी जागरण'** भी करना पड़ता है। इस साधना के दुरारोह आरोहण में साफल्याप्ति हेतु साधक को योग के **'सप्तसाधन'** **'पञ्चकोश-साधन'** की भी आवश्यकता पड़ती है और एतदर्थ योग के अष्टाङ्ग-साधन— **'यम'**, **'नियम'**, **'आसन'**, **'प्राणायाम'**, **'प्रत्याहार'**, **'धारणा'**, **'समाधि'** की साधना की आवश्यकता पड़ती है। अष्टाङ्ग-साधन को सफल बनाने हेतु (१) **'प्राण'**, (२) **'बिन्दु'**, (३) **'नाद'**, (४) **'मन'** एवं (५) **'आत्मा'** की साधना की आवश्यकता होती है।

'ज्ञानपाद' विचाराश्रित (या **श्रवण-मनन-निदिध्यासन-साध्य**) है किन्तु विचारशुद्धि **'पिण्डशुद्धि'** **'प्राणशुद्धि'**, **'बिन्दुशुद्धि'**, **'नादशुद्धि'** एवं **मनः शुद्धि** के बिना सम्भव नहीं है। अतः योगपाद स्थायी विशुद्धज्ञान प्राप्त करने के लिए योग साधना को अपरिहार्य मानना है। 'योग' पुरुष को 'प्रकृति' से पृथक् करके उसके स्वस्वरूपसाक्षात्कारात्मक **'कैवल्य'** की प्राप्ति कराता है। कैवल्यप्राप्ति ही योग साधना का परमलक्ष्य है और इसी का अपर पर्याय है— **'स्वस्वरूपावस्थान'** "तदा द्रष्टु : स्वरूपेऽवस्थानम्'[1]। चूँकि 'स्वरूपावस्थान' 'चित्तसारूप्य'[2] के समय तो सम्भव है नहीं और 'चित्तवृत्तियों का निरोध ही 'योग' है ('योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥')[3] अतः इन चित्तवृत्तिनिरोधस्वरूप योग को प्राप्त करने के लिए साधक 'अभ्यास' और 'वैराग्य' की साधना का आश्रय लेता है; क्योंकि— 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥''[4] उसे **'वितर्क'** **'विचार'** **'आनन्द'** तथा **'अस्मिता'** से युक्त चित्तवृत्तियों के निरोध रूप

---

१. योगसूत्र (समाधि पाद २)।
२. योगसूत्र (४)।
३. योगसूत्र (२)।
४. योगसूत्र (समाधि पाद १२)।

'सम्प्रज्ञात समाधि' एवं परवैराग्यसञ्जात **'विरामप्रत्यय'** एवं **'निर्बीज (निर्विकल्प) समाधि'** की साधना भी करनी पड़ती है और तभी योगी साधक अपने चरम लक्ष्य **'गुणों के प्रतिप्रसवस्वरूप कैवल्य'** एवं **चितिशक्ति** की **'स्वरूप प्रतिष्ठा'** या **'स्वस्वरूपावस्थान'** स्वरूप अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। तान्त्रिक योगी इस अन्तर्यात्रा में आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करने के लिए (१) षट्चक्रों का वेधन करके **पञ्चभूतों पर विजय,** (२) 'भूतशुद्धि', (३) 'कोशशुद्धि', (४) 'ग्रन्थिभेदन', (५) 'अजपा जप' **'मन्त्रयोग'-'हठयोग'-'लययोग'** एवं **'राजयोग'** की साधना भी करता है तथा मुख्य रूप से वह 'षट्चक्रभेदन' की क्रिया द्वारा **'सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति'** को जगाकर शक्ति-शिव संयोग रूप 'सामरस्य' प्राप्त करने की साधना करता है। इसी साधना-क्रम में उसे अणिमादिक अष्ट सिद्धियाँ एवं योग की अनन्त विभूतियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं और 'चक्रेश्वरत्व' प्राप्त करके स्वतः **'शिव'** बन जाता है।

अनादिकाल में जब जगत की सृष्टि नहीं हुई थी उस समय एक बार एक मार्ग पर दो यात्री मिले। उनमें से एक यात्री अन्धा था और दूसरा लँगड़ा। अतः दोनों रास्ते पर चलने में असमर्थ थे। लँगड़े ने अन्धे से कहा कि यदि तुम मुझे अपने कन्धे पर बैठा लो तो मैं तुम्हें रास्ता दिखाता चलूँगा और तुम देख तो नहीं सकती किन्तु मार्ग पर चल सकती हो। अतः तुम मार्ग पर चलती रहो और मैं तुम्हें चलने के लिए मार्ग दिखाता रहूँगा और इस प्रकार हम दोनों की यात्रा चलती रहेगी। हुआ यही। अन्धे ने लँगड़े को अपने कन्धे पर बैठा लिया। लँगडा अन्धे को अपने कन्धे पर बैठाकर मार्ग दिखाता रहा और अन्धा मार्ग कर चलता रहा। इसमें अन्धी तो नारी थी और लँगड़ा व्यक्ति पुरुष था। यही अन्धी नारी 'प्रकृति' है और यही लँगड़ा व्यक्ति 'पुरुष' है। इन दोनों के पारस्परिक समझौते वाली दृष्टि ही **सृष्टि-विकास** की दार्शनिक दृष्टि है और इनका पारस्परिक सहयोग के साथ मार्ग पर चलना ही **सृष्टि और सृष्टि विकास** का व्यापार है। सांख्य और योग दोनों इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं और तन्त्र शास्त्र भी इस दृष्टि को स्वीकार करता है। **'सांख्य', 'तन्त्र'** और **'योग'** तीनों इस यात्रा को अवरुद्ध करना चाहते हैं। इसलिए प्रकृति-पुरुष में पृथकत्व कराना चाहते हैं। प्रकृति-पुरुष के वियोग को ही **'योग'** भी कहा गया है—

''पतञ्जलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वाजयत्यसौ।
पुंस्प्रकृत्योर्वियोगोऽपि 'योग' इत्युदितो यया॥'' — भोज

'पुरुष' का **'प्रकृति से सम्बन्ध-विच्छेद** ही विवेकज्ञानात्मक **'कैवल्य'** है और **कैवल्यावस्था ही चितिशक्ति या द्रष्टा का स्वस्वरूपावस्थान रूप 'योग'** है जो समस्त **चित्तवृत्तियों के निरोध** के द्वारा प्राप्त होता है।

मोक्ष का स्वरूप

(१) **'तन्त्रशास्त्र'** : जीव-ब्रह्म-संयोग या कुण्डलिनी नामक वियुक्त नारी का वियुक्त (परमशिवरूप) पुरुष से मिलन कराना ही **'मोक्ष'** है।

(२) **'योगशास्त्र'** : एक साथ रहने वाले नारी-नर (प्रकृति-पुरुष) का वियोग करना ही **'मोक्ष'** है। केवलत्व ही **'मोक्ष'** है।

'तन्त्रशास्त्र' **योग की साधना पद्धति** ('अष्टाङ्ग योग' एवं 'मन्त्रयोग', 'हठयोग', 'लययोग' एवं 'राजयोग') को तो स्वीकार करता है किन्तु **'सांख्य'** एवं **'योग'** के नर-नारी-सम्बन्ध-विच्छेद (पुरुष-प्रकृति-वियोग) के सिद्धान्त को सर्वांशतः स्वीकार नहीं करता; क्योंकि **तन्त्र** का लक्ष्य—

(क) वियुक्ता एवं प्रोषितपतिका नारी को उसके पति से मिलाना है—मूलाधारस्थ शक्ति को जगाकर उसका अपने पति से **'सामरस्य'** कराना है। वियोग कराना उसका लक्ष्य नहीं है; क्योंकि वे तो अनादिकाल से स्वतः ही वियुक्त हैं।

(ख) **सांख्य और योग का लक्ष्य**—परस्पर मिले हुए दम्पति (पुरुष-प्रकृति) में वियोग कराना है।

(ग) **तन्त्र का लक्ष्य** है **'संयोग एवं समारस्य'**।

(घ) **सांख्य एवं योग का लक्ष्य** है पति-पत्नी का **'वियोग'**।

यही मुक्ति की अवस्था है।

(क) **तन्त्रमार्ग**— शिव और उसकी शक्ति का सम्मिलन ही मुक्ति है।

(ख) **सांख्य-योग-मार्ग**— पुरुष-प्रकृति का वियोग ही मुक्ति है।

(ग) **तन्त्र मार्ग**— नारी (शक्ति) नर (शिव) से अविभाज्य है एवं अपृथक् है अर्थात् 'शक्ति' शिव की सामर्थ्य है— 'शक्ति'। शिव की पहचान है एवं शक्ति शिव की क्रिया है।

(घ) **योग-सांख्य मार्ग**— 'नारी' (प्रकृति) **निष्क्रिय पुरुष की क्रिया** तो है; किन्तु वह न तो पुरुष से अविभाज्य है और न उसका आत्मगत धर्म है। न तो वह चेतन है।

(ङ) **तन्त्र की शक्ति (नारी तत्त्व)**— 'शक्ति', नित्य, अक्षर, चेतन शिव की आन्तर क्षमता एवं धर्म है— वह उससे अपृथक् है यथा अग्नि **'ऊष्णता'** से, चन्द्रमा **'चन्द्रिका'** से और आकाश **'शब्द'** से। 'तन्त्र' की शक्ति एवं शक्तिमान दोनों चेतन हैं, किन्तु सांख्य-योग की शक्ति अचेतन है और पुरुष चेतन है।

(च) **तन्त्रमार्ग— चेतन शक्ति** एवं **चेतन शिव** का मिलन।

(छ) **सांख्य-योग मार्ग— अचेतन शक्ति** एवं **चेतन पुरुष** का मिलन। दोनों **राहगीर** हैं। दोनों का **मिलन आकस्मिक** है। दोनों का **वियोग हो सकता** है। दोनों का **वियोग होना भी चाहिए**। दोनों की प्रकृति **भिन्न-भिन्न** है।

(३) तन्त्रशास्त्र का तृतीय पाद : 'क्रियापाद'

'क्रियापाद' में मूर्ति, मन्दिर आदि के निर्माण की विधि का वर्णन किया गया है।[१]

चूँकि 'तन्त्रशास्त्र' समाज को भी एक जीवन-पद्धति एवं एक धर्म प्रदान करता है, जिससे कि **व्यक्ति और समाज दोनों** मिलकर अपने समान ध्येय में सहभागी बन सकें। इस ध्येय के प्राप्त्यर्थ उसने सामाजिक स्तर पर **उपासना की संस्थायें, मन्दिर, याग, तीर्थयात्रा के पुण्यस्थल** 'भैरवी चक्र' आदि का भी विधान किया है। इनका वर्णन '**क्रियापाद**' में है। समान सङ्कल्पों एवं समतुल्य अभीप्साओं के वातावरण के निर्माण से, सामूहिक विचारों, सङ्कल्पों एवं भावनाओं से व्यक्ति एवं समाज दोनों उच्चतर शक्ति प्राप्त कर पाते हैं अतः मन्दिर, यज्ञ, तीर्थस्थलों का विधान किया गया था। इनका वर्णन '**क्रियापाद**' में पाया जाता है।

पर्वों पर आयोजित सामूहिक पूजा उपासकों की चेतना पर अधिक शक्तिपूर्ण प्रभाव डालती है। यह एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करती है जो कि ईश्वरोन्मुख संवेग एवं सत्य की अभीप्सा को अधिक **गति,** अधिक **शक्ति,** अधिक **दृढ़ता** एवं **निष्ठा** प्रदान करती है। इससे शरीर के अणु-परमाणु भी आत्मा की पुकार के उत्तर में स्पन्दित हो उठते हैं और वातावरण जीवन्त स्पन्दन का उन्मेष होने लगता है। इन सभी तथ्यों को लक्ष्य में रखकर सामूहिक साधना-स्थलों, तदुपयोगी कृत्यों आदि का जो विधान किया गया है वह सब तन्त्र के '**क्रियापाद**' में पाया जाता है।

(४) तन्त्रशास्त्र का चतुर्थपाद : 'चर्यापाद'

यदि **क्रियापाद** में मन्दिर एवं मूर्ति आदि के निर्माण की विधि का वर्णन पाया जाता है तो '**चर्यापाद**' में विभिन्न क्रियाओं, उत्सवों एवं सामाजिक कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है।[२] यह भी सत्य है कि प्रत्येक तन्त्र में चार पाद नहीं मिलते।।[३]

तन्त्र में ही अन्तिम चरण '**चर्यापाद**' पूजा के क्रियाकलापों का विवेचन करता है जो कि साधक को उसकी उपासना के महत्त्वपूर्ण मार्ग के रूप में उपदिष्ट है।

---

१. विंटरनिट्ज़ : भारतीय साहित्य।

२. विंटरनिट्ज़ : भारतीय साहित्य।

३. विंटरनिट्ज़ : भारतीय साहित्य।

तन्त्र के उपासना की सूक्ष्मताओं का ध्यानपूर्वक विकास किया है और प्रत्येक वृत्ति और कर्म को प्रतीकों के वैभव से पूर्ण किया है।

चर्यावाद केवल **साधन की रीतियों का निर्माण** ही नहीं करता प्रत्युत् साधक एवं आचार्यों के लिए **आचार पद्धति** का भी प्रतिपादन करता है। कोई भी नियम सभी के लिए उपादेय नहीं हो सकते; क्योंकि **मानव विभिन्न प्रकृतिक** है और लोगों के **विकास के विभिन्न स्तर** हैं और योग्यता की दृष्टि से भी भिन्नतायें हैं। एक आचार-पद्धति सभी के लिए निर्धारित नहीं की जा सकती। **'पशु', 'वीर'** और **'दिव्य'** आदि भेदों से (साधकों की पात्रता के आधार पर) साधकों को वर्गीकृत भी किया गया है।

कुछ साधक **प्राणप्रधान एवं देहप्रधान मन वाले होते हैं**। कुछ साधक **'तनुमानसा', 'सत्वापत्ति'** के स्तर के होते हैं। कुछ साधक **'पर वैराग्य'** के स्तर पर साधना में निरत रहते हैं। सभी के लिए **एक ही साधना पद्धति, एक ही आचार** लागू नहीं किया जा सकता। कुछ **'तामसिक'** कुछ **'राजसिक'** और कुछ **'सात्विक'** प्रवृत्ति के होते हैं। कोई **'बहिर्मुख'** होते हैं और कोई **'अन्तर्मुख'**॥ इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर **'चर्यापाद'** में साधना की भिन्न-भिन्न पद्धतियों की भी रचनाओं की विवेचना की गई है।

मृगेन्द्र तन्त्रकार की दृष्टि

(१) 'विद्यापाद', (२) 'योगपाद', (३) 'क्रियापाद' (४) 'चर्यापाद'

'मृगेन्द्र तन्त्र' में (१) **'विद्यापाद'** (२) **'क्रियापाद'** (३) **चर्यापाद** और (४) **'योगपाद'** नामक पादचतुष्टय गृहीत किये गये हैं। 'विद्यापाद' में 'पति' 'पशु' एवं 'पाश' तीन पदार्थों की विवेचना की गई है। 'तदात्मवत्वं योगित्वं' कहकर योगित्व की विवेचना की गयी है और 'योगपाद' में प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि की विवेचना की गई है। समाधि को— 'तदेकता न तामेति स समाधिर्विधीयते' द्वारा परिभाषित किया गया है। **तन्त्र में भावतत्त्व** को भी यथेष्ट महत्त्व दिया गया है।

भाव तत्त्व और तन्त्र

'भाव' परमात्मा के प्रति अपनी भावनात्मक दृष्टि-भंगी की अपर आख्या है। यह एक मानसधर्म है।

कौलावलीतन्त्रकार की दृष्टि— 'कौलावलीतन्त्र' में कहा गया है कि—

''भावस्तु मानसो धर्मः स हि शब्दः कथं भवेत्।

तस्माद् भावो न वक्तव्यो दङ्मात्यं समुदाहृतम्।
यथेक्षुगुड़माधुर्यं जिह्वया ज्ञायते सदा।
तथा भावो विभावश्च मनसा परिभाव्यते॥''

सारांश यह कि भाव एक मानस धर्म है, अतः शब्द विवेच्य नहीं है। गुड़ एवं इक्षुरस के स्वाद को जीभ जानती तो है किन्तु उसका यथार्थ वर्णन नहीं कर पाती। इसी स्वरूप का अकथ्य तत्त्व '**भाव**' भी है।

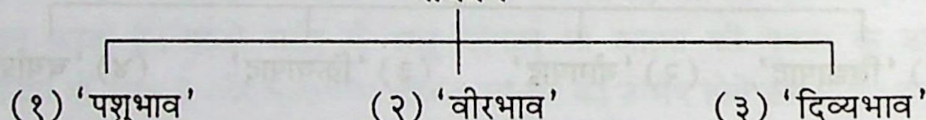
एक ही '**महाभाव**' उपाधिभेद या विषयभेद से या भक्ति-प्रेम-वात्सल्य आदि रूपों में विभक्त हो जाता है। भाव ही रसरूपी आत्मा है।

कौलावली तन्त्रकार की दृष्टि— ''कौलावली' में कहा गया है कि कोई साधक कितना भी हवन करे, कितना भी जप तप करे और कितना भी शारीरिक कष्ट सहे किन्तु बिना भाव के तन्त्र के मन्त्र कभी फलीभूत नहीं होते—

''बहुजपात्तथा होमात् कायक्लेशात्तु विस्तरैः।
न भावेन विना चैवं तन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः॥''

रुद्रयामलकार की दृष्टि— मानव के शरीर तीन प्रकार के हैं— (१) उत्तम (२) मध्यम (३) अधम। अतः तदनुरूप साधना-प्रणाली भी विविध होनी चाहिये।

''शरीरं त्रिविधं प्रोक्तंमुत्तमाधममध्यमम्।
तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्॥''



तत्रैव त्रिविधं प्रोक्त ''मुत्तमाधममध्यमम्॥''

इसी धरातल पर— (१) तामसिक साधकों के लिए '**पशुभाव**' (२) राजसिक साधकों के लिए— '**वीरभाव**' एवं (३) सात्विक साधकों के लिए '**दिव्यभाव**' का विधान किया गया है।

'**रुद्रयामल**' में कहा गया है—

''शक्तिः प्रधानां भावानां त्रयाणां साधकस्य च।
दिव्यवीरपशूनाञ्च भावत्रयमुदाहृतम्॥''

भावों का पौर्वापर्य सम्बन्ध— 'रुद्रयामल तन्त्र' में कहा गया है—

''**आदौभावं पशोः** कृत्वा पश्चात्कुर्यादावश्यकम्।
वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम्॥
तत्पश्चाददतिसुन्दरं दिव्यभावं महाफलम्॥''

'रुद्रयामलतन्त्र' यह भी मानता है कि सारे पुरुष पशु ही होते हैं। उनमें ज्ञानोदय के लिए **'वीरभाव'** का उपदेश दिया गया है। वीरभाव से साधक देवता बन जाता है—

"सर्वे च **पशवः** सन्ति तलवद् भूतले नराः।

तेषां ज्ञानप्रकाशाय **वीरभावः** प्रकाशितः।

वीरभावं सदा प्राप्य क्रमेण **देवता** भवेत्॥"[१]

(१) 'पशुभाव'— जहाँ द्वैतभाव है वहाँ 'पशुभाव' ही अन्तर्निहित होगा। जिस भी साधक में किञ्चिन्मात्र भी अद्वैतज्ञान नहीं है वे अविद्यावरण से आच्छादित साधक पशु कहलाते हैं।

'पशु साधकों' की दो श्रेणियाँ हैं—

(१) संसार के अज्ञानपाश से आबद्ध जीव— **'अधम पशु'** है।

(२) सत्कर्मपरायण एवं भगवद् विश्वासी जीव— **'उत्तम पशु'** है।

(२) **'वीरभाव'**— जो साधक अद्वैतविज्ञानामृत के कण का आस्वादन करके अज्ञानपाश का निकृन्तन करते हुए ज्ञानमार्ग की ओर सतत अग्रपद हो रहे हैं वे **'वीर'** हैं और वीरों का भाव **'वीरभाव'** है। वीरभाव के साधकों की मानसिक अवस्था राजसिक है। ये साधक जागतिक पदार्थों को शिवशक्ति संयोग के रूप में ग्रहण करते हैं।

इससे द्वैतभाव स्वल्पांश में नष्ट हो जाता है।[२]

(३) 'दिव्यभाव'— जो साधक वीरभाव की सिद्धि हो जाने पर द्वैतभाव को दूर करके परमात्मा और अपने में तद्रूपता प्राप्त कर लेते हैं या अपनी सत्ता को परमात्मसत्ता में निमज्जित कर देते हैं और ब्राह्मीभाव में प्रतिष्ठित हो जाते हैं वे दिव्य साधक कहलाते हैं। उनकी भाव साधना **'दिव्यभाव'** कहलाती है। इसमें सत्वगुण का प्राचुर्य अन्तर्गर्भित होता है।

कौलावलीतन्त्रकार की दृष्टि

'कौलावली तन्त्र' में कहा गया है कि—

"प्रथमं **दिव्यभावस्तु** कथ्यते तन्त्रवर्त्मना।
यद्वर्णा देवता यत्र तत्तेजःपुञ्जपूरितम्॥
तेजोमयं जगत्सर्वं विभाव्य मूर्तिकल्पनम्।

---

१. रुद्रयामल।

२. कौलावलीतन्त्र।

तत्तन्मूर्तिमयैर्मन्त्रैः स्वेन स्वेनैव वा पुनः।
आत्मानं तन्मयं दृष्ट्वा सर्वं भावं तथैव च॥''

आम्नायवाद— तान्त्रिकों ने पञ्चाम्नायों को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हुए कहा पञ्चाम्नाय का अनुवर्तन ही 'मोक्षमार्ग' है—

पूर्वश्च पश्चिमश्चैव दक्षिणश्चोत्तरस्तथा।
ऊर्ध्वाम्नायाश्च पञ्चैते मोक्षमार्गाः प्रकीर्तिताः॥[१]

आम्नाय-भेद : (भगवान शिव के मुखों से प्रकट)

१. 'पूर्वाम्नाय' २. 'पश्चिमाम्नाय' ३. 'दक्षिणाम्नाय' ४. 'उत्तराम्नाय' ५. 'ऊर्ध्वानाम्नाय' ६. 'अधाम्नाय'

(संहाररूप कर्मयोग)

'पूर्वाम्नाय' = सृष्टिरूप। मंत्रयोग। 'दक्षिणाम्नाय' = स्थितिरूप। भक्तियोग।

ऊर्ध्वाम्नाय का विशेष महत्त्व

'कुलार्णवतन्त्र' में ऊर्ध्वाम्नाय को विशेष महत्त्व प्रदान करते हुए कहा गया है कि—

'ऊर्ध्वाम्नायं विजानाति यः कश्चित् श्री गुरोर्मुखात्।
शास्त्रमार्गेणैव नरो **जीवन्मुक्तो** न संशयः।'
'सर्वाम्नायाधिकफलमूर्ध्वाम्नायं परात्परं।
तस्माद्देवेशि ! जानीहि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्॥'[२]

आचारतत्त्व और तन्त्र

तन्त्राचार्यों ने कहा है जिन मानसिक वृत्तियों एवं सत्वादिगुणत्रय के आधार पर साधकों को वर्गीकृत किया गया है उन्हीं वर्गीकृत साधकों के आधार पर उनके लिए भिन्न-भिन्न आचारों का विधान किया गया है।

'**विश्वसारतन्त्र**' में कहा गया है कि जो भावत्रय से सम्बद्ध आचारों को जानता है वह '**जीवन्मुक्त**' है—

''भावत्रयगतान् देवि ! सप्ताचारांस्तु वेत्ति यः।
स धर्मं सकलं वेत्ति जीवन्मुक्तो न संशयः॥''

'कौलीवली तन्त्र' और सप्ताचार

(१) सर्वोच्च आचार — 'वेदाचार'

---

१. कुलार्णवतन्त्र।
२. कुलार्णव तन्त्र : 'उत्तराम्नाय' अनुग्रह रूप (ज्ञाययोग) 'ऊर्ध्वाम्नाय'=कौलमत॥

(२) वेदाचार से श्रेष्ठतर आचार— 'वैष्णवाचार'

(३) वैष्णवाचार से श्रेष्ठतर आचार— 'शैवाचार'

(४) शैवाचार से श्रेष्ठतर आचार— 'दक्षिणाचार'

(५) दक्षिणाचार से श्रेष्ठतर आचार— 'सिद्धान्ताचार'

(६) सिद्धान्ताचार से श्रेष्ठतर आचार— 'कौलाचार'

(७) सर्वोच्च आचार 'कौलाचार'॥

'शाक्त मत' के अनुसार ४ प्रधान आचार हैं— (१) वैदिक (२) वैष्णव (३) शैव (४) शाक्त। **शाक्त आचार** भी चार प्रकार के हैं— (१) 'वामाचार' (२) 'दक्षिणाचार' (३) 'सिद्धान्ताचार' (४) 'कौलाचार'।

''षट्शांभवरहस्य'' के अनुसार—

(१) वेदाचार से श्रेष्ठतर— 'वैष्णव (वैष्णवाचार)'।

(२) वैष्णवाचार से श्रेष्ठतर— 'गाणपत्य (गाणपत्याचार)'।

(३) गाणपत्याचार से श्रेष्ठतर— 'सौर (सौराचार)'।

(४) सौराचार से श्रेष्ठतर— 'शैव (शैवाचार)'।

(५) शैवाचार से श्रेष्ठतर— 'शाक्त (शाक्ताचार)'।

शाक्ताचारों में श्रेष्ठता का क्रम

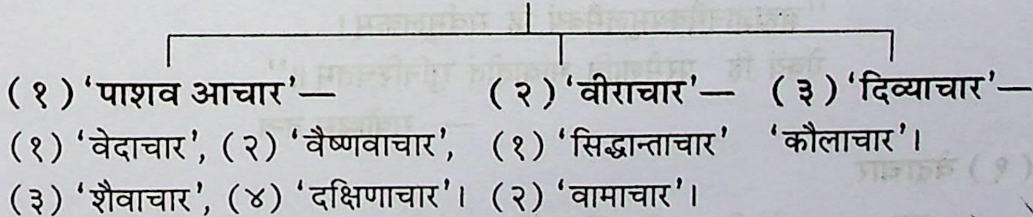
(१) वामाचार से श्रेष्ठतर आचार— 'दक्षिणाचार'।

(२) दक्षिणाचार से श्रेष्ठतर आचार— 'कौलाचार'।

कौलमार्ग से 'अवधूतमार्ग' भी है।

तन्त्रमार्ग में श्रेष्ठतम आचार **'कौलाचार'** को ही स्वीकार किया जाता है।

सप्ताचार और भाव : अन्तर्सम्बन्ध



'विश्वसारतन्त्र' में कहा गया है—

''वैदिकं वैष्णवं शैवं दक्षिणं पाशवं स्मृतम्।
सिद्धान्तवामे वीरे तु दिव्यं सत्कौलमुच्यते॥''

अचार और तन्त्र

तन्त्रशास्त्र को भले ही स्वेच्छाचारी कहा जाय किन्तु तन्त्र में आचार की उपेक्षा नहीं की गई है। प्रत्युत् उसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि—

"आचारमूला जातिः स्यादाचारः शास्त्रमूलकः।
वेदवाक्यं शास्त्रमूलं देवः साधकमूलकः॥"

(१) जाति का मूल — आचार।
(२) आचार का मूल— शास्त्र।
(३) शास्त्र का मूल— वेदवाक्य।
(४) साधक का मूल— देवता।
(५) साधक का मूल— क्रिया।
(६) क्रिया का मूल— कल।
(७) कल का मूल— सुख।
(८) सुख का मूल— आनन्द।
(९) आनन्द का मूल— ज्ञान।
(१०) ज्ञेय का मूल— ज्ञान।
(११) तत्व का मूल— ज्ञेय।
(१२) ब्रह्म का मूल— तत्त्व।
(१३) ऐक्य का मूल— ब्रह्मज्ञान।
(१४) सभी तत्त्वों का मूल— मूल ऐक्य।
(१५) ऐक्य भावातीत पदार्थ है।

"ब्रह्मज्ञानमैक्यमूलमैक्यं हि सर्वमूलकम्।
ऐक्यं हि परमेशानि भावातीतं सुनिश्चितम्॥"

— सर्वोल्लास तन्त्र

(१) वेदाचार

इस आचार के निमय निम्नांकित हैं—

(१) वेदोक्त विधि से देवयजन। (२) मत्स्यभक्षण का निषेध। (३) स्त्री का मन से भी चिन्तन वर्जित। (४) पर द्रव्य के प्रति लोभ का अभाव। (५) भोगों की पूर्ण उपेक्षा। (६) सिन्धु, कानन, पर्वत, सुरालय, बिल्वमूल, एकान्तस्थान एवं सुन्दर

पुण्यक्षेत्र में सुसमाहित चित्त द्वारा एवं शुद्धभाव से देव-ध्यान। (७) शूद्रों के साक्षात्कार का बहिष्कार। (८) कौटिल्य-त्याग। (९) तीनों सन्ध्याओं में देवपूजन एवं जप। (१०) रात्रि के समय **माला** एवं **यन्त्र** का कथमपि स्पर्श न करना। (११) वीर कार्यों का वर्णन एवं गुरु निन्दा का त्याग करना चाहिये।

— समयाचार तन्त्र

(२) 'वैष्णवाचार' और उसका स्वरूप

'वैष्णवाचार' सप्ताचारों में द्वितीय आचार है। इसके लक्षण निम्नाङ्कित हैं—

(१) वेदाचार क्रम का अनुगमन करते हुए नियमों का पालन।

(२) मैथुन एवं तद्विषयक किसी भी चर्चा का सदैव परित्याग।

(३) हिंसा, निन्दा, कुटिलता एवं मांस भोजन का त्याग।

(४) रात्रि के समय माला एवं यन्त्र के स्पर्श का त्याग।

(५) भगवान् विष्णु का सदा समर्थन एवं उन्हें सारे कर्मों का समर्पण।

(६) निरन्तर ''सर्वं विष्णुमयं जगत्' की भावना।

—नित्यातन्त्र (प्रथम पटल)

(३) 'शैवाचार' और उसका स्वरूप

(१) वेदाचार क्रम शैव एवं शाक्त दोनों आचारों में मान्य है, किन्तु भेदक तत्त्व है— 'पशु हिंसा'। शैवाचार में हिंसा भी विहित है।

(४) 'दक्षिणाचार' और उसका स्वरूप

(१) यह आचार दक्षिणामूर्ति मुनि द्वारा प्रवर्तित है।

(२) रात्रि में विजया ग्रहण करके जप का अनन्य मन से जप करना चाहिये।

(३) परमेश्वरी का पूजन वेदाचारक्रम से करना चाहिये।

(४) इसको वीर एवं दिव्य दोनों साधकों को ग्रहण करना चाहिये।

(५) 'वामाचार' और उसका स्वरूप

(१) वीरभाव स्थित साधकों को 'वामाचार' ग्रहण करना चाहिये किन्तु पहले दक्षिणाचार एवं बाद में वामाचार का अभ्यास करना चाहिये।

(२) स्वधर्मनिरत होकर, पञ्चतत्त्वों के द्वारा, यथाविधि एवं **भक्ति** तथा **आनन्द** के साथ पर देवता की अर्चना करनी चाहिये।

(३) क्षिति-जल-तेज-वायु एवं आकाश के द्वारा, एवं विविध द्रव्यों के द्वारा,

बाह्याभ्यन्तर भेद से पर देवता की अर्चना करनी चाहिये। साधक को चाहिए कि वह सदैव 'उद्यतमानस' रहकर पूजा करे।

(४) साधना एवं पूजा के साफल्य के लिए साधक को महोत्साही महावीर, स्वेष्टकार्य में तत्पर रहना चाहिये।

(५) इन तत्त्वों, विविध पुष्पों, कुलसंभूत प्रसूनों के द्वारा अर्चना करते हुए साधक को साक्षात् शिव बनकर शिव की पूजा करनी चाहिये। परमा प्रकृति की पूजा करनी चाहिये—

'साक्षाद् शिवमयो भूत्वां प्रकृतिं परमां भजेत्।'

(६) वामाचार अष्टपाशों से अतीत है।

''वामाचारः समाख्यातश्चाष्टपाशैर्विवर्जितः॥''

भाव यह कि साधक को अपने को अष्टपाशों से विमुक्त रखना चाहिये।

(७) साधक को चाहिए कि वह महामन्त्र की साधना द्वारा सदैव शौचभावों से युक्त रहे।

(८) यदि सिद्धान्ताचारनिरत साधक में दिव्यभाव का उदय हो जाय तो वह साधक **'कौलाचार'** ग्रहण करने का अधिकारी हो जाता है अतः उसे **'कौलाचार'** ग्रहण करके उसका अभ्यास करना चाहिये।

(९) अपनी आत्मा को देवता स्वीकार करके नित्य, आगमविधान, सूक्ष्मतत्त्व एवं भाव के साथ उसकी पूजा करनी चाहिये—

''आत्मानं देवतां ज्ञात्वा यश्च नित्यं प्रपूजयेत्।
आगमेन विधानेन सूक्ष्मतत्त्वेन भावतः॥''[१]

(६) 'सिद्धान्ताचार' एवं उसका स्वरूप

(१) शम-दम का आश्रय ग्रहण करके तथा यागयुक्त होकर एवं शाक्ततन्त्र-शास्त्र का अनुसरण करते हुए आचरण करना चाहिये। यही 'सिद्धान्ताचार' है—

''समं दमं समाश्रित्य यागयुक्तस्तथा किल।
सिद्धान्ताचार एवोक्तः स सदा शाक्ततन्त्रिभिः॥''

(२) अपनी आत्मा में ही परतत्त्व की स्थिति मानकर तथा अपने को परमात्ममय समझकर और अपनी आत्मा के सत्स्वरूप को निरन्तर जानते हुए जीवन व्यतीत करते रहने से स्वात्मज्ञान का उन्मेष हो जाता है।

---

१. भावरहस्य।

(३) ऐसा योगी जो कि इस भावसाधना के साथ युक्त रहकर एवं योगभाव का आलम्बन लेकर साधना करता है वह सालम्ब योगी है।[१]

(७) 'कुलाचार' एवं उसका स्वरूप

(१) जिस प्रकार बड़े हो जाने पर माता का स्तनपान करना छोड़ देता है ठीक उसी प्रकार साधक को कर्मबाहुल्य का त्याग कर देना चाहिये और इस प्रकार कर्मकाण्डीय मार्ग से हटकर सत्वगुणों का आश्रय लेते हुए **ज्ञानमार्ग** में प्रवेश करना चाहिये।

(२) भले ही सारे आचारों का त्याग करके साधक निर्बंध आचरण करे किन्तु उसे ब्रह्मभाव का अभ्यास तो निरन्तर करते रहना चाहिये; क्योंकि वही पूर्णानन्दी ब्राह्मी वृत्ति '**कौलाचार**' है—

''आचारैस्तु विहीनोऽपि ब्रह्मभावरतः सदा।
कौलाचारः स विज्ञेयः पूर्णानन्दपरायणः॥''

(३) **'कुल' क्या है?** पञ्चभूतों से युक्त यह समस्त चराचर जगत्, जीव एवं प्रकृतितत्त्व ही '**कुल**' है अतः कुल को निरन्तर ब्रह्ममय मानकर भावयोगपूर्वक इसका चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये—

''पञ्चभूतमयं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
जीवं प्रकृतितत्त्वञ्च कुलमुक्तं सदा बुधैः॥''

(४) **'कौल' कौन है?**

''कुलं ब्रह्ममयं यश्च चिन्तयेद् भावयोगतः।
स च कौलः समाख्यातो **निरालम्ब**स्तथा किल॥''

कौल दो प्रकार के हैं— (१) सालम्ब कौल और (२) निरालम्ब कौल।

(५) **'कुल' और 'अकुल' कौन है?**

''**कुलं** कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी।
अकुलन्तु शिवः प्रोक्तः शुद्धसत्वमयो विभुः॥''

(६) **'कुलीन कौन है?**

''तयोस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधकः।
कुलीनः परमः सोऽपि वर्णभेदविवर्जितः॥''

भावाचार-निरत साधकों का परदेवता-सम्बन्ध-स्वरूप

(१) '**प्रकृत**'— प्रकृतो **दास**वन्नित्यं पूजयेत् परदेवताम्।

---

१. भावरहस्य (अध्याय १२)।

(२) **'वीर'**— वीरस्तु **भक्तियोगेन मातृरूपां** प्रपूजयेत्।

(३) **'वीर'**— पितृरूपं सदादेवं पूजयेद्वा विधानतः।
स्वायत्तन्तु परं ब्रह्म चिन्तयेद् भावसिद्धये।

(४) **'दिव्य'**— दिव्ययोगी सदा **पश्येदात्मन्येव** परं मुदा।
आत्मानं परमं मत्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥

भावत्रयाभ्यासी साधकों का ध्येय विग्रहस्वरूप

(१) पशुभावस्थ साधकों का ध्येय रूप—

प्राकृतो बाह्यभावेन सकलं परमं भजेत्।
नराकाररूपं स्मृत्वा सदानन्दमयो भवेत्॥

(२) वीरभावस्थ साधकों का ध्यानस्वरूप—

मनसा बाह्यतो वापि वीरस्तु साधनं चरेत्।
सकलं परमं ध्यात्वा **तैजसं विग्रहं** स्मरेत्॥

(३) दिवभाव-निरत साधकों के ध्येय परमात्मा का ध्यान-स्वरूप—

दिव्यस्तु **निष्कलब्रह्म** तेजोरूपं विचिन्तयेत्।
कलातीतं सदा हंसं कौलभावे समाश्रयेत्॥[१]

विभिन्न साधकों का परदेवता के साथ सम्बन्ध स्वरूप

(१) प्राकृत एवं वीरभावापन्न साधकों का भाव-सम्बन्ध

प्राकृते वीरभावे तु गुणत्रयविभेदतः।
साधकाः **कर्म कुर्वन्ति चात्मभावमयं** सदा॥ } (सदा आत्मभावना युक्त क्रियानिष्पादन)

(२) दिव्यभावस्थ साधकों का भाव-सम्बन्ध

दिव्यभावे समुत्पन्ने सत्वगुणमयो भवेत्।
गुणातीतो भवेद् वापि ब्रह्मज्ञानपरायणः॥ } (सत्त्वगुणाश्रयी एवं गुणातीत होकर ब्रह्मज्ञान परायणता॥)

साधकों का परब्रह्म के रूपगुणों का चिन्तन-स्वरूप

(१) **प्राकृत साधक : 'स्थूलरूपं** परब्रह्म प्राकृतश्चिन्तयेन्मुदा।'

(२) वीरभावस्थ साधक : **'तेजसा मिश्रितं स्थूलं वीरभावे** विभावयेत्॥'

---

१. भावरहस्य।

'वीरभावस्थ साधकः वर्णयुक्तं परं ज्योतिर्वीरो वा चिन्तयेद् हृदि।'

(३) 'दिव्यभावस्थ साधकः शुभ्रतेजोमयं दिव्यस्तथात्मानं समाश्रयेत्।'[१]

अन्य निमय

(१) 'देवादन्यं तथा दिव्यो न चिन्तयेत् कदाचन।
तन्मयं सकलं मत्वा ब्रह्मज्ञानपरो भवेत्।
कर्मब्रह्मकर्ता ब्रह्म सर्वं ब्रह्मस्वरूपकम्।
ब्रह्मैवाहमितिं ज्ञात्वा सर्वपापाद् विमुच्यते।
निरस्तो विहितेभ्यश्च कर्मेभ्यः स सदा किल।
पूर्वज्ञान समायोगाद् **कौलाचारपरो** भवेत्।'

कौलसाधकों का यथार्थरूप

कौल समत्वयोगी हैं—

''कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि तथैव काञ्चने तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि! स कौलः परिकीर्तिनः॥''[२]

\+ \+ \+ \+ \+

कौलों के लिए वेदशास्त्र नहीं शांभवी मुद्रा ही वरेण्य है—

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्य गणिका इव।
इयन्तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव॥[३]

कौलों के विभिन्न रूप

'अन्तः **शाक्ताः** बहिः **शैवाः** सभायां **वैष्णवा** मताः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥'[४]

कुल, अकुल आरै कुलीन

(१) **'कुलं'** कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी।

(२) **अकुलन्तु** शिवः प्रोक्तः शुद्धसत्वमयो विभुः।

(३) **'कुलीन'**— तयोस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधकः
कुलीनः परमः सोऽपि वर्णभेदविवर्जितः॥[५]

---

१. भावरहस्य।
२. भावरहस्य।
३. भाव चूड़ामणि।
४. ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र।
५. श्यामा रहस्य। (५) भावरहस्य

पञ्च मकार और उनका रहस्य

तान्त्रिक अपनी साधना में पञ्चमकारों का उपयोग करते हैं। इनका ग्रहण प्रत्यक्ष एवं लाक्षणिक अर्थ— दोनों में किया जाता है।

पञ्चमकार

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'मद्य'	'मांस'	'मत्स्य'	'मुद्रा'	'मैथुन'

आचार्य परशुराम पञ्चमकारों का सम्बन्ध आनन्दकन्द ब्रह्म के 'आनन्दपाद' से जोड़ते हैं और इन्हें आनन्दस्वरूप ब्रह्म का अभिव्यञ्जक मानते हुए कहते हैं कि—

'आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्। तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्चमकाराः, तैरर्चनं **गुप्त्या प्राकट्यान्निरसः**॥' (१२/१

आचार्य परशुराम पञ्चमकारों का सेवन विधान ब्रह्मानन्द की अभिव्यक्ति के उद्देश्य को दृष्टिपथ में रखकर करते हैं 'आनन्दं ब्रह्मणोरूपम्। तच्च देहे व्यवस्थितम्। तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्च मकाराः॥''[१]

'कुलार्णवतन्त्र' में स्वेच्छाचारिता पर अङ्कुश भी लगाया गया है और कहा गया है कि— ''कौल योगी लोकोपकार के भोगों का भोग भोगता है अपनी इच्छा पूर्ति के लिए नहीं''—

'योगी लोकोपकाराय भोगान् भुङ्क्ते न कांक्षया॥'

पाँचवें तत्त्व के विषय में 'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है कि—

'कामुको न स्त्रियं गच्छेदनिच्छन्तीमदीक्षिताम्।'

(क) **'मद्य' क्या है?**

'व्योम पङ्कज निस्यन्द सुधापानरतो नरः।
मधुपायी समं प्रोक्तस्त्वितरे **मधुपायिनः**॥'

(ख) **'मांस' क्या है?**

'पुण्यं पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे शिवे नयेच्चित्तं **पलाशी** स निगद्यते॥ (कु. तं.)
मनसा चेन्द्रियगणं संयोज्यात्मनि योगवित्।
मांसाक्षी स भवेद्देवि! शेषाः स्युः **प्राणिहिंसकाः**॥'[२]

---

१. परशुराम कल्पसूत्र (१२/१)।
२. कुलार्णवतन्त्र।

(ग) **शास्त्रविधि का अतिक्रमण करके स्वेच्छाचारण करना निषिद्ध है—**

'यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
स सिद्धिमिह नाप्नोति परत्र नरके गतिम्॥
स्वेच्छया रममाणो यो दीक्षासंस्कार वर्जितः।
न तस्य सद्गतिः क्वापि तपस्तीर्थव्रतादिभिः॥
असंस्कृतं पिबेद् द्रव्यं बलात्कारेण मैथुनम्।
अप्रियेण हतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत्॥[1]
केवलं विषयासक्तः पतत्येव न संशयः।'

पञ्चमकार और उनके लाक्षणिक अर्थ

प्रथम तत्त्व— मदिरा

'मदिरा' का तात्त्विक स्वरूप—मदिरा का तात्त्विक स्वरूप इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मस्थान-सरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रां शुकलासुधाविगलिता सा पानयोग्या **सुरा**।
सा **हाला** पिबतामनर्थफलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता।
यामित्वा मुनयः परार्थकुशलाः निर्वाणभुक्तिं गताः॥

(२) व्योमपङ्कज निष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः।
ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पान योग्या सुरा।

(३) सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्रात् वरानने।
पीत्वानन्दमयस्तां यः स एव मद्यसाधकः॥

(सहस्रार में स्थित चन्द्रमा में स्थित जो अमृत है यथार्थतः वही योगियों की 'सुरा' है महुआ और अङ्गूर की शराब नहीं।)

(४) निर्विकार, निरञ्जन परब्रह्म के विषय में योगसाधना द्वारा जो प्रमदन ज्ञान आविर्भूत होता है उसे **'मद्य'** कहते हैं—

''यदुक्तं परमंब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्॥''

---

१. मद्यासक्तो न पूजार्थी मांसाशी स्त्री निषेवकः।
कौलोपदेशहीनो यः सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्॥ (कु. त.)

द्वितीय तत्त्व— मांस

'मांस' का तात्त्विक स्वरूप : 'मांस' भी पञ्चमकारों में एक 'मकार' है। इसके भौतिक और लाक्षणिक दोनों अर्थ हैं। भौतिक पदार्थ के रूप में तो यह शरीर की एक धातु है जो कि प्राणी के रस-रक्त से बनती है किन्तु लाक्षणिक अर्थ में यह एक दिव्य वस्तु है।

'मांस' क्या है?

(१) 'माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रिये।
सदा यो भक्षयेद्देवि! स एव **मांससाधकः**।

(**मा**=जिह्वा। '**तदंश**'=वाणी। **मांससाधक**=वाक्यसंयमी।)

(२) 'मांसनोति हि यत्कर्म तन्**मांसं** परिकीर्तितम्।
न च कायप्रतीकन्तु योगिभि**र्मांस**मुच्यते॥''

(परब्रह्मसमर्पित सत्कर्मसमूह='मांस'। इन सत्कर्मों के समर्पण व्यापार को ही 'मांस' कहते हैं।)

(३) पुण्यापुण्य पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेत् चित्तं **मांसाशी** स निगद्यते॥

(ज्ञान के खड्ग के पुण्यापुण्यरूपी पशु को मार कर चित्त को परमात्मा में लय कर देना मांस है।)

(४) कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः।
ते विज्ञानपरा धरातलसुरा पुण्यवन्तो नरा।
नाश्नीयात्पशुमांसमात्मविमतेर्हिंसा परं सज्जनः॥''

(जो मनुष्य अपने समस्त सत्कर्मों को निष्फल परब्रह्म को समर्पित कर देता है उस कर्मसमर्पण का नाम ही **'मांस'** है। 'मां सनोति....परिकीर्तितम्।'

तृतीय तत्त्व : मत्स्य (मीन)

तृतीय मकार मत्स्य तत्त्व है—

'मत्स्य' का तात्त्विक स्वरूप क्या है? योगियों ने यदि मत्स्य को तान्त्रिक-साधना का एक अपरिहार्य अङ्ग स्वीकार किया है तो योगियों की दृष्टि में इसका कौन-सा अर्थ ग्राह्य है? शास्त्रों में कहा गया है।

(१) गङ्गायमनुयोर्मध्ये द्वौ **मत्स्यौ** चरतः सदा।
तौ मत्सौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः॥

(इड़ापिङ्गला नाड़ियों के मध्य में दो मत्स्य अर्थात् श्वासप्रश्वास निवास किया करते हैं। इनको प्राणायाम योग से मारकर इनको खाना ही मत्स्यभक्षण है।)

(२) 'मत्स्यमानं सर्वभूते सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्त्विकं ज्ञानं तन्**मत्स्यः** परिकीर्तितः॥'

(सुखदु:ख में समत्वबुद्धि ही मत्स्य है। उसका साधक ही **मत्स्यसाधक** है।

(३) 'अहङ्कारों दम्भों मदपिशुनतामत्सरद्विजः।
षडेतान्मीनान् वै विषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याऽग्नौ नियमितकृतिर्धीवर कृतिः।
सदा खादेत्सर्वान्न च जलचराणां तु **पिशितम्**॥'

(अहङ्कार, दम्भ, मद, पैशुन्य, मात्सर्य=मत्स्य॥ विद्या शक्ति में इन्हें भूनकर खाना ही मत्स्य भक्षण है।)

(४) मानसादीन्द्रियगुणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स **मीनाशी** भवेद्देवि! इतरे प्राणहिंसकाः॥

(५) 'मत्समानं सर्वमूले सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्त्विकं ज्ञानं तन्**मत्स्यः** परिकीर्तितः॥

(समस्त दु:खों में मेरे समान साम्यभाव से रहना चाहिये। यह सात्विक ज्ञान ही **मत्स्य** है।

चतुर्थ तत्त्व : 'मुद्रा'

तान्त्रिक साधना के पञ्चमकारों में चतुर्थ मकार 'मुद्रा' है। 'मुद्रा' क्या है? इसका योगग्राह्य अर्थ क्या है?

(१) 'आशातृष्णाजुगुप्साभयविशदघृणामानलज्जा प्रकोपाः।
ब्रह्माग्नावष्ट मुद्राः परसुकृतिजनः पाच्यमानाः समन्तात्।
नित्यं सम्भक्षयेत्तानवहितमनसादिव्यभावानुरागी।
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखोरुद्रतुल्यो महात्मा॥'

(आशा, तृष्णा, भय, घृणा, मान, लज्जा, कोप, जुगुप्सा— ये तत्त्व ही मुद्रायें हैं। इन्हें ब्रह्माग्नि में पकाना चाहिये और इन्हें मत्स्य के रूप में खाना चाहिये।)

(२) 'सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलः पारदोपमः॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनी युतः।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र **मुद्रासाधक** उच्यते॥'

(आशा, तृष्णा, जुगुप्सा आदि अष्टपाशों को ब्रह्माग्नि में भस्म कर देना 'मुद्रा' है।

(३) सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेन बन्धनम्।
असत्सङ्गमुद्रनं यत्तन्मुद्रा परिकीर्तिता॥

(असत्सङ्ग का मुद्रण ही मुद्रा है।)

(४) हे देवेशि! सहस्रदल **महापद्म** में मुद्रित **कर्णिका के भीतर पारद की भाँति आत्मा** का निवास है। यद्यपि उसका तेज करोड़ों सूर्यों की भाँति है किन्तु स्निग्धता में वह कोटिचन्द्रवत है। यह परम पदार्थ अत्यन्त मनोज्ञ है एवं कुण्डलिनी शक्ति से समन्वित है। जिसके अन्तर में यह ज्ञान उदित होता है वही **मुद्रासाधक** है।

पञ्चम तत्त्व : मैथुन

पञ्चमकारों में अन्तिम 'मकार' मैथुन है। मैथुन भी बाह्य एवं आन्तर धरातल पर द्विविधार्थक है। एक तो शरीरजन्य है और दूसरा शिव-शक्ति-संयोगजन्य है। 'मैथुन' का योगिगम्य एवं योगग्राह्य अर्थ क्या है?

(१) 'या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा।
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुज रमणी-सुन्दरी वारयोषित।
कुर्याच्चन्द्रार्क योगे युग पवन गते **मैथुनं** नैव योनौ।
योगीन्द्रो विश्वान्द्यः सुखमय भवने तां परिष्वज्य नित्यम्॥

चन्द्रसूर्यरूपिणी इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों के मध्य सूक्ष्मरूपिणी सुषुम्ना का सेवन करना ही उपयुक्त है तथा अन्य किसी मानवी का आलिङ्गन करना उचित नहीं है। सुषुम्णा-साधना में सतत निरत योगी विश्ववन्द्य है।

(२) **'रेफ़'** कुंकुमवर्ण के कुण्ड के भीतर रहता है। **'मकार'** अक्षर बिन्दुरूप 'महायोनि' में रहता है। अकार रूपी हंस का आश्रय लेने पर जब उन दोनों का एकत्व हो जाता है तभी सुदुर्लभ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जो सज्जन ऐसा मैथुन करते हैं वे ही मैथुन-साधक हैं।

(३) प्रत्येक प्राणी के शरीर में कुलकुण्डलिनी नामक शक्ति मूलाधार चक्र में निवास करती है। उस कुल शक्ति रूपा प्रेयसी को उसके प्रियतम विधुर शिव से मिला देना ही 'मैथुन' है—

'कुल कुण्डलिनी शक्तिः देहिनी देहचारिणी।
तया शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्तितम्॥'[१]

'कुलार्णव तन्त्र' में पञ्चमकारों के विषय में यह कहा गया है कि—

''बिना **मांसेन** या पूजा बिना **मद्येन** तर्पणम्।
बिना **शक्त्या** तु **यत्पानं निष्फलं** कथितं प्रिये॥''
— कुलार्णव तन्त्र

साधना में वरीयता का क्रम : कौल दृष्टि

तन्त्र में प्रतिपादित साधना अत्यन्त ऊँचे स्तररपर प्रतिष्ठित है—

(१) **'उत्तमा सहजावस्था'** (२) **मध्यमा** ध्यानधारणा।
(३) **'जपस्तुतिः स्यादधमा'** (४) **होम पूजा**धमाधमा॥

(१) **'उत्तमा'** तत्त्व चिन्तास्याज्जपचिन्ता तु **मध्यमा।**
शास्त्र**चिन्ताधमा** ज्ञेया **लोकचिन्ताधमाधमा॥**

(१) पूजा कोटि समं **स्तोत्रं** स्तोत्रं कोटि समो **जपः।**
जप कोटि समं **ध्यानं** ध्यान कोटि समो **लयः॥**

उत्तमा	'तत्त्वचिन्ता'
मध्यमा	'जपचिन्ता'
अधमा	'शास्त्रचिन्ता'
अधमाधमा	'लोकचिन्ता'

उत्तम	'सहजावस्था'
मध्यम	'ध्यान धारणा'
अधम	'जप-स्तुति'
अधमाधमा	'होमपूजा'

१. १ करोड़ पूजा=१ स्तोत्र। २. १ करोड़ स्तोत्र=१ जप।
३. १ करोड़ जप=१ ध्यान। ४. १ करोड़ ध्यान=१ लय।

बाह्यचरण एवं बाह्याडम्बरों का प्रतिषेध

तान्त्रिकों ने बाह्याडम्बरों एव बाह्याचारों का बहुत विरोध किया है। वे सहज एवं भावयुक्त कर्मों के अनुयायी हैं। वे प्रत्येक आध्यात्मिक क्रिया की निष्पन्नता में परमलक्ष्य की अनुस्यूतता या परमादर्श की व्याप्ति चाहते हैं। इनके बिना सारे क्रिया-कर्म व्यर्थ हैं। साधना प्रदर्शन एवं तुच्छ लौकिक सिद्धियों के लिए नहीं प्रत्युत् लक्ष्यभूत परमार्थ के प्राप्त्यर्थ की जानी चाहिये। अन्यथा वह फलीभूत नहीं होती—

(१) मनोऽयत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिध्यति वरारोहे! लक्षकोटिजपादपि।

(२) **वादार्थं** पठ्यते **विद्या परार्थं** क्रियते **जपः।**
ख्यात्यर्थं दीयते **दानं** कथं सिद्धिर्वरानने?

(३) **धनार्थं** गम्यते **तीर्थं दम्भार्थे** क्रियते तपः।
अमेध्येन तु देहेन न्यासं देवार्चनं जपः।
होमं कुर्वन्ति ये मूढास्तत् सर्वं निष्फलं भवेत्॥
विण्मूत्रत्यागशेषादि युक्तः कर्म करोति यः।
जपार्चनादिकं सर्वमपवित्रं भवेत् प्रिये॥
मलिनाम्बरकेशादिमुखदौर्गन्ध्यसंयुतः।
यो जपेत्तं दहत्याशु देवतासु जुगुप्सितम्।
आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुत निष्ठीवनं भयम्।
नीचाङ्गस्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्जयेत्॥
अत्याहारः प्रलापश्च प्रजल्पी नियमाग्रहः।
अन्यासङ्गश्च लौल्यश्च षड्भिर्मन्त्रो न सिध्यति॥
तन्निष्ठस्तद्गत प्राणस्तच्चित्तस्तत्परायणाः।
तत्पदार्थानुसन्धानं कुर्वन् मन्त्रं जपेत् प्रिये॥
जपातश्रान्तः पुनर्ध्यायेत् ध्यानात् श्रान्तः पुनर्जयेत्॥''[१]

(२) मैथुनं ''रेफस्तु कुङ्कुमाभास कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दुरूपः महायोनौ स्थितः प्रिये।
अकार हंसमारुह्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्॥''

कौल दर्शन के महान आचार्य परशुराम कहते हैं कि अध्यात्म साधना का आदर्शरूप तो यही है कि इसमें **बाह्याचार का समावेश न हो** अतः कौलमतोपासना में—

''सर्वं वेद्यं हव्यम्, इन्द्रियाणि स्त्रुचः। शक्तयो ज्वालाः स्वात्मा शिवः पांवकः स्वयमेव होता॥''[२]

कहीं वाममार्गी एवं कौलमार्गी साधना-विधान में स्वेच्छाचारिता प्रवेश न कर ले अतः आचार्य परशुराम यह भी कहते हैं कि—

---

१. कुलार्णव तन्त्र (१५वाँ उल्लास)।
२. प. क. सू. (दीक्षा विधिः २६)।

"काम क्रोध-लोभ-मोह-मदमात्सर्याविहित हिंसा स्तेयलोक विद्विष्ट वर्जनम्॥ (दीक्षाविधि)[१]

वे आगे सत्य, सदाचार, संयम एवं सामयिक आचारों का भी प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि—

(१) सर्वथा सत्य वचनम् (७७) (२) परदारधनेष्वनासक्ति (७८) (३) स्वस्तुति-परनिन्दा-मर्मविरुद्धवचन-परिहासधिक्काराक्रोशत्रासनवर्जनम्। (७९) प्रयत्नेन विद्याऽऽराधन द्वारा पूर्णख्यातिसमावेशनेच्छा सामयिकाचाराः। (८०) घृणाशङ्का-भयलज्जाजुगुप्साकुलजातिशीलानां क्रमेणावसादनम्॥७०॥ सर्वभूतैरविरोधः (५७) फलं त्यक्त्वा कर्मकरणम्॥२२।१॥ सर्वत्र निष्परिग्रहता (२१/१) सदा विद्यानुसंहातः॥ (१७/१) सर्वदर्शनानिन्दा (१४/१)।

'कौलार्णवतन्त्र' में तो 'योग' 'ध्यान' 'धारणा' 'यम' 'नियम' आदि को भी अनावश्यक होने पर छोड़ देने का विधान किया गया है। 'कुलार्णव तन्त्र' में कहा गया है कि—

(१) **योग, धारणा का त्याग**— 'लब्धे शान्तिप्रदे देवि! **न योगो नैव धारणा**। (कौ. त.)

(२) **नियमों का त्याग**— 'परब्रह्मणि विज्ञाते समस्तैर्नियमैरलम्॥ (कौ. त.)

(३) **बंधों का त्याग**— असिका बंधनं नास्ति नासिकाबंधनं **न हि**॥ (कौ. त.) नियमानियमोनास्ति **स्वयमेवात्मपश्यताम्**। (कौ. तं.)

(४) **ग्राह्य**— क्षणं ब्रह्माहस्मीति य कुर्यादात्मचिन्तनम्। तत्सर्वं पातकं हन्यात्तमः सूर्यादयो यथा॥ (कौ. तं.)

(५) **समाधि का भी त्याग**— देहाभिमाने गलिते विदिते परमात्मनि। यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र **समाधयः**॥" (जब अपने आप समाधि लग जाय तब समाधि लगाने की साधना भी व्यर्थ है।)

(६) **जीव-परमात्मा में अद्वैत ही काम्य है**[२]— 'यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्। अविशेषो भवेद्द्जीवात्मपरमात्मनोः॥' (कुलार्णव तनत्र)

तन्त्र में अद्वैतदृष्टि का सञ्चार

यद्यपि वह सत्य है कि तन्त्र में अनेक दृष्टियाँ हैं तथापि उसमें अद्वैत दृष्टि भी है। शाक्त दर्शन और काश्मीर का त्रिकारण्य शैव दर्शन अद्वैतवादी है। शाक्तों का

---

१. प. क. सू.।

२. कुलार्णव तन्त्र।

कौलमत और समय मत भी अद्वैतवादी है। यद्यपि 'कौल' कहते हैं कि हम 'द्वैताद्वैत-विलक्षणवादी' हैं—

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैत विवर्जितम्॥'

तथापि उनकी मूल चेतना अद्वैतनिष्ठ है।

कौलधारा के महान दार्शनिक परशुराम जी कहते हैं कि काञ्चुक ही जीव एवं परशिव के मध्य भेदक तत्त्व हैं अतः कञ्चुक के हटते ही जीवन और परशिव में कोई भेद नहीं रह जाता—

"शरीरकञ्चुकितः शिवो जीवः निष्कञ्चुकः परशिवः।"[१] रामेश्वर सूरि कहते हैं— "तद्रूपं यत् कञ्चुकम् आच्छादनं तेन आवृतः शिव एव जीवः। एतादृश कञ्चुकरहितो यः स तत्त्वातीतः परशिव इत्यर्थः॥"

(१) 'आणव मल' (२) 'मायीम मल' एवं (३) 'कार्ममल' से रहित जीव शिव ही तो है। (१) 'अहञ्च इदञ्च' से ऊपर उठकर 'इदमहम्' की भूमि पर एवं 'इदमहम्' से ऊपर उठकर 'अहमिदम्' की भूमि पर तथा उसे भी डाँक 'अहमस्मि' की भूमि पर आरूढ़ होते ही जीव शिव बन जाता है। 'स्व' के विशुद्धतम एवं अचिन्त्य स्वरूप का विमर्श अखण्डित रूप में होते रहने पर शिवत्वाप्ति हो ही जाती है इसीलिए 'पुरुषार्थ' स्व का विमर्श कहा गया है— 'स्वविमर्शः पुरुषार्थः॥"[२]

ऐक्य एवं अद्वैत को 'परशुरामकल्पसूत्र' में भी महत्त्व दिया गया है— 'गुरु-मन्त्रदेवताऽऽत्मनः पवनानाम् ऐक्य निष्फालनादन्तरात्मवित्तिः॥"[३] (२) 'शिवतासमा-वेश' को परशुराम कभी नहीं भूले— 'सततं शिवतासमावेशः॥'[४] इसीलिए यह भी कहा गया कि— "शिव तुल्यो जायते॥"[५]

'कुलार्णवतन्त्र' में 'अहं ब्रह्मास्मि' की अद्वैतनिष्ठ दृष्टि स्वीकार करते हुए कहा गया है कि— 'क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम्। तत्सर्वं पातकं हन्यात्तमः सूर्योदये यथा॥"

जीवशिवैक्यवाद— त्रिक एवं स्पन्द दर्शनों की भाँति कौल दर्शन भी जीवात्मा एवं परमात्मा में एकत्व का दर्शन करता है और इस निर्णय पर पहुँचता है

---

१. परशुराम कल्पसूत्र (दीक्षा विधि=५)।
२. परशुराम कल्पसूत्र (६/१)।
३. प. क. सू., (११/१)।
४. प. क. सू. (१८/१) 'आत्मालाभान्न परं विद्यते'। २८ (१) (४) शिवसूत्र।
५. 'भूतकञ्चुकी तदा विभुक्तो भूयः पतिसमः परः॥' (शिवसूत्र)

कि— 'जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः ॥'

फिर शिव और जीव में भेद क्यों है? दोनों में क्या भेद है?

'**कुलार्णवतन्त्र**' में कहा गया है—

'पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।'

'तुष' से युक्त चावल 'धान' कहलाता है किन्तु तुष हटते ही वह तण्डुल कहलाने लगता है, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा जीव तथा कर्मशून्य आत्मा 'सदाशिव' कहलाती है।

'तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावे हि तण्डुलः।'

'पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तो सदाशिवः ॥' (कु. तं.)

'कर्मबद्धः स्मृतो जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ॥ (कु. तं.)

कौलतन्त्र **अद्वैतवादी** है— इसीलिए कहा गया है कि—

'**अहं त्वमनयोरैक्यं** भावयेन्निवसेत् सुखम् ॥' (कु. तं.)

'देहो देवालयो देवि! **जीवो देवः सदाशिवः** ॥' (कु. तं.)

'**अद्वैतभाव**येन्नित्यंमद्वैतं गुरुणा सह।' (कु. तं.)

जो पाशबद्ध है वही '**पशु**' है और जो पाशमुक्त है वह '**परमेश्वर**' है। पशु और महेश्वर में इतना ही स्वल्प भेद है कि एक पाशबद्ध है और दूसरा पाशमुक्त।

(१) '**पाश**'— ''घृणा, लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पञ्चमम्।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ **पाशाः** प्रकीर्तिता ॥''

(२) '**पशु' और 'महेश्वर**'— ''पाशबद्धः **पशुर्ज्ञेयः** पाशमुक्तो **महेश्वर** ॥''

चूँकि मैं ही शिव भी हूँ अतः समस्त आत्मायें भी मैं ही हूँ अतः ''**आत्मवतसर्वभूतेषु** हितं कुर्यात् कुलेश्वरि'' प. क. सू. (सर्वसाधारण क्रम : ७०) में भी ८ पशों से मुक्त होने की बात कही गयी है; क्योंकि तभी जीवन में अद्वैत आ सकता है।

भक्ति का महत्त्व— उत्पलदेवाचार्य ने अपनी स्तोत्रावली में तथा इसके पूर्व तान्त्रिकों ने 'कुलार्णव तन्त्र' में भक्ति को यथेष्ट मूल्य प्रदान करते हुए कहा है कि योग, तप, अर्चा आदि से भी श्रेष्ठतर है '**भक्ति**'। '**कुलार्णवतन्त्र**' में कहा गया है—

'न योगो न तपो नार्चा क्रमः कोऽपि प्रलीयते।
अमायाकुलमार्गेण भक्तिरेव विशिष्यते ॥'

'भक्तिरेव गुरौ देवि! नान्यः पन्था इति श्रुति।' (गुरुभक्ति)

'भक्तिर्यथा भवेद्देवि तथा कार्या निजे गुरौ॥' (गुरुभक्ति)

सर्वदान तपस्तीर्थव्रताद्यैर्न तथा प्रिये।

श्रीगुरौ निश्चला भक्तिर्वर्द्धते हि यथा तथा। (गुरुभक्ति)

(१) ध्यानमूलं **गुरोर्मूर्तिः**।

(२) पूजामूलं **गुरोःपदम्**।

(३) मन्त्रमूलं **गुरोर्वाक्यं**।

(४) मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

(५) न देवः श्री गुरोः **परः**।

(६) स शिवो **गुरुरूपेण** भुक्तिमुक्तिप्रदो मम।

(७) यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥[1]

'परशुरामकल्पसूत्र' में गुरु एवं **'परमशिव'** में ऐकात्म्य प्रतिपादित किया गया है—

''ब्राह्मे मुहूर्ते ब्राह्मणो मुक्त स्वापः पापविलापाय परम शिवरूपं गुरुमभिभृश्य॥'' (पशुरामकल्पसूत्र)

जातिवाद का खण्डन— 'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है—

(१) तथा श्रीचक्रमध्येतु जातिभेदो न विद्यते। (कुलार्णव तन्त्र)

(२) **जातिभेदो न चक्रेऽस्मिन्** सर्वे शिवसमाः स्मृताः॥ (कुलार्णव तन्त्र)

गोपनीयतावाद— तन्त्र में गोपनीयता का सिद्धान्त भी अत्यन्त महत्त्व रखता है। इसी कारण कौलों के लक्षण के विषय में कहा गया है कि—

'अन्तः कौला बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।'

'क्वचिच्छिष्टः क्वचिद्दुष्टः क्वचिद्भूतपिशाचवत्॥'

'नानावेशधरो योगी विचरेज्जगती तले॥'

'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः॥'

'गोपनीयं मातृजारवत्॥'

आचार्य परशुराम की दृष्टि— आचार्य परशुराम कहते हैं कि— 'वेश्या इव प्रकटा वेदादिविद्याः। सर्वेषु दर्शनेषु गुप्तेयं विद्या॥'[2]

---

१. कुलार्णवतन्त्र।

२. परशुरामकल्पसूत्र (३०/१)।

ध्यान साधना को महत्त्व— तान्त्रिक साधना में ध्यान को भी महत्त्व दिया गया है—

यथा ध्यानस्य सामर्थ्यात् कीटको भ्रमरायते।
तथा ध्यानस्य सामर्थ्यात् ब्रह्मभूतो भवेन्नरः॥[१]

जीवन्मुक्ति का आदर्श— तान्त्रिकों का लक्ष्य मृत्यूपरान्त प्राप्त होने वाला स्वर्ग या 'विदेहमुक्ति' नहीं 'जीवन्मुक्ति' है। 'जीवन्मुक्ति' क्या है? ''य आस्ते मृतवत् साक्षाज्जीवन्मुक्तः स उच्यते। न शृणोति न वा पश्येन्न तिष्ठति न गच्छति। न जानाति सुखं दुःखं न च संलिप्यते मनः। न चापि किञ्चिज्जानाति न च बुध्यति काष्ठवत्।।''[२]

पिण्डब्रह्माण्डैक्यवाद— यह सिद्धान्त योग एवं तन्त्र दोनों में मान्य है। 'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है कि जो इस तत्त्व को जानता है वही 'गुरु' है।

''पिण्डब्रह्माण्ड योरैक्यं स्थितिं यो वेत्ति तत्त्वतः।
शिरास्थिरोम संख्यादि स गुरुर्नापरः प्रिये॥''[३]

अधिकारवादः— 'परीक्ष्य वक्ष्यते तन्त्रं सैकतं शालिवीजवत्। अनर्हे मन्त्रविज्ञानं न तिष्ठति कदाचन॥' (कुलार्णव तन्त्र)

सर्वचिन्मयवाद— भले ही विश्व में जड़ एवं चेतन (जड़ता और चैतन्य) दोनों दृष्टिगत हों किन्तु विश्व में ऐसा कोई भी जड़ से जड़ पदार्थ नहीं है, जिसमें मूल तत्त्व के रूप में चैतन्य अन्तर्गर्भित न हो। 'जड़' का अर्थ चैतन्यरहित होना नहीं है प्रत्युत चैतन्य की सुषुप्ति या चैतन्यांश की स्वल्पता है। आत्मा विश्व का मूल है और वह चेतन है— 'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र) फिर उसकी सृष्टि चेतन नहीं जड़ कैसे हो सकती है?

सर्वचैतन्यवाद— जड़ जगत से ऊपर ऊर्ध्वारोहण करने के लिए चैतन्य का यान चाहिए। जड़ीभूत शरीर एवं जड़ीभूत अन्तःकरण लेकर जड़ीभूत साधना के द्वारा कोई सिद्धि नहीं पा सकता अतः साधना के प्रत्येक क्षेत्र में चैतन्य आवश्यक है। शरीर, मन, बुद्धि, आसन, माला, दिशा, शरीसंग, मन्त्र और देवता सभी का चैतन्यीकरण आवश्यक है। इसी प्रसंग में कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है कि—

''मन्त्राश्चैतन्य सहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम्॥''

---

१. कुलार्णव तन्त्र (उल्लास ९)
२. एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते।'
३. कुलार्णव तन्त्रम् (उल्लास १३)।

दीक्षा का सर्वोपरि महत्त्व— तन्त्र में 'दीक्षा' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है; क्योंकि उसके बिना कोई साधक साधना राज्य में प्रवेश ही नहीं कर सकता।

दीक्षा क्या है? 'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है—

दिव्यभावप्रदानाच्च स्खलनात् कल्मषस्य च।
दीक्षेति कथिता सद्भिर्भवबन्धविमोक्षणात्॥[१]

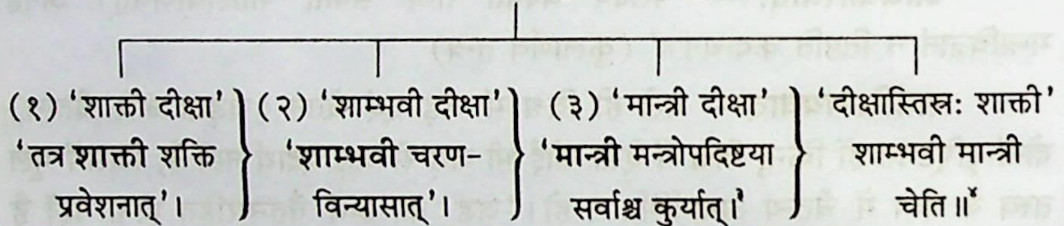
'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है कि अदीक्षित व्यक्ति को जपतप आदि सारी साधनायें व्यर्थ हो जाती हैं—

'अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रिया।
न फलन्ति प्रिये! तेषां शिलायामुप्तबीजवत्॥' (कु. तं.)

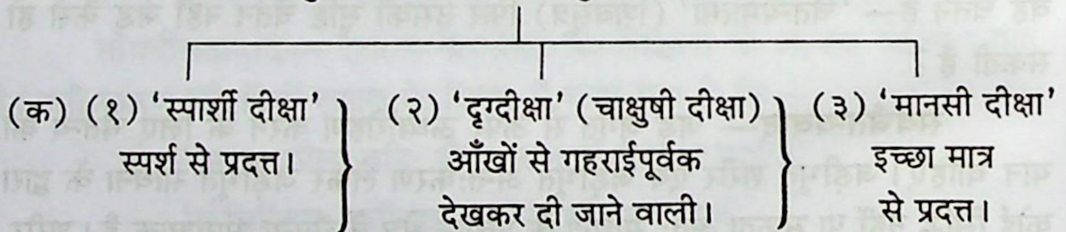
(दीक्षा— शिवत्व)— दीक्षान्वितस्तथा ह्यात्मा **शिवत्वं** लभते प्रिये।[२]

आचार्य परशुराम की दृष्टि— आचार्य परशुराम ने दीक्षा को त्रिविध माना।

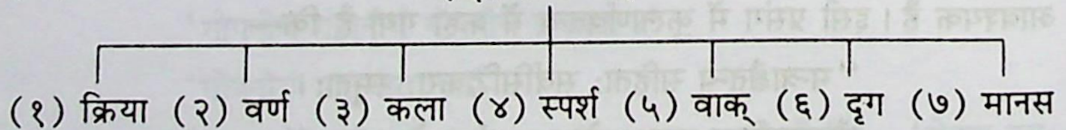
दीक्षा के भेद (परशुरामकल्पसूत्र)



'कुलार्णव तन्त्र' के अनुसार दीक्षा भेद

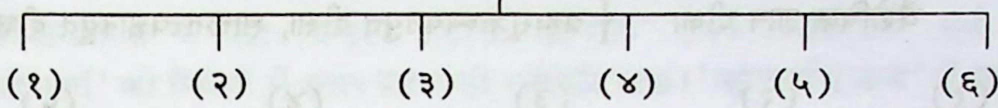


(ख) **दीक्षा के ७ भेद**



१. कुलार्णवतन्त्रम् (उल्लास १७)।
२. कुलार्णवतन्त्रम्।
३. प. क. सू.।
४. प. क. सू. (दीक्षाविधि ३२)।

(ग) **अन्य दीक्षायें**



(१) 'समय दीक्षा' (२) 'विशेष दीक्षा' (३) 'साधिका दीक्षा' (४) 'पुत्रक दीक्षा' (५) 'वेध दीक्षा' (६) 'पूर्ण दीक्षा'

(७) आचार्य दीक्षा (८) निर्वाण दीक्षा

(१) 'क्रियादीक्षा' के ८ भेद हैं।
(२) 'वर्णदीक्षा' ३ प्रकार की है।
(३) 'कलादीक्षा' ३ प्रकार की है।
(४) 'मनोदीक्षा' २ प्रकार की है।

'दीक्षा मोक्षदा देवि! सप्तधा परिकीर्तिता।
समयाख्या विशेषा च साधिका पुत्रिकाह्वया।
क्रिया ज्ञान कला स्पर्श ज्ञान ध्यान समाकुलाः।
वेधकाः पूर्ण संज्ञाः स्युश्चर्या निर्वाण संज्ञकाः॥'

(घ) अन्य दीक्षायें

(१) 'कौलिकी दीक्षा' (२) 'गण्डूषा दीक्षा' (३) 'बाह्याभिषेक दीक्षा' (४) 'सिद्धाभिषेक दीक्षा'

दीक्षाओं के अन्य प्रकार

(१) 'समयदीक्षा' (२) 'विशेष दीक्षा' (३) 'निर्वाण दीक्षा'

साधक के भेद से दीक्षाभेद

(१) 'बुभुक्षु' (भौतिकी दीक्षा)
- (१) 'शिवधर्मिणी दीक्षा'
- (२) 'लोकधर्मिणीदीक्षा'

(२) 'मुमुक्षु' (नैष्ठिक दीक्षा)
- (१) 'सबीजदीक्षा'
- (२) 'निर्बीज दीक्षा'
- (३) 'सद्योनिर्वाणक दीक्षा'

१. शाक्तदर्शनम् (१८/३)।

'कलावती दीक्षा'' पञ्चायतनी दीक्षा' 'संक्षेप दीक्षा' आदि दीक्षायें भी होती हैं।

वैशेषिक ज्ञान दीक्षा { ब्रह्मसूत्राध्ययनयुत दीक्षा, शाक्ततत्त्वज्ञानयुत दीक्षा[1] }

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'समय दीक्षा'	'वैशेष दीक्षा'	'सामान्यज्ञान दीक्षा'	'वैशेषज्ञान दीक्षा'	'निर्वाण दीक्षा'[1]

पुस्तक के कलेवर का आयाम आशा से विपरीत अधिक बढ़ जाने की आशंका के कारण दीक्षा के इन भेद-प्रभेदों पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं है।

दीक्षा की आवश्यकता— दीक्षा गुरुकृपा या शक्ति के आयत्तीकरण, आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त करने की पद्धति है। साधना निर्बलों के लिए नहीं है—

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।'

दीक्षा साधक में शक्ति का सञ्चार करती है। यह सञ्चरित शक्ति आत्मोन्नयन करके साधक को अध्यात्ममार्ग के दुरारोह शिखरों पर आरोहण करने की शक्ति प्रदान करता है। **दीक्षा के दो कार्य हैं—**

(१) साधक की अधोगामिनी यात्रा को रोकना तथा

(२) साधक को ऊर्ध्वमार्ग के शिखरों पर आरोहण कराना।

शक्त्यार्जनवाद— आध्यात्मिक साधना का कोई भी मार्ग क्यों न हो जब तक **आत्मिक शक्ति का विकास** नहीं किया जाता तब तक तात्त्विक सिद्धि करोड़ों वर्षों की साधना से भी नहीं मिल सकती। **आध्यात्मिक यात्रा के लिए आध्यात्मिक शक्ति आवश्यक** है; क्योंकि ''यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धि न जायते॥'

ज्ञान की सर्वोपरि महत्ता

कर्मवाद का खण्डन

तन्त्र में व्यावहारिक धरातल पर 'कर्मवाद' की पुष्टि करने के बाद भी आदर्श (सिद्धान्त) के स्तर पर कर्मवाद का प्रत्याख्यान किया है और कहा है कि—

'**इह यत क्रियते कर्म** तत्र परत्रोपभुञ्जते।
सिक्तमूलस्य वृक्षस्य फलं शाखासु दृश्यते।
दारिद्र्यदुःखरोगाश्च बन्धनं व्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्॥''[2]

---

१. शाक्तदर्शनम् (१५/३)।

२. कुलार्णव तन्त्र : नाममात्रेण सन्तुष्टाः **कर्मकाण्डरता** नराः।
मन्त्रोच्चारणाहोममद्यैर्ममिताः क्रतुविस्तरैः।
एकभक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः।
मूढा परोक्षमिच्छन्ति तव माया विमोहिताः॥

ज्ञान का सर्वोपरि महत्त्व

तान्त्रिकों की साधनार्पिद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि वे सर्वसाधनप्रेमी थे अतः उन्होंने (१)) 'ज्ञानमार्ग' (२) 'भक्तिमार्ग' एवं (३) 'योगमार्ग' की त्रिवेणी में स्नान करना ही सर्वोपरि माना। **'कुलार्णव तन्त्र'** में ज्ञानमार्ग के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

(१) '**ज्ञानवानमानवः** प्रोक्तो ज्ञानहीनः **पशुः** प्रिये।'

(२) 'ज्ञानादेव हि मुक्तिस्यान्नान्यथा वीर वन्दिते।
तथैव सर्वशास्त्राणि **ज्ञानमेव हि कारणम्**॥'

(३) 'अभ्यस्य सर्वशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वा हि बुद्धिमान्।
पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्रं परित्यजेत्॥'

पुस्तकीय (मौखिक न कि अनुभूत्यात्मक) ज्ञान का प्रत्याख्यान

तान्त्रिक आचार्यों ने इस रहस्य को भलीभाँति समझ लिया था कि— 'यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य' (पुस्तकीय ज्ञान अहङ्कार तो बढ़ा सकता है किन्तु मुक्ति नहीं दे सकता।) अतः तान्त्रिकों ने कहा कि—

(१) ''न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि।
ज्ञानादेव हि मुक्तिः स्यान्नान्यथा वीर वन्दिते॥'' (कु. तं.)

(२) '**मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः** सर्वा विडम्बकाः।
काष्ठभारश्रमादस्मादेकं सञ्जीवनं परम्॥

(गुरुवाक्=गुरु का स्वयमेव अनुभूत ज्ञान।)

यह ज्ञान क्रियायासविवर्जित ज्ञान है। अद्वैत ज्ञान क्या है?

'अद्वैतन्तु शिवेनोक्तं **क्रियायासविवर्जितम्**॥'

ज्ञान के दो भेद हैं— (१) 'आगमोत्थ' (२) 'विवेकोत्थ'।

'शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम्' 'वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति च। विडम्बकस्य तस्यापि तत् सर्वं काकभाषितम्॥' — कुलार्णव तन्त्र

'कुलार्णवतन्त्र' – 'नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्ड रताः नराः
मन्त्रोच्चारण होमाद्यै र्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः
एक भक्तो प्रवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः
मूढ़ा परोक्षमिच्छन्ति तव माया विमोहिताः॥'

(३) 'पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभा भववेदकाः।
न जानन्ति परं तत्त्वं **दर्वी पाकरसं यथा**॥'

(क्या करछुल पाक-रस का स्वाद जानती है? इसी प्रकार शास्त्रज्ञ केवल **'करछुल'** मात्र हैं— तत्त्वज्ञ नहीं हैं।)

(४) संसारमात्रनाशाय **शाब्दबोधो न हि क्षमः।**
न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपशिखया।
(५) यथामृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्।
तत्त्वज्ञस्य तथा देवि ! **न शास्त्रेण प्रयोजनम्।**

ज्ञान वरेण्य तो है किन्तु **'आगमोत्थ ज्ञान'** नहीं प्रत्युत् **'विवेकोत्थ ज्ञान'** क्योंकि 'प्रज्ञाहीनस्य पठतो ह्यन्धस्यादर्शनं यथा'।

तन्त्र साहित्य और उसका विभाजन

शाक्तों ने भारत एवं एशिया महाद्वीप को तीन भागों में विभाजित किया है। क्रान्ताओं के रूप में यह विभाजन त्रयात्मक है।

क्रान्ता-भेद और तत्सम्बद्ध ६४-६४ तन्त्र*

(१) 'विष्णुक्रान्ता'	(२) 'रथक्रान्ता'	(३) 'अश्वक्रान्ता'
सिद्धीश्वर, कालीतन्त्र, कुलार्णव, ज्ञानार्णव, नीलतन्त्र, केत्कारी, श्रीक्रम, सिद्धियामल आदि ६४ तन्त्र।	मत्स्यसूक्त, शक्ति सङ्गम, षडाम्नाय, योगस्वरोदय, स्वरोदय, ज्ञानभैरव, कालभैरव आदि ६४ तन्त्र।	भूतशुद्धि, क्रियासार, तत्त्व चिन्तामणि, बृहत्कं-कालिनी क्रियासार, वर्णसार, चूड़ामणि, महायोगिनी बृहत्सार आदि ६४ तन्त्र।

६४ तन्त्र

६४-६४ तन्त्रों का उपर्युक्त क्रान्ता-विभाजन सिद्ध करता है कि ६४ ही तन्त्र नहीं है प्रत्युत् ६४ तन्त्र तो केवल एक क्रान्त में ही हैं।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि— आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं।
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रो पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैक घटना।
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।'[१]

चतुश्शती में उल्लिखित ६४ तंत्र

६४ तन्त्रों के नामों में यथेष्ट मतभेद हैं। चतुश्शती के अनुसार ६४ तन्त्र इस प्रकार हैं—

---

* 'विष्णुक्रान्त'= भारत का उत्तरपूर्वीय प्रदेश।
'रथक्रान्ता'= उत्तर पश्चिमी भारत।
'अश्वक्रान्ता'=दक्षिणी भारत।

१. सौन्दय लहरी (श्लोक ३१)।

"चतुष्षष्टिश्च तन्त्राणि मातृणामुत्तमानि च।
महामायाशम्बरं च योगिनीजाल शम्बरम।"[१]
तत्त्वशम्बरकं चैव भैरवाष्टकमेव च।
बहुरूपाष्टकं चैव यामलाष्टकमेव च॥
चन्द्रज्ञानं मालिनी च महासंमोहनं तथा।
वामजुष्टं महादेवं वातुलं वातलोत्तरम्॥
हृद्भेदं तन्त्रभेदं च गुह्ययन्त्रं च कामिकाम्।
कलावादं कलासारं तथान्यत् कुब्जिकामतम्॥
तन्त्रोत्तरं च वीणाख्यं त्रोतलं त्रोतलोत्तरम्।
पञ्चामृतं रूपभेदं भूतोड्डामरमेव च।
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलचूड़ामणिं तथा।
सर्वज्ञानोत्तरं देव महाकालीमतं तथा॥
अरुणेशं मोदिनीशं विकुण्ठेश्वरमेव च।
पूर्वपश्चिमदक्षं च उत्तरं च निरुत्तरम्।
विमलं विमलोत्थं च देवीमतमतः परम्॥[२]

भगवान महादेव ने इन ६४ तन्त्रों का नामोल्लेख पार्वती को उपदेश करते हुए किया है।

त्रिकशास्त्र और तन्त्र-साहित्य— १० 'शिवागम', १८ 'रुद्रागम', ६४ 'भैरवतन्त्रों' के रूप में विभक्त परमेश्वर के शासन का सार '**त्रिकशास्त्र**' है और उसका भी सार है 'मालिनीमत'।

अभिनवगुप्त कहते हैं— "दशाष्टादशवस्वष्टभिन्नं यच्छाशनं विभोः। तत्सारं **त्रिकशास्त्रं** हि तत्सारं **मालिनीमतम्**॥"[३]

'शुभागमशास्त्र' के ग्रन्थ

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'वासिष्ठ संहिता'	'सनक संहिता'	'शुक संहिता'	'सनन्दन संहिता'	'सनत्कुमार संहिता'

२८ आगम : (सौभाग्यभास्कर)

(१) कामिक (२) योगज (३) कारण (४) प्रसृतागम (५) अजितागम

१. चतुश्शती।
२. सौन्दर्यलहरी।
३. तन्त्रालोक।

(६) दीप्तागम (७) अंशुमानागम (८) सुप्रभेदागम (९) विजयागम (१०) निःश्वासागम, (११) स्वायंभुवागम (१२) अनलागम (१३) वीरागम (१४) रौरवागम (१५) मुकुटागम (१६) विमलागम (१७) चन्द्रज्ञानागम (१८) बिम्बागम (१९) प्रोद्गीत (२०) ललितागम (२१) सिद्धागम (२२) सन्तानागम (२३) किरणागम (२४) वातुलागम (२५) सूक्ष्म (२६) सहस्र (२७) सर्वोत्तर (२८) परमेश्वर। 'कामिकागम' में २४ आगमों का उल्लेख है। अप्पयदीक्षित ने २८ आगमों का उल्लेख किया है।[१]

आचार्य जयरथ द्वारा उल्लिखित तन्त्रग्रन्थों के नाम

'तन्त्रालोक' की टीका करते हुए आचार्य जयरथ प्रथमाह्निक के १८वें श्लोक की व्याख्या में जिन तन्त्र ग्रन्थों का नामोल्लेख करते हैं वे पूर्वोल्लिखित तन्त्रों से भिन्न है। यथा— १) 'भैरव तन्त्र' (२) 'यामल तन्त्र' आदि।

(१) 'भैरव तन्त्र'	(२) 'यामल तन्त्र'	(३) 'मत'	(४) 'मङ्गल तन्त्र'
स्वच्छन्द, भैरव, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त भैरव, असिताङ्ग, कपालीश आदि।	ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, स्वच्छन्द, रुद्र, वैताल, रुरु, आथर्वण आदि।	रक्त, मत, लम्पट, लक्ष्मीमत, चालिका, पिङ्गला आदि।	तन्त्रभैरवी, मङ्गला, ब्राह्मी, विजया, कला, चन्द्रा, सर्वमङ्गला आदि।

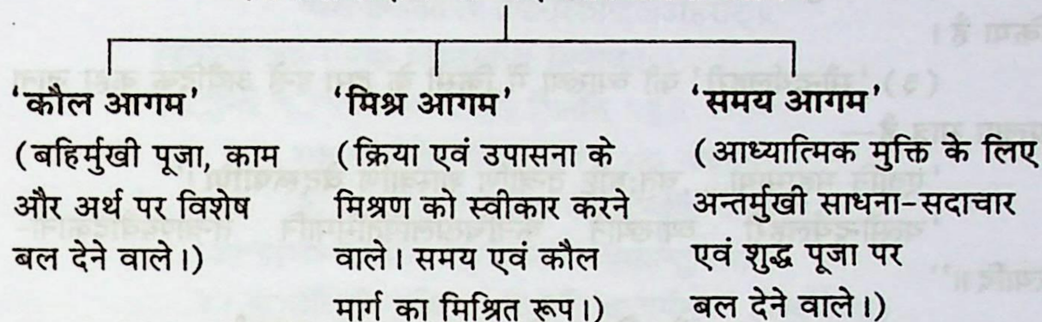
(५) 'चक्राष्टक'	(६) 'बहुरूप'	(७) 'वागीश'	(८) 'शिखाष्टक'
मन्त्रचक्र, वर्णचक्र, शक्तिचक्र, कलाचक्र, बिन्दुचक्र, नाद चक्र, गुह्य चक्र, खचक्र।	अन्धक, अज, मूल, वर्ण, भण्ड, विडङ्ग, ज्वालिन, मातृरोदन, रुरुभेद।	भैरवी, चित्रिका, हंसा, कदम्बिका, हृल्लेखा, विद्युल्लेखा, चन्द्रलेखा आदि।	भैरवी, वीणा, वीणामणि, सम्मोह, डामर, अथर्वक, कबन्ध, शिरश्छेद।

(१) वैष्णवागम १०८, (२) शैवागम २८, (३) शाक्तागम ६४, (४) मिश्रागम ८ एवं (५) समयागम ५ हैं।

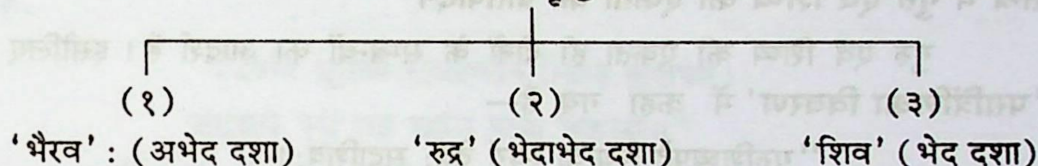
---

१. शिवार्चन चन्द्रिका।

शाक्तसम्प्रदाय के भेद और उनके आगम



तन्त्र की दृष्टियाँ



अभिनव गुप्त कहते हैं—

"तन्त्रं जज्ञे रुद्रशिवभैरवारण्यमिदं त्रिधा।
वस्तुतो हि त्रिधैवेयं ज्ञानसत्ता विजृम्भते॥
भेदेन भेदाभेदेन तथैवाभेदभागिना॥"[१]

राजानक जयरथ ने 'श्री कण्ठी' (ग्रन्थ) के आधार पर ८ द्वैतवादी, १८ द्वैताद्वैतवादी एवं ६४ अद्वैतवादी ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है।

तन्त्रों के प्रति विभिन्न दृष्टियाँ

(१) आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि— आचार्य लक्ष्मीधर ने तन्त्रों को हेय माना है और उन्हें **अवैदिक** कहा है। वे इन्हें **ऐहिक सिद्धि** मात्र के साधन मात्र मानते हैं। **भास्कर राय** आदि तन्त्राचार्य इसके विपरीत मत वाले हैं।

(२) भास्कर राय की दृष्टि— भास्कर आदि विद्वानों ने इस मत के विरुद्ध इन्हें ज्ञान का साधन स्वीकार किया है—

"एवमेतानि शास्त्राणि तथान्यान्यपि कोटिशः।
भवतोक्तानि मे देव सर्वज्ञानमयानि च।"

'वामकेश्वर तन्त्र' — इस श्लोक की व्याख्या में भास्कर राय कहते हैं कि— (१) महामाया से लेकर विशुद्धेश्वर तक के सभी ६४ तन्त्रग्रंथ **वेदस्वरूप** हैं। ये उपनिषदों के शेष भाग हैं। तन्त्र वेदवत भगवान की आज्ञायें हैं।

---

१. तन्त्रालोक (प्र. आ.)।

(२) परशुराम ने भी 'कल्पसूत्र' में पञ्चाम्नायों को परमार्थस्वरूप स्वीकार किया है।

(३) 'सौन्दर्यलहरी' की व्याख्या में किसी के द्वारा इन्हें अवैदिक कहा जाना प्रलाप मात्र है—

'एतानि महामाया.....चतुःषष्टि तन्त्राणि शास्त्राणि **वेदरूपाणि**।'

'यत्सौन्दर्यलहरी व्याख्याने केनचित्प्रलपितमिमानि तन्त्राण्यवैदिकानी-त्यादि॥''

शास्ता और शिष्य के सम्बन्ध का आदर्श

तन्त्र में गुरु एवं शिष्य की एकता का प्रतिपादन

गुरु एवं शिष्य की एकता ही दोनों के सम्बन्धों का आदर्श है। इसीलिए **'परात्रिंशिका विवरण'** में कहा गया है—

''गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
पूवोत्तरपदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्॥''

कुण्डलिनी-साधना और तन्त्र मत

शक्ति की उपासना तो जैन-बौद्ध-शैव-शाक्त-वैष्णव आदि सभी तन्त्रमार्गों में स्वीकृत है। उसी प्रकार **कुण्डलिनी शक्ति की साधना भी स्वीकृत** है। आचार्य **शङ्कर** ने भी कुण्डलिनी साधना को महत्त्व प्रदान किया था। वे **'सौन्दर्यलहरी'** में कहते हैं—

'सुधाधारासारैश्चरणा युगलान्तर्विगलितैः,
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं,
स्वामात्मानं कृत्वा **स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि**॥१०॥'[१]

'वामकेश्वर तन्त्र' में कुण्डलिनी का परिचय देते हुए कहा गया है कि—

'भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽऽशुभा॥
मूलकन्दं कणाग्रेण दष्ट्वा कमल कन्दवत्।
मुखेन पृच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता॥
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः॥

---

१. सौ. ल.।

वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघाततपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्॥
रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्यतः।
ब्रह्मग्रन्थिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृति कारणम्॥
'आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा
तत्र कुण्डलिनी शक्तिः वर्तत इति तात्पर्यम्॥' (लक्ष्मीधरा)

भगवती त्रिपुराभी 'सहस्त्रवार' में परमशिव के पास जाकर विहार करती हैं—

'मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे॥'[१]

और **भगवती कुण्डलिनी भी सहस्त्रार में पहुँचने के अनन्तर** सारे प्रपञ्च को अमृत से नहलाकर 'मूलाधार चक्र' के **कुलकुण्ड में आकर सो जाती हैं**—

'स्वामात्मानं कृत्वा **स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि**॥'[२]

कुण्डलिनी-जागरण की प्रकिया

देवी कुण्डलिनी हुङ्कारपूर्वक जाग्रत होती है और षट्चक्र एवं ग्रन्थित्रय का भेदन करती हुई सहास्त्रार में अपने प्रियतम शिव के पास पहुँचकर विहार करती है—

''हूङ्कारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशीलः सुशीलो,
ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम्।
ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धबुद्धिस्वभावो,
भित्वा तल्लिंगरूपं पवनदहनयोरा क्रमेणैव गुप्तम्॥५०॥''

''**भित्वालिङ्गत्रयं** तत् परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे
सा देवी शुद्धसत्वा तडिदिव विलसतन्तुरूपस्वरूपा।
ब्रह्माख्यायाः शिराया सकलसरसिजं प्राप्य देदीप्यते तन्
मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मताल लक्षणेन॥''

''**नीत्वा तां कुलकुण्डलीं** लयवशाज्जीवेन सार्द्धसुधी-
मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि।

---

१. सौ. ल.।
२. सौ. ल.।

ध्यायेदिष्टफलप्रदां **भगवतीं चैतन्यरूपां परां,**
योगीन्द्रो गुरुपादपद्मयुगलाम्वी समाधौ यतः ॥''

''**लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली**
नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी।
तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं
योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम् ॥''[१]

गुरु की अमर्त्यता और अभौतिकता

'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है कि गुरु अभौतिक है। गुरु मनुष्य होते हुए भी मनुष्य नहीं हैं। जो **'गुरु'** को मनुष्य मानता है, **'मन्त्र'** को वर्णसमष्टि मानता है तथा **'मूर्ति'** को पत्थर का टुकड़ा मानता है वह नरक में जाता है—

'गुरौ मनुष्यबुद्धिश्च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धि कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥'

'गुरुं न मर्त्यं बुध्येत् यदि बुध्येत् तस्य....तु।
न कदाचित् भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्वा देवतार्चनैः ॥'

'श्री गुरुं प्राकृतैः सार्द्धं ये स्मरन्ति वदन्ति वा।
तेषां हि सुकृतं सर्वं पातकं भवति प्रिये ॥'

देवता और उसके आसन (यन्त्र) का स्वरूप

'कुलार्णव तन्त्र' में कहा गया है कि—

''यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं देवतामन्त्ररूपिणी।
मन्त्रवत् पूजिता देवि ! सहसैव प्रसीदति ॥''[२]

'जीवन्मुक्तिवाद'— वैसे तो 'सार्ष्टि', 'सामीप्य', 'सालोक्य', 'सायुज्य', 'विदेहमुक्ति' आदि मुक्तियों के अनेक स्वरूप हैं किन्तु 'प्रत्यभिज्ञा', 'स्पन्द' एवं 'कुलार्णव' तन्त्र आदि मुख्यतः **'जीवन्मुक्ति'** को मुक्ति का यथार्थ स्वरूप स्वीकार करते हैं—

''चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्य प्रतपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः ॥'' — 'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्' में क्षेमराज ने **जीवन्मुक्ति** को ही मुक्ति की दृष्टि से स्वीकार किया है।

स्पन्दशास्त्र भी इसीका समर्थक रहा है। 'स्पन्दकारिका' में कहा गया है—

---

१. षट्चक्रनिरूपणम् (पूर्णानन्द यति) (५०-५३)।
२. कुलार्णव तन्त्र।

"इति वा यस्य संवित्तिः **क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।**
स पश्यन् सततं युक्तो **जीवन्मुक्तो** न संशयः॥"

'यह जगत् 'महाशक्ति' की क्रीड़ा है'— जिसे इसका ज्ञान है वह '**जीवन्मुक्त**' है।

अन्तर्याग एवं बहिर्याग— साधक को चाहिए पहले अन्तर्याग करे और उसके बाद ही बहिर्याग करे। '**कौलावली निर्णय**' में यही विधान है।

अन्तर्याग— साधक हृदय में **सुधासागर** का ध्यान करते हुए उसके मध्य में **स्वर्णबालुका** से निर्मित **रत्नद्वीप** की कल्पना करे। उसके चतुर्दिक **पारिजात वृक्षों** की कल्पना करे। उसके मध्य ५० अक्षरों से युक्त **कल्पवृक्ष** एवं उसके मूल में शतयोजन विस्तीर्ण ब्रह्माण्डमण्डलव्याप्त **स्वर्णमयी प्राचीर** से युक्त **चतुर्द्वारात्मक** एवं विभिन्न जटित एवं सूर्योपम मनोज्ञ **तेजोमन्दिर** की कल्पना करे फिर कल्पना करे कि मन्दिर में अनेक **चामर, घण्टा, वितान,** धूप की गन्ध एवं शीतल मन्द सुगंध वायु दिखायी पड़ रही है और मध्य में **रत्नवेदिका** है और उसके ऊपर स्वर्ण के तारों से निर्मित **छत्र** बना हुआ है और वेदिका पर पीयूषपूरित **महायन्त्र** स्थापित है। इसके अन्तर '**षोडशदल**' पद्म के एक-एक दल पर दक्षिणावर्त क्रम से **पाद्य** के ३ पात्र, **अर्घ्य** के ३ पात्र, **आचमन** के ६ पात्र, **मधुपर्क** के ३ पात्र, एक भोग के एक पात्र की (मानसिक रूप से) स्थापना करनी चाहिये। पात्रों को सहस्रार के अमृत से पूर्ण करे। स्वकल्पोक्त विधि से पूजा करे और फिर सबके ऊपर पश्चिमाभिमुख कमल का ध्यान करे।

फिर इस पद्म के भीतर (यन्त्रराज के बिन्दुओं) शिवशक्ति संयोग से स्रवित अमृतानन्द में आह्लादित परिवार के साथ अपने देवता का आवाहन करके मानसोपचारों से उसे उत्तम द्रव्य अर्पित करे।

पहले **आसन,** फिर **स्वागत,** फिर कुशल क्षेम पूछकर, चरणों में **पाद्य,** शिर पर **अर्घ्य** एवं 'सहस्रदल' से आलम्बित नालनालिका से च्युत परमामृतरूप जल को **स्वर्णपात्र** में लेकर **भावपुष्पों** से युक्त करके मुख में आचमन दे। फिर मुख में **मधुपर्क** देकर आचमन कराये। फिर २४ तत्वमय गन्ध अर्पित करे और स्वयंभू कुसुम, कुंकुम एवं रक्तचन्दन अर्पित करे। फिर धूप दीप को पुष्पों से पूजित करके उन्हें समर्पित करे। फिर महादेवी को मनःकल्पित अनेकविध **नैवेद्य समर्पित** करके **तीन बार तर्पण** करे। फिर षडङ्गदेवों, गुरुपंक्तियों एवं अङ्ग देवों का पूजन करके इष्ट देवता को स्नान कराये। फिर रत्नसिंहासन पर देवी को समासीन करे और यथा साथ ५, १६ या ३६ उपचारों से देवी का पूजन करे। फिर १५ भाव पुष्पों से देवी की पूजा करे।[१]

---

१. कौलावली निर्णय।

'सहस्रार' की कर्णिका के पात्र में **अमृतरूप तैल,** 'मूलाधार' में वर्णित चिदग्निमय दीप, '**मूलाधारचक्र**' से '**ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त**' सुषुम्नाहत वायु से सञ्जात अनाहत ध्वनिरूप **घण्टावादन,** षट्रसमय **नैवेद्य,** अम्बररूप **चामर,** सूर्यरूप **दर्पण,** चन्द्रमण्डलरूप **छत्र,** सुधासागर, भक्ष्य-भोज्य-चोष्य-लेह्य-पेय एवं चर्वण वाले पदार्थ प्रदान करके अर्घ्य जल से आचमन कराकर मूलाधारोत्थ वायु से बाह्यचक्र प्रदान करे। इसी प्रकार अनेकविध पूजा करके **कामेश्वर सहित कामेश्वरी देवी** के साथ अपने एकीभाव की भावना करे। इस पूजा विधान में देवी को मन '**सहस्र रक्तदल पद्म**' अर्पित करने पर साधक सैकड़ों करोड़ कल्प देवीपुर में रहकर पृथ्वी पर राजा होता है।[१]

अन्य विधि भी है। इसके अनुसार विषयपुष्पों से पूजन करे और तत्क्षण तन्मय हो जाय। तन्मयता ही न्यास है। भाव ही पुष्प हैं। शिवशक्तिरूपी सूत्र में कुण्डलिनी ग्रन्थित है और यह माला ५० मणियों से निर्मित है। **प्रत्येक ५ वर्ण पर अपने इष्टमन्त्र का लोमविलोम विधि से जप करना चाहिये।**[२]

'नाद' 'बिन्दु' और 'कला'

लक्ष्मण देशिकेन्द्र ने कहा है कि— आदि में '**सच्चिदानन्द**' ब्रह्म थे। **सकल परमेश्वर** से '**शक्ति**' का, '**शक्ति**' से '**नाद**' एवं '**नाद**' से '**बिन्दु**' का आविर्भाव हुआ— 'सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् परमेश्वरात्।'

आसीच्छक्तिस्ततो **नाद**ः नादाद्बिन्दु समुद्भवः।

सृष्टि '**निष्कल ब्रह्म**' से नहीं '**सकल ब्रह्म**' से होती है। सकल ब्रह्म से पूर्व की अवस्था '**तत्त्वातीतावस्था**' '**निष्कल अवस्था**' '**परासंवित्**' '**निष्कल ब्रह्म**' एवं '**परावाक्**' है। **निष्कल ब्रह्म** अनिर्वचनीय एवं तत्त्वातीतावस्था है। इस अवस्था में ब्रह्म में उसकी शक्ति विलीन रहती है। यहाँ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' एवं 'तत्' के सिवा कोई नहीं रहता। 'निष्कल ब्रह्म' स्वयं का **ईक्षण** करता है। इसी 'ईक्षण' से उसमें 'अस्मि' का विमर्श भी हो जाता है। इसी '**अहं के प्रकाश**' को '**शिवतत्त्व**', एवं '**विमर्शतत्त्व**' को '**शक्तितत्त्व**' कहते हैं। '**प्रकाश**' एवं '**विमर्श**' (ईक्षणोत्पन्न होने के कारण) 'शक्ति' के प्रसार हैं। ब्रह्म में 'ईक्षण' के साथ ही जो '**अहम्**'-**प्रकाश** एवं '**अस्मि**'-**विमर्श** को '**शक्तितत्त्व**' कहते हैं। '**प्रकाश**' एवं '**विमर्श**' (ईक्षणोत्पन्न होने के कारण) 'शक्ति' के प्रसार हैं। ब्रह्म में 'ईक्षण' के साथ ही जो '**अहम्**'-प्रकाश एवं '**अस्मि**'-**विमर्श** होता है उसमें 'अहम्' निष्क्रिय है और '**शिव**' है तथा '**अस्मि**' है।

---

१. कौलावली निर्णय।

२. कौलावली निर्णय।

'अहम्' और 'इदम्' ही विषयी एवं विषयरूप 'युष्मद्' एवं 'अस्मद्' तत्त्व हैं।

'नाद' और 'बिन्दु'— ईक्षणोपरान्त निष्क्रियावस्था से क्रियावस्था में आने हेतु **'शिवशक्तिसंयोग'** होता है। इस **शिव-शक्ति संयोग** को ही **'नाद'** कहते हैं।

इसे इस प्रकार कहा गया है कि यह सृष्टि का **'प्रथम स्पन्द'** है—

'यदयमनुत्तरमूर्तिनिजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
प्रस्पन्दे से **स्पन्दः प्रथमः** शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः॥'[१]

यही 'शिवतत्त्व' है। **शिव के भीतर नित्य स्थित शुद्ध इच्छारूपी शक्ति** अपने भीतर लीन जगत का **'बीज'** है : 'इच्छा सैव स्वेच्छा....सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य॥'' यह संयुक्त नाद 'सदाख्य तत्त्व' है। जब ईक्षण में 'अहं' का प्रकाश होता है उस अवस्था में **शिव निष्क्रिय** एवं **'शक्ति' सक्रिय** रहती है। दोनों के संयोग 'नाद' को **'महाकाल'** एवं **'महाकाली'** की विपरीत रति भी कहते हैं।

'हं'स: नामक जो ध्वनि प्रत्येक क्षण श्वास-क्रिया द्वारा प्रवाहित होती रहती है उसमें 'हं' **'अहं'** का एवं 'स:' **'इदम्'** का पर्याय है। इस प्रवाह को उलट देने पर यह **'सोऽहं'** बन जाता है। यही **'अजपा जप'** मन्त्र है। इसके द्वारा प्रापञ्चिक संसरण की सहज क्रिया एवं **बन्धनोन्मुख प्रवाह** को विपरीत दिशा में ले जाकर **'सोऽहं'** के रूप में रूपान्तरित करके **मोक्षोन्मुख बनाया जाता है।** इस क्रिया में द्रष्टा-दृश्य, अहम्-इदम् एवं शिवशक्ति का एकीकरण किया जाता है। इसके द्वारा **'नाद'** का उन्मेष भी होता है।

'निष्कल ब्रह्म' और 'उन्मना' अभिन्न हैं। जब निष्कल ब्रह्म निश्चल अवस्था में होता है तब उस अवस्था में जो शक्ति उससे अभिन्न रहती है उसे **'उन्मना'** कहते हैं। जब **'उन्मना शक्ति'** शून्य से लेकर पृथिवीपर्यन्त दृश्य जगत् का सृजन करती है तब उस शक्ति को **'समना शक्ति'** कहते हैं।

'उन्मना' और 'समना' शक्ति की सन्धि या शिवशक्ति की संयुक्तावस्था ही **'नाद'** है।

'बिन्दु' नाद से उत्पन्न कहा गया है— 'नादाद्बिन्दु समुद्भवः॥' 'बिन्दु' शक्ति की विशिष्ट अवस्था है जहाँ से **सृष्टि-प्रवाह का प्रारम्भ** होता है। 'बिन्दु तत्त्व' को **'ईश्वर तत्त्व'** भी कहा गया है।

ईश्वर (बिन्दु) तत्त्व में 'अहं' (चित् तत्त्व) 'इदम्' (विश्व) को ध्यामल प्राय

---

१. तत्त्वसन्दोह (१) (२)।

एवं उन्मीलित मात्र रूप में देखता है। नाद में जो क्रियाशक्ति उद्बुद्ध होती है उसका निमेष बिन्दु में अहं है और 'इदम्' **उन्मेष** है।

'अहं' एवं 'इदम्'

'एकोऽहं'	'एकोऽहं बहुस्याम्'
'अहं' महाप्रलय की अन्तिमावस्था है जो कि सृष्टिरचना के पूर्व होती है। } 'अहमस्मि' ईश्वर में स्थित –'इदमहम्' 'इदं' (विश्व) (ऐन्द्रियव्यापार ईश्वर में न होने के कारण) अन्तःकरण मात्र में होता है। 'इदमहम्'	'इदम्' महाप्रलय के पश्चात् सृष्टिरचना की सर्वप्रथम अवस्था है। **'सकल'** में स्थित 'इदम्' स्थूल होता है।

'नाद' एवं **'बिन्दु'** शक्ति की विभिन्न अवस्थायें हैं। इनमें क्रिया शक्ति को बीज अङ्कुरित होता है और सृष्टि-रचना का क्षेत्र तैयार करता है।

'बिन्दु' क्या है **'बिन्दु'** शक्ति की उच्छूनावस्था या घनीभूतावस्था है। जिस प्रकार दूध **दही के रूप में घनीभूत** होता है उसी प्रकार **'शक्ति'** भी सृष्टि-रचना की इच्छा से घनीभूत होती है।

शक्ति की त्रिगुणमयी अवस्था सकलब्रह्म में—

(क) चिद्रूपेण **ज्ञान (सत्त्व) प्रधाना**।

(ख) **नादतत्त्व** में क्रियारूप से **रजःप्रधाना** एवं

(ग) **बिन्दुतत्त्व** में घनीभूत होने के कारण **तमःप्रधाना** हो जाती है।

सृष्टि विकास में मूल तत्त्व **'शक्ति'** ही है। 'शक्ति'—

(१) एक ओर **'चित् शक्ति'** और (२) दूसरी ओर **'माया शक्ति'** के रूप में कार्य करती है।

(क) चैतन्यरूप तो वही **'शक्ति'— 'विश्वोत्तीर्ण'** बन जाती है।

(ख) मायिक रूप में वही **'शक्ति'— 'विश्वरूपिणी'** बन जाती है।

माया का स्वरूप भेद प्रथा है—

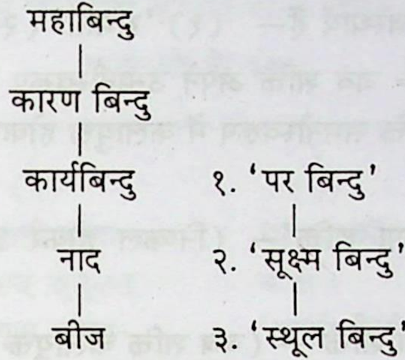
'भेदधीरेव भावेषु कर्त्तुर्बोधात्मनोऽपि या।
मायाशक्त्येव सा विद्येत्यन्ये विद्येश्वरा यदा॥'[१]

स्वयं बोध रूप होते हुए भी जो कर्ता के भावों में भेद बुद्धि का सञ्चार करती है वही **'माया शक्ति'** है। इसे ही **'विद्या'** भी कहा गया है।

---

१. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा (३/२/६)।

'**बिन्दु**' '**परबिन्दु**' के स्वरूप की दृष्टि से तीन रूपों में विभक्त होता है[१]—



(१) 'कारण बिन्दु' तत्त्व में ईश्वर के साथ '**शक्ति**' **समष्टिकारण शरीर** के रूप में आभासित होती है। '**सूक्ष्मबिन्दु**' हिरण्यगर्भ है। 'विराट'

(२) '**कार्य (पर) बिन्दु**' में 'हिरण्यगर्भ' के साथ समष्टि '**सूक्ष्म शरीर**' के रूप में अर्थतः आभासित होती है।

(३) '**स्थूल बिन्दु**' में 'विराट्' के साथ शक्ति समष्टि स्थूल शरीर के रूप में आभासित होती है।

ब्रह्म की दो अवस्थाएँ हैं — (१) 'निष्कलावस्था' (२) 'सकलावस्था' 'निष्कल'=कलातीत। तत्त्वातीत। '**सकल**'=कलायुक्त।

'कला' क्या है?[२] चिद्रूपिणी '**शक्ति**' **जब ब्रह्म में लीन** होकर **ब्रह्ममयी हो जाती है** तब ब्रह्म की आख्या 'निष्कल' (तत्त्वातीत) होती है और जब ब्रह्ममयी शक्ति चैतन्यरूपिणी होती है तब ब्रह्म को '**सकल**' कहते हैं।

---

१. अस्माच्च कारणबिन्दोः साक्षात् क्रमेण कार्यबिन्दुस्ततो नादस्ततो बीजमिति त्रयमुत्पन्नं तदिदं परसूक्ष्मस्थूलपदैरपि उच्यते॥' —भास्कर राय (ललिता. भाष्य)

२. **'कला' क्या है?**
शक्ति प्रधान रूप से १६ कलाओं (शक्त्यंशों) में विभक्त है। जहाँ वह पूर्णकलारूपा है वहाँ वह १६ कलाओं से पूर्ण रहती है। शक्ति १/१६ अंश= '**कलामूर्ति**' है। '**कलामूर्ति**' के अंश '**अंशमूर्ति**' कहलाते हैं। अंशमूर्ति के अंश '**अंशांशमूर्ति**' कहलाते हैं। शिव '**निष्कल**' (कला या अंश से हीन) है। '**शक्ति**' कला (अंश) से युक्त है। '**कला**' शक्ति की एक लीला है। '**कला**' कञ्चुक का एक अंश बनती है। '**कञ्चुक**'= आच्छादनी शक्ति। यह पूर्णत्व का भेद कर 'अस्मि' से अच्छादित '**अहं**' के स्वरूप में प्रत्यक्षीकृत होती है। 'कञ्चुक' का अर्थ है कोष या सङ्कोच 'सृष्टि' है क्या? यह है अनन्तशक्ति का सङ्कुचित रूप।

कञ्चुक षट्क

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
'माया'	'कला'	'नियति'	'राग'	'विद्या'	'कला'

'शक्ति' की अवस्थायें कौन-कौन सी हैं?

शक्ति की दो अवस्थायें हैं— (१) **'समती'** (२) **'उन्मनी'**।

'उन्मनी शक्ति'= जब शक्ति अपने उन्मनीस्वरूप में ब्रह्म में लीन रहती है। **'समनी शक्ति'**= जब शक्ति समनीस्वरूप में कलायुक्त होकर सकल ब्रह्ममयी हो जाती है।

(१) 'उन्मनीरूपा शक्ति'— (निष्कल होकर ब्रह्म में लीन रहती है।) 'कलाहीन शक्ति'।

(२) 'समनीरूपा शक्ति'— (जब शक्ति कलायुक्त होकर सकल ब्रह्म से युक्त होती है तब उसे समनी शक्ति कहते हैं। 'कलायुक्त शक्ति'।

यास्य स्वतन्त्रताख्या शक्तिः सङ्कोचशालिनी सैव।
कृत्याकृत्येष्ववशं नियतममुं नियमन्त्यभून्नियतिः॥ (नियति तत्त्व)[१]
(तत्त्वसन्दोह, ५/१२)

नित्यपरिपूर्णतृप्तिः शक्तिः तस्यैव परिमिता नु सती।
भोगेषु रञ्जयन्ती सततममुं **रागतत्त्व**माख्याता॥ (राग तत्त्व)

सर्वज्ञतास्य शक्तिः परिमिततनुरल्पवेद्यमात्रपरा।
ज्ञानमुत्पादयन्ती **विद्येति** निगद्यते बुधैराद्यैः॥ (विद्या तत्त्व)

'कालतत्त्व' क्या है ? शिव की वह नित्यता शक्ति जो उतरकर प्रलय और 'सृष्टि' को अभिव्यक्त करती हुई परिच्छेद क्रिया का निष्पादन करती है 'कालतत्त्व' है—

'सा नित्यतास्य शक्तिर्निकृष्य निधनोदयप्रदानेन।
नियत परिच्छेदकरी क्लृप्ता स्यात् कालतत्त्वरूपेण॥' (तत्त्वसन्दोह (५/११)

१. इसकी स्वतन्त्रता शक्ति जो सङ्कोचशालिनी भी है तथा इस अवश (आत्मा) को कृत्याकृत्य में नियमपूर्वक नियमन करती है उसे **'नियति'** कहते हैं।

इसकी नित्य परिपूर्ण तृप्ति शक्ति परिमित होते हुए जब आत्मा को भोग में अनुरक्त करती है तब **'राग'** कहलाती है।

इसकी सर्वज्ञता शक्ति परिमित होकर अल्प ज्ञान रखती हुई ज्ञानोन्मेष करती है उसे **'विद्या'** कहते हैं।

इसकी सर्वकर्तृता शक्ति सङ्कुचित होकर कतिपय अर्थों से युक्त होकर इस आत्मा को किञ्चित् कर्ता बनाते हुए **'कला'** कहलाती है।

'कला' के दो प्रकार हैं— (१) अन्तः (२) बाह्या।

'बाह्य कला' के १६ भेद हैं। उनमें ४ निम्नांकित हैं—

(१) **'निवृत्ति'**, (२) **'प्रतिष्ठा'**, (३) **'विद्या'**, (४) **'शान्ति'**।

शेष १२ कलायें कौन हैं? अस्पष्ट हैं।

'नेत्र तन्त्र' में कलाओं का वर्गीकरण।

सर्वकर्तृता शक्तिः सङ्कुचिता कतिपद्यार्थ मात्रपरा।
किञ्चित्कर्तारममुं कलयन्ती कीर्त्यते कला नाम॥ (कला तत्त्व)

कलाओं के भेद

(१)	(२)	(३)	(४)
समनी कला ७	**अञ्जनी कला ५**	**महानादकी**	**नाद की कलायें ४**
सर्वज्ञा, सर्वगा, दुर्गा,	सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा,	कला =	(१) इन्धिका
सवर्णा, स्पृहणा,	अमृता, अमृत-	'ऊर्ध्वगामिनी'।	(२) दीपिका
धृति एवं समना।	संभवा एवं व्यापिनी।		(३) रोचिका एवं
			(४) मोचिका

सब मिलाकर १७ कलायें हो जाती हैं।

(१) ज्ञानस्वरूपा होने के कारण कला '**इन्धिका**' कहलाती हैं।

(२) वही कला निरोधरूपा होने के कारण वह '**रोधिनी**' कहलाती है।

(३) नाद (शब्द ब्रह्म) रूप ॐकार के 'अ' 'उ' 'म' की कलाएँ इस प्रकार हैं— 'सिद्धि', 'ऋद्धि', 'द्युति', 'लक्ष्मी', 'मेधा', 'कान्ति', 'धृति' और 'सुधा'— ये '**अकार**' (ब्रह्मा) की कलाएँ हैं।

(४) 'रजा', 'रक्षा', 'रति', 'पाल्या', 'काम्या', 'बुद्धि', 'माया', 'नाडी', 'भ्रामिणी', 'मोहिनी', 'तृष्णा', 'क्षुधा', 'निद्रा', 'मृत्यु', 'माया', 'भया', 'जडा' ये 'उकार' (विष्णु) की कलाएँ हैं।

'तमोमोहा', 'क्षुधा', 'निद्रा', 'मृत्यु', 'माया', 'भया', 'जडा'— ये 'मकार' (रुद्र) की कलाएँ हैं। इस प्रकार **अंशअशांशरूप से असंख्य कलाएँ हैं।**

शक्ति की 'षोडशी कला' की आख्या है '**अमा कला**'। '**अमाकला**' क्या है? 'अमाकला' सबकी योनिरूपा एवं पाश (बन्धन) है।

सप्तदशी कला क्या है? यह '**निर्वाण कला**' है।

इस कला द्वारा पाश से मुक्ति हो जाती है। पुरुष भी षोडश कला से युक्त होने पर '**अमृता कला**' नाम से अभिहित किया जाता है।

१६ (षोडश) कलायें— ५ ज्ञानेन्द्रियाँ। ५ कर्मेन्द्रियाँ।

५ तन्मात्रायें। १६हवाँ मन॥[१]

---

१. **'षोडशकला पुरुषः'** : प्राण, श्रद्धा, व्योम, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम (पिप्पलाद : प्रश्न. उप.)।

नाद आदि तत्त्वों की अन्त:शक्ति के रूप में **'कला' नाद तत्त्वों को चार अण्डों में विभाजित** करती है। वे हैं— (१) 'ब्रह्माण्ड' (२) 'मूलाण्ड' (३) 'मायाण्ड' (४) 'शक्त्यण्ड'।

(१) जिस प्रकार 'ब्रह्माण्ड' (पृथिवी, आकाशादिक तत्त्वों से युक्त) आकाश द्वारा आच्छादित होता है उसी प्रकार शेष तीन अण्ड क्रमशः (१) **प्रकृति** (२) **माया** एवं (३) **शक्ति** द्वारा आच्छादित होते हैं।

(२) '**शक्त्यण्ड**' में 'शान्ताकला' व्याप्त रहती है। इसकी सीमा 'शक्तितत्त्व' से लेकर 'सिद्धिद्या' तक होती हैं।

इसमें '**समनी**' '**व्यापिनी**' '**अञ्जनी**' तथा उनकी कलाएँ एवं '**नाद**' तथा '**बिन्दु**' की शक्तियाँ और उसकी कलाएँ समाविष्ट रहती हैं। '**शक्त्यण्ड**' के देवता '**मन्त्रमहेश्वर**' '**मन्त्रेश्वर**' '**मन्त्र**' एवं '**विद्येश्वर**' कहे गये हैं।

'शुद्ध विद्या' और 'माया तत्त्व' के बीच विज्ञान कला व्याप्त है, जो बिन्दु-विकास के द्वारा विश्व की रचना करती है।

इसके आगे '**मायाण्ड**' है और इसमें 'विद्याकला' व्याप्त है। पृथ्वी से लेकर 'मायाण्ड' तक के देवता हैं— (१) 'ब्रह्मा' (२) 'विष्णु' एवं (३) रुद्र।

'**प्रकृत्यण्ड**' (मूलाण्ड) और 'ब्रह्माण्ड' में ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त सृष्टि अवस्थित होती है।

इन कलाओं के अधिष्ठाता देवताओं की उपासना करके उनकी सहायता से नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं और उन्नति करते-करते '**शक्तितत्त्व**' या '**ब्रह्मतत्त्व**' में लीन हो जाते हैं।

******

विषयानुक्रमणिका

अध्याय—३ : माया तत्त्व

अध्याय—४ : आत्म तत्त्व

अध्याय—५ : चैतन्य और तद्विषयक विभिन्न दृष्टियाँ

द्वितीय खण्ड : (आचार-मीमांसा)

अध्याय—८ : पूजा और उसका स्वरूप

अध्याय—९ : बन्धन और मोक्ष

अध्याय—१३ : 'कला', 'नाद' और 'बिन्दु'

चतुर्थ-खण्ड

प्रमुख तान्त्रिक दृष्टियाँ

व्याकरणागम का अद्वैतवाद

(२) व्याकरणागम और '**शब्दब्रह्माद्वयवाद**'— ७०३; व्याकरणागम के सिद्धान्त— शब्दब्रह्म की जगन्मलकता, पश्यन्तीवाक् का शब्दब्रह्मत्व— चैतन्य शक्ति का शब्दत्व, व्याकरणशास्त्र-ब्रह्मप्राप्ति के साधन के रूप में— ७०४।

(३) स्फोटवाद— ७०४, 'शब्द'— नित्य एवं चेतन है— शब्दब्रह्म है— जगद्योनि है।

(४) 'विश्व' शब्द का 'विवर्त' या 'परिणाम' है—

(५) '**शब्दसृष्टिवाद**'— 'शब्दब्रह्म' परावाक् या कि पश्यन्ती वाक्? नागेभट्ट-समोनानन्द-भर्तृहरि एवं शङ्कराचार्य की दृष्टि—७०५, ॐकार— ७०६।

******

प्रथम-खण्ड

तत्त्व-मीमांसा

[सिद्धान्त पक्ष]

******

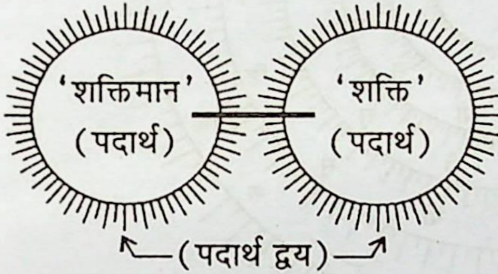


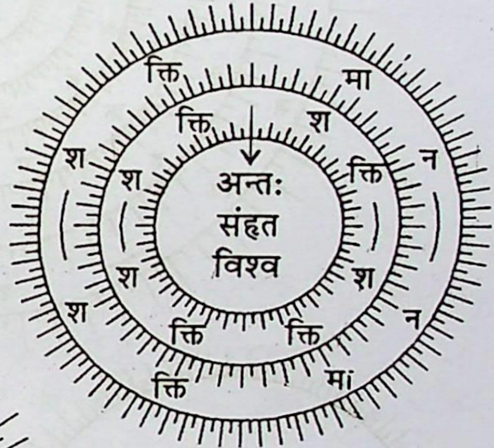
अध्याय-१

'शिव' और 'शक्ति'

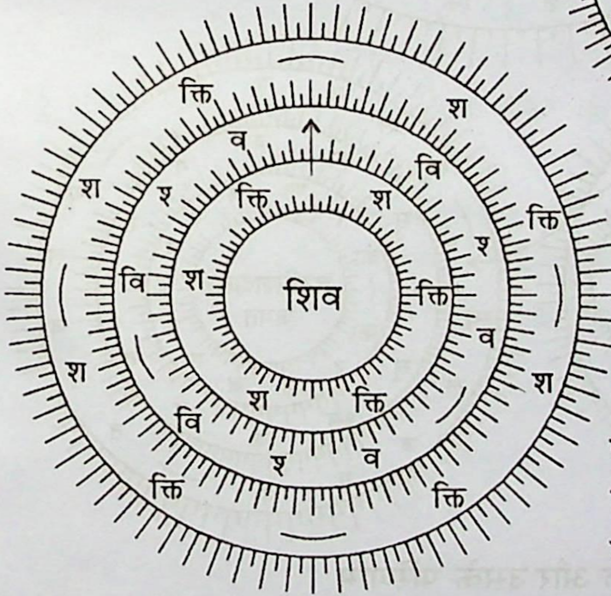
निखिल विश्व में केवल दो ही पदार्थ हैं— (१) **'शिव'** और (२) **'शक्ति'**।

'शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते ॥'





(प्रलय-विश्रान्त विश्व)
(शिव-संलीन शक्ति)
(विश्वकवलीकृता शक्ति)

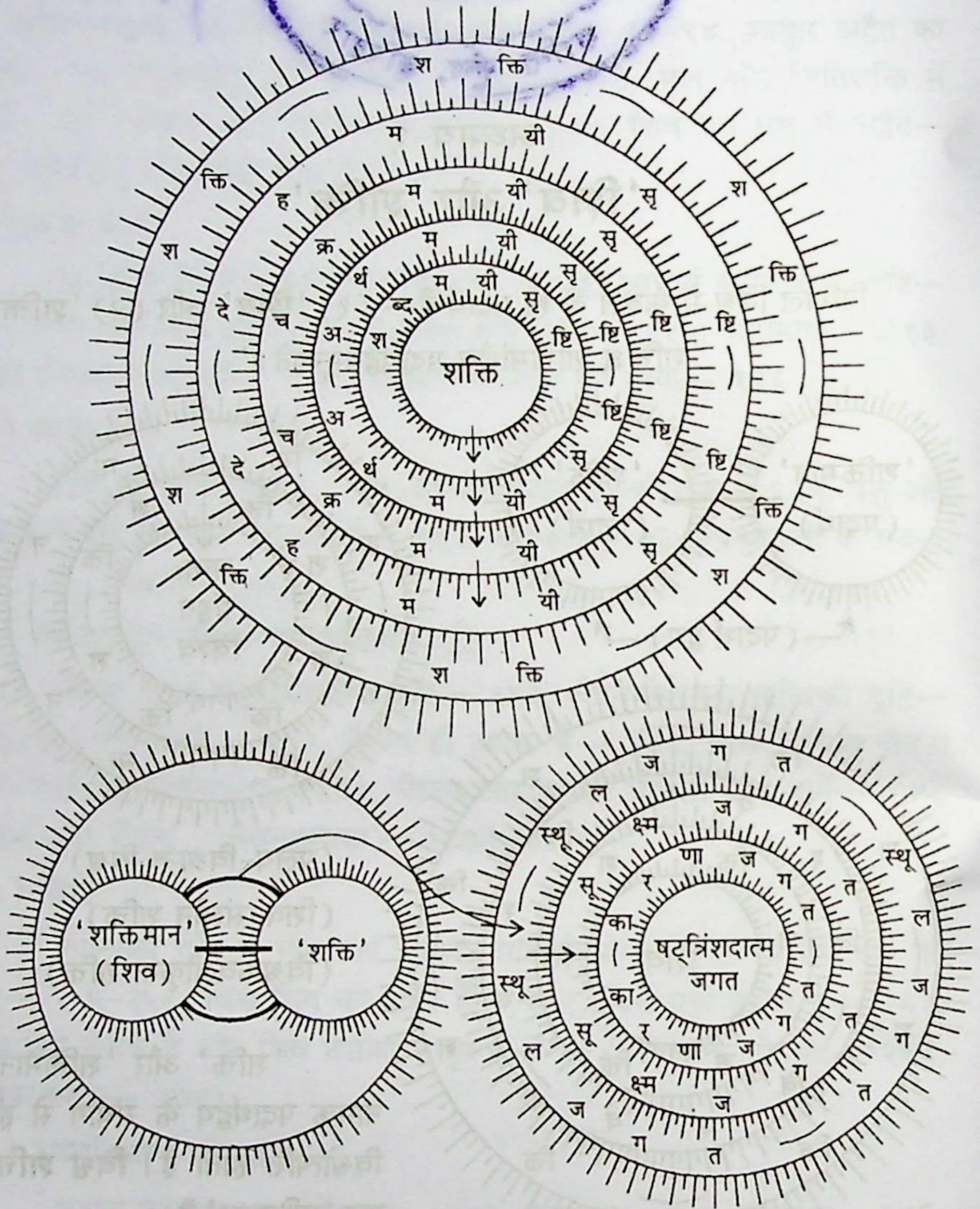


(सृष्ट्युन्मुख विश्व)

'शक्ति' और 'शक्तिमान' नामक पदार्थद्वय के संयोग से ही विश्वोत्पत्ति होती है। **विश्व शक्ति** का **'परिणाम'** है।

सृष्टि या जगत चतुर्विधा विभक्त है—

१	२	३	४
शब्द-मयी	अर्थ-मयी	चक्र-मयी	देह-मयी
सृष्टि	सृष्टि	सृष्टि	सृष्टि



शक्ति और उसके परिणाम

(१) शक्ति का स्वरूप

''नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते **'शक्तिः'**।

तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति॥'' (वीरवस्यारहस्यम्)

शक्ति के परिणाम

''सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।

'अर्थमयी' 'शब्दमयी' 'चक्रमयी' 'देहमय्यपि' च सृष्टिः॥''(वीरवस्या रहस्यम्)

सृष्टि-प्राक्-अवस्था और परमशिव

तान्त्रिक दर्शन में सृष्टि-विकास का मूल '**सकल ब्रह्म**' को माना जाता है। सकल ब्रह्म से पूर्व की स्थिति '**तत्त्वातीत अवस्था**' है, इसे '**परासंवित्**' '**निष्कलब्रह्म**' '**परावाक्**' या '**सच्चिदानन्द ब्रह्म**' कहा जाता है। यह '**अनिर्वचनीय तत्त्वातीत अवस्था**' है। यह अवस्था निर्वचनातीत है। इस सृष्टि-प्राक्-अवस्था में शक्ति ब्रह्म में लीन रहती है। इस स्थिति में निष्कल ब्रह्म अपने को देखता रहता है यह देखना ही '**ईक्षण**' है। ब्रह्म में '**ईक्षण**' के साथ जो 'अहं' (प्रकाश) तथा 'अस्मि' (विमर्श) होता है उसमें 'अहं' निष्क्रिय होने के कारण शिवरूप हैं तथा 'अस्मि' के भीतर संस्कारों की समष्टि होने के कारण वह 'इदम्' शक्तिरूप है। यहाँ 'शक्ति' निषेध व्यापाररूपा है।

निष्कल ब्रह्म अपने आपको स्वभावतः देखता है, इस देखने में 'अहं' का प्रकाश होता है और उसके साथ 'अस्मि' का विमर्श भी स्वतः हो जाता है। इस 'प्रकाश' को '**शिवतत्त्व**' एवं विमर्श को '**शक्तितत्त्व**' कहते हैं। 'ईक्षण' से आविर्भूत होने के कारण '**प्रकाश**' एवं '**विमर्श**' दोनों ही '**शक्ति**' के प्रसार ही हैं। 'शक्ति' का यह स्वरूप निषेधव्यापारात्मक होता है; क्योंकि इस अवस्था में निष्कल ब्रह्म '**सकलब्रह्म**' बन जाता है। 'शक्ति' एवं 'शिव' की इस संश्लिष्टावस्था को ही सृष्टि-रचना का मूल मानना चाहिये।

काश्मीर शैव दर्शन की दार्शनिक दृष्टि अद्वैतनिष्ठ है। एक ही 'तत्त्वातीत परमशिव चिति' बाहर और भीतर सर्वत्र सर्वरूपों में व्याप्त है। वह '**चिति**' कहा गया है।[१] वही पूर्ण चिद्रूप परमशिव 'विश्वात्मा' कहा गया है। 'चैतन्यमात्मा' शिवसूत्र उसे ही '**आत्मा**' एवं अन्य शास्त्र उसे '**परा संवित्**' '**परतत्त्व**' '**अनुत्तर**' एवं '**परमशिव**' के रूप में पुकारते हैं।[२] वही 'चैतन्य' है। शिव से लेकर क्षितिपर्यन्त सारे ३६ तत्त्व इसी चैतन्यस्वभाव आत्मा में अवस्थित हैं। इसी चैतन्य परतत्त्व में सारे ३६ तत्त्व निवास करते हैं। वह '**अनुत्तर**' है।[३]

'परमशिव' : विश्वात्मक एवं विश्वोत्तीर्ण

'परमशिव' तत्त्वतः '**विश्वातीत**' होकर भी 'विश्वमय' है।

समस्त **पदार्थ, शक्ति** के अवभास होने के कारण, 'शक्तिरूप' एवं "**प्रकाशरूप**' है, ये सारे पदार्थ भी परमशिव से अभिन्न हैं।

---

१. चितिस्तुर्यातीतपदात्मिका परासंवित् (तन्त्रालोक: भाग ३)।
२. यत् परतत्त्वं तस्मिन् विभाति षट्त्रिंशदात्म जगत्। (परमार्थसार कारिका ११)।
३. अनुत्तरं न विद्यते प्रकृष्टमुत्तरं यतस्तत्।

(१) **क्रियाशक्तेरेव अयं** सर्वो विस्तारः ॥[१]

(२) **प्रकाशो** नाम यश्चायं सर्वत्रैव प्रकाशते ॥[२]

सारांश यह कि सर्वात्मा परमशिव ही विश्वभाव से सर्वत्र स्पन्दायमान हो रहा है।

(२) **'परमशिव'** सर्वात्मक, सर्वरूप, सर्वानुस्यूत, सर्वसत्तात्मक **'विश्वमय'** एवं **'विश्वातीत'** है—

'अतएव अयं विश्वमयत्वेऽपि विश्वोत्तीर्णस्तदुत्तीर्णत्वेऽपि तन्मयः ॥'

(४) परमशिव विश्वमय होकर भी अपने स्वरूप में स्खलित नहीं होता— 'विश्वमयत्वेऽप्यस्य स्वस्वरूपान्न प्रच्यावः ॥'

अपनी प्रकाशरूपता में परमेश्वर **'विश्वात्मक'** है। वही चिदात्मा 'विश्वमय' भी है और 'विश्वातीत' भी। **विश्व का मूल कारण** परमशिव की इच्छा या **'स्वातन्त्र्य शक्ति'** है। विश्वोल्लास की कारणभूत परासत्ता चिदात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है।

'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः ॥' (शक्तिसूत्र)

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि—

'विश्व' (अर्थात् सदाशिवादि से भूम्यन्त तत्त्वों) को उन्मीलित करने तथा स्थिति में रखने में और परप्रमातृविश्रान्तिरूप संहारक्रिया में पराशक्तिरूपा चिति भगवती पूर्णतया स्वतन्त्र हैं और वे ही अनुत्तर विमर्शमयी भगवती शिवभट्टारक से अभिन्न रूप में अवस्थित देवी विश्व का मूल कारण हैं—

"विश्वस्य सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य सिद्धौ निष्पत्तौ
प्रकाशने स्थित्यात्मनि परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि च
संहारे पराशक्तिरूपा चितिः एव भगवती स्वतन्त्रा
अनुत्तर विमर्शमयी शिवभट्टारिकाभिन्ना हेतुः कारणम् ॥"[३]

'प्रकाश' और 'विमर्श'

यह 'विश्वात्मा', 'अनुत्तर' 'चिति' 'तुरीयातीत' 'चिद्घन', 'चैतन्य' परात्पर तत्त्व **प्रकाशविमर्शस्वरूप** है।

'प्रकाश' आत्मा का स्वस्वरूप है और **'विमर्श'** प्रकाशस्वरूप परमात्मा के

---

१. प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग २)।

२. तन्त्रालोक (भाग १ आ. १) ५४।

३. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र १)।

स्वस्वरूप की आत्मप्रतीति या अहंबोध है। यह 'विमर्श तत्त्व' उस परतत्त्व की अपनी महेश्वरता की पूर्ण अभिज्ञा या अनुभूति है।

'विमर्श' और 'प्रकाश' अविनाभाव रूप में अपृथक् हैं। वे चन्द्रचन्द्रिकावत्, सूर्यरश्मिवत्, अग्नि-ऊष्णता या धर्मधर्मी की भाँति अविच्छेद्य, एकात्म, परस्परानुस्यूत एवं अपृथ्क् हैं—

'प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्।
स च प्रकाशो न पृथक् विमर्शात्॥'[१]

उसकी महेश्वरता की अपनी अनुभूति विमर्शाश्रित है—

'स एव विमृशत्वेन नियतेन महेश्वरः॥'

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि—

वह स्वस्वरूप में विश्रान्त है। **'विमर्श' उस 'परमशिव' का अपना 'पूर्ण अहं' है—**

'या स्वस्वरूपे विश्रान्तिर्विमर्शः सोऽहमित्ययम्॥'[२]

उत्पलदेवाचार्य कहते हैं कि 'प्रकाश' शिवरूप एवं 'विमर्श' शक्तिरूप है। 'शिव' एवं 'शक्ति' (प्रकाश तथा विमर्श) परस्पर अविच्छेद्य रूप में इस प्रकार परस्परानुप्रविष्ट या पपस्परानुस्यूत हैं कि 'शिव' शक्ति के बिना एवं 'शक्ति' के बिना 'शिव' नहीं रह सकते। यदि 'शक्ति' के बिना 'शिव' की कल्पना की जाय तो एक जड़ स्फटिक के रूप में ही की जा सकती है जिसमें प्रकाश तो है किन्तु चैतन्य नहीं है— विमर्श नहीं है, अतः

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि॥' (सौन्दर्यलहरी)

आचार्य सोमानन्दपाद ने इसी पारस्परिक 'सामरस्य' को लक्षित करके कहा था कि—

'न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिव शक्तस्तथा भावानिच्छया कर्तुमीहते॥'

अतः स्पष्ट है कि शिवशक्ति अभिन्न हैं—

'शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते॥'[३]

---

१. दनुत्तरं चिद्घनम्। (परात्रिंशिका विवृति)
विज्ञानभैरव विवृति।

२. अजडप्रमातृसिद्धि (१५)।

३. शिवदृष्टि (३/२-२)।

'शिव' में कर्तृत्व का तभी आगम होता है या शिव तभी कर्ता बन पाता है जब वह अपने शक्तिस्वभाव से युक्त होता है। 'शक्ति' आत्मस्वरूप परमशिव का स्वधर्मात्मक '**विमर्श**' है। इसी 'विमर्श' शक्ति की सहायता से शिव 'कर्तुं' 'अकर्तुं' एवं 'अन्यथा कर्तुं' शक्ति से युक्त हो पाता है। **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीकार** ने 'विमर्श शक्ति' को इस प्रकार परिभाषित किया है—

'**विमर्शो** हि सर्वसहः परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयम् एकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवं स्वभावः॥'

उस शिव की इच्छा शक्ति की ही संज्ञा है— 'स्वातन्त्र्य शक्ति'— 'स्वतन्त्र इति तस्येच्छा शक्तिः स्वातन्त्र्य संज्ञिता॥'[१]

'**स्वतन्त्र**'— परमशिव 'स्वतन्त्र' इसलिए कहलाता है; क्योंकि 'सृष्टि'-'पालन'-'संहार'-'तिरोधान'-'अनुग्रह' आदि अपने निखिल व्यापारों को निष्पादित करने के लिए उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं होती। वह सारे व्यापारों का निष्पादन (कर्तुं, अकर्तुं एवं अन्यथाकर्तुं के व्यापारों का सम्पादन) अपनी स्वसमवेता शक्ति 'विमर्श' के द्वारा स्वतन्त्र रूप में कर डालता है। यही उसका '**स्वातन्त्र्य**' है और यह 'स्वातन्त्र्य' उसकी शक्ति का ही नाम है— 'स्वतन्त्र इति तस्येच्छा शक्तिः स्वातन्त्र्य संज्ञिता॥'[२] स्वतन्त्र परमशिव की '**इच्छा शक्ति**' ही उसकी स्वतन्त्रता या '**स्वातन्त्र्यशक्ति**' है। यह शैवी इच्छाशक्ति परोन्मुखी इच्छा नहीं है प्रत्युत् यह स्वात्मपूर्ण शिव की स्वातन्त्र्यात्मक इच्छा शक्ति या 'इच्छा' है।

जो सत्ता अपूर्ण होती है उसमें अपने को पूर्ण बनाने हेतु स्व-व्यतिरिक्त किसी वस्त्वान्तर की अपेक्षा या तदोन्मुखी प्रवृत्ति होती है किन्तु शिव में ऐसी परोन्मुखता नहीं है अतः वह '**पूर्ण स्वतन्त्र**' है। जो भी अपूर्ण होगा उस व्यक्ति की समस्त क्रियाएँ पराश्रित, परोन्मुख एवं परापेक्षी होती हैं किन्तु परात्पर शिव (चैतन्य एवं विश्वात्मा) परनिरपेक्ष एवं पूर्ण स्वतन्त्र है।

स्वात्म विश्रान्ति और आनन्द

परमशिव की अपनी इच्छा परमुखापेक्षी नहीं है प्रत्युत् वह स्वात्मस्वरूप में **विश्रान्त** रहा करती है। कारण यह है कि चिदानन्दात्मक परमशिव विश्वामा, विश्वरूप एवं सर्वरूप है अतः उसके अतिरिक्त तो कोई है ही नहीं फिर वह किसकी अपेक्षा करे? आत्मा ही विश्व का मूल है अतः आत्मस्वरूप चिद्रूपं परमशिव से व्यतिरिक्त कोई सत्ता है ही नहीं। उस परमशिव की '**निराशंसता**' उसकी अपनी इच्छाशक्ति की

---

१. मालिनीविजय वार्तिक (१/८७) (२)।

२. मालिनीविजय वार्तिक (१/८७)।

अनन्योन्मुखता एवं पूर्णस्वातन्त्र्य में अन्तर्निविष्ट या अवस्थित है। शिव की यह स्वभावगत '**निराशंसता**' (या आकांक्षा-राहित्य) ही **आत्मा का पूर्णत्व** है और इसी कारण वह '**पूर्णस्वतन्त्र**' है। स्वतन्त्र परमशिव अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता के कारण ही **स्व-विश्रान्त** रहा करता है।

'आनन्द' परमशिव की एक शक्ति है। 'चिति शक्ति' एवं 'आनन्द शक्ति' शिव की ५ शक्तियों में से प्रथम एवं द्वितीय शक्तियाँ भी हैं और परमात्मा शिव का स्वभाव भी है।

'स्वतन्त्र' की आत्मविश्रान्ति ही **उसका पूर्णानन्द** है। कहा भी गया है—
''स्वात्मविश्रान्तिरेषा देवस्यानन्द उच्यते॥''

परमशिव 'स्वातन्त्र्यशक्ति' तथा अन्य शक्तियाँ

'परमशिव' की अनन्त शक्तियाँ हैं किन्तु वे पाँच भागों में विभक्त करके प्रस्तुत की गयी हैं जो इस प्रकार है—

(१) 'चिति शक्ति' 'प्रकाशरूपता **चिच्छक्तिः**' । (तन्त्रसार आ. १)
(२) 'आनन्द शक्ति' 'स्वातन्त्र्यं **आनन्दशक्तिः**'। (तन्त्रसार)
(३) 'इच्छा शक्ति' 'तच्चमत्का **इच्छाशक्तिः**'। (तन्त्रसार)
(४) 'ज्ञान शक्ति' 'आमर्शात्मकता **ज्ञानशक्तिः**'। (तन्त्रसार)
(५) 'क्रिया शक्ति' 'सर्वाकारयोगित्वं **क्रियाशक्तिः**'। (तन्त्रसार)।

शक्ति तत्त्व

भारत अनादिकाल से '**शक्ति**' की साधना में विश्वास करता आ रहा है। उसके मन्दिरों के भगवान के हाथों में 'चक्र' 'गदा' 'त्रिशूल' 'परशु' 'खड्ग' 'भृशुण्डि' 'ब्रह्मास्त्र' 'पाशुपतास्त्र' आदि का प्रदर्शन यही सिद्ध करता है या यही सन्देश देता है कि— ''यदि तुम महान् बनना चाहते हो तो शक्ति-परिणद्ध बनो, शक्तिमान बनो, शक्तिस्वरूप बनो और इसके लिए '**शक्ति**' की साधना करो।''

भारतीय दार्शनिकों ने ब्रह्माण्डीय-रचना-विधान के मूलभूत तत्त्वों को मात्र दो पदार्थों में अन्तर्निविष्ट देखा। वे दो पदार्थ निम्नाङ्कित हैं—

(१) '**शक्तिमान**' और (२) '**शक्ति**'।

शक्ति-शक्तिमान के संयोग से ही '**षट्त्रिंशदात्मजगत्**' ('शाक्ताण्ड', 'प्रकृत्यण्ड', 'ब्रह्माण्ड' आदि) इन्हीं विश्वप्रसू दो परमतत्त्वों का '**सामरस्य**' ही जगत बन गया। जगत 'शक्ति' का **परिणाम** है। '**शक्ति**' और '**शक्तिमान**' नामक दो पदार्थों का ही स्थूल रूपायन जगत है। जगत 'विवर्त' नहीं 'परिणाम' है।

जब 'शक्ति' स्वेच्छा से विश्वरूपात्मक स्वरूप धारण करती है और अपनी

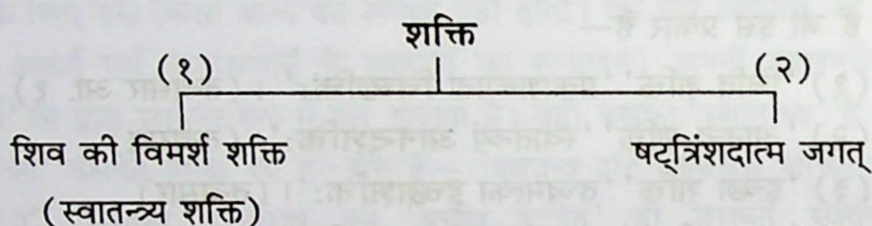
स्फुरत्ता को देखती है तब विश्व की उत्पत्ति हो जाती है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥'

आचार्य अमृतानन्द की दृष्टि— आचार्य अमृतानन्द कहते हैं— 'शिवादि-क्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थः। यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते॥' (दीपिका)

प्रत्यभिज्ञा में कहा गया है— ''चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः॥''

अमृतानन्द कहते हैं कि जिस प्रकार '**दूध**' विकारग्रस्त होकर 'दही' के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार 'शक्ति' (अविकारी रहते हुए भी) जगत के रूप में परिणत हो जाती है। अर्थात् 'शक्ति' का एक रूप शिव के सामर्थ्य के रूप में है तो उसका दूसरा रूप विश्व के रूप में है।



(स्वातन्त्र्य शक्ति)

अमृतानन्द कहते हैं—

'विश्वाकारप्रथा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मना परिणता विमर्श शक्तिः॥'

योगिनीहृदयकार भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं—

'विश्वाकारप्रथाधारनिजरूपशिवाश्रयम्।' (चक्रसङ्केत)

शक्ति ही वाणी के समस्त रूपों में प्रसृत है— अर्थात् वही 'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' वाक् है—

(१) 'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना **परावाक्** समुदीरिता॥ ('परा वाणी')

(२) बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी।
वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता॥
इच्छाशक्तिस्तदा सेयं '**पश्यन्ती**' वपुषा स्थिता। ('पश्यन्ती वाणी')

(३) ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा '**मध्यमा**' वागुदीरिता।
(ज्ञान शक्ति+ज्येष्ठा शक्ति='मध्यमा वाक्' ('मध्यमा वाणी')

(४) ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा।

तत्संहतिदशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता॥

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैवं शृङ्गाटवपुरुज्वला।

क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं **'वैखरी'** विश्वविग्रहा॥ (वैखरी वाक्)

अमृतानन्द ने ठीक ही कहा है कि जिस प्रकार बीज में वृक्ष गुप्त रूप से निवास करता है ठीक उसी प्रकार विश्व पराशक्ति में तन्मात्राओं के रूप में स्थित रहा करता है।

सेतुबन्धकार ने भी ठीक ही कहा है कि—

'स्फुरत्तात्मा पराशक्तिर्बीजं विश्वस्य कारणम् इति।'

सारे वर्ण, सारे पद, सारे मन्त्र, सारे अध्व, सारे देवता, सारे पीठ, सारे ग्रह-नक्षत्र, सारी राशियाँ और सारे शब्दार्थ 'शक्ति' के विभिन्न रूप ही तो हैं।

अथर्ववेदोक्त 'शक्ति' का स्वरूप

देवताओं के द्वारा यह पूछे जाने पर कि ''कासि त्वं महादेवीति'? ('हे महादेवी आप कौन हैं?')

देवी ने अपना परिचय देते हुए कहा कि— हे देवताओ! मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ। मुझसे ही प्रकृति-पुरुष दोनों का उद्भव हुआ है। अतः प्रकृतिपुरुषात्मक यह जगत मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मैं शून्य भी हूँ और अशून्य भी; मैं आनन्द भी हूँ और निरानन्द भी; मैं विज्ञान भी हूँ और अविज्ञान भी; मैं ब्रह्म भी हूँ और अब्रह्म भी; मैं पञ्चभूत भी हूँ और अपञ्चभूत भी; मैं नीचे भी हूँ और ऊपर भी; मैं तिर्यक् भी हूँ। मैं समस्त जगत हूँ—

'अहमखिलं जगत्॥' (देव्यथर्वशीर्षम्)

मैं वेद भी हूँ और अवेद भी; मैं विद्या भी हूँ और अविद्या भी; मैं अजा (अनुत्पन्न) भी हूँ और अनजा (व्यक्त या उत्पन्न)।

ऋषि कहते हैं कि वही **शक्ति** 'आत्म**शक्ति**' भी है और **श्रीमहाविद्या** भी। वही **शक्ति** एकादश रुद्र भी है और द्वादश आदित्य भी; वही **शक्ति** सोमपा एवं असोमपा विश्वेदेव भी हैं और यातुधान भी; वही **शक्ति** असुर, राक्षस, पिशाच भी है और यक्ष तथा सिद्ध भी; वही शक्ति सत्व-रज-तम भी है और ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र भी; वही **शक्ति** प्रजापति-इन्द्र-मनु भी है और वही ग्रह-नक्षत्र-तारे भी; वही 'शक्ति' कला-काष्ठा भी है और काल भी। वह 'एक भी है और अनन्तरूपात्मक विश्व भी हैं।' 'एकैव विश्वरूपिणी' (वह एक होकर भी ब्रह्माकाराकारित विश्व भी है।)[१]

---

१. अथर्ववेद।

वह अज्ञेय, अनन्त, अलक्ष्य, एका एवं अनेकात्मिका है— 'अज्ञेयानन्ता-लक्ष्याजैका नैकेति।'

वह मन्त्रों में 'मातृका' एवं शब्दों में 'ज्ञान' है। वह ज्ञानों में चिन्मयातीता एवं शून्यों में शून्यसाक्षिणी भी है—

'मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी॥'

वह कौन है? जिससे श्रेष्ठतर (परतर) कोई न हो वही दुर्गा या 'शक्ति' है—

'यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।'[१]

वह 'इच्छाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति', 'क्रियाशक्ति' है—

'इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी॥'[२]

वही '**महाशक्ति**' भी है और '**कुण्डलिनी**' भी; वही '**सर्वयन्त्रात्मिका**' भी है और '**सर्वमन्त्रस्वरूपिणी**' भी; वही '**माहेश्वरी**' '**महादेवी**' और '**महालक्ष्मी**' भी है और वही '**महातन्त्रा**' '**महामन्त्रा**' '**महायन्त्रा**' और '**महासना**' भी; वही '**तत्त्वाधिका**' भी है और '**तत्त्वमयी**' भी; वही '**विश्वमाता**' और '**जगद्धात्री**' भी है और वही श्री शिव एवं शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका भी है— 'श्री शिवा शिव-शक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका।'[३]

सृष्टि के जिन मूल तत्त्वों से जगत की सृष्टि हुई, जिनकी परिणति (या परिणमन) ही विश्व है और जिसमें समस्त विश्व अन्तर्निहित है वे संख्या में दो हैं। दो तत्त्वों का विकास ही विश्व बन गया। वे दोनों तत्त्व हैं—

(१) 'शिव' एवं (२) 'शक्ति'।

कहने के लिए तो ये दो हैं किन्तु ये दो होकर भी एक ही हैं; क्योंकि उपनिषदों में कहा गया है कि 'एक' ही 'बहु' बन गया। 'एक' ने 'बहु' बनने की आकांक्षा व्यक्त की और 'एक' ही सत्ता बहुरूपात्मक विश्व के रूप में रूपान्तरित हो गई। उसकी इच्छा ही विश्व की प्रथम इच्छा थी और वह थी—

''एकोऽहं बहुस्याम्'' (मैं एक हूँ मैं बहुत हो जाऊँ॥)

यह 'एक' चने में स्थित दो दालों की भाँति है जो कि चने के रूप में तो एक है किन्तु उसमें स्थित दालों के रूप में दो है। शिव भी एक ही है; क्योंकि उसमें स्थित

१. अथर्ववेद (अथर्वशीर्षम्)
२. ललितासहस्रनाम (ब्रह्माण्डपुराण)।
३. ललिता सहस्रनाम।

'शक्ति' उससे पृथक् नहीं है। सृष्टि दोनों के संयोग का 'परिणाम' है।

'शक्ति' क्या है? 'रात्रिसूक्त' में कहा गया है कि हे देवि! इस जगत की उत्पत्ति के समय तुम अखिल सृष्टि हो अतः **'सृष्टिरूपा'** हो, पालनकाल में तुम **'स्थितिरूपा'** हो तथा कल्पान्त के समय तुम **'संहाररूपा'** हो।

'विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।'[1]

तुम 'महाविद्या', 'महामाया', 'महामेधा', 'महास्मृति', 'महामोहा', 'महादेवी', 'महासुरी', 'प्रकृति', 'कालरात्रि', 'महारात्रि', 'मोहरात्रि', 'श्री', 'ईश्वरी', 'ह्री', 'बुद्धि', 'बोध', 'लज्जा', 'पुष्टि', 'तुष्टि', 'शान्ति', 'क्षान्ति', 'स्वाहा', 'स्वधा', 'वषट्कार', 'स्वर', 'सुधा' प्रणव में 'अकार'-'उकार'-'मकार' रूप मात्रात्रय, बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा, सन्ध्या, सावित्री, परम जननी एवं सर्वशक्तियों का केन्द्र हो। समस्त संसार में जो भी सत् या असत् रूप में कोई भी वस्तु है, उसमें जो भी क्षमता निहित हो या सामर्थ्य विद्यमान है वह सब कुछ **'शक्ति'** ही है—

'यच्च किञ्चित् क्वचित् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥'[2]

महेश्वरानन्द की दृष्टि— आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं कि— (१) 'शिवाभिन्ना परा शक्तिः॥' (२) शिव का शरीर ही 'शक्ति' है।

(१) एक ही परात्परा सत्ता सत्वगुणस्वभावा होने पर **'ज्ञानशक्ति'** (२) रजोगुणस्वभावा होने पर **'क्रियाशक्ति'** (३) तमोगुणस्वभावा होने पर **'मायाशक्ति'** और अविभागावस्था में **'प्रकृति'** कहलाती है किन्तु मूलतः तो वह **'शाम्भवी शक्ति'** ही है—

'ज्ञानक्रियामायानां गुणानां सत्वरजस्तमस्स्वभावानाम्।
अविभागावस्थायां तत्त्वं प्रकृतिरिति शाम्भवी शक्तिः॥'[3]

यह 'पराशक्ति' स्वान्तःस्फुरित, विमर्शसंरभयुक्ता तथा शुद्धविद्यास्वरूपा है। यह शिव से तद्रूप है। यह 'शक्तिपञ्चक'-युक्त है। यह उन्हीं का अभिन्न स्वरूप है। यह संयोजन-वियोजन (सृष्टि-संहाररूप) व्यापारों में सदा स्फुरित रहती है। यह भुवन-विभ्रम (विश्यवैचित्र्यविलास) के उल्लास का कारण है और शम्भु की महाशक्ति है—

---

१. मार्कण्डेय पुराण (रात्रिसूक्त)।
२. मार्कण्डेय पुराण (रात्रिसूक्त)।
३. महार्थ मञ्जरी (२०)।

'सर्वस्य भुवनविभ्रमयन्त्रोल्लासस्य तन्तुवल्लीव।

विमर्शसंरम्भमयी उज्जृंभते शम्भोर्महाशक्तिः॥'[१]

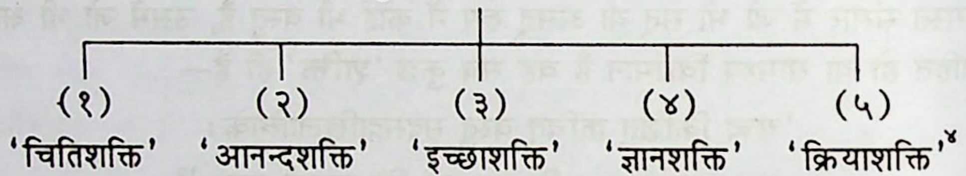
'प्रकाश' की 'विमर्श' ही विश्वाकार-प्रथा है। 'प्रकाश' शक्ति के कारण ही 'कर्ता' बन पाता है और उसी की सामर्थ्य के द्वारा विश्व का विस्तार हो पाता है। **महेश्वरानन्द** इसी तथ्य को अपने शब्दों में इस प्रकार कहते हैं—

'सन् हृदयप्रकाशो भवनस्य क्रियायां भवति कर्ता।

सैव क्रिया विमर्शः स्वस्था क्षुभिता च विश्वविस्तारः॥'[२]

जिस प्रकार मङ्गलप्रदीप अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार प्रकाशरूप परमशिव ज्ञानक्रियास्वरूपा '**विमर्श शक्ति**' में प्रकाशित होकर ('आणव', 'कार्म' एवं 'मायीय मल' त्रय) अपने तेज से नष्ट कर देता है।[३]

शक्ति के मुख्य भेद (त्रिक दर्शन)



'चितिशक्ति' 'आनन्दशक्ति' 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' 'क्रियाशक्ति'[४]

'निस्पन्द' के वक्ष पर 'स्पन्द' की क्रिया ही विश्व-विस्तार है।[५]

श्रीराम की '**सीता**', श्रीकृष्ण की '**श्रीराधा**', भैरव की '**भैरवी**', ब्रह्मा की '**ब्रह्माणी**', विष्णु की '**नारायणी**' (या महालक्ष्मी), आनन्दभैरव की '**आनन्द भैरवी**', परम शिव की 'शक्ति', 'प्रकाश' की '**विमर्शशक्ति**', समय की '**समया**' एवं 'महामाया' 'मूल प्रकृति' चित्-आनन्द-इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्ति, श्रीदेवी, भूदेवी आदि सभी उसी 'शक्ति' के विभिन्न रूप हैं। उस शक्ति के दो रूप हैं—

(१) 'विश्वमय' एवं (२) 'विश्वातीता'।

उसका विश्वमयस्वरूप इस प्रकार है—

(१) 'अर्थमयी सृष्टि', (२) 'शब्दमयी सृष्टि', (३) 'चक्रमयी सृष्टि' एवं (४) 'देहमयी सृष्टि'।

जगत के कण-कण में दो ही तत्त्व अनुस्यूत, व्याप्त या अन्तर्गर्भित हैं। वे हैं—

---

१. महार्थ मञ्जरी (२६)।

२. म. मं. (११)।

३. म. मं. (१०)।

४. तन्त्रालोक।

५. शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं 'शक्तिरीश्वरतामयी' (बोध पञ्चादशिका)।

(१) 'शिव' और (२) 'शक्ति'।

अनन्तरूपात्मक विराट विश्व का जो संक्षिप्त रूप है वह है '**श्रीचक्र**'। '**श्रीचक्र**' शक्ति का स्वस्फुरत्ता का ईक्षण मात्र है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।'

'स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः।'

'कर्तुं' 'अकर्तुं' एवं 'अन्यथा कर्तुं' की अनन्त क्षमताओं से संगर्भित एवं अघटनघटनापटीयसी, अनन्तसामर्थ्यसम्पन्ना तथा '**स्वातन्त्र्य**' एवं '**विमर्श**' के नाम से प्रख्यात निरपेक्ष परासत्ता का नाम ही '**शक्ति**' है। यही शिव का '**हृदय**', शम्भु की '**आत्मा**', शशाङ्कशेखर का '**शरीर**' शिव का मुख ('शैवीमुखमिहोच्यते') शर्व का '**दर्पण**' और प्रकाश का '**विमर्श**' है—

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

(१) 'उक्ता सैव च विश्रान्तिः सर्वापेक्षानिरोधतः।
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च॥'

(२) 'सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः॥ ४५॥'

(३) 'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः॥'

अर्थात् वही शक्ति, 'स्वातन्त्र्य', 'कर्तृत्व', 'स्फुरत्ता', 'महासत्ता', 'सार', 'हृदय', 'चिति', 'प्रत्यवमर्श', 'पुरावाक्', ऐश्वर्य एवं स्वातन्त्र्य आदि कही जाती है।

शक्तिः

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या **शक्तिः** सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥

— रात्रिसूक्तम्

(किसी भी सत् या असत् वस्तु में जो भी क्षमता या सामर्थ्य अन्तर्निहित होती है वही सामर्थ्य 'शक्ति' है।)

'शिव' नाम की सार्थकता

'शिव' का अर्थ है 'कल्याण'। जो 'सुन्दर' हो और 'सत्य' हो वही 'शिव' है। यही है 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' में स्थित 'शिव' का अर्थ। '**शिव**' सगुण परमात्मा है। 'परमशिव' उनका निर्गुण रूप है।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि— आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) वशति प्रकाशते स्वयंप्रकाश इति।

(२) यद्वा स्वस्मिन् प्रपञ्चं प्रकाशयतीति **शिवः**।

(३) यद्वा 'शीङ् स्वप्ने' इत्यस्माद्धातोः **शिव** शब्दो निष्पन्नः।

(४) स्वप्नं वाति क्षिपतीति '**शिवः**'— जाड्यरहितः अविद्या-निर्मुक्त इत्यर्थः।

(५) यद्वा स्वप्नविद्यां वाति गच्छतीति **शिवः** ।

(६) यद्वा स्वप्नविद्यां वाति गच्छतीति **शिवः**, **सादाख्य कला संवलित** इति यावत्।

(७) '**वश कान्तौ**' धातु से '**शिव**' शब्द निष्पन्न हुआ है—

'हिसिधातोः सिंह शब्दो वशकान्तौ **शिवः** स्मृतः।
वराव्यित्ययतः सिद्धौ पश्यकः कश्यपो यथा॥'

(८) वश कान्तौ इत्ययं धातुः तुदादिः अदादिश्च संगृहीतः तुदादेर्वशतेः दीप्तिरर्थः। कान्तिर्दीप्तिः। अदादेर्वष्टिरिति कामना अर्थः।

(९) इच्छाशक्त्याश्रयत्वात् ईश्वरस्य **शिवत्वम्**।

(१०) **शिवः** सर्वमङ्गलोपेतः सदाशिवतत्त्वम्।[1]

(११) '**शिव**'शब्देन नवयोनिचक्रमध्ये **चतुर्योन्यात्मकमर्धचक्रमुच्यते**॥ **शक्ति** शब्देन अवशिष्टं **पञ्च योन्यात्मकमर्धचक्रं** भवति। एतस्माच्चक्रादेव जगदुत्पत्ति-स्थितिलया भवन्तीति—

'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं **श्रीचक्रं** शिवयोर्वपुः॥'

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि— आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं—

'स्वप्रकाशैकरूपत्वाद्भावात्मत्वेन भासनात्।
तथात्वेऽपि स्वतन्त्रत्वाच्छक्तिमान्स 'शिवः' स्मृतः॥
सर्वात्मभूतः सर्वाध्वसमुत्तीर्णः स्वतन्त्रकः।
स्वशक्त्या भासितवन्तः स 'परमेश्वरः'॥'[2]

शिव का स्वरूप— 'परमार्थसार' में अभिनवगुप्तपादाचार्य शिव के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

१. लक्ष्मीधरा (१/१)।
२. श्री तन्त्रवटधानिका।

'भारूपं परिपूर्णं स्वात्मनि विश्रान्तो महानन्दम्।
इच्छासंवित्किरणैर्निर्भरितम् अनन्तशक्ति परिपूर्णम्॥
सर्वविकल्पविहीनं शुद्धशान्तं लयोदयविहीनम्।
यत् परतत्त्वं तस्मिन् विभाति षट्त्रिंशदात्म जगत्॥'

अर्थात् शिव प्रकाशरूप हैं, परिपूर्ण हैं तथा स्वात्मविश्रान्त होने के कारण महानन्द हैं। वे इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया से युक्त हैं। उसी परतत्त्व में ३६ तत्त्वात्मक जगत प्रकाशित होता है। शिव की आत्मस्वरूपिणी अनुग्रह शक्ति की रश्मियों के स्फार से **'आणव'**, **'मायीय'** एवं **'कार्म'** मलों की वासना प्रक्षीण हो जाती हैं। इससे विमलीकृत बुद्धिरूपी दर्पण में प्रकाशस्वरूप एवं सर्वज्ञत्वादि गुणों से युक्त आत्मा इस रूप में प्रकाशित होती है कि वे आत्मस्वरूप के प्रकाश से संसार के मध्य रहते हुए भी मुक्तवत रहते हैं।

शिव निर्मल धीतत्त्व (बुद्धि) में प्रकाशित होते हैं

यथा विमल दर्पण में अपना मुख दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार शिव शक्तिपात से विमल धी तत्त्व में शिव यथाभाव भासित होते हैं। वे स्वयं भावरूप हैं।[1]

शिव सर्वाकाररूप एवं सर्वरूप हैं

यथा निर्मल स्फटिक विविध वर्णों का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार महेश्वर भी देव, मनुष्य, पशु एवं पादप के रूप धारण कर लेता है।[2]

वे समस्त चराचर के विश्रान्तिस्थान हैं। अभिनवगुप्त ऐसे ही शम्भु की शरण की कामना करते हैं—

'सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुशरणं प्रपद्ये॥'[3]

शिव की परावस्था

शिव (१) 'निष्कल' और (२) 'सकल' 'विश्वमय' और 'विश्वातीत', 'निर्गुण' एवं 'सगुण' दोनो हैं। उनमें (१) 'चित', (२) 'आनन्द', (३) 'इच्छा', (४) 'ज्ञान' और (५) 'क्रिया' शक्तियाँ भी विद्यमान हैं तथा वे पञ्चक्रियाकर्ता भी हैं—

---

१. आदर्शे मलरहिते यद्वत् वदनं विभाति तद्वत् अयम्।
शिवशक्तिपात-विमले धी तत्त्वे भाति भावरूपः॥९॥

२. नानाविधवर्णानां रूपं धत्ते यथाऽमलः स्फटिकः।
सुरमानुषपशु-पादप-रूपत्वं तद्वदीशोऽपि॥६॥

३. परं परस्थं गहनाद अनादिम्, एकं विशिष्टं बहुधा गृहासु।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये॥''
— अभिनवगुप्त : 'परमार्थसार'

'सृष्टि-संहार-कर्तारं विलय-स्थितिकारकम्।
अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्तिविनाशनम्॥'

तथापि उनकी **'परावस्था'** इस अवस्था से पूर्णतया पृथक् हैं।

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि— आचार्य सोमानन्द कहते हैं—

(१) जब वे शिव पूर्ण चिदानन्दमात्र स्वरूप में, न कि बाहर, प्रकाशित होते रहते हैं और उसी में उनका लय होता रहता है उस समय **उनकी समस्त 'इच्छा', उनका सारा 'ज्ञान' और उनकी सम्पूर्ण 'क्रिया' सब कुछ उनमें लीन रहती है**—

'स यदाऽऽस्ते चिदाह्लादमात्रानुभवतल्लयः।
तदिच्छा तावती तावज्ज्ञानं तावत्क्रिया हि सा॥'

(२) उस समय 'इच्छा' 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' ये तीनों सूक्ष्म शक्तियाँ समरसावस्था में रहती हैं और इसीलिए वह चिद्रूप आह्लादस्वरूप परमशिव की निर्विभाग अवस्था होती है और यही परावस्था है।[1]

(३) वह ज्ञेय-ज्ञातृ-ज्ञान से शून्य **शिवावस्था** केवल परावस्था में ही नहीं होती प्रत्युत् समस्त ज्ञान-ज्ञातृ-ज्ञेय की प्रथमप्रथमोन्मेषावस्थाओं में भी शिव की वही **परावस्था** रहती है।[2]

विज्ञानभैवरकार की दृष्टि— भगवान भैरव (शिव) के परस्वरूप के विषय में उठी जिज्ञासावश भगवती ने जो प्रश्न किया उसी के उत्तरस्वरूप भगवान श्री भैरव ने उस पर, स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है।

'विज्ञानभैरव' में कहा गया है मेरा सकलरूप असार है।[3]

भैरव का पररूप— भगवान भैरव ही अपने परस्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उसके निम्न लक्षण बताते हैं—

(१) वह परस्वरूप न तो नवात्मा है और न शब्दराशि है, वह न तो

---

१. सुसूक्ष्मशक्तित्रितयसामरस्येन वर्तते।
चिद्रूपाह्लादपरमो निर्विभागः परस्तदा॥ (४/१)

२. न परं तदवस्थायां व्यवस्थैषा व्यवस्थिता।
यावत्समग्रज्ञानाग्रज्ञातृस्पर्शदशास्वपि॥ (५/१)

३. यत्किञ्चित् सकलं रूपं भैरवस्य प्रकीर्तितम्।
तदसारतया देवि ! विज्ञेयं शक्रजालवत्।
मायास्वप्नोपमं चैव गन्धर्वनगरभ्रमम्।
ध्यानार्थं भ्रान्तबुद्धीनां क्रियाऽम्बरवर्तिनाम्॥
केवलं वर्णितं पुंसां विकल्पनिहतात्मनाम्॥ (वि. भैरव)

त्रिशिरादेव है और न तो शक्तित्रयोपेत कोई अन्य सत्ता न तो वह नादबिन्दुमय है और न तो वह प्रणव का अर्ध चन्द्र है और न तो निरोधिका आदि कलायें हैं, वह न तो षट्चक्रभेदनबोध्य है और न तो शक्तिचक्रस्वरूप है।

(२) वह इन सारे स्वरूपों से परे है। जो लोग अप्रबुद्ध हैं उन भ्रमित और अबुद्ध लोगों को समझाने के लिए उपर्युक्त समस्त कल्पनायें की गई हैं और इस प्रकार ये **मात्र बाल विभीषिकायें** या अध्यात्मराज्य में प्रवेश करने हेतु **मातृमोदक** मात्र हैं।[१]

(३) भैरव की परावस्था दिशा एवं काल के अतीत है। यह दूर-निकट, संज्ञा, व्यवहार आदि सबसे परे एवं अकथ्य है और परमार्थतः अव्यपदेश्य है। यह दिशा, देश, काल, नाम एवं रूप आदि से परे है। यह वागातीत है। यह विकल्पातीत है और 'पूर्णाहन्ता' का विकास होने पर अन्तःस्वानुभवात्मक है। पूर्णस्वरूप बोध भैरव की यह अवस्था विश्व में अहमाकार में सर्वत्र भरी हुई है। जगत उसी की स्वात्मभित्ति में आभासित हो रहा है। वही विश्व का पूरक (प्रकाशक, अशेषावभासक) है और निष्कल रूप है।[२]

शिव का षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक स्वरूप

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक स्वरूप में शिव 'विश्वात्मक शिव' हैं। यदि शिव के अतिरिक्त विश्व का कोई पृथक अस्तित्व है ही नहीं तब तो यह भी स्वतः सिद्ध है कि विश्व के मूल संघटक निखिल ३६ तत्त्व भी शिव के भीतर ही समाविष्ट हैं, अर्थात् शिव सच्चिदानन्दघन ही नहीं प्रत्युत् वे षट्त्रिंशत्तत्त्वस्वरूप भी हैं।

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि— 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के प्रवर्तक आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि शिव ३६ तत्त्वों के शरीर वाले हैं अर्थात् विश्वात्मक हैं अतः

---

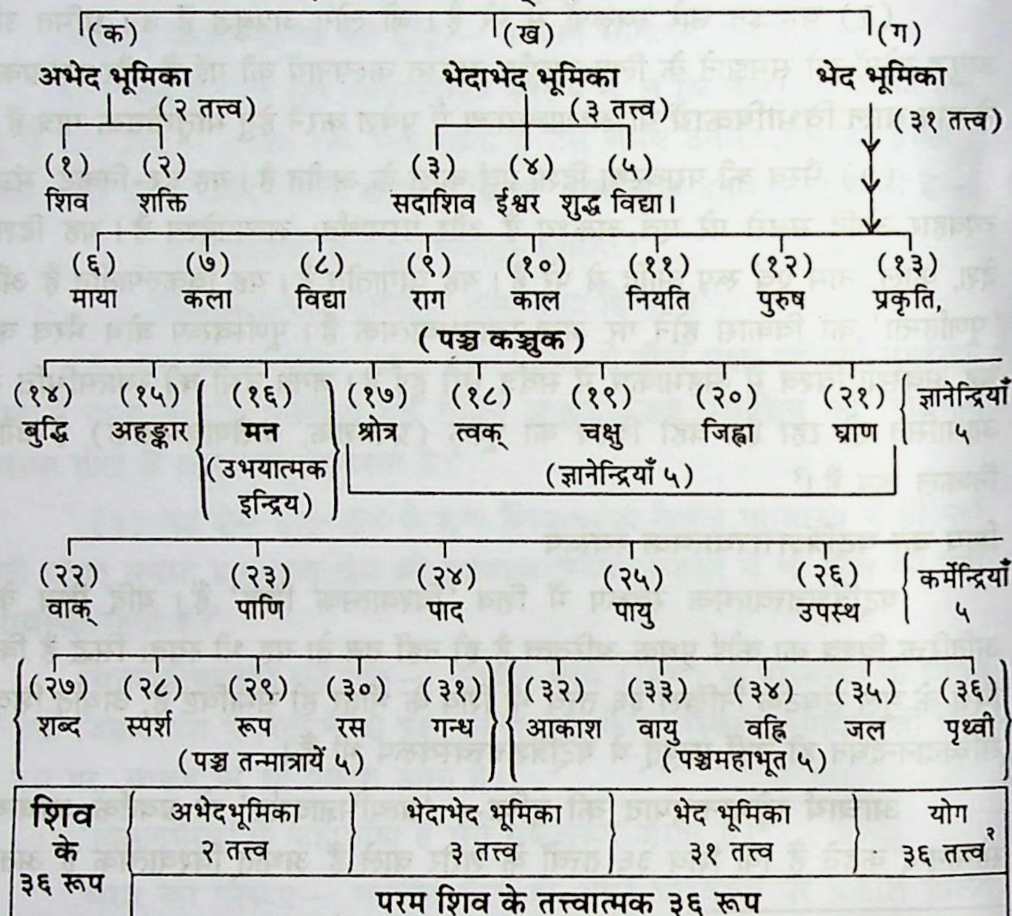
१. तत्त्वतो न नवात्माऽसौ शब्दराशिर्न भैरवः।
न चासौ त्रिशिरा देवो न च शक्तित्रयात्मकः ॥११॥
नादबिन्दुमयो वापि न चन्द्रार्धनिरोधिकाः।
न चक्रक्रमसंभिन्नो न च शक्तिस्वरूपकः ॥१२॥
अप्रबुद्धमतीनां हि एता बालविभीषिकाः।
मातृमोदवत् सर्वं प्रवृत्यर्थमुदाहृतम् ॥१३॥

२. दिक्कालकलनोन्मुक्ता देशोद्देशाविशेषिणी।
व्यपदेष्टुमशक्याऽसावकथ्या परमार्थतः ॥
अन्तःस्वानुभवानन्दा विकल्पोन्मुक्तगोचरा।
यावस्था भरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः।
तद्वपुस्तत्त्वतो ज्ञेयं विमलं विश्वपूरणम् ॥
— विज्ञानभैरव (१४-१५/१)

३६ तत्त्व भी उन्हीं के अपने स्वरूप हैं उनसे पृथक् नहीं हैं—

'मायारूपमितीत्यादि षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपताम्।'[१]

शिव का जगदाभासात्मक षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक स्वस्वरूप



सोमानन्दपाद कहते है कि इस प्रकार ३६ संख्यात्मक रूपों को धारण करते हुए परमशिव तब तक अनेक रूप धारण करते रहते हैं, जब तक कि वे परसम्मिश्रणासह स्वदेशान्तर प्रतिबन्धक घनीभूत जड़ जगत स्थूल रूप में प्रकट होकर व्यवहार के योग्य नहीं बन जाता।

परम शिव के विभिन्न रूप

	(१)	(२)	(३)
३६ तत्त्वों वाला रूप	तत्त्वात्मक स्वरूप	सूक्ष्मजगत शुद्धाध्वा	स्थूल-स्थूलतर जगत (अशुद्धाध्वा)

---

१. शिवदृष्टि (३२/१)। २. शिवदृष्टि।

आचार्य सोमानन्द कहते हैं—

'बिभ्रद्बिभर्ति रूपाणि तावता व्यवहारतः।
यावत् स्थूलं जडाभासं संहतं पार्थिवं घनम्॥'[१]

शिव का सर्वलोकात्मक एवं सर्वशरीरात्मक स्वरूप

शिव ३६ तत्त्वों के अनन्तर उन्हीं के माध्यम से स्वयं ऊर्ध्वाधः वर्तमान तीनों लोक, १४ भुवन एवं देव-मनुष्य-तिर्यक् प्राणियों के रूप में (१) उत्तम (२) मध्यम एवं (३) अधम शरीरों की रचना करता है या उसी-उसी रूप को ग्रहण करके विद्यमान हुआ करता है— 'तथा नाना शरीराणि......मध्यमम्' द्वारा सोमपाद यही बात कहते हैं।[२]

शिव का लोकानुरूप शरीर एवं लोकानुरूप भावना या धारणा ग्रहण करना

भगवान शिव, **जिस जिस स्वरूप का लोक** होता है और वहाँ के निवासियों की **तल्लोकानुरूप जो भावनायें** होती हैं और तल्लोकानुरूप जो स्पृहणीय देह होता है, उसी प्रकार के **लोक,** उसी प्रकार के **शरीर** एवं उसी प्रकार की **भावनाओं** के अनुरूप अपने विभिन्न रूप धारण करके उन-उन लोकों में समासीन हुआ करते हैं—

'स्थानानुरूपतो देहान् देहाकारेण भावनाः।
आददत् तेनतेनैव रूपेण प्रविभाव्यते॥'[३]

सांख्यशास्त्र के अनुसार '**भौतिक सर्ग**' इस प्रकार है—

'अष्ट विकल्पो दैवस्तैर्यायोनश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥'

शिव ये सारे रूप धारण करते हैं।

प्र.— यदि विश्व शिवरूप है तो शिव से भिन्न स्वभाव का क्यों है?

आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि गाय के स्तन से दूध निकलने के बाद वह गो का विकार कहलाता है किन्तु गो से भिन्न संज्ञा वाला अर्थात् 'दूध' कहा जाता है न कि गाय। उसी प्रकार शिवेच्छा से यह संसार शिव से ही उत्पन्न होकर उनसे भिन्न प्रतीत होता है। दूध गो से अतिरिक्त नहीं है उसी प्रकार संसार शिव से पृथक या अतिरिक्त नहीं है।[४]

शिव का सहजस्वरूप— यदि कोई यह प्रश्न करे कि बोध तो बुद्धि के

---

१. शिव दृष्टि (३३/१)।

२. तथा नाना शरीराणि भुवनानि तथा तथा।
विसृज्य रूपं गृह्णाति प्रोत्कृष्टाधममध्यमम्॥ (शिव दृष्टि, ३४/१)

३. शिवदृष्टि (३५/१)।

४. गोः स्तनात् पाततः क्षीरे विकारस्तत एव हि।
स- न च न क्षीरमित्येष व्यपदेशोऽस्ति तत्क्षणम्॥ —शिवदृष्टि (१८/१)

बिना होगा नहीं और बुद्धि तो प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण जड़ है तो फिर जड़ बुद्धि से शिव का सम्बन्ध कैसे सम्भव है?

सोमानन्दपाद कहते हैं कि—

(१) जब अभेद का ज्ञान नहीं रहता तब तो वह प्रमाता के लिए '**बुद्धि**' होती है किन्तु जब पूर्णपरावस्था प्राप्त हो जाती है और वेद्यवेतृभाव समाप्त हो जाता है और सूक्ष्मावस्था आ जाती है तब अभेद होने पर वही सार्वकालिक-सार्वदेशिक अखण्ड बोधमय ज्ञान हो जाता है। यही उस **शिव का सहजस्वरूप** है।[१]

सोमानन्द कहते हैं— 'ज्ञानं बोधमयं तस्य शिवस्य सहजं सदा॥'

शिव का योगि-ध्येय एवं आनन्दमय स्वरूप

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि यह है कि स्वस्वरूपानुप्रविष्ट, ज्ञानरूप-आनन्दरूप, दो शक्तियों वाला, पूर्ण परमेश्वर शिव सर्वप्रथम आनन्दमय शक्तिमात्र औन्मुख्यस्वरूप इच्छा के पूर्वभागानुरूप अपना रूप धारण करता है जो कि योगियों के ध्यान का विषय हुआ करता है।[२]

सर्वावस्थानुस्यूत शिव

शिव अवस्थातीत हैं— सारी अवस्थाओं से अतीत हैं तथापि ऐसी कोई अवस्था नहीं है जहाँ शिव न हों— "तस्माच्छब्दार्थचित्तासु न साऽवस्था न या शिवः॥" (स्पन्दकारिका)

स्वात्मप्रच्छादनक्रीडापण्डित ही 'शिव' हैं

महेश्वरानन्द ने शिव को आत्मप्रच्छादन क्रीड़ा में पण्डित कहा है—

'किन्तु दुर्घटकारित्वात् स्वाच्छन्द्यान्निर्मलादसौ।
स्वात्मप्रच्छादनक्रीडा पण्डितः परमेश्वरः॥'[३]

विश्व का सर्वोच्च गुरु और सर्वोच्च (आद्यतम) शिष्य ही शिव है

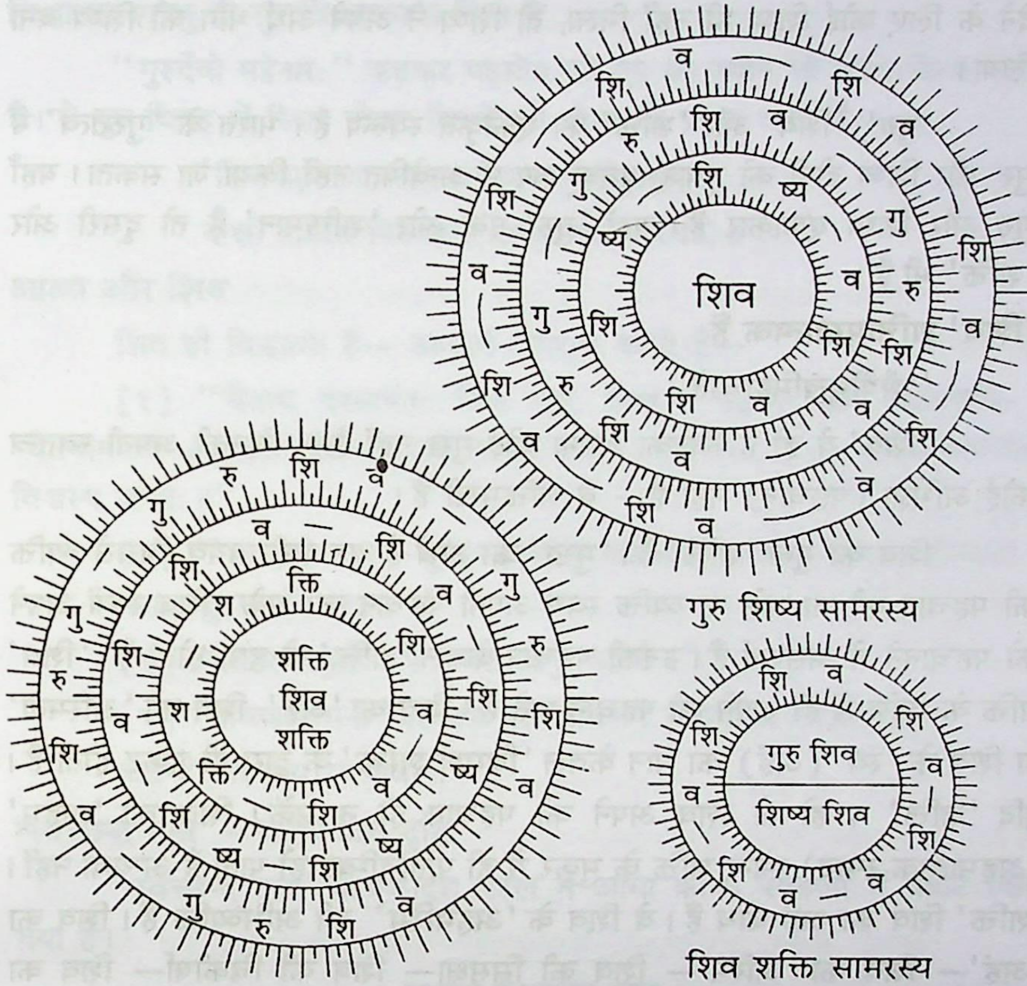
गुरुशिष्यैक्य * शिवशक्त्यैक्य

भगवान शिव सृष्टि के आदि एवं सर्वोच्च गुरु हैं— 'विश्वगुरु' हैं और सृष्टि के आद्यतम तथा सर्वोच्चतम शिष्य हैं। वे ऐसे गुरु हैं, जिसमें गुरु एवं शिष्य दोनों एकाकार हो गये हैं। इसीलिए वे गुरुशिष्यसामरस्यापन्न अप्रतिम एवं अद्वितीय गुरु हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है—

'गुरु' वह है जो अपने को उपदेश दे। गुरु वह है जो स्वयं गुरु-शिष्य दोनों

---

१. शिवदृष्टि (२६-२७/१-३) २. तत्रैव। शिवदृष्टि (१८/१)। ३. महार्थमञ्जरी।



गुरु शिष्य सामरस्य

शिव शक्ति सामरस्य

हो। इस विरोधाभास का कारण यह है कि भगवान शिव ही आद्य गुरु भी हैं और आद्य शिष्य भी—

'गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः ॥'[१]

शिव ही सर्वादि उपदेष्टा भी है और सर्वादि शिष्य भी। भारतीय विश्वगुरु का यही आदर्श रूप है कि वहाँ गुरु-शिष्य दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू (पक्ष) हैं।

भारत के गुरु-शिष्य के स्वरूप का आदर्शरूप यह है कि इसमें गुरु और शिष्य मयूराण्डरसन्याय की भाँति या जल और शर्करा की भाँति गुरु और शिष्य दोनों एकीभूत हैं। स्वयं गुरु ही उपदेश देने के लिए शिष्य बन गया है अतः वही 'गुरु' भी है और वही 'शिष्य' भी है। वही 'शिव' भी है वही 'शक्ति' भी है। शिव को उपदेश

१. गुरु शिष्य ने स्वयं अपने को शिष्य बनाकर अपने को उपदेश दिया। शिव शास्ता भी हैं और शिष्य भी।

देने के लिए कोई शिष्य ही नहीं मिला, तो शिष्य ने अपने अर्ध भाग को शिष्य बना लिया।

'गुरु', 'शिव' और 'शक्ति' का एकीकृत स्वरूप है। भारत के 'गुरुतत्व' में गुरु और शिष्य दोनों को पृथक्-पृथक् रूप में अन्वेषित नहीं किया जा सकता। यहाँ गुरु और शिष्य एकाकार हैं। यहाँ 'गुरु' एक ओर 'शक्तिमान' है तो दूसरी ओर 'शक्ति' भी है।

'शिव' शक्तिमुखात्मक हैं

''शैवीमुखमिहोच्यते''

'शिव' वे ही हैं जिनका अपना कोई मुख नहीं है— जिनकी अपनी स्वतन्त्र कोई अभिज्ञा (पहचान) नहीं है— वे शक्तिमुखी हैं।

शिव का मुख 'शक्ति' है। **'मुख' का अर्थ** है वह शरीरावयव जिससे व्यक्ति की पहचान की जा सके या व्यक्ति स्वयं अपनी पहचान कर सके। शिव स्वयं अपने को पहचानने में असमर्थ हैं। उनकी पहचान केवल 'शक्ति' के द्वारा होती है। 'शिव' शक्ति के दर्पण में ही अपने को पहचान पाते हैं। शिव का 'अहं', शिव की 'अस्मिता' या शिव के 'स्व' (अहं) का मान केवल **'विमर्श शक्ति'** के द्वारा ही प्रकट होता है। यदि 'शक्ति' न हो तो शिव अपने को पहचान ही न सकें। शिव का 'अहम्' (अहमात्मक स्पन्द) स्पन्द शक्ति के मुकुर में ही प्रतिबिम्बित हो पाता है अन्यथा नहीं। 'शक्ति' शिव का अहं बोध हैं। वे शिव के **'अहमस्मि'** की अभिव्यक्ति हैं। शिव का 'अहं'— शिव का 'अस्मि'— शिव की सिसृक्षा— शिव की चिकीर्षा— शिव का स्पन्द— शिव की गति— शिव की इच्छा ज्ञान-क्रिया तथा शिव का चित् और आनन्द सभी कुछ 'शक्ति' है अतः 'शक्ति' को शिव का मुख कहा गया है।

अभिनवगुप्त ने इसीलिए कहा है कि— 'श्रीदेव्युवाचेत्यादौ स्वात्मदेवतैव प्रबुध्यमानावस्थायामात्मानं परामर्शेनावरतं पृच्छति॥'

—त्रिंशिकाशास्त्र की व्याख्या

समस्त प्राणियों का अन्तस्थ 'स्वभाव' ही शिव है

परापञ्चाशिकाकार का कथन है कि संसार के जितने भी प्राणी हैं उनका जो 'स्वभाव' ('स्व' रूप भाव या 'स्वभाव') है वह शिव है। सारे प्राणी भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु उनमें निहित जो **'स्वभाव'** है वह एक है और वह स्वभाव शिव है—

'स एव सर्वभूतानां स्वभावः परमेश्वरः।
स एव भैरवो देवो जगद्भरणलक्षणः॥

विश्वात्मा शम्भु ही गुरुविग्रहात्मक शिव है

"गुरुर्देवो महेश्वरः" कहकर महादेव को गुरु का स्थान भी प्रदान किया गया है। वे गुरु विग्रह में स्थित होकर शिष्यों को दीक्षा भी प्रदान करते हैं—

'शिव एव तदा साक्षादास्थाय गुरुविग्रहम्।
दीक्षां करोति विश्वात्मा शम्भुशक्त्यानुवेधतः॥'

आत्मा और शिव

शिव ही विश्वात्मा है— आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

[१] "चैतन्य परमार्थतः शिव एव, विश्वस्य आत्मा इति आदिशति— 'चैतन्यमात्मा' (१/१) 'चैतन्यम् उक्तं स एव आत्मा। स्वभावः..........भावाभावरूपस्य विश्वस्य जगतः॥"

[२] "न शरीर-प्राण-बुद्धि-शून्यानि लौकिक-चार्वाक-वैदिक-योगाचार-माध्य-मिकाद्यभ्युपगतानि आत्मा॥"

[३] 'चैतन्यमात्मनो रूपं सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥'[१]

[४] 'जीवजडात्मनो विश्वस्य परमशिवरूपं चैतन्यमेव स्वभावः॥'

चैतन्यं विश्वस्य स्वभावः॥'

'स्वच्छन्द तन्त्र' - प्रतिपादित दृष्टि

'स्वच्छन्द तन्त्र' के एकादश पटल में आमा को ५ स्वरूपों में प्रकट किया गया है।

आत्मा के पाँच रूप

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'आत्मा'	'अन्तरात्मा'	'बाह्यात्मा'	'निरात्मा'	'परमात्मा'

(१) "आत्मा चैवान्तरात्मा च बाह्यात्मा चैव सुन्दरि।
निरात्मा परमात्मैतान्कथयामि समासतः॥"
— स्व. तन्त्र (६/८२)

(२) 'आत्मा चैवान्तरात्मा च बाह्यात्मा चैव सुन्दरि।
निरात्मा परमात्मैतान्कथयामि समासतः॥'
—स्व. तन्त्र (६/८२)

---

१. शिवसूत्र विमर्शिनी (१/१)।

कहकर 'स्वच्छन्द आगम' में आत्मा के इन सभी पृथक्-पृथक् आत्मरूपों के पृथक्-पृथक् लक्षण प्रस्तुत किए हैं।

(१) 'आत्मा'

'प्रधानसाम्यमाश्रित्य सुखदुःखविवर्जितः।
यदा तस्मिन्स्थितो देवि **तदात्मा** तु स उच्यते॥'

आत्मा= कञ्चुकमात्र शरीर। प्रकृतिलीन आत्मा। सुखादिशून्य प्रकृतिलीन होने से व्यामूढ़।

'सुखादिरहितः प्रकृतिलीनत्वाद् व्यामूढ़॥'

गुणसाम्ययुक्त, अनिर्देश्य, अप्रतर्क्य, अनौपम, उसमें समस्त जगत प्रसुप्तवत स्थित रहता है।

(२) 'अन्तरात्मा' का स्वरूप

पुर्यष्टकसमायोगात् पर्यटेत् सर्वयोनिषु।
अन्तरात्मा स विज्ञेयो निबद्धस्तु शुभाशुभैः॥[1]

उद्योतकार आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

पुर्यष्टक के सम्बन्ध से वासनारूप शुभाशुभों से निबद्ध होता हुआ अनेक योनियों में प्रसरण करता हुआ आत्म-बाह्यात्म के मध्य अवस्थित होने के कारण **'अन्तरात्मा'** कहलाता है।

आन्तर, सूक्ष्म, शरीरात्मक, पुर्यारम्भक, तन्मात्रपञ्चकात्मक एवं मनोबुद्धि-अहङ्कारात्मक स्वरूप वाला ही होता है **'पुर्यष्टक'**।

(३) बाह्यात्मा का स्वरूप[2]

(१) 'बुद्धिकर्मेन्द्रियैर्युक्तो (२) महाभूतैः समावृतः।
'बाह्यात्मा तु' तदा देवि! भुङ्क्तेऽसौ विषयान्सदा॥'

यह स्थूल देहवान है।

(४) निरात्मा का स्वरूप— (स्व. तं. ६/८७-८८)

('विज्ञानाकल')

---

१. स्वच्छन्द तन्त्र।

२. उद्योतः स्व. तं. ११ पटल/२ :८५.८६।

३. स्व. तं. (६/८६-८७)।

४. स्व. तं. (११/८७)।

(१) 'भूतभावविनिर्मुक्त (२) स्वत्वधर्मकलोज्झितः।

(३) 'मलधर्मैकयुक्तात्मा (४) मायाधर्मतिरस्कृतः॥

निरात्मा तु तदा ज्ञेयः . . . .॥''

('भूतभावविनिर्मुक्त'=स्थूलसूक्ष्मपञ्चभूतों एवं भावों से बुद्धिधर्मों से विनिर्मुक्त।

'तत्त्वधर्मेण'— पुंस्त्वात्मना रूप द्वारा।

'कलोज्झित'— कलोपलक्षित कञ्चुक से उज्झित।

'मलधर्मैकमुक्तात्मा'— केवल एक मलधर्म से आणवमलस्वभावमात्र से युक्त।

'मायाधर्मतिरस्कृतः'— शक्तिरूप धर्म से अख्यात्यात्मक दृष्टि से तिरस्कृत सङ्कुचिताभासीकृत न कि आत्म धर्म से तिरस्कृत।

इस प्रकार का अभ्यस्तमायापुंस्तत्वविवेकी।

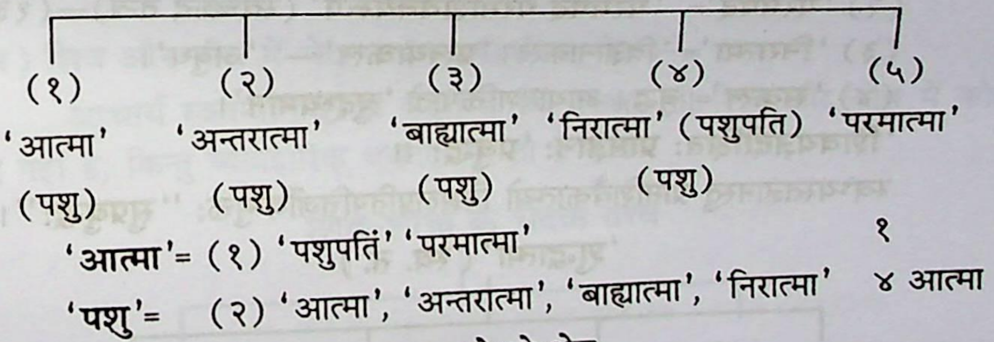
'विज्ञानकला' ही **'निरात्मा'** है।

'निरात्मा'= मलकर्मैकयुक्तात्मा।

(५) परमात्मा का स्वरूप

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'यदा तीव्रतमानुग्रहान् पूर्णतया स्फुरत्ययं तदा परमात्मा इति कथ्यते। न तु पूर्ववत् पशुरूपः॥'

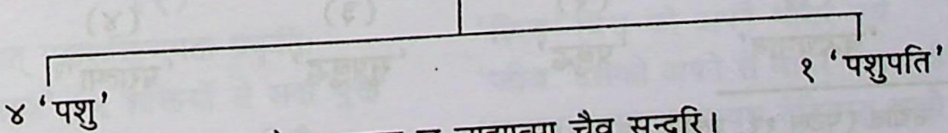
पशु और पशुपति



'आत्मा'= (१) 'पशुपतिं' 'परमात्मा'

'पशु'= (२) 'आत्मा', 'अन्तरात्मा', 'बाह्यात्मा', 'निरात्मा'

आत्मा के दो भेद



''आत्मा चैवान्तरात्मा च बाह्यात्मा चैव सुन्दरि।

निरात्मा परमात्मैतान् कथयामि समासतः॥''

आत्मा (स्वच्छन्द तन्त्र १०१/१८२)

(१) 'पशु'

(२) 'अतिमार्गी'

(१) 'अतीतं बुद्धिभावाना**मतिमार्गं** प्रकीर्तितम्।
लोकातीतं तु तज्ज्ञान**मतिमार्गमिति** स्मृतम्॥' (११/१८२)

(२) 'लोकाश्च **पशवः** प्रोक्ता सृष्टिसंहारवर्त्मनि।
तेषामतीतास्ते ज्ञेया **येऽतिमार्गे** व्यवस्थिताः॥' (११/१८३)

(३) 'परमात्मा'— (१) मलकर्म कलाद्यैस्तु निर्मुक्तश्च यदा प्रिये।
(२) सर्वाध्वसतीतश्च मायामोहोज्झितश्च यः।
(३) निर्मलत्वं यदा याति पदं परममव्ययम्।
(४) **परमात्मा** तदा देवि! प्रोच्यते प्रभुरव्ययः॥ (८९-९०)
(५) **आचार्य क्षेमराज** कहते हैं—

''सर्वं समनान्तमध्वानं सम्यक् तेषां विलापनयुक्त्या अतीतो न क्वापि अध्वनि गृहीतात्माभिमानतः अतश्च मायामोहे नेति, इति पूर्वमुक्ता या माया तत्कृतेन मोहेन सुसूक्ष्मेणापि महामायासङ्कोचेन उज्झितो रहितः। इत्थंभूतः सन् यदा परमं पदं परम शिवैक्यरूपं निर्मलत्वमायाति तदा असौ अव्ययोऽविनाशी प्रभुः सर्वत्र स्वामी **'परमात्मा'** इति उच्यते।''[1]

(१) **'अन्तःकरण'**= 'मनोऽहङ्कारबुद्ध्याख्यं त्रिधान्तःकरणं स्मृतं'।
(२) **'परमपद'**= **'परमंपदं परमशिवैक्यरूपं'** (स्वच्छन्द तन्त्र)—(१३३)
(३) **'निरात्मा'**= 'विज्ञानाकल। **'प्रलयाकल'**— 'अबुध'।
(४) **'सकल'**= बुद्ध। आयातशक्तिपातो **'बुद्ध्यमान'**।
'शिवयज्ञदीक्षितः प्राप्तज्ञानः 'प्रबुद्धः'॥
स्वभ्यस्तज्ञानस्तु प्राप्तशिवैकात्म्यो निश्चलप्रतिपत्तिर्जीवन्मुक्तः **''सुप्रबुद्धः''**।

'शुद्धात्मा' (स्व. तं.)

(१) 'बुद्ध्यमान'

(२) 'प्रबुद्ध'

(३) 'सुप्रबुद्ध'

(४) 'परात्मा'[2]

---

१. उद्योत (पटल ११, श्लोक ८९-९०)।

२. स्वच्छन्द तन्त्र (६/१२५)

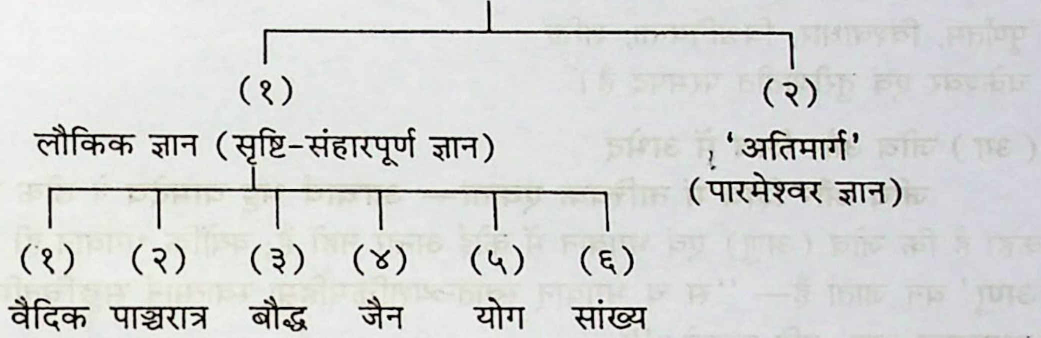
अतिमार्गी— आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

"ये संवित्तत्वं न जानन्ति.......ते सर्व इह **लोका** उच्यन्ते।"

तदतीता अतिमार्गस्था: ॥" (उद्योत)

> 'यस्मान्मोक्षं गमिष्यन्ति अपुनर्भवकारणम्।
> लौकिकानां पुनः सृष्टिः पुनः संहार एव च॥' (१८५)

आत्मगत 'ज्ञान' के भेद (स्वच्छन्द तन्त्र : 'उद्योत')



शैव तान्त्रिक दृष्टि में सर्वोच्च ज्ञान का स्वरूप-

(१) 'सर्वशक्त्यात्मकं ह्येकं स्वतन्त्रानाथनादिमत्।
सर्वातिशापनिर्मुक्तमनादिभववर्जितम्॥ १९४॥

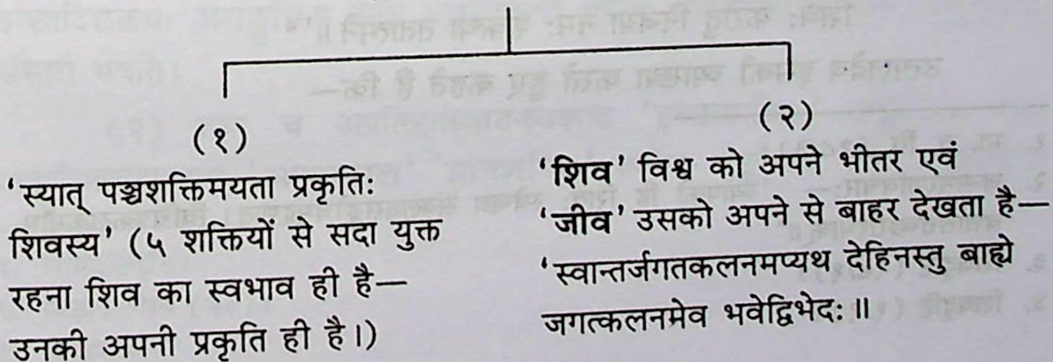
(२) सर्वज्ञानपदातीतं **शैवं ज्ञानं परं स्मृतं**॥

जीव और शिव

(अ) शिव और जीव में भेद— (व्यावहारिक भेद)—

आचार्य स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं कि तत्त्वतः तो शिव और जीव में कोई भेद नहीं है, किन्तु व्यावहारिक धरातल पर तो है ही।

शिव-शक्ति के भेदक तत्त्व



'शिवस्य पञ्चशक्तिमयता प्रकृति स्वभावः स्यात्' —शिवानन्द
शिव 'मायातीत' है।
(शिव में माया निहित है किन्तु शिव उससे प्रभावित नहीं होता।)
शिव अनादि, अनन्त, सर्वव्यापी, अक्षर, अविकारी, साक्षी, पूर्णचैतन्यस्वरूप, पूर्णतम, विश्वाधार, विश्वनियन्ता, शक्ति चक्रेश्वर एवं तुरीयातीत परमपद है।

स्वाभ्यन्तरस्थ जगतोऽपि विमोहशक्त्या।[१]
(जीव मायोपहित है और वह उससे अहर्निश प्रभावित होता रहता है। जीव, सादि, सोपाधि, सविकारी, अपूर्ण, अज्ञानी एवं मलोपेत है।)

(आ) जीव और शिव में अभेद

जीव और शिव में तात्त्विक एकता— आचार्य भट्ट वामदेव ने ठीक ही कहा है कि जीव (अणु) एवं भगवान में कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि भगवान ही तो **'अणु'** बन जाता है— ''स च भगवान् स्वातन्त्र्यशक्तिमहिम्ना स्वात्मानं सङ्कुचितमिव आभासयन् अणुः इति उच्यते॥''[२]

शिवात्मैक्यवाद (शिव और जीव में सम्बन्ध)

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि— आचार्य सोमानन्द कहते हैं गाय के स्तन से दूध निकलने के तत्काल बाद वह दूध गो का विकार कहलाने लगता है और गाय से पृथक् अस्तित्व के रूप में **'दूध'** कहलाने लगता है। इसी प्रकार **शिवेच्छावश** यह विश्व उन्हीं में उत्पन्न होकर भी उनसे भिन्न प्रतीत होने लगता है। जिस प्रकार यथार्थतः दूध गो से पृथक् पदार्थ नहीं है उसी प्रकार संसार शिव से पृथक् नहीं है—

गोस्तनात् पाततः क्षीरे विकारस्तत एव हि।
न च न क्षीरमित्येष व्यपदेशोऽस्ति तत्क्षणम्॥[३]

सोमानन्दपाद 'शिव दृष्टि' के मङ्गलाचरण में प्रथम श्लोक की अवतारणा में भी अपने को शिव से अभिन्न मानकर कहते हैं कि—

'अस्मदरूपसमाविष्टः स्वात्मनात्मनिवारणे।
शिवः करोतु निजया नमः शक्त्या ततात्मने॥'[४]

उत्पलदेव इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—

---

१. मा. च. वि. (१८/३)।
२. जन्ममरणविचारः— 'व्यापको हि शिवः स्वेच्छा संक्लृप्तसङ्कोचमुद्रणात्। विचित्रकलकर्मौघ-वशात्तत्तच्छरीरभाक्॥'
३. शिवदृष्टि (१८/१)।
४. शिवदृष्टि (१/१)।

'योऽहं नमस्करोमि स शिवोऽस्मदरूपेणैक्यं प्राप्तः।
वस्तुस्थित्या हि सर्वतत्त्व विग्रहो.........शिवः।'[१]

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि जब साधक 'शक्ति' की अवस्था में प्रविष्ट हो जाता है तब वह अपने एवं शिव के मध्य स्थित विभाजक रेखा (विभाग) से मुक्त होकर स्वयं शिव बन जाता है—

'शक्त्यवस्था प्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना।
तदासौ **शिवरूपी** स्यात् शैवीमुखमिहोच्यते॥'[२]

आचार्य शङ्कर की दृष्टि— आचार्य शङ्कर कहते हैं कि— 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या **जीव ब्रह्मैव नापरः॥**'

शक्तिविश्वैक्यवाद

मायावादी शाङ्करदर्शन में विश्व मिथ्या है, किन्तु **'तान्त्रिक शैव शाक्त दर्शन** में 'विश्व' शक्ति है इसीलिए कहा गया है कि— **'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नम्'।**

शिवसूत्रकार ने कहा है— **'स्वशक्ति प्रचयोऽस्य विश्वम्॥'**

—शिवसूत्र (३/३०)

'शिव' और संसारी प्राणियों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। **शिव ही 'संसारी'** बन जाता है अतः माया-परिबद्ध 'संसारी' ('सकल' जीव) भी शिव का ही प्रच्छन्न रूप है।

'जीव' और 'शिव' में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज उपर्युक्त तथ्य को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

(१) ''चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचात् मलावृतः संसारी''[३] 'यदा चिदात्मा परमेश्वरः स्वस्वातन्त्र्यात् अभेदव्याप्तिम् निभज्य भेद व्याप्तिम् अवलम्बते तदा तदीया इच्छादिशक्तयः असङ्कुचिता अपि सङ्कोचवत्यो भान्ति, तदानीमेव च अयं 'मलावृतः' संसारी भवति।

(२) तथा च अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा **'इच्छाशक्तिः'** सङ्कुचिता सती अपूर्णम्मन्यतारूपम् **'आणवमल' 'ज्ञानशक्तिः'** क्रमेण सङ्कोचात् भेदे सर्वज्ञत्वस्य

---

१. शिवदृष्टिवृत्ति।

२. विज्ञान-भैरव (२०)।

३. शक्तिसूत्र।

किञ्चिज्ज्ञत्वाप्तेः अन्तःकरणबुद्धीन्द्रियतापत्तिपूर्वं अत्यन्तं सङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्य प्रथारूपं **'मायीयं मलम्'**।

'क्रियाशक्तिः' क्रमेण भेदे सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रियरूप-सङ्कोचग्रहणपूर्वम् अत्यन्तं परिमिततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं **'कार्मं मलम्'**।

(३) ''तथा सर्वकर्तृत्व— सर्वज्ञत्व— पूर्णत्व— नित्यत्व— व्यापकत्वशक्तयः सङ्कोचं गृह्णाना यथाक्रमं 'कला'— 'विद्या'— 'राग'— 'काल'— 'नियति' रूपतया भान्ति॥

(४) ''तथाविधश्च अयं शक्तिदरिद्रः संसारी उच्यते, स्वशक्तिविकासे तु **'शिव'** एव॥''[१]

शिव के संसारी जीव बनने की विकास-यात्रा इस प्रकार है कि शिव ही लीलावश शक्तिदरिद्री बनकर 'पशु' या 'संसारी जीव' बन जाता है।

आचार्य क्षेमराज प्रश्न करते हैं कि— 'एवंभूतस्य आत्मनो विभूतिः' तत कथमयं मलावृतः अणुः कलादिवलितः संसारी अभिधीयते?

अर्थात् यदि आत्मा की इस प्रकार की दैवी विभूति है तो यह मलों से आवृत 'अणु' तथा कला आदि से युक्त 'संसारी' क्यों कहा जाता है।

आचार्य क्षेमराज इसका सविस्तार उत्तर देते हुए कहते हैं कि— ''चिद्विभु **शक्ति के सङ्कोच** के कारण ही मलों से आवृत होकर **संसारी** बन जाता है।''

शक्ति का सङ्कुचित हो जाना ही शिवत्व का जीवत्व में परिणमन है। शक्ति का सङ्कोच ही **'शिव'** को **'जीव'**, **'पशुपति'** को **'पशु'** एवं **'असंसारी'** को **'संसारी'** ('मायापति' को माया का दास) बना देता है।

(१) अभेद-व्याप्ति का भेद-व्याप्तिरूप सङ्कुचन

जब चिदात्मा पमेश्वर अपनी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' के द्वारा अपनी स्वसिद्ध अभेद-व्याप्ति को सङ्कुचित करके भेदव्याप्ति का अवलम्बन ग्रहण करते हैं तभी उसकी अपरिमेय शक्तियाँ सङ्कुचित हो जाती हैं।

(२) शैवी शक्तियों का सङ्कुचन

अवरोह की इसी अधोगामी प्रक्रिया या क्रम में शिव की 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' सङ्कुचित हो जाती है।

(३) शक्तियों के सङ्कुचन से मलाविर्भाव

उपर्युक्त अपरिमेय सामर्थ्यवाली शैवी शक्तियों के सङ्कुचित हो जाने पर—

---

१. 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्'।

(क) 'इच्छा शक्ति'— 'आणवमल' बन जाती है।

(ख) 'ज्ञान शक्ति'— 'मायीय मल' बन जाती है।

(ग) 'क्रिया शक्ति'— 'कार्म मल' बन जाती है।

शिव की अप्रतिहत स्वातन्त्र्यरूपा **'इच्छाशक्ति'** सङ्कुचित होकर अपूर्णमन्य-तात्मक **'आणवमल'** के नाम से कही जाने लगती है।

'जब शिव की अप्रतिहत एवं अनन्तशक्तिशाली **'ज्ञानशक्ति'** क्रमशः सङ्कुचित हो जाती है तब वह **'मायीय मल'** कहलाने लगती है। फिर **'ज्ञानशक्ति'** की **सर्वज्ञातृत्व** की क्षमता **अल्पज्ञत्व** में रूपान्तरित हो जाती है; क्योंकि **'ज्ञानशक्ति'** भेदस्तर पर उतर कर अपनी क्षमता को क्षीण कर देती है। इस अवरोहण के कारण ही अन्तःकरण एवं ज्ञानेन्द्रियाँ सङ्कोच ग्रहण करती हैं। इस प्रकार विकास-क्रम के अनुसार देह आदि परिच्छिन्न मेय पदार्थों में अहंबुद्धि का आविर्भाव हो जाता है। इसी भेद-दृष्टि को वेद्यों के विकास को **'मायीय मल'** कहते हैं— 'अत्यन्तं सङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्यप्रथारूपं मायीयमलम्॥''

(४) **'इच्छाशक्ति' सङ्कुचन 'आणव मल'** के रूप में परिणत हो जाता है।

(५) **'ज्ञान शक्ति' का सङ्कुचन 'मायीय मल'** के रूप में परिणत हो जाता है।

(६) 'क्रियाशक्ति' का सङ्कुचन **'कार्ममल'** के रूप में परिणत हो जाता है।[१]

यथाक्रम जब भेदावस्था में 'क्रियाशक्ति' की **सर्वकर्तृत्व शक्ति** अल्प कर्तृत्व का आच्छादन ओढ़ लेती है तथा कर्मेन्द्रियरूप सङ्कोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित हो जाती है तब उसे ही शुभाशुभ कर्मों से युक्त **'कार्ममल'** कहा जाता है— ''पारिमिततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं **कार्ममलम्**॥''

(१) सर्वकर्तृत्वशक्ति— सङ्कुचित होकर— अल्पकर्तृत्व— **'कला'**।

(२) 'सर्वज्ञत्व' शक्ति— सङ्कुचित होकर— अल्पज्ञातृत्व— **'विद्या'**।

(३) 'पूर्णत्व' शक्ति— सङ्कुचित होकर— अपूर्णत्व, अतृप्ति— **'राग'**।

(४) 'नित्यत्व' शक्ति— सङ्कुचित होकर— अनित्यत्त्व— **'काल'**।

(५) 'सर्वव्यापकत्व' शक्ति — सङ्कुचित होकर— पारमित्य— **'नियति'**

— के रूप में भासित होती हैं। इसी स्थिति में आत्मा शक्तियों से दरिद्र होकर **'संसारी'** कहा जाने लगता है। किन्तु जब वह अपनी शक्ति का विकास कर लेता है

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

तब वह अपनी इस शक्तिविकास की अवस्था में 'शिव' ही है।[१]

'आत्मा संसारी दशा में भी शिव के सदृश पञ्चकृत्यों को निष्पादित करता है॥''—

''तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति॥''[२]

अहं (मैं) और परमशिव (अहमात्मक शिव)

परमशिव के विभिन्न रूप

परम शिव रूपहीन होने पर भी अनन्तरूपात्मक हैं। वे विश्वमय होकर भी विश्वातीत हैं। लक्ष्मणदेशिक कहते हैं कि—

'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दु-समुद्भवः॥'

—शारदातिलकम्

अहमात्मक शिव

शिव का 'अहं'

विश्वातीतात्मक
विश्वात्मक, शक्त्यात्मक, शब्द-ब्रह्मात्मक एवं नादात्मक 'मैं'

अहं
(मैं)

'मैं' (अहं)

'शिव'— 'मैं विश्व हूँ।'
मैं विश्वात्मा हूँ।

'जीव'— मैं पुर्यष्टक, पञ्चकोश, अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, इन्द्रियों का धर्म, घर, परिवार, जागतिक जड़सम्बन्ध और जड़-चेतन-मिश्रित अस्मिता हूँ।

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सू. ९)।

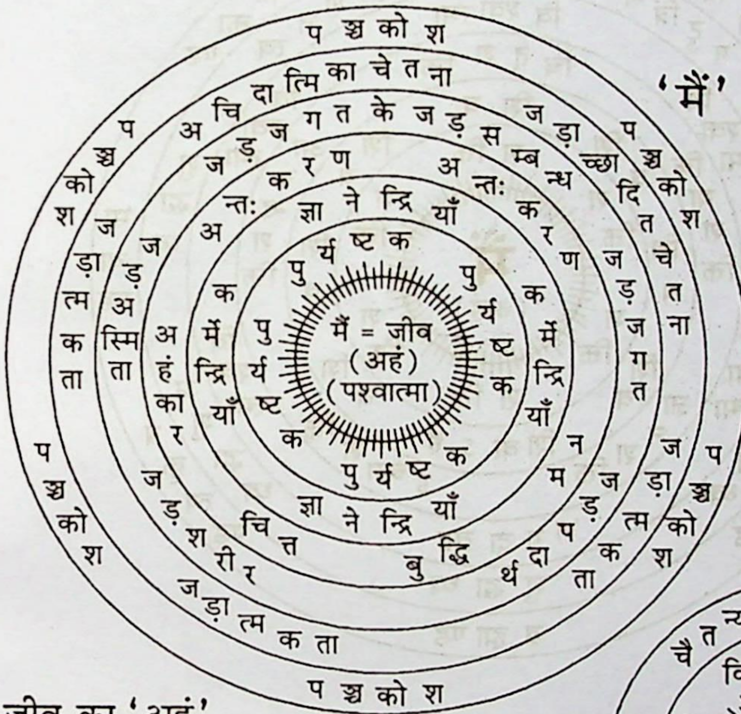
२. शक्तिसूत्र (१०)।

अहमात्मक शिव —
- पशुपति (चेतन)
- विश्व (चेतन शिव का विश्व भी चेतन है।)
- पशु (मलाच्छादित चेतना)

१. पशु (शरीरवान चेतन) अवस्थात्रयात्मक शिव। मितात्मक शिव। पारमित्यात्मक आत्म चैतन्य। व्यष्टिभूता चैतन्यांश जाड्यप्रधान जीव

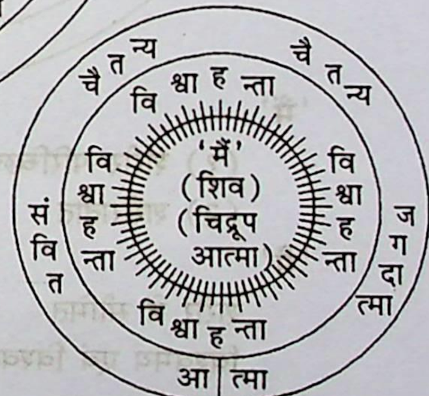
२. पशुपति विश्वरूप अमितात्मक शिव (विश्वमय एवं विश्वातीत शिव) (चैतन्य)॥

‘मैं’

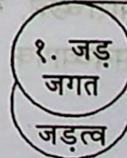


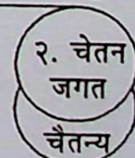
जीव का ‘अहं’

चैतन्यरूप शिव



‘चैतन्यमात्मा’ (शि. सूत्र)

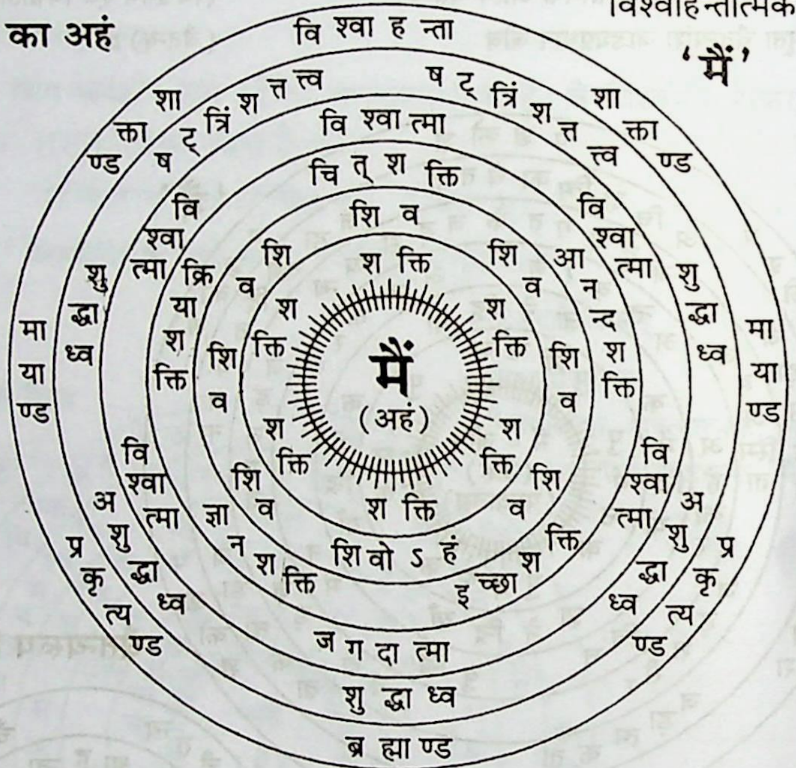




विश्वात्मा एवं विश्वाहन्तात्मक शिव— (अहमात्मक शिव)

शिवात्मक,
शक्त्यात्मक,
षट्त्रिंशदात्मक एवं
विश्वाहन्तात्मक
'मैं'

शिव का अहं



'मैं'

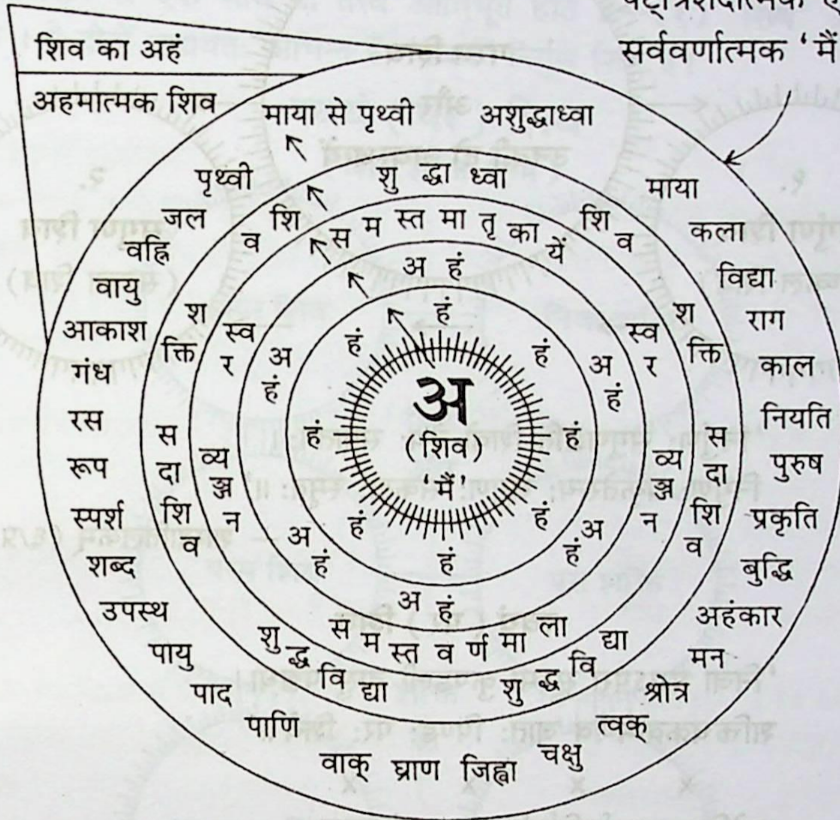
(१) शरीर-परिच्छिन्न
(२) शरीरातीत

'मैं'

शरीर में सीमित
विश्वमय एवं विश्वातीत

'मैं'

(१) परिच्छिन्न, बद्ध एवं मलोपेत आत्मा
(२) सर्वव्यापक अपरिच्छिन्न मलहीन विश्वात्मा



'मैं' (अहं)

(१) 'अहं' = मैं शिव, शक्ति एवं विश्व हूँ।

(२) 'अ' — अनुत्तर शिव संवित् (प्रकाश)।

(३) 'ह' शक्ति (विमर्श)।

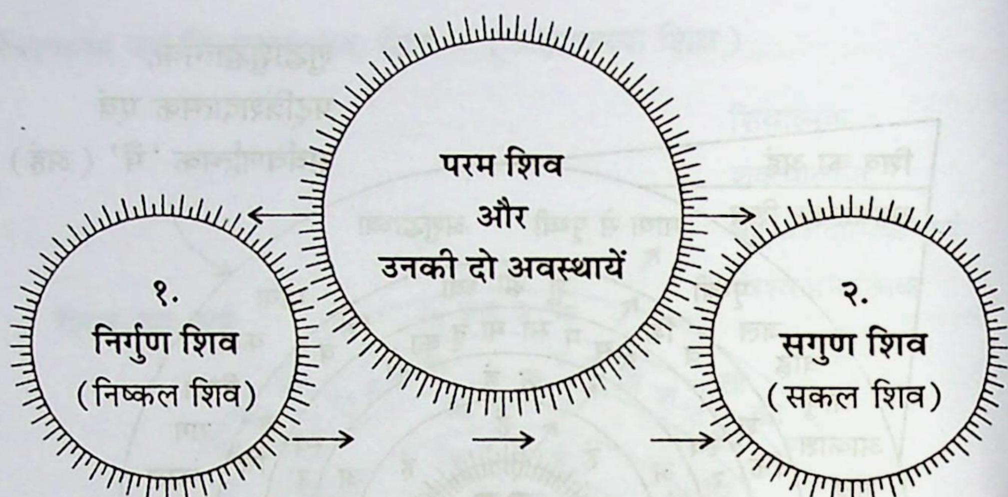
(४) 'अहं' (मैं)

(१) 'मैं' अ से 'ह' पर्यन्त समस्त स्वर व्यञ्जनात्मक वर्णमाला हूँ।

(२) मैं 'अ' (शिव) एवं ह (शक्ति) हूँ अत: शिवशक्त्यात्मक हूँ।

(३) समस्त विश्व अ-हं से उत्पन्न हुआ है अत: मैं ब्रह्मात्मक होने के कारण विश्वात्मक हूँ।

(४) ३६ तत्त्व 'अ-ह' से उत्पन्न हुए हैं और मैं अहमाकार हूँ— अहं (मैं) हूँ अत: मैं भी षट्त्रिंशदात्मक हूँ।



'निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः॥'

— शारदातिलकम् (६/प्र. प.)

स्वयं (पर) शिव

'निजा पराऽपरा सूक्ष्मा कुण्डली तासु पञ्चधा।
शक्तिचक्रक्रमेणैव जातः पिण्डः परः शिवे॥'

x x x x

ततोऽस्मतापूर्वमर्चिर्मात्रं **स्यादपरं परम्**।
तत्स्वसंवेदनाभासमुत्पन्नं परमं पदम्।
स्वेच्छामात्रं ततः **शून्यं** सत्तामात्रं **निरञ्जनम्**
तस्मात्ततः स्वसासाक्षाद्भूः परमात्मपदं मतम्॥'

—सिद्धसिद्धान्त संग्रह (नाथ संप्रदाय का ग्रन्थ)

'स्वयं'— कार्यकारणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम्।
अव्यक्तं परमं तत्त्वं **'स्वयं'** नाम सदा भवेत्।

—सिद्धसिद्धान्त संग्रह (१/४) (नाथ संप्रदाय का ग्रन्थ)

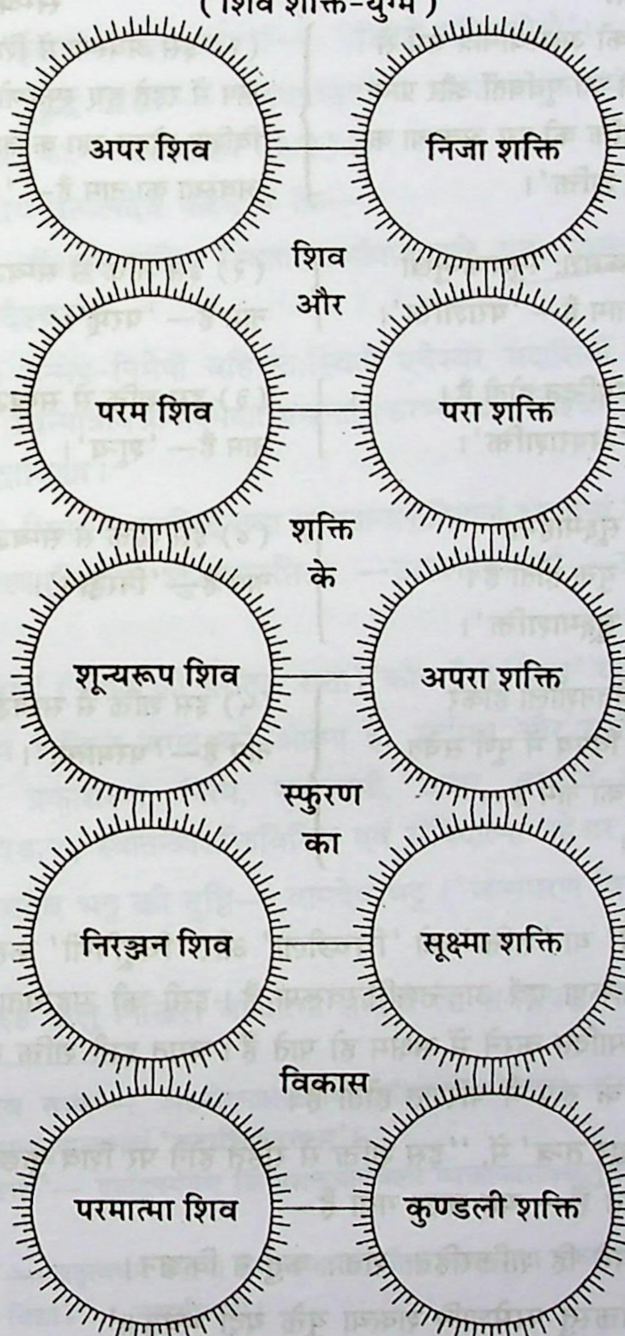
(१) 'स्वयं'— 'स्वयं' के रूप में विद्यमान शिव में कर्तृत्व नहीं होता अतः वह कार्यकारण-चक्र का सञ्चालन नहीं करता। वह कुलाकुल के भेद से परे रहता है। वह अव्यक्तावस्थावस्थित रहा करता है। इसे **'स्वयं'** कहा गया है। यह **इच्छाहीन शिव** है।

(२) जब इस 'स्वयं' (परमशिव) में सिसृक्षा होती है तब (इच्छा युक्त होने

के कारण) इसे '**सगुण शिव**' कहते हैं। '**इच्छा**' (शिव की सिसृक्षा) ही '**शक्ति**' है। साकांक्ष शिव से एक साथ दो तत्त्व आविर्भूत होते हैं—(१) 'शिव' और (२) 'शक्ति'। ये दोनों यथार्थतः अभिन्न हैं। '**स्वयं**' निर्गुण शिव है।

स्वयं (पर) शिव

(शिव शक्ति-युग्म)



(१) '**शिव**' और (२) '**शक्ति**'। ये दोनों यथार्थतः अभिन्न हैं।

शक्ति की ५ अवस्थायें

शक्ति	सम्बद्ध शिव
(१) परम शिव की अवस्थामात्र धर्म से युक्त, स्फुरित होने की पूर्ववर्ती और प्रायः स्फुरितोपक्रान्त शक्ति की इस अवस्था का नाम है— '**निजा शक्ति**'।	(१) इस अवस्था में शिव अपने अव्यक्त रूप में रहते हुए स्फुरणोन्मुखी शक्ति से विशिष्ट होकर रहा करता है। शिव की इस अवस्था का नाम है— '**अपरंपदम्**'।
(२) अब शक्ति क्रमशः स्फुरणोन्मुखी होती है। इसका नाम है— '**पराशक्ति**'।	(२) इस शक्ति से सम्बद्ध शिव का नाम है— '**परम्**'।
(३) फिर शक्ति **स्पन्दित** होती है। इसका नाम है— '**अपराशक्ति**'।	(३) इस शक्ति से सम्बद्ध शिव का नाम है— '**शून्य**'।
(४) फिर शक्ति '**सूक्ष्माहन्ता**' (पार्थक्यभाव) से युक्त होती है। इसका नाम है— '**सूक्ष्माशक्ति**'।	(४) इस शक्ति से सम्बद्ध शिव का नाम है— '**निरञ्जन**'।
(५) फिर शक्ति चेतनशीला होकर अपने पृथकत्व के विषय में पूर्ण सचेत हो जाती है— इसका नाम है— '**कुण्डलीशक्ति**'।	(५) इस शक्ति से सम्बद्ध शिव का नाम है— '**परमात्मा**'।

'कुण्डली' या 'शक्ति' को 'चिच्छीला' और 'चिद्रूपिणी' कहा गया है। यह 'चिच्छक्ति' अनन्तरूपा एवं अनन्तशक्तिस्वरूपा है। इसी की सहायता से 'परमशिव' सृष्टि-व्यापार निष्पादित करने में सक्षम हो पाते हैं। जगत इसी शक्ति का परिणाम है — यही शक्ति जगत के रूप में परिणत होती है।

'**वामकेश्वर तन्त्र**' में, ''इस शक्ति से रहित होने पर शिव कुछ भी कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं— यह कहा गया है—

'परो हि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन।
शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्ते यदा भवेत्॥'

अब कुण्डली शक्ति सृष्टिक्रम को अग्रपद करने हेतु सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर अग्रसर होती है।

अब सृष्टि-क्रम में आगे आते हैं—

(१) **'सदाशिव'**— अहं प्रधान[१]— **'**निमेषोऽन्तः सदाशिवः।' —प्रत्यभिज्ञा-कारिका (३/३)।

(२) **'ईश्वर'**— इदं-प्रधान[२]— 'ईश्वरो बहिरुन्मेषो'।

(३) **'शुद्ध विद्या'**— उभयप्रधान[३]— सामानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदं-धियोः॥ —(प्र. का. —उत्पलदेव (३/३)।)

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि—

(१) ईशितुरन्तर्बहिः स्थितावन्तर्भावप्राधान्ये पुनः **सादाख्यंतत्त्वम्,** अपरं बहिर्भावोद्रेकाद**ैश्वरम्।**

(२) उन्मेष-निमेषौ बहिरन्तःस्थिती एवेश्वर सदाशिवौ बाह्याभ्यन्तरयोर्वेद्य-वेदकयोरेक चिन्मात्रविश्रान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं **विश्वमहमिति** विश्वात्मनो मतिः— **शुद्धाविद्या।**

(३) भिन्नवेद्यभूमाविदन्तया दृश्यतामापादितानां **भावानां चिन्मात्रसारत्वादह-मिदमिति** तत्त्वपूतिपत्तिः **शुद्धताज्ञप्तिः॥** —उत्पलदेवाचार्य —प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति (३/३)।

'शिव' (जगत की परात्पर सत्ता) कौन है? 'शिव' का स्वरूप क्या है?

शिव निखिल जगत की आत्मा हैं, सर्वमय और सर्वोत्तीर्ण (जगन्मय एवं जगदातीत), प्रकाशरूप, नित्य, सर्वव्यापी, अक्षर, अनादि-अनन्त, सर्वशक्तिमय, चिदानन्द-विश्रान्त, स्वातन्त्र्यशक्तिविशिष्ट एवं संविदात्मा महेश्वर हैं।

वामदेव भट्ट की दृष्टि— वामदेव भट्ट ('जन्ममरण विचार' नामक ग्रन्थ में) कहते हैं—

"इह खलु निखिल जगदात्मा सर्वोत्तीर्णश्च सर्वमयश्च विकल्पासङ्कुचितसंवित्-

---

१. **'सदाशिव तत्त्व'**— अहन्तेदन्तालक्षणयोर्ज्ञानक्रिययोराद्योद्रेकात् उन्मीलितचित्रन्यायेन व्यक्ता-व्यक्तविश्वमातृतास्वभावं **'सदाशिवतत्त्वम्'**।

२. **'ईश्वर तत्त्व'**— एतद्विपर्ययेण क्रियाशक्तयौज्ज्वल्ये व्यक्ताकारविश्वानुसन्धातृरूपम् **'ईश्वरतत्त्वं'**। —महार्थ मञ्जरी

३. **'विद्या'**— ज्ञातृत्वधर्म आत्मा ज्ञेयस्वभावश्च लोक व्यवहारः। एकरसां संस्कृष्टिं यत्र गतौ साखलु निष्तुषा विद्या।" —महार्थमञ्जरी।

प्रकाशरूप:, अनवच्छिन्नचिदानन्दविश्रान्त: प्रसरदविरलविचित्रपञ्चवाहवाहवाहिनी महोदधि: निरतिशय स्वातंत्यसीमनि प्रगल्भमान: सर्वशक्तिरवचित एक एव अस्ति संविदात्मा महेश्वर: ॥''

शिव की शक्ति और उसका परात्पर स्वरूप

पराभट्टारिका का पर स्वरूप

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि— 'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि '**परादेवी**' का स्वस्वरूप भी उसी प्रकार पररूपात्मक है यथा निष्कल 'परभैरव' का—

'एवं विधा भैरवस्य याऽवस्था परिगीयते।
सा **परा** पररूपेण **परादेवी** प्रकीर्तिता॥'[१]

चूँकि '**शक्ति**' एवं 'शक्तिमान' में अभेद है अत: दोनाां में धर्मधर्मीभाव है। 'शक्ति' धर्म है और 'शक्तिमान' धर्मी है। सामर्थ्य (विश्व की सृष्टि-स्थिति-संहार आदि रूपवाली) स्वरूपा 'शक्ति' परात्मा शक्तिमान से अभिन्न है। दोनों में समवाय सम्बन्ध है अत: निष्कल पर शिव की पराशक्ति भी पर भैरव के समान है—

'शक्तिशक्तिमतोर्यद्वद**भेद**: सर्वदा स्थित:।
अतस्तद्धर्मधर्मित्वात् **पराशक्ति**: परात्मन: ॥'[२]

'**शक्ति**' भैरव की **सामर्थ्य** है; उसकी **अभिव्यक्ति** है; उसका '**मुख**' है; उसका **व्यक्तस्वरूप** है; उसका **विश्वशरीरात्मक स्वस्वरूप** है; उसकी '**इच्छा**' उसका '**ज्ञान**' एवं उसकी '**क्रिया**' है, उसकी '**स्फुरत्ता**' है; उसका '**हृदय**' है और उसकी '**परावाणी**' है। '**परावाक्**' चितशक्ति का वाणी-स्वरूप है और यही **परावागात्मक शक्ति** भैरव (शिव) की अपनी वाणी है। इसके बिना 'शक्तिमान' कहा जाने वाला शिव '**गूँगा**' होता, 'क्रियाशक्ति' के बिना 'पङ्गु' होता और '**ज्ञानशक्ति**' के बिना यही बोधभैरव अबोध होता। शिव की समस्त क्षमता एवं सामर्थ्य शक्ति पर ही आश्रित है। इसीलिए **आचार्य शङ्कर** ने कहा था कि यदि शक्ति की कृपा न हो तो 'शक्ति' से रहित शिव सृष्टि-प्रलय आदि अद्भुत कार्य करने की बात तो छोड़िए वह ('शक्ति' के बिना) हिल भी नहीं सकता।[३]

'शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि॥'

---

१. विज्ञान भैरव (१७)।
२. विज्ञान भैरव (१८)।
३. सौन्दर्य लहरी (१)।

'पराशक्ति' अचिन्त्यरूपा है[१]—

वामकेश्वरमहातन्त्रकार की दृष्टि

'वामकेश्वर महातन्त्र' में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है कि यदि 'परशिव' शक्तिरहित हो जाय तो अपने स्वभावभूत कार्य सृष्टि, स्थितिलयादिक को भी निष्पादित करने में असमर्थ हो जायेगा—

'परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टि-स्थिति-लयान् कर्तुमशक्त शक्त एव हि॥'

लक्ष्मीधर ठीक ही कहते हैं— ''हे भगवति! शिवो देवः शक्त्या युक्तो भवति यदि, तदा प्रभवितुं शक्तः। एवं न चेत्, स्पन्दितुमपि कुशलो न खलु। अतः हरि-हर-विरिञ्चादिभिरपि आराध्यां त्वां अकृतपुण्यः प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथं प्रभवति?''[२]

तत्त्वतः 'शक्ति' शिव से अभिन्न है

आगमों में बार-बार इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि 'शक्ति' शिव से अविनाभाव सम्बन्ध से सम्बद्ध एवं अभिन्न है; क्योंकि 'शिव' के बिना 'शक्ति' एवं 'शक्ति' के बिना 'शिव' की सत्ता अकल्पनीय है। दोनों में चन्द्र-चन्द्रिका की भाँति एकता है—

'न शिवेन विना देवी, न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥'

या - 'शिवाभिन्ना परा शक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी॥'

इसी शक्ति के 'वामा' 'ज्येष्ठा' इच्छा, 'ज्ञान', 'क्रिया' आदि अनेक रूप हैं— 'वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता।'

सच्चिदानन्दवासनाकार की दृष्टि

'सच्चिदानन्दवासना' में **शक्ति के दो भेदों या रूपों** का वर्णन किया गया है। ये निम्नाङ्कित हैं— (१) 'विश्वात्मिका', (२) 'विश्वोत्तीर्ण'। यह परापरमयी और प्रकाशामर्शरूपिणी है—

विश्वात्मिका तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्॥

यही आत्मा भी है— 'आत्मत्वेन विशाम्यहम्॥'

---

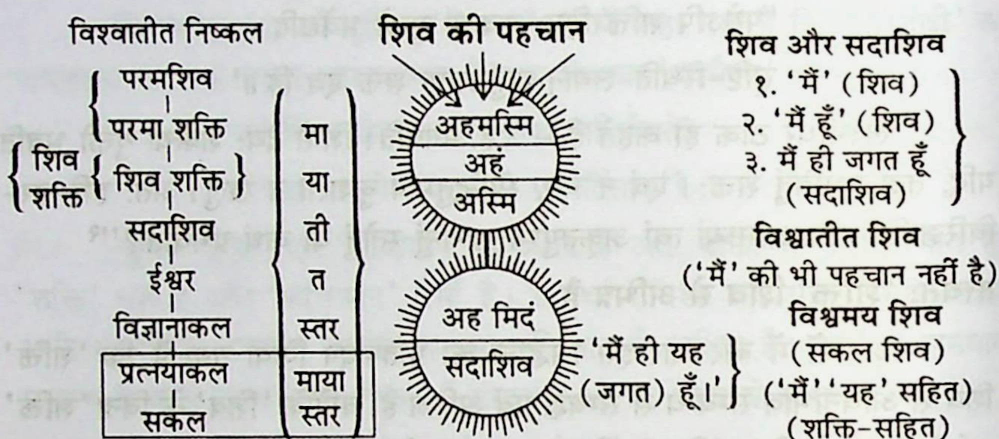
१. 'सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिपरा गीयते॥ — लघुभट्टारक

२. पद-योजना (लक्ष्मीधराः श्लोक सौन्दर्य लहरी, २)।

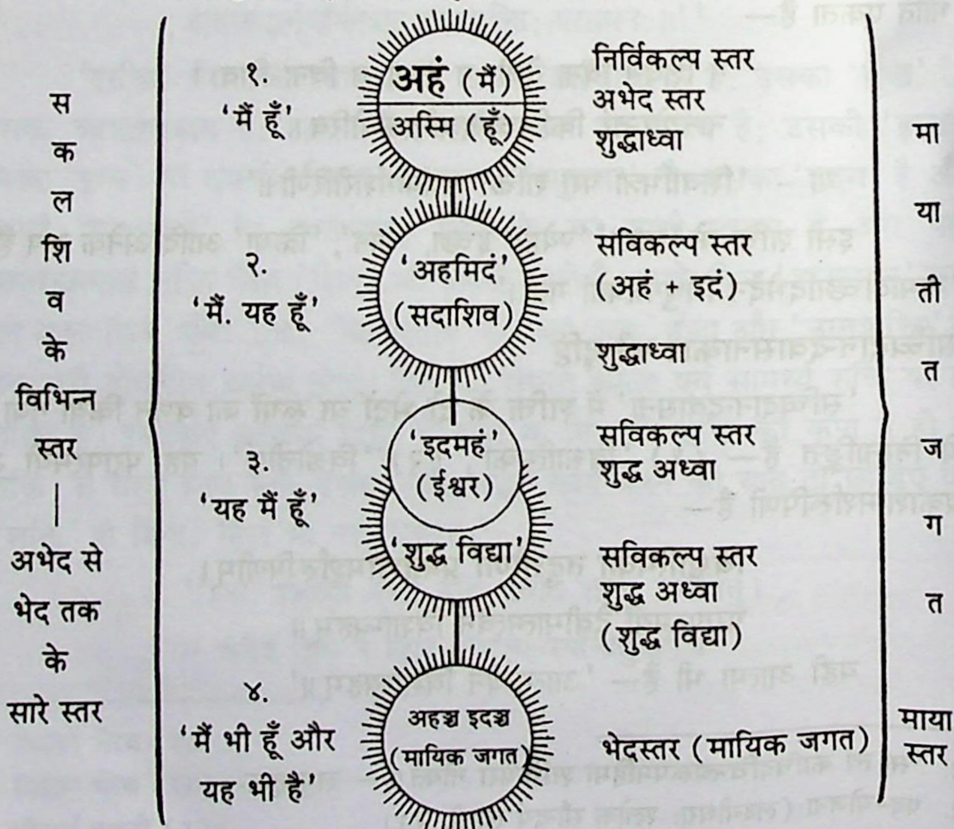
'शक्ति' शिव की पहचान है

''परमशिव'' 'शक्ति' की सहायता के बिना अपने 'मैं' (अहं) को पहचान नहीं पाते। शिव की अस्मिता का दर्पण ही 'शक्ति' है। 'शक्ति' शिव की अभिज्ञा या प्रत्यभिज्ञा है।

प्रश्न— शिव की अपनी पहचान क्या है?



'विश्वमय' शिव की पहचान के विभिन्न स्तर



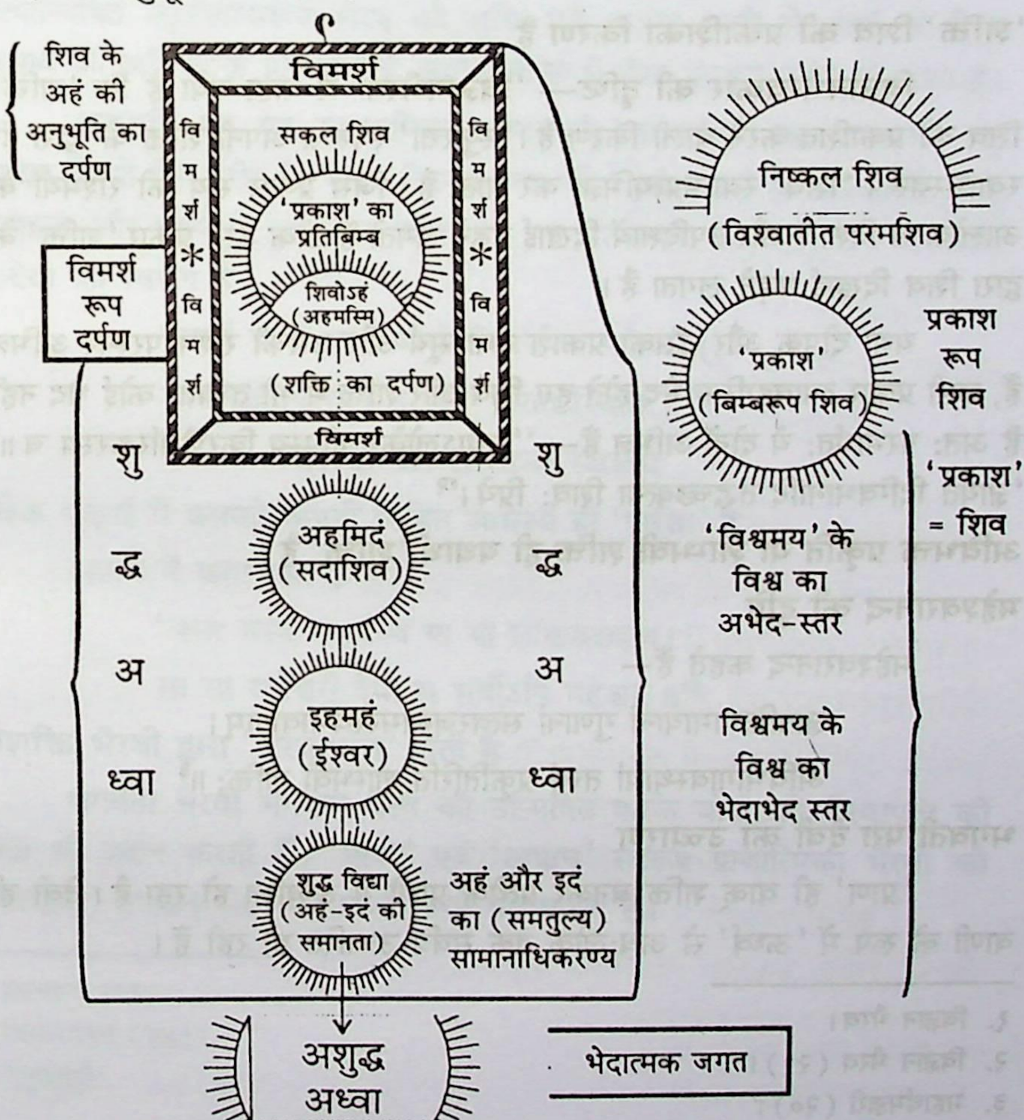
'शक्ति' शिव का मुख है—

जिस प्रकार शरीर को देखने से नहीं प्रत्युत् उस वस्तु या व्यक्ति के मुख को देखने से वस्तु या व्यक्ति की पहचान होती है उसी प्रकार शिव 'शक्ति' को देखकर ही अपने को पहचान पाते हैं। 'शक्ति' दर्पण और शिव बिम्ब हैं।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि—

विज्ञानभैरव में कहा गया है कि **'शक्ति' शिव का मुख है—**

'शैवी मुखमिहोच्यते'— अर्थात् शिव अपने को पहचानने के लिए 'शक्ति' के दर्पण में अपने को देखता है तभी वह अपने को पहचान पाता है— तभी वह अपने अहं की अनुभूति कर पाता है—



'शक्ति' शिव का दीपक है

जैसे दीपक के प्रकाश से समस्त वस्तुएँ दिखाई पड़ने लगती हैं ठीक उसी प्रकार शक्ति के आलोक से अदृष्ट शिव दिखाई पड़ने लगते हैं।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि— 'यथा लोकेन दीपस्य' 'तद्वच्छक्त्या शिव: प्रिये।'— अर्थात् जैसे अन्धकार में रखी वस्तुएँ दिखाई नहीं पड़तीं किन्तु दीपक के आते ही उसके प्रकाश से प्रकाशित होने के कारण समस्त अदृष्ट वस्तु परिलक्षित होने लगती है, उसी प्रकार अपनी अहं की भी स्मृति भूला हुआ अज्ञात, अदृष्ट एवं असंवेद्य शिव की शक्ति की सहायता से परिज्ञात एवं परिलक्षित होने लगता है।[१]

'शक्ति' शिव की प्रकाशिका किरण है

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि— 'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि 'शक्ति' शिव को प्रकाशित करने वाली किरण है। 'स्फुरत्ता' स्वरूपा अपनी शक्ति के द्वारा ही स्वात्मस्वरूप 'शिव' स्वात्मप्रत्यभिज्ञा कर पाता है। जिस प्रकार सूर्य की रश्मियों के आलोक से दिशायें और उपदिशायें दिखाई पड़ने लगती हैं ठीक उसी प्रकार 'शक्ति' के द्वारा शिव दिखाई पड़ने लगता है।

यथा दीपक और उसका प्रकाश तथा सूर्य और उसकी रश्मि परस्पर अभिन्न हैं, उसी प्रकार व्यावहारिक भेद होते हुए शिव और शक्ति में भी तत्त्वत: कोई भेद नहीं है अत: परमार्थत: ये दोनों अभिन्न हैं— ''यथाऽलोकेन दीपस्य किरणैर्भास्करस्य च॥' 'ज्ञायते दिग्विभागादि तद्वच्छक्त्या शिव: प्रिये।'[२]

अविभक्त प्रकृति या शाम्भवी शक्ति ही यथार्थ 'शक्ति' है

महेश्वरानन्द की दृष्टि

महेश्वरानन्द कहते हैं—

ज्ञानक्रियामायानां गुणानां सत्वरजस्तमस्स्वभावानाम्।
अविभागावस्थायां तत्त्वं प्रकृतिरिति शाम्भवी शक्ति: ॥[३]

भगवती परा देवी का उच्चारण

'प्राण' ही वाक् शक्ति बनकर प्रत्येक प्राणी में उच्चरित हो रहा है। देवी ही वाणी के रूप में 'ऊर्ध्व' से अध:लोक तक सर्वत्र उच्चरित हो रही हैं।

---

१. विज्ञान भैरव।

२. विज्ञान भैरव (२१)।

३. महार्थमञ्जरी (२०)।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

विज्ञानभैरव में भगवान भैरव कहते हैं— हे देवी! ऊपर हृदय से लेकर '**द्वादशान्त**' पर्यन्त यात्रा करने वाला '**प्राण**' एवं नीचे द्वादशान्त से हृदय तक की यात्रा करने वाला जीव नामक अपान परादेवी का उच्चारण है, स्पन्दन है। अर्थात् परादेवी ही स्वयं निरन्तर उच्चारण करती रहती हैं। तात्पर्य यह कि '**प्राण**' एवं '**अपान**' के रूप में भगवती ही स्पन्दित होती रहती हैं। परा देवी **विसर्गस्वभावा** है। आन्तर-बाह्य भावों की सृष्टि करना ही इसका स्वरूप है। 'प्राणापानमयः प्राणो विसर्गा पूरणं प्रति।' (७/२५)[१] कहकर स्वच्छन्द शास्त्र ने भी इसी तथ्य को विवेचित किया है।

बाह्यान्तर में प्राणापान की सृष्टि के स्थान '**हृदय**' एवं '**द्वादशान्त**' में नित्योन्मिषित स्फुरत्तास्वरूपा भैरव की शक्ति की भावना करने से योगी में भैरव स्वभाव की अभिव्यक्ति हो उठती है अर्थात् व्यक्ति में भैरव स्वरूप प्रकट हो जाता है।

प्राणवृत्ति का यह स्वाभाविक व्यापार ही '**पराशक्ति' का उच्चारण या स्पन्दन** है जो कि शरीर के भीतर निरन्तर चल रहे '**अहं चक्र**' में संस्थित है। वह द्वादशान्त और हृदय में अवस्थित रहता है। यह प्राणापान का स्पन्दन या उच्चारण परादेवी का स्वरूप है—

'ऊर्ध्वे प्राणो ह्यधो जीवो विसर्गात्मा परोच्चरेत्।
उत्पत्तिद्वितयस्थाने भरणाद् भरिता स्थितिः॥'[२]

शक्ति का सामान्य स्वरूप

प्रत्येक पदार्थ में उसकी अपनी निहित सामर्थ्य ही 'शक्ति' है

आगम में कहा गया है—

'यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः॥'[३]

पराशक्ति भैरवी द्वारा 'भैरवापत्ति' होती है

भगवती भैरवी भगवान भैरव को उन्मिषित करके योगी को भैरवापत्ति की क्षमता भी प्रदान करती हैं। '**प्राण**' एवं '**अपान**' स्वरूप प्राणात्मिका भैरवी की '**मध्यदशा**' भगवान भैरव को प्रकट करने का साधन है।

---

१. स्वच्छन्द तन्त्र।
२. विज्ञानभैरव (२४)।
३. चतुश्शती।

विज्ञानभैवरकार की दृष्टि

विज्ञानभैरव में कहा गया है—

'मरुतोऽन्तर्बहिर्वाऽपि वियद्युग्मानि वर्तनात्।
भैरव्या भैरवस्येत्थं भैरवि व्यज्यते वपु:॥'[१]

'शक्ति' शिव का आत्म-दर्पण है

'परशिवरविकरनिकरविमर्शदर्पणे विशदे' (काम कला वि)। शिव अपना दर्शन (साक्षात्कार) शक्ति के दर्पण में ही किया करते हैं।

पुण्यानन्द की दृष्टि

आचार्य पुण्यानन्द कहते हैं— 'सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरूपमाकारा भाविचराचरबीजं **शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श:**॥'[२]

'शक्ति' प्रकाश का आमर्श या विमर्श है।

'शक्ति' शिव की विमर्शात्मिका सामर्थ्य है।

सच्चिदानन्दवासनाकार की दृष्टि

'सच्चिदानन्दवासना' में कहा गया है कि— 'विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णं **प्रकाशामर्शरूपिणीम्**।'

शक्ति जगदात्मा भी है

'सच्चिदानन्दवासना' में कहा गया है—

'परापरमयी देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।'

'शक्ति' विश्वरूपात्मिका है

आगम विश्व को शक्ति का परिणाम या शक्ति का रूप मानता है; इसीलिए वह 'विश्वरूपा' कही गयी है।

योगिनीहृदयकार की दृष्टि

'योगिनीहृदय' में कहा गया है कि—

'यदा सा परमाशक्ति: स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तात्मन: पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भव:॥'

शक्तिसूत्रकार ने भी शब्दान्तर द्वारा इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है कि— 'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतु:।'

---

१. विज्ञान भैरव (२५)।

२. कामकला विलास (२)।

मन्त्राम्बारूपा 'विमर्श शक्ति' का स्वरूप

'वर्ण' एवं अवस्थाओं में सामरस्य

स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं कि वर्ण समुदाय एवं विभिन्न अवस्थाओं में ऐक्य है—

(१)	वर्ण=	स्पर्श	स्वर	अन्तस्थ	उष्ण वर्ण	वर्णों एवं
(२)	अवस्था=	जाग्रत-अवस्था	सुषुप्ति-अवस्था	स्वप्न अवस्था	तुर्यावस्था	अवस्थाओं में ऐक्य॥

'तुर्यातीतावस्था' क्या है?

शिवानन्द कहते है कि **'क्षकार'**=कूटाक्षर ही 'तुर्यातीत अवस्था' है—

(१) अत्रोष्मवर्णोक्ते तुर्ये, (२) **क्षकाररूप** कूटाक्षर विषयस्य **तुर्यातीतस्य** समुल्लेखनञ्च विवक्षितम्।[१]

'मन्त्रोत्करस्य जननी'= कारणभूतां 'मातृकाम्'[२]

उपर्युक्त भावों को प्रतिपादित करते हुए **स्वतन्त्रानन्दनाथ** कहते हैं—

'स्पर्शस्वरोल्लिखित जागरसुप्त्यवस्था-,
मन्तस्थ सूचित सुषुप्त्युदित प्रबोधाम्।
ऊष्मोक्त जागरदशोदित सुप्त्यवस्थां,
मन्त्रोत्करस्य जननीं मनसा विशामः॥[३]

स्वर, स्पर्श, अन्तःस्थ एवं ऊष्माणवर्ण-समूह द्वारा अवबोधित सुषुप्ति-जाग्रत-स्वप्न-तुर्य से युक्त **'मातृकामहाशक्ति'** है। वह पञ्चाक्षरी, अष्टाक्षरी आदि मन्त्रसमुदाय की माता (कारण) है।

'स्पर्श' आदि वर्णों द्वारा जाग्रत आदि अवस्थायें बोधित होती हैं। **'वर्ण' अवस्थाओं के द्योतक हैं।** दोनों में **ज्ञाप्य-ज्ञापक सम्बन्ध** है।

जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था में **विषयों के सम्पर्क से मुक्त होने के कारण** आत्मा का सङ्कुचित रूप पुनः विवृत हो जाता है उसी प्रकार (**'सुषुप्ति'** के द्योतक स्वर-वर्ण-समूह के उच्चारण में अवयवजनित सङ्कोच-त्याग के कारण) **'नाद'** का विवृत रूप प्रकट होता है।

---

१. मा. च. वि. भाष्य (शिवानन्द)।
२. मा. च. वि. भाष्य।
३. मा. च. वि. भाष्य (२)।

(१) सङ्कोच-ग्रहण (२) सङ्कोच त्याग के सादृश्य के कारण 'स्पर्श' एवं 'स्वर' वर्ण क्रमशः 'जाग्रत' एवं 'सुषुप्ति' दशाओं के ज्ञापक हैं।[१]

अवस्थास्वरूपिणी 'विमर्श शक्ति' का स्वरूप

'न सावस्था न या शिवा' : शक्ति का सर्वानुस्यूतत्व

'न सावस्था न यः शिवः' कहकर स्पन्दकारिकाकार ने जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत, संहति-सृष्टि-स्थिति-तिरोधान-अनुग्रह; बन्धन, मुक्ति, बाल्यावस्था, यौवनावस्था-वृद्धावस्था; आरोह-अवरोह-अहं-इदम्, अभेद-भेदाभेद-भेद— पशु एवं शिव आदि सभी अवस्थाओं में शिव को ही अनुस्यूत माना था किन्तु 'मातृकाचक्र-विवेककार' श्री स्वतन्त्रानन्द कहते हैं कि ऐसी कोई अवस्था नहीं है जो शिवास्वरूपा न हो अर्थात् शक्तिरूपा न हो। वे परशिव की प्राणेश्वरी को '**सर्वावस्थास्वरूपिणी**' के रूप में परामृष्ट करते हुए कहते हैं—

''जाग्रतसुषुप्तिकृत दक्षिणवामभागाम्।
स्वप्नस्वभावपरिक्लृप्तजघन्यभागाम्।
तुर्यातितुर्यघटितानन हृत्प्रदेशाम्।
प्राणेश्वरीं परशिवस्य परामृशामः॥[२]''

'**तुर्यावस्था**'= (शिवानन्द कहते हैं)— 'चित्कारणकस्य चास्य चिन्मयानु-सन्धानदशा **तुर्यम्**' '**अतितुर्य**' '**निखिलदशाप्राणभूतमिति**॥' शिवानन्द

(१) '**जाग्रत**' और '**सुषुप्ति**' **की अवस्थायें**— महाशक्ति के क्रमशः '**दक्षिण**' एवं '**वाम**' अङ्ग हैं।

(२) '**स्वप्न**' की अवस्था— महाशक्ति की योनि है।

(३) '**तुर्यावस्था**'— यह भगवती का मुख है।

(४) '**तुर्यातीतावस्था**'— यह भगवती का हृदय भाग है। इस प्रकार जाग्रदादि अवस्थाओं से घटित अवयवों से युक्त शिव की प्राणेश्वरी महाशक्ति को परशिव के '**विमर्श**' के रूप में निरूपित किया गया है।

भाष्यकार शिवानन्द कहते हैं कि— (१) 'सुषुप्ति' संसार की गर्भदशा है। **स्वप्न**— विश्व की प्रसवावस्था है। '**जाग्रत**'— जगत की प्रवृद्धि दशा है। यहाँ जीवावस्थात्रयात्मक त्रिकोण को शरीर चक्र में खोजकर वहीं स्थित '**शिवत्रिकोण**' का सन्धान किया गया है[३]।

---

१. मा. च. वि. भाष्य।
२. मातृका चक्र विवेक (१/१)।
३. मा. च. वि. भाष्य।

'शिव' और 'शक्ति' में स्थित सम्बन्ध का स्वरूप

जिस प्रकार चन्द्रिका चन्द्र के बिना, रश्मि रश्मिरथी के बिना, ऊष्णता अग्नि के बिना एवं धर्म धर्मी के बिना पृथक् नहीं रह सकते उसी प्रकार 'शिव' 'शक्ति' के बिना पृथक् रूप से नहीं रह सकते।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

विज्ञानभैरव में कहा गया है कि जिस प्रकार दाहिका शक्ति अग्नि के बिना पृथक रूप से नहीं रह सकती उसी प्रकार शिव शक्ति के बिना (शक्ति से पृथक्) नहीं रह सकते—

'न वह्नेर्दाहिका शक्तिर्व्यतिरिक्ता विभाव्यते।
केवलं ज्ञानसत्तायां प्रारम्भोऽयं प्रवेशने॥

— विज्ञान भैरव (१९)

'शक्ति' एवं 'शक्तिमान' परस्पर अपृथक हैं। यह शक्तिस्वरूप 'शिव-धर्म' धर्मी शिव की ज्ञानसत्ता (शिवस्वरूप को जानने) हेतु उसमें प्रवेश पाने हेतु प्राथमिक (प्रारम्भ) उपाय है—

''केवलं ज्ञानसत्तायां प्रारम्भोऽयं प्रवेशने॥'' (वि. भै.)

(१) 'शक्ति' के माध्यम से ही 'परभैरव' का ज्ञान प्राप्त होता है।

(२) शैवीशक्ति के बिना शिव के नाम, धाम आदि की कल्पना नहीं की जा सकती।

वामकेश्वर तन्त्रकार कहते हैं—

(३) 'शक्त्या बिना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते॥'[१]

(४) 'शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिण:॥'

पुण्यानन्द की दृष्टि

पुण्यानन्द ने शिव और शक्ति को उसी प्रकार परस्पर परस्परानुस्यूत माना है जैसा कि वाणी एवं उसका अर्थ परस्परानुस्यूत हैं। वे कहते हैं—

'वागर्थौ नित्ययुक्तौ परस्परं शक्तिशिवमयावेतौ॥'[२]

(**'वाक्'**= वर्ण-पद-मन्त्र। **'अर्थ'**= कला-तत्त्व-भुवन)।

---

१. वामकेश्वर तान्त्र (४/७)।

२. काम कला विलास (१२)।

शिव और शक्ति का स्वरूप क्या है?

वामकेश्वरतन्त्रकार की शक्तिविषयक दृष्टि

'वामकेश्वर महातन्त्र' में त्रयात्मिका शक्ति को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

"तत्त्वत्रय विनिर्दिष्टवर्णशक्तित्रयात्मिका।
वागीश्वरी **ज्ञानशक्ति**र्वाग्भवा मोक्षरूपिणी।
कामराजी **कामकला** कामरूपक्रियात्मिका।
शक्तिबीजे **पराशक्तिरिच्छैव** ज्ञानरूपिणी।
एवं देवी त्र्यक्षरात्मा महात्रिपुरसुन्दरी।
पारम्पर्येण विज्ञाता भवबन्धविमोचिनी॥"

—वामकेश्वर महातन्त्र

'शक्ति' मातृकारूपा है

समस्त वर्णों का मूल रूप मातृका है और मातृका शक्तिस्वरूपा है—

"शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका॥
या सा तु मातृकालोके परतेजस्समन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वं आब्रह्मभुवनात्मकम्॥"

सारे वर्ण भी शक्त्यात्मक हैं

"सर्वे वर्णात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मका प्रिये॥"

'शक्ति' शिव की स्वातन्त्र्यरूपा सामर्थ्य है—

"शिवस्यैका महाशक्तिः शिवश्चैको ह्यनादिमान्।
सा शक्तिर्भिद्यते देवि ! भेदैरानन्त्यसम्भवैः।
स्वातन्त्र्याख्या शक्तिः . . . . ॥"

—स्वच्छन्द तन्त्र

'शक्ति' के प्रधान रूप क्या हैं?

शैवी शक्ति के जो मुख्य भेद हैं वे ही 'शक्ति' के प्रधान रूप हैं। वे पाँच हैं—

(१) **'चित्शक्ति'**— तस्य (शिवस्य) प्रकाशरूपता **'चिच्छक्तिः'**।

(२) **'आनन्दशक्ति'**— (तस्य) स्वातन्त्र्यम् **'आनन्दशक्तिः'**।

(३) **'इच्छाशक्ति'**— तच्चमत्कारः **'इच्छाशक्तिः'**।

(४) **'ज्ञानशक्ति'**— आमर्शात्मकता **'ज्ञानशक्तिः'**।

(५) '**क्रियाशक्ति**'— सर्वाकारयोगित्वं '**क्रियाशक्तिः**'।

(६) 'इत्थं सर्वशक्तियोगेऽपि आभिर्मुख्याभिः शक्तिभिरुपचर्यते।'

—भट्ट वामदेवाचार्य

शक्तिमान भगवान शिव में अनन्त शक्तियाँ हैं, किन्तु उनकी मुख्य शक्तियाँ उपर्युक्त पाँच शक्तियाँ ही हैं।

भगवान शिव की मुख्यतः पाँच शक्तियाँ हैं।

परमशिव की जो 'इच्छा' नाम्नी शक्ति है वही उसकी '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' है।[१] इसी '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' में (१) '**ज्ञान शक्ति**' एवं (२) 'क्रिया शक्ति' दोनों अभेदात्मक स्वरूप में अर्थात् अभिन्न रूप में स्फुरित रहा करती हैं। (२) सारांश यह कि—

(१) '**स्वातन्त्र्य**'— ''स्वतन्त्र इति तस्येच्छा शक्तिः स्वातन्त्र्य संज्ञिता॥' (मालिनी वार्तिक, १/८८)।

(२) '**शिव स्वात्मा में विश्रान्त रहता है**'— 'स च स्वात्मनि विश्रान्तस्त-दन्याभाव योगतः।' (मालिनी वार्तिकम्, ८८/१)।

(३) **स्वात्म विश्रान्ति ही शिव का आनन्द है**— स्वात्मविश्रान्तिरेवैषा देवस्यानन्द उच्यते॥

(४) **यह स्वातन्त्र्य की ही महिमा है कि** शिव वह स्वस्वरूप से कभी पृथक् नहीं होता—

'स्वातन्त्र्यमहिमा वास्य स्वरूपादपृथक्स्थितिः॥' (८९/१)

(५) परमात्मा अपने इस 'स्वप्रकाशात्मक निज धाम' में ही आभासन एवं विभ्रम निष्पादित करना प्रारम्भ करता है—

(क) ''स्वप्रकाशे निजे धाम्नि भासयेद्भाव विभ्रमात्॥''

(ख) 'भासना' च 'क्रियाशक्तिरिति' शास्त्रेषु कथ्यते॥' (८९/१)

'भासना' के बिना तो तत्त्वादि की कल्पना करना ही सम्भव नहीं है—

'यदा विचित्रतत्त्वादि कलना प्रविभज्यते।
भासानानवभाते च कथं नाम प्रकल्पते।' (९०/१)

उसके भीतर अवस्थित 'जो 'भान' है वही 'ज्ञान शक्ति' है—

''तदस्यान्तः स्थितं भानं ज्ञानशक्तिरहं स्मृता॥'' (९१/१)

---

१. मालिनीविजय वार्तिक (१/८८)।

आत्मविश्रान्ति ही '**प्रकाश**' **का पूर्णानन्द** है।

'प्रकाश' की **आत्मविश्रान्ति** ही उसका '**अहं**' है—

'अहं' (क) 'प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहंभावो हि कीर्तितः॥'[१]

आनन्द (ख) 'स्वात्मविश्रान्तिरेवैषा देवस्यानन्द उच्यते।'[२]

(ग) यह **आत्मविश्रान्ति** ही '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' या '**कर्तृत्व**' है।[३]

उक्ता सैव च **विश्रान्तिः** सर्वापेक्षानिरोधतः।

स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च॥

यही **आत्मविश्रान्ति** (सर्वापेक्षाशून्यता के कारण) 'ईश्वरता' भी कही जाती है।

'आत्मविश्रान्ति' के विभिन्न पक्ष

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
अहंभाव	आनन्द	स्वातन्त्र्य	कर्तृत्व	ईश्वरत्व	परनिरपेक्षता

स्वात्मविश्रान्ति ही प्रकाश का स्वभावगत एवं सहज आनन्द है। चूँकि यह आत्मा (शिव) एवं 'चैतन्य' (शिव) का आनन्द है अतः यह '**परात्पर आनन्द**' है।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि— आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि—

(१) 'या संविदः स्वात्ममात्र विश्रान्तिः स एव **पूर्णाहन्ता** विमर्शस्वभावोऽहंभावोऽर्थव्यवस्थापको गीयते।'

(२) 'सैव विश्वभावानां पर्यन्त प्रतिष्ठाभूमिकत्वाद्विश्रान्तिः।'

(३) 'विश्वप्रसरणो स्वव्यक्तिरिक्त सामग्रीनिरपेक्षत्वात् **स्वातन्त्र्यं**।'

(४) 'तच्च **कर्तृत्वं** मुख्यमैश्वर्यमप्यागमेषूद्घोष्यते॥'

उत्पलदेव— अजजडप्रभातृसिद्धि।

उत्पलदेव कहते हैं—

'उक्ता सैव च **विश्रान्तिः**

सर्वापेक्षानिरोधतः।

स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं

मुख्यमीश्वरतापि च॥' (अजड. २३)

---

१. अजडप्रभातृसिद्धि (२२)।

२. मालिनी वार्तिक (अभिनव गुप्त)।

३. अजडप्रभातृ सिद्धि (२३)।

परमेश्वर की 'इच्छाशक्ति' या इच्छा ही उसकी अपनी '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' है। इसमें '**ज्ञानशक्ति**' एवं '**क्रियाशक्ति**' अभिन्न रूप में स्पन्दायमान हैं। सारांश यह है कि— आत्मा (शिव) ज्ञाता और कर्ता दोनों हैं।

ज्ञान और क्रिया में एकत्व

त्रिक दृष्टि के अनुसार परमशिव में (चैतन्य एवं आत्मा में) 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' अभिन्न रूप से व्यक्त होती है। 'ज्ञान' और 'क्रिया' अभिन्न एवं एक हैं। जो '**ज्ञान**' है वही '**क्रिया**' है। ज्ञानशून्य '**क्रिया**' एवं क्रियाशून्य ज्ञान सम्भव नहीं है।

(क) विमर्श एव देवस्य शुद्धे ज्ञानक्रिये यतः।[१]

(ख) न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञानरहितं क्रिया।[२]

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि-

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—

ज्ञानाद्विभिन्नो न हि कश्चिदर्थ-,
स्तत्तत्कृतः संविदि नास्ति भेदः।
स्वयं प्रकाशाच्छतमैकधाम्नि,
प्रातिस्विकी नापि विभेदिता स्याम्॥[३]

आत्मा अपनी **स्वतन्त्र इच्छा** की शक्ति के द्वारा शिव से क्षितिपर्यन्त सर्वत्र व्याप्त, स्फुरित एवं अवस्थित है—

'आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृत कारणम्।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरददृक्क्रियः शिवः॥'[४]

'इच्छा शक्ति' का स्फुरण और षट्त्रिंशदात्म विश्व

शिव से लेकर क्षितिपर्यन्त ३६ तत्त्वों में अभेदात्मना संस्फुरित आत्मा का इच्छा-प्रसार ही परमात्मा का **विश्वात्मक** रूप है।

'स्वात्मन्येव चिदाकाशे विश्वमस्य्यवभासयन्।
स्रष्टा **विश्वात्मकं** इति प्रथया भैरवात्मता।'

इसी 'इच्छाशक्ति' को शैवागम '**विमर्श**' (परमशिव की परामर्शात्मिका शक्ति) की संज्ञा देता है। '**परामर्श**' क्या है?

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग १/१— ८-११)।
२. नेत्रतन्त्र— उद्योत टीका (क्षेमराज)।
३. परमार्थचर्चा (२)।
४. शिवदृष्टि (२/२)।

'**परामर्शो** हि चिकीर्षारूपेच्छा, तस्यां च सर्वमन्तर्भूतं निर्मातव्यमभेद-कल्पेनास्ते॥''[१]

स्वयंप्रकाश परमेश्वर ही परमेश्वरी शक्ति के माध्यम से शिवादिधरण्यन्त जगत के रूप में, अपनी इच्छाशक्ति की महत्ता से प्रस्फुरित हुआ करता है।

''स्वयंप्रकाशरूपः परमेश्वरः पारमेश्वर्या शक्त्या शिवादि धरण्यन्तजगदात्मना स्फुरति प्रकाशते च॥''[२]

यह जो '**विमर्श**' नामक शम्भु-शक्ति है, उसका स्फार (विकासात्मक प्रसार) ही निखिल विश्व है। **शिवसूत्रकार** ने विश्व को अपनी अन्तर्भूता स्वशक्ति का प्रचय (सङ्घात) कहा है—

''स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्'' (शिवसूत्र, ३०/३)

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं तथा अस्यापि स्वस्याः संविदात्मनः शक्तेः प्रचयः क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्॥''[३]

'निजशक्तिविकासोऽस्य विश्वं''— कहकर आचार्य क्षेमराज अपनी शक्ति के विकास को ही '**विश्व**' कहते हैं। यह विश्व शिव उसकी क्रियाशक्ति का आभास है— 'क्रियाशक्त्याभासितस्य विश्वस्य'—

(१) बहिर्मुखत्वावभासनरूपा या 'स्थितिः'।

(२) चिन्मयप्रमातृविश्रान्त्यात्मा च यो '**लयः**'।

''तावेतौ एतस्य स्वशक्तिप्रचय एव॥''

(३) ''तद्वद्वेद्यं हि आभासमानं विलीयमानं च निज संविद्धच्छक्त्यात्मक-मेव।'' 'स्थिति लयौ' (शिवसूत्र ३१/३)।

आम्नाय भी इस तथ्य की पुष्टि करता है—

'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं'— अर्थात् निखिल विश्व इस परात्पर सत्ता परमशिव की शक्तियाँ मात्र हैं।

शिववार्तिककार की दृष्टि-

शिववार्तिककार आचार्य **वरदराज** कहते हैं कि— (१) महेश्वर '**शक्तिमान**' है और उस शक्तिमान महेश्वर की शक्तियाँ ही जगत है—

(१) 'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः॥'

(२) 'विश्व' शिव की स्वशक्तियों का प्रचय है— '**विश्वं स्वशक्तिप्रचयो**'।

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी।

२. परा प्रावेशिका।

३. शिवसूत्रविमर्शिनी (३०/३)।

(३) शिव एवं तत्सम योगियों के लिए यह समस्त जगत उनकी शक्तियों का प्रसार मात्र है—

"शिवस्य तत्समस्यापि तथास्य परयोगिनः।
स्वस्याः स्वात्माविमुक्तायाः शक्तेः संवेदनात्मनः।
प्रचयः स्फुरणरूपो विकासो विश्वमिष्यते॥"[१]

'विश्व' है क्या? **आचार्य परशुराम** कहते हैं—

'षट्त्रिंशतत्त्वानि विश्वम्॥'[२]

अर्थात् छत्तीसतत्त्व ही निखिल विश्व है।

'चिति शक्ति' विश्वोपादन के रूप में

चित्रकार द्वारा चित्र-निर्माण करने के व्यापार में कागज़, तूलिका, रंग आदि बाह्य सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु 'चिति शक्ति' को विश्वचित्र-निर्माणार्थ स्वातिरिक्त किसी भी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं होती।

शक्तिसूत्रकार कहते हैं—

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।'[३]

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि 'स्वेच्छया' अर्थात् ब्रह्मा आदि की भाँति अन्य की इच्छा से नहीं प्रत्युत् स्वेच्छा से (अन्य उपादानों से निरपेक्ष रहकर और केवल अपने द्वारा) स्वात्मक भित्ति में, दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर की भाँति अपने से अभिन्न विश्व को भगवती चिति शक्ति उन्मीलित करती है (उत्पन्न नहीं करती)।

"**उन्मीलनं** च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्।
इत्यनेन जगतः प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम् उक्तम्॥"[४]

अर्थात् विश्व 'प्रकाश' से एकीभूत होकर अवस्थित है।

'चितिशक्ति' ही इच्छा रूप में परिणत होकर विश्व का सृजन करती है। **विश्वोपादान चिति (चैतन्य)** है। 'चिदात्मा' स्वेच्छा से, लीलार्थ, अपने स्वरूपरूप उपादान से अपनी प्रकाशभित्ति पर विश्व का निर्माण करता है। वह **प्रकाश रूप आश्रय में, प्रकाशरूप सामग्री से,** अपने भीतर स्थित एवं **अपने से अभिन्न विश्व**

---

१. शिवसूत्र वार्तिक (वरदराज)।
२. परशुराम कल्प सूत्र (४/१)।
३. शक्तिसूत्र (३)।
४. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (२)।

को **भिन्न वस्तु की भाँति** उल्लसित करता है— 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥'[१]

उन्मेषनिमेषात्मिका इच्छा शक्ति : 'स्पन्द शक्ति'

एक साथ (युगपत्) अपने भीतर विश्व का उन्मेष (सर्जन) और निमेष (संहार) करने वाली इस शाम्भवी इच्छाशक्ति को स्पन्दशास्त्र '**स्पन्द**' की संज्ञा देता है। 'सा चैषा स्पन्दशक्ति युगपदेवोन्मेषमयी॥' **स्पन्दनिर्णयकार** आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि— ''श्री भगवतः स्वातन्त्र्य शक्तिरविभक्ताप्यशेषसर्गसंहारादि परम्परां दर्पणनगरवस्त्वभित्तावेव भावियुक्त्यानधिकामप्यधिकामिव दर्शयन्ती '**स्पन्दः**' इत्यभिहिता॥''

अर्थात् भगवान् परमशिव की यह स्वतन्त्र इच्छा स्वयं अविभक्त रहते हुए भी अपने आपसे अव्यतिरिक्त निःशेष सृष्टिसंहार आदि रूपों को दर्पण नगर न्याय से अपने भीतर ही भिन्नवत प्रस्तुत करती है। युगपद उन्मेषोन्मेष-सम्पादिका यह पारमेश्वरी इच्छाशक्ति ही '**स्पन्दः**' के नाम से प्रख्यात है।[२]

'स्पन्द' किञ्चित् चलत्ता (Slight shake) है। आचार्य क्षेमराज कहते हैं— ''किञ्चिच्चलत्तात्मक धात्वर्थानुगमात्स्पन्द इत्यभिहिता, तेन भगवान सदा स्पन्दतत्त्वसतत्वो नत्वस्पन्दः॥''[३]

स्पन्द शक्ति के लक्षण— आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि—

(१) सा चैषा गर्भीकृतानन्तसर्गसंहारैकघना।

(२) अहन्ताचमत्कारानन्दरूपा।

(३) निःशेष शुद्धाशुद्धरूपा।

(४) मातृमेय सङ्कोचविकासाभासनसतत्वा।

(५) सर्वोपनिषदुपास्या।

(६) युगपदेवोन्मेष निमेषमयी।''[४]

निस्तरङ्ग परमात्मा में जो एक साथ सर्वरूप से उन्मुख होने की क्षमता है वही **'किञ्चित् चलत्ता'** (स्पन्द) है।

आचार्य क्षेमराज ने '**स्पन्द निर्णय**' के मङ्गलाचरण में '**शाङ्करी स्पन्द शक्ति**'

---

१. शक्तिसूत्र।

२. स्पन्द निर्णय।

३. स्पन्द निर्णय।

४. स्पन्द निणय।

को नमन करते हुए उसके लक्षणों पर भी प्रकाश डाला है जो इस प्रकार है—

(१) 'सर्वं स्वात्मस्वरूपं मुकुरनगरवत्,
स्वस्वरूपात् स्वतन्त्र।'

(२) 'स्वच्छस्वात्म स्वभित्तौ कलयति
धरणीतः शिवान्तं सदा या।'

(३) 'दृग्देवी मन्त्रवीर्यं सतत समुदिता
शब्दराश्यात्मपूर्णा।'

(४) 'हन्तानन्त स्फुरत्ता जयति
जयति सा शाङ्करी स्पन्द शक्तिः।'

आचार्य क्षेमराज ने '**स्पन्दसन्दोह**' में '**स्पन्दवान शिव**' को नमन करते हुए उनके निम्न लक्षणों पर प्रकाश डाला है—

(१) 'अकलितमहिमा यः'

(२) 'क्षमादिसादाशिवान्तं।
कलयति हृदि विश्वं चित्रसंयोजनाभिः।'

(३) 'प्रथयति च विचित्राः सृष्टिसंहारलीलाः
स जयति शिव एकः स्पन्दवान् स्वप्रतिष्ठः॥'

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज ने 'स्पन्द' की सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा है कि—

'इह परमेश्वरस्य महाप्रकाशात्मनो विमलस्यापि एकैव परामर्शशक्तिः किञ्चिच्चलत्ता भासरूपतया 'स्पन्दः' इति।

(१) 'किञ्चिच्चलत्ता' इति (२) 'स्फुरत्ता' इति

(३) 'ऊर्मिः' इति (४) 'बलम्' इति

(५) 'उद्योगः' इति (६) 'हृदयम्' इति

(७) 'सारम्' इति (८) 'मालिनी' इति

(९) 'परा' इति— अनन्त संज्ञाभिः आगमेषु उद्घोष्यते॥'' — 'स्पन्द सन्दोह'

'स्पन्द शक्ति' एक होते हुए भी कार्य-भेद से अनेकउपाधिरूपा होकर नानात्मक अनन्त रूप धारण करती है किन्तु फिर भी वह अद्वय ही रहती है। उसकी इस दुर्घट सम्पादन क्षमता को ही '**स्वतन्त्रता**' कहते हैं। परमेश्वर इसी क्षमता के कारण

'स्वतन्त्र' कहलाता है। यह 'शाम्भवी स्पन्दशक्ति' अकेली होकर भी चिन्तामणिवत् अनेक रूप धारण कर लेती है।[१]

'तन्त्रसार' के रचयिता ने इसकी असंख्य रूप धारण करने की अद्वितीय सामर्थ्य के कारण ही परमेश्वर को असंख्य शक्तिवाला भी कहा है—

'शक्तयश्च अस्य असंख्येया: ॥ (तन्त्रसार)

तथापि परमेश्वर की अनन्त शक्तियों में प्रधान शक्तियाँ केवल पाँच ही हैं 'तत्र परमेश्वर: पञ्चभि: शक्तिभि: निर्भर: ।'

'परमशिव' का शक्तिपञ्चक

शक्तिस्वभाव परमेश्वर की शक्ति के मुख्य भेद पाँच हैं। विश्व की उन्मेष-दृष्टि से (आभास-दृष्टि से) परमेश्वर की जो ५ शक्तियाँ हैं वे हैं—

(१) 'चित् शक्ति' (२) 'आनन्द शक्ति' (३) 'इच्छा शक्ति' (४) 'ज्ञान शक्ति' और (४) 'क्रिया शक्ति'।

'चित् शक्ति' का स्वरूप

'चित् शक्ति' प्रकाशरूप है। इसके द्वारा ही शिव अपने को स्वप्रकाश समझते हैं।[२] **अभिनव गुप्त** की दृष्टि में **'चित् शक्ति' 'चिदात्मा की प्रकाशरूपता** है। **'प्रकाशरूपता चिच्छक्ति:'** यह प्रकाशरूपता परमशिव की **विशुद्ध संविद्रूपता** है। परम शिव अपनी इसी चितिशक्ति के कारण ही सर्वत्र व्याप्त है। परम शिव के प्रकाशरूप आश्रय में विश्व के निखिल तत्त्वों का प्रकाशन होता है।

प्रकाशस्वरूप आत्मा का इच्छास्फुरणात्मक विश्व भी प्रकाशरूप है— ''प्रकाशात्मा प्रकाश्याऽर्थो॥''[३]

आत्मा की प्रकाशरूपता सर्वव्याप्त है।

आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि आत्मा (परमशिव) के अप्रकाश हो जाने पर तो समस्त विश्व ही अन्धा हो जायेगा—

'प्रकाशमानता स्वात्मन्यपि वा न स्यात् इति अन्धता जगत: ॥'[४]

आत्मा की प्रकाशरूपता विश्व के प्रत्येक पदार्थ एवं प्रत्येक अस्तित्व में

---

१. सैकापि सत्यनेकत्वं यथा गच्छति तच्छृणु।
अर्थोपाधिवशाद्याति चिन्तामणिरिवेश्वरी। मालिनीविजयोत्तर तंत्र (३/६)

२. तन्त्रसार (आ. १)।

३. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा (१-१/५-३) प्रकाशरूपता ही **'चित् शक्ति'** है।

४. ईश्वर प्र. विमर्शिनी।

व्याप्त है। अप्रकाशता तो सिद्ध ही नहीं होती—

"ना प्रकाशश्च सिद्धयति।" (ईश्वर प्रत्यभिज्ञा १/५/३)

परमशिव की यह **प्रकाशरूपता** उसकी **विमर्शरूपता** से अभिन्न है यथा दाहकता अग्नि से '**विमर्श**' क्या है? '**विमर्श' है चिदात्मा के प्रकाशस्वरूप की प्रतीति।** 'विमर्श' परमात्मा की '**स्वतन्त्रता**' है। इसी स्वतन्त्रता से आत्मा पर निरपेक्ष होकर स्वात्ममात्र की पूर्णता में विश्रान्त रहता है।

'आनन्द शक्ति' का स्वरूप

दूसरों की अपेक्षा के बिना (निरपेक्ष होकर) आत्मपूर्णता की प्रतीति होना ही 'आनन्द' है—

"स एव परानपेक्षः पूर्णत्वादानन्दरूपो॥"

अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि

अन्य-निरपेक्षता ही आनन्द है—

"अन्यनिरपेक्षतैव परमार्थत आनन्दः॥"[१]

सकल जीवों का आनन्द परापेक्षी है किन्तु शिव का स्वाश्रिता स्वतन्त्र परमशिव का विमर्श ही उसका 'स्वातन्त्र्य' है। यह 'स्वातन्त्र्य' ही परमशिव का 'आनन्द' या 'शक्ति' है— "स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः।" ('तन्त्रसार')।

'**चिदंश**' (प्रकाश) और '**आनन्दांश**' (विमर्श) का समारस्य ही परमभाव है। 'चिदंश' क्या है? चिदंश **शिवभाव** है किन्तु आनन्दांश **शक्तिभाव** है। '**परमभाव**' ही शैवागम में '**परासंवित्**' या '**परमशिव**' कहा गया है। '**प्रकाश**-विमर्श' (चित् और आनन्द) के इसी 'सामरस्य' में इच्छा-ज्ञान-क्रिया सामरस्यापन्न हैं— एकीभूत हैं। स्वात्मानन्द में विश्रान्त परमशिव का स्वातन्त्र्य-स्वभाव (स्वरूप परामर्शरूप चमत्कार) स्वयं को विश्वात्मभाव से उल्लसित करने हेतु उन्मुख न होते हुए भी जब विश्व-रचनार्थ उन्मुख होता है तब वह अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषामात्र की उन्मुखता ही '**औन्मुख्य**' है—

'यदा तु तस्य चिद्धर्मविभवामोदजृंभया।
विचित्ररचनानानाकार्य सृष्टि प्रवर्तने।
भवत्युन्मुखिता चित्ता सेच्छायाः प्रथमा तुटिः॥[२]

---

१. ईश्वर प्र. विमर्शिनी।

२. शिवदृष्टि (१/७-८)।

औन्मुख्य

निस्तरंग और शान्त जल की अत्यन्त तरंगितावस्था की ओर उन्मुख होने पर जिस प्रकार प्रथमतः उसमें एक प्रकार का **सूक्ष्म कम्प उत्पन्न होता** है उसी प्रकार स्वात्मविश्रान्त, पूर्ण संवित् में विश्व-रचना के प्रति अत्यन्त **सूक्ष्म आकांक्षा** जागृत होती है। इस सुसूक्ष्म आकांक्षा का कारण चिदात्मा की आनन्दोच्छलित स्वभावक्रीड़ा है। इस सूक्ष्मतम आकांक्षा के आरम्भ की ही संज्ञा 'औन्मुख्य' है।

'औन्मुख्य' इच्छा का प्रथम भाग है।

इच्छारूपा क्रिया के आविर्भाव का प्रथमलक्षणात्मक अंश भी **'औन्मुख्य'** है और इसी प्रकार कर्मयुक्त निर्वृति की प्राप्ति भी **'औन्मुख्य'** है एवं कर्मविच्छिन्ना निर्वृति भी 'औन्मुख्य' है और इसके साथ ही साथ **अनवच्छिन्ना निर्वृतिमात्र आनन्द भी औन्मुख्य** है।[१] आद्योपान्त सब कुछ औन्मुख्य ही है। इच्छा का पूर्ण विकास भी 'औन्मुख्य' ही है।

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि

आचार्य सोमानन्द कहते हैं—

(क) तत् कर्मनिर्वृति प्राप्तिरौ**न्मुख्यं** तद् विकासिता।
अनन्तरं हि तत्कार्यज्ञानदर्शनशक्तिता।

(ख) कर्मावच्छिन्ना निर्वृतिरौन्मुख्यम्। (उत्पलदेव)

(१) यथा जलस्य पूर्वं निस्तरंगस्यमातितरंगितां गच्छतः सूक्ष्मः पूर्वः कम्प-औन्मुख्यरूपः दृश्यते, तथा बोधस्य स्वस्वयस्थस्य पूर्णस्य विश्वरचनां प्रति अभिलाष-मात्ररचनायोग्यताया यः प्रथमो विकासः प्रवृत्यारम्भस्तदौन्मुख्यं प्रचक्षते॥

— शिवदृष्टिवृत्ति

(२) साः तुटिः सूक्ष्मौन्मुख्यशक्तिरूपा॥ (शिवदृष्टिवृत्ति)

(३) तस्यौन्मुख्यस्येच्छा कार्या। तस्य हि योऽसौ उत्तरो भागः सेच्छा व्यवस्थिता।

उत्पलदेवाचार्य कहते हैं—

(१) 'उत्पत्तिकथायां तु इच्छायाः पुरोभागे या तस्मिन् कर्मणि तत्कर्मनिष्ठा निर्वृतिप्राप्तिः **तदौन्मुख्यम्**।

---

१. उत्पलाचार्य— 'अनवच्छिन्ना निर्वृतिमात्रमानन्दशक्तिरिति यावत्। तदौन्मुख्यं विकासिता चिदास्था प्रविकास।

(२) कर्मावच्छिन्ना निर्वृतिरौन्मुख्यम्।

(३) अनवच्छिन्ना निर्वृतिमात्रमानन्दशक्तिरिति यावत्।

तदौन्मुख्यं विकासिता चिदास्थाप्रविकास इत्युक्तम्॥

— शिवदृष्टिवृत्ति (२०/१)

(४) यथा जलस्य पूर्वं निस्तरङ्गस्य अतितरङ्गितां गच्छतः सूक्ष्मः पूर्वः कम्प औन्मुख्यरूपः।

(५) पाणेश्च मुष्टितां गच्छतः पूर्वः सुसूक्ष्मः कम्पो दृश्यते तथा बोधस्य स्व-रूपस्थस्य पूर्णस्य विश्व रचनां प्रति अभिलाषमात्ररचनायोग्यताया यः प्रथमो विकासः प्रवृत्यारम्भः **तदौन्मुख्यं** प्रचक्षते॥

(६) यदेत**दौन्मुख्यं** सैव किञ्चि**दुत्छूनता** कथ्यते भट्टप्रद्युम्नेन तत्त्वगर्भे। अन्यै तरङ्गोर्म्यादिशब्दैरपि। तस्यौ**न्मुख्यस्य** इच्छा कार्या।

जिस प्रकार निस्तरङ्ग सागर में तीव्र एवं प्रचण्ड तरङ्ग उठने के समय सर्वप्रथम एक **कम्प** उत्पन्न होता है या जब हाथ में मुट्ठी बाँधी जाती है तब पूर्ण मुट्ठी बँधने के समय के पूर्व प्रथमतः एक **कम्प** उत्पन्न होता है उसी प्रकार चित्स्वरूप परमशिव के भीतर स्थित चैतन्य जब सृष्टिरचना के प्रति प्रथम-प्रथम प्रवृत्त होता है तब उस अवस्था के प्रथम विकास को **'औन्मुख्य'** कहते हैं।

कतिपय आचार्यगण **औन्मुख्य** को **किञ्चिदुच्छूनता** कहते हैं।

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि-

आचार्य सोमानन्द इन्हीं विचारों को अपने शब्दों में इस प्रकार कहते हैं—

'प्रवृत्तस्य निमित्तानामपरेषां क्व मार्गणम्।
गच्छतो निस्तरङ्गस्य जलस्यातितरङ्गिताम्॥
आरम्भे दृष्टिमापात्य **तदौन्मुख्यं** हि गम्यते।
व्रजतो मुष्टितां पाणेः पूर्वं कम्पस्तदेक्ष्यते॥
बोधस्य स्वात्मनिष्ठस्य रचनां प्रति निर्वृतिः।
तदास्थाप्रविकासो य**स्तदौन्मुख्यं** प्रचक्षते॥

+ + + +

किञ्चिदुच्छूनता सैव महद्भिः कैश्चिदुच्यते।
तस्येच्छा कार्यतां याता यया सेच्छः स जायते।
औन्मुख्यस्य य आभोगः स्थूलः सेच्छा व्यवस्थिता।
न चौन्मुख्य प्रसङ्गेन शिवः स्थूलत्वभाक् क्वचित्॥

'औन्मुख्य' एवं 'आनन्द शक्ति' में भेद

अपने स्वरूप में स्थित पूर्ण संवित् का विश्व-रचना के प्रति अभिलाषा मात्र की रचना-सामर्थ्य का जो प्रथम विकास (प्रवृत्ति का आरम्भ) है वही तो **'औन्मुख्य'** है। इस पूर्वोक्त आकांक्षा (सृजनाभिलाषा, व्यक्तोन्मुखता का सूक्ष्मरूप) मात्र की सृजन पटुता की प्रवृत्ति का जो आरम्भ है वह भी एक प्रकार का कर्म है जिससे वह **'औन्मुख्य'** अवच्छिन्न रहा करता है। किन्तु **'आनन्द शक्ति'** में इस प्रकार का प्रवृत्ति का आरम्भ (कार्य कर्म) नहीं होता। **'आनन्द शक्ति'** कर्मावच्छिन्न नहीं रहती।

शैवदर्शन के प्रख्यात दार्शनिक **उत्पलदेव** का कथन है कि—

'कर्मावच्छिन्ना निर्वृतिरौन्मुख्यम्।
अनवच्छिन्ना निर्वृतिमात्रमानन्दशक्तिरिति यावत्॥'[१]

'औन्मुख्य' का उत्तरवर्ती अंश **'इच्छाशक्ति'** है। ''औन्मुख्यस्य स आभोगः स्थूलः **सेच्छा** व्यवस्थिता॥''[२]

'इच्छा शक्ति'

परमेश्वर के हृदय में (समुत्थित) विश्वसिसृक्षा या विश्वचिकीर्षा के रूप में जो इच्छात्मक परामर्श या सिसृक्षा-विमर्ष होता है वह विश्वचिकीर्षा विमर्श (इच्छात्मक परामर्श) ही **'इच्छाशक्ति'** है। **अभिनव गुप्तपादाचार्य** कहते हैं कि— 'चिकीर्षात्मक परामर्श ही इच्छा है'—

'परामर्शो हि चिकीर्षारूपेच्छा॥'[३]

परमेश्वर की **विश्वात्मभाव** से उल्लसित होने की अभिलाषा **बहिरुल्लिलास-यिषा**— ही **'इच्छाशक्ति'** है।

परमेश्वर के स्वभाव-स्वातन्त्र्य के रूप में मूर्तित 'आनन्द' के विमर्श की संज्ञा **'चमत्कार'** है। परमेश्वर के इसी स्वभाव-वैभव (आनन्द) के चमत्कार की संज्ञा है— **'इच्छाशक्ति'**।

'तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः॥' (तन्त्रसार)

जब 'इच्छाशक्ति' विश्व रूप **'कार्य'** के आविर्भाव की सामर्थ्य बनती है तब उसे **'ज्ञानशक्ति'** कहा जाता है।

---

१. उत्पलदेव-शिवदृष्टिवृत्ति।
२. शिवदृष्टि (१७/१)।
३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग २)।

'ज्ञान शक्ति'

''परतस्तस्मिन् विश्वलक्षणे कार्ये यज्ज्ञानं तत्प्रकाशनशक्तिरूपता सा ज्ञानशक्तिः॥'' **'तन्त्रसार'** में कहा गया है कि— 'आमर्शात्मकता ज्ञान शक्ति है— ''आमर्शात्मकता **ज्ञानशक्तिः**॥''

आचार्य उत्पलदेव **'ज्ञानशक्ति'** पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

''परतस्तस्मिन् **विश्वलक्षणे कार्ये** यज्ज्ञानं तत् प्रकाशनशक्तिरूपता चिदात्मनः सर्वप्रतिपतॄणामवेद्यमन्तःकरण इव प्रकाशमानं तत् कार्यं यतः सा **'ज्ञानशक्तिः**।'[१]

(१) 'इच्छाशक्ति' के विकासानन्तर **'कार्य'** का ज्ञान होता है।

(२) तदनन्तर 'कार्य' का बुद्धि में दर्शन होता है।

(३) तदनन्तर समस्त प्रमाताओं के लिये 'प्रमेय' (ज्ञेय) बनाने की शक्ति का आगम होता है। वही **'ज्ञानशक्ति'** है।

'औन्मुख्य' के अनन्तर—

'अनन्तरं हि तत्कार्य ज्ञानदर्शनशक्तिता॥'

सिद्धान्त यह है कि—

'यत् **इच्छति** तज्ज्ञातुं **कर्तुं** वा स्वेच्छया क्रियाम्।
तस्याः पूर्वापरौ भागौ कल्पनीयौ पुरा हि यौ।
तत्कर्मनिर्वृति प्राप्तिरौन्मुख्यं तद् विकासिता।
अनन्तरं हि तत्कार्यज्ञानदर्शनशक्तिता॥'[२]

ईषत्तया वेद्योन्मुखता या आत्मर्शात्मकता ही 'ज्ञान शक्ति' है।

'मालिनीविजयोत्तर तन्त्र' (अधि. ३/६-७) में कहा गया है कि जो शक्ति ज्ञातृज्ञेयरूपों का अवभासन करके प्रमाताओं को प्रमेयों का ज्ञान कराती है उसे 'ज्ञान शक्ति' कहते हैं—

''एवमेतदिति ज्ञेयं नान्यथेति सुनिश्चितम्।
ज्ञापयन्ती जगत्यत्र **ज्ञानशक्तिर्निगद्यते**॥'

जब इच्छाशक्ति रूप 'कारण' विकसित होकर विश्वरूप 'कार्य' को उन्मीलित करने की सामर्थ्य बनती है तब उसे ही **'ज्ञानशक्ति'** कहते हैं, 'तत्प्रकाशनशक्तिरूपता सा **ज्ञानशक्तिः**।'' (उत्पलदेव)॥

---

१. शिवदृष्टिवृत्ति (२१)।

२. सोमानन्दाचार्यः शिवदृष्टि (१९-२०/१)।

(क) 'बहिरुल्लिलासयिषा' ही '**इच्छाशक्ति**' है।

(ख) प्रकाशनशक्तिरूपता ही '**ज्ञानशक्ति**' है।

'अनन्तरं सर्वप्रमातृवेद्यस्थूलकार्याकारसम्पत्तिफल: समुद्यम इच्छाविषय एव **क्रियाशक्ति:**॥ तत् एव परिसमाप्ति:॥ तत: सर्वं जगत् स्थितम्॥''[१]

परमेश्वर 'ज्ञानशक्ति' को स्थूल स्वरूप प्रदान करता है। उसकी यही शक्ति '**क्रियाशक्ति**' कही जाती है। '**क्रियाशक्ति**' जगत् को स्थूल रूप में प्रकट करती है।

स्वातन्त्र्यात्मा, चिदात्मा परमेश्वर अपने अन्तर्जगत में अपने **प्रकाशरूप आधार से अभिन्न** 'ज्ञाता' एवं 'ज्ञेय' (प्रमाता-प्रमेय) दो सत्तायें अवभासित करता है। ये दोनों प्रकाशरूप आधार से अव्यतिरिक्त होते हुए भी परस्पर भिन्नवत् प्रतीत होते हुए लक्षित होते हैं। जो ज्ञातृ-ज्ञेय रूप दो सत्ताओं का अवभासन करके प्रमाताओं को उनका ज्ञान कराया करती है वही अवबोधजननी शक्ति 'ज्ञानशक्ति' है—

'ज्ञापयन्ती जगत्यत्र ज्ञानशक्तिर्निगद्यते॥'[२]

आभास-क्रम में '**सदाशिव**' **ज्ञानशक्तिमय** है—

''ज्ञानशक्तिमान् सदाशिव:।''[३]

''ज्ञानशक्ति'' में किञ्चित् वेद्योन्मुखता है। 'सदाशिव' ज्ञानशक्तिसमन्वित है अत: 'सदाशिव तत्त्व' में 'इदन्ता' रूप से वेद्य पदार्थों की अस्फुट-सी (किञ्चित्) प्रतीति होती है। '**भास्करी**' में कहा गया है—

'तत्र सदाशिवतत्त्वे इदंभावस्य ध्यामलता (अस्फुटता)।'

'क्रिया शक्ति'

विश्वात्मभाव को ग्रहण करके जो पदार्थों का भेदावभासन किया जाता है उससे सम्बद्ध उनकी उस शक्ति को '**क्रियाशक्ति**' कहते हैं। 'भासना' ही क्रियाशक्ति है।

'भासना च क्रियाशक्तिरिति शास्त्रेषु कथ्यते।'

और यही शक्तिनानात्मक जगत् में परिणत हो जाती है—

'यया विचित्रतत्त्वादिकलना प्रविभज्यते॥' (मा. वि. वा.)

परमेश्वर अपने प्रकाशस्वरूप में जिस स्वसमवेता शक्ति के द्वारा (विश्वात्मक भाव से) अनन्तरूपात्मक पदार्थों का अवभासन करता है उस '**भासना**' को ही '**क्रिंयाशक्ति**' कहा गया है— **मालिनीविजयवार्तिक** (१/१०) में कहा गया है—

---

१. शिवदृष्टिवृत्ति (२१/१)।

२. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र।

३. शिवदृष्टिवृत्ति।

"**भासना** च क्रियाशक्तिरिति शास्त्रेषु कथ्यते।
यया विचित्रतत्त्वादि कलना प्रविभज्यते॥"

जिस प्रकार एक योगी परनिरपेक्ष होकर भी यथाकांक्ष पदार्थों का सृजन कर डालता है या 'चिन्तामणि' यथेच्छ वस्तुओं को प्रकट कर देती है तदवत् **'क्रियाशक्ति'** परमेश्वर की आकांक्षा के अनुरूप उनकी क्रियाशक्ति विश्व के अनन्त पदार्थों का रूप धारण करके अनन्त आभास रूपों को अपने अन्तस्तल में उन्मीलित करती है; क्योंकि उसमें सर्वाकार-ग्रहण की सामर्थ्य विद्यमान रहती है—

'सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः॥'[१]

समस्त षट्त्रिंशदात्म जगत 'क्रियाशक्ति' का ही अपना स्वरूप है— 'क्रियाशक्तेरेव अयं सर्वो विस्फारः॥'[२]

'इच्छाशक्ति'-'ज्ञान-शक्ति' एवं 'क्रिया शक्ति' का विकास-क्रम एवं उनमें एकता

भगवान शिव की पाँच शक्तियाँ हैं—

शैवी शक्तियाँ

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'चित्शक्ति'	'आनन्दशक्ति'	'इच्छाशक्ति'	'ज्ञानशक्ति'	'क्रियाशक्ति'

यद्यपि शिव पञ्चशक्तिसमन्वित हैं तथापि विश्वाभास की दृष्टि से केवल तीन शक्तियाँ ही प्रमुख हैं जो निम्नाङ्कित हैं—

(१) **'इच्छाशक्ति'**, (२) **'ज्ञानशक्ति'** एवं (३) **'क्रियाशक्ति'**।

'तन्त्रसार' में अभिनवगुप्त कहते हैं—

'एवं मुख्याभिः शक्तिभिः युक्तोऽपि वस्तुत **इच्छाज्ञानक्रिया शक्तियुक्तः** अनवच्छिन्न प्रकाशो निजानन्द विश्रान्तः शिव रूपः॥'

'चित् शक्ति' (प्रकाश) एवं **'आनन्द शक्ति'** (विमर्श) परमशिव के पूर्णस्वरूप के दो प्रधान रूप हैं।

(१) **'इच्छाशक्ति'**— **'विमर्श'** (परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति) का **'प्रकाश'** (स्वरूप परामर्श) ही परमेश्वर की चिकीर्षारूप **'इच्छा'** है।

१. तन्त्रसार।

२. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग १)।

(२) परमेश्वर की 'इच्छाशक्ति' ही विश्वाभास में उत्तरोत्तर उच्छूनस्वभाव के कारण 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' बन जाती है— 'इच्छाशक्तिश्च उत्तरोत्तरं उच्छूनस्वभावतया क्रियाशक्तिपर्यन्ती भवति॥'[१]

आचार्य क्षेमराज ने **'स्वच्छन्दोद्योत'** में कहा है कि— स्वातन्त्र्यात्मा **'इच्छाशक्ति'** ही जगदाभास-क्रम में क्रमशः—

(१) **'इच्छाशक्ति'** से 'ज्ञानशक्ति' बन जाती है।

(२) **'ज्ञान शक्ति'** से 'क्रियाशक्ति' बन जाती है और

(३) **'क्रियाशक्ति'** से ३६ तत्त्वों वाला **'विश्व'** बन जाती है।

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'एकस्या अपि इच्छायाः सूक्ष्मरूप **ज्ञानक्रियाशक्ति** सम्भेदेन त्रित्वात्॥'

जगदाभास-क्रम की दृष्टि से ५ शक्तियों में **'इच्छाशक्ति'** ही मुख्यतम है। यह इच्छाशक्ति ही 'स्वातन्त्र्यशक्ति' है। 'अघटनघटनापरीयसी' स्वातन्त्र्य शक्ति ही शिव का **'शिवत्व'** है। शिवत्व (शक्ति) ही **'शिव'** है।

शिव की **भक्ति ही जगत** है—

"शक्तयोऽस्य जगतकृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः॥"

'शक्ति'-'शक्तिमान्' में अभेद है। यह अभेद अग्नि में स्थित उसकी ऊष्णता शक्ति के समान है—

'तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव।'[२]

परमशिव की शक्तियाँ

(१) प्रकाशरूपता **चिच्छक्तिः**।[३] —तन्त्रसार

(२) **प्रकाशश्च** अनयो विमर्शः अहमिति (प्र. विमर्शिनी)।

(३) स्वातन्त्र्यम्— **आनन्दशक्तिः**। (तं. सा.)

(४) तच्चमत्कारः **इच्छाशक्तिः**।

(५) आमर्शात्मकता **ज्ञानशक्तिः**।

(६) आमर्शश्च ईषत्तया वेद्योन्मुखता।

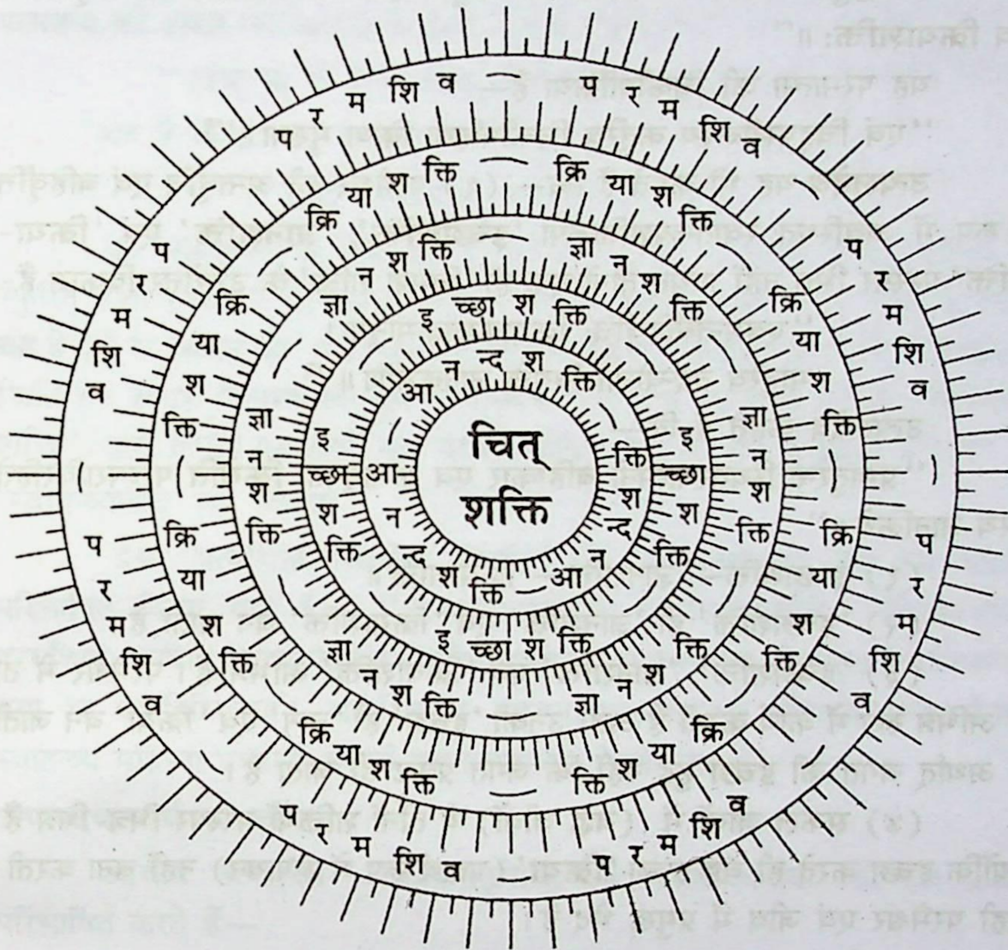
(७) सर्वाकारयोगित्वं **क्रियाशक्तिः**॥

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग १)।

२. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग १)।

३. बोधपञ्चदशिका।



उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि चिद्रपु एवं स्वतन्त्र परमेश्वर जब अपने को विश्वात्मना उल्लसित करना चाहता है तब उसकी यही कारणता कर्तृतारूपा बन कर **'क्रियाशक्ति'** कहलाने लगती है—

'इत्थं तथा घटपंटाद्याभासजगदात्मना।
तिष्ठासोरेवमिच्छैव हेतुता कर्तृता क्रिया॥'[१]

आचार्य उत्पलदेव इस तथ्य को और अधिक सुस्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—

१. प्रत्यभिज्ञाकारिका (५३/२)।

''चिद्वपुषः स्वतन्त्रस्य विश्वात्मना कर्तुमिच्छैव जगत्प्रतिकारणता कर्तृतारूपा सैव **क्रियाशक्तिः** ॥''

यह परमात्मा की चिकीर्षाक्रिया है—

''एवं चिद्रूपस्यैकस्य कर्तुरेव चिकीर्षाख्या क्रिया मुख्या॥''[१]

उत्पलदेव यह भी कहते हैं कि— (१) परमेश्वर की अन्तर्वृत्ति एवं बहिर्वृत्ति के रूप में अवस्थित स्वातन्त्र्यशक्तिरूपा '**इच्छाशक्ति**', '**ज्ञानशक्ति**' एवं '**क्रिया-शक्ति**' परस्पर भिन्न नहीं प्रत्युत् तीनों एक ही 'विमर्श शक्ति' के उत्तरोत्तर विकास हैं-

''एवमन्तर्बहिर्वृत्तिः क्रियाकालक्रमानुगा।
मातुरेव तदन्योन्या वियुक्ते ज्ञानकर्मणि॥''[२]

उत्पलदेव कहते हैं कि—

''प्रमातुरन्तःस्थितस्यात्मनो बहिष्कार एव क्रमानुगता **क्रियेति** परस्पराविरहिते तस्य ज्ञानक्रिये॥''

(१) इच्छाशक्ति— ज्ञानशक्ति— क्रियाशक्ति॥

(२) 'इच्छाशक्ति' ही 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' बन जाती है।

(३) 'इच्छाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' अभिन्न हैं। परमेश्वर में तो वे अभिन्न रूप में कार्य करती है अतः उनकी 'इच्छा' ही 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' बन जाती है अर्थात् जगत की **इच्छा** हुई नहीं कि जगत प्रकट हो जाता है।

(४) सकल जीवों में (बद्ध जीवों) ये तीनों शक्तियाँ परस्पर भिन्न-भिन्न हैं; क्योंकि इच्छा करते ही वह इच्छा '**क्रिया**' (पदार्थ रूप में रूपायन) नहीं बना करती। यही परमेश्वर एवं जीव में प्रमुख भेद है।

'स्वातन्त्र्य शक्ति'

'स्वातन्त्र्य शक्ति' परमशिव की मूल शक्ति है। परम शिव के दो रूप हैं—

(१) प्रकाशस्वरूप के प्राधान्य से परमशिव '**विश्वोत्तीर्ण**' हैं।

(२) विमर्शस्वरूप के प्राधान्य से परमशिव '**विश्वमय**' हैं।

परमशिव की विमर्शरूपता ही उसकी स्वात्मस्वरूपता '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' है। '**स्पन्दशास्त्र**' इस स्वभावात्मा शक्ति को 'स्वातन्त्र्य शक्ति' कहते हैं— यही '**स्पन्द**' भी है।

स्पन्दनिर्णयकार क्षेमराज कहते हैं—

''श्रीभगवतः **स्वातन्त्र्यशक्तिः** किञ्चिच्चलत्तात्मकधात्वर्थानुगमात्**स्पन्द** इत्यभिहिता॥''

---

१. प्रत्यभिज्ञाकारिका वृत्ति (५३/२ अ.)।

२. प्र. का. (१/३)।

'**स्वातन्त्र्य**' परमेश्वर की पराशक्ति है। '**आनन्द**' इसका **अपर पर्याय** है। परमात्मा की इच्छा का अनभिहत प्रसार उसका '**स्वातन्त्र्य**' है—

''स्वातन्त्र्यं च नाम यथेच्छं तत्रेच्छाप्रसरस्य अविघातः॥''[१]

यह है कौन? यह दुर्घटकारित्व है—

''एतदेव स्वातन्त्र्यं यदतिदुर्घटकारित्वम्॥''

यह 'स्वातन्त्र्य' से भिन्न नहीं है। अपने स्वातन्त्र्य या ऐश्वर्य से अनन्त रूपों में स्फुरित होता हुआ भी परमेश्वर स्वरूपतः अखण्ड एवं पूर्ण रहता है। जिसे **परमेश्वर का ऐश्वर्य** या '**स्वातन्त्र्य**' कहा जाता है वह नित्योदित 'परावाक्' है। यही **विमर्शात्मा चिति** है। प्रकाश विमर्शात्मक एवं संवित्स्वभाव भगवान परमशिव अपनी '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' द्वारा रुद्रादि प्रमाताओं एवं घटपट आदि प्रमेयों के रूप में प्रकट होते हैं।

'स्वातन्त्र्यवाद' का स्वरूप

'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृति' विमर्शिनी में 'स्वातन्त्र्यवाद' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है— ''तस्मादनपह्नवनीयः प्रकाशविमर्शात्मा संवित्स्वभावः परमशिवो भगवान् **स्वातन्त्र्यादेव** रुद्रादिस्थावरान्त प्रमातृरूपतया नीलसुखादिप्रमेयरूप-तया च अनतिरिक्तयापि अतिरिक्तयेव स्वरूपानाच्छादिकया संवित्स्वरूपनान्तरीयक स्वातन्त्र्य महिम्ना प्रकाशते इत्ययं स्वातन्त्र्यवादः प्रोन्मीलितः॥''

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि-

आचार्य उत्पलदेव 'अजऽप्रमातृसिद्धि' में 'स्वातन्त्र्यवाद' को इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

''इत्थं जडभावानां संविद्विश्रान्ति विनासत्कल्पत्वात् स्वात्मन्य तत्स्वभावानां ज्ञातुः प्रकाशस्वभावस्य सम्बन्धितयैव सत्वं तस्मात्संवित्प्रकाश एवं स्वात्मोच्छलतया स्वमायाशक्त्युल्लासिते विश्ववैचित्र्ये जडाजडभावराशिद्वयेन वेद्यवेदकात्मकेन स्वरूपा-नतिरिक्तेनाति रिक्तेनेव प्रस्फुरेत् इति **स्वातन्त्र्यवादस्य** प्रोन्मीलनं सूचितवानाचार्यः॥''[२]

संवित् शक्ति ही विश्वस्फुरत्तामयी **स्वस्वातन्त्र्य** के द्वारा विचित्रार्थात्मना भिन्न-भिन्न रूप में अवभासित होती है और वही विश्व का जीवन है— वह अहन्ताविश्रान्ति स्वरूप भी है—

'संविदेव विश्वस्फुरत्तामयी स्वस्वातन्त्र्यादेव विचित्रार्थात्मना विभिन्नप्रकाशमयेन प्रस्फुरन्ती विश्वजीवितं, तदहन्ता विश्रान्तिः॥''

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी (१/१)।

२. अजडप्रमातृसिद्धि (१३)।

आभासवाद

'आभास' क्या है? सङ्कुचित रूप से प्रकाशन ही 'आभास' है— 'आभासनं ईषत् सङ्कोचेन भासनं प्रकाशनम्॥''[१]

अभिनव गुप्त 'आभास' को 'प्रतिबिम्बित' के रूप में भी प्रयुक्त करते हैं— ''भासनसारतैव हि प्रतिबिम्बता॥'' ''इह अवभासनसारमेव प्रतिबिम्बतत्त्वम्॥'' आभास के दो पक्ष हैं—

आभास के दो पक्ष

(१) विमर्शात्मक प्रकाशपुरुष का सङ्कुचित या अपूर्ण आत्मप्रकाशन ही **'आभास'** है।

(२) विमर्शात्मक प्रकाशपुरुषरूपी दर्पण में अनतिरिक्त होते हुए भी अतिरिक्त बल जड़-चेतन समग्र जगत का प्रतिबिम्बन **'अभास'** है।

क्षोभ (सृष्टि) की अवस्था में परमात्मा में बाह्याभासात्मक यह विश्व भासित होता है तथा क्षोभावसान या क्षोभ-क्षीणता की अवस्था में जो अनुत्तरात्मक स्थिति आती है उसमें मात्र अखण्ड स्वात्मसंवित्ति ही लक्षित होती है अन्य नहीं।

अभिनव गुप्त कहते हैं—

यस्यामन्तर्विश्वमेतद्विभातिबाह्याभासं भासमानं विसृष्टौ।
क्षोभेक्षीणेऽनुत्तरायां स्थितौ तां वन्दे देवीं स्वात्मसंवित्तिमेकाम्॥

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकार **उत्पलदेवाचार्य** कहते है—

''वर्तमानावभासानां भावानामवभासनम्।
अन्त:स्थितवतामेव घटते बहिरात्मना॥''

—ईश्वर प्रत्यभिज्ञा

******

१. ई. प्र. वि. वि. (२/२)।

अध्याय-२

तन्त्रशास्त्र और अद्वैतवाद या 'ईश्वराद्वयवाद'

यद्यपि तन्त्रशास्त्र में द्वैत, अद्वैत एवं द्वैताद्वैत आदि सभी दृष्टियाँ हैं जैसे— (१) **'सिद्धान्त मत'** (मद्रास का)— **'द्वैतवाद'**। (२) **'त्रिक' 'स्पन्द' प्रत्यभिज्ञा 'क्रम'**— त्र्यम्बक शैव दर्शन **'अद्वैतवाद'**। (३) **भेदाभेदवादी**— (कर्नाटक के) वीर शैव। किन्तु अद्वैतवाद उसकी मुख्य दृष्टि है जो कि **दर्शन, आचार, धर्म एवं व्यावहारिक सामाजिक जीवन में** भी परिलक्षित होती है। **'तन्त्र'** इसी अद्वैत (भेदभाव के अन्त, जातिवादी व्यवस्था की सङ्कीर्णता के उन्मूलन एवं समत्वपरक समाज की स्थापना के लिए प्रादुर्भूत ही हुआ था।) सामाजिक, धार्मिक एवं आनुष्ठानिक क्रियाकलापों एवं व्यावहारिक जीवन में भेदभाव-शून्य समरसता की स्थापना के अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र ने पूजा-पद्धति में भी इसी समत्वमूलक एवं अद्वैतनिष्ठ दृष्टि को श्रेष्ठतम मानकर उसे प्राणप्रतिष्ठित किया है।

'माहेश्वर तन्त्र' (नारद पाञ्चरात्र) में व्यक्त दृष्टि

भगवान शिव पार्वती से कहते हैं कि 'हे पार्वती! साधक को **सदैव अद्वैत की ही भावना करनी चाहिए** द्वैतभाव की नहीं। यदि द्वैतभावना न छोड़ी गई तो संसार कभी निवृत्त नहीं होता। यदि कोई साधक अद्वैतभावनिष्ठ बना रहता है तो (संसरण रूप इस संसार के बन्धन से लिप्त न होने के कारण) वह संसार को नहीं देखता अर्थात् वह संसार को अन्य संसारियों की भाँति बन्धनप्रद रूप में एवं अपने से भिन्न सत्ता के रूप में नहीं देखता। जो अद्वैतभावयोगी है वही यथार्थतः देख पाता है अन्य नहीं। ''ये ब्रह्मा हैं, ये रुद्र हैं और ये मुझसे पृथक् हैं''— इस प्रकार भावना रखकर जो द्वैतभाव रखता है उसे कालकृत भय से कभी मुक्ति नहीं प्राप्त हो पाती—

''अद्वैतं भावयेन्नित्यं द्वैतभावं न भावयेत्।
द्वैतभावनया नित्यं संसारो न निवर्तते॥''[१]
अद्वैतभावनिष्णातः संसारं नैव पश्यति।
तस्मादद्वैतभावेन यः पश्यति स पश्यति।
''अयं ब्रह्मा हरिरयं रुद्रोयमिति वै भिदा।
यः पश्यति महेशानि तस्य कालकृतं भयम्॥''[२]

---

१. माहेश्वर तन्त्र (ज्ञानखण्ड)।

२. मा तं. (४८/३४-३६)।

ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त निखिल विश्व ब्रह्ममात्र है। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' की दृष्टि ही तात्त्विक दृष्टि है और द्वैत-दृष्टि मात्र भ्रम है। जलोपाधिवश एक चन्द्रमा ही दो दिखाई पड़ने लगता है किन्तु जलोपाधि-निरास के अनन्तर तो यथार्थ चन्द्रमा एक ही दृष्टिगत होता है दो नहीं। ब्रह्म भी एक ही है और उसी में जगत् अज्ञान के कारण पृथक रूप मे विजृंभित या आरोपित हो रहा है किन्तु अज्ञान के दूर होते ही मात्र अद्वैत ब्रह्म ही दृष्टिगत होता है प्रपञ्च नहीं। एक सत्ता के ज्ञात होने पर शिव, हरि एवं ब्रह्मा इन तीन सत्ताओं की पृथकता का बोध नहीं होता—

(१) प्रपञ्चो ब्रह्मतन्मात्रं ब्रह्मादिस्थावरान्तकः॥
(२) एकमेवाद्वितीयं चेत्यन्यथा तु विरुद्ध्यते।
तस्मादद्वैतं तु देवेशि भ्रममात्रं न संशयः॥
चन्द्रद्वैतं प्रतीयेत् जलोपाधिप्रसङ्गतः।
जलोपाधिनिरासेन चन्द्राद्वैतं प्रकाशते॥
ब्रह्मण्यपि तथा द्वैतमज्ञानेन विजृंभितं।
अज्ञानस्य निरासे तु ब्रह्माद्वैतं यथा भवेत्।
कः शिवः को हरिर्ब्रह्मा 'एकत्वमनुपश्यतः॥'[१]

शाक्तागम का अद्वैतवाद

आचार्य शङ्कर की दृष्टि

आचार्य शङ्कर भी शक्ति के उपासक हैं। शाक्तागम मुख्यतः अद्वैतनिष्ठ है अतः उसे साधना में भी वही दृष्टि (देवी और भक्त में भी अद्वैत की दृष्टि) परिलक्षित होती है—

'अहं देवी न चान्योस्मि'

आचार्य शङ्कर 'शक्ति' के अद्वैतस्वरूप पर प्रकाश डालते हुए समस्त विश्व को शक्ति का ही '**परिणाम**' बताते हैं और 'मन', 'व्योम', 'मरुत', 'मरुतसारथि', 'अप', 'भूमि' आदि सभी तत्त्वों को 'शक्ति' का रूप कहते हुए **विश्व को उसी** पराशक्ति **भगवती का शरीर** भी स्वीकार करते हैं—

'मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि **परिणतायां** न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं **परिणमयितुं विश्ववपुषा**
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन बिभृषे॥'[२]

---

१. माहेश्वरतन्त्र (ज्ञानखण्ड) (४८/३७-४१)।
२. सौन्दर्य लहरी (३५)।

'शक्ति' के बिना तो 'शिव' भी हिल तक नहीं सकते—

"शिवश्शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलस्स्पन्दितुमपि॥"[१]

वही 'शक्ति' अपने चरणयुगल से विगलित सुधाधारासार से विश्व को सिञ्चित करती है—

'सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसः॥'

वही 'सहस्रार' में निवास करती है और वही 'मूलाधार' 'स्वाधिष्ठान' 'मणिपूर' 'अनाहत' विशुद्ध 'आज्ञाचक्र' में भी निवास करती है—

'महीं '**मूलाधारे**' कमपि '**मणिपूरे**' हुतवहं,
स्थितं 'स्वाधिष्ठाने' हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि **भ्रूमध्ये** सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे॥'[२]

वही पराशक्तिरूप ब्रह्म, 'सुधासिन्धु' के मध्य, देवोद्यान से परिवृत '**मणिद्वीप**' के '**चिन्तामणिगृह**' में स्थित **शिवाकार मञ्च** पर स्थित **परमशिवस्वरूप पर्यङ्क पर** समासीन चिदानन्दलहरी है—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवारीपरिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्ता मणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥'[३]

उसी 'शक्ति' के चरणकमल की धूल लेकर ब्रह्मा समस्त लोकों की रचना करते हैं और शेषनाग बड़ी कठिनाई से उस धूल को अपने सहस्रकणों पर और शिव भस्म के रूप में अपने सारे शरीर में अङ्गराग की भाँति लगाकर धन्य धन्य हो जाते हैं—

'तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवम्,
विरञ्चिस्सञ्चिन्वन्विश्चयति लोकानविकलम्।

---

१. सौन्दर्य लहरी (१)।
२. सौन्दर्य लहरी (९)।
३. सौन्दर्य लहरी (८)।

वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसाम्,
हरस्संक्षुद्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्॥[१]

भास्कर राय की दृष्टि

विश्व 'शक्ति' का ही परिणाम है

विश्व कोई स्वतन्त्रसत्ता का पदार्थ नहीं प्रत्युत् वह परब्रह्मस्वरूप **'महाशक्ति'** का **'परिणाम'** है—

"सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा"

अद्वैत महाशक्ति की परिणामरूपा सृष्टि के भेद

(१)	(२)	(३)	(४)
'अर्थमयी' सृष्टि	'शब्दमयी' सृष्टि	'चक्रमयी' सृष्टि	'देहमयी' सृष्टि

"**अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमप्यपि** च सृष्टिः॥"

यही अद्वैत महाशक्ति **'नैसर्गिकी स्फुरत्ता'** एवं **'विमर्श'** है और शिव इसी शक्ति की सहायता से जगत की सृष्टि एवं उसका पालन एवं संहार किया करते हैं—

"नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति॥"[२]

यह **शिव और शक्ति का** सामरस्यात्मक एवं **द्वयात्मक अद्वैतवाद** ही तान्त्रिक शैवों का अपना **'अद्वैतवाद'** है। यह **शाङ्कर केवलाद्वैतवाद** से भिन्न है।

'जगत' परमात्मा का ही स्वस्वरूप है

स्पन्दशास्त्र का सिद्धान्त— स्पन्दकारिकाकार का कथन है कि जगत एवं परमात्मा में अभेद है। इसीलिए 'स्पन्दकारिका' में कहा गया है— **"समग्र जगत मेरा ही स्वस्वरूप है"**— इस प्रथा का जिसको ज्ञान है वह, समस्त **जगत को खेल के समान देखता हुआ सतत** योगयुक्त होने से **'जीवन्मुक्त'** कहा जाता है— इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं है।

"इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो **जीवन्मुक्तो** न संशयः॥"[३]

---

१. सौन्दर्य लहरी (२)।
२. वीरवस्यारहस्यम् (४-५/१)।
३. स्पन्द कारिका (१)।

अद्वैतवाद के विभिन्न पक्ष

(१) **जीव का** चिति शक्ति के साथ अद्वैत ''चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं।'' (प्र. हृदयम् सू. १६)।

(२) **विश्व के साथ अभिन्नतारूप समावेशः ''विश्वात्मसात्कारात्मनि** समावेशरूपे चिदानन्दलब्धे॥'' (प्र. हृदयम्)

(३) चितिशक्ति का विश्व के साथ अद्वैतभाव— ''चितिरेव भगवती विश्ववमनात्'' (प्र. हृदयम्)।

'चिदानन्द की प्राप्ति के बाद देहादिक के अनुभूभ होने पर भी—

''**चितशक्ति के साथ एकात्मता की प्रतिपत्ति** की दृढ़ता ही 'जीवन्मुक्ति' है।''

''चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः।'' प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

त्रिक दर्शन में अद्वैत परमतत्त्व का स्वरूप

शाङ्कर वेदान्त यह नहीं समझा पाया कि 'माया' कहाँ से आयी। चैतन्य को इसने किस प्रकार आच्छादित कर लिया? मात्र यही कहा गया कि माया अनादि है। उसने अनादिकाल से ब्रह्म को आच्छन्न कर रखा है। 'जीव एवं ईश्वर' भी अनादि हैं। इन सब समाधानों के अनन्तर भी मन सन्तुष्ट नहीं हो पाता। मन निरस्तसंशय नहीं हो पाता।

वेदान्त का ब्रह्म **चैतन्यस्वरूप** और **आनन्दस्वरूप** दोनों है। सांख्य का पुरुष चैतन्यस्वरूप है, परन्तु इस **'चैतन्य'** या **'आनन्द'** से क्या लाभ है? यदि इनमें 'कर्तृत्व' ही न हो तो इनके प्रति आकर्षण ही क्या रह जायेगा?

यदि ब्रह्म सर्वशक्तिमान है किन्तु यदि वह उस शक्ति का प्रयोग ही नहीं कर सकता या उसका कोई उपयोग नहीं हो सका तो उस शक्ति का मूल्य ही क्या है? वेदान्त तो कर्तृत्व को जड़ में मानता है। यही दृष्टि सांख्य की भी है। सांख्य प्रकृति में कर्तृत्व मानता है तो वेदान्त माया में। वेदान्त और सांख्य की भूमि पर जिन शंकाओं का समाधान नहीं हो पाया उनका समाधान खोजते-खोजते जब अनुसन्धित्सु तत्त्व-सन्धान की यात्रा में और आगे बढ़ता है तब उसे **चिन्मय भूमि का साक्षात्कार** होता है। यहाँ जड़-चेतन कहलाने वाली सारी वस्तुएँ एवं सारे माता-मेय पदार्थ चिन्मय दृष्टिगत होते हैं। इस **'चिन्मय जगत'** में कोई भी किसी से भी पृथक् नहीं है। इस भूमि में एक मात्र तत्त्व है— **'परमशिव'**।

परमशिव **'चित्'** है। वही **'आत्मा'** भी है।

'शिवसूत्र' (१/१) में उसी के लिए कहा गया है—

''चैतन्यमात्मा'' 'चैतन्य परमार्थतः शिव एव विश्वस्य आत्मा॥''[१] चैतन्य ही आत्मा है— चैतन्य आत्मा का स्वभाव है— ''चैतन्यं उक्तं स एव आत्मा, स्वभावः भावाभावरूपस्य विश्वस्य जगतः।''

स्पष्ट है कि अचित् किसी का स्वभाव नहीं बन सकता।

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'नहि अचेत्यमानः कोऽपि कस्यापि कदाचिदपि स्वभावो भवति। चेत्यमानस्तु स्वप्रकाशचिदेकीभूतत्वात् चैतन्यात्मैव॥'' चैतन्यं विश्वस्य स्वभावः॥[२] इस भूमि पर **''सर्वचिन्मयवाद''** या **''सर्वचैतन्यवाद''** पूर्ण प्रतिष्ठ है।

परात्पर सत्ता 'चित्' है— आत्मा है और उसी आत्मस्वरूप चित तत्त्व से सारे चिन्मय पदार्थ आविर्भूत होते हैं और उसी में लयीभूत हो जाते हैं। 'सृष्टि' क्या है? यह तो उसका **'उन्मीलन'** मात्र है—

(१) जो अन्दर स्थित है वही बाहर प्रकट हो जाता है।

''अन्तः स्थितवतामेव घटते बहिरात्मना॥''

(२) 'उन्मीलन' पूर्वावस्थित पदार्थ का प्रकटीकरण मात्र है— नूतन सृष्टि या नव्य जन्म नहीं है। सर्वचिन्मयवादनिष्ठ इसी भूमि को अद्वैत शैव दर्शन **स्पन्दशास्त्र या प्रत्यभिज्ञा दर्शन की भूमि** कहते हैं।

काश्मीरीय अद्वैतवादी शैव दर्शन को ही 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन', 'माहेश्वरदर्शन', 'त्रिक' आदि कहते हैं।

'ईश्वराद्वयवाद' एवं 'ब्रह्माद्वैतवाद' में भेद

'त्रिक दर्शन' (काश्मीरीय अद्वैतवादी शैव दर्शन) भी अद्वैतनिष्ठ है और इस अद्वैतवाद को **'ईश्वराद्वयवाद'** कहते हैं। प्रमाण देखिये—

(१) आचार्य **क्षेमराज** कहते हैं—

''**ईश्वराद्वयदर्शनस्य** ब्रह्मवादिभ्यः अयमेव विशेषः यत्—

''सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारकम्।
अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्तिविनाशनम्॥''

---

१. शिवसूत्र विमर्शिनी (प्रथमोन्मेषः १/१)।

२. शिवसूत्र विमर्शिनी (१/१)।

"सदा पञ्चकृत्यकारित्वं चिदात्मनो भगवतः।"

'तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति॥१०॥'[1]

(२) आचार्य **उत्पलदेवाचार्य** कहते हैं—

'**ईश्वराद्वयवाद**' एव युक्तियुक्तो न तु शब्द परब्रह्मा **द्वयवाद** इति॥[2]

त्रिक दर्शन (का. शै. द.) में भी 'माया' एवं 'अज्ञान' की मान्यता है किन्तु यहाँ यह स्वतन्त्र नहीं है। यह यहाँ परतत्त्वाधीन है। शिव की 'इच्छा' या लीला (स्वातन्त्र्य शक्ति या विमर्श) से ही अज्ञान का उन्मेष होता है। उसी में उसका लय भी हो जाया करता है।

'अज्ञान' बोधस्वरूप परमेश्वर से प्रतिकूल तत्त्व है तथापि यह उस बोधस्वरूप शिव को दुष्प्रभावित, परिवर्तित या रूपान्तरित नहीं कर पाता। निःशेष मायिक लीला शिव की '**क्रीडा**' मात्र है—

"इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।

स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः॥"

अद्वैतवादी शैवदर्शन '**लीलावाद**', '**क्रीडावाद**', '**आभासवाद**' एवं '**स्वातन्त्र्यवाद**' की पुष्टि के सिद्धान्तों की स्थापना करता है।

मायिक क्रीडा, विश्व, विश्व-सृष्टि, सम्पूर्ण जगत एवं सृजन-व्यापार परमशिव की लीला या क्रीडा मात्र है।

चूँकि परमशिव तो **निराशंस, आप्तकाम** एवं **आत्मविश्रान्त** है अतः उसमें तो सृष्टि-निर्माण आदि की इच्छा का उन्मेष हो ही नहीं सकता। विश्व परमशिव का प्रयोजनरहित '**क्रीड़ा**' मात्र है। क्रीड़ा मनोविनोद है— मनोरंजन है, उसी प्रकार सृष्टि भी परमशिव के लिए केवल मनोविनोद या क्रीड़ा है—

"यथा नृपः सार्वभौमः प्रभावामोदभावितः॥३७॥

क्रीडन् करोति पादातधर्मांस्तद्धर्मधर्मतः॥

तथा प्रभुः प्रमोदात्मा क्रीडत्येवं तथा तथा॥३८॥

इत्थं शिवो बोधमयः स एवं परिनिर्वृतिः॥

ब्रह्माद्वैतवादी शाङ्कर दर्शन में माया या अज्ञान किसी के अधीनस्थ नहीं है। सारा कर्तृत्व उसी का है, ब्रह्म तो निष्क्रिय, साक्षी, अधिष्ठास्वरूप, चैतन्यस्वरूप एवं अकर्ता है। शैव दर्शन में 'माया' या अज्ञान शिवाधीन है।

---

१. शिवसूत्र (१०)।

२. शिवदृष्टिवृत्ति (१/२१)।

'**परमशिव**' तो शुद्ध, चिन्मय, चिद्रूप एवं ज्ञान-क्रियारूप हैं। वे ब्रह्म की भाँति निष्क्रिय नहीं हैं, प्रत्युत् पञ्चक्रियाकर्ता हैं। वे कर्तृस्वरूप हैं। '**विमर्श**' ही उनका स्वभाव है। उनके लिए 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' समान हैं; क्योंकि परमशिव की 'क्रिया' ही ज्ञान है। कारण यह कि यह ज्ञाता का धर्म है और उसके कर्तृस्वभाव होने के कारण उसका ज्ञान ही '**क्रिया**' है। इस 'ज्ञान' एवं क्रिया की उन्मुखता ही '**इच्छा**' है।

ईश्वराद्वयवाद : 'सामरस्यवाद'

काश्मीरीय शैव तांत्रिकों का अद्वैत शाङ्कर अद्वैत नहीं है। यहाँ दो की वर्तमानता में भी अद्वैत है अतः इसे 'द्वयात्मक अद्वयवाद' या '**ईश्वराद्वयवाद**' कहते हैं। इसे '**ईश्वराद्वयदर्शन**' कहा गया है—

(१) 'इह **ईश्वराद्वयदर्शनस्य** ब्रह्मवादिभ्यः अयमेव विशेषः'

—प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (१०)

(२) '**ईश्वराद्वयवाद** एवं युक्तियुक्तो न तु शब्दपरब्रह्माद्वयवाद इति वक्तुं वैयाकरणोपेतशब्दाद्वैतं तावन्निराकर्तुमुपक्रममाण आह—

''अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता।
वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थितिः॥''

'विश्वाहन्ता' का स्वरूप और अद्वैतवाद

अभिनवगुप्त की अद्वैतविषयक दृष्टि-

अभिनवगुप्ताचार्य अपने पूर्ववर्ती कैवलाद्वैतवादी दार्शनिक शङ्कराचार्य के '**केवलाद्वैतवाद**' को अङ्गीकृत न करके, तान्त्रिक शैवमतगृहीत 'द्वयात्मक अद्वैतवाद' को अङ्गीकृत करते हुए 'शक्त्यात्म परमशिव' की वन्दना करते हैं और कहते हैं कि—

''जो चिन्मात्र स्वभाव परमशिव पूर्णतम होने के कारण निराशंस (निराकांक्ष) है किन्तु अपनी '**स्वातन्त्र्यशक्ति**' की अद्वितीय महत्ता (शक्तिमत्ता) के कारण बाह्योल्लास (बहिरुल्लिलसिषा) वश सृष्टि के आदि में 'अहमस्मि'— परामर्श द्वारा शक्ति दशा में शयन करते हुए प्रस्फुरित होता है और उसके अनन्तर '**अहं**' और '**इदं**' के स्वरूप वाली दो शाखाओं के परामर्श का अवभासन करता है (अर्थात् परमात्मा शुद्ध चिन्मात्र अधिकरणस्वरूप '**अहमंश**' में '**इदंमंश**' का उल्लासन करता है) उसके चित्रकल्प प्रोन्मीलन से इच्छाप्रधान '**सदाशिव तत्त्व**' 'इदमंश' में 'अहमंश' के अभिनिवेश से '**ज्ञानशक्ति प्रधान**' **ईश्वर तत्त्व ('इदमहम्' विमर्श वाले ईश्वर)** और '**अहमंश**' एवं '**इदमंश**' में सामानाधिकरण्य (अहं एवं इदं के समधृततुलापुट न्याय

से समतुल्यता) वाले एवं क्रियाप्रधान विद्यातत्त्व के रूप में अपनी कला (शक्तितत्त्व) को विभक्त करने के उद्देश्य से (अपनी स्वरूपस्थिति में अविचल रहते हुए भी) स्वस्वरूप से उन्मेष स्थिति एवं निमेषरूप विश्व-प्रसरण करने एवं शक्तिरूप आत्मावाले (शक्त्यात्म) तथा **निखिलअद्वैतस्वरूप** हैं उस परमशिव की मैं अभिनव गुप्तपादाचार्य वन्दना करता हूँ—

'निराशंसात्पूर्णादिहमिति पुरा भासयति यद्,
द्विशाखामाशास्ते तदनु च विभक्तुं निजकलाम्।
स्वरूपादुन्मेषप्रसरणनिमेषस्थितिजुषस्,
तदद्वैतं वन्दे परमशिवशक्त्यात्म निखिलम्॥'[१]

आचार्य अभिनवगुप्त ऐसे ही (१) निराशंस (२) पूर्ण, एवं

(३) **'अहं'+'इदं' के रूप में** अपनी शक्ति को विभक्त करके (उसे विश्व के रूप में) प्रस्तुत करने वाले और इसी के बहाने,

(४) 'अहं'-'इदं' के रूप में स्थित 'शिव' 'सदाशिव' 'ईश्वर' एवं 'सद्विद्या' स्वरूपवाले 'शुद्धाध्व' को अवभासित करने वाले,

(५) अपने स्वरूप से ही (ऊर्णनाभि या योगी की भाँति) अपरापेक्षी रूप में विश्व का उन्मेष, प्रसरण, स्थिति एवं निमेष (सृष्टि-स्थिति-संहार) व्यापारों को निष्पादित करने वाले,

(६) शक्तिरूप आत्मावाले एवं

(७) परमशिस्वरूप अद्वैत की वन्दना करते हैं—

"तदद्वैतं वन्दे परमशिवशक्त्यात्म निखिलम्॥"[२]

विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की अद्वैत सम्बन्धिनी दृष्टि

भगवान् विरूपाक्ष की दृष्टि में— (१) 'द्वैताद्वैतवाद' (२) 'शुद्धाद्वैतवाद' (३) 'शाङ्कर केवलाद्वैतवाद' (४) 'विज्ञानाद्वैतवाद' (५) 'शून्याद्वैतवाद' एवं (६) 'शब्दब्रह्माद्वैतवाद' आदि अद्वैतदृष्टियों में से कोई भी ग्राह्य नहीं है।

भगवान विरूपाक्ष **'विश्वाहन्ता' 'पूर्णाहन्ता'** या **'पराहन्ता'** को ही **अद्वैत का यथार्थ स्वरूप** स्वीकार करते हैं और अद्वैत को दो की सत्ता का निषेध नहीं मानते प्रत्युत् दोनों में **सामरस्य का अवस्थान** मानते हैं। 'शिव' और 'शक्ति' की

१. ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (मङ्गलाचरण)।
२. ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी।

द्वयावस्था में जो सामरस्यस्वरूप एकत्व है वही भगवान् विरूपाक्ष को अद्वैतवाद के रूप में स्वीकार्य है। 'अद्वैत' दो का निषेध नहीं प्रत्युत् दो में सामञ्जस्य है।

तान्त्रिक दृष्टि का अद्वैतवाद

(१)	(२)	(३)	(४)
शिव और शक्ति में सामरस्य।	निष्कल शिव एवं सकल (जीव) में एकत्व।	परमेश्वर एवं विश्व में एकत्व का साक्षात्कार।	अस्मद्-युष्मद्, अहं-इदम् या वेदक-वेद्य में सामरस्य।

स्पन्दकारिकार ने भी यही दृष्टि स्वीकार की है—

(१) तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न या शिवः।
भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः॥

(२) यस्मात् सर्वमयो जीवः सर्वभावसमुद्भवः।
तत्संवेदनरूपेण तादात्म्यप्रतिपत्तितः॥

—(स्पन्दकारिका, २८-२९)

भगवान् विरूपाक्ष इन्द्रदेव से कहते हैं कि— मैं ('प्रकाश') स्वाङ्ग (स्व-स्वरूपभित्ति) चिद्गगन में अर्थात् अनवच्छिन्न चिन्मयरूप में 'खेचरी', 'गोचरी', एवं 'दिग्चरी' आदि सम्भेद-विभेदरूप शक्ति-लहरियों द्वारा शिवाद्यक्षितिपर्यन्त समस्त विश्व का सृजन-ध्वंस (अवभासन एवं विलोपन) किया करता हूँ। किन्तु यहाँ 'दृश्य' और 'द्रष्टा', 'ग्राह्य' और 'ग्राहक' या 'अहम्' और 'इदम्' में भेद नहीं है; क्योंकि यहाँ 'प्रकाशरूप' मैं ही 'अहं' और 'इदम्' दोनों हूँ और यह जगत मुझसे बाहर नहीं 'स्वाङ्ग' में उदित और ध्वस्त दोनों होता है। इसकी स्थिति है— ''स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥'' (शक्तिसूत्र)।

जगत का **उदय,** उसकी **स्थिति** एवं उसका **लय** सभी शिव के स्वाङ्गभूत चिदाकाश में ही होता है। '**जगत**' शिव से उसी प्रकार अभिन्न है यथा समुद्र और उसकी तरङ्गें।[१]

विश्व तरङ्ग है और परमात्मा समुद्र है

भगवान उक्त दृष्टि को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि— 'स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि दुग्धोदधिनिभः स्वशक्तिलहरीणाम् सम्भेदविभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति चैष जगत्॥'

---

१. 'स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि दुग्धोदधिनिभः स्वशक्तिलहरीणाम्।
सम्भेदविभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति चैष जगत्॥१३॥

अर्थात् जिस प्रकार समुद्र अपनी तरङ्गों के सम्भेद-विभेद द्वारा तरङ्गबुदबुद का सृजन एवं संहरण किया करता है उसी प्रकार परमात्मा भी अपनी शक्तियों के सम्भेद-विभेद के द्वारा शिवाद्यक्षित्यन्त समस्त विश्व का सृजन-संहरण किया करता है। कार्यकारणरूप अन्वयव्यतिरेक से **'प्रकाश'** (शिव) का भी ग्राह्यग्राहकरूप में अभेद है। समुद्रतरंग की भाँति **'प्रकाश' और उसकी शक्तियों** (खेचरी आदि शक्तियों) में भी अभेद है और जगत का शिव के स्वाङ्ग में उदय होने से जगत का भी शिव से अभेद सिद्ध होता है।

भगवान विरूपाक्ष कहते हैं—

"स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि दुग्धोदधिनिभः स्वशक्तिलहरीणाम्।
सम्भेदविभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति चैष जगत्॥"[१]

भोग्य-भोक्तास्वरूप 'विश्व' चैतन्य शक्ति ही तो है—

जगत भोग्य और भोक्ता का समुच्चय ही तो है। 'चिति शक्ति' ही भोग्य और भोक्ता दोनों बनकर स्थित है अतः इस भोग्य-भोक्ता के द्वैत में भी तो चिद्रूप ऐक्य विद्यमान है—

रूपादिपञ्चविषयात्मनि भोग्यहृषीकभोक्तृरूपेऽस्मिन् जगति प्रसरदनन्तस्वशक्तिचक्रा चितिर्भाव्या॥[२]

चित्तत्व ही जड़ पदार्थों के स्वरूप में परिणत हो गया है—

कलोद्वलित एवं कर्तृतामय 'चित्तत्त्व' शून्यादि अचिद्रूप तत्त्वों के रूप में भी परिणत हो जाता है—

'कलोद्वलितमेतच्च चित्तत्त्वं कर्तृतामयम्।
अचिद्रूपस्य शून्योदेर्मितं गुणतया स्थितम्॥'[३]

महेश्वर की एकआत्मा ही सभी प्राणियों की आत्मा बनकर अभिव्यक्त हो रही है—

'स्वात्मैव सर्वभूतानामेक एव महेश्वरः।

अतः (१) **'शिवोऽहं'** तथा (२) **'विश्वोऽहं'**— इन दोनों विमर्शों में एक विश्वात्मा महेश्वर ही व्यक्त होते हैं।

---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका (१३/२)।
२. वि. पञ्चा. (१४/२)।
३. प्रत्यभिज्ञाकारिका (२२/३ अ.)।

'विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहितः ॥'[१]

'विश्व' विश्वशरीरी महेश्वर का 'स्वाङ्ग' है—

उत्पलदेव कहते हैं कि 'पशुपति' एवं 'पशु' में यही मात्र भेद है कि '**पशुपति**' विश्व को अपना शरीराङ्ग मानता है जब कि 'पशु' नहीं— ''स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।''

शिव का परामर्श है— 'विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहितः ॥'[२]

(१) '**अहमिदम्**' : सदाशिव का विश्वाहन्ता-स्वरूप।

(२) '**इदमहम्**' : ईश्वर का विश्वाहन्ता-स्वरूप।

दोनों आत्म-परामर्शों में 'अहं' और 'इदं'— आत्मा-परमात्मा ('अहं') के साथ विश्व ('इदं') के साथ सामरस्य या अद्वैत स्थित है।

चिति शक्ति और विश्व में 'सामरस्यात्मक' अद्वैतवाद

वेदान्त में भी 'चित्' एवं 'अचित्' दोनों ब्रह्म के आश्रित हैं, किन्तु अचित् तत्त्व ब्रह्म में समवेत नहीं है। **तांत्रिक शैव-शाक्त अद्वैतवाद** में चित्-अचित् (आत्मा और विश्व दोनों) समवाय सम्बन्ध से एकीभूत हैं। वेदान्त का ब्रह्म विश्व का कारण तो है किन्तु यथार्थ उपादान कारण नहीं प्रत्युत् '**विवर्तोपादन**' है। वेदान्त का '**अभिन्न-निमित्तोपादानत्व**' और त्रिक दर्शन का '**पारमार्थिक कार्यकारणभाव**', '**स्वातन्त्र्य-वाद**' या '**आभासवाद**' वेदान्तियों के '**विवर्तवाद**' एवं '**परिणामवाद**' से भिन्न है। आचार्य **रामानुज का 'परिणामवाद'** ही आचार्य **भास्करराय का 'परिणामवाद'** नहीं है। शाक्त दार्शनिक भास्कर का '**परिणामवाद**' '**अविकृत परिणामवाद**' है।

'पारमार्थिक कार्यकारणवाद और तान्त्रिक दृष्टि

तान्त्रिक शैवशाक्त कार्यकारण को पृथक् नहीं मानते यथा न्यायवैशेषिक के अनुयायी मानते हैं।

तान्त्रिक कार्यकारणवाद में जो 'कारण' है वही 'कार्य' भी है। क्या ऊर्णनाभि के मुख से उत्पन्न तन्तुसमूह ऊर्णनाभि से पृथक है? क्या चन्द्रिका चन्द्र से, ऊष्मा सूर्य से, रश्मि रश्मिरथी से, गन्ध पृथ्वी से, एवं शब्द आकाश से पृथक् है? यदि नहीं तो इसी प्रकार विश्व भी विश्वविग्रहा पराशक्ति से पृथक् नहीं है।

यदि ऐसा है तो इसमें 'कारण' कौन है और 'कार्य' कौन है? आचार्य क्षेमराज इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तान्त्रिक कार्यकारणवाद—

---

१. प्रत्यभिज्ञाकारिका (१/४)।

२. प्र. का. (१, ४)

(१) न तो वेदान्तियों के **'विवर्तवाद'** से सम्बद्ध है।

(२) न तो वेदान्तियों के **'परिणामवाद'** से सम्बद्ध है।

(३) न तो सांख्य के **'परिणामवाद'** से सम्बद्ध है।

(४) न तो न्याय के **'आरम्भवाद'** से सम्बद्ध है।

(५) न तो बौद्धों के **'विज्ञानवाद'** से सम्बद्ध है।

(६) और न तो यह सौगत **'शून्यवाद'** से सम्बद्ध है।

(७) इसका सम्बन्ध **'पारमार्थिक कार्यकारणवाद'** से है।

'पारमार्थिक कार्यकारणवाद' और 'अद्वैतवाद'

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्', **अभेदे च कथं हेतुहेतुमद्भावः?** उच्यते। चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्त-जगदात्मना स्फुरति— **इत्येतावत्परमार्थोऽयं कार्यकारणभावः।''**[१]

'अन्दस्य तु माया प्रकृत्यादेः चित् प्रकाशभिन्नस्य अप्रकाशमानत्वेन असत्वात् न क्वचिदपि हेतुत्वम्, प्रकाशमानत्वे तु **प्रकाशैकात्म्यात् प्रकाशरूपा** चितिरेव हेतुः न त्वसौ कश्चित्॥'[२]

'सर्वशक्तिवाद' और अद्वैतवाद

'सर्वशक्तिवाद' स्वयमेव 'अद्वैतवाद' का पर्याय है किन्तु अन्य दर्शनों की तुलनात्मक विवेचना करने पर यह सिद्धान्त अन्य दृष्टियों से भी अद्वैतवाद की पुष्टि करता है।

(१) **वेदान्त की दृष्टि में** आत्मा और परमात्मा में **'क्रियाशक्ति'** नहीं है।

(२) सांख्य दर्शन की दृष्टि में भी आत्मा में 'क्रिया' नहीं है।

(३) **मीमांसा की दृष्टि** में प्रत्येक शरीर में स्थित **आत्मायें भिन्न-भिन्न होती हैं** अतः आत्मैक्य न होने से (आत्मा के बहुत्व के कारण) आत्मिक धरातल पर भी वहाँ **'अद्वैतवाद'** नहीं है। सांख्य-दृष्टि भी 'पुरुषबहुत्वं सिद्धं' कहकर प्रत्येक आत्मा को भिन्न-भिन्न मानती है। यही दृष्टि जैन दार्शनिकों की भी है। वेदान्त और **तन्त्र दर्शन सारी आत्माओं को एक स्वरूप एवं अद्वैतस्वरूप मानता है** अतः **आत्मैक्य के कारण भी** समस्त चैतन्यमण्डल में (भी) ऐकात्म्य एवं अद्वैत है।

(४) **तन्त्र दर्शन** यह मानता है कि— (१) **'खेचरी'** (२) **'गोचरी'** (३)

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र २)।
२. प्र. हृ. (सूत्र १)।

'दिक्करी' (४) **'भूचरी'** (५) **'चिद्गमनचरी'** स्फुरत्तासार कर्तृतात्मा **'ऐश्वर्यशक्ति'** एवं (१) **'चित् शक्ति'** (२) **'आनन्द शक्ति'** (३) **'इच्छा शक्ति'** (४) **'ज्ञान शक्ति'** एवं (५) **'क्रिया शक्ति'** तथा— **'प्रकृति' 'माया' 'महामाया'** एवं **'स्वातन्त्र्य शक्ति'** (विमर्श शक्ति) आदि सभी **जड़ चेतन शक्तियाँ** एवं **समस्त जड़-चेतन** विश्व अपने मूल कारण में एकीभूत, समकेन्द्रित, एकाधिष्ठानभूत ही नहीं प्रत्युत् ऐकात्म्यावस्थित एवं अद्वैतरूप में अवस्थित हैं।

(५) समस्त अवस्थायें (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत) पृथक्-पृथक् हैं और आत्मा अवस्थातीत है तथापि सारी अवस्थायें आत्मा में ही स्थित हैं अत: 'अवस्थाओं' की दृष्टि से भी सर्वत्र अद्वैत है। सभी अवस्थाओं में भी (उनकी आत्मा या प्राण बनकर) **वही एक अद्वैत आत्म शक्ति** निवास करती है—

'जाग्रदादिविभेदेऽपि तदभिन्ने प्रसर्पति।
निवर्तते निजान्नैव स्वभावादुपलब्धृत: ॥'[१]

भिन्न-भिन्न समस्त अवस्थाओं में भी एक ही अद्वैत शक्ति का एकात्मक चैतन्य स्फुरित होता है। सारी संवेदनाओं एवं ज्ञानानुभूतियों में भी एक ही आत्मा स्फुरित होती है। अत: **भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भी** एक ही अभिन्न एवं अद्वैत आत्मा स्फुरित होती है एवं **भिन्न भिन्न चेतनाओं में भी** एक ही चेतना प्रवाहित होती है।

अनन्त ज्ञानानुभूतियों में भी केन्द्रीभूत एक ही आत्मा है। सारांश यह कि **अनन्त अवस्थाओं, अनन्त स्वरूपों, अनन्त चेतनाओं, अनन्त संवेदनाओं** एवं अनन्त ''**चिति-आनन्द-इच्छा-ज्ञान-क्रिया** रूपों में भी एक ही अद्वैत सत्ता विद्यमान है।

(१) शक्ति और शिव में अद्वैत।
(२) अनन्त में एकत्व।
(३) भेद में अभेदत्व।
(४) द्वैत में अद्वैत।
(५) अनेकात्मता में एकात्मकता।
(६) 'अहं' और 'इदं' मे ऐकात्म्य या अद्वैतभाव।
(७) 'अस्मद्'-'युष्मद्' में अद्वैत।
(८) बाह्य जगत् एवं आन्तर जगत् (अन्तर्बाह्य) में अद्वैत।

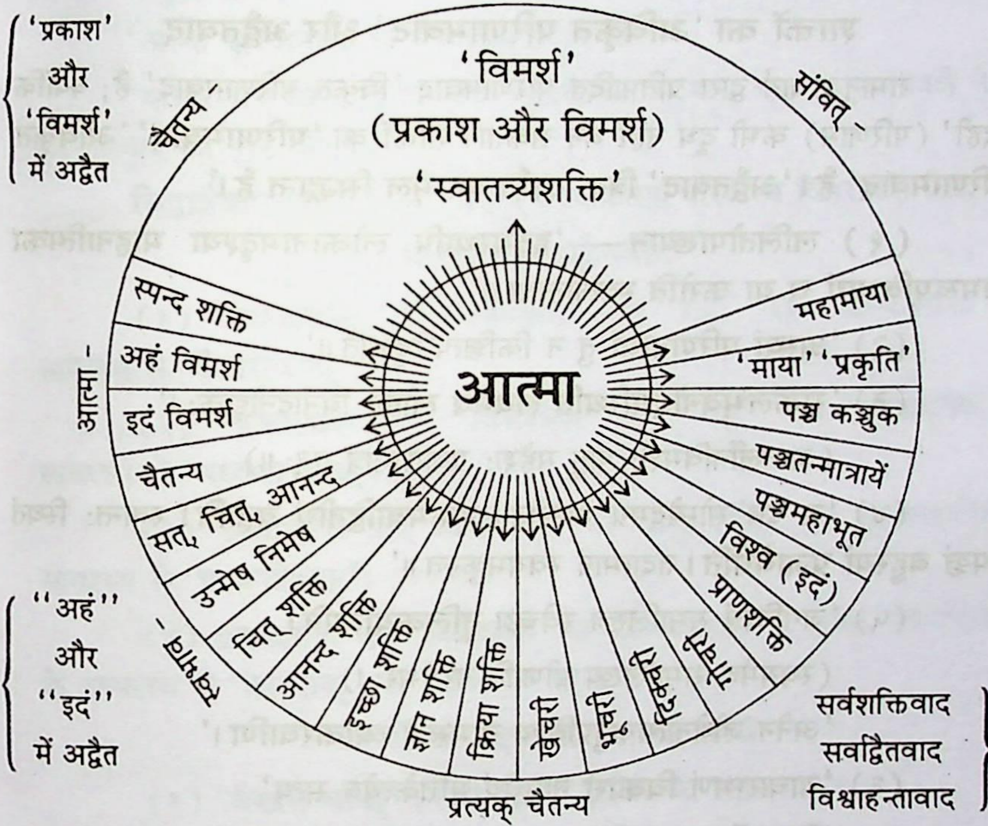
---

१. स्पन्दकारिका (३)।

(९) 'पर' और 'स्व' में अद्वैत।

(१०) जड़ एवं चैतन्य में अद्वैत।

(११) विश्व, आत्मा और शिव में अद्वैत।



''संवित् प्राक् प्राणे परिणता''— अर्थात् संवित् शक्ति (आत्मा) सर्वप्रथम 'प्राणतत्त्व' के रूप में स्फुरित होती है अत:

(५) संवित् शक्ति और प्राणशक्ति में भी अद्वैत है।

(६) 'प्रकाश' और 'विमर्श' में भी अद्वैत है— शिव-शक्ति में भी अभेद एवं अद्वैत है।

(क) 'न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिव:।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

(ख) 'शिवाभिन्ना परा शक्ति: सर्वकर्मशरीरिणी ॥

वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता॥'

(७) 'शक्ति' और 'विश्व' में भी अद्वैत है—

(क) 'सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरूपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः॥

(ख) ''विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः॥''

शाक्तों का 'अविकृत परिणामवाद' और अद्वैतवाद

रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित परिणामवाद 'विकृत परिणामवाद' है; क्योंकि 'दही' (परिणाम) कभी दूध नहीं बन सकता। शाक्तों का **'परिणामवाद' 'अविकृत परिणामवाद' है। 'अद्वैतवाद' त्रिक दर्शन का मूल सिद्धान्त है।**[१]

(१) ललितोपाख्यान— 'हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया॥'

(२) **'अस्यां परिणतायां** तु न किञ्चित्परिदृश्यते॥'

(३) **'सकलभुवनोदयस्थिति लयमय लीला** विनोदनोद्युक्तः।'
(अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्र तनुः॥)

(४) 'स देव सोम्येदमग्र आसीत्। **एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति**। स्वान्तः स्थितं **प्रपञ्चं बहुस्यां प्रजायेयेति**। तदात्मानं स्वयमकुरुत॥'

(५) 'जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छा **तूलिकयात्मनि।**
(स्वयमेव समालिख्य प्रीणाति परमेश्वरः।)
'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य **नामरूपे व्याकरवाणि।**'

(६) 'वाचारम्भणं **विकारो** नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्य'

(७) **'विमर्शो** नामः विश्वाकारेण वा, विश्वप्राकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोहमिति स्फुरणम् तस्यां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम्॥' (नागानन्द)

(१) **'शिवशक्तिरिति ह्येकं** तत्त्वमाहुर्मनीषिणः॥'

(२) 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' (प्रत्यभिज्ञा सूत्र)

(३) 'स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि॥'

(४) 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च॥' (उपनिषद्)

(५) 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्य-भिसंविशन्ति।'

---

१. कामकलाविलास (२)।

(६) चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद्बहिः।'

आचार्य शङ्कर (समयाचारी शाक्त तान्त्रिक) भी '**परिणामवाद**' का प्रतिपादन करते हैं और कहते हैं—

'त्वमेव स्वात्मानं **परिणमयितुं विश्ववपुषा**।'[१]

चतुश्शतीकार भी '**परिणामवाद**' का समर्थन करते हुए कहते हैं कि—

'अस्यां **परिणतायां** तु न किञ्चित्परिदृश्यते।'

'वाचारम्भणं **विकारो** नामधेयं' मृत्तिकेत्येव सत्यं— कहकर उपनिषदों ने भी परिणामवाद की पुष्टि की है।

चिद्वल्लीकार कहते हैं— "ब्रह्मैव तत्तदाकारेण **परिणम्य** विहरतीति सिद्धम्।"

वागात्मक अद्वैतवाद

(१) '**प्रकाशांश**' एवं '**विमर्शांश**' या 'रौद्री' एवं '**क्रियाशक्ति**' के सामरस्य से '**वैखरीवाक्**' —

(२) '**प्रकाशांश**' एवं '**विमर्शांश**' या '**ज्येष्ठा**' एवं '**ज्ञानशक्ति**' के सामरस्य से '**मध्यमा वाक्**'—

(३) '**प्रकाशांश**' एवं '**विमर्शांश**' या '**वामा शक्ति**' एवं '**इच्छाशक्ति**' के सामरस्य से 'पश्यन्तीवाक्'।

(४) **प्रकाशांश** एवं '**विमर्शांश**' या '**अम्बिकाशक्ति**' तथा '**शान्ताशक्ति**' के सामरस्य से '**परावाक्**' का आविर्भाव होता है ।

वाणी के उदय के कारण तत्त्व

(१) '**वैखरी वाक्**' (रौद्री-**क्रिया शक्ति** का सामरस्य)।

(२) '**मध्यमा वाक्**' (**ज्येष्ठा-ज्ञान शक्ति** का सामरस्य)।

(३) '**पश्यन्तीवाक्**' (वामा-इच्छा शक्ति का सामरस्य)।

(४) '**परावाक्**' (अम्बिका शान्ता शक्तियों का सामरस्य)।

सारांश यह कि '**परा**' '**पश्यन्ती**' '**मध्यमा**' एवं '**वैखरी**' वाक् ये चारों वाग्वृत्तियाँ (वाक्चतुष्टय) परस्पर भिन्न-भिन्न होते हुए भी मूलतः अद्वैत रूप हैं; क्योंकि—

(१) सभी वाणियों के निर्माण में 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' दोनों शक्तियों का केन्द्रीय स्थान है अतः ये सभी भिन्न-भिन्न होकर भी शिव-शक्ति (प्रकाश-विमर्श) की

---

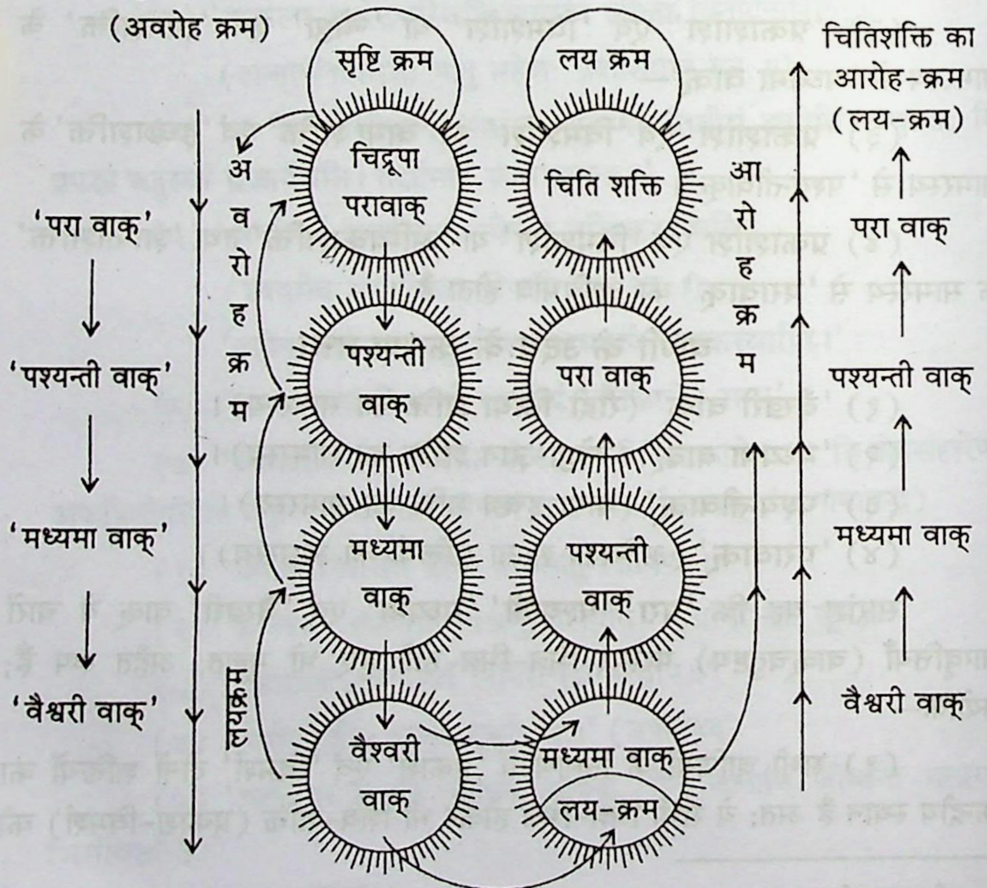
१. सौन्दयलहरी (३५)।

दृष्टि से एकरूप हैं अतः इनमें अद्वैत है।

(२) लयोद्भव की दृष्टि भी सभी वाणियों में अद्वैत है; क्योंकि

(क) **लयक्रिया** में— **'वैखरी वाक्'** मध्यमा वाक् में, 'मध्यमा' **'पश्यन्ती वाक्'** में, एवं पश्यन्ती वाक् **'परा वाक्'** में लीन हो जाती है अतः प्रलय के समय ये सभी वाणियाँ मयूराण्डरसन्यायवत् **अद्वैतरूप में ही अवस्थित हो जाती हैं।**

(ख) अद्वैतस्वरूपा **'परावाक्'** से 'पश्यन्ती', **'पश्यन्ती'** से **'मध्यमा'** एवं मध्यमा से 'वैखरी' का आविर्भाव होता है। **'परावाक्' चितिशक्ति** ही है अतः वाणियों के उद्भव एवं विकास दोनों की भूमिकायें, भूमियाँ एवं मूलाधिष्ठान 'चितशक्ति' ही हैं अतः (सभी दृष्टियों से) वाक्चतुष्टय में अनुस्यूत एकात्मिका शक्ति **'चिति शक्ति'** की अनुस्यूतता होने के कारण **'नाद' 'मात्रिका' 'वाक्तत्त्व' 'वर्ण'** एवं **'भाषा'** में भी ऐकात्म्य या अद्वैत प्रतिष्ठित है।

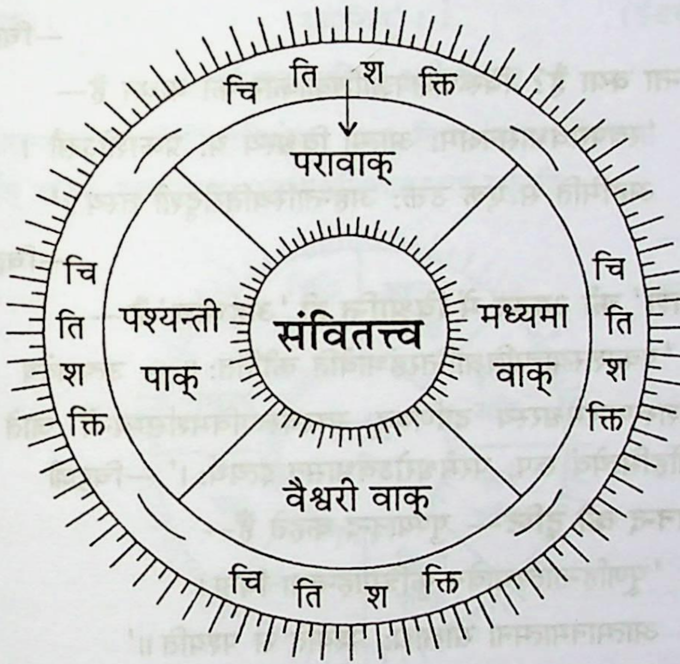


व्याकरणागम का वागात्मक अद्वैतवाद : शब्दब्रह्माद्वैतवाद

'अथाद्यास्तिथयः सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगाः।

पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु' क्रमात्कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते ॥'' — परात्रिंशिका

अर्थात् तथियाँ, प्राणापान ३६ तत्त्व, तन्मात्रायें, पञ्चतत्त्व आदि सभी 'स्वरों' एवं व्यञ्जनों से उत्पन्न हुए हैं। 'अहं' (अ से ह) में ही समस्त विश्व, शिव एवं शक्ति, स्वर एवं व्यञ्जन आदि सभी अन्तर्गर्भित हैं ।



(१) समस्त विश्व वागात्मक है।

(२) 'शब्दसृष्टिवाद' एवं 'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।'

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः'' —(वाक्यपदीयः) के अनुसार **विश्व शब्दतत्त्व का 'विवर्त' है।** 'शब्द तत्त्व' (पश्यन्ती रूप वाक् तत्त्व) ही ब्रह्म है और उसी में समस्त विश्व समाविष्ट है। ब्रह्म और शब्द तत्त्व में अद्वैत है।

(३) **'परात्रिंशिका'** के अनुसार समस्त शाब्दी आर्थी सृष्टि शब्दात्मिका है अतः विश्व (समस्त सृष्टि, सारे तत्त्व, सारा शाक्ताण्ड, मायाण्ड, ब्रह्माण्ड एवं प्रकृत्यण्ड) शब्द से ही उत्पन्न हुआ है अतः शब्दतत्त्व एवं विश्व में अद्वैत है।

'विश्वाहन्ता' और अद्वैतवाद

शङ्कराचार्य के निवृत्तिनिष्ठ (विश्वनिरपेक्ष) अद्वैतवाद के स्थान पर त्रिकानुवर्ती तान्त्रिक शैवों ने **'विश्वाहन्तात्मक अद्वैतवाद'** का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—

'सोऽहं ममायं विभव, इत्येवं परिजानतः **'विश्वात्मनो** विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता' **'विश्वरूपो**ऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहितः॥'[१]

(१) 'अन्तर्लीनो**ऽन्तर्मुखीभूतो विमर्शः पूर्णाहंभावना'** —(चिद्वल्ली)।

(२) 'जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय हेतुभूता**कृत्रिमाहंभावपरामर्शो** विमर्शः॥'

—चिद्वल्ली

'अहन्ता क्या है? विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार का कथन है—

'स्वपरावभासनक्षमः आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्तः अहन्तास्थितिरीदृशी तस्य॥'

—चिद्वल्ली

'प्रकाश' की आत्मा में विश्रान्ति ही 'अहंभाव' है—

'प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहंभावेति कीर्तितः॥ — उत्पलदेव

'प्रकाशरूपपरमेश्वरस्य दर्पणवत् स्वस्वरूपविमर्शसम्बन्धे जाते तदानीं तत्र महाबिन्दुः पूर्णोहमित्येवं रूपः परमेश्वरोऽवभासत इत्यर्थः।' —चिद्वल्ली

पुण्यानन्द की दृष्टि— पुण्यानन्द कहते हैं—

'पूर्णाहन्तात्मभावेन कृत्रिमाहन्तया विना।
आत्मानमात्मना साक्षाद्यः पश्यति स पश्यति॥'

—कामकलाविलास

'अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि॥' —(वि. पं.)

'विश्वाहन्ता' अद्वैतवाद का ही एक रूप है—

---

१. 'प्रत्यभिज्ञाकारिका'। **'स्वाङ्गरूपेषु** भावेषु पशुर्ज्ञानं क्रिया च या।
स्वात्मैव सर्वजन्तूनामेक एव महेश्वरः। विश्वरूपोऽमिदमित्यखण्डामर्शबृंहितः॥'
—(प्रत्यभिज्ञा कारिका, १, ४/४)

'विश्वाहन्ता' का स्वरूप[1]

(१)	(२)	(३)	(४)
विश्व और मैं अभिन्न हूँ।	विश्व और शक्ति अभिन्न हैं।	विश्व और शिव अभिन्न हैं।	विश्व की अनन्त आत्मायें 'मैं' (व्यष्टिभूत आत्मा) 'शक्ति' एवं 'शिव' तीनों अभिन्न हैं।

विश्वाहन्ता के विविध स्वरूप

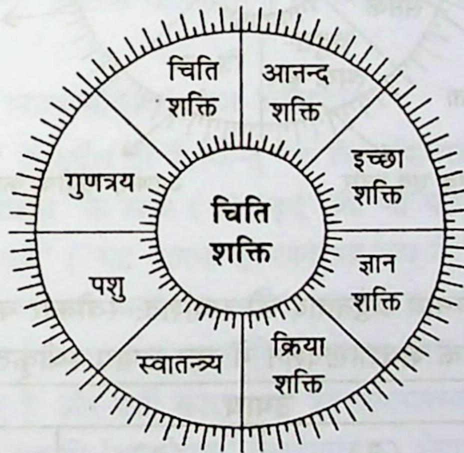
(१)	(२)	(३)
'अहमस्मि' (शिव)।	'अहमिदम्' (सदाशिव)।	'इदमहम्' (ईश्वर)।

सर्वात्मवादनिष्ठ अद्वैतवाद

'स्वातन्त्र्यात्मा **चितिशक्तिरेव** ज्ञान-क्रिया-मायाशक्तिरूपा **पशु दशायां** सङ्कोचप्रकर्षात् **सत्त्व-रज-स्तमः** स्वभावचित्तात्मतया स्फुरति।

—'श्रीप्रत्यभिज्ञा'

(प्रत्यभिज्ञा हृदयम्)



स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्ति ही— (१) 'ज्ञान' (२) 'क्रिया' और (३) 'माया' रूप होकर **पशुदशा** में सङ्कोच के प्रकर्ष से **'सत्वगुण' 'रजोगुण'** एवं **'तमोगुण'** स्वभाव वाले चित्त के रूप में स्फुरित होता है।

'ज्ञानशक्ति'	'क्रियाशक्ति'	'मायाशक्ति'
(पशुदशा में) ↓ 'सत्वगुण'	(पशुदशा में) ↓ 'रजोगुण'	(पशुदशा में) ↓ 'तमोगुण'

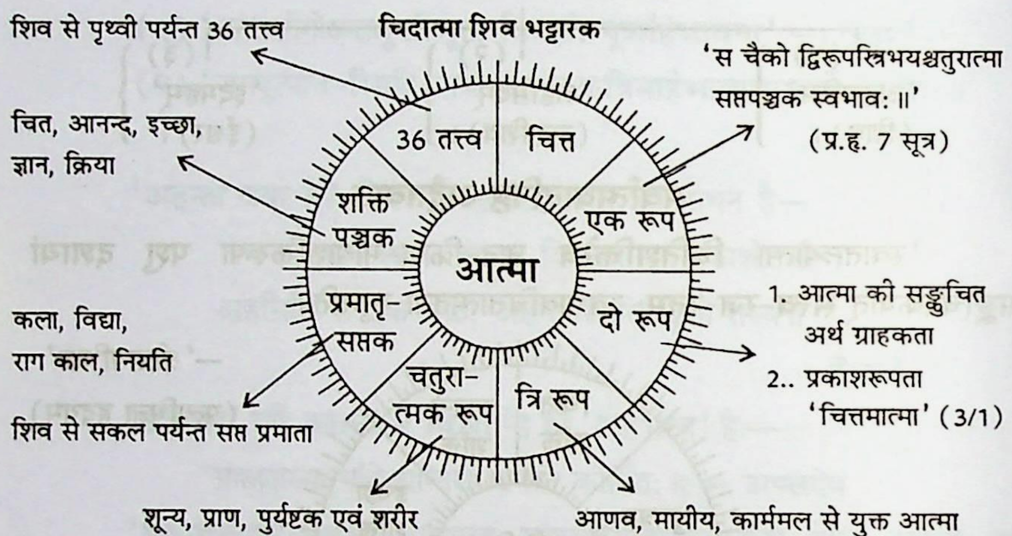
१. तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मक पूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्गसंहारकारिनिजसंविद्देवता चक्रेश्वरता प्राप्तिर्भवति।

'सर्वात्मवाद' या 'सर्वचैतन्यवाद' की दृष्टि से अद्वैतवाद

यदि सब कुछ आत्मा है या सब कुछ चैतन्य है तो भी सर्वत्र अद्वैतवाद ही प्रसृत है; क्योंकि चिदात्मा शिवभट्टारक ही एक मात्र आत्मा हैं अर्थात् शिव विश्वात्मा हैं—

''निर्णीतदृशा चिदात्मा शिवभट्टारक एव एक आत्मा न तु अन्य: कश्चित्।''

—प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ७)



उपायात्मक अद्वैतवाद

अद्वैतवादी त्रिकाम्नाय अद्वैतवाद को सर्वांशत: स्वीकार करता है अंशत: नहीं। अद्वैतवादी तार्किक शैवशाक्तदर्शन में चार उपाय स्वीकृत हैं—

उपाय			
(१) 'अनुपाय'	(२) 'शाम्भवोपाय'	(३) 'शाक्तोपाय'	(४) 'आणवोपाय'

त्रिकानुवर्ती आचार्य 'ज्ञान', 'योग' एवं 'भक्ति' तीनों में विश्वास करते हुए भी 'शाम्भवोपाय' एवं 'शाक्तोपाय' के उपायत्मक भूमि में **शिव-शक्ति-विश्व एवं 'अहं'** में अद्वैत का परामर्श किया करते हैं। **'आणवोपाय'** (भेदप्रधान साधन) एवं **'शाक्तोपाय'** (भेदाभेदप्रधान साधन) का लक्ष्य 'शांभवोपाय' या 'अनुपाय' है। **'शाम्भवोपाय'** या **'अनुपाय'** दोनों अभेदप्रधान या अद्वैतनिष्ठ हैं। इसमें (१) **'विश्व'** (२) **'शिव'** (प्रकाश) (३) **'विमर्श'** (शक्ति) एवं (४) अहमात्माक **'पशु'** चारों को तत्त्वत: अभिन्न स्वीकार किया गया है अत: सर्वोच्चोपलब्धि के लिए 'आणवोपाय' की नहीं प्रत्युत् **'शाम्भवोपाय'** की साधना वरेण्य मानी जाती है।

'शाम्भवोपाय' और अद्वैतवाद

'शाम्भवोपाय' के भीतर प्रकल्पित परामर्श वेदान्त के 'अहं ब्रह्मास्मि' एवं 'तत्त्वमसि' तक सीमित नहीं है; क्योंकि इस शाङ्कर अद्वैत में आंशिक अद्वैत है।

शाङ्कर अद्वैत का स्वरूप

(१)	(२)	(३)
'ब्रह्म सत्यम्'	('जगन्मिथ्या'	'जीवब्रह्मैव नापरः')

इसमें (१) **'ब्रह्म सत्यं'** तथा **'अहं ब्रह्मास्मि'** एवं **'तत्त्वमसि'** तक का परामर्श तो त्रिकाम्नाय में भी (**'शिवोऽहं'** तथा **'अहं देवी न चान्योऽस्मि'** के रूप में) मान्य है किन्तु **'जगन्मिथ्या'** का परामर्श मान्य नहीं है; क्योंकि 'इदं' रूप जगत 'अहं' रूप शिवशक्ति का ही रूपान्तर है अतः मिथ्या हो ही नहीं सकता। इसी कारण शाङ्कर निर्वेशेषाद्वैतवाद त्रिकाम्नाय को मान्य नहीं है।

यहाँ **'विश्वाहन्तात्मक अद्वैतवाद'** स्वीकृत है और इसी समग्र (सर्वंलिह अद्वैतवाद) का निरन्तर परामर्श करते रहना ही अद्वैतात्म **'शाम्भवोपाय'** का स्वरूप है।

'शाक्तोपाय' और 'शाम्भवोपाय' तथा अद्वैतवाद

'शाक्तोपाय' में अद्वैत तो है किन्तु यह विकल्पात्मक है। 'आत्मैवेदं सर्वं' के परामर्श में (१) **'आत्मा'** के साथ (२) **'इदं'** का भी पराशर्म अनुस्यूत है।

'आत्मैवेदं सर्वं' ('यह आत्मा ही अनात्मा रूप से 'इदं' रूप में प्रकाशित हो रहा है।) का सतत परामर्श करने पर अभेद परामर्श का उदय होता तो है और इस 'आत्मा+इदं' के का विकल्पात्मक ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान 'आत्मैव सर्वं' के रूप में परिणत भी हो जाता है और इसी कारण यह शाक्तोपायात्मक ज्ञान 'शाम्भवोपाय' का कारण भी बनता है तथापि 'शाक्तोपाय' द्वैताद्वैतात्मक, भेदाभेदात्मक या द्वयाद्वयात्मक ज्ञान या उभयात्मक उपाय है।

इस उपाय में उच्चार वर्जित है। 'शाक्तोपाय' में (१) **'उच्चार'** (२) **'कारण'** (३) **'ध्यान'** (४) **'वर्ण'** एवं (५) **'स्थान-प्रकल्पन'** के लिए (जो 'आणवोपाय' में स्वीकृत है) स्थान नहीं है—

'उच्चाररहितं वस्तु चैतसैव विचिन्तयन्।
यः समावेशमाप्नोति **शाक्तः सोऽत्राभिधीयते**॥'[१]

इसमें 'ज्ञान' प्रधान है अतः इसे **'ज्ञानोपाय'** भी कहा गया है।

---

१. तन्त्रालोक (१६९) प्र. आ.।

'शाम्भवोपाय' में इन समस्त **चिन्तनों का भी त्याग कर दिया जाता है। सारे विकल्प विगलित हो जाते हैं।** इस समय भावना, कल्पना, विकल्पात्मक विमर्श की अपेक्षा न करने वाली अविकल्पात्मक एवं विद्रूप **शिव के साथ तादात्म्य प्राप्त** करने का प्रयास किया जाता है—

'तेनाविकल्पा संवित्तिर्भावनाद्यनपेक्षिणी।
शिवतादात्म्यमापन्ना समावेशोऽत्र **शाम्भवः**॥'[१]

अर्थात् जब सङ्कुचित संवित्ति अविकल्पावस्था में भावना या उपदेश आदि से निरपेक्ष रहती हुई **शिव से तादात्म्य** प्राप्त कर लेती है तब जो समावेश होता है उसे **'शाम्भवोवेश'** कहते हैं।

'शाक्तोपाय' में भेदाभेद दोनों मान्य हैं— 'भेदाभेदौ हि शक्तिता'— (२२० श्लोक। प्र. आह्निक: 'तन्त्रालोक') किन्तु 'शाम्भवोपाय' में यह मान्य नहीं है।

निर्विकल्प परामर्श के प्रसाद से शिव-तादात्म्य की प्राप्ति होती है। तत्परवर्ती विकल्पों का वहाँ कोई महत्व नहीं होता। यहाँ अविकल्प ही प्रमाण हैं।

'शाम्भवोपाय' अभेदोपाय है। **'शाक्तोपाय'** भेदाभेदोपाय है। **'आणवोपाय'** भेदप्रधान उपाय है—

'अभेदोपायमत्रोक्तं शाम्भवं शाक्तमुच्यते।
भेदाभेदात्मकोपायं भेदोपायं तदाणवम्॥'[२]

'शाम्भवोपाय' (१) जीवन्मुक्तिनिष्ठ है।

(२) यह निर्विकल्पात्मक है।

(३) इसमें वारम्वार अभ्यासपूर्वक निर्विकल्पक समावेश से **'जीवन्मुक्ति'** नामक और वीर्यभाव प्राप्त होता है—

'भूयो भूयः समावेश निर्विकल्पमिमं श्रितः।
अभ्येति भैरवीभावं जीवन्मुक्त्यपराभिधम्॥'

(४) इसमें 'पूर्णाहन्तापरामर्श से पृथक् परप्रमात्रेकरूप स्वात्माभेद' स्फुरित होता है—

'**शाम्भवोपाये** काश्चन मन्त्रमुद्रक्रियोपासा न ततः **पूर्णाहन्तापरामर्शादन्या** परप्रमात्रकरूपस्वात्माभेदेनैव प्रस्फुरन्तीत्यर्थः॥'

---

१. तन्त्रालोक (१७८/१)।
२. तन्त्रालोक (२३०/१)।

(५) यहाँ स्नान, व्रत, देहशुद्धि, धारणा, मन्त्रयोजना, अध्वक्लृप्ति-यागविधि-होम-जप-जप्य, समाधि आदि समस्त कल्पनायें वर्णित हैं—

'स्नानं व्रतं देहशुद्धिर्धारणा मन्त्रयोजना।
अध्वक्लृप्तिर्यागविधिर्होमजप्यसमाधयः।
इत्यादि कल्पना कापि नात्र भेदेन युज्यते॥'[१]

(६) यहाँ निर्विकल्प परामर्श होता है—

'निर्विकल्पे परामर्शे शाम्भवोपायनामनि॥' (तन्त्रालोक)

(७) यह अद्वैतात्मक है—

'तदस्मिन्परमोपाये शाम्भ**वाद्वैतशालिनि**। (तन्त्रालोक)

(परमत्वे चास्य **शाम्भवाद्वैतशालित्वं** हेतु : अन्ये ह्याणवादयो भेदरूपत्वाद्-परमा एव।' (विवेक : २८७/३)

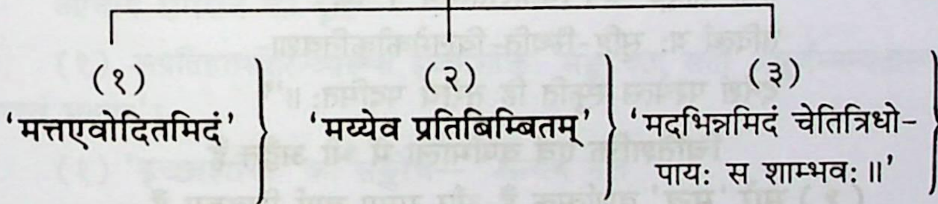
(८) 'शाम्भवोपाय' तुरीयपदात्मक है—

'सृष्ट्यादिविभागविगलनेन अखण्डबोधैकरूपतया साक्षात्कुर्यात् स शाम्भवोपायसमाविष्ट एवहि **तुरीयं** पदं प्राप्त सन् स्फुरति।'[२]

(९) यह परानुग्रहात्मक होता है—

'परानुग्रहकारित्वमत्रस्थस्य स्फुटं स्थितम्॥'

शाम्भवोपाय के मुख्य स्तम्भ या उपाय



'मत्तएवोदितमिदं मय्येव प्रतबिम्बितम्।
मदभिन्नमिदं चेति त्रिधोपायः स शाम्भवः॥'[३]

'शांभवोपाय' में भले ही 'विश्वाहन्ता' का परामर्श न किया जाता हो किन्तु उसमें विश्वाहन्ता की अनुभूति तो अवश्य की जाती है।

---

१. तं. (२९०/१)।
२. विवेक (तन्त्रालोकः २८८/३)।
३. तन्त्रालोक (२८०/३)।

'शाम्भवोपपय' एवं अद्वैतवाद

(१)	(२)	(३)	(४)
'विश्वाहन्ता' या 'पराहन्ता' की स्वानुभूति। 'अखण्डबोधैक-रूपतया साक्षात्कुर्यात् स शाम्भवोपाय समाविष्ट एव हि तुरीयं पदं प्राप्तः सन् स्फुरति।'	**'जीवन्मुक्ति'** 'अभ्येति भैरवी भावं जीवन्मुक्त्यपराभिधम्' (तन्त्रालोक) जीवन्मुक्ति एवं 'भैरवीभाव'।	**तुरीयावस्था** 'तुरीयं पदमितः —तन्त्रालोक (२८७/३)।	'परं संविदात्मैक्य' 'बोधैकात्म्य लक्षणादेकी-काराद्धेतोः' (विवेक)।

'स्वात्मन्येव चिदाकाशे विश्वमस्म्यवभासयन्।
स्रष्टा विश्वात्मक इति प्रथमा **भैरवात्मता**॥
षडध्वजातं निखिलं मय्येव प्रतिबिम्बितम्।
स्थितिकर्ताहमस्मीति स्फुटेयं **विश्वरूपता**॥
सदोदितमहाबोधज्वालाजटिलतात्मनि।
विश्वं द्रवति मय्येतदिति पश्यन्प्रशाम्यति॥
अनन्तचित्रसद्गर्भसंसारस्वप्न सद्घनः।
प्लोषकः शिवएवाहमित्युल्लासी हुताशनः॥

\+ \+ \+ \+

'**जगत्सर्वं मत्तः** प्रभवति विभेदेन बहुधा
तथाप्येतदूढं मयि विगलितेत्वत्र न परः।
तदित्थं यः सृष्टि-स्थिति-विलमेकीकृतिवशा-
दनंशं पश्येत्स स्फुति हि **तुरीयं** पदमितः॥'[१]

चितिशक्ति एवं वर्णमाला में भी अद्वैत है

(१) सारे 'मन्त्र' वर्णात्मक हैं और समग्र **वर्ण** शिवरूप हैं—

'मन्त्राः वर्णात्मकाः सर्वे सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः॥'

(२) चित्प्रकाश से एकीभूत (अभिन्न), नित्योदित, महामन्त्ररूप, **पूर्णाहं-विमर्शात्मक** ('पूर्णाऽहंविमर्शमयी') **'पराशक्ति'** है और इसके गर्भ में 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त समस्त वर्णसमूहस्वरूपा 'शक्तिचक्र' विद्यमान है 'वही' 'पश्यन्ती' और 'मध्यमा' के क्रम से ग्राहक भूमिका को आभासित करती है।

(१) **'परावाक्'** : 'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।

---

१. तन्त्रालोक (२८७/३)
'अनाख्यपरसंविद्रूपत्वेनावभासत इत्यर्थः॥' ('तन्त्रालोक' २७८/३) 'सततोभ्यासादुल्लसनशीलोऽ-तच्छित्र संविदात्मकः शिव एवाहमिति परामर्शः॥ (विवेक)

स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।'

—ईश्वर प्रत्यभिज्ञा का. अ. १/आ. ५

(२) **'पश्यन्ती वाक्'** : 'परावाक्' के बाद वाच्यवाचकात्मक विश्वविकास की द्वितीय कोटि है। यह वाक् अपने में समस्त विश्व को देखती है तथा अन्तः एवं बाह्य करणों के मार्ग से उत्तीर्ण है। इसीलिए इसे 'पश्यन्ती' एवं 'उत्तीर्ण' कहते हैं।

'पश्यति सर्वं स्वात्मनि करणानां सरणिमपि यदुत्तीर्णा।

तेनेयं पश्यन्तीत्युत्तीर्णेव्यप्युदीर्यते माता॥'

(३) **'मध्यमा वाक्'**— पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णानापि वैखरीव बहिः स्फुटतरनिखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात् 'तथा हि चित्प्रकाशात् अव्यतिरिक्ता नित्योदितमहामन्त्ररूपा **पूर्णाहंविमर्शमयी** या इय **'परावाक् शक्तिः'** आदिक्षान्त रूपा-शेषशक्तिचक्रगर्भिणी सा तावत् पश्यन्तीमध्यमादिक्रमेण ग्राहकभूमिकां भासयति।[1]

शिव और संसारी में भी ऐकात्म्य है— 'यदा चिदात्मा परमेश्वरः स्वस्वा-तन्त्र्यात् अभेदव्याप्तिं निमज्य भेदव्याप्तिं अवलम्बते तदा तदीया इच्छादिशक्तयः असङ्कुचिता अपि सङ्कोचवत्यो भान्ति, तदानीमेव च अयं मलावृतः संसारी भवति 'चिद्वत्तच्छक्ति सङ्कोचात् मलावृतः संसारी॥[2] (प्र. हृ. सूत्र ९)

'मल' एवं चितिशक्ति में अद्वैत

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—

(१) अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्तिः सङ्कुचिता सती अपूर्णम्मन्यतारूपम् **'आणवं मलम्'**।

(१) **'इच्छाशक्ति'** का सङ्कोच— 'आणव मल'

(२) **'ज्ञानशक्ति'** का सङ्कोच— 'मायीय मल'

'ज्ञानशक्ति' : क्रमेण सङ्कोचात् भेदे सर्वज्ञत्वस्यकिञ्चिज्ज्ञत्वाप्तेः अन्तःकरण-बुद्धीन्द्रियतापत्तिपूर्वं अत्यन्तं सङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्यप्रथारूपं **'मायीयं मलम्'**।

(३) **'क्रियाशक्ति'** का सङ्कोच— 'कार्ममल'

'क्रियाशक्तिः' क्रमेण भेदे सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रियरूप-सङ्कोचग्रहणपूर्वम् अत्यन्तं परिमिततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं 'कार्ममलम्'।[3]

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम (सू. ११)।

२. प्रततयभिज्ञा हृदयम्।

३. प्रत्यभिज्ञा हृदयम्।

शक्ति और पञ्चकञ्चुकों में अद्वैत

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—

(पारमात्मिक शक्तियाँ एवं पञ्चकञ्चुक)

(१) 'सर्वकर्तृत्व शक्ति'→ 'कला' नामक कञ्चुक।

(२) 'सर्वज्ञातृत्व शक्ति'→ 'विद्या' नामक कञ्चुक।

(३) 'पूर्णत्व शक्ति'→ 'राग' नामक कञ्चुक।

(४) 'नित्यत्व शक्ति'→ 'काल' नामक कञ्चुक।

(५) 'व्यापकत्व शक्ति'→ 'नियति' नामक कञ्चुक।[१]

शिव एवं संसारी प्राणी में अद्वैत

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— 'शिव' एवं संसारी 'पशु' में क्या भेद है? तात्त्विक भेद नहीं है।

(१) 'शक्तिदरिद्रः **संसारी** उच्यते।' (२) 'स्वशक्ति विकासे तु **शिव** एव॥'

—आचार्य क्षेमराज की दृष्टि (प्र. हृदयम् सूत्र ९)

शिव एवं जीव में अद्वैत

शिव भी पञ्चकृत्यकारी है और मित प्रमाता भी।

परमात्मा का पञ्चकृत्यकारित्व

'सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थिति कारकम्। अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्तिविनाशनम्॥'

जीवात्मा का पञ्चकृत्यकारित्व

प्रत्यभिज्ञाहृदयकार की दृष्टि—

(१) 'तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति' (सूत्र १०)।

(२) 'पञ्चविधकृत्यकारित्वं चिदात्मनो भगवतः।'[२]

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'यथा च भगवान् शुद्धेतराध्वस्फारणक्रमेण स्वरूपविकासरूपाणि सृष्ट्यादीनि करोति। तथा सङ्कुचित चिच्छक्तितया संसारभूमिकायामपि पञ्चकृत्यानि विधत्ते॥'

अर्थात् चिदात्मा भगवान में सदा पञ्चविधकृत्यकारिता विद्यमान रहती है। जैसे

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र ९)।

२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (आचार्य क्षेमराज) सूत्र १०।

(१) 'कला'-सर्वकर्तृत्वशक्ति सङ्कुचित होकर स्वल्पकर्तृत्वशक्ति बन कर जब आत्मा को परिमित कर देती है तब उसे 'कला' कहते हैं—'सर्वकर्तृताशक्तिः सङ्कुचिता कतिपयार्थमात्रपरा। किंचित्कर्तारममुं कलयन्ती कीर्त्यते कलानाम॥ (षट्त्रिंशदोह)

(२) 'विद्या'-परमात्मा की सर्वज्ञताशक्ति परिमित होकर अल्पज्ञ बनकर जब पुरुष को किंचिज्ञ बना देती है तो वह विद्या (अविद्या) के नाम से कही जाती है—

भगवान अशुद्ध 'अध्वा' के विकासक्रम से स्वरूपविकासात्मक सृष्टि आदि की रचना निष्पादित करते हैं ठीक उसी प्रकार चित् शक्ति के सङ्कुचित होने पर वे संसारभूमिका में भी पञ्चकृत्य निष्पादित किया करते हैं।[१]

अन्य पञ्चविध कृत्य भी हैं जो कि महेश्वर एवं जीव दोनों में समान हैं। ये पञ्चकृत्य आभासन, रक्ति, विमर्शन आदि हैं—

"आभासन-रक्ति-विमर्शन-बीजावस्थापन विलापनतस्तानि॥११॥"[२]

'संसारी दशा में आत्मा शिव के सदृश पञ्चकृत्य करता है **'तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति'** (सूत्र १०) भी शिव-पशु में एकता सिद्ध करता है। बंधनग्रस्त एवं मुक्त में भी परमार्थतः अद्वैत या अभेद ही है।

बद्धात्मा और जीवन्मुक्त— वस्तुतः ये दोनों भी अभिन्न हैं। भेद केवल दृष्टि का है— (१) स्वरूपविकासात्मक विश्व को जानना ही **'जीवन्मुक्ति'** है (२) सम्पूर्ण भावराशि को भिन्न-भिन्न रूप में देखना 'परिबद्धता' है अतः **'स्वरूपविकास** विश्वंजानाना **'जीवन्मुक्ता'** इत्याम्नाताः। ये तु न तथा ते सर्वतो विभिन्नं मेयजातं पश्यन्तो बद्धात्मानः॥'

शिवत्व और संसारित्व में अभेद

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

"अपनी शक्तियों द्वारा उत्पन्न किया गया व्यामोह ही 'संसारित्व' है : "तद-परिज्ञाने स्वशक्तिभिर्व्यामोहितता संसारित्वम्॥" (सूत्र १२)

अर्थात् 'संसारित्व' एवं शिवत्व में भी अभेद ही है। भेद का कारण अपरिज्ञान है जो कि अपनी ही शक्तियों द्वारा उत्पन्न व्यामोह का कारण है।

अपने स्वरूप को जान लेना ही शिवत्व है और न जानना संसारित्व है।

प्रमाता शिव एवं मित प्रमाता पशु में अद्वैत

शिव का अशुद्धाध्व में स्वरूप-विकास एवं पशुओं की संसार-भूमिका

वस्तुतः ये भिन्न-भिन्न नहीं है तत्त्वतः वे अभिन्न हैं। जिस प्रकार भगवान शिव 'अशुद्ध अध्वा' के विकास-क्रम से अपने स्वरूप का विकास रूप सृष्टि आदि करते हैं ठीक उसी प्रकार वे चित शक्ति के सङ्कोच को ग्रहण करके संसार-भूमिका में भी पञ्चकृत्यों का निष्पादन करते हैं—

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (१०)।
२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम (सूत्र १०)।

"यथा च भगवान् शुद्धेतराध्वस्फारणक्रमेण स्वरूपविकासरूपाणि सृष्ट्यादीनि करोति, तथा सङ्कुचित चिच्छक्तितया संसारभूमिकायामपि पञ्चकृत्यानि विधत्ते॥"

—प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सू. १०)

'शिव' और 'पशु' में क्या अद्वैत है?

आचार्य क्षेमराज ने इस प्रश्न को भी उठाकर दोनों में अद्वैतभाव एवं ऐकात्म्यभाव होने की पुष्टि की है। वे प्रश्न करते हैं कि— "**क्या संसारी अवस्था में** भी आत्मा की शिवत्वानुरूप कोई प्रत्यभिज्ञा (पहचान) शेष रहती है, जिससे कि यह घोषणा की जाती है कि इसमें शिव ही अपने स्वरूप में अवस्थित है?"

'ननु संसार्यवस्थायाम् अस्य किञ्चित् शिवतोचितम् अभिज्ञानमस्ति येन शिव एव तथावस्थित? —इत्यमुद्घोष्यते?'

इसी प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं— 'अस्ति इत्याह तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति॥'[१]

पञ्चकृत्य

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
सृष्टि	संहार	स्थिति	तिरोधान (विलय)	अनुग्रह

पञ्चकृत्य

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
आभासन	रक्ति	विमर्शन	बीजावस्थापन	विलापन

सृष्टि-संहार एवं अनुग्रह में अद्वैत

क्रियायें शिव की ही भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं अतः उपर्युक्त ये तीनों अद्वैतरूप हैं।

(१) **'सृष्टि'**— चिदात्मा महेश्वर का बहिर्मुख होने पर नीलादि वस्तुओं को नियत देश, नियत काल में आभासन ही सृष्टि है।

(२) **'संहार'**— नियत देशकाल से भिन्न अन्य अभासांश ही **'संहार'** है।

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (१०)।

(३) **'अनुग्रह'**— नीलाद्याभासांश में स्थापकता, वस्तुओं का ऐक्यभाव से प्रकाशन ही अनुग्रह है।[1]

'सृष्टि' एवं संहार भी अभिन्न हैं; क्योंकि पूर्व विद्यमान पदार्थों का **'उन्मीलन'** ही सृष्टि है और 'निमीलन' ही संहार है।

शिव और अणु में अद्वैत

शिव ही अणु (जीव) बन गया है

भट्ट वामदेव ने ठीक ही कहा है कि—

''इत्थं सर्वशक्तियोगेऽपि आभिर्मुख्याभि: शक्तिभिरुपचर्यते स च भगवान् स्वातन्त्र्यशक्तिमहिम्ना स्वात्मानं सङ्कुचितमिव आभासयन् **'अणु'** इति उच्यते।

अन्य भी कहा गया है कि—

''व्यापको हि शिव: स्वेच्छाक्लृप्तसङ्कोचमुद्रणात्।
विचित्रकलकर्मौघवशात्तत्तच्छरीरभाक्॥''

अर्थात् स्वस्वरूप गोपन क्रीड़ा-व्यापार में स्वयं शिव ही (अपने स्वरूप को आच्छादित करके) जीव (अणु) बन गया है। 'जीव' और 'विश्व' (निखिल सृष्टि और उसके कारणभूत छत्तीस तत्त्व) शिव के आभास मात्र हैं कोई स्वतन्त्र सत्तायें नहीं हैं क्योंकि—

'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।'
'.....मायाभि: पुरुरूप ईयते॥'

ठीक भी है— **''एकोऽहंबहुस्याम्''** के अनुसार तो 'एक' ही 'बहु' हो गया है।

''जीव'' शिव तो है ही केवल त्रिविधमलों ने ही उसे 'जीव' बना दिया है।

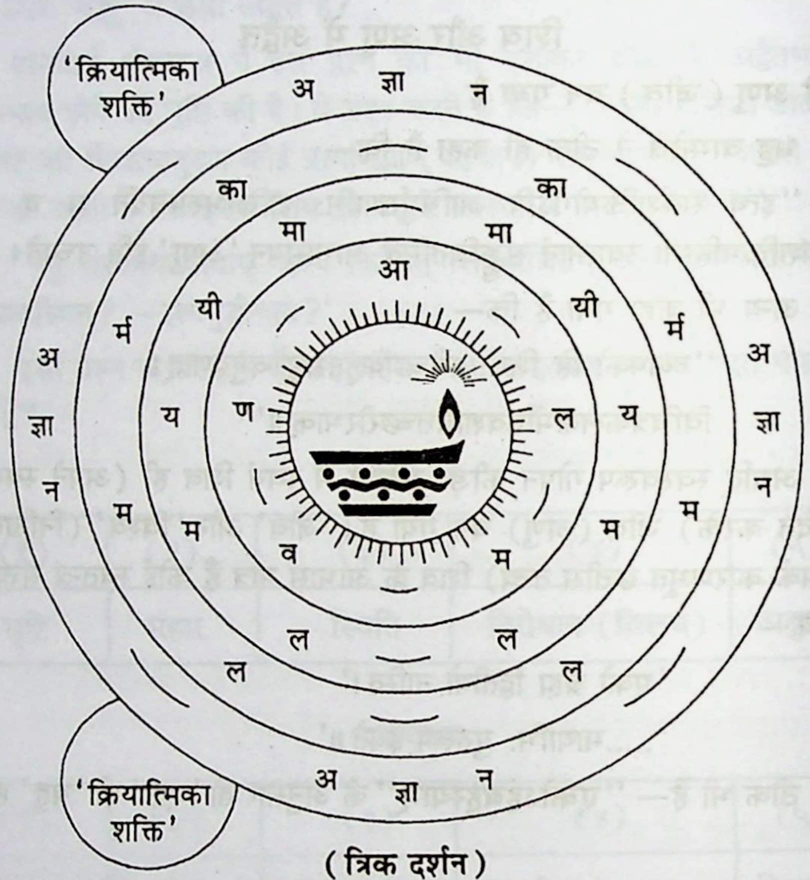
वेदान्त भी कहता है कि 'जीव' ब्रह्म है केवल 'अज्ञान' या माया या 'कोश' रूपी आवरणों से आच्छादित होने के कारण ही 'ब्रह्म' ब्रह्म रहकर भी **'जीव'** बन गया।

---

१. आचार्य क्षेमराज— प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र ११)।

(१) शैव-शाक्त-अद्वैतमत (बन्धन के कारण)

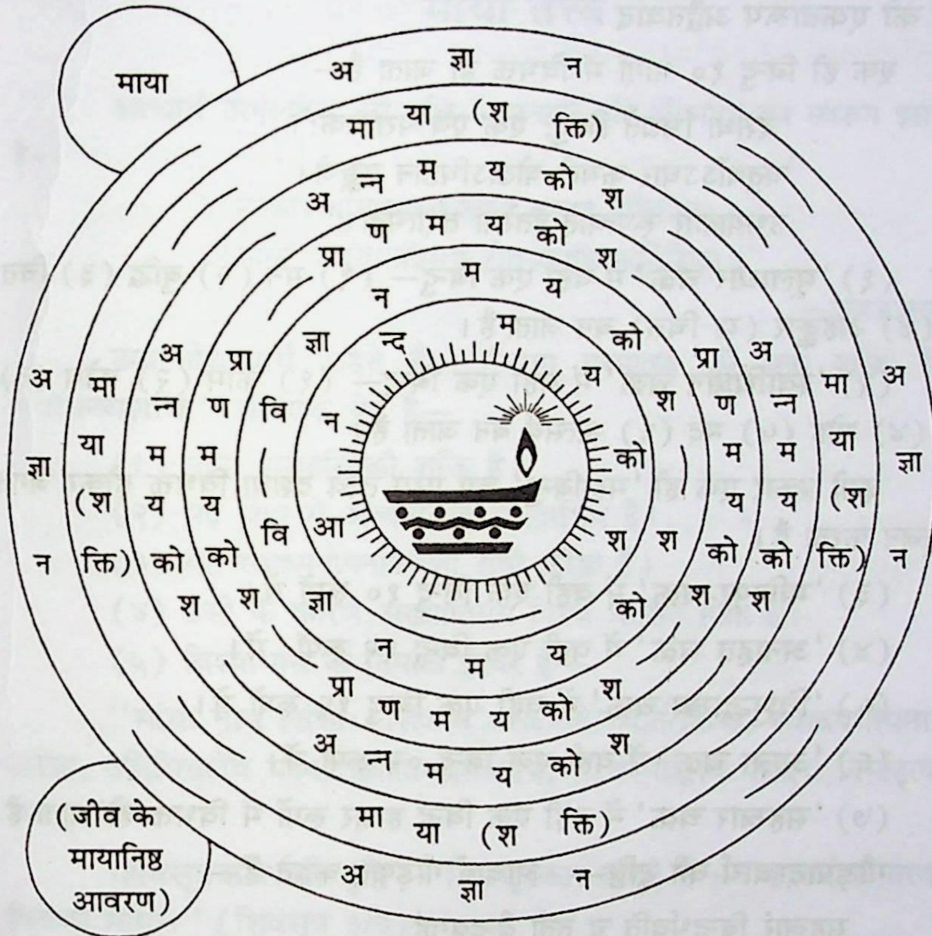
(जीवत्व का कारण— अज्ञान एवं मल हैं)



(त्रिक दर्शन)

(२) शाङ्कर अद्वैत मत

(जीवत्व का कारण— माया 'अज्ञान' एवं कोश हैं।)



(शाङ्कर अद्वैतवादी दर्शन)

जीवों के बन्धन का कारण—(शाङ्कर वेदान्त एवं त्रिक दर्शन दोनों में)
१. शक्ति एवं २. अज्ञान है।

महाबिन्दु और चक्रों में अद्वैत

'एकोऽहं बहुस्याम्' ही अद्वैतवाद एवं द्वैत का मूल मन्त्र है। यह '**अहं ब्रह्मास्मि**' में पर्यवसित हो उठता है।

परमात्मा तो अद्वैत है। वही 'एक' अनेक हो गया है। भगवान आणवीवृत्ति को ग्रहण करके अनेक प्रकार की जातियों एव भोगों को प्राप्त करने का पात्रता रखने वाले जीवों को (१) अण्डज (२) उद्भिज (३) स्वेदज एवं (४) जरायुज आदि

योनियों में उत्पन्न करता है। (१) यथार्थतः तो कोई भी शिव-शक्ति से परे नहीं है। सभी शिवशक्तिरूप हैं।

चक्रों की एकतारूप अद्वैतवाद

एक ही बिन्दु १० भागों में विभक्त हो जाता है—

'दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्थाऽऽधार कमले षोढाऽधिष्ठान पङ्कजे।
उभयाकार रूपत्वात् इतरेषां तदात्मता॥'

(१) **'मूलाधार चक्र'** में वही एक बिन्दु— (१) मन (२) बुद्धि (३) चित्त और (४) अहङ्कार (या चित्त) बन जाता है।

(२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में वही एक बिन्दु— (१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह (५) मद (६) मात्सर्य बन जाता है।

इसी प्रकार एक ही 'महाबिन्दु' रूप परम तत्त्व दशधा विभक्त होकर जगत का सृजन करता है।

(३) **'मणिपूर चक्र'** में वही एक बिन्दु १० रूपों में।

(४) **'अनाहत चक्र'** में वही एक बिन्दु १२ रूपों में।

(५) **'विशुद्धाख्य चक्र'** में वही एक बिन्दु १६ रूपों में।

(६) **'आज्ञा चक्र'** में वही एक बिन्दु ०२ रूपों में।

(७) **'सहस्त्रार चक्र'** में वही एक बिन्दु हजार रूपों में विभक्त हो जाता है।

गौड़पादाचार्य की दृष्टि— आचार्य गौड़पाद कहते हैं—

सहस्त्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं,
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।
ततो मूलाधारद्वितयमभवत्तद्दशदले,
सहस्त्राराज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत्॥४७॥
अधिष्ठानाधार द्वितयमिदमेव दशदलं
सहस्त्राराज्जातं मणिपुरमतोऽभूद्दशदलम्।
हृदाम्भोजान्मूलान् नृपदलमभूत्स्वान्तकमलं
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्॥

— सुभगोदय

******

अध्याय-३

माया तत्त्व

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि— उनकी दृष्टि में माया का स्वरूप इस प्रकार है—

'मायाभिधायास्तच्छक्तेरेव चान्या प्रसिद्धितः।
'माया' तदख्यातिमयं ह्येतज्जगन्निमार्तृतेशिता॥'

—अजडप्रमातृसिद्धि

उत्पलदेवाचार्य कहते हैं— 'माया परमात्मा की एक शक्ति है और **'स्वातन्त्र्यशक्ति'** का एक भेद है—

(१) माया पारमात्मिकी शक्ति है।

(२) यह शिव से अव्यतिरिक्त या अभिन्न है।

(३) यह स्वरूपगोपनात्मिका शैवी क्रीडा है।

(४) उसी के कारण अख्यातिमय विश्व भासित होता है।

(५) विश्वाभास के निर्माता ईश्वर हैं—

''**माया नाम शक्तिः** शिवस्य शक्तिमतोऽव्यतिरेकिणी, **स्वरूपगोपनात्मिका क्रीडा,** तन्निमित्तादेव यस्मादख्यातिमयमेतद्विश्वं, ...तस्माद्विश्वाभासानां निर्मातृत्वमीश्वरत्वम्॥''[१]

शिवसूत्रकार की दृष्टि— शिवसूत्रकार कहते हैं— 'कलादीनां तत्त्वानामविवेको माया।'' (शिवसूत्र ३/३)

अर्थात् कलादिक के अविवेक (अज्ञान) को ही **'माया'** कहते हैं।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि किञ्चित्कर्तृतादिरूपकलादिक्षित्यन्त तत्त्वों का और पञ्चकञ्चुक-पुर्यष्टक एवं स्थूलदेह के रूप में अवस्थित तत्त्वों का अविवेक अर्थात् इनके पृथग्भूत होने पर भी इन्हें अपृथकरूप से स्वीकार करना ही 'माया' है। यह माया तत्त्वों की अख्यातिरूप प्रपञ्च है।

'तन्त्रसद्भाव' में भी कहा गया है—

कालोद्वलितचैतन्यो विद्यादर्शितगोचरः।
रागेण रञ्जितात्मासौ बुद्ध्यादिकरणैर्युतः।

---

१. अजडप्रमातृसिद्धि वृत्ति (२४)।

एवं मायात्मको **बन्धः** प्रोक्तस्तस्योदरात्मकः।
तदाश्रयगुणो धर्मोऽधर्मश्चैव समासतः।
तत्रासौ संस्थितः पाश्यः पाशितस्तैस्तु तिष्ठति॥

'स्पन्दसूत्र' में भी कहा गया है—

'अप्रबुद्ध धियस्त्वेते स्वस्थितिस्थगनोद्यताः।
पातयन्ति दुरुत्तारे घोरे संसारवर्त्मनि[1] ॥२०॥'

गुणादिरूपों में प्रवहमान 'विशेष स्पन्द' स्वस्वरूप (चिन्मात्रस्वरूप) पर आवरण डालने हेतु सदैव उद्यत रहते हैं और ये दुस्तरणीय संसार-मार्ग में गिरा देते हैं।

(क) संसारिणामैश्वर्यस्य आत्मनः प्रत्यभिज्ञाने **'विद्या'**

(ख) पशुभावे **'माया'**[2]

(ग) जब भाव (पदार्थ) 'इदम्' रूप में (अहं से पृथक् रूप में) भासित होते हैं और प्रमाता का 'अहं' इदम् से पृथक् रूप में भासित होते हैं तब दोनों स्थितियों का कारक **'मायाशक्ति'** ही है। इस विपर्ययद्वय का कारण 'विमोहिनी माया शक्ति' है—

'भेदे त्वेकरसे भातेऽहन्तयानात्मनीक्षिते।
शून्ये बुद्धौ शरीरे वा मायाशक्तिर्विजृम्भते॥'

एकरसात्मक आत्मसंवित् में भेद ज्ञान होना और 'इदम्' में 'अहं' की अनुभूति (अनात्मक पदार्थों में आत्मबुद्धि) होना— ये दोनों माया शक्ति की विजृंभायें हैं।

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

यदाभावा भेदेनेदन्तयैव भासन्तेऽहममिति प्रमातृत्वेन च देहादिः तदा विपर्ययद्वयहेतु**र्माया**शक्तिर्विमोहिनी नाम विजृम्भा॥

(१) उन्मेषनिमेषौ बहिरन्तःस्थिती **एवेश्वरसदाशिवौ** बाह्याभ्यन्तरयोर्वेद्यवेदकयोरेकचिन्मात्रं विश्रान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमहमिति विश्वात्मनो मतिः 'शुद्धविद्या'॥''[3]

'शुद्धताज्ञप्ति' का स्वरूप क्या है?

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

---

१. स्पन्दकारिका (२०)।

२. प्र. का. एव प्र. का वृत्ति (६/३)।

३. प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति।

पदार्थों को अपने से भिन्न रूप में **इदन्तया** देखने पर जब 'इदम्' अपने 'अहं' से परिच्छिन्न या आच्छादित रूप में साक्षात्कृत होता है और योगी का परामर्श **'अहमिदं'** के रूप में होता है तब यही परामर्श **शुद्धज्ञप्ति** है—

'भिन्नवेद्यभूमाविदन्तया दृश्यतामापादितानां भावानां चिन्मात्रसारत्वादहमिदमिति तत्त्वप्रतिपत्तिः **शुद्धताज्ञप्तिः परापरावस्था**[१]— परापरावस्था को परिभाषित करते हुए उत्पलदेव कहते हैं—

अत्रापरत्वं भावानामनात्मत्वेन भासनात्।

परताहन्तयाच्छादात्परापरदशा हि सा॥

अर्थात् अत्रेदन्तामतेरपरत्वमहन्तया सर्वस्य वेद्यस्याच्छादनात्परतेति परापरावस्थैषा॥[२]

'माया' और 'विद्या' तथा मन्त्रेश्वर-महेश्वर

जहाँ भेदप्रथा हो वहाँ 'माया' का साम्राज्य होता है। वस्तुतः 'माया' भेद-बुद्धि का ही नामान्तर है। आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

भेदधीरेव भावेषु कर्तुर्बोधात्मनोऽपि या।

मायाशक्त्येव सा विद्येत्यन्ये विद्येश्वरा यथा॥

अर्थात् 'बोधकर्तृतामयस्यापि भेदेन विश्वेक्षणं विद्येति केचित्। **मायाशक्तिरप्येषा विद्यैव**। संसारोत्तीर्णत्वात् तस्था **मन्त्रेश्वर विद्येश्वराः**॥'

'विद्या' और 'माया' में पार्थक्य

(१) जब संसारीगण आत्मा के ऐश्वर्य का प्रत्यभिज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तब उस प्रत्यभिज्ञान की अवस्था को ही **'विद्या'** कहा जाता है।

(२) पशुभावास्था ही 'माया' है—

'माया' भेदप्रथा एवं भेदोत्पादिका शैवीशक्ति है

उत्पलदेव कहते हैं "मायाशक्त्या विभोः सैव **भिन्न संवेद्यगोचरा**" प्रकाशात्मा परमेश्वर की माया शक्ति के द्वारा **स्वात्मरूप विश्व** भेदात्मक रूप से आभासित किया जाता है—

"प्रकाशात्मनः परमेश्वरस्य माया शक्त्या स्वात्मरूपं विश्वं भेदेनाभास्यते॥"[३]

---

१. प्र. का. (४/३)।

२. प्र. का. वृत्ति (५/३)।

३. प्र. का. वृत्ति (४९/१)।

''कथिता ज्ञान सङ्कल्पाध्यवसायादिनामभिः॥''

'**ज्ञान**' '**सङ्कल्प**' '**अध्यवसाय**' आदि के नाम से यही जगत में प्रसृत है।[१] 'माया' ही अभिन्न को भी भिन्नवत प्रतीत कराने लगती है— 'चित्तत्वं **मायया** हित्वा भिन्न एवावभाति यः'॥[२]

'मल' और माया का सम्बन्ध

'माया' कारण है और 'मल' कार्य हैं। मल ही अज्ञान है और यही संसाररूपी वृक्ष का बीजाङ्कुर है।

शास्त्रकारों ने 'मल' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

'मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुर कारणम्'

'आणवमल'— स्वस्वरूप का अज्ञान ही 'आणव मल' है

'आणवमल'→ कार्ममल →'मायीय मल' (उत्पत्ति क्रम)

'आणवमल'	**'कार्ममल'**	**'मायीयमल'**
(अज्ञान)	(कर्मात्मक बन्धन)	(सुखदुःखादिलक्षणात्मक)
(आत्मस्वरूप का अवबोध न होना	(हेयोपादेय कर्मो, धर्मा-धर्म, पुण्यापुण्य कर्मों का बन्धन	

षट्त्रिंशत्तत्वसन्दोहकार की दृष्टि

'षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह' में 'माया' को भेदबुद्धि उत्पन्न करने वाली शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है और कहा गया है कि—

''माया विभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु॥
नित्यं तस्य निरङ्कुशविभवं वेलेव वारिधिं रुन्धे॥'

परमार्थसारकार की दृष्टि— 'परमार्थसार' में कहा गया है कि 'माया' शिव की अचिन्त्य शक्तिशाली एवं सर्वतोमुखी मलोत्पादिका एवं बन्धनप्रदा शक्ति है। यह अघटनघटनापटीयसी परम स्वातन्त्र्य वाली शक्ति शिव की 'निजा शक्ति' 'स्वातन्त्र्य शक्ति' का ही रूपान्तर है जो कि जीवों पर अख्याति के आवरण डाला करती है—

'परमं यत्स्वातन्त्र्यं दुर्घटसंपादनं महेशस्य।
देवी माया शक्तिः स्वात्मावरणं शिवस्यैतत्॥'[३]

१. प्र. का. वृत्ति (४९)।
२. तत्रैव (५६)।
३. परमार्थसार (१५)।

आचार्य अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि— आचार्य अभिनव कहते हैं कि—

(१) 'माया' महेश्वर की अपनी अव्यतिरेकिणी शक्ति है।

(२) उसमें भेदावभास उत्पन्न करने की पूर्ण (निरपेक्ष) 'स्वातन्त्र्य शक्ति' विद्यमान है—

> '**माया**' नाम च देवस्य शक्तिरव्यतिरेकिणी।
> भेदावभासस्वातन्त्र्यं तथाहि स तया कृतः॥[1]

'अभेद' में भेदसृजन करने के स्वातन्त्र्य को ही '**माया शक्ति**' कहते हैं अतः 'माया' भी शिव की '**स्वातन्त्र्यशक्ति**' का रूपान्तर है।

माया शक्ति की 'स्वतन्त्रता' ही है कि वह—

(१) स्वयं ही आवरण बन जाती है।

(२) अपने पूर्ण स्वरूप को अपूर्ण बना देती है।

(३) अपने भेदहीन स्वरूप को भेदात्मक बना देती है।

(४) पञ्चकञ्चुकों द्वारा सारी असीम शक्तियों को ससीम कर देती है।

(५) अपने ही आवरण द्वारा 'शिव' को 'पशु' बना देती है।

(६) अपने ही अद्वैत रूप को द्वैतात्मक विश्व बना देती है।

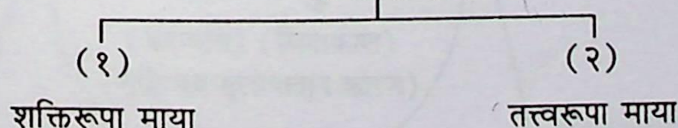
(७) अपनी ही शक्ति से किसी को बन्धन में डाल देती है और किसी को मुक्त कर देती है।

(८) शिव की सिसृक्षा बनकर व्यक्त होती है।

(९) वह एक रूपा, सर्वव्यापिका, अनाद्यनन्ता, व्ययहीना एवं शिव की ईशानी शक्ति है—

> 'सा चैका व्यापिनीरूपा निष्कला जगतो निधिः।
> अनाद्यनन्ता शिवेशानी व्ययहीना च कथ्यते॥'[2]

'माया' के विभिन्न रूप— माया के दो रूप हैं।



१. तन्त्रालोक (९.१४९-५०)
२. मा. वि. (१.२६)।

('महामाया' या 'माया शक्ति') (माया या माया तत्त्व)

आद्यो भेदावभासो यो विभाग-
मनुपेयिवान्। गर्भीकृतानन्त-
भाविविभागा सा परा निशा॥
(तन्त्रालोकः ९. १५०)

'माया' संसार के 'शुद्धाध्व' एवं 'अशुद्धाध्व' इन दो स्तरों पर 'अहन्ता' का तिरोधान करती है।

(१) 'महामाया' या 'माया शक्ति'

'महामाया' को भगवती का स्वरूप भी कहा गया है—

(१) 'महाविद्या **महामाया** महामेधा महास्मृतिः॥'[१]

(२) '**महामाया**नुभावेन यथा मन्वतराधिपः।'

(३) '**महामाया**प्रभावेण संसारस्थितिकारिणा॥'

(४) '**महामाया** हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।'

(५) 'बलादाकृष्य मोहाय **महामाया** प्रयच्छति।'

(६) 'भगवन का हि सा देवी **महामाये**ति यां भवान्'

ऋषि ने उस 'महामाया' का स्वरूप इस प्रकार बताया—

'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तस्या सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम॥
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥'

ब्रह्मा कहते हैं— 'महाविद्या **महामाया** महामेधा महास्मृतिः॥'[२]

'महामाया' या 'मायाशक्ति' शिव की सर्वनिरपेक्षा शक्ति है।[३]

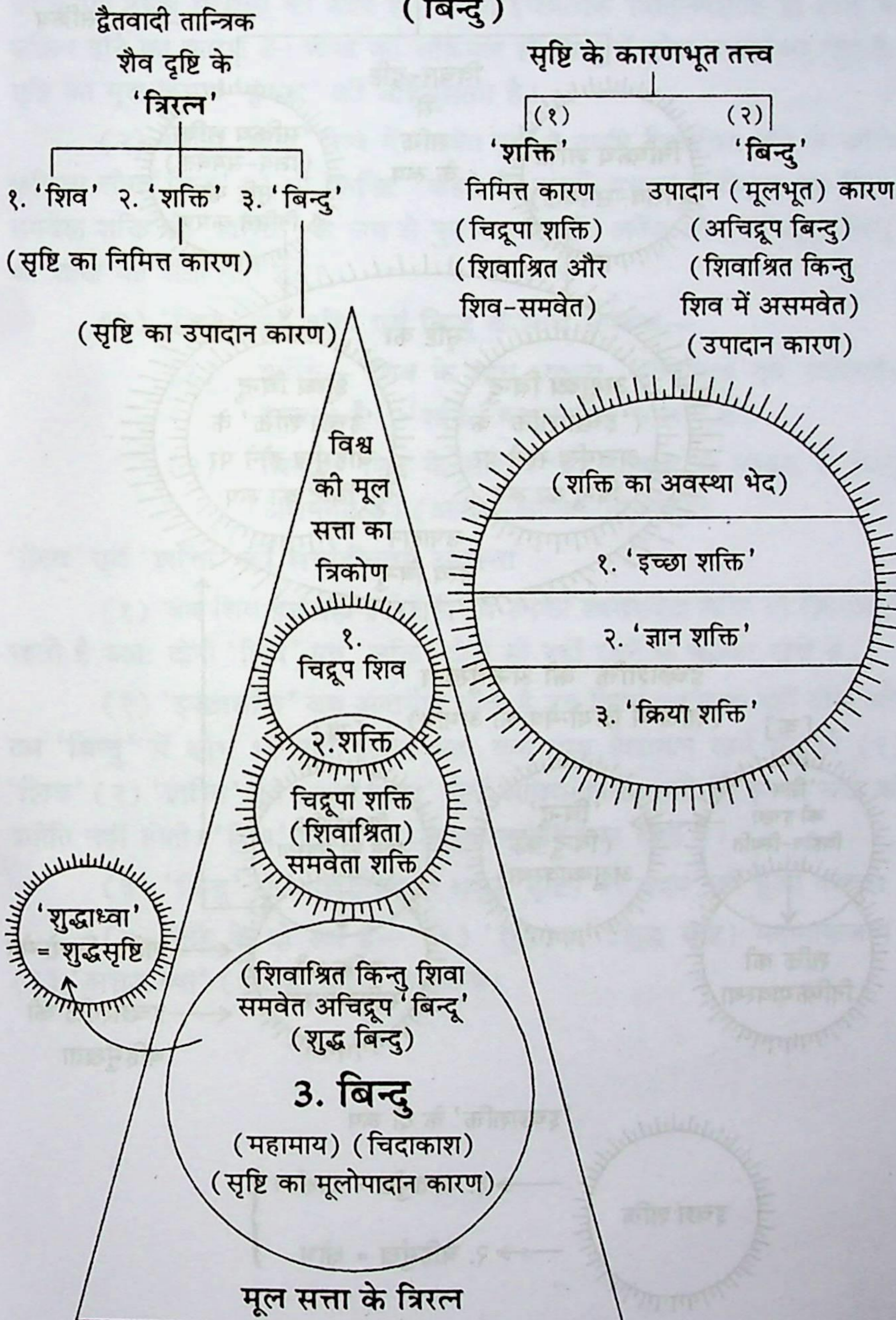
---

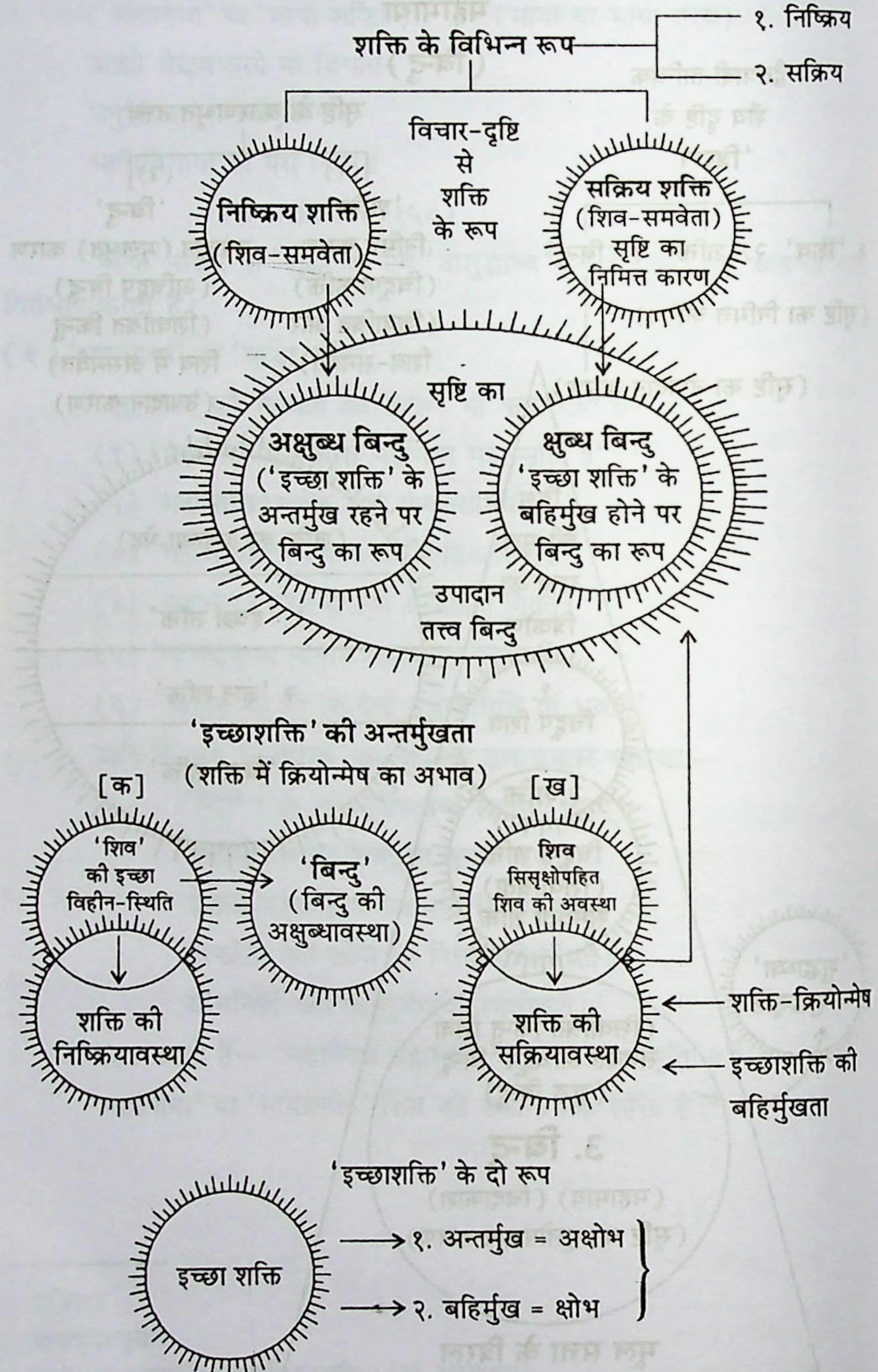
१. रात्रिसूक्त

२. मार्कण्डेयपुराण

३. महामाया महासत्त्वा महाशक्तिर्महारतिः। (ल. सहस्रनाम)

महामाया
(बिन्दु)


द्वैतवादी तान्त्रिक
शैव दृष्टि के
'त्रिरत्न'
१. 'शिव' २. 'शक्ति' ३. 'बिन्दु'
(सृष्टि का निमित्त कारण)
(सृष्टि का उपादान कारण)
विश्व की मूल सत्ता का त्रिकोण
१. चिद्रूप शिव
२.शक्ति
चिद्रूपा शक्ति (शिवाश्रिता) समवेता शक्ति
'शुद्धाध्वा' = शुद्धसृष्टि
(शिवाश्रित किन्तु शिवा समवेत अचिद्रूप 'बिन्दू' (शुद्ध बिन्दु)
3. बिन्दु
(महामाय) (चिदाकाश)
(सृष्टि का मूलोपादान कारण)
मूल सत्ता के त्रिरत्न
सृष्टि के कारणभूत तत्त्व
(१) 'शक्ति' निमित्त कारण (चिद्रूपा शक्ति) (शिवाश्रित और शिव-समवेत)
(२) 'बिन्दु' उपादान (मूलभूत) कारण (अचिद्रूप बिन्दु) (शिवाश्रित किन्तु शिव में असमवेत) (उपादान कारण)
(शक्ति का अवस्था भेद)
१. 'इच्छा शक्ति'
२. 'ज्ञान शक्ति'
३. 'क्रिया शक्ति'


शक्ति के विभिन्न रूप
१. निष्क्रिय
२. सक्रिय
विचार-दृष्टि से शक्ति के रूप
निष्क्रिय शक्ति (शिव-समवेता)
सक्रिय शक्ति (शिव-समवेता) सृष्टि का निमित्त कारण
सृष्टि का
अक्षुब्ध बिन्दु ('इच्छा शक्ति' के अन्तर्मुख रहने पर बिन्दु का रूप
क्षुब्ध बिन्दु 'इच्छा शक्ति' के बहिर्मुख होने पर बिन्दु का रूप
उपादान तत्त्व बिन्दु
'इच्छाशक्ति' की अन्तर्मुखता
(शक्ति में क्रियोन्मेष का अभाव)
[क]
[ख]
'शिव' की इच्छा विहीन-स्थिति
'बिन्दु' (बिन्दु की अक्षुब्धावस्था)
शिव सिसृक्षोपहित शिव की अवस्था
शक्ति की निष्क्रियावस्था
शक्ति की सक्रियावस्था
शक्ति-क्रियोन्मेष
इच्छाशक्ति की बहिर्मुखता
'इच्छाशक्ति' के दो रूप
इच्छा शक्ति
१. अन्तर्मुख = अक्षोभ
२. बहिर्मुख = क्षोभ

(१) '**शक्ति**' कभी निष्क्रिय रहती है तो कभी सक्रिय। 'शक्ति' की सक्रियता का कारण उसमें सिसृक्षा का उदय है। अर्थात् इच्छात्मक स्वातन्त्र्यशक्ति ही शक्ति के सक्रिय होने का कारण है। शक्ति की सक्रियता ही बिन्दु में क्षोभ उत्पन्न कर देता है। सृष्टि का मूल कारण **'इच्छा' की बहिर्मुखता** है।

(२) यद्यपि 'बिन्दु' शिव में समवेत नहीं है तथपि शिवाश्रित रहने के कारण कतिपय लोग 'बिन्दु' को भी '**शक्ति**' कहते हैं। तथापि प्रधानतया चिद्रूपा एवं शिव-समवेता शक्ति को '**शक्ति**' के नाम से पुकारा जाता है। अनेक लोग अचिद्रूप 'बिन्दु' को शक्ति की संज्ञा नहीं देते।

(३) **'शिव' का शक्ति एवं बिन्दु के साथ सम्बन्ध—**

(१) **शक्ति**— शिव के साथ साक्षात्, अविनाभूत एवं स्वसमवेत सम्बन्ध है। ='शक्ति' का समवाय सम्बन्ध है।

(२) **बिन्दु**— शिव के साथ आश्रय सम्बन्ध से सम्बद्ध है किन्तु असमवेत है। (आश्रय-आश्रित-सम्बन्ध)।

'शिव' एवं 'शक्ति' की सत्ताहीनवत् अवस्था

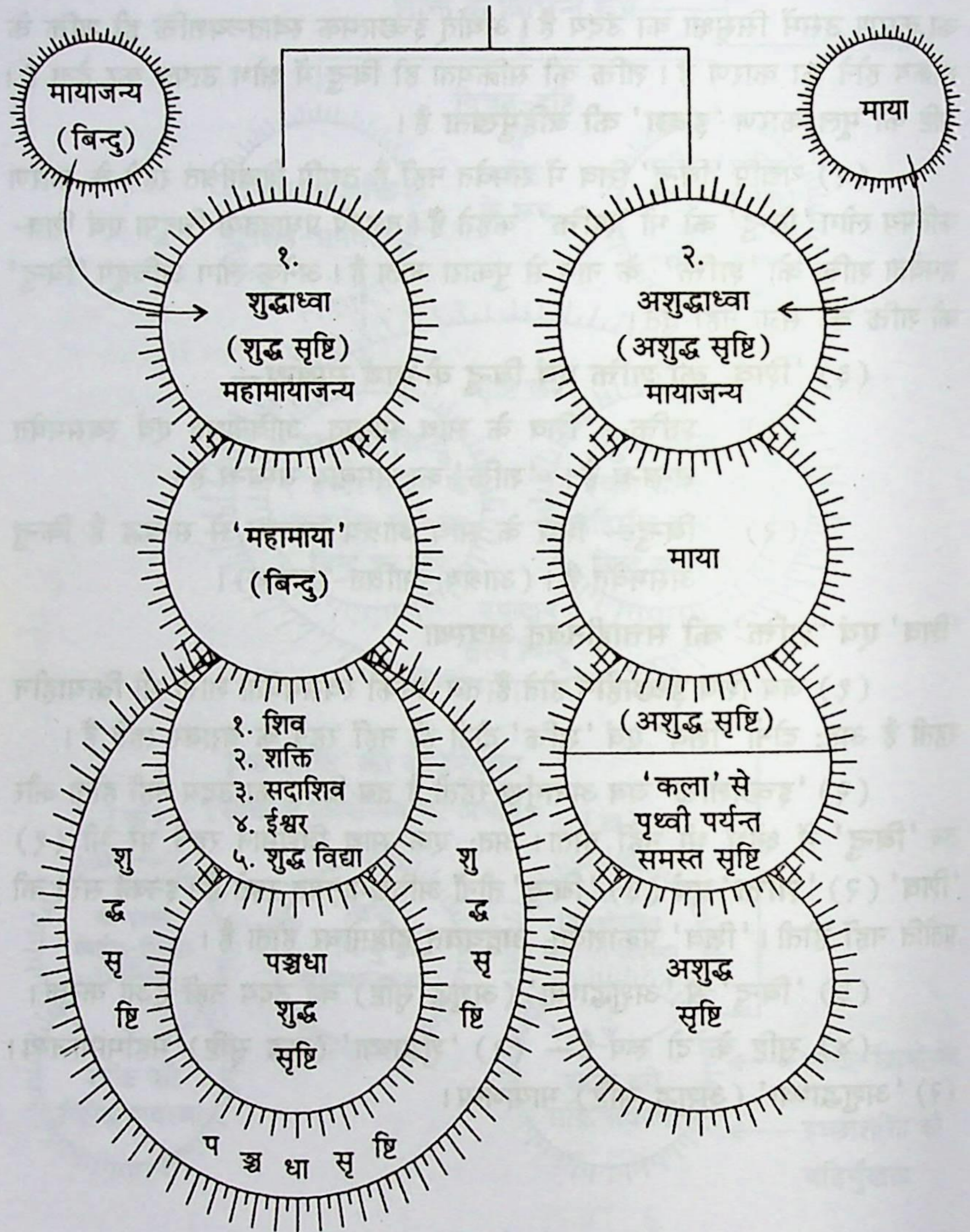
(१) जब शिव **इच्छाहीन** होते हैं तब उनकी स्वसमवेता शक्ति भी **क्रियाहीन रहती** है अत: दोनों 'शिव' एवं 'शक्ति' दोनों ही नहीं रहने के बराबर रहते हैं।

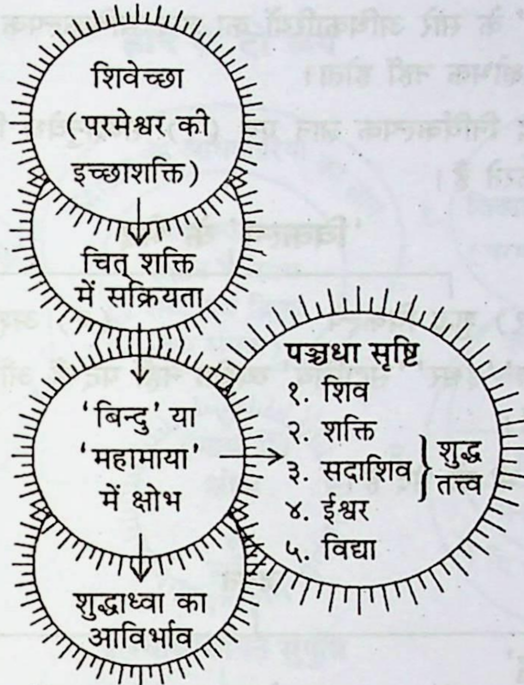
(२) 'इच्छाशक्ति' जब अन्तर्मुख रहती है तब क्रिया का उदय नहीं होता और तब '**बिन्दु**' में क्षोभ भी नहीं होता। अत: एक साथ विद्यमान रहने पर भी (१) '**शिव**' (२) '**शक्ति**' एवं (३) '**बिन्दु**' तीनों अविद्यमानवत् रहते हैं। इनकी सत्ता की प्रतीति नहीं होती। 'शिव' प्रकाशवत्, **अद्वयवत्** दृष्टिगोचर होता है।

(३) 'बिन्दु' से 'अशुद्धाध्वा' (अशुद्ध सृष्टि) का उदय नहीं हुआ करता।

(४) सृष्टि के दो रूप हैं— (१) 'शुद्धाध्वा' (शुद्ध सृष्टि) महामायाजन्य। (२) 'अशुद्धाध्वा' (अशुद्ध सृष्टि) मायाजन्य।

माया के दो रूप


मायाजन्य
(बिन्दु)
माया
१.
शुद्धाध्वा
(शुद्ध सृष्टि)
महामायाजन्य
२.
अशुद्धाध्वा
(अशुद्ध सृष्टि)
मायाजन्य
'महामाया'
(बिन्दु)
माया
१. शिव
२. शक्ति
३. सदाशिव
४. ईश्वर
५. शुद्ध विद्या
(अशुद्ध सृष्टि)
'कला' से
पृथ्वी पर्यन्त
समस्त सृष्टि
शु द्ध सृ ष्टि
पञ्चधा
शुद्ध
सृष्टि
अशुद्ध
सृष्टि
प ञ्च धा सृ ष्टि



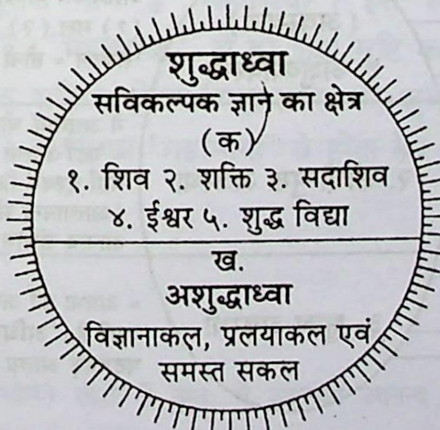
'महामाया' में क्षोभ क्यों?

(१) शिवेच्छा के कारण शिव में इच्छा शक्ति के उन्मेष के कारण 'इच्छा सृष्टिवाद'।

(२) शिव की इच्छा 'महामाया' का स्पर्श तो करती है किन्तु 'माया' का स्पर्श नहीं करती क्योंकि वह अशुद्ध है।

(३) सविकल्पक ज्ञान ही का उदय होने से 'माया' में क्षोभ सम्भव है अन्यथा नहीं है।

(४) शिव विकल्पहीन है। वे नित्य सिद्ध आत्मा हैं। 'चितशक्ति' ही शिव की 'इच्छा' शिव का 'ज्ञान' एवं शिव की 'क्रिया' है।



'शुद्धाध्वा' के सारे अधिकारियों का ज्ञान सविकल्पक है निर्विकल्पक नहीं। निर्विकल्पक ज्ञान क्षोभक नहीं होता।

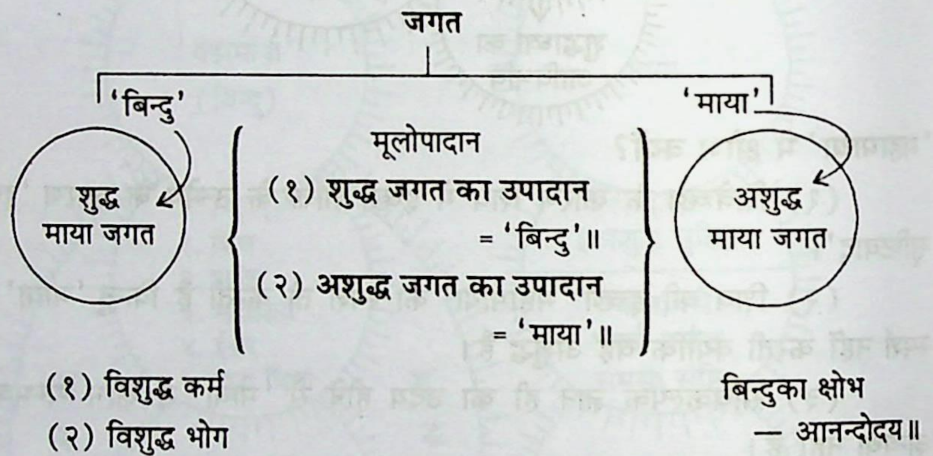
(१) शुद्ध निर्विकल्पक ज्ञान एवं (२) शब्दानुवेध मिलकर **'सविकल्पक ज्ञान'** की सृष्टि करते हैं।

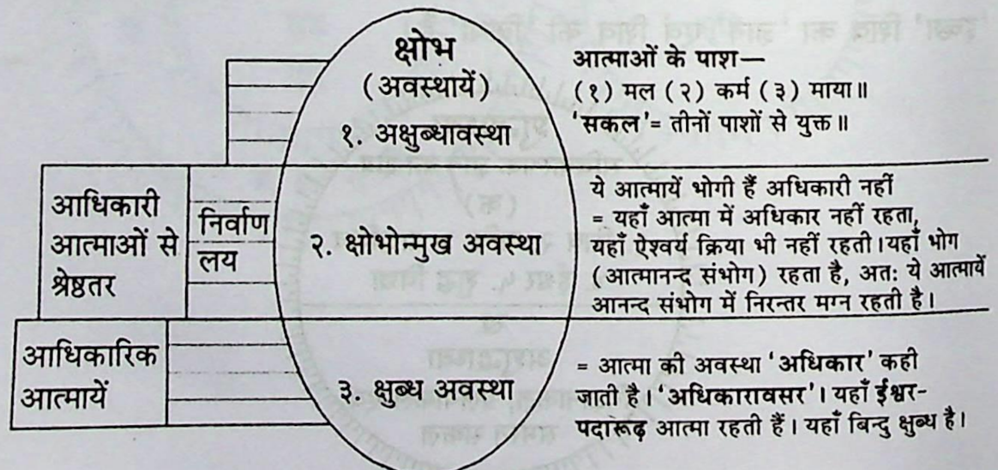
'विकल्प' के भेद

(१) शुद्ध विकल्प (२) अशुद्ध विकल्प

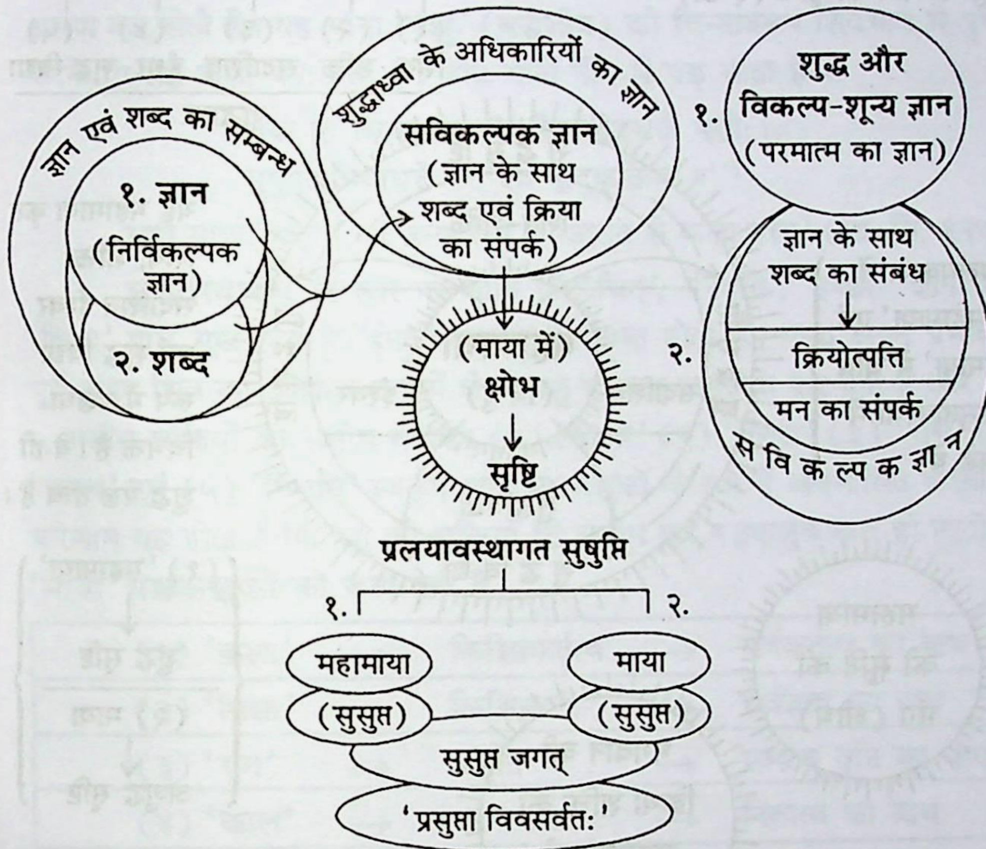
'शुद्धविद्या' 'ईश्वर' 'सदाशिव' **व्यक्ति नहीं पद** हैं और इन तत्त्वों में पृथक्-पृथक् भुवन भी हैं।

जगत के भी दो भेद हैं।





ज्ञान के दो रूप



(जब तक ज्ञान का शब्द के साथ सम्बन्ध नहीं होता तब तक माया में क्षोभ सम्भव नहीं होता।)

* बिन्दु का दूसरा नाम है **'महामाया'**। इसे ही **'चिदाकाश'** एवं **'कुण्डलिनी'** भी कहते हैं। **'महामाया'** से ही शुद्ध सृष्टि का आविर्भाव होता है। परमेश्वरेच्छावश चित् शक्ति सक्रिय होकर **'महामाया'** को क्षुब्ध करती है। सृष्टि का प्रारम्भ (माया के स्तर पर) सर्वप्रथम 'महामाया' से होता है।

---

१. यहाँ भोग (आत्मानन्द संभोग) रहता है अत: ये आत्मायें आनन्द सम्भोग में निरन्तर मग्न रहती हैं।

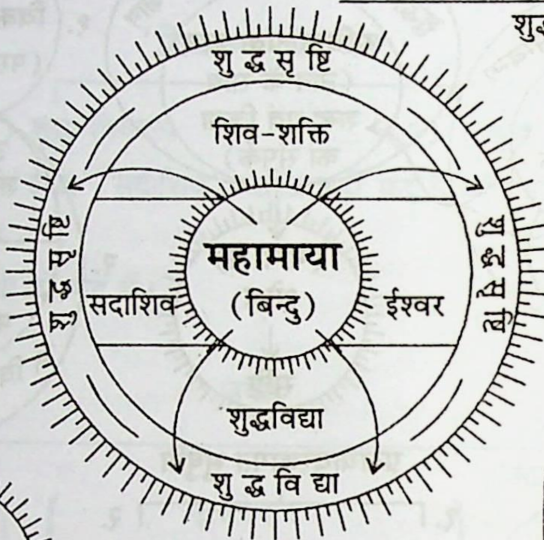
'महामाया' के क्षोभ का मूल है शिव की दृष्टि (इच्छा)

भगवती महामाया का परिवार

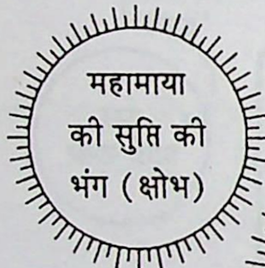
(१) शिव (२) शक्ति (३) सदाशिव (४) ईश्वर (५) शुद्ध विद्या

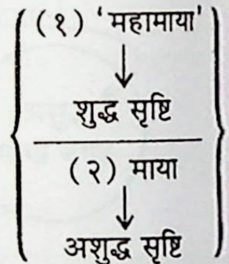
शुद्धाध्व

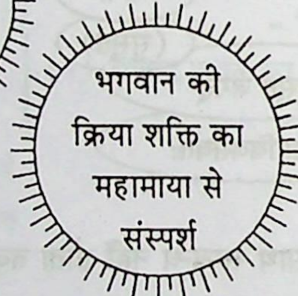
प्रलयकाल में 'महामाया' एवं 'माया' में जीव प्रसुप्तावस्था में पड़े थे।



यह महामाया कृत शिव, शक्ति, सदाशिव ईश्वर एवं शुद्ध विद्या रूप में पञ्चधा विभक्त है। ये ही शुद्ध पञ्च तत्त्व हैं।







शिव की निर्विकल्पक शक्ति

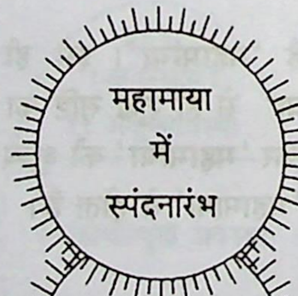
↓

माया अक्षुब्ध।

(ज्ञान के बिना एवं शब्द के संस्पर्श के बिना 'महामाया' एवं 'माया' दोनों में क्षोभोदय नहीं होता॥

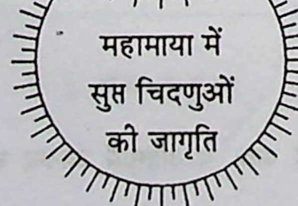
माया का क्षोभक तत्त्व

सविकल्पक मायाशक्ति — 'अदृष्ट'



परिपक्वमल वाले चिदणुओं का जागरण सभी चिदणुओं का जागरण नहीं।

ज्ञान क्रियाहीन नहीं होता और क्रिया ज्ञान हीन नहीं होती।



शेष अपरिपक्वमल वाले चिदणु महामाया के गर्भ में और अगले किसी कल्प में जाग पाते हैं। (जागरण का नियामक तत्त्व है मल का (परिपाक)।

सविकल्पक ज्ञान

'अशुद्धाध्व' (मायातत्त्व से पृथ्वी पर्यन्त)पर्यन्त के शाक्त अवरोहक्रम में समस्त स्पन्दनामयी एवं सर्वस्वतन्त्र, निरपेक्ष **चित् शक्ति** जड़ **माया तत्त्व का रूप धारण** कर लेती है। यह माया **'पशु'** (बद्धजीव) को चिन्मात्ररूप शिवभाव से पृथक् करके निःसंज्ञ जैसा बना देती है। जीव मानो नींद में पड़ जाता है—

''माया हि चिन्मयाद् भेदं शिवाद्विदधती पशोः।
सुषुप्ततामिवाधत्ते तत एव ह्यदृक्क्रियः॥''[१]

यही माया 'कला' को जन्म देती है 'असूत से कला तत्त्व' (मा. वि. १२७)।

पूर्णशिवभाव के स्तर पर शक्ति के 'चित्', 'निर्वृति', 'इच्छा' 'ज्ञान' और 'क्रिया' पाँच मुख होते हैं। इनकी व्यापकता अनन्त होती है। माया अपने प्रभाव से पूर्ण चेतन शिव को आंशिक रूप में चेतन पशु बनाकर सङ्कुचित कर देती है और उक्त ५ असीम शक्तियों को ससीम बनाकर (१) **'कला'** (२) **'विद्या'** (३) **'राग'** (४) **'काल'** एवं (५) **'नियति'** स्वरूप वाले पञ्चकञ्चुकों के रूप में अवभासित करती है। परिणाम यह होता है कि पशु की शक्तियाँ भी ससीम एवं पञ्चकञ्चुकाकार हो जाती है। **'माया' पञ्चकञ्चुकों** को जन्म देती है।

(१) 'कला'	→	किञ्चित्कर्तृत्व	→	सर्वकर्तृत्व का बाध
(२) 'विद्या'	→	किञ्चित्ज्ञत्व	→	सर्वज्ञत्व का बाध
(३) 'राग'	→	अतृप्ति	→	सम्यक् तृप्ति का बाध
(४) 'काल'	→	अनित्यता	→	नित्यत्व का बाध
(५) 'नियति'	→	अव्यापकता	→	सर्वव्याप्ति का बाध
आत्मा की या शिव की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' (असङ्कुचित शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति के मुख्य पञ्चक)।				माया-सञ्जात 'पञ्चकञ्चुकों' से आविष्ट पशुओं की माया के ५ मुख

'चित्शक्ति' → सर्वज्ञता	'विद्या' → अल्पज्ञता
'निर्वृतिशक्ति'→ सर्वकर्तृत्व	'कला' → अल्प कर्तृत्व
'इच्छाशक्ति' → पूर्णत्व	'राग' → अपूर्णत्व
'ज्ञानशक्ति' → नित्यता	'काल' → अनित्यता
'क्रियाशक्ति' → व्यापकता	'नियति' → अव्यापकता

'अन्तरङ्ग आवरण' माया की प्रधान शक्तियाँ हैं।

---

१. तन्त्रालोक (९.२७५)।

अन्तरङ्ग आवरण (षट् कञ्चुक)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
माया	कला	विद्या	राग	काल	नियति

'मायासहितं कञ्चुकषट्कमणोरन्तरङ्गमिदमुक्तम्॥''[१]

अन्तरङ्ग आवरण 'पूर्णसंवित्' चतुर्दिक आवृत करके उसके साथ उसी प्रकार चिपका रहता है यथा तण्डुल के साथ तुष और यह भिन्न रहने पर अभिन्नकल्प दृष्टिगत होता है—

''एतत् मायादिकञ्चुकम् अणोः तण्डुलस्थानीयस्य अन्तरङ्गत्वात् कम्बुकस्थानीयं व्यतिरिक्तमपि अव्यतिरिक्ततया पूर्णसंवित् स्वरूपम् आच्छाद्य स्थितम्॥''[२]

'बहिरङ्ग आवरण' (शरीर, प्राण, पुर्यष्टक, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, अन्तःकरण चतुष्टय आदि) उतने भयानक नहीं होते। इन्हीं वेद्यरूप आवरणों द्वारा घिरे हुए ज्ञान-क्रिया आदि संवेदन चेतन प्रमाता को (वेदक होने पर भी शक्ति-दारिद्र्य के कारण) 'अणु' या 'पुरुष' बना देता है। बहिर्मुखीन संसारभाव की ओर प्रवहमान गुणादि स्पन्दों के निष्यन्द स्वस्वरूप को उन्मीलित नहीं होने देते। ये 'षट् कञ्चुक' ही अणुत्व (संसारित्व=बन्धन) के कारण हैं— जो कि देह, पुर्यष्टक एवं प्राण आदि भिन्न पदार्थों में अस्मिताभिनिवेश उत्पन्न करके शिव को 'अणु' बना देते हैं—

'देहपुर्यष्टकाद्येषु वेद्येषु किल वेदनम्।
एतत्षट्कसङ्कोचं यदवेद्यमसावणु॥''

—तन्त्रालोक ९.२०५।

'आणव मल' 'मायीय मल' एवं **'कार्ममल'** भी **'माया'** की ही सृष्टियाँ हैं—

(१) स्वातन्त्र्यरूप **इच्छाशक्ति** का सङ्कुचन → अपूर्णमन्यतात्मक **'आणव मल'** का आविर्भाव होता है।

(२) **ज्ञान शक्ति** का सङ्कुचन → अल्पज्ञत्वात्मक **'मायीय मल'** का आविर्भाव होता है।

(३) **'क्रियाशक्ति'** का सङ्कुचन → अल्पकर्तृत्व का जन्म **'कार्म मल'** का आविर्भाव होता है।

---

१. परमार्थ सार।

२. परमार्थ सार वि. (१८)

पशुओं में सर्वप्रथम **'आणव मल' लोलिका** (इच्छा का सूक्ष्मतम रूप) के रूप में आविर्भूत होता है और वही स्थूल इच्छा एवं 'रागतत्व' बन जाता है।[१]

'अहन्ता' रूप में अवस्थित 'इदन्ता' ('अहमिदम्') को भेदापत्र रूप में अवभासित करने हेतु उन्मुख एवं प्राथमिक सङ्कल्प की स्फुरणा के स्वरूप में अवस्थित शक्ति ही 'मायाशक्ति' है। यह आन्तरविमर्श में भेदावभास की आसूत्रणावस्था है— 'मायाशक्त्यैव तत् त्रयम्॥'' (ई. प्र. ३.२.५)

माया शक्ति के गर्भ में 'इदन्ता' का विभाग करके सम्पूर्ण स्थूल विश्व का भेदवैचित्र्य उसी प्रकार अवस्थित रहता है जैसे शिम्बिका (सेम) के गर्भ में पृथक्-पृथक् अनेक बीज स्थित रहते हैं, किन्तु शिम्बिका एक ही रहती है।

मायाशक्ति (महामाया) का कार्यक्षेत्र

'मायाशक्ति' शुद्धाध्व (शिवतत्त्व से शुद्ध विद्या) तत्त्व के प्रमातृमण्डल तक अपना कार्य निष्पादित करती है; क्योंकि इस स्तर तक 'इदन्ता' (प्रमेय तत्त्व) के बहिरङ्ग अवभासन की प्रक्रिया विकासमान अवस्था तक रहती है। यहाँ 'अहन्ता' का पूर्ण तिरोधान भी नहीं होता।

माया या मायातत्त्व

'शुद्ध विद्या' के नीचे के स्तर पर विद्यमान 'अशुद्धाध्व' में ही 'माया' या **'मायातत्त्व' का एक छत्र राज्य** है।

(१) माया या मायातत्त्व के स्तर पर **अहन्ता का पूर्णतया** तिरोधान हो जाता है। यहाँ जड़रूप या कार्यरूप प्रमेय विश्व का स्थूलावभासन प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ स्वरूप पर पूर्ण आवरण पूर्णतया पड़ जाता है। यहाँ भी माया जड़ होने के कारण जड़ कार्यवर्ग का सृजन करती है। इसी कारण यहाँ 'माया' को 'मायाशक्ति' न कहकर 'माया तत्त्व' कहते हैं। जड़ का स्वभाव यह है कि—

(क) 'सा जडाभेदरूपत्वात् कार्यं चास्या जडं यतः।'

(ख) 'अयमेव हि **जडस्य स्वभावो यत्** 'इदमत्र इदानीं भाति' इति परिच्छिन्नतया प्रकाश्यते इति।' (तं. वि. ९.१५२) 'माया' अपने मौलिक स्वरूप में स्वातन्त्र्यरूपा एवं अपरिच्छिन्ना होकर भी अपने अशुद्धाध्व स्तर पर देश, काल एवं आकार की सीमाओं से सङ्कुचित बन जाती है। **माया शक्ति सङ्कोचोत्पादिका है।**

माया शक्ति शिव की— 'इच्छा', 'ज्ञान', 'क्रिया' आदि सर्वव्यापिनी शक्तियों

---

१. 'अणूनां लोलिका नाम निष्कर्मा याभिलाषिता।
अपूर्णंमन्यताज्ञानं मलं सावच्छिदोज्झिता। (तं ९/६२)

की अनन्त सामर्थ्य को सीमित एवं सङ्कुचित कर देती है और **सर्व कर्तृत्व, सर्व ज्ञातृत्व, नित्यत्व, सर्वव्यापकत्व, पूर्णतृप्तित्व** को अल्पकर्तृत्व, अल्पज्ञत्व, अनित्यत्व, पारमित्य एवं अतृप्ति में या 'कला' 'विद्या' आदि पञ्च कञ्चुकों के स्वरूप में रूपान्तरित करके 'पशुपति' को 'पशु' बना देती है।

मायात्मक सङ्कुचित शक्तियाँ— इन्हीं पञ्च कञ्चुकावरणरूपा, अस्वतन्त्र शक्तियों को जो कि बंधनप्रदा हैं— **'कला', 'विद्या', 'राग', 'काल'** एवं **'नियति'** कहते हैं।

माया के लक्षण

(१) मायाशक्ति पुरुष के बोध को मलिन बनाती है

माया परिग्रहवशाद् बोधो मलिनः पुमान् पशुर्भवति।
कालकलानियतिवशाद् रागविद्यावशेन सम्बद्धः ॥[१]

यह शक्ति अपने ५ कञ्चुकरूप पाशों में बाधक पुरुष को पशु बना देती है।

(२) माया परिच्छेद या सङ्कोच उत्पन्न करती है

'मीयते हेयतया परिच्छिद्यते योगिभिः ॥ (तं. वि. ९/१५२)

जिसे योगी अपने से पृथक् कर देते हैं वह माया है।

(३) जो सर्वत्र व्याप्त है

'सर्व मातीति माया'

जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध के रूप में सर्वत्र स्थित है।

(४) जो नित्य है

'मा शब्दवाच्याद्विनाशरूपान्निषेधाद् यातेति।'

जो 'मा' शब्द से निषेधार्थक होने के कारण विनाश का विषय नहीं बनती अर्थात् नित्य है।

(५) जिसके गर्भ में समस्त विश्व अवस्थित है

'मात्यस्यां विश्वमिति' (तं. वि., ९/१५२)

(६) जिस शक्ति के द्वारा पमेश्वरस्वरूप में अभिन्नरूपतया अवस्थित सत्ता को अपने से **भिन्न रूप में अवस्थित** रखा जाता है— "स्वात्माभिन्नमपि भावमण्डलं शिवो यया मिमीते भिदा व्यवस्थापयति॥"

---

१. परमार्थ सार (१६)।

(७) यह बार-बार सुलझाने पर उलझ जाती है या उलझा देती है— **उन्मूलित होने पर भी जीवित रहती है—**

'उन्मूलितापि शतशः खण्डितापि सहस्रशः।
गोनासेवाप्रथोदेति द्रागत्र शरणं शिवः॥

(काश्मीर में एक गोनासा नामक सर्पिणी रहती है जो टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाने पर भी उछलकर डस लेती है।)

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि— 'विज्ञानभैरव' में माया को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'माया' विश्व-विमोहिनी शक्ति है— **'माया विमोहिनी नाम'**। 'विमोहिनी'— विशेष प्रकार से मोहित करने वाली अर्थात् भेददृष्टि से 'भेद-प्रथात्मक स्वरूप से' मोहित करने वाली।

शाङ्कर वेदान्त में 'माया' का स्वरूप— शाङ्कर वेदान्त में माया के निम्न लक्षण बताए गए हैं—

(१) जो अव्यक्त नाम वाली है।
(२) जो परमेश्वर की शक्ति है।
(३) जो अनादि है।
(४) जो त्रिगुणात्मिका है।
(५) जो कार्यानुमेया है।
(६) जो विश्व-प्रसवित्री है।

'अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्यात्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया, यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥'[१]

(७) जो न सत् है न असत्, न सदसत् है।
(८) जो न भिन्न है न अभिन्न और न भिन्नाभिन्न।
(९) जो न साङ्ग है न अनङ्ग और न साङ्गानङ्ग।
(१०) जो अत्यन्त अद्भुत एवं अनिर्वचनीय है।

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो,
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो,
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा॥[२]

---

१. विवेक चूड़ामणि (११०, १११, ११२)।
२. विवेक चूड़ामणि (१२५)।

(११) जो रज्जु के ज्ञान से सर्प-भ्रम के समान, अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से नष्ट हो जाने वाली है।

(१२) जो 'सत्व', 'रज' एवं 'तम' नामक गुणत्रय से प्रसिद्ध है।

शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या, सर्पभ्रमोरज्जुविवेकतो यथा।

रजस्तमः सत्वमिति प्रसिद्धा गुणास्तदीयाः प्रथितैः स्वकार्यैः॥

(१३) माया और महत्तत्त्व से लेकर देहपर्यन्त माया के सम्पूर्ण कार्य मरु-मरीचिका के समान असत् और अनात्मक हैं—

'माया मायाकार्यं सर्वं महदादि देहपर्यन्तम्।

असदिदमनात्मकं त्वं विद्धि मरुमरीचिका कल्पम्॥

सांख्य दर्शन और **तन्त्र दर्शन** माया की प्रकृति की दृष्टि से अधिक निकट है किन्तु शाङ्कर वेदान्त अधिक दूर है। सांख्य और तन्त्र दोनों ही मानते हैं कि जगत माया या प्रकृति के परिणाम हैं।

'तन्त्र' जगत को 'परिणाम' एवं 'अवभास' मानता है, किन्तु शांकर वेदान्त जगत को '**विवर्त**' मानता है।

माया सम्बन्धिनी विभिन्न दृष्टियाँ

(१) शाङ्कर वेदान्त— मायिक जगत '**परिणाम**' नहीं ब्रह्म का '**विवर्त**' है। माया जड़ है। यह सत्-असत् दोनों नहीं है। यह मात्र **बन्धन का कारण** है। यह ज्ञान के उदय होने पर नष्ट हो जाती है। यह ब्रह्म में समवेत नहीं है। यह 'विद्या माया' नहीं है अतः मात्र बन्धनस्वरूप है।

(२) सांख्य शास्त्र— (१) प्रकृति जड़ है। यह नित्य है अतः सत् है।

(२) यह मात्र **भोग** या **बन्धन** का ही कारण नहीं प्रत्युत् '**अपवर्ग का भी साधन** है। इसका लक्ष्य है— (१) 'भोग' (२))'अपवर्ग'।

(३) यह 'पुरुष' या 'ज्ञ' में समवेत नहीं प्रत्युत् उससे प्रथक् तत्त्व है।

(४) सांख्य की माया भी '**ज्ञात**' होने पर मुक्ति एवं '**अज्ञात**' रहने पर बन्धन का कारण बनती है। **यही गुण तन्त्र की माया का भी है।**

(५) माया या प्रकृति का 'परिणाम' ही जगत है। (**'परिणामवाद'**॥)

(३) तन्त्रशास्त्र— (१) तन्त्र की माया नित्य है।

(२) यह शिव के साथ समवायसम्बन्ध से रहा करती है।

(३) यह चेतन है।

(४) यह (क) '**बन्धन**' एवं (ख) '**मुक्ति**' दोनों का साधन है।

(५) **स्वरूपावरण** तो **वेदान्त और तन्त्र** दोनों की माया करती हैं; क्योंकि 'वेदान्त' की माया में—

(क) '**आवरण**' एवं (ख) '**विक्षेप**' की शक्तियाँ हैं और तन्त्र की माया भी आत्मावरण करती है—

(अ) **स्वरूपावरणे** चास्य शक्तय: सततोत्थिता:।[१]

(ब) किन्तु इस माया के दो कार्य हैं—

''सेयं क्रियात्मिका शक्ति: शिवस्य पशुवर्तिनी।

बन्धयित्री स्वमार्गस्था, **ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका**॥[२]

'सैव च **बन्धकारणम् प्रज्ञाता, ज्ञाता सा** च पुन: परापरसिद्धिप्रदा भवति पुंसाम्॥'[३] अर्थात् तन्त्र की माया—

(१) **ज्ञात** कर लिये जाने पर मुक्ति प्रदान करती है।

(२) **अज्ञात** रहने पर बन्धनग्रस्त करती है।

सांख्यप्रतिपादित प्रकृति (माया) का स्वरूप और उसका लक्ष्य

तन्त्रशास्त्र प्रतिपादित 'माया' (प्रकृति) का स्वरूप और उसका लक्ष्य

(१) सङ्घातपरार्थत्वात्, त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति, भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।
— सां. का. १७

(२) '**पुरुषस्य दर्शनार्थं, कैवल्याऽर्थं** तथा प्रधानस्य।'

(३) पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगा**न्नटवद्** व्यवतिष्ठते लिङ्गम्॥

(४) प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इवपरार्थ आरम्भ:॥५६॥

(५) वत्सविवृद्धिनिमित्तक्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्त तथा प्रवृत्ति प्रधानस्य॥५७॥

(६) औत्सुक्यनिवृत्यर्थं यथाक्रियासु प्रवर्तते लोक:।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्॥५८॥

---

१. स्पन्दकारिका (४)।
२. स्पन्दसूत्र (४८)।
३. स्पन्द सर्वस्व (भट्ट कल्लट)।

(७) **रङ्गस्य** दर्शयित्वा निवर्तते **नर्तकी** यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य निवर्तन्ते प्रकृतिः ॥५९॥

(८) नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्याऽर्थमपार्थकं चरति ॥६०॥

(९) प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टाऽस्मीतिपुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥६१॥

(१०) रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्केरूपेण ॥६३॥
एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥६४॥

(११) तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपनिवृत्ताम्।
प्रकृतिं **पश्यति** पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः ॥६५॥

(१२) दृष्टामयेत्युपेक्षक एको, दृष्टाऽहमित्युपरमत्यन्या।
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य ॥६६॥

(१३) प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥६८॥

—ईश्वरकृष्ण सांख्यकारिका

******

अध्याय-४
आत्म तत्त्व

पशु और पशुपति में अभेद है

शिव ही जगदात्मा है। आत्मा ही जीवात्मा और परमात्मा दोनों है। चाहे वह परमात्मा हो या जीवात्मा दोनों ही स्थितियों में वह शिव है।

अद्वैतवादी स्पन्द शास्त्री यह मानते हैं कि शिव चाहे अपनी '**पति**' की भूमिका में हो और चाहे '**पशु की भूमिका**' में हो किन्तु वह परमार्थतः है शिव ही। **स्पन्द शास्त्र** इसकी पुष्टि करता हुआ कहता है कि—

'यत्र स्थितमिदं सर्वं, यस्माच्च निर्गतम्।
तस्यानावृतरूपत्वान्न निरोधोऽस्ति कुत्रचित्।'

अर्थात् यदि कोई यह पूँछे कि जब निजी स्वभाव (शङ्कर) ही संसारी (जीव) बनकर संसरण-चक्र में पड़ जाता है तो उसे उस रूप में '**शिव**' कैसे कह सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस '**अभेद भूमिका' में यह निखिल विश्व 'अहंरूप' में स्थित था** और जिससे इसका आविर्भाव **अहंरूपता** से पृथक् '**इदंरूपता**' में अवभासित हुआ उस **अहं रूप सत्ता** (अहं विमर्श रूप एकाकारता) या **स्वस्वभाव** पर संसारी अवस्था में कोई आवरण नहीं पड़ा है अतः उसके स्वतन्त्र प्रसार में कोई व्यवधान नहीं है। यही कारण है कि 'पति' पशुभूमिका में भी 'शिव' ही है : '**संसार्यवस्थायामपि.....शिवत्वमुच्यते**॥'[१]

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि— उत्पलदेवाचार्य 'आत्मा' के दो रूप (या दो प्रकार या दो भेद) स्वीकार करते हुए कहते हैं कि—

''द्विधा स एष एवात्मा मितोऽपरिमितस्था।
प्राणादिना निरुद्धोऽणुः परमात्मात्वखण्डितः॥''

अर्थात् आत्मा के दो भेद हैं— (१) '**मितात्मा**' (२) '**अमितात्मा**'।

या (१) '**अणु**' (२) '**परमात्मा**'।

'**अणु**' कौन है? 'प्राणादिना निरुद्धोऽणुः।' '**परमात्मा**' कौन है? 'परमात्मात्वखण्डितः॥'	आत्मा के दो भेद

१. भट्ट कल्लट (स्पन्द वृत्ति।

आत्मा और परमात्मा में भेद— क्या '**मितात्मा**' एवं '**अमितात्मा**' दोनों भिन्न-भिन्न हैं? नहीं। संविदात्मा परमेश्वर ही विश्व रूप क्रीड़ा हेतु उत्सुक होकर स्वात्मप्रच्छादन करते हुए 'जीव' (अणु=जीवात्मा) बन जाता है— "स एव संविदात्मा परमेश्वरः स्वेच्छया विश्व क्रीडोल्लिलासयिषायां प्राणाद्यात्मतामवभास्य तत्प्रमातृत्वेन सङ्कुचितीभूय **जीवतामेति**॥"

'**परमात्मा**' कौन है? वही शुद्धात्मा जब प्राणादि से अनिरुद्ध होकर, स्वतन्त्र, पूर्ण एवं चिदात्मा रूप से अपने **अपरिमित स्वरूप में अवस्थान करता है तब वही** '**परमात्मा**' कहलाने लगता है— "प्राणाद्यनिरुद्धस्तु विश्व निर्भरितात्मतया पूर्णः स्वतन्त्रश्चिदात्मैवेति परिमिता परिमितत्वेन द्विविधत्वम्॥" —यही आत्मा का द्विविधत्व है और यही दोनों में भेदाभास है।

आत्मा की विशेषता यह है कि आत्मा के ये दोनों भेद वस्तुतः प्रकाशात्मा हैं और तत्त्वतः एक हैं तथा समस्त भावाभाव पदार्थों के विश्रान्तिस्थल हैं। चूँकि ये दोनों तत्त्वतः 'संविन्मात्रस्फुरत्तैकरूप' हैं अतः दोनों में भेद की कोई भी कल्पना अनुपपन्न हैं।[१]

परमात्मा और मितात्मा दोनों एक ही हैं किन्तु परिमित प्रमाता (जीव) विमर्शवैधुर्य (विमर्शहीनता) के कारण सिद्धि नहीं प्राप्त कर पाता और भ्रान्ति का आश्रय लेने के कारण प्राण एवं पुर्यष्टक आदि वेद्यों का प्रमाता बनकर रह जाता है परमार्थ प्रमाता (परमात्मा) नहीं बन पाता।[२]

इन सबके होने पर भी (मायिक एवं व्यवहारगत लोकयात्रा में संलग्न रहने पर भी इस मितात्मा (मितप्रमाता=संकुचितात्मा) से संकोच का अपहस्तन करने पर वह मितात्मा भी परप्रमाता रूप शिवात्मा बन जाता है या उसमें स्थित हो जाता है—

"संकुचितात्मनि तत्र मितप्रमातरि सङ्कोचापहस्तनेन पर प्रमात्रेकात्मतया शिवात्मन्येव सा तिष्ठति॥"

दोनों में भेद इसलिए नहीं है; क्योंकि स्वयं परप्रमाता परमेश्वर ही पशुभूमिका पर अवतरित होकर अणुभाव ग्रहण कर लेता है— 'शिवस्यैव स्वेच्छया समुल्लितायाः पशुभूमिकाया ग्रहणेनाणुभावाभ्युपगमात्॥'[३]

---

१. द्विविधस्याप्यस्य प्रकाशात्मनः समस्तभावाभावात्मिकानामर्थसंविदां विश्रान्त्यास्पदत्वम्। स च पौर्वापर्यानुसङ्घातृतया सविन्मात्रस्फुरत्तैकरूप एव यस्मादतो **भेदानुपपत्तिः**॥ (अजप्रमातृसिद्धि १७)।

२. न हि सिद्धोऽप्रथनादेव, ज्ञानादिसमवाय्यपि।
तत्प्राणादि प्रमेयं स्यात्र प्रमातान्यतो भ्रमात्॥ (अज. १९)

३. अजडप्रमातृसिद्धि वृत्ति (उत्पलदेव : २०)।

मितप्रमाता का सङ्कुचित जीवत्व इसलिए है; क्योंकि वह अपनी अपरिच्छिन्न शक्ति का विकास नहीं कर पा रहा है। उसकी यह विकासहीनता ही उसका जीवत्व है—

'केवलमपरिच्छिन्नस्वशक्तिविकासस्याप्रथनमेव बन्धकत्वपर्यायं जीवत्वं॥''[१]

रामकण्ठाचार्य का पूर्वपक्ष— आचार्य रामकण्ठ ने यह प्रश्न उठाया है कि जो सुर, नर, तिर्यक्, भुवन, करण आदि असंख्य रूपों में प्रविभक्त हो गया है और सुख-दुख-क्षुधा-तृष्णा-जरा-मरण के द्वन्द्वों से अनुविद्ध होकर सतत संसरण कर रहा है और जो परस्पर भिन्न है वह समानान्तर रूप में अद्भुत ऐश्वर्यवान भगवान शङ्कर से अभिन्न कैसे कहा जा सकता है? '**प्रमेय**' या 'इदम्' जीव या 'पशु' पशुपति से अभिन्न कैसे कहा जा सकता है? '**स कथं शङ्करो ममैव आत्मा**'?

आचार्य क्षेमराज उसे '**विश्वात्मा**' कहते हैं— 'शिव एवं विश्वस्य आत्मा।' 'चैतन्यम् उक्तं स एव आत्मा, स्वभावः.....भावाभावरूपस्य विश्वस्य जगतः' 'जीव-जडात्मनो विश्वस्य परमशिवरूपं चैतन्यमेव स्वभावः।'[२]

कहा भी गया है कि—

'यथा हेम्नो रूपकेषु वैचित्र्यं स्वान्नरिच्यते।
अथ नित्यस्वरूपस्य तथा ते विश्वरूपता।
यथा गलितरूपस्य हेम्नः पिण्डात्मना स्थितिः।
तथा गलितवेद्यस्य तव शुद्धचिदात्मता॥'

'**ज्ञान सम्बोध**' में भी वही बात कही गई है कि—

'विश्वस्याश्रय आकाशं न विश्वं नभसो भवेत्।
ज्ञानं नभ इवानन्तं ज्ञेयं विश्ववदल्पकम्।
आकाशस्येव वाऽन्येन प्रतिबन्धो न केनचित्।
व्यापित्वात् तद्वदस्यापि ज्ञानस्याऽप्रतिबन्धता॥'

इसी तथ्य को **आचार्य रामकण्ठ भी अपने उत्तर पक्ष में** प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि—

प्र. (१)— 'कथं पुनः स्वस्वभावस्यैव संसारिणः शिवत्वेन व्यपदेशः?'

उ. (२) इति आक्षिप्य— 'यत्र स्थितम् इदं जगत् यस्मात् च उत्पन्नम्'— इति विवृण्वता प्रतिसमाहितम्॥

---

१. अजड. वृत्ति (२१)।
२. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१)।

(३) ''संसारिणां तन्मायावभासितजात्याद्यभिमाना मायीयावस्था, तस्यामपि तस्य स्वस्वभावस्य तत्त्वतो निरोधो नास्ति इति॥''[१] 'आत्मैव शङ्कर इति॥[२]

(४) ''अस्य वक्ष्यमाणस्य तत्त्वस्य न क्वचित् कस्मिंश्चित् देशे काले आकारे अवस्थाविशेषे वा निरोधः अवच्छेदः॥''[३]

सारांश यह कि स्वर्ण किसी भी आकार में भिन्न-भिन्नरूपात्मक क्यों न हो किन्तु वह सदैव सोना ही कहलायेगा।

भट्ट कल्लट की दृष्टि

भट्ट कल्लट ने ठीक ही कहा है कि— (१) 'स्वस्वभावस्यैव संसारिणः शिवत्वेन निर्देशः।।'

(२) 'यत्र स्थितम् इदं जगत् यस्मात् च उत्पन्नं तस्य संसार्यवस्थायामपि अनाच्छादितस्वभावत्वात् न क्वचित् निरोधः अतः शिवत्वमुच्यते॥'

परमात्मा और आत्मा समस्वभाव हैं अतः वे किसी भी अवस्था, किसी भी रूप एवं किसी भी स्थिति में क्यों न रूपान्तरित, अवस्थान्तरित होते रहें किन्तु दोनों तत्त्वतः अभिन्न हैं। अतः 'अहं' और 'इदम्' तथा 'पशु' और पशुपति (भिन्न-भिन्न प्रतीयमान होते हुए भी) अभिन्न हैं।

परात्रिंशकाकार की दृष्टि

'परात्रिंशिका' में भी 'इदं' 'अहं' या 'पशु' तथा 'पशुपति' को अभिन्न कहा गया है। वे अपने शब्दों में इसे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

'यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं **जगदेतच्चराचरम्**॥'

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' (१.१.६.७) में भी यही बात इस प्रकार व्यक्त की गई है— ''तदेवं व्यवहारेऽपि प्रभुर्देहादिमाविशन् भान्तमेवान्तरर्थौघमिच्छया भासयेद् बहिः॥''

वर्तमानावभासानां भावानामभासनम्।
अन्तःस्थितवतामेव घटते बहिरात्मना॥

—ई. प्र. १.५.१

---

१. स्पन्दकारिका विवृति (१/१)।

२. रामकण्ठ।

३. परमात्मा अपनी लीला के कारण भले ही जीवत्वाभिनय कर रहा हो किन्तु वस्तुतः है तो शिव ही। अतः जीव ('पशु') एवं 'पशुपति' (शङ्कर) में कोई भेद नहीं है।

अवस्थाभेद और जीवात्मा

आत्मा अवस्थातीत है। यद्यपि परमात्मा में **'जागृति' 'स्वप्न'**, **'सुषुप्ति'** आदि भेदात्मक अवस्थायें नहीं होती किन्तु जीवात्मा में होती हैं। जीवात्मा चाहे (१) **'जाग्रत अवस्था'** में हो और चाहे (२) **'स्वप्न'** या **'सुषुप्ति'** की अवस्था में हो किन्तु उसका वेदक रूप सभी अवस्थाओं में एक ही रहता है। **अवस्थायें भिन्न भिन्न हो जाती हैं** किन्तु उनमें अन्तर्निविष्ट आत्मा सदैव **अभिन्न, एक रूप, अविचल, अपृथक्, अपरिवर्तित** एवं **अविचलस्वभाव** रहती है।

स्पन्दशास्त्र की दृष्टि— स्पन्दकारिकाकार इसी तथ्य को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

'जाग्रदादिविभेदेऽपि तदभिन्ने प्रसर्पति।
निवर्तते निजान्नैव स्वभावादुपलब्धृतः॥' (स्पन्द का. ३)

अर्थात् 'जाग्रदादिभेदे प्रथमाने न तस्य स्वरूपम् आव्रियते।'

और इस कारण— 'यस्माद् उपलब्धृरूपत्वं त्रिष्वपि पदेषु साधारणम्। न तस्य स्वरूपान्यथाभावः॥'[१]

भट्ट कल्लट कहते हैं कि— (१) जाग्रत आदि किसी भी अवस्था में आत्मा का स्वस्वरूप कभी आवरणापन्न नहीं होता।

(२) उसका वेदक स्वरूप सभी जाग्रत आदि अवस्थाओं में एक रूप ही रहता है।

(३) किसी भी स्थिति, अवस्था आदि में उसका स्वरूपान्यथाभाव नहीं हुआ करता।[२]

(४) सारांश यह कि— ''जाग्रदादिविभेदे प्रसर्पति प्रसरत्यपि सति तत् स्पन्द तत्त्वं निजादात्मीयात् स्वभावादुपलब्धृरूपात् संवित्स्वरूपान्नैव निवर्तते।'' यस्मादुपलब्धृरूपत्वं तिसृष्वप्यवस्थासु साधारणम् क्योंकि[३]—

'अवस्थास्वेव भेदोऽयं नावस्थातुः कदाचन।
यथा विषस्याङ्कुरादौ तच्छतेर्न तु भिन्नता॥'

आत्मा विकल्पज्ञानों से पृथक् है

प्रश्न उठता है कि प्राणी सोचता है कि **'मैं सुखी हूँ'** **'मैं दुःखी हूँ। 'मैं**

---

१. स्पन्दसर्वस्व।
२. स्पन्दवृत्ति।
३. स्पन्द प्रदीपिका।

अनुरक्त हूँ।'— इस स्थिति में शरीर तो सोचता नहीं केवल आत्मा सोचती है तो क्या इन संवेदनावसरों पर आत्मा संवेदनानुरूप भिन्न-भिन्न नहीं हो जाती है?

रामकण्ठाचार्य की दृष्टि— ये उपर्युक्त मानसिक अवस्थायें आत्मा की नहीं हैं अत: इनका कारक तत्त्व आत्मा नहीं है; इसलिए आत्मा सुख-दु:खादिक शरीर एवं ऐन्द्रिय धर्मों से परे है।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि— **आचार्य उत्पलदेव** कहते हैं कि संसार के समस्त प्राणियों की जो आत्मायें हैं वे तत्त्वत: पृथक्-पृथक् नहीं है प्रत्युत् वे सभी तत्त्वत: एक हैं और महेश्वररूप हैं—

'स्वात्मैव सर्वजन्तूनामेक एव महेश्वर:।
विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहित:॥'[१]

इस महेश्वररूप विराट विश्वात्मा का स्वरूप भी विश्वात्मक और विश्वातीत है और व्यष्टिभूत मितात्मा का भी पारमार्थिक स्वस्वरूप विश्वात्मक एवं विश्वातीत है। **'विश्वाहन्ता' का परामर्श** आत्मा का एकदेशीय परामर्श है; क्योंकि आत्मा विश्वातीत भी है।

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि— स्पन्दकारिकाकार का कथन है कि—

(१) अहं सुखी च दु:खी च रक्तश्चेत्यादि संविद:।
सुखाद्यवस्थानुस्यूते वर्तन्तेऽन्यत्र ता: स्फुटम्॥[२]

(२) न दु:खं न सुखं यत्र न ग्राह्यो ग्राहको न च।
न चास्ति मूढभावोऽपि तदस्ति परमार्थत:॥[३]

अर्थात् सुख, दु:ख, आसक्ति तथा ग्राहकता, ग्राह्यता एवं मूढ़भावता आत्मा के धर्म ही हैं अत: आत्मा इनसे परे है।

आत्मावस्थान की भूमियाँ

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
'अधिष्ठेयावस्था'	जाग्रत-अवस्था	स्वप्न की अवस्था	सुषुप्ति-अवस्था	तुरीय अवस्था	तुर्यातीत अवस्था

शक्तिधन एवं सर्वव्यापक **आत्मतत्त्व** (चिन्मात्रता की अवस्था)

---

१. प्र. कारिका (१/४)।
२. स्पन्दकारिका (४)।
३. स्पन्दकारिका (५)।

(१) **जाग्रत अवस्था में ज्ञेय पदार्थों का रूप धारण** करके स्थित रहा करता है। और वह

(२) **स्वप्न की अवस्था** में केवल ज्ञान (मानसिक संकल्प-विकल्पात्मक ज्ञप्ति) का रूप धारण करके रहा करता है। वह विमर्शशक्ति द्वारा सदा प्रकाशमान रहता है।

(३) वही आत्मा **तुरीय-तुरीयातीतावस्था** में केवल **चिन्मात्ररूप** में विद्यमान रहता है।

आत्मावस्थान की विभिन्न अवस्थायें

(१)	(२)	(३)
(**जाग्रत अवस्था** में) **ज्ञेय पदार्थों** का रूप धारण करके अवस्थान-ग्रहण (संवेदन का रूप= प्रमेयाकार, **ज्ञेयाकार**। (आत्मस्वरूप का असंस्पर्श) या अज्ञान की अवस्था।)	(**स्वप्नावस्था** में) ज्ञान का रूप धारण करके अवस्थान-ग्रहण (संवेदन का रूप प्रमाकार या ज्ञानाकार	(सुषुप्ति एवं **तुर्या-तुर्यातीतावस्था** में) चिन्मात्र स्वरूप में अवस्थान। **संवेदन का रूप चिद्रूपाकार**॥ (स्वरूपोपलब्धि की अवस्था) —कारिका (१८)

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि— स्पन्दकारिकाकार भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

'ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्या शक्त्या परमया युतः।
पदद्वये विभुर्भाति तदन्यत्र तु चिन्मयः॥'[१]

कारिकाकार का कथन है कि— 'मैं सुखी हूँ', 'मैं दुःखी हूँ' 'मैं अनुरक्त हूँ'— ये एवं इसी प्रकार के अन्य **विकल्पज्ञान** किसी दूसरी वेदकसत्ता के साथ सम्बद्ध हैं। वह वेदक सत्ता स्वतः इन सभी से भिन्न होने पर भी सभी में अनुस्यूत है—

'अहं सुखी च दुःखी च रक्तश्चेत्यादिसंविदः।
सुखाद्यवस्थानुस्यूते वर्तन्तेऽन्यत्र ताः स्फुटम्॥'[२]

---

१. स्पन्दकाकि (१८) सुषुप्ति की अवस्था में भी आत्मतत्त्व चिन्मात्र रूप में स्थित रहता है। सुषुप्ति से जागने पर चिन्मात्रता पर पुनः भेदव्याप्ति का आवरण पड़ जाता है।

२. स्पन्दकारिका (४)।

आत्मा परस्वभाव है— 'स स्वभाव: पर: स्मृत: ॥'

(१) जाग्रत आदि अवस्थाओं में एक ही अवस्थाता व्याप्त है।

(२) अवस्थायें आत्मा की नहीं हैं किन्तु यदि आत्मा न रहे तो ये अवस्थायें भी निर्मूल हो जायँ अत: आत्मा-भिन्न रहने पर भी सभी अवस्थाओं में आत्मा व्याप्त है।

(३) इसी प्रकार सुख:दु:खादि संवेदनायें आत्मा की नहीं है किन्तु यदि आत्मा न रहे तो इनका भी अस्तित्व नहीं रहेगा अत: आत्मा इनमें भी व्याप्त है।

'स्पन्दात्मक स्वभाव' निखिल (जाग्रत, स्वप्न आदि)

अवस्थाओं में (सूत्रमणिवत) अनुस्यूत है क्योंकि— 'जो मैं पहले सुखी था वही मैं अब दु:खी हूँ' यह अवस्थान्तर ज्ञान किसी नित्य वर्तमान वेदकसत्ता के रहने पर ही सम्भव है; क्योंकि सुखानुभूति वाली अवस्था तो परिवर्तित हो गई और दु:खानुभूति वाली नयी अवस्था आ गई फिर दो अवस्थाओं के पृथक्करण के अन्तराल में यदि कोई नित्य वर्तमान वेदक सत्ता न होती तो **विगत सुखानुभूति की अवस्था वाली स्मृति परवर्त्ती दु:खानुभूति की नयी** अवस्था में याद कैसे रहती? 'जो मैं पहले सुखी था वही मैं अब दु:खी हूँ' में सुख-दु:ख एवं उनकी अवस्थायें तो भिन्न-भिन्न हैं किन्तु अवस्थाता या वेदक सत्ता **'मैं'** एक ही है। अहं प्रतीति के रूप में एक ही वेदक सत्ता सतत परिवर्तनशील एवं क्षणस्थायी अवस्थाओं एवं संवेदनाओं के मध्य भी अद्वैत, एक अपरिवर्तनशील एवं नित्य रूप में सदा विद्यमान रहता है और यही सत्ता है आत्मा या चैतन्यरूप सर्वात्मास्वरूप शिव।

'अन्यत्र' का अर्थ है अवस्थातीत आत्मा।[१]

आत्मा ग्राहक-ग्राह्य एवं सुख-दु:ख आदि सभी से पृथक् सत्ता है

कारिकाकार का कथन है कि विश्व (१) 'ग्राह्य' एवं (२) 'ग्राहक' के रूप में अवस्थित है। 'ग्राह्य' तो आत्मा नहीं है; क्योंकि वह किसी **'ग्राहक'** सत्ता द्वारा ग्राह्य है। ऐसा प्रतीत है कि शायद ग्राहक सत्ता ('परमशिव', 'शिव', 'सदाशिव', 'ईश्वर', 'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' एवं 'सकल') ही आत्मा होगी और शिव को विश्वात्मा कहा भी गया है किन्तु तात्त्विक दृष्टि से देखें तो आत्मा न ग्राहक है और न ग्राह्य किन्तु ग्राहक-ग्राह्यभाव में सर्वत्र अनुस्यूत अवश्य है; क्योंकि उसके बिना ग्राह्य-ग्राहकभाव की संवेदना ही असम्भव हो जाती।

'स्पन्द तत्त्व' को सुख, दु:ख, ग्राह्यता, ग्राहकता, मूढ़ता आदि के भाव स्पर्श भी नहीं कर सकते। वही तत्त्व परमार्थ सत् हैं क्योंकि वह नित्य है। सुखादिक तो मानसिक संकल्प के उत्पाद्य हैं और क्षणभंगुर हैं।

---

१. स्पन्दकारिका वृत्ति।

चित् तत्त्व का यथार्थ स्वरूप **विश्वात्मक अहं विमर्श** या '**विश्वाहन्ता**' हैं। यदि हम देखें तो **अहंविमर्श** के दो रूप हैं—

(१) शुद्ध अहं विमर्श (२) अशुद्ध अहं विमर्श।

'शुद्ध अहं विमर्श' है पति प्रमाता के साथ तादात्म्य का विमर्श। सारे द्वन्द्व एवं सारे भेद अपने विरोध एवं भेद को भूल कर इसी शुद्ध अहं विमर्श में एकाकार चिद्रूपता में एकाकार होकर लयीभूत हो जाते हैं। सारी नदियाँ समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती हैं। यही है '**पतिप्रमातृभाव**'।

'**अशुद्ध अहं विमर्श**' (माया शक्ति द्वारा संकुचित 'मैं' की प्रतीति) का सम्बन्ध बंधनग्रस्त जीवों से है। यही कहलाता है— '**पशुप्रमातृभाव**'। पशुप्रमाता की अवस्था में ('चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसंकोचिनी चित्तम्' (प्र. हृ. ५)।

वही '**विशुद्ध चित्त तत्त्व**' अपने ही मितरूप 'मायाशक्ति' के द्वारा अपनी ही स्वसमवेता— '**ज्ञानशक्ति**', '**क्रियाशक्ति**' एवं '**स्वातन्त्रयशक्ति**' (माया शक्ति) को संकोच में डालकर क्रमशः— 'सतोगुण', 'रजोगुण' एवं 'तमोगुण' (माया शक्तिरूप तमस्) (बुद्धि, मन एवं अहंकार) के समष्टि रूप '**चित्त**' के रूप में रूपान्तरित हो जाता है—

''चितिरेव चेतनपदावरूढा चेत्यसंकोचिनी चित्तम्।''

आत्मा सुख, दुःख, ग्राह्य-ग्राहकभाव, मूढभाव आदि से पृथक् है—

'न दुखं न सुखं यत्र ग्राह्यो ग्राहको न च।
न चास्ति मूढभावोऽपि तदस्ति परमार्थता॥'[१]

'पशु' और 'पशुपति' में कोई तात्त्विक भेद नहीं है

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि— आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि 'अपरिच्छिन्न स्वशक्ति के विकास के अप्रथन को ही बन्धकत्व कहना चाहिए; क्योंकि वही उसका पर्याय है और यह अप्रथन ही बन्धनरूप **जीवत्व** है'—

''केवलमपरिच्छिन्नस्वशक्तिविकासस्याप्रथनमेव बन्धकत्वपर्यायं जीवत्वं।''[२]

परमात्मा ही लीलावश जीव बन जाता है, अतः तत्त्वतः दोनों में कोई भेद नहीं है।

(१) 'सङ्कुचितात्मनि तत्र मित प्रमातरि सङ्कोचापहस्तनेन परमात्रेकात्मतया शिवात्मन्येव सा तिष्ठति।

---

१. स्पन्दकारिका (५)।

२. अजडप्रमातृसिद्धि (२१)।

(२) ''शिवस्यैव स्वेच्छया समुल्लासितायाः पशुभूमिकाया ग्रहणेनाणुभावाभ्यु-पगमात्॥''[१]

(३) ''स एव संविदात्मा परमेश्वरः स्वेच्छया विश्वक्रीडोल्लिलासयिषायां प्राणाद्यात्मतामवभास्य तत्प्रमातृत्वेन सङ्कुचितीभूय जीवतामेति॥''[२]

'परमात्मा' और 'अणु' में भेद

प्रत्यभिज्ञादर्शन यह मानता है कि जीव एवं ईश्वर तत्त्वतः एक हैं। परमात्मा लीला या क्रीड़ा हेतु अपने अपरिच्छिन्न स्वरूप को परिच्छिन्न (अमित को मित) बनाकर या पारमित्य स्वीकार करके और प्राण, इन्द्रिय एवं पदार्थों को अवभासित करते हुए स्वस्वरूपाच्छादनपूर्वक जीव बन जाता है। यही दोनों में भेद है जो कि विश्वरंगमंच पर अभिनय के लिए स्वीकार किया जाता है। दोनों में भेद यह है कि—एक ही परमात्मा—

(१) पशु भूमिका में मित बन जाता है और

(२) पशुपतिभूमिका में अमित बन जाता है।

'द्विधा स एष एवात्मा मितोऽपरिमितस्तथा।
प्राणादिनानिरुद्धोऽणुः परमात्मात्वखण्डितः॥'[३]

पशु और पशुपति में (संसारी प्राणी एवं शिव में) क्या अन्तर है? इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए **आचार्य क्षेमराज** कहते हैं— ''शक्ति-दरिद्रःसंसारी।''

* जीवतत्त्व *

आत्मा का पुर्यष्टकादि-परिच्छिन्न रूप ही 'जीव' है। **'स्वच्छन्द तन्त्र'** (पटल १२/श्लोक १०३) में कहा गया है—

'स जीव इति विख्यातो येन जीवति तत्पुरम्।
निर्गतेन मृता येन अचेताः शीर्यते तनुः॥ (१०६)
बध्यते मुच्यतेऽसौ वै सुखदुःखानि वेत्ति च।
न तस्य रूपं वर्णो वा प्रमाणं दृश्यते क्वचित्॥
न शक्यः कथितुं वापि सूक्ष्माश्चानन्तविग्रहः।
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य तु॥

---

१. अजडप्रमातृसिद्धि (२०।
२. अजडप्रमातृसिद्धि-वृत्ति (४)।
३. अजडप्रमातृसिद्धि (१६)।

तस्य सूक्ष्मतरो **जीवः** स चानन्त्याय कल्पते।
आदित्यवर्णं रुक्माभममबिन्दुमिव पुष्करे।
पश्यन्ति तारकमिव योगिनो दिव्यचक्षुषा।
रागविद्याकलोपेतः कालबद्धो हि रूपवान्।
श्यामवर्णेन विज्ञेया स्थिता जीवस्य देवता॥
दक्षिणेन सिताङ्गी तु वामेनासित रूपिणी॥
तद्वर्णान् च वक्राणि मण्डलानि विशेषतः।
कर्मबन्धेन बध्नाति सुखदुःखं प्रयच्छति॥

—स्वच्छन्दतन्त्र

आत्मा, परमात्मा एवं जीव में तात्त्विक रूप से कोई भेद नहीं है।

आत्मतत्त्व ही जीव है। उपाधिवश आत्मा को ही जीवात्मा कहा जाता है।

स्पन्द शास्त्रों में— "तेन शब्दार्थ चिन्तासु न सावस्थान यः शिवः" कहकर सभी को शिव कहा गया है। जीव सर्वमय है—

"यस्मात् सर्वमयो **जीवः** सर्वभावसमुद्भवात्।
तत्संवेदनरूपेण तादात्म्य प्रतिपत्ततः॥२८॥ (स्पन्दकारिका)

अर्थात् 'स्पन्दशास्त्र' के अनुसार **पशुप्रमाता (जीव) सर्वमय ही है; क्योंकि वह भी पतिप्रमाता की भाँति संसार के निखिल** (घट-पट आदि) भावों के साथ संवेदनात्मक तादात्म्य प्राप्त करके उनकी **सर्जना करता रहता है**— अतः समस्त वाचकों एवं वाच्य पदार्थों की संवेदनाओं की कोई भी ऐसी अवस्था नहीं है जो शिव रूप नहीं है। **प्रत्येक स्थान पर भोक्ता (आत्मा) ही भोग्य (प्रमेय) पदार्थों के रूप में उल्लसित हो रहा है।**

'पुर्यष्टक' ही संसरण का कारण है

"पुर्यष्टकेन संरुद्धस्तदुत्थं प्रत्ययोद्भवम्" (स्पन्द का.) **'जीव'** परवश बनकर सांसारिक भोगों को भोगता है और **'पुर्यष्टक'** की विद्यमानता के कारण संसरण करता रहता है—

'भुंक्ते पर वशो भोगं तद्भावात् संसरत्यतः।
संसृतिप्रलयस्यास्य कारणं संप्रचक्ष्महे॥५०॥
यदात्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोदयौ।
नियच्छन् भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत्॥५१॥

अर्थात् जब साधक स्थूल-सूक्ष्म पुर्यष्टकों में से किसी एक में अवस्थित होता हुआ ही चित्त को लीन करके, अन्तःबहिः एकाकार स्पन्दतत्त्व की अनुभूति प्राप्त कर लेता है तब वह स्वातन्त्र्यपूर्वक प्रत्ययोद्भव के, सृष्टि-संहार को सम्पन्न करता हुआ भोक्ता बनकर आन्तर शक्तिचक्र का स्वामी या '**चक्रेश्वर**' बन जाता है। भट्ट कल्लट कहते हैं कि ''**ततः चक्रेश्वरो भवेत् सर्वाधिपतिर्भवति**'' (स्पन्द वृत्ति)। शिव अपनी शक्ति के द्वारा उद्भासित पुर्यष्टक का दास बन जाता है और इसी परवशता के कारण 'पशुपति' से '**पशु**' बन जाता है।

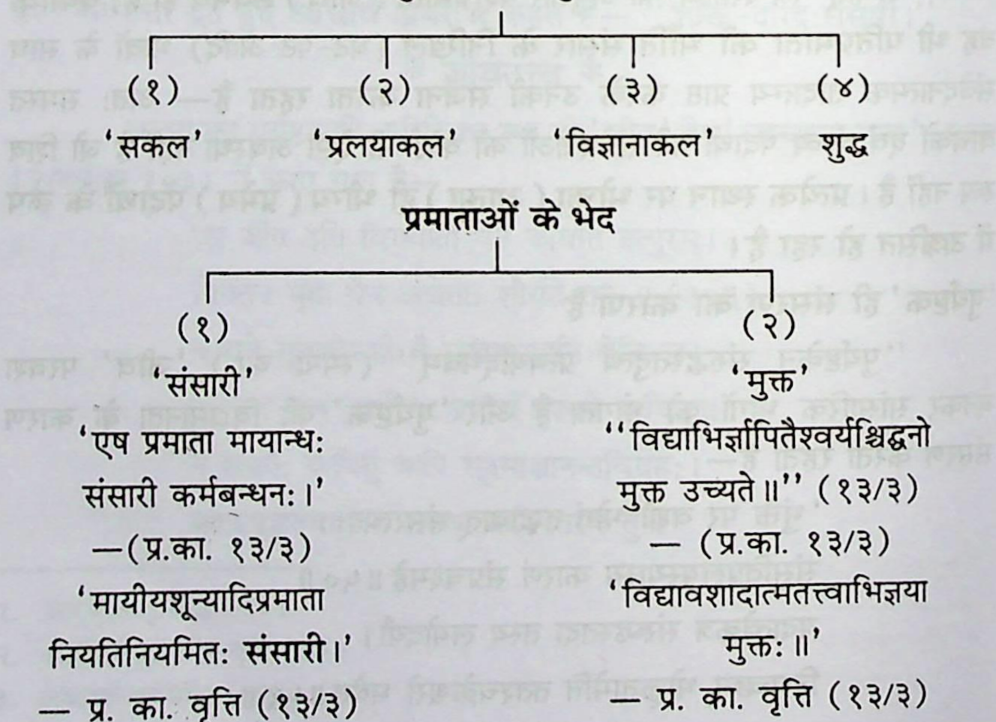
पशुभाव में निमग्न मितप्रमाता तन्मात्रों के स्वरूप वाले सूक्ष्म एवं उनके कार्यरूप स्थूल तथा मन, बुद्धि एवं अहंकार द्वारा परामृष्ट 'पुर्यष्टक' के बन्धन में पड़ गया है। पुर्यष्टक से ही 'प्रत्ययोद्भव' (विकल्प परम्परा का आविर्भाव) हुआ करता है—

'तन्मात्रोदयरूपेण मनोऽहं बुद्धिवर्तिना।
पुर्यष्टकेन संरुद्धस्तदुत्थं प्रत्ययोद्भवम्॥' (४९)

'प्रत्यय' (सुखदुःखादि के संवेदन) से ही मितप्रमाता संसारी अवस्था में पड़ा हुआ है।

आत्मा के भेद या प्रकार— 'आत्मा चतुर्विधो ह्येषः॥'

''सकलप्रलयाकालविज्ञानाकलशुद्धलक्षणैः चतुर्भिः भेदैर्भिन्नः॥'' जयरथः विवेक।



'पशु' कौन है और 'पशुपति' कौन है?

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि जिसका 'अहं' क्षुद्राकारित है वह 'पशु' है और जिसका असीम और अनन्त है— जिसका अहं 'विश्वोऽहं' के विराट आकार का है वह '**पशुपति**' है अर्थात्—

(१) देह, अन्तःकरण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि एवं अन्य जड़ प्रमेयों में तादात्म्य-भावापन्न क्षुद्र 'अहं' '**पशु**'।

(२) मायातो भेदिषु क्लेश कर्मादिकलुषः **पशुः**॥ (प्र. का. १४/३)

'पुंस्त्वावस्थायां तु रागादिक्लेश कर्मविपाकाशयैः परीतः **पशुः**॥' (प्र. का. वृत्ति (१४/३)।

(१) विश्व, वैश्विक शक्ति चक्र, परा शक्ति ३६ तत्त्व से तादात्म्यभावापन्न असीम अहं='**पशुपति**'॥

(२) समस्त विश्व को अपने शरीर का अङ्ग मानने वाला प्रमाता ही 'पशुपति' है।

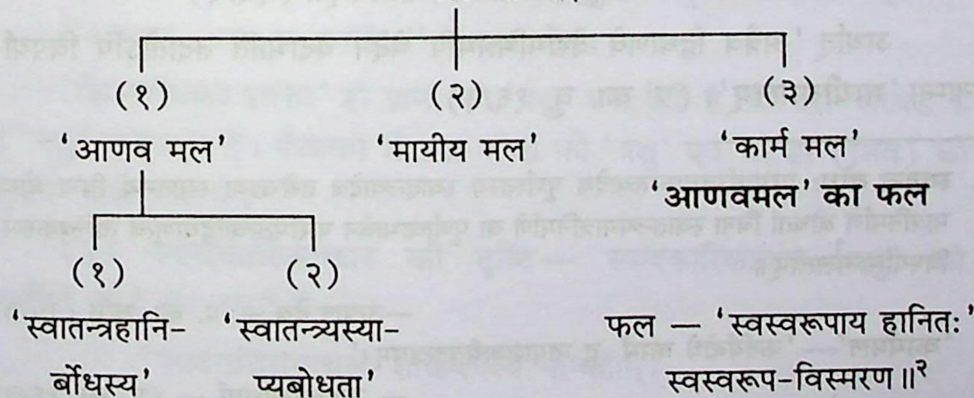
'स्वाङ्गरूपेषु भावेषु प्रमाता कथ्यते पतिः' (प्र. का. १४)।

'ऐश्वर्यदशायां प्रमाता, विश्वं शरीरतया पश्यन् पतिः॥'

— प्र. का. वृत्ति (१४/३)

प्रश्न— '**पशुपति**' को '**पशु**' बनाता कौन है?

उत्तर— ३ मल ही पशुत्व के स्तम्भ हैं। ये ही पशुपति को 'पशु' बना देते हैं।



१. प्रत्यभिज्ञा कारिका (उत्पलदेव)।

२. उत्पलदेव (प्र. कारिका)।

'द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः॥' (प्र. का. १५/३)

प्रश्न— इन मलों के कारण क्या हैं?

उत्तर— ५ 'कञ्चुक' ही मलों के कारण हैं।

प्रश्न— ५ 'कञ्चुक' के कारण क्या हैं?

उत्तर— आत्मा में अनात्मा एवं अनात्मा में आत्मा का बोध ही कञ्चुकों का कारण है जो कि अज्ञान है।

प्रश्न— अज्ञान क्या है?

उत्तर— परतत्त्व एवं स्वस्वरूप का (रहस्यात्मक) अवबोध न होना ही 'अज्ञान' है और यह अज्ञान ही शक्ति या तत्त्व रूप ग्रहण करने पर **'माया'** या **'मायाशक्ति'** कहलाते हैं।

प्रश्न— 'माया' क्या है? मलत्रयनिर्माण की परमेश्वरेच्छा ही मायाशक्ति है।

उत्तर— भिन्नवेद्यप्रथा ही 'माया' है। यह 'माया' ही जन्म-मरण एवं संसरण का कारण है और यही **'आणवमल'** का भी कारक है।

'भिन्नवेद्यप्रथात्रैव मायाख्यं जन्मभोगदम्॥'

आणवमल— 'स्वातन्त्र्य हानिर्बोधस्य, स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।

द्विधाणवं मलमिदम् स्वस्वरूपापहानितः॥ (१५/३)[१]

मायीय मल— उत्पलदेवाचार्य कहते हैं—

भिन्नवेद्यप्रथात्रैव मायाख्यं जन्मभोगदम्।

कर्तर्यबोधे कार्मं तु मायाशक्त्यैव तत्त्रयम्॥ (१६/३)

अर्थात् 'अत्रैव द्विधाणवे वेद्यमभिन्नमपि भेदेन यदाभाति तदातोऽपि विपर्यासनाम्ना **'मायीयमलम्'**। (प्र. का. वृ. १६/३)

---

१. **स्वतन्त्र बोधः** परमार्थस्तथारूपत्वादेव पूर्णस्तस्य स्वातन्त्र्यादेव तथेच्छया स्वातन्त्र्यं बिना बोधमात्रनिर्माणे बोधतां बिना स्वातन्त्र्यमात्रनिर्माणे वा पूर्णत्वाभावेन परिमितत्वाद्द्विधाणुत्वं तात्त्विकरूपविपर्यासान्मलत्वम्॥

—उत्पल देव — प्र. का. वृत्ति (१५/३)

'कार्ममल'— 'कर्तर्यबोधे **कार्मं** तु मायाशक्त्यैवतत्त्रयम्।'

— उत्पलदेवाचार्य — (प्र. का. १६/३)

'कार्ममल' एवं **'मायामल'**

'बोधानामपि कर्तृत्वजुषां कार्ममलक्षतौ।

भिन्नवेद्यजुषां माया मलं विद्येश्वराश्च ते॥' (प्र. का, २०/३)

'तन्मलत्रयनिर्माणे प्रभोरिच्छा **मायाशक्तिरुच्यते**॥' (प्र. का. १६/३)

'मायाशक्ति'— मलत्रय ('आणव', 'मायीय' एवं 'कार्ममल')

'ईश्वरेच्छा'— मायाशक्ति— मलत्रय का आविर्भाव॥

'मायाशक्ति'— 'तन्मलत्रय निर्माणे **प्रभो**रिच्छा **मायाशक्ति**रुच्यते।'

—प्र. का. वृत्ति (१६/३)

अर्थात् कर्तृत्वयोगेऽपि बोधानां कार्मोत्तीर्णानां विद्येश्वराख्यानां भिन्नवेद्यभाक्त्वेन **'मायामलम्'**।

"देवादीनां च सर्वेषां भविनां त्रिविधं मलम्।
तत्रापि कार्ममेवैकं मुख्यं संसारकारणम्॥" —कहकर

उत्पलदेव कहते हैं कि संसार का मुख्य कारण तो **'कार्ममल'** ही है।

* 'पशु' (जीव) *

'पशु' की पभिाषा क्या है?

(१) एक ग्रन्थकार का कथन है—

"भेदग्रन्थिविभेदे हि कर्मात्मैक्यं प्रपद्यते।
सोऽविज्ञातः 'पशुः' प्रोक्तो विज्ञातः पतिरेवसः॥"[१]

(२) **उत्पलाचार्य की परिभाषा**— आचार्य उत्पल 'स्पन्द प्रदीपिका' में 'पशु' को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

"ब्राह्मयादिशक्तिचक्रस्य कलाभिः ककाराद्यक्षरैर्विलुप्तविभवो हृतमहाव्याप्तिः स्वभावात् प्रच्यावितोऽत एवास्य भोग्यतां गतः सन् पुरुषः **पशुरुच्यते** अज्ञत्वात्॥"

"अप्रबुद्धः पशुः स हन्यते॥" —उत्पलदेव।

'क्रियात्मिका शक्ति' ही प्राणी को 'पशु' बना देती है जो पाश-परिबद्ध है वही 'पशु' कहलाता है। शैवागम में बद्ध जीवों को 'प्रशु' एवं महेश्वर (शिव) को 'पशुपति' कहा गया है।

(३) **स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि**— स्पन्दकारिकाकार 'पशु' को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

'शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स पशुः स्मृतः॥'

---

१. स्पन्द प्रदीपिका में उद्धृत।

(४) **भट्ट कल्लट की परिभाषा**— वृत्तिकार कहते हैं कि '**ब्राह्म्यादीनां** कलाभिः ककाराद्यक्षरैर्विलुप्तविभवः स्वस्वभावात् प्रच्यावितः पशुरुच्यते॥'

(५) **उत्पलदेवाचार्य की परिभाषा**— आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

''स्वाङ्गरूपेषु भावेषु प्रमाता कथ्यते पतिः।
माया तो भेदिषु क्लेश कर्मादिकलुषः पशुः॥''

अर्थात् ऐश्वर्यदशायां प्रमाता विश्वं शरीरतया पश्यन् पतिः पुंस्त्वावस्थायां तु रागादिक्लेशकर्मविपाकाशयैः परीतः पशुः॥ —उत्पलदेवाचार्य —प्र. कारिकावृत्ति

'पशु' और 'शिव' में भेद— स्वतन्त्रानन्दनाथ की दृष्टि

स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं कि—

(१) चैत्य से आवृत चित् '**पशु**' है।

चैत्य के आक्रमण से शिव अपनी शक्ति से वञ्चित होकर दैन्यभाव प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत जब 'चित्' चैत्य को आवृत कर लेता है तब '**चैत्य**' शिवस्वरूप हो जाता है—

'चैत्यावृता भवति चित्**पशुरेष**चैत्य
मावृण्वती चिदपि याति शिव प्रसिद्धिम्॥'[१]

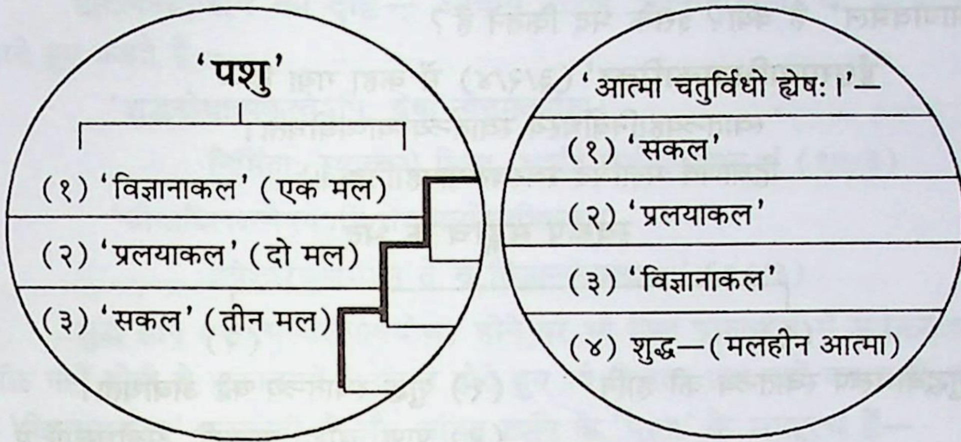
शिवानन्द कहते हैं— ''चैत्यावृता चित् एष **पशुर्भवति** एष इति पुरो निर्देशेन स्वशक्ति प्रमोष परिप्राप्तं दीनभावं निर्दर्शयति। अथ चैत्यमावृण्वती व्याप्नुवती चित् 'शिव' इति प्रसिद्धिं याति॥''[२]

'जीव' वे ही हैं जो पाश-परिबद्ध हैं। पाश तीन हैं— (१) '**मल**' (२) '**कर्म**' एवं (३) '**माया**'। इन सभी में शैवी-शक्तियाँ-सर्वज्ञत्व, 'सर्वकर्तृत्व' तृप्ति, व्यापकत्व, नित्यत्व आदि पञ्च कञ्चुकों के कारण परिमित हो गई है। 'पारमित्य' जीव का प्रधान लक्षण है। जो पञ्चुकाविष्ट है वही '**पशु**' है जो मलावृत है वही '**संसारी**' है।

'**सकल**'— जिन आत्माओं में तीन मल विद्यमान हैं उन्हें 'सकल' आत्मा कहते हैं। 'पशु' (जीव) तीन प्रकार के हैं—

विवेककार कहते हैं— ''आत्मा चतुर्विधो ह्येषः। सकल प्रलयाकल विज्ञानाकल शुद्ध 'सकल प्रलयाकल विज्ञानाकल शुद्ध लक्षणैः चतुर्भिः भेदैर्भिन्नः॥ (विवेक)॥

१. मातृकाचक्र विवेक (१३/३)।
२. शिवानन्द : मा. च. विवेक (१३/१)।



पशुओं के भेद— पशुओं के तीन भेद हैं—

"पशवस्त्रिविधा ज्ञेयाः **सकलः प्रलयाकलः**।
विज्ञानाकल इत्येषा सृणुध्वं लक्षणं क्रमात्॥"[१]

श्रीमत् पौष्कर की दृष्टि— श्रीमत् पौष्कर के अनुसार पशुओं के लक्षण एवं उनकी परिभाषा इस प्रकार है—

(१) 'सकल'— मलोपरुद्धदृक्छक्तिस्तत्प्रसृत्यै कलादिमान् भोगाय कर्मसम्बन्धः **'सकलः'** परिपठ्यते॥

(२) 'प्रलयाकल'— प्रागवन्निरुद्ध दृक्च्छक्तिः कर्मपाशकात्कलोज्झितः कर्मणैष्यत्कला योग्यो यस्स च **'प्रलयाकलः'**।

(३) 'विज्ञानाकल'— मलोपरुद्धशक्तित्वाच्छून्यकल्पस्वदृक्क्रियः।
तृतीयः पठ्यते तन्त्रे नाम्ना विज्ञानकेवलः॥[२]

'सकल'— 'सकल' नामक पशुओं का अवस्थान अशुद्धमाया माया के अधोभाग में **अशुद्धाध्वा** में है—

'तत्र सकलानामवस्थानमशुद्धमायाधोभागेऽशुद्धाध्वनि॥'

'प्रलयाकल'— 'प्रलयाकल' नाम पशुओं का निवास अशुद्ध माया के मध्यभूत**मिश्राध्वा** में है।[३]

'विज्ञानकेवल' एवं 'आणवमल'

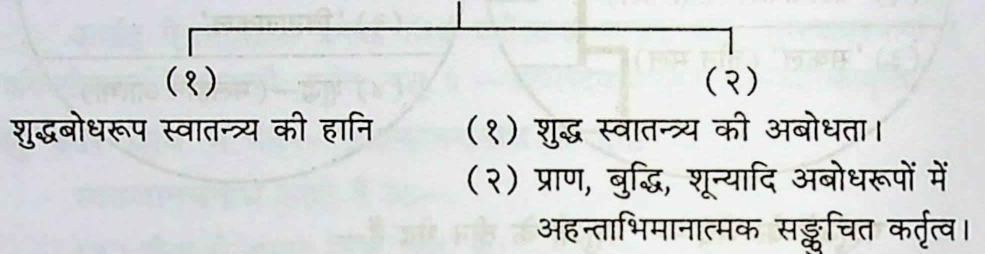
यदि 'विज्ञान केवल' में आणवमल न होता तो वे 'परमेश्वर' कहलाते। यह

१. शैव परिभाषा (श्रीमत्पौष्कर)।
२. पौष्कर. पशु. प. श्लोक (२-५)।
३. 'प्रलयाकलानां तु अशुद्धमायामध्यभूतमिश्राध्वनि॥' —शैव परिभाषा (तृ. परिच्छेद)।

'आणवमल' है क्या? इसके भेद कितने हैं?

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' (३/२/४) में कहा गया है—

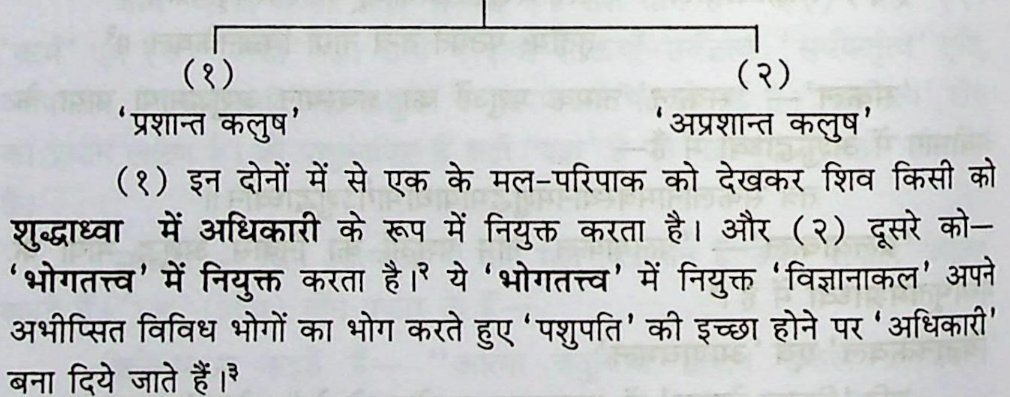
'स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः॥'



स्पन्दनिर्णयकार की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज की वेदान्तियों के **ब्रह्म** को जड़रूप एवं विज्ञानब्रह्म रूप **'विज्ञानाकल'** मानते हैं— ''ऐश्वर्यात्मक विमर्शशून्य-प्रकाशमात्रतत्त्वो ब्रह्मरूपोऽपि यत्र नास्ति यच्छ्रुत्यन्तविदः प्रतिपन्नाः 'विज्ञानंब्रह्म' इति, तस्यापि स्वातन्त्र्यात्मक स्पन्दशक्तिं विना **जडत्वात्**॥''

शिवाग्रयोगीन्द्रज्ञानशिवाचार्य की दृष्टि— 'शैव परिभाषा' में शिवाग्र-योगीन्द्रज्ञानशिवाचार्य कहते हैं कि—

(१) 'विज्ञानकेवल' दो प्रकार के होते हैं। इनमें मल-परिपाक का भेद होता है।



(१) इन दोनों में से एक के मल-परिपाक को देखकर शिव किसी को **शुद्धाध्वा में अधिकारी** के रूप में नियुक्त करता है। और (२) दूसरे को— **'भोगतत्त्व' में नियुक्त** करता है।[2] ये **'भोगतत्त्व'** में नियुक्त 'विज्ञानाकल' अपने अभीप्सित विविध भोगों का भोग करते हुए 'पशुपति' की इच्छा होने पर 'अधिकारी' बना दिये जाते हैं।[3]

---

१. 'विज्ञानकेवलाश्च प्रशान्तकलुषा अप्रशान्तकलुषाश्चेति द्विविधाः॥ (शैव परिभाषा : द्वि. परिच्छेद)।

२. शैव परिभाषा।

३. ''तत्र योजिताश्च तेऽभीप्सितविविधभोगान् भुञ्जानाः पत्युरिच्छयाऽधिकारेषु प्रवर्तन्ते॥''
— शैव परिभाषा

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि— आचार्य उत्पल '**विज्ञानाकल**' को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

'शुद्धबोधात्मकत्वेऽपि, येषां नोत्तमकर्तृता।

निर्मिताः स्वात्मनो भिन्ना, भर्त्राते कर्तृतात्ययात्॥' (१७/३)

'बोधादिलक्षणैक्येऽपि तेषामन्योन्यभिन्नता।

तत्रेश्वरेच्छाभेदेन ते च विज्ञानकेवलाः॥' (१८/३)

शुद्ध ज्ञान (आत्मस्वरूपावबोध) होने पर भी जिन प्रमाताओं में सर्वकर्तृत्व-शक्ति नहीं होती वे मुक्तात्मायें मायोपरि होते हुए भी शिवत्व प्राप्त नहीं कर पातीं और वे '**विज्ञानाकल**' कहलाती हैं और सांख्य दर्शन के 'पुरुष' के समतुल्य हैं—

(१) 'वेद्यानुपरक्तबोधानामपि पूर्णकर्तृत्वशून्यात् स्वरूपाद् न्यत्वेन प्रभुणा निर्माणम्।'

(२) 'शुद्धबोधानां बोधत्वनित्यत्वाद्यभेदेऽप्यन्योन्यभेदस्तथैवेश्वरेण निर्माणान्नान्यथा ते च सांख्य पुरुषाया **विज्ञानकला** उच्यन्ते॥'[१]

शिवाग्र योगीन्द्र ज्ञानशिवाचार्य की दृष्टि

(१) '**शिव**'— इसी शिव तत्त्व में '**सूक्ष्मा**' नाम की वाग्वृत्ति अवस्थित है। यहीं पर शान्यतीत भुवनों की अवस्थिति है। ('शैव परिभाषा')

(२) '**शक्ति**'— शिवतत्त्व का विकार ही शक्ति तत्त्व है—

'शिवतत्त्वविकारः शक्तितत्त्वम्।'[२]

यह शक्ति ही पश्यन्ती आदि वाणियों का (वाग्वृत्तियों का) एवं निवृत्यादि कलाओं का अवस्थान है।

(३) '**सदाशिव**'— शक्ति तत्त्व का विकार ही '**सदाशिवतत्त्व**' है।

'शक्ति तत्त्व विकारः सदाशिवतत्त्वम्॥'[३]

यह '**मध्यमा वाक्**' का अधिष्ठान है।

यह कामिकादि तन्त्रभेद के कारणभूत तत्त्व प्रणवादिक, सामीप्यादिमुक्ति प्राप्त आत्माओं का तनुभुवनाधिकरण है।

(४) '**ईश्वरतत्त्व**'— सदाशिव तत्त्व का विकार ही ईश्वर तत्त्व है—

---

१. प्र. का. (१८/३)।

२. शैव परिभाषा।

३. शैव परिभाषा (परि. ४)।

'सदाशिवतत्त्वविकार ईश्वर तत्त्वम्'[१]

यह अनन्तेशादि एवं तदाराधना द्वारा तत्प्राप्त रुद्राणुओं का तनुभवनाधिकण है। **शिवतत्त्व** शान्त्यतीता का आधार है।[२]

'विद्या तत्त्व'— ईश्वरतत्त्व का विकार विद्यातत्त्व है—

'ईश्वरतत्त्व विकारो **विद्यातत्त्वम्**'॥

यह विद्या तत्त्व ही वैखरी नामक वाग्वृत्ति का अधिष्ठान है और इसके अतिरिक्त यह कारणभूत सप्तकोटि **'मन्त्रों'** एवं तनुभुवनादिकों का सम्पादक और अधिष्ठान है।

'मृगेन्द्रागम' भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।[३]

(१) **'शिवतत्त्व'**— ज्ञानमात्रयुक्त एवं परमात्माधिष्ठित तत्त्व ही 'शिवतत्त्व' है— ''ज्ञानमात्रयुक्तेन परमात्मनाधिष्ठितं तत्त्वं शिवतत्त्वम्॥''

(२) **'शक्तितत्त्व'**— जो क्रियामात्रयुक्त हो उसे शक्तितत्त्व कहते हैं— 'क्रियामात्र युक्तेनाधिष्ठितं **शक्तितत्त्वम्**'।

(३) **'सदाशिवतत्त्व'**— समप्रवृत्तोभयो से अधिष्ठित तत्त्व ही सदाशिव तत्त्व है— 'समप्रवृत्तोभयवताधिष्ठितं **'सदाशिवतत्त्वम्'**।

---

१. शैव परिभाषा (परि. ४)।

२. पञ्चतत्त्वानि लोकांश्च मन्त्रादीनसृजच्छिवः। शान्त्यतीता पुराधारं शिवतत्त्वं पुराङ्भवत्।
—'शैव परिभाषा' में उद्धृत

३. भृगुणी ब्राह्मवेताली स्थाणुमत्यम्बिका परा।
रूपिणी नन्दिनी ज्वाला सप्त सप्तार्बुदेश्वराः॥
विद्याराज्यः समाख्याता विद्यायां रुद्रसंस्तुताः।
तासामुपरि दीप्तश्रीर्देवो विद्याधिपः स्थितः॥
मन्त्रेशेशचिदाविष्टरुद्रव्यूहाष्टकानुगः।
उच्छुष्माश्चम्बराश्चण्डा महावीर्यपदद्रुगाः।
रुद्रा गणाश्च दिक्पालाः शास्त्राणि पतयः स्थिताः।
ते चानन्तप्रभृतयो गदिता एव नामतः।
स्वरूपतश्च ते विप्राः पूर्वं प्रश्नानुषङ्गतः।
सदाशिवे पवित्राङ्गः सकलादिपरिच्छिदः।
देवः **सदाशिवो** बिन्दौ निवृत्यादि कलेश्वराः।
नादे ध्वनिः पतिः शक्तौ सर्वशक्तिमतां वरः।
योनिर्विश्वस्य वागीशा पतयः परतः शिवः॥
— (मृ. प्र. १३ श्लोक १५७-१६२)

(४) **'ईश्वर तत्त्व'**— अधिक क्रियावालों से अधिष्ठित तत्त्व 'ईश्वर तत्त्व' है— 'अधिकक्रियावताधिष्ठितमीश्वरम्॥'

(५) **'विद्या तत्त्व'**— अधिक ज्ञानवानों से अधिष्ठित तत्त्व विद्या तत्त्व है— 'अधिकज्ञानवताधिष्ठितं विद्यातत्त्वमिति॥'[१]

—योगीन्द्रज्ञानशिवाचार्य — 'शैव परिभाषा'

'विज्ञानाकल'— विज्ञानकेवली अशुद्धमाया के ऊर्ध्ववर्ती प्रदेश में— माया के ऊपर— शुद्धविद्याभाग में है।

'विज्ञानकेवलानामशुद्धमायोपरि शुद्धविद्याधोभागे॥'

'मायादावुदरे चान्ते क्रमेणैषां व्यवस्थितिः।
अवस्थानं च बन्धेन लक्ष्यतेऽणोविभुत्वतः॥'[२]

प्रश्न— विज्ञानकेवल भी मलावृत हैं फिर वे माया के अन्त में एक देश में अवस्थित क्यों कहे गए हैं?

(१) 'विज्ञानकेवल' मायोपरि होते हैं।

(२) इनमें केवल एक मल (आणव मल) मात्र होता है।

(३) इनका बन्धन **'माया' पाश** एवं **'कर्म' पाश** नहीं होते केवल **'मल' नामक पाश** होता है—

प्रश्न— 'विज्ञानकेवलाणूनां बन्धस्तु मल एव हि
मलस्य व्यापकत्वेन मायान्ते संस्थितिः कथम्?

ईश्वर ने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि—

'भद्रं विप्रा महाप्राज्ञा शुद्धाध्वा यः पुरोदितः।
भोक्ष्यमाणतया तस्य भुक्तत्वेनेतररस्य च॥
अर्थादेव स्थिता मध्ये प्रोक्ता विज्ञानकेवलाः।
विज्ञानकेवलाः साक्षात्त एव मुनिपुङ्गवाः।
शुद्धाध्ववर्तिनः पश्चाद्भविष्यन्ति शिवेच्छया।
अणोर्नियामकत्वेन मायावच्छुद्धवर्त्मनः।

---

१. कतिपय ग्रन्थकार शिवादिपञ्चक को भी साक्षात् 'बिन्दु-कार्य' ही मानते हैं। यह शिवतत्त्वादिक समूह बिन्द्वादिविशिष्ट शिव का वृत्तिरूप कार्य है न कि परिणाम। यहाँ 'आरम्भवाद' मान्य नहीं हैं। —शैव परिभाषा

२. पौ. पशु. प. श्लोक (६)।

तद्धर्तिनो न सकला: किं तु विज्ञाकेवला:।
अधिकार मलोपेता: शिवेच्छानुमता: सदा॥'[१]

प्रश्न— विज्ञानकेवल में माया एवं कर्म का अभाव क्यों पाया जाता है?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि—

'विज्ञानकेवलानां तु सिद्धयै युक्तिरिहोच्यते।
कलातत्त्वान्तरोधिन्या दीक्षया ज्ञानतोऽपि वा॥
योगेन भोगतोवाथ सन्न्यासाद्वा परिक्षये।
कर्माणां तु तदायत्तमायायाश्च परिक्षयात्।
मल एकोऽवशिष्टः स्यात्तस्माद्विज्ञानकेवला:।
बौद्धादिदृष्टिमुक्तानां कैवल्यमपि नेष्यते।
यतस्तद्बुधितत्त्वोर्ध्वकर्मणामपरिक्षय:।
सकला एव ते ज्ञेया: कलायोगो यत: स्थित:॥
एवमेवाणवो युक्तिसिद्धा: **प्रलयकेवला**:।
तत्त्वानामुपसंहारे प्रलयात्कर्मणोऽथ वा।
त्यक्तसूक्ष्मबहिर्देहा एष्यद्धोगनिबन्धनै:।
अपक्वै: कर्मभिर्युक्ता इष्यन्तां प्रलयाकला:।
सकलास्तु कालयोगात् सूक्ष्मा स्थूला च सा द्विधा।
प्रतिपुनियतं तत्त्वं कलाद्यवनिपश्चिमम्॥'[२]

विज्ञानाकल— परमेश्वर में (१) 'शुद्धबोध' एवं (२) 'शुद्ध कर्तृत्व' दोनों होते हैं किन्तु **विज्ञानाकलों** में **शुद्धबोध** तो होता है किन्तु **स्वातन्त्र्यरूप सर्वकर्तृत्व** की शक्ति नहीं होती अत: उनमें '**स्वातन्त्र्य हानि**' रहती है—

'शुद्धबोधात्मकत्वेऽपि येषां नोत्तमकर्तृता।
निर्मिता: स्वात्मनो भिन्ना भर्त्रा ते कर्तृताव्ययात्॥'[३]

ये प्रमाता 'स्वातन्त्र्य शक्ति' से हीन होते हैं। ये शरीर से शून्य पर्यन्त समस्त प्रमाताओं से उत्तीर्ण एवं उच्चतर होते हैं। इन सभी प्रमाताओं (विज्ञानकेवलियों) में **बोधत्व, नित्यत्व** एवं **विभुत्व** आदि धर्मों की समानता तो होती है किन्तु 'मैं भेद से निर्भासित होऊँ''— इस प्रकार की परमेश्वरेच्छा से ये परस्पर भेदयुक्त रहते हैं।

---

१. पौ.प. शु. प. (श्लोक ७-११)।
२. पौ. पशु. प. (श्लोक १२-१८)।
३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा (३/२/६)।

ये बोधरूप होकर भी परस्पर एवं परमेश्वर से भिन्न-भिन्न रहते हैं। ये केवल **'आणवमल'** से सम्बद्ध रहते हैं। इनमें एवं परमेश्वर में भेद केवल 'स्वातन्त्र्य' को लेकर है।[१]

भेदावभास एवं 'विज्ञानकेवल'— **'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी'** में कहा गया है—

''व्यापकनित्यबोधस्वभावोऽपि 'अहं भेदेन निर्भासे' इत्येवं भूतेनेश्वरेच्छा-विशेषेण तेषां शरीरादिशून्यान्तप्रमातृपदोत्तीर्णानां बोधत्व-नित्यत्व-विभुत्वादिधर्मजात-स्यैक्येऽप्यन्योन्यं भेदः, ते च शास्त्रे 'विज्ञानकेवलाः' उक्ताः। तत्र विज्ञानकेवलो मलैकयुक्तः॥''

वेदान्त का 'ब्रह्म' एवं शैवशास्त्र के 'विज्ञानकेवल'

शैवागम-वेत्ता यही कहते हैं कि कर्तृत्वशून्य एवं केवलशुद्धबोधरूप परमात्मा को 'विज्ञानं ब्रह्म' कहने वाले वेदान्तियों का ब्रह्म यही शैवागम का पशु **'विज्ञान-केवली'** है। यह ब्रह्म कर्तृत्वहीन होने के कारण स्फटिकवत् जड़ है।

प्रलयाकल

अबोधरूप शून्य, बुद्धि आदि अनात्म पदार्थों में ही अहंभाव से कर्तृत्वाभिमान रखने वाले प्रमाताओं को **'प्रलयाकल'** कहते हैं। 'प्रलयाकलगण' अपने शुद्धस्वातन्त्र्य को विस्मृत करके प्राण, बुद्धि, मन, शून्य आदि अनात्म पदार्थों में अहन्ताभिनिवेश की अनुभूति करते हैं अतः इनका कर्तृत्व सङ्कुचित हो जाता है।

प्रलयाकलों में **'आणवमल'** के दोनों भेद विद्यमान हैं— जो इस प्रकार हैं (१) **'स्वातन्त्र्य की अबोधता'** (२) बोधरूपता के स्थान पर **अबोधरूपता में अहन्ताभिमान** के साथ (३) **'कार्ममल'**।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकार की दृष्टि— ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकार ने प्रलयाकलों को इस प्रकार परिभाषित किया है—

'शून्याद्यबोधरूपास्तुकर्तारः प्रलयाकलाः।
तेषां कार्मो मलोऽप्यस्ति मायीयस्तु विकल्पितः॥'[२]

जब तक प्रलय का काल रहता है उस अवधि तक **'प्रलयाकल'** रूप अबोधरूपकर्ता मुक्तवत् रहते हैं किन्तु प्रलयानन्तर ये नव्यकल्प में पुनः जन्म-मरण रूप संसरण-चक्र में पड़ जाते हैं।

---

१. परमेश्वरस्य तूत्तमस्वातंन्त्र्यावियुक्तबोधरूपत्वम्। —ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
२. ई. प्र. (३/२/८)

"प्रलयावधिहि ते तथाभूता उत्तरकालं तु कार्यकारणसम्बद्धा एव भवन्ति॥"[१]

प्रलयाकलों की अवस्थायें

(१) तीनों मलों की विद्यमानता— 'सवेद्यसुषुप्ति की अवस्था'— (इन प्रलयाकलों में भिन्न वेद्य प्रथा रूप **'मायीय मल'** का अंश भी विद्यमान रहता है, अतः इनमें तीनों मल विद्यमान रहते हैं।)

(२) दो मलों की विद्यमानता— 'अपवेद्यसुषुप्ति की अवस्था'—(इस अवस्था में विद्यमान प्रलयाकलों में **दो मल** रहते हैं।)

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीकार की दृष्टि— 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी के ग्रन्थकार का कथन है कि— 'सवेद्यरूपे सुषुप्तपदे (अस्ति मायीयोमलः) अपवेद्ये तु न भवति॥

प्रलयाकलों में— (१) स्थूल देह (२) स्थूल इन्द्रियों का अभाव रहा करता है।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि- उत्पलदेव **'प्रलयाकल'** को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

'शून्याद्यबोधरूपास्तु कर्तारः **प्रलयाकलाः**।
तेषां कार्ममलोऽप्यस्ति, मायीयस्तु विकल्पितः॥'

अर्थात् "शून्ये प्राणादौ देहरूपतातिक्रमेणाहन्तया स्थिताः **प्रलयकेवलिनः**। तेषां कार्ममलोऽप्यस्ति मायीयस्तु विकल्पितः॥"[२]

'प्रलयाकलों' के भी दो भेद होते हैं—

प्रलयाकलों के भेद

(१) 'पक्वमल प्रलयाकल'

(२) 'अपक्वमल प्रलयाकल'

(क) भगवन शिव उनमें से **पक्वमल प्रलयाकलों** को **भुवनपतित्व** प्रदान करते हैं—

'तत्र शिवः पक्वमलानुगृह्य तेभ्यो भुवनपतित्वं ददाति॥'[३]

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञविमर्शिनी।

२. प्रत्यभिज्ञा कारिका (१९/३)।

३. शैव परिभाषा (परि. ३)।

(ख) प्रलयाकलों जो **अपक्वमल** हैं वे प्राकृत भोग एवं कर्मों के वशीभूत होकर पुर्यष्टकदेहयुक्त '**सकल**' बन जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि—

'स्वेच्छयैवानुगृह्णाति प्रलयाणूनपीश्वरः॥'[१]

अन्यत्र भी कहा गया है कि—

'प्रलयाकलेषु येषां पक्वे मलकर्मणि व्रजन्त्यन्ये।
पुर्यष्टकदेहयुतां योनिषु निखिलासु सूक्ष्मकर्मवशात्।
कांश्चिदनुगृह्य वितरति **भुवनपतित्वं** महेश्वरस्तेषाम्॥'

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि

सादाख्य तत्त्व एवं ईश्वरतत्त्व

'किंत्वान्तरदशोद्रेकात्सादाख्यं तत्त्वमादितः।
बहिर्भावपरत्वे तु परतः पारमेश्वरम्॥'

अर्थात् ईशितुरन्तर्बहिः स्थितावन्तर्भाव प्राधान्ये पुनः **सादाख्यं** तत्त्वम्, अपरं बहिर्भावोद्रेकादैश्वरम्।

'ईश्वर' और 'सदाशिव' में भेद

(१) '**ईश्वर**'— यह शिव का बहिरुन्मेष है।

(२) '**सदाशिव**'— यह शिव का निमेष है।

'ईश्वरो' बहिरुन्मेषो,
निमेषोऽन्तः 'सदाशिवः'॥''[२]

'सादाख्य' तत्त्व का स्वरूप

'**सादाख्य तत्त्व**'— 'अहं' और 'इदं' में सामानाधिकरण्य ही 'सादाख्य तत्त्व' है— 'सामानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदंधियोः।'

उत्पलदेव कहते हैं— 'उन्मेष' और 'निमेष' परमात्मा की बाह्य एवं आन्तर अवस्थायें हैं— इन्हें ही 'ईश्वर' एवं 'सदाशिव' कहते हैं।

मन्त्रेश्वर और मन्त्रमहेश्वर

जो 'विद्येश्वर' प्रमातागण हैं उनसे उत्कृष्टतर एवं ऊर्ध्वतर भूमि पर '**मन्त्रेश्वर**' एवं '**मन्त्र महेश्वर**' हुआ करते हैं।

---

१. पौ. पशु. प. श्लो. (१९)।

२. प्रत्यभिज्ञा कारिका (आगमधिकार) (३)।

'मन्त्रेश्वर प्रमाता' वे कहलाते हैं जिनमें कि **'इदन्ता'** का अवभास स्फुटतया हुआ करता है **और जो 'ईश्वर तत्त्व'** में अवस्थित रहा करते हैं।

'मन्त्रमहेश्वर प्रमाता' वे कहलाते हैं जिनमें इदन्तावभास अस्फुट रूप में हुआ करता है। 'शुद्ध अहं' के चिन्मात्र अधिकरण में जब 'इदम्' अंश का उन्मेष होता है तब यदि इदमोन्मेष का आन्तरावभास अस्पष्ट सा रहता है और अहं का अवभास स्फुट रूप में रहता है तब **'सदाशिवतत्त्व'** में स्थित ये प्रमाता **'मन्त्रमहेश्वर'** कहलाते हैं।

(१) सदाशिव तत्त्व में अवस्थित प्रमाता= 'मन्त्रमहेश्वर'

(२) ईश्वर तत्त्व में अवस्थित प्रमाता= 'मन्त्रेश्वर'

मन्त्रेश्वर एवं महामन्त्रेश्वर में मुख्य भेद

(१) 'मन्त्रेश्वर'— इन प्रमाताओं के शुद्ध विमर्श में 'इदम्' भाव की अध्यामलता या स्फुटता अर्थात् इदम् भाव की स्पष्टता रहती है।

(२) 'मन्त्रमहेश्वर'— १. इन प्रमाताओं के शुद्ध विमर्श में 'इदम्' के परामर्श में अस्फुटत्व (अस्पष्टता) रहा करता है।

२. **'मन्त्रमहेश्वर'** मन्त्रेश्वरों से श्रेष्ठतर होते हैं।

३. मन्त्रमहेश्वरों से श्रेष्ठतर होता है।

'शिवप्रमाता'— शिव में प्रमेय-कल्पना का स्पर्श भी नहीं होता। वहाँ सर्वत्र केवल एक **विशुद्ध अहन्ता** का ही परामर्श दृष्टिगत होता है। **शिवप्रमाता** सर्वथा विशुद्ध प्रमाता हैं। **'मन्त्र'** ही विद्येश्वर कहलाते हैं।

'मन्त्रों' 'मन्त्रेश्वरों' एवं **'मन्त्रमहेश्वरों'** में स्वरूपसङ्कोच का अतिसूक्ष्म स्वरूप स्थित है।

प्रमाता विज्ञानाकल की ऊर्ध्वभूमि में स्वरूपसङ्कोचात्मक आणव मल

(शिवभाव के समावेश के आरोहक्रमान्तर्गत क्षयमान आणव मल)

(१)	(२)	(३)	(४)
किंचिदध्वस्यमान	ध्वस्यमान	किंचिद्ध्वस्त	ध्वस्त
'मन्त्र'	**'मन्त्रेश्वर'**	**'मन्त्रमहेश्वर'**	**'शिव'**

अभिनवगुप्तपादाचार्य— 'तन्त्रालोक' मन्त्रमहेश्वरों में स्वरूपसंकोच अत्यल्प हुआ करता है।

जो **सप्तकोटि 'महामन्त्र'** हैं उनमें से जिन्हें अपने अधिकार से वैराग्य हो

जाता है उन्हें परमेश्वर मलपरिपाकानुगुणानुसार ही अनुगृहीत करके यथाक्रम परमामुक्ति प्राप्त करा देता है और इसी आरोह-क्रम में—

(१) सादाख्यतत्त्वगत पद में ईश्वरतत्त्व गतों को

(२) एवं ईश्वरतत्त्वगतपद में विद्यातत्त्व गतों को

(३) और इसी क्रम से आगे मायामस्तकगतों को योजित किया करता है।

श्रीमत्पौष्करकार की दृष्टि— श्रीमत्पौष्कर में कहा गया है कि—

'इच्छयैवानुगृह्यादौ शिवो विज्ञान केवलान्।
मलपाकमपेक्ष्यैव कांश्चिच्छुद्धाध्वगोचरे॥
योजयत्यधिकारेषु कृत्वा दृक्क्रिययोत्कटान्।
कांश्चिद्भोगाह्वये तत्त्वे सर्वज्ञानबलशालिनः॥
सदाशिवगुणोपेता भोगाख्यं तत्त्वमाश्रिताः।
मनोऽभिलषितान्भोगान्भुञ्जाना विविधानपि॥
पतिकृत्याधिकारेषु प्रवृत्ताः पत्युरिच्छया।
ये प्राप्तास्तत्त्वमैशानं विशेषेण क्रियाधिकाः॥
अधिकारगुणोपेताः महान्तश्चक्रवर्तिनः।
अष्टावनन्तमूक्ष्माद्या यथापूर्वं गुणाधिकाः।
अतिसौन्दर्यलावण्या अक्षीणमनसः सदा।
विद्याविद्याद्वयंप्राप्ताः संख्यया **सप्तकोटयः**।
प्रशान्तकलुषाः सर्वे महात्मानोऽमितौजसः।
एतेषां यस्य वैराग्यमुपजातं महात्मनः।
किमेतेनाधिकारेण श्रेयसः परिपन्थिना॥
इति तं परमेशानो मलपाकमपेक्ष्य सः।
स्वेच्छयैवानुगृह्णाति मुक्तिव्यक्त्यर्थया दृशा॥
ततो मुक्त्यर्थमासन्नं कनिष्ठं तत्पदे विभुः।
नियुनक्त्यनुगृह्यान्यं तत्पदे नियुनक्त्यपि॥'[१]

— पौ. पशु. प. श्लोक ४९-५८

सकल

जो पशु (प्राणी) तीनों मलों से आच्छादित हैं और स्थूल देह, स्थूल प्राण,

---

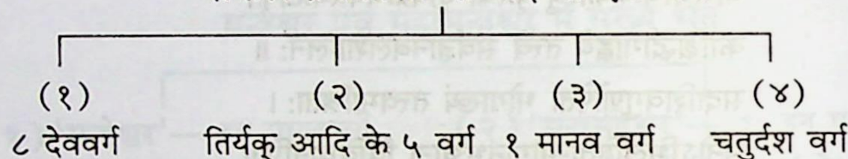
१. 'शैवपरिभाषा' में उद्धृत।

इन्द्रियाँ एवं अन्य करणों से युक्त हैं और संसरण-चक्र में पड़ा हुआ है उसे **'सकल'** कहते हैं। तीनों मलों से युक्त प्रत्येक प्राणी **'सकल'** कहलाते हैं।[1] सकल प्राणियों में (१) **'आणव मल'** (२) **'मायीय मल'** एवं (३) **'कार्ममल'** तीनों मल विद्यमान रहते हैं।

इनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, पैशुन्य, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, क्षुधा, तृषा आदि सारे विकार होते हैं—

'काम: क्रोधश्च लोभश्च मोह: पैशुन्यमेव च।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-क्षुत्तृतृष्णास्तथैव च॥''[2]

सकल प्रमाताओं के भेद या १४ वर्ग

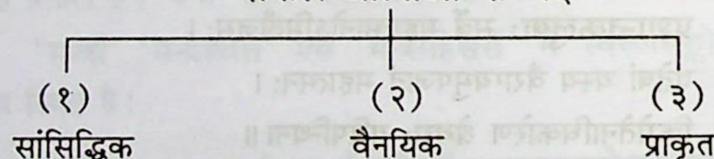


'अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योश्च पंचधा भवति।
मानुष्यश्चैकविध: समासतो भौतिक: सर्ग:॥'[3]

ये सारे सकल प्रमाता **'कार्ममल'** के कारण अहर्निश दु:खपरितप्त रहते हैं।

शैव परिभाषाकार की दृष्टि— श्री शिवाग्र योगीन्द्र ज्ञानशिवाचार्य कहते हैं कि सकल आत्माओं के तीन भेद होते हैं।

सकल आत्माओं के भेद



(१) **सांसिद्धिक'**— तत्र **सांसिद्धिकोनाम** पूर्वजन्मनि कृतश्रवण-मनन-निदिध्यासनोऽनिष्पन्न शिवसाक्षात्कारस्तदर्थं शुक-वामदेव-जडभरतादिवत्परिगृहीत-देहोऽविच्छिन्न निदिध्यासनवासनया शिवानुग्रहाच्छिवसाक्षात्कारवान्।

(२) **'वैनयिक'— वैनयिको नाम** गुरौ विनयशील: सन् दीक्षां लब्ध्वा मनोवाक्कायिकशिवधर्मै: शुद्ध: लौकिकशिवशास्त्रयो: परिज्ञानवान्।

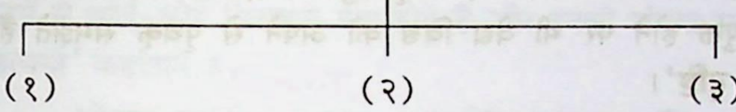
---

१. मलत्रयोपरक्ता: **सकला** मायातत्त्वान्तरालवर्तिन:॥ —परिमल
२. अभिनवगुप्त: तन्त्रालोक-टीका।
३. सांख्यकारिका।

(३) **'प्राकृत'— प्राकृतोनाम** स्वप्नज्ञानवत् ज्ञाताज्ञातबोधः प्रकृतिजन्यदेहेन्द्रियादिष्वात्माभिमानवान्।

'सकल' प्रमाताओं के भी तीन भेद होते हैं।

सकल मितप्रमाताओं के भेद



(१) (२) (३)

'सांसिद्धिक सकल' 'वैनयिक सकल' 'प्राकृत सकल'

(१) **'सांसिद्धिक सकल'**— १

(२) **'वैनयिक सकल'**— २

(३) **'प्राकृत सकल'**— ३

विशिष्टधर्मसंस्कार समुद्दीपितचेतसाम्।
गुणः **सांसिद्धिको** भाति देहापायोऽपि पूर्ववत्॥
सम्मार्जितो **वैनयिको** मनोवाक्तनुचेष्टया।
प्राकृतो देह संयोगे व्यक्तः स्वप्नादिबोधवान्॥

— मृगेन्द्र तन्त्र (प्र. १०२ श्लोक २६-२८)

गरुड़ ने भगवान से पूछा कि—

यद्येवं स पशुस्तावत् कीदृशो बद्ध्यते कथम्।
मुच्यते कथमाख्याहि सन्देह विनिवृत्तये॥

भगवान् ने उत्तर देते हुए कहा—

'पशुर्नित्यो ह्यमूर्तोऽज्ञो निष्क्रियो निर्गुणोऽप्रभुः।
व्यापी मायोदरान्तस्स्थो भागोपायविचिन्तकः॥
तस्याशुद्धस्य सम्बन्धं समायाति शिवात्कला।
तयोद्बलित सामर्थ्योऽविद्यादर्शितगोचरः।
रागेण रञ्जितश्चापि प्रधानेन गुणात्मना।
बुद्ध्यादिकरणानीक सम्बन्धाद्बध्यते पशुः॥
ततो नियति संश्लेषात्स्वार्जिते विनियम्यते।
कालेन कालसङ्ख्यान कार्यभोग विमोहितः।
एवं तत्त्वकलाबद्धः किञ्चिज्ज्ञो देहसंयुतः॥

माया भोग परिष्वक्तस्तन्मयः सहजावृतः ॥'[१]

विद्येश्वर

विभिन्न प्रमाताओं में से ऐसे भी प्रमाता हैं जो कि—

(१) अपने को बोधरूप एवं कर्तृत्वयुक्त समझते हैं तथापि वे (२) सर्वज्ञ एवं सर्वकर्तृत्व युक्त होने पर भी वेद्य विश्व को अपने से पृथक् समझते हैं। यही है **'कुविन्दपट दृष्टि'**।

जिस प्रकार एक जुलाहा (कुविन्द) स्वनिर्मित पट को अपने से पृथक् मानता है उसी प्रकार **विद्येश्वर प्रमाता** शुद्ध चिन्मात्र में अहंताभिमान रखते हुए भी स्वनिर्मित वेद्य जगत को अपने से पृथक् मानते हैं—

'ते (विद्येश्वराः) हि शुद्धचिन्मात्रगृहीताहंभावाः स्वतस्तु भिन्नं वेद्यं यथा द्वैतवादिनामीश्वरः ॥'[२]

आचार्य अभिनव गुप्त की दृष्टि— आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं विद्येश्वर 'विद्यापद' में अवस्थित रहते हैं।

'विद्यापदे च विद्येश्वरादीनाम् अवस्थितिः।'[३]

अभिनवगुप्तपादाचार्य (ई. प्र. वि. में) कहते हैं कि विद्येश्वरों की दृष्टि कुविन्द पट दृष्टि के समान है—

'ये च चिन्मात्रमेवात्मतया पश्यन्ति 'अहम्' इति चमत्कारोल्लासात् कर्तारस्तत व सर्वज्ञाः सर्वकर्तारश्च ते विद्येश्वराः। किन्तु तनुकरणभुवनादि यदेषां वेद्यतया कार्यतया च भाति तत् कुविन्दपटदृष्ट्या भिन्नमेव सत्॥'[४]

विद्येश्वरों को ही **'मन्त्रप्रमाता'** कहते हैं।

---

१. ततः सुखादिकं कृत्स्नं भोगं भुंक्ते स्वकर्मतः।
समे कर्मणि संज्ञाते कालान्तरवशात्ततः॥
तीव्रशक्तिनिपातेन गुरुणा दीक्षितो यदा।
सर्वज्ञः स शिवो यद्वत् किञ्चिज्ज्ञत्वविवर्जितः।
शिवत्वव्यक्तिसम्पूर्णः संसारी न पुनस्तदा।
एवं क्रमेण बद्धः स मुच्यते क्रमयोगतः।
केवलः **सकलः** शुद्धस्त्रयवस्थः पुरुषः स्मृतः।
मलिनत्वाच्चितेर्मोक्षः प्राप्यते निर्मलाच्छिवात्।
पशुरेवंविधः प्रोक्तः किमन्यत्परिच्छसि॥ — किर. पशु. प. श्लोक १४-२४

२. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी।

३. परात्रिंशिका विवृति।

४. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी।

योगीन्द्र शिवाचार्य की दृष्टि— शिवाग्रयोगीन्द्रज्ञान शिवाचार्य ने '**शैव परिभाषा**' में 'विद्येश्वर' को परिभाषित करते हुए कहा है कि—

'येत्वीश्वरतत्त्वं प्रापिता अधिकारगुणोपेता महान्तश्चक्रवर्तिनो यथापूर्वणोत्तरा अष्टावनन्ताद्याः विद्येश्वराः॥'

उनमें से कोई-कोई विद्याद्वय प्राप्त होते हैं और इनकी संख्या सप्तकोटि होती है। ये '**महामन्त्र**' कहलाते हैं—

'केचन पुनर्विद्याद्वयं प्राप्ताः सप्तकोटि महामन्त्राः।'[१]

******

१. शैव परिभाषा (३ परि.)।

अध्याय-५

चैतन्य और तद्विषयक विभिन्न दृष्टियाँ एवं तान्त्रिकी दृष्टि

'चैतन्य' और तद्विषयक विभिन्न दृष्टियाँ

'चैतन्य' का स्वरूप

(१) चार्वाक मत— आचार्य बृहस्पति कहते हैं कि जिस प्रकार किण्व आदि अन्न के संघटन से मादकशक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार इन भूतों के संघटन से **'विज्ञान'** (चैतन्य) उत्पन्न होता है।

(१) "किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद् विज्ञानम्॥"

(२) भूत ही **'चैतन्य'** उत्पन्न करने का कार्य करते हैं— 'भूतान्येव चेतयन्ते॥'

(३) 'भूत ही **चैतन्य** उत्पन्न करने का कार्य करते हैं। और मृत्यु ही 'मोक्ष' है— 'मरणमेवापवर्ग:।'

(२) विज्ञानवादी बौद्धों का मत— विज्ञानवादी बौद्ध चित्त को ही परमतत्त्व मानते हुए कहते हैं कि—

(क) चित्त ही चैतन्य है। चित्त ही की प्रवृत्ति, मुक्ति, उत्पत्ति एवं निवृत्ति होती है। इसी का ही निरोध होता है। यही एक मात्र तत्त्व है। समस्त वस्तुएँ एकमात्र 'चित्त' के ही विकल्प हैं। विज्ञान के लिए भी यही 'चित्त' ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय में उपस्थित रहता है। मन भी विज्ञानों की ही एक सन्तति है।

(ख) विज्ञान के दो भेद हैं— (१) **'आलय विज्ञान'** (चित्त) तथागतगर्भ। कायि-वाचिक-मानसिक समस्त विज्ञानों के वासनामय बीजों का घर (आलय)। ये **'बीज'** आलय विज्ञानरूप चित्त में एकत्रित किये जाते हैं। आलय विज्ञान ही **'जीवात्मा'** है।

(ग) 'आलय विज्ञान' भी क्षणिक विज्ञानों की सन्तति मात्र है। यह प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। इसी आलय विज्ञान में शुभाशुभ वासनायें रहती हैं।

(घ) वासनाओं के अतिरिक्त और उन्हीं के साथ इस 'आलय' में 'चक्षुर्विज्ञान' 'श्रोत विज्ञान' 'धारण विज्ञान' 'रसना विज्ञान' 'कायविज्ञान' 'मनोविज्ञान' तथा 'क्लिष्ट मनोविज्ञान' ७ विज्ञान भी रहते हैं।

(२) **'प्रवृत्ति विज्ञान'**— व्यवहार में आने वाले ये सात विज्ञान **'प्रवृत्ति विज्ञान'** कहलाते हैं। ये **'आलयविज्ञान'** से ही उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। 'प्रवृत्तिविज्ञान' **'आलय विज्ञान'** पर ही निर्भर है। ये सभी क्षणिक एवं परिवर्तनशील हैं।

सौतान्त्रिकों ने मानसिक चित्रों (विज्ञानों) को प्रत्यक्ष गोचर एवं बाह्य पदार्थों को अनुमेय स्वीकार किया था। विज्ञानवादी बाह्य संसार की सत्ता को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। योगाचारी मानते हैं कि हमें वस्तु या जगत का प्रत्यक्षीकरण विज्ञानों का होता है बाह्य पदार्थों का नहीं। बाह्य पदार्थों की सत्ता स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। विज्ञानों से पदार्थ भी हो सकते हैं और विज्ञान भी। एक क्षणिक विज्ञान अन्य क्षणिक विज्ञान को उत्पन्न करता है और इस प्रकार पूर्ववर्ती विज्ञान परवर्ती विज्ञान को उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार विज्ञानों का सतत प्रवाह चलता रहता है। विज्ञानों का यह प्रवाह या विज्ञान-संतान ही चरम तत्त्व है।

विज्ञानों की धारा के अतिरिक्त संसार में कुछ भी नहीं है

निष्कर्ष— (१) न तो (शाश्वत मानी जाने वाली) आत्मा है।

(२) और न तो बाह्य जगत। —योगाचार की दृष्टि

प्रश्न— यदि सब कुछ विज्ञान ही है तो 'विज्ञान' तो द्रष्टा के भीतर होते हैं और विज्ञान-संतति ही द्रष्टा (आत्मा) है फिर अपने से पदार्थों की भिन्नता क्यों ज्ञात होती है? इस स्थिति में तो ''सभी पदार्थ मुझमें हैं और मैं ही सारे पदार्थ हूँ।''— ऐसा अनुभव क्यों नहीं होता?

बौद्धों का उत्तर— (१) 'सब कुछ विज्ञान होते हुए (आन्तरिक सत्ता होते हुए भी) पदार्थ बाहर क्यों दृष्टिगत होते हैं?' —इसका उत्तर यह है कि बाहरपन की भी धारणा एक कल्पना मात्र है और बुद्धि-सापेक्ष है। स्वप्न के समय बाह्य पदार्थ न होते हुए भी दिखाई पड़ते हैं। स्वप्न के हाथी-घोड़े भी द्रष्टा को बाहर दिखाई पड़ते हैं अत: 'बाहरपन' के सिद्ध्यर्थ बाह्यजगत की सत्ता मानना आवश्यक है। 'विज्ञानवाद' स्काटलैण्ड के दार्शनिक बर्कले के सिद्धान्तों से साम्य रखता है।

अश्वघोष की मान्यता है कि सारे पदार्थ विज्ञान का ही विकार हैं और विज्ञान के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है। नदी, पर्वत, वृक्ष एवं जीव-जन्तु आदि सभी कुछ विज्ञान मात्र ही हैं— ''सर्वं बुद्धिमयं जगत्॥''

लंकावतार सूत्रकार ने अश्वघोष की **'भूततथता'** के स्थान पर **'आलय विज्ञान'** का प्रतिपादन किया। संसार के सारे पदार्थ माया या स्वप्नसृष्टिवत् मिथ्या हैं।

(३) न्याय-वैशेषिक और चैतन्य— 'न्याय' और 'वैशेषिक' की दृष्टि में '**आत्मा**' इन्द्रियों का और शरीर का **चैतन्यसंपादक** है। **जिसमें ज्ञान रहता है वह आत्मा है।** इन्द्रियाँ ज्ञान का कारण है। 'न्याय'-'वैशेषिक' की दृष्टि में आत्मा '**चेतन**' नहीं है। **चैतन्य** आत्मा का गुण है जो कि आता-जाता रहता है। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जीव में **चैतन्य** भी उत्पन्न हो जाता है। मोक्ष की दशा में जीवों में इन्द्रियों के न रहने के कारण आत्मा में ज्ञान नहीं रहता अत: चैतन्य भी नहीं रहता। मुक्त जीव चेतन नहीं जड़ होते हैं। दु:खात्यन्ताभाव का ही नाम है मोक्ष अत: मोक्ष की दशा में **सुख की अनुभूति** भी नहीं होती। '**मोक्ष**' एक निरानन्द जड़ावस्था है।

(४) सांख्य दर्शन और चैतन्य— सांख्य दर्शन की दृष्टि में पुरुष चेतन है और प्रकृति जड़ है। पुरुष नित्यप्रकाशस्वरूप एवं **शुद्ध चैतन्य** है। पुरुष के संसर्ग से ही जड़ बुद्धि भी चेतनवत् हो जाती है—

'तस्मात्तत्संयोगादचेतनं **चेतनावदिवलिंगम्**।' (सां. का. २०)

(५) मीमांसक प्रभाकर मानते हैं कि आत्मा चेतन नहीं जड़ है। आत्मा में ज्ञान, सुख, दु:ख आदि गुण उत्पन्न होते रहते हैं। अत: वे आत्मा के गुण नहीं हैं। आत्मा स्वयंप्रकाश भी नहीं है। **अचेतन होने** पर भी आत्मा कर्ता और भोक्ता है तथा शरीर से भिन्न है।

मीमांसक कुमारिल भट्ट मानते हैं कि आत्मा में एक 'अचिदंश' है और ज्ञान आत्मा का ही परिणाम या पर्याय है। **प्रभाकर** आत्मा और संवित् को पृथक्-पृथक् मानते हैं किन्तु **कुमारिल** ऐसा नहीं मानते।

(६) वेदान्त की दृष्टि में आत्मा **सत्-चित्-आनन्द** तीनों है। वह आनन्दस्वरूप है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहकर उपनिषदों ने आत्मा को **ज्ञानस्वरूप** भी माना है।

(७) त्रिक् दर्शन की दृष्टि में चैतन्य ही आत्मा है— 'चैतन्यमात्मा' (शि. सू. १/१)।

विज्ञान और चैतन्य

चेतना सम्बन्धिनी वैज्ञानिक दृष्टि

आध्यात्मिक (दार्शनिक) दृष्टि से तो 'सम्यक् चैतन्य की अवस्था' वह पूर्णावस्था है जिसमें आत्मा परिपूर्ण अहं भाव में विश्रान्त रहा करती है और '**अहमिदं' की अनुभूति** में संलीन रहकर '**विश्वाहन्ता**' या '**पूर्णाहन्ता**' में प्रतिष्ठित रहती है।

वैज्ञानिकों एवं मनोवैज्ञानिकों की मान्यता यह है कि 'मन' के व्यापारों

में से 'चेतना' से बढ़कर विलक्षण और कोई व्यापार नहीं है किन्तु 'चेतना' मन का व्यापार है। उनकी दृष्टि में चेतना आत्मा का लक्षण नहीं है। आत्मा है भी नहीं। चेतना से सम्बन्धिनी जो विचारधारा दो हजार वर्ष पूर्व थी वही अद्यापि धार्मिक जगत में विद्यमान है। द्वैतवादी आत्मा और शरीर को दो पृथक्-पृथक् वस्तुएँ मानते हैं।[१] (१) अद्वैतवादी आत्मा को अद्वैत मानते हैं।

वैज्ञानिक हैकेल के अनुसार अनेक मनोव्यापारों के समान चेतना भी एक प्राकृतिक गुण है और अन्तःकरण की अन्य वृत्तियों की भाँति यह भी प्रकृति के नियमों के अन्तर्गत एक प्राकृतिक व्यापार है। दार्शनिकों में भी, चेतना के स्वरूप को लेकर अनेक मतभेद हैं। कुछ लोग चेतना को अन्तर्दृष्टि मानते हैं और उसे दर्पण की क्रिया से उपमित करते हैं।

विज्ञानविदों के अनुसार 'चेतना' के दो प्रकार हैं— (१) **'अन्तर्मुख'** (२) **'बहिर्मुख'** अहङ्कार ही **'अन्तर्मुख चेतना'** है। इसके द्वारा अन्तःकरण अपनी ही क्रिया का निरीक्षण एवं अपनी ही अवस्था का बोध किया करता है। **'बहिर्मुख चेतना'** द्वारा अन्तःकरण बाह्य जगत का बोध प्राप्त करता है। हमारी अधिकांश चेतना बहिर्मुखी एवं बाह्यजगत सम्बन्धिनी होती है। इसी अन्तर्मुख चेतना में इन्द्रियानुभव, संस्कार एवं संकल्प-विकल्प प्रतिबिम्बित होते हैं।[२]

अनेक मनोवैज्ञानिकों की धारणा यह है कि **'चेतना'** और **मनोव्यापार पर्यायवाची शब्द हैं** अतः **सारे मनोव्यापार चेतन होते** हैं। यह दृष्टि सही इसलिए नहीं है; क्योंकि **अधिकांश अन्तःक्रियायें एवं मनोव्यापार हमें जीवनपर्यन्त अज्ञात रहते हैं अतः उन्हें चेतन कैसे कह सकते हैं?** इन्द्रियों के साथ विषयों का सम्पर्क होने पर उनका **अन्तः संस्कार अङ्कित** होता है और वे पेशियों में गति उत्पन्न करते हैं किन्तु हमें उनके विषय में कोई ज्ञान नहीं होता।

चेतन अन्तःसंस्कार जिनके द्वारा ज्ञातकृत व्यापार पशुओं में **न तो आत्मा** होती है और **न तो विचार करने की शक्ति**। वे मशीन में बैठाये हुए पुर्जे या पुरजों की मशीन की भाँति हैं। उनके इन्द्रिय संवेदन, अन्तःसंस्कार और प्रवृत्तियाँ जड़ व्यापार मात्र हैं और भौतिक नियमों का अनुसरण करती हैं। डेकार्टे मनुष्यों के सम्बन्ध में तो **शरीर एवं आत्मा** के द्वित्व को तो मानता है और दोनों में पृथकत्व मानता था किन्तु पशुओं में आत्मा और शरीर दोनों को एक ही मानता था।

---

१. रिडिल ऑफ यूनीवर्स।

२. रिडिल ऑफ यूनीवर्स (हैकेल)।

१७वीं-१८वीं शताब्दी के भौतिकवादी **मनोव्यापारों** को मात्र भौतिक एवं पशुवत मानने लगे तथा अध्यात्मवादी आत्मा का अमरत्व तथा आत्मा-शरीर का पृथकत्व सिद्ध करने में संलग्न रहे। **किन्तु १९वीं** सदी में **डेकार्टे की यह दृष्टि** सर्वथा भ्रान्त सिद्ध हुई।

(२) चेतना केवल संवेदन सूत्र वाले जीवों में ही होती है

इस दृष्टि के अनुसार चेतना उन्नत जीवों मे ही होती है और उन्हीं मात्र में होती है जिनमें संवेदनसूत्रविधान या विज्ञानमय कोश होता है। आधुनिक जन्तु विज्ञान, शरीरविज्ञान एवं अद्वैत मनोविज्ञान यही मानता है। बन्दर, कुत्ते आदि उन्नत कोटि के पशुओं में मनुष्यों से मिलती हुई एवं किसी किसी क्षेत्र में मनुष्य से उच्चतर चेतना या गुण पाये जाते हैं। उनकी इन्द्रियसंवेदन, अन्त:संस्कार सुखदु:खादि के अनुभव, इच्छा एवं द्वेष आदि मनोव्यापार मनुष्यवत होते हैं।

यह भी रहस्य बना हुआ है कि किस वर्गविशेष से चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

मि. हैकेल की दृष्टि— विज्ञानवेत्ता हैकेल कहते हैं कि **चेतना** संवेदनसूत्रों के केन्द्रीभूत होने पर उत्पन्न होती है। छोटे जीवों में संवेदनसूत्र एक स्थान पर ही केन्द्रीभूत नहीं होते; क्योंकि उनमें पूर्ण विज्ञानमय कोश नहीं हुआ करता। जिन प्राणियों में संवेदनसूत्रों का केन्द्ररूप अवयव या अन्त:करण होता है और उन्नत ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं (विज्ञानमयकोश होता है) उन्हीं में चेतना होती है।

(३) चेतना सभी प्राणियों में होती है

छोटे-बड़े सभी जीवों में चेतना होती है। प्राचीन विद्वान् यह मानते थे कि जन्तुओं में इन्द्रियानुभव एवं चेतना तो निष्पन्न होते हैं और **अचेतन अन्त:संस्कार** जिनके द्वारा अज्ञानकृत व्यापार निष्पन्न होते हैं **अन्त:करण या मनकि ही व्यापार हैं।**

चेतना के वैज्ञानिक परीक्षण में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि चेतना के द्वारा ही चेतना का परिज्ञान हो पाता है। **परीक्षक भी वही और परीक्ष्य भी वही।** अत: हमें दूसरों की चेतना का परीक्षात्मक बोध, पूरी तरह नहीं हो पाता। हमें उनकी चेतना का अपनी चेतना से मिलान करते हुए चलना पड़ता है। असामान्य मस्तिष्क (प्रतिभाशाली, सनकी, दार्शनिक, कवि, जादूगर, जड़ एवं विक्षिप्त तथा प्रातिभज्ञान या तृतीय नेत्र सम्पन्न असाधारण मस्तिष्क) के लोगों पर विचार करने पर हमारे परीक्षण के सारे सिद्धान्त अपूर्ण एवं भ्रान्त **सिद्ध** होते हैं। यदि हम अपनी चेतना से क्षुद्र जन्तुओं, सरीसृपों, पशुओं से मिलायें तो भी यही कठिनाई प्रतीत होती है। यही कारण है कि चेतना के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न **शरीरविज्ञानियों** एवं दार्शनिकों के मतों में

आकाश-पाताल का अन्तर दृष्टिगोचर होता है।[१]

चैतन्य सम्बन्धिनी विभिन्न दृष्टियाँ

जर्मनी के वैज्ञानिक म. हैकेल ने चैतन्य सम्बन्धिनी अनेक मत-मतान्तरों का उल्लेख किया है जिनमें निम्न मत प्रधान हैं—

(१) चेतना केवल मनुष्य में होती है अन्य में नहीं

डेकार्टे और उसका मत— फ्रांसीसी दार्शनिक डेकार्टे का कथन है कि **विचार और चेतना मात्र मनुष्य का ही गुण है और आत्मा भी केवल मनुष्य में होती है अन्य प्राणियों में नहीं।**[२]

इसके अनुसार मानव एवं पशु के मनोव्यापार में भेद है।

(१) मनुष्य की आत्मा एक विचार करने वाली अभौतिक सत्ता है और भौतिक शरीर से सर्वथा पृथक् है।

(२) आत्मा अभौतिक होते हुए भी मस्तिष्क के एक विशिष्ट अंश के साथ संलग्न रहती है। इसमें बाह्य जगत के विषयों को संस्कार के रूप में ग्रहण करके इन्द्रियों को प्रवृत्त करने की क्षमता होती है किन्तु पौधों में नहीं होती।

१९वीं सदी के मध्यभाग में **जब स्पंज एवं क्षुद्र-जन्तुओं की आन्तरिक क्रियाओं की परीक्षा की गई** तो ज्ञात हुआ कि स्पंज आदि **स्थावर 'जन्तु'** तो हैं किन्तु उनमें पौधों की ही भाँति चेतना नहीं है। एकघटक अणु जीवों एवं अणु उद्भिदों की क्रियाओं में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता।

(४) चेतना जन्तु एवं उद्भिद (सभी शरीरधारियों) में होती है

इस सिद्धान्त के अनुसार **जीव, जन्तु एवं पेड़-पौधे सभी चेतन हैं।** हाँ मिट्टी के पिण्डों जैसे निर्जीव पदार्थों में चेतना नहीं रहती। समस्त देहधारी (जन्तु एवं उद्भिद) पदार्थों में आत्मा होती है। इस मत के अनुसार **'प्राण'**, **'चेतना'** और **'आत्मा'** परस्पर सहगामी हैं। जहाँ एक रहेगा वहाँ दूसरा भी रहेगा।

फेक्नर की दृष्टि— फेक्नर नामक तत्त्ववेत्ता ने यह सिद्ध किया है कि **पौधों** में भी उसी प्रकार आत्मा होती है जिस प्रकार जन्तुओं में। **पौधों की आत्मा में भी उसी प्रकार** की चेतना रहती है जिस प्रकार मनुष्य की आत्मा में।

यदि क्षुद्र जन्तुओं की **अन्तःक्रियाओं को चेतना** कह सकते हैं तब पौधों की अन्तःक्रियाओं को **चेतना** क्यों नहीं कहा जा सकता? लज्जा की प्रकृति वाले (छुई-

---

१. रिडिल ऑफ यूनीवर्स।

२. रिडल ऑफ यूनीवर्स।

मुई आदि) मक्खी पकड़ने वाले पौधे आदि की गतिविधि क्षुद्र जन्तुओं की गतिविधि के समान ही तो है।

(५) चेतना प्रत्येक घटक में होती है

हम **सजीव घटक** को अनेक घटक जन्तुओं एवं पौधों के शरीर के मूल अणु मानते हैं जिनके संयोग से उनके शरीर संघटित हैं, उसी प्रकार हम घटकात्मा (अर्थात् घटक की अन्तःक्रिया) को भी शरीर की आत्मा (उन्नत मनोव्यापारों की समष्टि) की व्यष्टि मान सकते हैं। हम कह सकते हैं कि **'चेतना'**, धारणा आदि उन्नत कोटि के मनोव्यापार सूक्ष्म घटकों की क्षुद्र अन्तःक्रियाओं के योगफल हैं। समुद्री अणु जीवों में उन्नत जन्तुओं से मिलती-जुलती इन्द्रिय संवेदना, प्रवृत्ति और गति आदि होती है अतः यदि हम समस्त शरीरियों में चेतना माननेवालों की बात मानें तो शरीर को संघटित करने वाले **अणुरूप घटकों** में भी चेतनांश स्वीकार ही करना पड़ेगा।

हैकेल कहते हैं कि पहले मैं भी ऐसा ही मानता था किन्तु अब यह स्वीकार करता हूँ कि अणु जीवों में आत्मबोध नहीं होता, उनके इन्द्रियसंवेदन और अंग-सञ्चालन आदि अचेतन (अज्ञानकृत) होते हैं।

(६) 'चेतना' द्रव्य के परमाणुमात्र में होती है

इस सिद्धान्त ने **'चेतना'** को सबसे आगे बढ़ाया है। चेतना द्रव्य मात्र का एक वैसा ही अन्तर्व्याप्त गुण मान लिया जाय जैसे कि आकर्षण, रासायनिक प्रवृत्ति आदि हैं। ऐसा मानने पर हमें मूल चेतना उतने ही प्रकार की माननी पड़ती है जितने रासायनिक मूल द्रव्य, आक्सीजन, कारबन आदि होते हैं।

'मूलद्रव्य' क्या हैं? मूलद्रव्य वे हैं जिनमें विश्लेषण करने पर किसी द्रव्य का योग नहीं पाया जाता। अब तक ७७-७८ से अधिक (लगभग १०८ तक) तत्त्वों का पता लग चुका है। इनके सूक्ष्म टुकड़ों को **'परमाणु'** कहते हैं; क्योंकि मूल द्रव्यों में विद्युदणु (इलेक्ट्रान) भी पाये जाते हैं। पहले के दार्शनिक ५ तत्त्वों (पृथ्वी, जल, वायु आदि को) मूलभूत एवं तत्त्व मानते थे। मूलभूतों के योग से द्रव्य संघटित हैं। वैज्ञानिक चेतना के लक्षण निर्णीत नहीं कर पाये।

(७) हैकेल की दृष्टि

जर्मनी के वैज्ञानिक मि. हैकेल का कथन है कि— 'चेतना' मनुष्य आदि उन्नत प्राणियों के **मनोव्यापारों या अन्तःक्रियाओं का एक अंश मात्र है** । अधिकतर अन्तःक्रियायें (मनोव्यापार) अचेतन होती हैं अर्थात् उनके होने पर भी हमें उनकी क्रियाओं एवं उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता।

(८) चेतना की उत्पत्ति और उसके लक्षण

चेतनोत्पत्ति और चेतना के लक्षणों के विषयों मे दो मत प्रधान हैं— '**अतीतवाद**' और '**शरीरधर्मवाद**'।

'**अतीतवाद**'— चेतना को शरीर या भूतों से अतीत वस्तु (आत्मा) का धर्म मानता है।

'**शरीरधर्मवाद**' के अनुसार चेतना शरीर का धर्म है।

मि. हैकेल का कथन है कि मैं शरीरधर्मवाद के सिद्धान्त को मानता हूँ, जिसके अनुसार **चैतन्य** शरीर का धर्म है। वे कहते हैं कि ''मैं '**चेतना**' को शरीर ही का एक धर्म मानता हूँ जो भौतिक और रासायनिक नियमों के अधीनस्थ है। '**चेतना**' **संवेदन सूत्रों की ही एक विशेषता है।** यह केन्द्रीभूत होने पर उत्पन्न होती है। संवेदनसूत्रों का केन्द्र रूप अवयव (अन्तःकरण) और उन्नतिक्रम के द्वारा पूर्णता प्राप्त ज्ञानेन्द्रियविधान विशेष करके जरायुज जन्तुओं ही में होता है। वनमानुष, कुत्ते, हाथी आदि की चेतना में और मनुष्य की चेतना में **न्यूनाधिक भेद है— कोई वस्तुभेद** नहीं है। पशुओं और मनुष्यों की **चेतना में वही अन्तर है जो असभ्य जङ्गली मनुष्यों** एवं सभ्य जाति के दार्शनिकों एवं तत्त्वचिन्तकों की चेतना में है। **हैकेल** कहते हैं—

''चेतना **मन की** समुन्नत क्रिया ही का एक अङ्ग है और मस्तिष्क की रचना (बनावट) पर निर्भर है। विज्ञान के अनुसार— **चेतना** का अधिष्ठान मस्तिष्क के भूरे **मज्जापटल** का एक भाग विशेष है। **जर्मन वैज्ञानिक क्लेशजिक** के मतानुसार— मस्तिष्क के भीतर चिन्तन करने के विशिष्ट अवयव हैं।

क्लेशजिक (जर्मन वैज्ञानिक) की दृष्टि

ये शरीर वैज्ञानिक हैं। ये कहते हैं कि— (१) मस्तिष्क में चिन्तन-मनन करने का एक अवयवविशेष है।

(२) मस्तिष्क के भूरे मज्जाक्षेत्र में इन्द्रियानुभव के केन्द्ररूप चार अधिष्ठान (या भीतरी गोलक) हैं।

(३) ये आन्तरिक गोलक इन्द्रिय संवेदनों को ग्रहण करते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) '**स्पर्शज्ञान**' **का गोलक** : मस्तिष्क के खड़े लोथड़े में।

(ख) **घ्राणसंवेदना का गोलक** : सामने के लोथड़े में।

(ग) **दृष्टिसंवेदना का गोलक** : पिछले लोथड़े में।

(घ) **श्रवण-संवेदना का गोलक** : कनपटी के लोथड़े में।

(४) इन चारों आन्तरिक लोथड़ों के मध्य **४ विचार गोलक** हैं। इनके द्वारा **भावों की योजना** और **विचार** आदि जटिल मानसिक व्यापार होते हैं।

(५) ये ही विचार गोलक चेतना और विचार के कारण (प्रधान अन्त:करण) हैं।

(६) मनुष्य के **मस्तिष्क के इन गोलकों के कुछ अंशों में विशेष प्रकार की रचनायें होती हैं** जो कि अन्य दूध पिलाने वाले जीवों में नहीं होतीं। इन्हीं विशेषताओं के कारण मनुष्य मानसिक शक्तियों में सभी प्राणियों से उच्चतर हैं। यही दृष्टि है **आधुनिक शरीर विज्ञान की, चिकित्साशास्त्रीय दृष्टि भी यही है।**

(७) **चिकित्सा विज्ञान** की मान्यता है कि जब रोग के कारण मस्तिष्क का कोई भाग नष्ट हो जाता है तब उस भाग के द्वारा होने वाला मानसिक व्यापार भी शिथिल या नष्ट हो जाता है। अत: अन्त:करण एवं मन की **भिन्न भिन्न वृत्तियों के स्थान निश्चित** किये जा सकते हैं।

(८) अन्त:करण की किसी विशेष **वृत्ति का स्थान** यदि **रुग्ण** हो जाता है तो साथ ही वह **वृत्ति भी नष्ट** हो जाती है, यथा मस्तिष्क के भीतर जो **वाणी का केन्द्र** है यदि उसे नष्ट कर दिया जाय तो व्यक्ति गूँगा हो जाएगा।

(९) मस्तिष्क के भीतर विद्यमान द्रव में किसी भी प्रकार का रासायनिक परिवर्तन कर दिया जाय तो चेतना पूर्णत: प्रभावित हो जाती है। कहवा, भाँग, धतूरा, शराब आदि के प्रयोग से हमारी विचारशक्ति उत्तेजित एवं परिवर्तित हो जाती है। **कपूर एवं कस्तूरी** से मूर्च्छा या बेहोशी दूर हो जाती है। **ईथर** और **क्लोरोफार्म** से बेहोशी आती है। यदि चेतना मस्तिष्क के अवयवों से सर्वथा स्वतन्त्र कोई अभौतिक सत्ता होती तो भला ऐसा कैसे हो सकता है? जब मस्तिष्क के अवयव काम नहीं करते तब **'अमर आत्मा'** की चेतना क्या होती है?

(१०) **हैकेल का मत**— वैज्ञानिक हैकेल कहते हैं कि— (१) मानव एवं अन्य स्तन्य जीवों की चेतना परिणामी है। उसमें **आन्तर कारणों** (यथा रक्त का आरोहावरोह) या **बाह्य कारणों** (यथा- आघात, उत्तेजना) से परिवर्तन हो जाता है, अनेक बीमारियाँ ऐसी होती हैं जिनमें अन्त: संस्कारों (अन्त:करण में स्थित प्रतिबिम्बों) के परिवर्तन से मनुष्य की चेतना दो चार दिन एक प्रकार की रहती है, दो चार दिन दूसरे प्रकार की— दो चार दिन वह अपने को कुछ और समझता है, दो चार दिन कुछ और।

तुरन्त के बच्चे में चेतना नहीं होती। **प्रेयर** (शरीरविज्ञानी) का कथन है कि

बच्चे में चेतना उस समय स्फुरित होती है जब वह बोलना आरम्भ करता है। जिस समय वह 'मैं' शब्द का उच्चारण करता है और उसमें अहंकार वृत्ति स्पष्ट होती है उसी समय से उसमें आत्मचेतना का आरम्भ माना जाना चाहिये। **१० वर्ष की अवस्था तक उसके ज्ञान की वृद्धि** बहुत शीघ्र होती है किन्तु बाद में यह वृद्धि मन्द हो जाती है। ज्ञान वृद्धि की गति चेतना एवं मस्तिष्क की वृद्धि के अनुसार ही होती है। **ज्ञान की परिपक्वता** आयु की परिपक्वता या तारुण्य में नहीं होती प्रत्युत् सामाजिक व्यवहार के समय वैचारिक परिपक्वता साठ वर्ष तक लगातार होती रहती है। ६ वर्ष की अवस्था के उपरान्त— (१) मानसिक शक्तियों का ह्रास, (२) स्मरण शक्ति, (३) ग्रहणशक्ति, (४) प्रवृत्ति की शक्ति आदि सभी में ह्रास होता जाता है। ६० वर्षों बाद उद्भावना शक्ति चेतना की परिपक्वता, दार्शनिक तत्त्वों की ओर अभिरुचि आदि शक्तियाँ विशेष रूप से जाग्रत होती हैं।

हैकेल का यह भी कथन है कि— ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई त्यों त्यों उसकी चेतना भी उन्नत होती गई।[१].

'चैतन्य' और लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि

महान् तन्त्रविद लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि— **'शब्दब्रह्म' ही चैतन्य है।**

'चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः॥'[२]

यह चैतन्य जो कि शब्द ब्रह्म है प्रत्येक प्राणी के शरीर में ध्वनित हो रहा है— ''आविर्भवति देहेषु प्राणिनामर्थविस्तृतः।''

मोक्ष 'चैतन्याभिमुख्येन निमीलनम्' है

सूत्रकार का कथन है कि— 'भूयः स्यात् प्रतिमीलनम्।'[३]

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'**चैतन्यमात्मनः स्वरूपात्** अस्य विश्वस्य भूयः पुनः, विगलितभेदसंस्कारात्मना बाहुल्येन च प्रतिमीलनम्। **चैतन्याभिमुख्येन** निमीलनं, पुनरपि चैतन्यात्मरूपोन्मीलनरूपं परयोगाभिनिविष्टस्ययोगिनो भवति।'

चैतन्य और तद्विषयक तान्त्रिक दृष्टि

समस्त उपाधियों से विवर्जित परमात्मा का स्वरूप तो मात्र चैतन्य ही है—

---

१. रिडिल ऑफ यूनीवर्स।
२. शारदातिलकम्।
३. शिवसूत्र, ३/४५।

'परमात्मस्वरूपं तु सर्वोपाधिविवर्जितम्।
चेतन्यमात्मनो रूपं सर्वशास्त्रेषु कथ्यते॥'[१]

यह 'चैतन्य' शुद्ध है, महामाया से भी अकलुषित है, अमृतमय है, जगदानन्दात्मा है—

''परत्वादेव शुद्धो महामाययाप्यकलुषोऽथामृतमयो जगदानन्दात्मा आत्मा स्वभावो यस्य।''[२]

'**कुण्डलिनी**' और सर्वप्राणि-स्थित '**शब्दब्रह्म**' ही '**चैतत्य**' है। आचार्य **लक्ष्मण देशिकेन्द्र** की दृष्टि यह है कि—

(१) **चैतन्य** ही 'शब्दब्रह्म' (नाद) है।

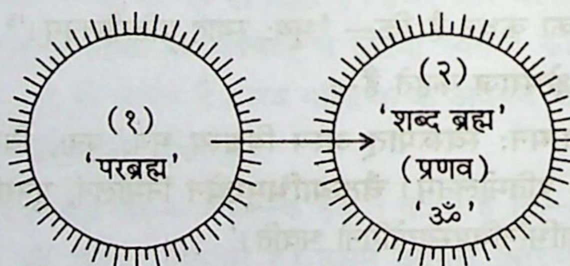
(२) शब्दब्रह्म ही '**चैतन्य**' है।

(३) 'शब्दब्रह्म' (नाद) ही प्राणियों के शरीर में कुण्डलिनी के रूप में अवस्थित है। अत: **नाद रूप 'चैतन्य' कुण्डलिनी शक्ति** है।

(४) '**चैतन्यमात्मा**' कहकर सूत्रकार ने **चैतन्य को आत्मा** स्वीकार किया है। सारांश है— (१) '**चैतन्य**' शब्दब्रह्म या **ॐकार** है। (२) '**चैतन्य**' पिण्ड में स्थित '**कुण्डलिनी शक्ति**' है। (३) '**चैतन्य**' आत्मा है।

तन्त्र के अनुसार परात्पर सत्ता '**ब्रह्म**' (परमशिव) है। ब्रह्म अद्वैत, अखण्ड एक है तथापि उसके दो स्वरूप हैं—

ब्रह्म के दो रूप



मुमुक्षु का पुरुषार्थ या लक्ष्य है—

(१) 'शब्दब्रह्म' का सम्यक् ज्ञान।

(२) 'शब्दब्रह्म' को अतिक्रान्त करके 'परब्रह्म' की प्राप्ति।

---

१. श्रीनेत्रोद्योत (प्रथम पटल)।
२. नेत्रोद्योत (प्रथम पटल)।

'शब्द ब्रह्म' का सम्यक् ज्ञानपूर्वक उसका अतिक्रमण

परमतत्त्व रूप चैतन्य का साक्षात्कार।

"शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।"

'परब्रह्म' की प्राप्ति— आत्मा चैतन्य का साक्षात्कार 'परब्रह्म' की प्राप्ति का उपाय है।

'शब्दब्रह्म' 'शिव' और 'शक्ति' दोनों चेतन हैं— 'शिवश्च शक्तिश्च चिदेव तस्मात्।'[१]

'चैतन्य' का अर्थ

चेतन शब्द में ष्यञ् प्रत्यय लगाने से **'चैतन्य'** शब्द व्युत्पन्न या निष्पन्न होता है। (चेतना=चित्+युच्+टाप्)। **'चेतन'** का सामान्य अर्थ है सजीव। प्राणी। जीवात्मा। चेतनायुक्त। **'चेतना'** का सामान्य अर्थ है— संज्ञा। बोध। सजीवता। विवेक। जीवन। बुद्धि। समझ। जान।

'माहेश्वर तन्त्र' में कहा गया है कि **'सत्व'** ही चेतन है। (**'सत्व' का अर्थ** है— होने का भाव, अस्तित्व, पैदायशी गुण। प्रकृति। जीवन। सार। सात्विक प्रभाव। सतोगुण।) मा. तं. के ज्ञानखण्ड (२०/६८) में कहा गया है—

'सत्वं तु **चेतनं** विद्धि तमो विद्याद् चेतनम्।
रजस्तदुभयात्मत्वाच्चेतनाचेतनात्मकम्॥'

व्यापक अर्थ लेने पर **'चैतन्य'** शब्द मात्र सतोगुण के अर्थ का ही अभिव्यञ्जक नहीं है प्रत्युत् यह **'अस्तित्व'**, **'जीवन'** एवं **'बोध'** तीनों अर्थों का ज्ञापक है। परमात्मा तो त्रिगुणातीत होकर भी **चेतन** है फिर चेतन शब्द केवल सतोगुण का वाचक कैसे रह सकता है?

सोमानन्दपाद की दृष्टि— आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि आत्मा चिद्रूप है अतः जहाँ-जहाँ चिद्रूपत्व है वहाँ वहाँ आत्मा अवश्य है और जहाँ आत्मा है वहाँ-वहाँ चैतन्य भी है क्योंकि—

'स एवात्मा सर्वदेहव्यापकत्वेन वर्तते।
अन्तःपश्यदवस्थैव चिद्रूपत्वमरूपकम्॥'

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि— आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि **चैतन्य ही आत्मा** है अतः—

१. सौभाग्य भास्कर (१२९)।

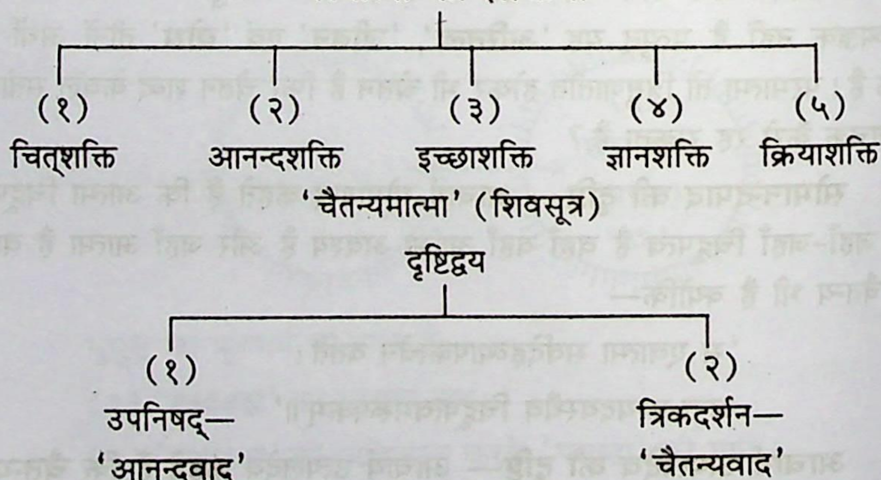
'या अन्तःपश्यदवस्था भोक्तृतारूपा ज्ञेयरूपशून्यं।
चिद्रूपत्वं **चैतन्यमात्रं स एवात्मा** कथ्यते॥'[१]

वेदान्ती संक्षेपशारीरककार की दृष्टि— संक्षेपशारीरककार ने ब्रह्मवादी होते हुए भी यह स्वीकार किया है कि उपासना-भूमि में चित् शक्ति (चैतन्यात्मिका शक्ति) को विस्मृत करके अग्रपद न हुआ जा सकता—

'चिच्छक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते,
सत्यैवास्य जडापरा भगवतः शक्तिस्त्वविद्यात्मिका।
संसर्गाच्च मिथस्तयोर्भगवतः शक्त्योर्जगज्जायते,
सच्छक्त्या सविकारया भगवतश्चिच्छक्तिरुद्रिच्यते।'
इत्येवं कथयन्ति केचिदपरे श्रद्धालवस्तत्पुनः,
कस्याञ्चिद् भुवि सम्मतं च विदुषां नेष्टं तु भूम्यन्तरे।
कर्मोपास्तिविधानभूमिषु तथा तत्सम्मतं निर्गुणो,
तत्त्वे तत्परवेदवाक्यविषये त्वालोचिते नेष्यते॥ (२२८/३अ.)

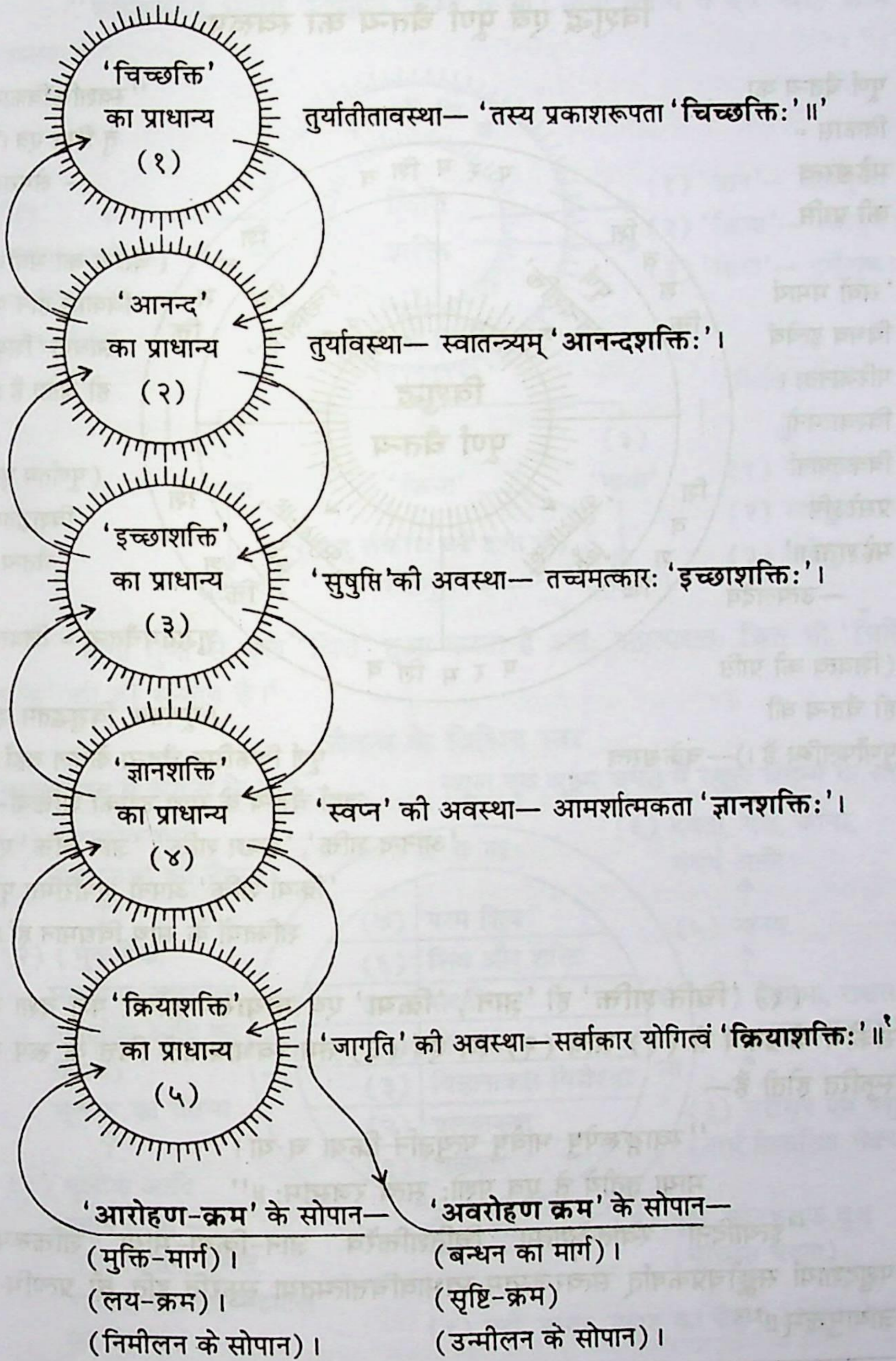
तन्त्राम्नाय में 'चैतन्य' का सर्वोच्च स्थान

"आनन्दं ब्रह्म' एवं 'आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्'— कहकर वेदान्तशास्त्र एवं औपनिषदिकदर्शन ने 'आनन्द' को सर्वोपरि तत्त्व माना और उसे ही आत्मा और परमात्मा का स्वस्वरूप कहा किन्तु त्रिकाचार्यों ने 'चैतन्य' को सर्वोपरि तत्त्व माना।



---

१. शिवदृष्टि वृत्ति।
२. वामदेव भट्टाचार्य।



---

१. अभिनव गुप्त (तन्त्रालोक)। वामदेव भट्टाचार्य

विशुद्ध एवं पूर्ण चैतन्य का स्वरूप

पूर्ण चैतन्य का विकास = **महेश्वरत्व की प्राप्ति**

'सर्वो ममायं विभव इत्येवं परिजानतः। विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि **महेशता**॥'
—उत्पलदेव

(शिवत्व की प्राप्ति ही चैतन्य की पूर्णोपलब्धि है।)—चक्रेश्वरत्व

"स्वशक्तिविकासे तु शिव एव।"
— क्षेमराज

(चैतन्य का सर्वोच्च विकास होने पर साधक 'शिव' हो जाता है।)

(पूर्णतम एवं विशुद्धतम चैतन्य)

शुद्धतमचैतन्य = शिवत्व

(पूर्णतम, विशुद्धतम एवं पूर्ण विकसित चैतन्य केवल वहाँ है जहाँ चैतन्य के साथ उसकी शक्तियाँ— 'आनन्द शक्ति', 'इच्छा शक्ति', 'ज्ञान शक्ति' एवं 'क्रिया शक्ति' अपनी अपरिमित पूर्ण शक्तियों के साथ विद्यमान हों।)

(१) **'चिति शक्ति'** ही **'ज्ञान'**, **'क्रिया'** एवं **मायारूप** होकर पशु दशा में संकोच के प्रकर्ष से (१) सत्व (२) रज एवं (३) तम स्वभाववाले चित्त के रूप में स्फुरित होती है—

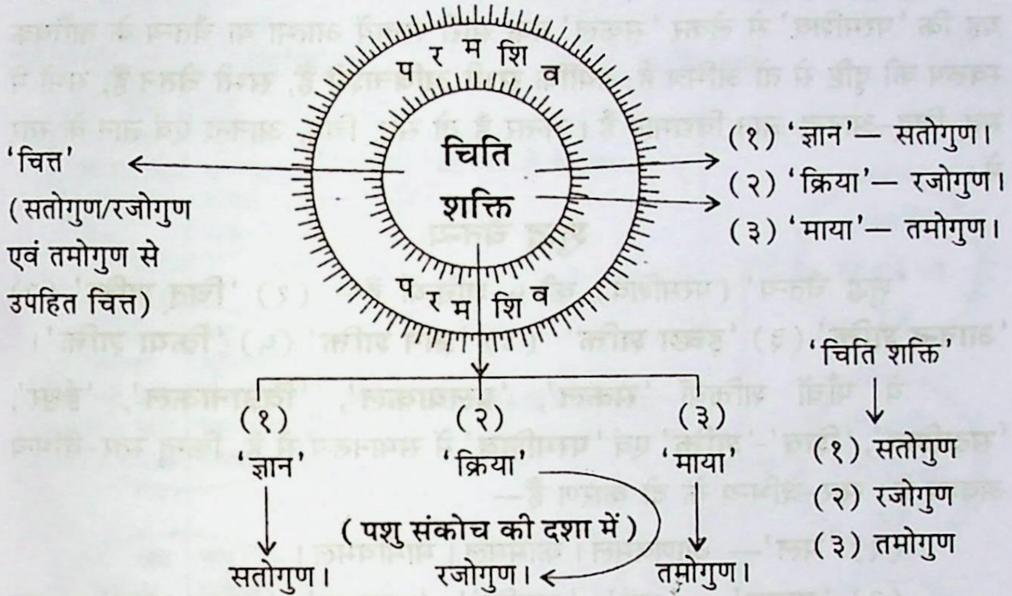
"स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।
माया तृतीये ते एव पशोः सत्वं रजस्तमः॥"

"इत्यादिना स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञान-क्रिया-माया शक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्वरजस्तमःस्वभावचित्तात्मतया स्फुरति इति श्री प्रत्यभिज्ञायामुक्तम्॥"[१]

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ५)।

''स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या। माया तृतीये ते एव पशोः सत्वं रजस्तमः ॥''

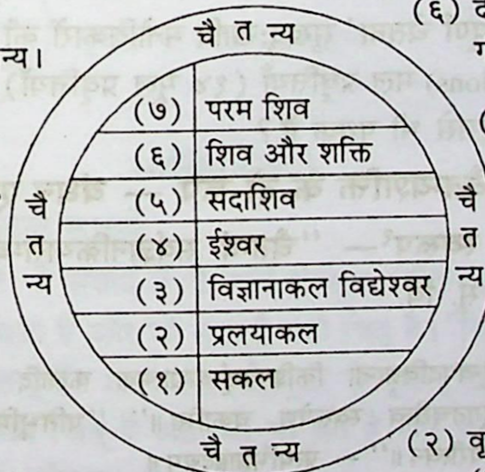


तीनों गुणों से युक्त 'चित्त' हुआ करता है अतः अप्रत्यक्षतः चित्त भी 'चिति शक्ति' की ही सन्तान है।[1]

चैतन्य के विभिन्न स्तर

सूक्ष्म जगत में चैतन्य के स्तर

(३) सत्यलोकवासी
मुक्तात्माओं का चैतन्य।
↑
(२) (भुवर्लोक,
महर्लोक, जनलोक,
तपोलोक आदि का
चैतन्य)
भूलोक का चैतन्य
↑
(१) भूलोक आदि
स्थूल लोक —
तल, वितल, सुतल,
पाताल, रसातल, महातल
का चैतन्य।



स्थूल एवं सूक्ष्म जगत में स्थूल चैतन्य के स्तर

(६) देवता, यक्ष, कींनर,
गंधर्व आदि।
↑
(५) मानव
↑
(४) प्रेतात्मा, राक्षस
(दुष्ट आत्मायें)
↑
(३) सरीसृप एवं पशु
(अर्ध विकसित चेतना)

(२) वृक्ष, कीटभक्षक वृक्ष
(मूर्च्छित चेतना)
↑
(१) नदी, प्रस्तर, पहाड़ का चैतन्य (सुषुप्त चेतना)

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

'परमशिव' से लेकर 'सकल' पर्यन्त सभी सत्तायें चेतन हैं। इन सभी के चेतन होने पर भी सभी के चैतन्य-स्तर (चैतन्य स्वरूप में नहीं) में भिन्नता है। तात्पर्य यह कि 'परमशिव' से लेकर 'सकल' तक सारी सत्तायें आत्मा या चैतन्य के तात्त्विक स्वरूप की दृष्टि से तो अभिन्न हैं; क्योंकि **सभी अविनाशी हैं, सभी चेतन हैं,** सभी में सत्-चित्-आनन्द-ज्ञान विद्यमान है। अन्तर है तो सत्, चित्, आनन्द एवं ज्ञान के स्तर में।

शुद्ध चैतन्य

'शुद्ध चैतन्य' (परमशिव) की ५ शक्तियाँ हैं— (१) **'चित् शक्ति'** (२) **'आनन्द शक्ति'** (३) **'इच्छा शक्ति'** (४) **'ज्ञान शक्ति'** (५) **'क्रिया शक्ति'**।

ये पाँचों शक्तियाँ '**सकल**', '**प्रलयाकल**', '**विज्ञानाकल**', '**ईश्वर**', '**सदाशिव**', '**शिव**'-'**शक्ति**' एवं '**परमशिव**' में समानरूप से हैं, किन्तु स्तर-वैभिन्य अवश्य है। स्तर-वैभिन्य के दो कारण हैं—

(१) '**मल**'— आणवमल। कार्ममल। मामीयमल।

(२) '**प्रत्यय**'— 'अहं'। 'अहमिदं'। 'इदमहम्'। 'अहञ्च इदञ्च'। —का विमर्शन॥ (भिन्न भिन्न परामर्श)।

प्र.— चैतन्य का आदर्शस्वरूप क्या है?

प्र.— पूर्ण शुद्ध चैतन्य किसे माना जाय?

प्र.— चैतन्य अपने पूर्णतम स्तर पर व्यक्त होने पर किस स्वरूप का होता है?

प्र.— क्या '**पूर्ण चेतना**' सुखदु:खादि मनोविकारों की चेतना, भावना, आवेग (Feeling and Emotions) मल प्रवृत्तियाँ (१४ मूल प्रवृत्तियाँ) संवेदना, अनुभूति एवं विचारणामात्र है या इससे भी पृथक है?

एक ही चैतन्यशक्ति के दो रूप — बंधन एवं निर्वाण

चैतन्य का स्वरूप[१]— ''**चैतन्यं** सर्वज्ञानक्रियासम्बन्धमयं परिपूर्णं स्वातन्त्र्यम्॥'' — शि. सू. वि.

---

१. ''**पशुभूमिकायां** शून्यपदविश्रान्ता किञ्चित्कर्तृत्वाद्यात्मक कलादि शक्त्यात्मना खेचरीक्रमेण गोपितपारमार्थिकचिद्गतचरीत्व स्वरूपेण चकास्ति॥'' ''**पतिभूमिकायां** तु सर्वकर्तृत्वादि शक्त्यात्मकचिद्गगनचरीत्वेन॥'' — प्रत्यभिज्ञाहृदयम्॥

(१) **चैतन्य— 'चैतन्य**मिति भावान्तः शब्दः स्वातन्त्र्यमात्रकम्।'

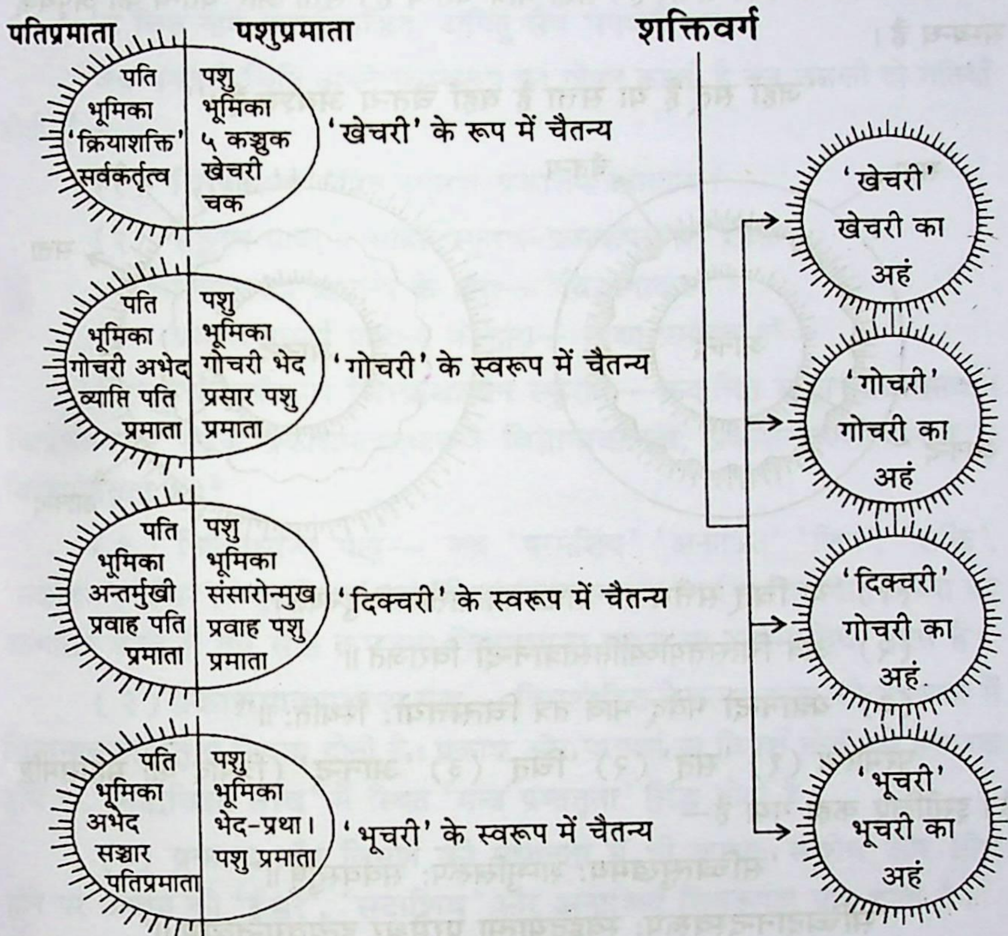
(२) **चैतन्य— 'चितिः** प्रत्यवमर्शात्मा' (ई. प. १.५.१३)।

(३) **चैतन्य**— 'चैतन्यमात्मनो रूपं सिद्धं ज्ञानक्रियात्मकम्' —शि. सू. वि.

(४) **चैतन्य**— 'चैतन्यं सर्वेज्ञानक्रियामयं परिपूर्णं स्वातन्त्र्यम् उच्यते॥' —शि. सू. वि.

शक्ति चक्र और तन्निहित 'अहं'

"**चिदाकाश**" में विचरण करने वाली शक्तियाँ : '**चिद्गगनचरी**'॥



सर्वचैतन्यवाद

'चैतन्य' और अन्य अनन्त सत्तायें

सृष्टि में जितनी भी सत्ताएँ हैं वे सभी चित्तत्व (चैतन्य) के ही विभिन्न रूप हैं। जो '**चित्**' है वही सत्ता है और जो सत्ता है वही चित् है। 'चित् तत्त्व' और 'सत्ता' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अत: एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह कि **सत्ता मात्र चित्** है अत: जो भी सत है और जहाँ तक उसका प्रसार है वहाँ तक सर्वत्र चित् (चैतन्य) है—

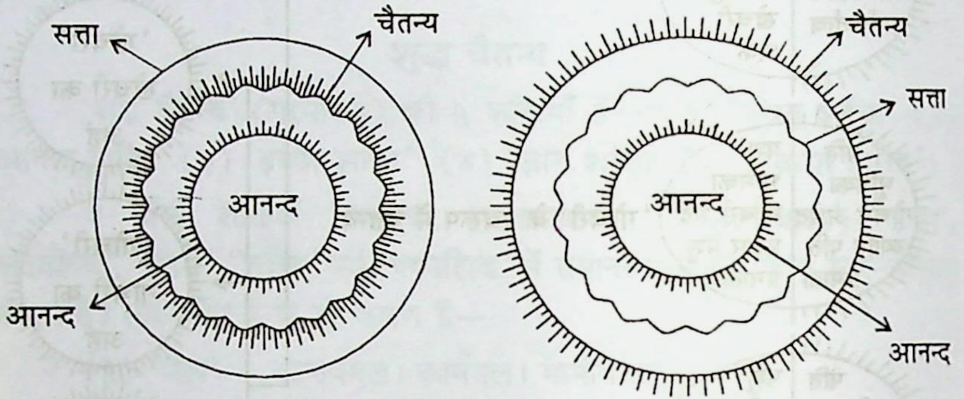
'या चित् सत्तैव सा प्रोक्ता सा सत्तैव चिदुच्यते॥"[१]

---

१. श्री रसान्वय ('परिमल' में उद्धृत)।

कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ भी कुछ है और जहाँ कहीं भी कुछ होने का भाव है वह चित् छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं है। सारांश यह कि **'सत्ता'** चित् का ही अपर पर्याय या स्वरूपान्तर है। सत्ता मात्र चैतन्य है। सत्ता और चैतन्य का अपृथक् सम्बन्ध है।

''जहाँ सत् है या सत्ता है वहाँ चैतन्य अवश्य है।''



(१) 'या **चित् सत्तैव** सा प्रोक्ता सा सत्तैव चिदुच्यते।'

(२) 'अत्र चित्सत्तयोर्व्याप्तिस्तत्र**ानन्दो** विराजते॥'

(३) '**यत्रानन्दो** भवेद् भावे तत्र **चित्सत्तयोः** स्थितिः॥'[१]

परमात्मा (१) **'सत्'** (२) **'चित्'** (३) **'आनन्द'** (त्रिपाद की महासमष्टि है। इसीलिए कहा गया है—

'**सच्चित्सुखमयः** शम्भुस्त्रिरूपः सर्ववस्तुषु॥'

'सच्चिदानन्दस्वरूपः स्वहृदयात्मा परमेश्वर इत्यवगन्तव्यम्॥'

जहाँ चैतन्य नहीं है वहाँ किसी भी सत्ता की सम्भावना नहीं है; क्योंकि ऐसा कोई जड़ पदार्थ भी नहीं है जो पूर्णतः चैतन्यशून्य हो।

'चितिशक्ति' ही चित्त बन जाती है

'सङ्कोचप्राधान्ये तु शून्यादिप्रमातृता। एवमवस्थिते सति, **'चितिरेव'** सङ्कुचित-**ग्राहकरूपा** चेतनपदात् अवरूढा अर्थग्रहणोन्मुखी सती चेत्येन नीलसुखादिना सङ्कोचिनी उभयसङ्कोचसङ्कुचितेव चित्तम्॥''[२]

---

१. श्री रसान्वय।
'सन्नित्यत्र या सत्तोक्ता सैव चित्त्वमुच्यते। सत्वचित्तयोश्च सामरस्यमानन्दः॥' (परिमल)

२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

सूत्र (५)— 'चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्॥' (५)[1]

चित्त कौन है? यह मात्र चितिशक्ति मात्र है।

'न चित्त नाम अन्यत्किञ्चित्, अपितु सैव भगवती तत्॥'

जब भगवती चिति अपने स्वस्वरूप का गोपन करती है तब उसकी दो गतियाँ होती हैं—

(१) चित्त्प्राधान्य सहित स्फुरण=प्रकाशमात्रप्राधान्य।

(२) सङ्कोच प्राधान्य सहित स्फुरण=प्रकाशपरामर्श प्राधान्य
प्रकाशमात्र प्राधान्य के द्वारा— '**विज्ञानाकल**'।
प्रकाशपरामर्श प्राधान्य के द्वारा— विद्या प्रमातृता॥[2]

('**सङ्कोचं** गुणीकृत्य **चित्त्प्राधान्येन** स्फुरति— कदाचित् **सङ्कोचप्रधानतया**। चित्प्राधान्यपक्षे सहजे प्रकाशमात्रप्रधानत्वे **विज्ञानाकलता**, प्रकाशपरामर्शप्रधानत्वे तु **विद्याप्रमातृता**॥')[3]

(१) चित्प्राधान्य पक्ष— जब 'परमशिव' 'अनाश्रित' 'शिव', 'शक्ति', 'सदाशिव', 'ईश्वर', 'शुद्धविद्या' एवं 'विज्ञानाकलप्रमातृता' पर्यन्त चित्प्रधान अध्वा का आभासन करते हैं तब सृष्टि क्रमजन्य **चित्प्राधान्य सहज या स्वाभाविक होता है।**

(२) प्रकाशमात्रप्राधान्य पक्ष— विमर्शरहित केवल प्रकाश की प्रधानता में **विज्ञानाकलमातृता** निष्पन्न होती है। प्रकाश और परामर्श या विमर्श दोनों की प्रधानता होने पर '**शुद्धविद्या तत्त्व**' में स्थित '**मन्त्र प्रमातृता**' सिद्ध होती है।

(३) **प्रकाश और विमर्श की प्रधानता** में भी क्रमशः सङ्कोच और क्षीण होने पर आत्मा को '**ईश्वर**', '**सदाशिव**' और **अनाश्रित** शिवरूपता प्राप्त होती है।

(४) चित्प्राधान्य (समाधि बल से) अर्जित होने पर शुद्धाध्वप्रमातृता क्रमशः प्रकृष्ट होती जाती है।

(५) चित्सङ्कोच का प्राधान्य होने पर '**शून्यप्रमातृता**' ('प्रलयाकलरूपता' और 'सकलप्रमातृता') का विकास होता है।

(६) इस प्रकार चिति ही **सङ्कुचित ग्राहकरूपता** धारण करके, अर्थग्रहण की ओर उन्मुख होती हुई नील, सुख आदि चेत्यों (विषयों) द्वारा सङ्कोच ग्रहण करके '**चित्त**' का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। पति (परमेश्वर) की 'ज्ञान' 'क्रिया 'माया'

---

१. शिवसूत्र।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ५)।
३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ५)।

पशुदशा में 'सत्वगुण', 'रजोगुण' एवं 'तमोगुण' बन जाती हैं।

(७) **प्रमाता**— 'अनाश्रित **शून्यमाता बुद्धिमाता** सदाशिवः।
ईश्वरः **प्राणमाता** च विद्या **देहप्रमातृता**।

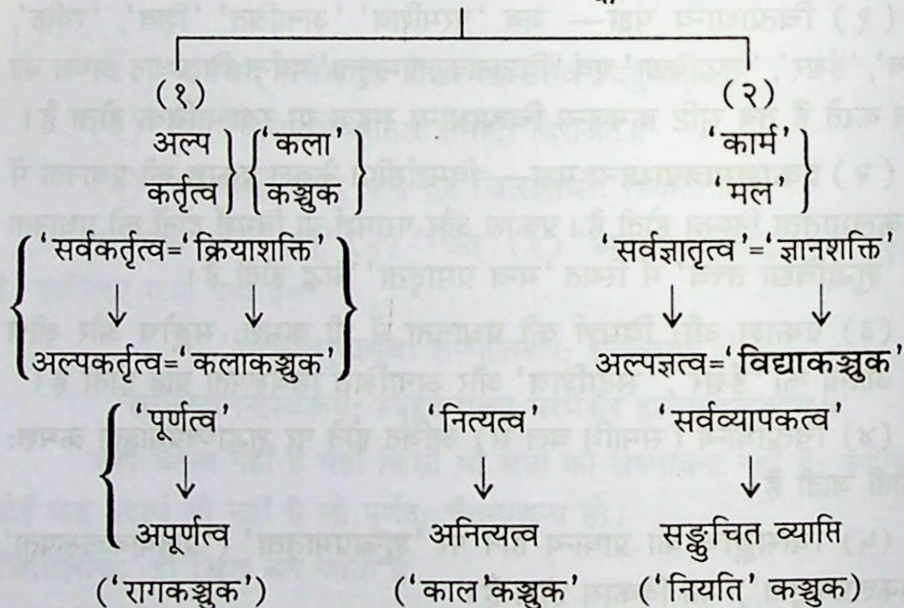
(८) देह और प्राण तथा शून्यभूमि **चित्तप्रधान** है। मायाप्रमाता (सकल या जीव) **चित्तमय** है किन्तु शिव चित्तमय नहीं है।

सङ्कोच-भूमि और चैतन्यस्वरूप में मालिन्य

सृष्टि की भेददशा या **चैतन्य के भेदस्तर** पर—

(१) 'क्रियाशक्ति' अपनी **सर्वकर्तृता शक्ति** को खोकर **अल्पकर्तृता** प्राप्त कर लेती है। इसी समय कर्मेन्द्रिय रूप सङ्कोच ग्रहण करके अत्यन्त परिमित होने पर शुभाशुभ कर्ममय स्वरूप धारण करके **'क्रियाशक्ति' 'कार्ममल'** बन जाती है। **'पञ्चकञ्चुक'** चैतन्य को मलिन बना देते हैं।

'क्रियाशक्ति' का सङ्कोच



आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज कहते हैं **'क्रियाशक्तिः'** क्रमेण **भेदे** सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रियरूपसङ्कोचग्रहणपूर्वम् अत्यन्तं परिमिततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं **'कार्ममलम्'**।

'तथा **सर्वकर्तृत्व-सर्वज्ञत्व-पूर्णत्व-नित्यत्व-व्यापकत्व** शक्तयः सङ्कोचं गृह्णाना यथाक्रमं— **कला-विद्या-राग-काल-नियति** रूपतया भान्ति। ('पञ्च-

कञ्चुक') 'तथाविधश्च अयं शक्तिदरिद्रः संसारी उच्यते' स्वशक्तिविकासे शिव एव॥''[१]

वाक् शक्ति और चैतन्य

'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता॥'' (ई. प्र. का.)

चितिशक्ति ही 'परावाक्' बन जाती है।

'तथा हि चित्प्रकाशात् अव्यतिरिक्ता नित्योदितमहामन्त्ररूपा पूर्णाहं विमर्शमयी या इयं **'परावाक्शक्तिः'** आदिक्षान्तरूपाशेषशक्तिचक्रगर्भिणी सा तावत् पश्यन्ती मध्यमादिक्रमेण ग्राहकभूमिकां भासयति॥'

अर्थात् चित्प्रकाश से अभिन्न, नित्य उदित, महामन्त्ररूप **'पूर्ण अहंविमर्शात्मक'** जो यह 'परावाक्' (नित्योदित और नादरूप वाक्) है, जिसके गर्भ में 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त समस्त शक्तिचक्र स्थित है, वही 'चितिशक्ति'— 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' वाक् के रूप में प्रसृत हो जाती है और ग्राहक भूमिका आभासित करती है।

'**पूर्णत्वात्** परा, वक्ति विश्वं अभिलपति प्रत्यवमर्शेन इति च वाक्॥'

—(ई. प्र. वि.)

'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' भगवती 'चितिशक्ति' (या परम चैतन्य) के ही विभिन्न रूप हैं।

अधिष्ठात्री देवता	वर्ग
(१) ब्राह्मी	कवर्ग
(२) माहेश्वरी	चवर्ग
(३) कौमारी	टवर्ग
(४) वैष्णवी	तवर्ग
(५) वाराही	पवर्ग
(६) ऐन्द्री	यवर्ग
(७) चामुण्डा	शवर्ग
(८) महालक्ष्मी	अवर्ग

'भगवती चिति' ही 'अष्ट मातृका माताओं' के रूप में रूपायित होकर वर्णमाला पर आधिपत्य स्थापित करके विराजमान है। चैतन्य (चितिशक्ति) ही वाक् है।

उत्पलदेव कहते हैं—

चितिः' प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ९)।

स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मात्मनः ॥'

— ई. प्र. का (१३)

चितिशक्ति (चैतन्यतत्त्व) ही जगत एवं जागतिक शक्तियाँ हैं

विश्व की परात्परा चैतन्य शक्ति (चितिशक्ति) ही 'वामकेश्वरी' शक्ति के नाम से विश्व का वमन करती है; इसीलिए उसका नाम 'वामा' भी है।

राजानक क्षेमराज कहते हैं— ''किञ्च चितिरेव भगवती विश्ववमनात् संसार वामाचारत्वा च वामेश्वर्याख्या सती, खेचरी-गोचरी-दिक्चरी-भूचरी रूपैः अशेषैः प्रमातृ अन्तःकरण बहिष्करणभावस्वभावैः परिस्फुरन्ती।''

'**पशुभूमिकायां** शून्य पद विश्रान्ता किञ्चित्कर्तृत्वाद्यात्मककलादिशक्त्यात्मना खेचरीक्रमेण गोपितपारमार्थिक चिद्गगनचरीत्वस्वरूपेण चकास्ति,

'भेदनिश्चयाभिमानविकल्पनप्रधानान्तःकरणदेवीरूपेण गोचरीक्रमेण गोपिता-भेदनिश्चयाद्यात्मक पारमार्थिकस्वरूपेण प्रकाशते।[1]

अर्थात् **भगवती चितिशक्ति** ही विश्व का वमन (बहिः प्रकाशन) करने के कारण या संसार रूप वाम (विपरीत) आचरण करने के कारण 'वामेश्वरी' का रूप ग्रहण करती हुई (१) '**खेचरी**' (२) '**गोचरी**' तथा (३) '**दिक्चरी**' एवं (४) '**भूचरी**' रूप प्रमाता, अन्तःकरण, बाह्यकरण और वस्तुस्वभावरूप में स्फुरित होती हैं।

पशुभूमिका में शून्यपद को ग्रहण करके पारमार्थिक '**चिद्गगनचरी**' का स्वरूप छिपाकर, किञ्चित्कर्तृत्वादिरूप कला आदि शक्त्यात्मक '**खेचरी**' चक्र रूप में प्रकाशित होती है। अभेदनिश्चयादिरूप पारमार्थिक स्वरूप को छिपाकर, भेद-निश्चय, भेदाभिमान तथा भेदकल्पना ही जिसमें प्रधान है— ऐसे अन्तःकरणों की देवीरूप '**गोचरी चक्र**' के रूप में प्रकाशित होती है।[2]

अभेदप्रथात्मक पारमार्थिक रूप जिसमें आच्छादित है तथा भेद का आलोचन जिसमें प्रधान है— ऐसी बाह्य कारणों की देवी 'दिक्चरी चक्र' के रूप में भी वही '**चिति**' उदित होती है और सर्वात्मरूप को छिपाकर, भेदाभासस्वभाव, प्रमेयरूप '**भूचरी चक्र**' के रूप में पशु-हृदयों को मूढ़ बनाती हुई शोभित होती है।

(१) '**पतिभूमिका**' में तो सर्वकर्तृत्वादि शक्तिरूप '**चिद्गगनचरी**'।

(२) अभेदनिश्चयादिरूप '**गोचरी**'।

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र १२)।

२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

(३) अभेदालोचनाद्यात्मक '**दिक्चरी**' एवं

(४) निजाङ्गस्वरूप अद्वैतप्रथासारभूत प्रमेयात्मक '**भूचरी**' रूप में पतिहृदय को विकसित करती हुई स्फुरित होती है।

ऐश्वर्यशक्ति, संसारित्व एवं चैतन्य-शक्ति

दार्शनिक भट्टदामोदर ने ठीक ही कहा है कि—

''पूर्णप्रमाता, परिमितप्रमाता तथा उसके अन्तःकरण, बाह्यकरण एवं प्रमेयगत वामेश्वरी आदि शक्तियाँ ज्ञात होने पर मुक्तिप्रदा एवं अज्ञात होने पर बन्धप्रदा बन जाती है।''—

(१) ''पूर्णवच्छिन्नमात्रन्तर्बहिष्करणभावगाः।
वामेशाद्याः परिज्ञानाज्ञानात् स्युर्मुक्तिबन्धदाः॥''

(२) ''सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता **सद्ध्युपपादिका**॥''

(३) ''स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः।
यतः शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भवः॥''

(४) ''परामृतरसापायस्तस्य यः प्रत्ययोद्भवः।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचरः॥''

(५) ''सैव च बन्धकारणम् अज्ञाता, ज्ञाता सा च पुनः परापरसिद्धिप्रदा भवति पुंसाम्॥''[१]

चैतन्य और अग्नि— 'चितिशक्ति' ही संसार का ग्रास कर लेने के कारण '**अग्नि**' कही जाती है। यही नीलपीत आदि पदार्थों के इन्धन को निगल कर आत्मसात कर लेती है।[२] '**ग्रसमानास्ततो** वन्दे देव विश्वं भवन्मयम्॥'[३] 'चितिरेव विश्वग्रसनशीलत्वात् वह्निः असौ एव.....नीलपीतादिप्रमेयेन्धनं स्वात्मसात् करोति॥''[४] 'बललाभे विश्वमात्मसात् करोति॥' (शि. सू. १५)।

चैतन्य ही आत्मबल है और इस बल से अनन्त शक्तियाँ प्राप्त होती हैं

चिति, देह, प्राण आदि आवरणों को निमज्जित करके स्वरूप को उन्मिषित करती हुई '**बल**' के नाम से कही जाती है —

---

१. स्पन्दकारिका।

२. प्र. हृ.।

३. उत्पलदेव।

४. प्र. हृ., 'चितिवह्निरवरोहपदे छन्नोऽपि मात्रया मेयेन्धनं प्लुष्यति।'' —शि. सू., (१४)।

(१) 'चितिरेव देहप्राणाद्याच्छादननिमज्जनेन स्वरूपं उन्मग्नत्वेन स्फारयन्ती' बलम्'।

(२) 'एवं च 'बललाभे' उन्मग्नस्वरूपाश्रयणे, क्षित्यादि सदाशिवान्तं विश्वम् आत्मसात् करोति, स्वस्वरूपाभेदेन निर्भासयति'।

(३) 'बललाभे विश्वमात्मसात् करोति।' (शि. सू. १५)

अर्थात्— (१) 'चिति (चैतन्य शक्ति)' ही, देह, प्राण आदि आवरणों को निमज्जित करके स्वरूप को उन्मिषित करती हुई 'बल' के नाम से कही जाती है।

(२) इस प्रकार **बल-प्राप्ति** (उदित स्वरूप) का आश्रय ग्रहण करने पर योगी **पृथ्वी से लेकर सदाशिव पर्यन्त विश्व को आत्मसात् कर लेता है** अर्थात् अपने स्वरूप से अभिन्न रूप में प्रकाशित करता है।

(३) 'बल' की प्राप्ति के बाद संसार को स्वस्वरूपाभिन्न बना लेता है॥ (सूत्र १५॥)

(४) **स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि**— स्पन्दकारिकाकार कहते हैं कि 'चिति-शक्ति रूप बल को अधिष्ठित करके मन्त्र सर्वज्ञत्व आदि **'बल'** से अधिकार में प्रवृत्त होते हैं (सर्वज्ञत्वादि, सर्वकर्तृत्वादि शक्तियों से सम्पन्न हो जाते हैं)—

'बल' (चितिशक्ति की ऐश्वर्य शक्ति) से साधक शिव के समान बन जाता है—

'न हीच्छानोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्तते।
अपि त्वात्मबलस्पर्शात् पुरुषस्तत्समो भवेत्'॥ ८॥[1]

सब कुछ चैतन्य ही है

देह, सुख, नील आदि जो भी आन्तर या बाह्य विषय अनुभव में आता है दिखाई पड़ता है, बुद्धि के द्वारा निश्चित किया जाता है, मन के द्वारा स्मृति या संकल्प का विषय बनता है वहाँ सर्वत्र भगवती चिति ही स्फुरित होती है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार के जितने भी विषय हैं और उनकी जितनी भी क्रियायें हैं वे सभी भगवती चिति शक्ति के विभिन्न रूपान्तर हैं; क्योंकि उन सभी में उन्हीं भगवती चिति-शक्ति की क्रीड़ा चलती रहती है और उनमें सारी भूमिकायें उन्हीं की हैं और सारी शक्तियाँ भी उन्हीं की हैं। ('एवम् एषा सर्वदशासु एकैव **चितिशक्तिः** विजृंभमाणा यदि तदनुप्रवेश तदवष्टम्भयुक्त्या समासाद्यते, तत् तदावेशात्.....करणोन्मीलन निमीलन-क्रमेण सर्वस्य सर्वभयत्वात् तत्तत्संहारादौ अपि सदा सर्वसंहारकारि सत् सहजसंवित्ति

१. स्पन्दकारिका (८)।

देवताचक्रम्...तत्र ईश्वरता साम्राज्यं तत्प्राप्तिः भवति परमयोगिनः।')

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— ''तथा हि देहसुख नीलादि यत् किञ्चित् **प्रथते, अध्यवसीयते, स्मर्यते सङ्कल्प्यते** वा तत्र सर्वत्रैव भगवती चितिशक्तिमयी प्रथा भित्तिभूतैव स्फुरति— तद् स्फुरणे कस्यापि अस्फुरणात् इति उक्तत्वात्॥''[१]

यदि वह स्फुरित न हो तो किसी का भी स्फुरण सम्भव नहीं— **''तदस्फुरणे कस्यापि अस्फुरणात्॥''**

अकेली चिति शक्ति ही जगत के अनन्त रूपों में स्फुरित हो रही है

'चिति' केवल भित्ति रूप से स्फुरित होती हुई, अपनी माया के द्वारा अवभासित देह, नील आदि जागतिक पदार्थों के तादात्म्य से जनित अभिमान के कारण भिन्न-भिन्न स्वभाववाली-सी प्रतीत होती है।[२]

मन्त्रवीर्यानुभूति और चैतन्य

जब तक चैतन्य का विकास नहीं होता तब तक मन्त्रवीर्य का प्रत्यक्षीकरण या अनुभूति नहीं होती।

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि

'स्पन्दसूत्र' में कहा गया है कि— प्रत्येक प्रकार के 'मन्त्र' उस चेतन, स्पन्दरूप **'आत्मबल'** के साथ तादात्म्य प्राप्त करने से ही **सर्वज्ञता** आदि ६ प्रकार के माहेश्वर बलों (सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, अप्रतिहत स्वातन्त्र्य, शक्ति का निर्बाध प्रसार, विश्वरूप में विकसित अनन्त शक्तियों का ऐश्वर्य)[३] को प्राप्त करके शोभित होते हैं। ऐसी स्थिति में वे मन्त्र किसी भी आकांक्षित कार्य को साधिकार सिद्ध करने हेतु संकल्पमात्र से ही सहज ही प्रवृत्त होते हैं और इन्द्रियों की भाँति उसे सम्पन्न कर देते हैं।[४]

मन्त्र और चैतन्य

मन्त्र चैतन्य की रश्मियाँ ही हैं

'मन्त्राश्चिन्मरीचयः'।

---

१. प्र. हृदयम्।

२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम्।

३. माहेश्वर बल।

४. ''तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः। प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्॥'' (स्पन्दकारिका : २६) तदास्याकृत्रिमो धर्मो ज्ञत्वकर्तृत्वलक्षणः। यतस्तदीप्सितं सर्वं जानाति च करोति च॥ (स्पन्दकारिका)

सर्वज्ञत्वादि माहेश्वर बलों की प्राप्ति और चैतन्य

'चैतन्य' का अर्थ मात्र **ऐन्द्रिय संवेदनायें प्राप्त करना,** मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार (अन्तःकरणं चतुष्टय) की क्रियाओं की अभिव्यक्ति होना, चिन्तन-मनन आदि करना मात्र नहीं है। **'चैतन्य'** अपने विकसित अर्थ में परमात्मा की स्वसमवायिनी निजा शक्ति है अतः 'चैतन्य' परमात्मा की अघटनघटनापटीयसी, सर्व-कर्तृत्वशीला, सर्वज्ञातृशीला, सर्वव्यापक, चिरन्तन, अचिन्त्य दिव्य शक्ति है। इसमें ब्रह्माण्ड की ही नहीं परमात्मा की भी सारी शक्तियाँ निहित हैं इसीलिए कहा गया है कि जब चितिशक्ति 'परावाक्' 'पश्यन्ती वाक्' 'मध्यमा वाक्' एवं 'वैखरीवाक्' के धरातल पर विभिन्नस्तरीय 'मन्त्र' बनती है तब मन्त्र वर्ण-संघटन मात्र नहीं रह जाते प्रत्युत् सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व आदि की शक्ति से युक्त हो जाते हैं। 'तदाक्रम्य बलं मन्त्राः **सर्वज्ञबलशालिनः। प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्।**

चैतन्य सर्वाधार (भित्ति) है

'भित्तिभूतैव स्फुरित'— चितिशक्ति भित्ति के रूप में सर्वाधार के रूप में स्फुरित होती है।

अनन्त रूपों में केवल एक चितिशक्ति ही स्थित है

'वस्तुतस्तु एकैव असौ चितिशक्तिः' कहकर क्षेमराज ने इसी तथ्य की पुष्टि की है। कहा भी गया है—

'या चैषा प्रतिभा तत्तत्पदार्थक्रमरूषिता।
अक्रमानन्तचिद्रूपः प्रमाता स महेश्वरः।।'
'माया शक्त्या विभोः सैव भिन्नसंवेद्यगोचरा।
कथिता ज्ञानसङ्कल्पाध्यवसायादिनामभिः॥'

अर्थात्— ''भिन्न-भिन्न पदार्थों के, देशकाल परिपाटी रूप क्रम से उपरक्त (सब वस्तुओं की स्वप्रकाशरूप) जो यह परिच्छिन्न प्रतिभा है, पारमार्थिक रूप में प्रकाशमान होने के कारण वही अक्रम, अनन्त महेश्वर या देशकाल तथा स्वरूपगत परिच्छेदों से रहित चिद्रूप प्रमाता ही है॥''

''विभु की माया शक्ति के द्वारा भिन्न-भिन्न बाह्य एवं आभ्यन्तर वस्तु समूह का विश्रान्ति-स्थूल, वही प्रत्यवमर्शात्मक परावाक् रूप **चिति (परम चैतन्य) ही ज्ञान, संकल्प, अध्यवसाय, स्मृति** एवं **संशय** के नाम से कही गयी है''

चैतन्य और परभैरवता की प्राप्ति

समस्त दिशाओं एवं दशाओं में प्रस्फुरित एक ही **चिति शक्ति** यदि उसमें

प्रवेश तथा स्थिरता की युक्ति के द्वारा प्राप्त कर ली जाय तो उसमें समाहित होने से बाह्य एवं अन्तःकरणों के 'उन्मीलन'-'निमीलन' क्रम से समस्त वस्तुओं के सर्व होने के कारण उस वस्तु के संहार आदि कार्यों में भी सदैव सर्व सृष्टि और संहार के निष्पादक जो अमायीय आभ्यन्तर और बाह्य शक्तिपुञ्ज है **उसमें प्रभुत्व** स्थापित हो जाता है और परमयोगी को '**पर भैरव रूपता**' की प्राप्ति हो जाती है—

''तत्र ईश्वरता साम्राज्यं पर भैरवात्मता तत्प्राप्तिः भवति परमयोगिनः ॥''[१]

चैतन्य ही आत्मा है

काश्मीरीय शैव दार्शनिकों ने आत्मा के स्वरूप के विषय में एक निश्चित दृष्टि प्रस्तुत करते हुए भगवान शिव के शब्दों में कहा—

'**चैतन्यमात्मा**' (शिवसूत्र १.१)

अर्थात् चैतन्य ही आत्मा है।

आचार्य क्षेमराज ने इस सूत्र में निहित आशय को व्यक्त करते हुए यह कहा कि प्राचीनतर दार्शनिकों ने जो यह कहा था कि—

(१) शरीर ही आत्मा है ('**शरीरात्मवाद**')।

(२) प्राण ही आत्मा है ('**प्राणात्मवाद**')।

(३) बुद्धि ही आत्मा है ('**बुद्ध्यात्मवाद**')।

(४) शून्य ही आत्मा है ('**शून्यात्मवाद**')।

और इस प्रकार लोकायतिकों एवं चार्वाक-वैदिक-योगाचार-माध्यमिक मत के आचार्यों ने जो आत्मा सम्बन्धी दृष्टियाँ उपस्थित की हैं वे त्रिक दर्शन को मान्य नहीं हैं क्योंकि '**त्रिक दर्शन**' (काश्मीरीय तान्त्रिक शैव मत) यह मानता है कि—

'चैतन्य ही आत्मा' है।

''अथ च आत्मा क्व इति जिज्ञासून् उपदेश्यान् प्रति बोधयितुं, न शरीर-प्राण-बुद्धि-शून्यानि लौकिक-चार्वाक-वैदिक-योगाचार-माध्यमिकाद्यभ्युपगतानि आत्मा अपितु यथोक्तं चैतन्यमेव॥''[२]

''चैतन्यं उक्तं स एव आत्मा।''

यह चैतन्य ही भावाभावरूप विश्व का स्वभाव भी है।

विश्व का स्वभाव भी चैतन्य ही है

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— ''चैतन्यं उक्तं स एव आत्मा **स्वभावतः**....

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (आचार्य क्षेमराज)।

२. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१)।

भावाभावरूपस्य विश्वस्य जगतः॥ अचेत्यमानः कोऽपि कस्यापि कदाचिदपि स्वभावो भवति। चेत्यमानस्तु स्वप्रकाश चिदेकी भूतत्वात् चैतन्यात्मैव॥''[१]

'चैतन्य' और चित्त

'चित्त' अन्तःकरण चतुष्टय में से एक आन्तरिक करण है। चैतन्य अक्षर और नित्य है किन्तु चित्त क्षर एवं अनित्य है। 'चित्त' प्रकृति की सृष्टि है किन्तु चैतन्य प्रकृत्यातीत है तथापि चूँकि सारी सत्ताएँ तत्त्वतः चैतन्य की अपनी शक्ति का ही प्रसार हैं अतः 'चित्त' भी चैतन्य का ही रूपान्तर है।

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— आचार्य महेश्वरानन्द 'महार्थ मञ्जरी' की अपनी टीका '**परिमल**' में कहते हैं—

''**चित्तं** हि नाम चैतन्यपथावरोहाच्चेत्यसञ्चान्तश्चर्या चातुर्योपात्त सङ्कोच **चिच्छक्तिरित्यवधार्यते**॥''[२]

''तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्॥'' की प्रक्रिया द्वारा चैतन्य ने चित्त की भी सृष्टि करके उसमें प्रवेश कर लिया।

चैतन्य का अज्ञान ही 'बन्धन' है

'शिवसूत्र' में प्रथम सूत्र है (१) 'चैतन्यमात्मा' (२) ज्ञानं बन्धः। (प्रथमोन्मेष १/१, १/२)

आचार्य अभिनव गुप्त एवं महेश्वरानन्द की दृष्टि

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—

''चैतन्यमात्मज्ञानं बन्ध इत्यत्रसूत्रयोः।
संश्लेषेतरयोगाभ्यामयमर्थः प्रकाशितः॥''

इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार है— (१) 'चैतन्य ही आत्मा है' (२) 'ज्ञान बन्धन है'।

आचार्य अभिनव गुप्त इन दोनों सूत्रों को एक में जोड़कर 'चैतन्यमात्मा ज्ञानं बंधः॥' के स्वरूप में इसे स्वीकार करते हुए इसका अर्थ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

''चैतन्य' ही आत्मा है और इस तथ्य का अज्ञान ही बन्धन है॥''

---

१. शिवसूत्र विमर्शिनी (१/१)
''आत्मात् एव चैतन्य चित्क्रियाचितिकर्तृता'' कहकर आचार्य उत्पलदेव ने चित्क्रिया, चितिकर्तृता एवं चैतन्य सभी का मूल स्रोत आत्मा को ही माना है।

२. महार्थ मञ्जरी (का. ८)।

महेश्वरानन्द कहते हैं— ''श्रीशिवसूत्रेष्वकारप्रश्लेषा प्रश्लेषाभ्यां चैतन्यमात्माज्ञानं बन्ध इत्युक्तम् ॥''[१]

स्वातन्त्र्य और माया भी चिद्रसीभूत हैं

अनुशासनस्तोत्र में कहा गया है कि 'स्वातन्त्र्य' तो चिद्रूप है किन्तु जाड्य का विलापन करने पर स्वयं 'माया' भी चिद्रसीभूत दृष्टिगोचर होती है—

''स्वातन्त्र्यापरपर्यायमायाजाड्यविलापनात् ।
विलीय चिद्रसीभूतं विश्वानन्दमुपास्महे ॥''

चैतन्य भगवती ललिता का स्वस्वरूप है

''चैतन्य आत्मा है'' और ''अपनी **आत्मा** विश्वविग्रहा **ललिता देवता हैं**''— अतः 'चैतन्य' **आत्मा** एवं भगवती **ललिता** तथा **परात्पर देवता** का आत्मभूत स्वरूप है—

''स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा'' ''स्वात्मैव देवता''

— महेश्वरानन्द[२]

चिदाकाश में ही विश्व रूप आलेख्य चित्रित है

तन्त्राम्नाय में कहा गया है—

(१) चिदाकाशमये स्वाङ्गे विश्वालेख्यविधायिने ।
सर्वाद्भुतोद्भवभुवे नमो विषमचक्षुषे ॥

\+ \+ \+ \+ \+

(२) जगच्चित्रं समालिख्य **स्वात्मतूलिकयात्मनि** ।
स्वयमेव तदालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः ॥

चैतन्य और 'षडध्व'— षडध्व (कालाध्वा एवं देशाध्वा या शब्दाध्वा एवं अर्थाध्वा के ३-३ भेद) चैतन्य (चिन्मात्र) में ही सम्प्रतिष्ठित हैं—

'अध्वा समस्त एवायं चिन्मात्रे सम्प्रतिष्ठितः ।
यत्तत्र नहि विश्रान्तं तन्नभः कुसुमायते ॥'[३]

सर्वचैतन्यवाद और महर्षि वसिष्ठ

योगवासिष्ठकार की दृष्टि— योगवासिष्ठ में कहा गया है कि—

---

१. परिमल (का. १०) ।
२. म. मञ्जरी (४९) ।
३. तन्त्रालोक (८/३) ।

"चितिः सर्वं चितः सर्वं चित्सर्वं सर्वतश्च चित्।
चित्सत्सर्वात्मिकेत्येतद् दृष्टं तत्र मयाखिलम्॥"[१]

वसिष्ठ कहते हैं कि हे राम! '**चेतन में ही** सब कुछ है' **चेतन से ही सब** कुछ है। **चेतन** ही सब कुछ है **और चारों ओर से चेतन ही चेतन** है। यह जो दृश्यों का दर्शन होता है वह भ्रममात्र है। वह आकाश में प्रतीत होने वाले वृक्ष की मञ्जरी है। सब कुछ चेतनाकाश का ही स्वरूप है। ये जगत **चैतन्य समुद्र** के चञ्चल बुदबुदों की भाँति हैं।[२]

जिस पकार स्वप्न में **चिन्मयाकाश आत्मा** ही बाह्य एवं आभ्यन्तर पदार्थों के रूप से प्रकट होता है उसी प्रकार समाधि काल में ही यह समस्त दृश्य **प्रपञ्च चिन्मयाकाश रूप से ही स्थित था**। समस्त विश्व स्वच्छ **चिन्मयाकाशरूप** ही है। जितने पदार्थ हम लोगों की बुद्धि के विषय हैं ये सब के सब तथा यह निखिल प्रपञ्च स्वच्छ **चिन्मयाकाशस्वरूप** ही है। 'मैं' 'तुम' 'वह स्त्री' तथा 'वह' एवं 'यह' सब कुछ '**चिदाकाशरूप**' ही है। जैसे यह स्वप्नोपम व्यवहार चिदाकाश स्वरूप है उसी प्रकार तुम **मुझको**, इस **आत्मा को** तथा **जगत** को भी **चिदाकाशरूप** ही समझो।[३]

हे राम! दीवार में, आकाश में, पाषाण में, जल में तथा स्थल में सर्वत्र भिन्न-भिन्न पदार्थों के भीतर **चिन्मात्रपरमात्मा** ही अवस्थित हैं। (सर्ग ६३)॥

प्रश्न— **क्या है चिदाकाश?** वसिष्ठ जी राम से कहते हैं—

(१) **जिसमें** सब कुछ लीन हो जाता है, **जिससे** सबका प्रादुर्भाव होता है, **जो** सर्वरूप है, **जो** सब ओर व्याप्त है तथा **जो** नित्य सर्वमय है उस परब्रह्म परमात्मा को '**चेतनाकाश**' या '**चिदाकाश**' कहते हैं।

(२) जो स्वर्ग, भूतल, बाहर-भीतर तथा दूसरे में ज्योतिःस्वरूप के रूप में प्रकाशित हो रहा है वह '**चिदाकाश**' है।

(३) प्रलय की निद्रा के निवृत्त होने पर **जिससे** विश्व प्रकट होता है और **जिसकी** विक्षेपशक्ति के शान्त होने पर उसका लय हो जाता है उस परमात्मा को '**चिदाकाश**' कहते हैं।

(४) **चिदाकाश** का जो स्वानुभवैकगम्य निराकार रूप है वही भूतल आदि के रूप से 'दृश्य' नाम धारण करके प्रतीति का विषय है।[४]

१. यो. वा. (नि. प्र ३० ६/२३)।
२. नि. प्र. ३० (सर्ग ६०-६१)।
३. यो. वा. (नि. प्र. सर्ग (२२)।
४. यो. वा. (नि. प्र. १०६-१०७)।
'न केवल चिदाकाश ही स्वप्न और जाग्रत के रूप में स्फुरित हो रहा है।'

'चैतन्य' सारे भेदों में वर्तमान रहने पर भी स्वयं अभेद है

'चैतन्य' जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में भी वर्तमान है किन्तु उनके भिन्न-भिन्न होने पर भी वह अभिन्न रूप में ही सबमें स्थित है।

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि— स्पन्दकारिकाकार कहते हैं—

जाग्रदादि विभेदेऽपि तदभिन्ने प्रसर्पति।
निवर्तते निजान्नैव स्वभावादुपलब्धतः॥[1]

अर्थात् चैतन्य जाग्रत आदि भेदात्मक अवस्थाओं के मध्य रहता हुआ भी अभिन्नरूप में ही रहता है और वह अपने स्वस्वरूप से कभी च्युत नहीं हुआ करता।

स्पन्दप्रदीपिकाकार की दृष्टि— उत्पलाचार्य कहते हैं—

अवस्थास्वेव भेदोऽयं नावस्थातुः कदाचन।
यथा विषस्याङ्कुरादौ तच्छक्तेर्न तु भिन्नता॥[2]

वही चितिशक्ति मातृका के रूप में 'अ' के 'क्ष' तक आठ वर्गों की अधिष्ठात्रियाँ बनकर—

(१) **'माहेश्वरी'** (२) **'ब्राह्मणी'** (३) **'कौमारी'** (४) **'वैष्णवी'** (५) **'ऐन्द्री'** (६) **'याम्या'** (७) **'चामुण्डा'** एवं (८) **'योगेशी'** के रूप में स्थित है तथा वही चित् शक्ति अन्तःकरणों एवं बहिष्करणों से सम्बद्ध (१) **'खेचरी'** (२) **'भूचरी'** (३) **'दिक्चरी'** एवं (४) **'गोचरी'** के रूप में भी स्थित है। समस्त **'शक्ति चक्र'** चितशक्ति का रूप है। इसी 'शक्तिचक्र' से शक्तिमान भी सन्नद्ध है। इसीलिए त्रिकदर्शन के मूल ग्रन्थ **'स्पन्दकारिका'** में **शक्तिचक्र-परिणद्ध** में शङ्कर की स्तुति की गई है; क्योंकि जगत उन्मेष-निमेष, प्रलय-उदय इसी शक्तिचक्र से होता है—

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ।
तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः॥[3]

स्पन्दशास्त्र की दृष्टि— स्पन्दशास्त्र का मत यह है कि प्रत्येक पदार्थ की आत्मभूत ('चैतन्यमात्मा' शि. सू. १.१) एक ही मौलिक चैतन्यसत्ता शाश्वत रूप में विद्यमान है। उस सत्ता का नाम 'शङ्कर' या शिव है। वह शङ्कर चैतन्यरूप है और उसकी शक्ति भी चैतन्यस्वरूपा है। सारे जगत का विकास या उन्मीलन इसी चैतन्य शक्ति से हुआ है।

---

१. स्पन्द कारिका (३)।
२. स्पन्द प्रदीपिका (उत्पलाचार्य)।
३. स्पन्द कारिका (१/१)।

'शङ्कर' भी प्रकाशविमर्शमय हैं। अतः अपने स्वरूप को और अपनी ही शक्ति के प्रसाररूप विश्व को **'अहं'** रूप में विमर्श करने या चेतने की क्रिया का स्वतन्त्र कर्ता है। अतः वह **'चैतन्य'** है। उसका स्वभाव यही है कि वह स्वतन्त्र ज्ञाता एवं स्वतन्त्र कर्ता है अतः वह स्वतन्त्र है और स्वातन्त्र्य ही उसकी मुख्य शक्ति है। उसी स्वातन्त्र्य शक्ति को **'चैतन्य'**, **'चेतना शक्ति'**, **'चितिशक्ति'**, **'विमर्श'**, **'सार'**, **'संवित्'**, **'ऊर्मि'** आदि नामों से अभिहित किया गया है—

"चैतन्यं चितिः, चेतन आत्मा इति राहोः शिर इतिवत् काल्पनिकम् वस्तुतः एकमेव सर्वम्। चितिक्रिया प्रकाशविमर्शः, तस्य भावः **चैतन्यं स्वातन्त्र्यम्**॥"[१]

चैतन्य ही विश्व की आत्मा है—

शिवसूत्रकार ने इसी दृष्टि को उपन्यस्त करते हुए 'स्पन्दकारिका' में प्रथम कारिका (या सूत्र) के रूप में कहा है— 'चैतन्यमात्मा' (१/१)

यह सर्वस्वतन्त्र चैतन्य सत्ता निखिल जगत की एक मात्र आत्मा है। इसका अर्थ है कि—

(क) जो आत्मसत्ता है वह चेतन है और

(ख) चैतन्य ही आत्मा है।

जिस प्रकार राहू का सिर कहना मात्र एक औपचारिक प्रयोग है; क्योंकि राहू एवं उसका सिर पृथक्-पृथक् सत्तायें नहीं हैं, उसी प्रकार— "जो आत्मसत्ता है वह चेतन है"— यह कहना समीचीन नहीं है प्रत्युत् यह कहना समीचीन है कि— **चैतन्य ही आत्मा** है।

चेतन कौन है?

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीकार की दृष्टि-

आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि— 'घट' चेतन नहीं है; क्योंकि उसको तो अपने एवं न पराये (अपने से भिन्न) किसी दूसरे के होने की चेतना नहीं है अतः वह अचेतन है—

अर्थात् अभिद्यमान एवं एक शिव एवं शक्ति तो एकात्मक है किन्तु उनसे आनन्त्य (अनन्त भेद) उद्भूत हुए हैं।

उसके ये अनन्त भेद भी चेतन हैं।

'चैतन्य' स्पन्दरूप है

शाङ्कर वेदान्त की चेतन शक्ति (ब्रह्म) एवं ब्राह्मी माया शक्ति निस्पन्द एवं

---

१. शिवसूत्र वि. १.१।

निष्क्रिय है किन्तु माहेश्वर दर्शन (काश्मीरीय तान्त्रिक त्रिक दर्शन) में चैतन्य स्पन्दमूर्ति है। **'स्पन्दशक्ति'** क्या है? स्पन्द शक्ति का स्वरूप है— **'पूर्ण अहं विमर्श'**। यह अहंविमर्श ही **स्पन्द** है। इस चैतन्यमूर्ति **'स्पन्द'** ही अनन्त वेद्यों या प्रमेयों के रूप में (दृश्य बनकर, विश्व के अनन्त पदार्थ बनकर) स्फुरित हो रही है। चूँकि वह नित्य स्फुरित है और शाश्वत स्फुरणशील है इसीलिए उसे **'स्पन्दशक्ति'** कहा गया है। 'स्पन्द' शब्द 'स्पदि' धातु से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है कि किञ्चित् चलत्ता (चलन) अर्थात् सूक्ष्म अहं विमर्श की स्फुरणा। **'स्पन्द'** (अहं विमर्शात्मक स्पन्द) पत्ते के हिलने के सदृश्य कम्पन नहीं है प्रत्युत् यह भगवान की बाह्य **विश्वात्मक रूप में स्वतन्त्र शक्तिप्रसार की ओर सङ्कल्पात्मक उन्मुखता** मात्र है। संकल्पात्मक उन्मुखता ही कारिकाकार द्वारा प्रयुक्त **'उन्मेष-निमेष'** (विज्ञानस्वरूप एवं अनुत्तर पर तत्त्व की सङ्कल्पात्मक गतिमयता रूप **'अहं प्रत्यवमर्श'**) है। शक्ति सदोदित है अतः उसका उन्मेष-निमेष (उदय एवं अस्त) तो सम्भव नहीं है।

''**स्पन्दशक्ति**'' चैतन्य की विश्वोन्मुखता का पक्ष है, यह 'उच्छलनात्मक' है— 'स्वात्मन्युच्छलनात्मकः' (तं. ४.१८३) यह युगपत अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी (द्विमुखी गति वाली) है। सिसृक्षा **'स्पन्द'** है— 'यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छया जगदिदं स्रष्टुम्। पस्पन्दे स **स्पन्दः** ......(ष. त. सं. १) यह 'स्वात्मन्युच्छलनात्मक' (तं. ४.१८३) 'शक्ति' स्पन्द, स्वातन्त्र्य एवं चैतन्यशक्ति है।

'घटेन स्वात्मनि न चमत्क्रियते, स्वात्मा न परामृश्यते, न स्वात्मनि तेन प्रकाश्यते, न अपरिच्छिन्नतया भास्यते ततो न चेत्यत इत्युच्यते॥'[1]

इसके ठीक विपरीत 'चैत्र' नामक व्यक्ति में चेतना की विभूति विद्यमान है कि वह 'अहं' रूप आवेग के द्वारा स्वात्मरूप में अपने से भिन्न नील, पीत, सुख, दुःख या इनके अभावात्मक शून्य रूप में भी अवभासित होने में स्वतन्त्र है फलतः वह चेतने-वाला चेतन है अतः चेतन कहलाता है...

''चैत्रेण तु स्वात्मनि अहमिति संरम्भोद्योगोल्लासविभूतियोगात् चमत्क्रियते... नीलपीतसुखदुःखतच्छून्यताद्यसंख्यावभासयोगेन अवभास्यते, ततः चैत्रेण चेत्यत इत्युच्यते॥''[2]

शङ्कर भी प्रकाशविमर्शमय होने के कारण अपने स्वरूप को और अपनी शक्ति के प्रसार रूप विश्व को **'अहं'** के रूप में विमर्शन करने या चेतने की क्रिया करने वाला होने के कारण चेतन एवं स्वतन्त्र कर्ता कहा गया है—

---

१. ई. प्र. वि., १.५.१३
२. ई. प्र. वि., १.५.१३

'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा' (ई. प्र. १.५.१३) 'स्वातन्त्र्य' उसकी मुख्य शक्ति एवं स्वभाव है—

'स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यम्' (ई. प्र. १.५.१३) यह स्वातन्त्र्य चैतन्य शक्ति का ही अपर स्वरूप है; क्योंकि **'स्वातन्त्र्य शक्ति' 'चिति शक्ति'** का ही अपर पक्ष है।

शिव और चैतन्यशक्ति में अभेद है

''चैतन्यमात्मा'' कहकर सूत्रकार ने शिव को चैतन्य का साक्षात् विग्रह तो कहा ही है साथ ही यह भी कहा गया है कि शिव एवं शक्ति अभिन्न हैं यथा वह्नि एवं दाहकता—

''न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिः शिववर्जिता।
उभयोरपि तादात्म्यं वह्निदाहकयोरिव॥''[१]

स्वच्छन्दतन्त्रकार की दृष्टि— 'स्वच्छन्द तन्त्र' में कहा गया है—

'शिवस्यैका महाशक्तिः शिवश्चैको ह्यनादिमान्।
सा शक्तिर्भिद्यते देवि ! भेदैरानन्त्यसम्भवैः॥'

'प्रकाश' एवं 'विमर्श' (स्पन्द शक्ति) में 'विमर्शतत्त्व' (विमर्शन प्रधान चैतन्य शक्ति) या **स्पन्द तत्त्व क्रियाप्रधान है और यही 'स्पन्द' कहा जाता है**। उसी के द्वारा अन्तर्मुख 'अहं' में (अभिन्नावस्थित) विश्वकल्पना का बहिर्मुख 'इदम्' रूप में अवभासन एवं 'इदम्' रूप में अवभासित विश्व की आन्तर्मुख अनुसन्धानात्मक अहंरूपता में विश्रान्ति क्रिया सम्पन्न होती है।

जगत द्विरूपात्मक है—

(१) बाह्य रूप में अवभासित : (सृष्टिरूप)।

(२) अन्तर्मुखत्व में विश्रान्त : (प्रलयगत) अर्थात्—

(अवभासित जगत का विमर्श शक्ति द्वारा अपने में लय)।

विमर्शात्मक स्फुरणरूपा चेतन शक्ति के बिना 'प्रकाश' (शिव) की कल्पना असम्भव है। **विमर्शहीन प्रकाश सम्भव नहीं है**। विमर्श जड़ तो कर नहीं सकता। अतः विमर्श शक्ति चैतन्य शक्ति ही है जो कि शिव की शक्ति एवं उसका स्वभाव है। **विमर्शात्मक स्फुरण** (शिव का स्वभाव या शैवी शक्ति) **चैतन्य का ही स्वभाव है।**

'चैतन्य' ही किञ्चित्चलन, स्फुरण, संवित् एवं ऊर्मि है। अभिनव गुप्त-पादाचार्य कहते हैं—

---

१. स्वच्छन्द तन्त्र, ११.२७१

'किञ्चित्च्चलनमेतावदनन्यस्फुरणं हि यत्।
ऊर्मिरेषा विवोधाब्धेर्नसंविदनया विना॥'

'चैतन्य' ही विमर्श है। वही आत्मीकरण, एकीकरण, परीकरण आदि की प्रवर्तिका है—

''**विमर्शो** हि सर्वंसहः परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं परीकरोति, उभयम् एकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवं स्वभावः॥'' (ई. प्र. वि. १/५/१३)

'संवित् तत्त्व कभी की स्फुरणा के बिना नहीं रह सकता'— का अर्थ है कि वह चैतन्यविग्रहा स्पन्द शक्ति (चितिशक्ति) के बिना अकेले नहीं रह सकता। उसको विरह प्रिय नहीं है।

पतिप्रमाता की अभिन्न **'स्वातन्त्र्य शक्ति'** ही—

(१) आनन्दघनता (आनन्द का चमत्कार **'इच्छाशक्ति'**)

(२) प्रकाशरूपता ही **'चित्शक्ति'**

(३) विमर्शमयता ही **'ज्ञानशक्ति'**

(४) आकारों का अवभासन की शक्ति ही **'क्रियाशक्ति'** है—

(१) तस्य च स्वातन्त्र्यम् **'आनन्दशक्तिः'**

(२) तच्चमत्कारः **'इच्छाशक्तिः'**

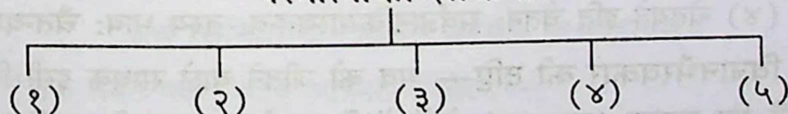
(३) प्रकाशरूपता **'चिच्छक्तिः'**

(४) आमर्शात्मकता **'ज्ञानशक्तिः'**

(५) सर्वाकारयोगित्वं **'क्रियाशक्तिः'**।

परमात्मा की शक्तियाँ— शिव की शक्तियाँ[१] तो अनन्त हैं किन्तु उनमें ५ शक्तियाँ प्रधान हैं और उनमें भी **'चैतन्यशक्ति'** प्रथम है।

परमात्माकी शक्तियाँ



'चितिशक्ति' 'आनन्दशक्ति' 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' 'क्रियाशक्ति'

वार्तिककार की दृष्टि में चैतन्य का स्वरूप

शिवसूत्रवार्तिककार 'शिवसूत्र' (१/१) 'चैतन्यमात्मा' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—

---

१. तं. सा.।

''**चैतन्यं** चित्क्रियारूपं शिवस्य परमस्य यत्।
स्वातन्त्र्यमेतदेवात्मा ततोऽसौ परमः शिवः॥ ८॥
अथवा कोऽयमात्मेति प्रष्टृन् बोधयितुं शिशून्।
नात्मा देहो न च प्राणो न मनः खं न शून्यभूः॥ ९॥
किन्तु चैतन्यमेवात्मेत्यादिष्टं परमेष्ठिना।
अथ चैतन्यमेवैतदात्मा स्वाभाविकं वपुः॥ १०॥
विशेषाचोदनादस्य जगतश्चेत्यरूपिणः।
अचेत्यमानं कस्यापि वपुः किमपि नो भवेत्॥ ११॥
चेत्यमानं तु चिद्रूपतादात्म्याच्चिन्मयं भवेत्।
एवं शिवोक्तया नीत्या जङ्गमस्थावरात्मनः।
चैतन्यमेव विश्वस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्॥[1]

आचार्य शङ्कर ने आत्मा के स्वरूप का निर्वचन करते हुए कहा है कि **शिव ही मेरी आत्मा हैं जो कि चैतन्यस्वरूप है— 'आत्मा त्वं गिरिजा** मतिः सहचराः प्राणाः शरीरम् गृहम्।'

मृत्युजित्भट्टारककार का मत— मृत्युजिद्भट्टारक में कहा गया है कि जो सर्वोपाधिविनिर्मुक्त है और जो परमात्मस्वरूप है उस आत्मा का स्वरूप **चैतन्य है—**

'परमात्मस्वरूपं तु सर्वोपाधिविवर्जितम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥'

सारांश यह कि— (१) ''चैतन्यमेक एवात्मा''[2]

(२) ''चैतन्यं उक्तं स एव आत्मा, स्वभाव.... भावाभावरूपस्य जगतः॥''

(३) ''चैतन्यं परमार्थतः शिव एव विश्वस्य आत्मा''

(४) चेतयते इति चेतनः सर्वज्ञानक्रियास्वतन्त्रः तस्य भावः **चैतन्यम्**॥[3]

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि— भव को जीतने वाले साधक इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्त (जड़ाजड़) देहों में **चिद्धर्मा परतत्त्व** ही अवस्थित है और उसके बिना अन्य कोई स्थित नहीं है अतः सब कुछ तन्मय (चैतन्यमय) है—

'**चिद्धर्मा** सर्वदहेषु विशेषो नास्ति कुत्रचित्।

---

१. शिव सूत्र वार्तिक (१/१) (वरदराज)।
२. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१)।
३. आचार्य क्षेमराज (शि. सू. वि., १.१)।

अतश्च तन्मयं सर्वं भावयन् भवजिज्जनः॥'

क्षेमराज की दृष्टि-

आचार्य क्षेमराज यह भी कहते हैं कि— 'अचेत्यमान तो किसी का स्वभाव बन ही नहीं सकता अतः चेत्यमान स्वप्रकाशचिदेकीभूत है अतः चैतन्य ही आत्मा है और यह आत्मा ही विश्व का स्वभाव है—

(१) 'चैतन्यं उक्तं स एव आत्मा, स्वभावः....भावाभावरूपस्य विश्वस्यः जगतः। नहि अचेत्यमानः कोऽपि कस्यापि कदाचिदपि स्वभावो भवति। चेत्यमानस्तु स्वप्रकाशचिदेकीभूतत्वात् चैतन्यात्मैव॥.....यतः चैतन्यं विश्वस्य स्वभावः॥''[1]

(२) 'शङ्करात्मक **स्पन्दतत्त्वरूपं चैतन्यं** सर्वदा स्वप्रकाशं **परमार्थसत्** अस्ति।

(३) 'जीवजडात्मनो विश्वस्य **परमशिवरूपं चैतन्यमेव** स्वभावः॥'[2]

विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार[3] की दृष्टि

भगवान शिव कहते हैं कि ''हे अङ्ग! यह तुम्हारा विकृत ज्ञान है, जो कि तुम ग्राहक होने का अभिमान रखकर अपने को विश्व से भिन्न मान रहे हो। शिव से पृथ्वी पर्यन्त यह समस्त 'षट्त्रिंशदात्म विश्व' **चिद्विलास** (चैतन्य की लीला या ऐश्वर्य) मात्र है। चिच्छक्ति से भिन्न कुछ भी न तो है और न तो हो ही सकता है; क्योंकि आत्मतत्त्व का लक्षण चैतन्य है— **चैतन्य 'विश्वबीज'** है। **विश्ववृक्ष का बीज चैतन्य है।** चैतन्य परमात्मा का शरीर है। अतः शिवादिभूम्यन्त समस्त विश्व (चैतन्य का विकास होने के कारण) चैतन्य का अपना रूप ही है—

'विमतिपदमङ्गसर्वं मम चैतन्यमात्मनः शरीरमिदम्॥''[4]

षट् स्थानों में जो अस्मिता है वह चिति की है। अनवच्छिन्न प्रकाशात्मक चिति की प्रतिनियत विषयों में अस्मिता उत्पन्न नहीं होती अतः—

'इत्थं **चितिमखिलेऽध्वनि** धारयतो विश्वदेहत्वम्॥'

'उक्त नयेन षट्सु पदेषु अस्मिता चितेरेव'—

(विद्या चक्रवर्ती)॥

'चैतन्य' अपनी अहन्ता का पर्याय है— अपनी पहचान है क्योंकि—

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१); आचार्य क्षेमराज (शि. सू. वि. १/१)।

२. शिवसूत्र विमर्शिनी।

३. 'विरुपाक्षपञ्चाशिका' शिवोक्त प्रत्यभिज्ञा दर्शन (शैव तन्त्र) का ग्रन्थ है।

४. विरूपाक्षपञ्चाशिका (१)।

'ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वरूपता चेति।

एतेऽहन्ताया: किल पर्याया: सद्भिरुच्यते॥'[१]

चैतन्य ही 'परावाक्' है—

'विरूपाक्षपञ्चाशिका' में कहा गया है कि— विमर्शरूपी स्वस्फुरित चितिशक्ति ही 'परावाक्' है। आद्यन्त वर्णों का प्रत्याहार करके 'अहं' (मैं) के रूप में चितिशक्ति ही स्फुरित होती है। इसे ही 'अहन्ता' कहा गया है। अहन्ता ही तत्त्वत: आत्मा है और आत्मा ही चैतन्य है और चैतन्य ही शिव है। 'परावाक्' का स्वस्वरूप चैतन्यशक्ति है—

'प्रत्यवमर्शात्मासौ चिति: स्वरसवाहिनी परावाग् या।

आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा सत्यहन्ता सा॥'[२]

चैतन्य के गगन (चिदाकाश) में ही समस्त शक्तिचक्र एवं ३६ तत्त्व एवं निखिल विश्व का उदय एवं अस्त होता है—

''स्वाङ्गे चिद् गगनात्मनि दुग्धोदधिनिभ: स्वशक्ति लहरीणाम्।

संभेदविभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति चैष जगत्॥''[३]

जगत में सर्वत्र चितिशक्ति ही प्रसृत है—

''जगति प्रसरदनन्तस्वशक्तिचक्रा **चितिर्भाव्या**॥''

चैतन्य की विभिन्न अवस्थाओं का स्वरूप क्या है?

चेतन प्राणियों में चेतना उपाधियों से आवृत्त रहती है। वह व्यवहारकाल में अवस्थाओं में विभाजित है। उसके विभिन्न रूप इस प्रकार हैं—

(१) जाग्रत अवस्था का स्वरूप क्या है?

''यस्यां श्रोत्रादिभि: इन्द्रियै: शब्दान् इन्द्रियार्थान् गृह्णन् प्रसृतशक्ति: परिस्पन्दते॥''

(अर्थात् जिसमें श्रवणेन्द्रिय आदि इन्द्रियों के द्वारा शब्दादिक ऐन्द्रिय विषयों को ग्रहण करके बाहर प्रसृत शक्ति परिस्पन्दन करती है उसे **'जागृतावस्था'** कहते हैं।

प्रश्न— जाग्रत एवं स्वप्नावस्था में क्या भेद है ?

बाह्य प्रसृत इन्द्रियों द्वारा बाह्यप्रसृत विषयों को ग्रहण करने की चैतन्यावस्था

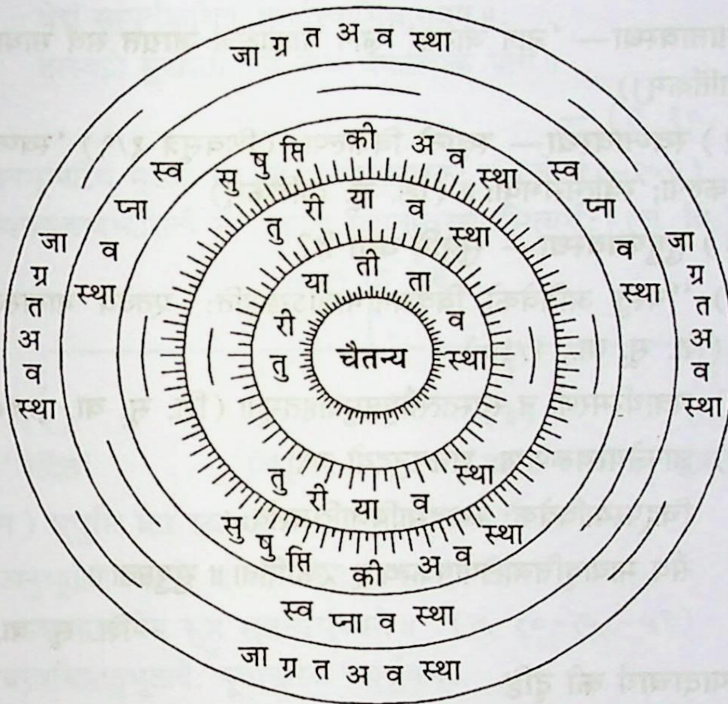
---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका (१)।

२. विरूपाक्षपञ्चाशिका।

३. विरूपाक्षपञ्चाशिका।

जाग्रत कालीन अवस्था है। इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों को गहण करना छोड़ देने पर भी मन द्वारा उन्हें ग्रहण करने की चैतन्यावस्था '**स्वप्नावस्था**' है।



२. स्वप्नावस्था का स्वरूप क्या है?

वह अवस्था जिसमें इन्द्रियों के द्वारा स्वव्यापार परिश्रान्त होकर, श्रवणेन्द्रिया-दिक इन्द्रियों के विरत हो जाने पर भी केवल मन के द्वारा विषयों का ग्रहण किया जाता है उसे '**स्वप्नावस्था**' कहते हैं—

'स्वप्नः स्वापास्वस्था, यस्यां स्वव्यापारपरिश्रान्तः श्रोत्रादिविहार विरतावपि मनसैव असौ विषयान् परिगृह्णाति॥'

३. सुषुप्ति अवस्था का स्वरूप क्या है?

सुखपूर्वक सोने की वह प्रगाढ़ावस्था जिसमें मन भी व्यापार करना बन्द कर देता है और व्यक्ति को व्यतिरिक्त वेद्यसंवेदन का तात्कालिक ज्ञान भी नहीं होता उस अवस्था को चेतना की '**सुषुप्ति की अवस्था**' कहा जाता है—

''सुषुप्तं गाढ़निद्रारूपा सुखस्वापावस्था मनोव्यापारस्यापि व्युपरमे सति यत्र व्यतिरिक्तं वेद्यसंवेदनं तात्कालिकं नास्ति॥''

शिवसूत्रकार की दृष्टि

त्रिकदर्शन के मूल ग्रन्थ 'शिव सूत्र' में अवस्थाओं का निरूपण इस प्रकार

किया गया है—

(१) जाग्रतावस्था— 'ज्ञानं जाग्रत' (१.८)।

जाग्रतावस्था— 'ज्ञानं जाग्रत' 'ज्ञानं वाह्याक्षजं **जाग्रत** सर्व साधारणार्थकम्' (शि. सू. वार्तिकम्।)

(२) स्वप्नावस्था— स्वप्नो विकल्पाः (शिवसूत्र १/९) 'स्वप्नः स्वात्मैव सम्प्रोक्तो विकल्पाः स्वात्मसंभवाः॥ (शि. सू. वार्तिकम्)

(३) सुषुप्त्यवस्था— सुषुप्ति क्या है?

(१) ''यस्तु अविवेको विवेचनाभावोऽख्यातिः, एतदेव मायारूपं मोहमयं सौषुप्तम्॥'' (शि. सू. वा., १/१०)

(२) यत्रार्थस्मरणो न स्तस्तत्सौषुप्तमुदाहृतम्॥ (शि. सू. वा. १/१०)

(३) ज्ञानज्ञेयस्वरूपायाः शक्तेरनुदयो यदा।
चिद्रूपस्याविवेकः स्यादसाविवाविमर्शतः।
सैव मायावृत्तिजालपोषकत्वात् प्रकीर्तिता॥ सुषुप्तता॥

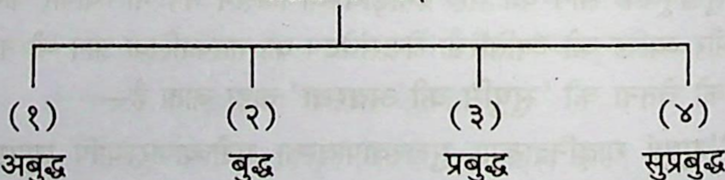
—शि. सू. वा. (१/१०)

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि-

(क) जाग्रतावस्था— (१) 'यस्य यद्यत् स्फुटं रूपं तज्जाग्रदिति मन्यताम्।'

(२) 'तथा हि भासते यत्तन्नीलमन्तःप्रवेदने।
संकल्परूपे बाह्यस्य तदधिष्ठातृबोधकम्।
यत्तु बाह्यतया नीलं चकास्त्यस्य न विद्यते।
कथञ्चिदप्यधिष्ठातृभावस्तज्जाग्रदुच्यते॥

— (तं. १०. २३४-३५)



—अभिनव गुप्त

'यदधिष्ठेयमेवेह नाधिष्ठातृ कदाचन।
संवेदनगतं वेद्यं **तज्जाग्रत्**समुदाहृतम्'॥ (तं. १०-२३१)

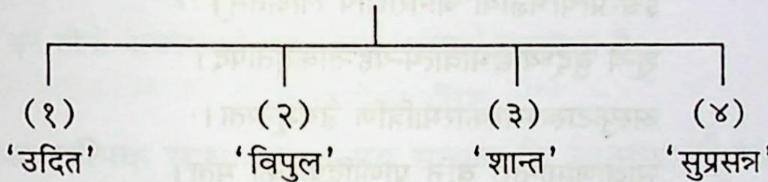
(ख) स्वप्नावस्था— (१) यदेवास्थिरमाभाति स्वरूपं **स्वप्न** ईदृशः॥

(२) यत्त्वधिष्ठानकरणभावमध्यास्य वर्तते।
वेद्यं सत्पूर्वकथितं भूततत्त्वाभिधामयम्॥
तत्स्वप्नो मुख्यतो ज्ञेयं तच्च वैकल्पिके पथि॥
— (तं. १०. २४७-४८)

'मानभूमिरियं मुख्या **स्वप्नो** ह्यामर्शनात्मकः॥' (तं. १०-२५६)

'मेयच्छायावभासिनी मानप्रधाना **स्वप्नावस्थेयमित्यर्थः**। (तं. वि.)

स्वप्न के भेद



(ग) सुषुप्ति का स्वरूप— (सुषुप्त्यवस्था)[1]

"अनुभूतौ विकल्पे च योऽसौ द्रष्टा स एव हि।
न भावग्रहणं तेन सुष्ठु **सुप्तत्वमुच्यते**॥" (तं. १०-२५८-५९)

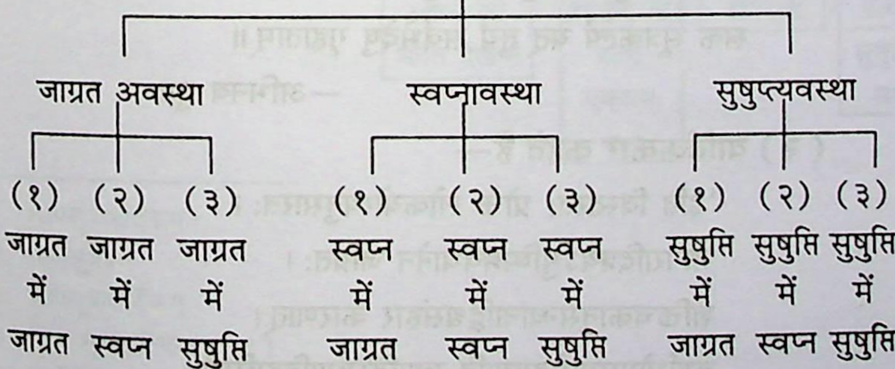
"यत्त्वधिष्ठातृभूतादेः पूर्वोक्तस्य वपुर्ध्रुवम्।
बीजं विश्वस्य तत्तूर्ष्णींभूत **सौषुप्तमुच्यते**॥" (तं. १०/२५७-२५८)

"मुख्या मातृदशा सेयं सुषुप्ताख्या निगद्यते। (तं. १०.२६०)

"यत्तु प्रमात्मकं रूपं प्रमातुरुपरि स्थितम्।
पूर्णतागमनोन्मुख्यमौदासीन्यात्परिच्युतिः।"

(घ) तुर्यावस्था— तत्तुर्यमुच्यते...................।" (तं. १०.२६५)

प्रत्येक अवस्था की त्रिरूपता



---

१. अस्फुटं तु यदाभाति सुषुप्तं तत् पुरोऽपि यत्। —अभिनव गुप्त

अभिनवगुप्त की दृष्टि— अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—

"जाग्रदादिषु चतसृष्ववस्थासु (१) जाग्रज्जाग्रत (२) जाग्रतस्वप्नः (३) जाग्रतसुषुप्तम् (४) जाग्रत्तुरीयमित्यादिना रूपेण परस्परानुवेधः प्रतीयते॥"

सुषुप्ति की अवस्था— 'अविवेको माया सौषुप्तम्॥' (१/१०)

वार्तिककार की दृष्टि— वार्तिककार वरदराज कहते हैं—

"अविवेको निजाख्यातिर्माया मोहस्तदात्मकः।
'सौषुप्तं' योगिनामेतत् त्रितयं धारणादिकम्।
ईश्वरप्रत्यभिज्ञायां जागराद्यपि लक्षितम्।
शून्ये बुद्ध्याद्यभावात्मन्यहन्ताकर्तृतापदे।
अस्फुटारूपसंस्कारमात्रिणि ज्ञेयशून्यता।
साक्षाणामान्तरी वृत्ति प्राणादिप्रेरिका मता।
जीवनाख्याथवा प्राणोऽहन्ता पुर्यष्टकात्मिका॥
तावन्मात्रस्थितौ प्रोक्तं **'सौषुप्तं'** प्रलयोपमम्।
सवेद्यमपवेद्यं च मायामलयुतायुतम्॥
मनोमात्रपथेऽप्यक्षविषयत्वेन विभ्रमात्।
स्पष्टावभासा भावानां सृष्टिः **'स्वप्न'** पदं मतम्।
सर्वाक्षगोचरत्वेन या तु बाह्यतया स्थिरा।
सृष्टिः साधारणी सर्वप्रमातॄणां स **'जागरः'**॥"

'तुर्या' एवं 'तुर्यातीतावस्था' का स्वरूप

(१) त्रयस्यास्यानुसन्धिस्तु यद्वशादुपजायते।
स्रक सूत्रकल्पं यत् तुर्यं सर्वभेदेषु गृह्यताम्॥

—अभिनव गुप्त

(२) वार्तिककार कहते हैं—

'इति विस्तरतः प्रोक्ते लोकयोग्यनुसारतः।
जागरादित्रयेऽमुष्मिन्नवधानेन जाग्रतः।
शक्तिचक्रानुसन्धानाद्विश्वसंहार कारणात्।
तुर्याभोगमयाभेदख्याति ख्यातिरख्यातिहारिणी।
स्फुरत्यविरतं यस्य स तद्वाराधिरोहतः।

तुर्यातीतमयं योगी प्रोक्तंचैतन्यमामृशन्॥'[१]

प्रश्न— क्या जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में तुर्याभोग सम्भव नहीं है?

सूत्रकार का कथन है कि यह सम्भव है—

'जाग्रतस्वप्नसुषुप्तभेदे तुर्याभोगसम्भवः॥'[२]

वार्तिककार की दृष्टि— वार्तिककार का कथन है कि—

"तुर्यं नाम परं धाम तदाभोगश्चमत्क्रिया।
भेदेऽपि जाग्रदादीनां योगिनस्तस्य सम्भवः।
अनुस्यूतिः परानन्दरूपा स्यादिति शिष्यते॥"[३]

इन तीनों अवस्थाओं का भोक्ता 'वीरेश' कहलाता है।

'त्रितयभोक्ता वीरेशः॥'[४]

आध्यात्मिक साधना के समय साधक के आत्मस्थ चैतन्य की विभिन्न भूमिकायें

योग की जो सात भूमिकायें हैं वे वस्तुतः चैतन्य की ही भूमिकायें हैं। इन्हें **साधना के सोपान** भी कहा गया है।

योगवासिष्ठोक्त सप्त भूमिकायें

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
श्रवण	मनन	निदिध्यासन	विलापनी	प्राप्ति	तुर्यावस्था	तुर्यातीत अवस्था
जाग्रत अवस्था की भूमिकायें			स्वप्नावस्था की भूमिका	अर्ध-सुषुप्त भूमिका	स्वसंवेदन स्वरूप शान्तिमय अवस्था	विदेह मुक्ति की अवस्था
			संसार को स्वप्न की भाँति देखना	आनन्द के साथ एकात्म भाव		सुषुप्ति के समान

---

१. शिवसूत्रवार्तिकम्।
२. शिवसूत्र।
३. शिवसूत्रवार्तिकम्
४. शिव सूत्रवार्तिकम् (११)
तुर्यातीत— यत्त्वद्वैतभरोल्लासद्राविताशेष भेदकम्।
तुर्यातीतं तु तत् प्राहुरित्थं सर्वत्र योजयेत्॥ —अभिनव गुप्त

"शास्त्रसज्जनसम्पर्कैः प्रज्ञामादौ विवर्धयेत्।
प्रथमा भूमिकैषोक्ता योगस्यैव च योगिनः॥
'विचारणा' द्वितीया स्यात्तृतीया**'ऽसङ्गभावना'**।
विलापनी चतुर्थी स्याद्वासना**विलयात्मिका**।
शुद्धसंविन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी।
अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो **जीवन्मुक्तोऽत्र** तिष्ठति।
स्वसंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका।
आनन्दैकघनाकारा सुषुप्तसदृशस्थितिः।
समता स्वच्छता सौम्या **'सप्तमी भूमिका'** भवेत्॥"[१]

(१) 'श्रवण' 'शुभेच्छा'— शास्त्र एवं सत्संग द्वारा अपने बुद्धि को तीक्ष्ण एवं शुद्ध करने की स्थिति या अवस्था।

(२) 'मनन'— सच्चिदानन्द ब्रह्म के **स्वरूप का निरन्तर चिन्तन** करते रहने की स्थिति या अवस्था।

(३) 'निदिध्यासन'— संसार के संग से रहित होकर परमात्मा के ध्यान में नित्य स्थित रहने की स्थिति या अवस्था।

(४) 'विलापनी' ('ब्रह्मवित्')— समस्त वासनाओं के अत्यन्ताभाव वाली तथा ब्रह्मसाक्षात्कार से अज्ञानादि निखिल प्रपञ्च की निवृत्ति करने वाली अवस्था। **"ब्रह्मवित्" की अवस्था**। संसार की स्वप्नवत् प्रतीतिवाली अवस्था।

(५) 'प्राप्ति' ('ब्रह्मविद्वरं') (जीवन्मुक्त)— (साधक का अर्धसुप्त, अर्ध जाग्रत रहने की अवस्था) **'ब्रह्मविद्वर'** की भूमिका।

(शुद्धसंविन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी।)

(६) 'तुर्या' 'तुर्यातीत अवस्था'—

स्वसंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका।
आनन्दैकघनाकारा सुषुप्तसदृशस्थितिः।
तुर्यावस्थोपशान्ताथ भुक्तिरेवेह केवलम्।

यह मन एवं वाणी से परे तथा स्वप्रकाशपरब्रह्मस्वरूप भूमिका है। यह समस्त दृश्यों का ब्रह्म में विलीन करके दृश्य के चिन्तन से राहित्य की अवस्था है। यह जीवन्मुक्ति की ही अवस्था है जिसमें— भोगों एवं सुखदुःखों से अलिप्तता, आत्माराम

---

१. यो. वा. (निर्वाण प्रकरण १२०/१-५।

में अवस्थिति, ब्रह्मात्मैक्यभावना, निर्लेपता, रागशून्यता, वासनाराहित्य, चिन्मय ब्रह्म के साथ तादात्म्यभाव, वासना-राहित्य आदि इस अवस्था के लक्षण हैं।

तुर्यावस्था (यो. वा. नि. प्र. सर्ग १२३-१२५)— 'तुर्य' तो 'जाग्रत' स्वप्न एवं सुषुप्ति में भी अलक्षित रूप से रहता है। **तुर्यावस्था के लक्षण**— जीवन्मुक्ति की अवस्था, स्वच्छ-समरूप-शान्त एवं व्यवहारकाल में तटस्थ, साक्षीभाव की अवस्था, संकल्पों का अभाव—जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति एवं अज्ञान का अभाव, जगत की निवृत्ति, परमात्मा में स्थिति, सम्यक् प्रबुद्धता। मन का अभाव।

सच्चिदानन्द परमात्मा ही 'तुर्य' है।

(क) जाग्रत अवस्था का चित्त घोर है।

(ख) स्वप्नावस्था का चित्त शान्त है।

(ग) सुषुप्तावस्था का चित्त मूढ़ है।

(घ) (जाग्रत, स्वप्न-सुषुप्ति से रहित) चित्त।

'शुभेच्छा' (श्रवण भूमिका)— "संसार असार है। मुझे इससे क्या प्रयोजन है?" "व्यर्थ के कर्मों से अपने दिनों को नष्ट क्यों कर रहा हूँ? मैं कैसे वैराग्यवान बनकर संसार सागर तरूँ? भोगों एवं सां. संकल्पों से वैराग्य कैसे प्राप्त हो? व्यर्थ एवं तुच्छ चेष्टाओं में क्यों निरत रहूँ?" ऐसा विचार मन में आता रहता है। **सत्संग, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना, यज्ञ, दान, सेवापूजा,** विनय, सत्य-प्रिय-हित वाली वाणी एवं कर्म में संलग्नता, सत्पुरुषों का सङ्ग, शास्त्रावगाहन, संसार सागर से तरने की लालसा— ये सारे लक्षण '**शुभेच्छा**' या '**श्रवण**' भूमिका के समय के हैं।

'विचार' या 'विचारणा' नामक भूमिका— इसी भूमिका को '**मनन**' भी कहा जाता है। '**मनन**' या '**विचारणा**' नामक भूमिका में अवस्थित साधक की मनोदशा के लक्षण— श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान एवं कर्मों में तत्पर पुरुषों में श्रेष्ठ विद्वानों का आश्रय लेकर उनके उपदेशानुसार साधना में प्रवृत्ति, मद, अभिमान, मात्सर्य, मोह, लोभ का त्याग (यथा सर्प केंचुल का), सत् शास्त्र, गुरु, सज्जन-सेवा, ब्रह्मरहस्यावगाहन और तदनुसार मनन क्रिया में तत्परता, तपस्वियों के आश्रम में निवास, कथाओं का मनन, विषय भोग एवं उन पदार्थों से वैराग्य, चट्टान पर शयन, शास्त्रों के अध्ययन-मनन का अभ्यास, निष्काम कर्मानुष्ठान करते रहने से आध्यात्मिक यथार्थ दृष्टि की प्राप्ति— '**विचारणा भूमिका**' या '**मनन**' के लक्षण हैं।

'असङ्ग' (तृतीय भूमिका) 'निदिध्यासन'— असङ्ग नामक तृतीय भूमिका के लक्षण इस प्रकार हैं— (१) दो प्रकार के असङ्ग की अनुभूति— (क) **सामान्य**

असङ्ग (ख) विशेष या श्रेष्ठ असङ्ग। (२) मैं न कर्ता हूँ और न भोक्ता, मैं सांसारिक कार्यों के लिए न तो बाध्य हूँ और न तो दूसरों के लिए बाधक हूँ।

सामान्य असङ्ग के लक्षण— अन्य सां. अ. के लक्षण इस प्रकार के भाव हैं— **सुख-दुःख की प्राप्ति** पूर्व कर्मानुसार निश्चित होती है और **ईश्वराधीन** है— इसमें **मेरा कर्तृत्व** कैसा? **विषयभोग** अन्ततः संताप के कारण होने के कारण **महारोग** हैं। सांसारिक **सम्पत्तियाँ परमापत्तियाँ** हैं। **संयोग** का अन्त में **वियोग** निश्चित है। मन के विकारबुद्धि की व्याधियाँ हैं। सम्पूर्ण पदार्थों में **आन्तरिक मिथ्यात्व की भावना**।

(ख) विशेष या श्रेष्ठतर असङ्ग— अभ्यास योग के द्वारा महापुरुषों की संगति, दुर्जन-संगति-त्याग, आत्मज्ञान के प्रयोग, संसार सागर से पार जाने की इच्छा के साथ परमात्मध्यान की स्थिति दृढ़ हो जाने पर ''न मैं कर्ता हूँ, न ईश्वर कर्ता है, न प्रारब्ध कर्ता है' यह सोचकर शान्त एवं मौन रूप से स्थित रहना '**विशेष असङ्ग**' जो श्रेष्ठतर **असङ्ग** है। शान्त, आदि-अन्त से रहित, सुन्दर, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही **श्रेष्ठ-असङ्ग** है। इस भूमिका को ही असङ्ग या '**निदिध्यासन**' कहते हैं।

वसिष्ठ श्री राम से कहते हैं कि—

(१) '**काकतालीय न्याय**' या महापुरुषों के सङ्ग से वैराग्य का उदय होता है। वैराग्य के बिना उद्धार होना कठिन है।

(२) वैराग्योदय होने पर **शुभेच्छा (श्रवण) भूमिका का उदय** अवश्य होता है।

(३) इस भूमिकात्रय के साधन के मध्य **मृत व्यक्ति का भविष्य** क्या होगा?

[इन प्रथम ३ भूमिकाओं में योग-साधना करने के मध्य मृत्यु हो जाने पर साधक का भविष्य क्या होता है?]

(क) **अपनी भूमिका** (श्रवण, मनन, निदिध्यासन) के अनुसार पूर्वजन्मों के दुष्कृतों का नाश होता है।

(ख) मृत्यूपरान्त देवों के विमानों में, लोकपालों के नगरों में, सुमेरु के वन-कुञ्जों में, **अप्सराओं के साथ रमण करता है**। पूर्वकृत पुण्यों-पापों के भोगसमूह का नाश होने पर पृथ्वी पर **जन्म लेकर योग का ही पुनःसाधन करते** हैं (पूर्वजन्म के योग-साधना के संस्कारों के अनुसार)। **अगली योग-भूमिका का अभ्यास भी करते हैं** (पूर्व जन्म में सम्पादित भावनाओं से अभ्यस्त होने से वे पूर्व साधना क्रम का स्मरण करके अगली साधना करते हैं।)

जाग्रत अवस्था की भूमिकायें

'**श्रवण**' '**मनन**' एवं '**निदिध्यासन**' ('शुभेच्छा', 'विचारणा' एवं 'असङ्ग') जाग्रत कही जाती हैं। क्योंकि इनमें भेद बुद्धि बनी रहती है। अतः सम्पूर्ण **दृश्य जगत जाग्रतकाल की भी भाँति दृष्टिगत होता है।**

इन ३ भूमिकाओं में योगयुक्तात्मा साधक में '**आर्यता**' का विकास न होता है। 'आर्यता' है— मुक्ति की अभिलाषा, शास्त्रनिषिद्ध कार्यों का त्याग एवं शाक्तोक्त कर्मों का निष्पादन, सदाचार पालन, प्रिय, हितप्रद एवं यथोचित व्यवहार।

(ए) **प्रथम भूमिका में**— आर्यता का अङ्कुरण।

(बी) **द्वितीय भूमिका में**— विवेक द्वारा आर्यता का विकास।

(सी) **तृतीय भूमिका में**— संसार के प्रसंग एवं परमात्म-ध्यान रूप फल से फलोद्गम-प्राचुर्य।

चतुर्थ भूमिका के सोपान पर आरूढ़ योगी सम्पूर्ण जगत में ब्रह्म की अनुभति करते रहते हैं और जगत को स्वप्नवत् अनुभव करते हैं।

पञ्चम भूमिका में स्थित साधक सत्स्वरूप ब्रह्म बनकर रहता है और अर्ध-सुषुप्ति में स्थित रहता है। यह भूमिका अन्तर्मुखी वृत्ति की भूमिका है। यह साधक बाह्य व्यापारों में सन्नद्ध रहकर भी शान्त एवं तन्द्रा की स्थिति में रहता है। इसके बाद साधक वासना-त्याग करके 'तुर्या' की भूमिका में पदार्पण करता है।

"तुर्या भूमिका" : छठवीं भूमिका निर्विकल्प भूमिका

तुर्या भूमिका— यह द्वैताद्वैतभाव से मुक्त अवस्था है। **चिज्जडग्रंथि** एवं संदेह से रहित अवस्था है। यह वासनारहित एवं जीवन्मुक्त योगी की अवस्था है। इसे बाह्य ज्ञान नहीं रहता। दूसरों की चेष्टा पर बाह्य ज्ञान हो जाता है। यह जीवन्मुक्त योगी, बाहर-भीतर दोनों ओर शून्य रहता है। चित्र-चित्रित दीपवत (निर्वाण प्राप्त न रहने पर भी निर्वाण प्राप्तवत) दिखाई पड़ता है। वह संसारशून्य, बाहर-भीतर शून्य आकाश की भाँति में स्थित घट की भाँति संसारशून्य तथा सागर में परिपूर्ण घट की भाँति बाहर-भीतर ब्रह्म से परिपूर्ण रहता है।

"तुरीयातीता भूमिका" : सप्तम भूमिका (विदेहमुक्तता की भूमिका)

सप्त भूमिका— तुरीयातीता भूमि

यह विदेहमुक्तता की अवस्था है तथा शान्तस्वरूप वाणी से अगम्य एवं सर्व-भूमिकाओं की अन्तिम सीमा है। इसे ही '**शैव**' '**शिव**' वेदान्ती '**ब्रह्म**' सांख्यवादी '**प्रकृति**' और '**पुरुष**' का ज्ञान कहते हैं। इन भूमियों के अभ्यास से **दुखों का** अन्त हो जाता है।

'मुझे यह मिल जाय'— यह इच्छा ही हथिनी है। यह शरीररूपी जंगल में रहती है। इन्द्रियाँ ही उसके बच्चे हैं। यह शुभाशुभ कर्मरूपी दो दाँतों वाली हथिनी मन रूप स्थान में रहती है। वासना जाल ही उसका **मद** है। संसार की स्मृतियाँ ही उसकी युद्ध भूमियाँ हैं। हथिनी ही इच्छा, वासना, मनन, चिन्तन, संकल्प, भावना एवं स्पृहा है।

साधक को चाहिए कि वह इच्छारहित होकर, संकल्पों से शून्य होकर मृतक की भाँति जीवन व्यतीत करे। **'संकल्पों का त्याग'** ही संसार के पदार्थों की भावना से रहित होना है। **'संकल्प'** ही स्मरण भी है। **विस्मरण** (संकल्पाभाव) श्रेष्ठतम है।

वशिष्ठ— "राम! मैं हाथ ऊपर उठाकर बार-बार ऊँचे स्वर से चिल्लाकर कहता हूँ कि संकल्पत्याग ही परम श्रेय का साधक है किन्तु इसे कोई सुनता ही नहीं।"

'बन्धन'— सर्वोच्च बंधन है संसार का संकल्प।

'मोक्ष'— संकल्प का नाश ही मोक्ष है। संसार के स्मरण का अभाव ही है। **'चित्त-विनाशरूप योग'** । शान्त अक्षय योग यही है। अहंता-ममता की भावना रखने वाला मनुष्य दु:ख से कभी मुक्त नहीं हो सकता। —यो. वा. सर्ग १२६।

जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों का त्याग करके तुरीय पद की प्राप्ति हेतु ब्रह्म का ध्यान करें। लिंग शरीर को भी कारण में विलीन कर देना चाहिए। **लयीकरण-प्रक्रिया**— योगी को **पृथ्वी को** जल में, **जल को** तेज में, **तेज को** वायु में, **वायु को** आकाश में, **आकाश को** (समस्त भूतों की उत्पत्ति के कारणभूत) महाकाश में लय करके उस महाकाश में एक मात्र, लिङ्ग शरीर को धारण करके रहना चाहिये। फिर **'लिङ्ग शरीर'** को (वासनाएँ, सूक्ष्मभूत, कर्म, अविद्या, १० इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिः 'वासना भूतसूक्ष्माश्च कर्माविद्ये तथैव च।)

दशेन्द्रिय मनोबुद्धिरेतल्लिङ्गं विदुर्बुधा:॥ (नि. पू. १२८/१८-१९) यह ध्यान करके कि "मैं शुद्ध आत्मा हूँ" अव्याकृत प्रकृति में लय कर दे। उसी **'प्रकृति'**, **'माया'**, **'अविद्या'** या **'परमाणु'** में प्रलयकाल में सभी पदार्थ लय प्राप्त करके अव्यक्तरूप में निवास करते हैं और सृष्टि के समय उसी अव्याकृत प्रकृति से उत्पन्न हो जाते हैं।

लय क्रम— (चैतन्यानावरण हेतु)-

(१) पृथ्वी का जल में लय, (२) जल का अग्नि में लय, (३) अग्नि का वायु में लय, (४) वायु का आकाश में लय, (५) आकाश का महाकाश में लय, (६) महाकाश का 'प्रकृति' (माया, परमाणु, अव्याकृत) में लय, एवं (७) प्रकृति का परमात्मा में लय।

चैतन्य का पूर्ण आवरणोच्छेद

'अहं ब्रह्मास्मि' की स्थिति में अवस्थान। — सर्ग १२८ (यो. वा.)

चैतन्य और उसकी विभिन्न अवस्थाएँ

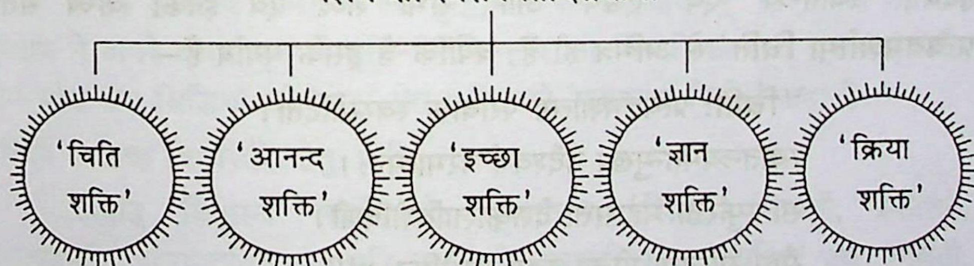
संसार के समस्त प्राणियों को सुखदु:खादि की अनुभूति कराने वाली, स्वयंभू, अक्षर एवं जीवन की समस्त अवस्थाओं (**बाल्य, तारुण्य, वार्धक्य** एवं **जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय** एव **तुरीयातीत** अवस्थाओं तथा **जीवन** एवं मृत्यु दोनों अवस्थाओं) में नित्य विद्यमान रहने वाली एक ऐसी शाश्वत, अदृष्ट एवं ज्योतिर्मय शक्ति विद्यमान रहती है जिसे आत्मा या **'चैतन्य'** कहते हैं। यही शक्ति चेतन प्राणियों को जड़ वस्तुओं से पृथक् करती है। भले ही नास्तिक इसे 'आत्मा' के नाम से स्वीकार न करें किन्तु **'चैतन्य'** के रूप में तो स्वीकार करते ही हैं। **'आत्मा ध्वंसो हि मोक्षः'** का सिद्धान्त स्थापित करने वाले बौद्ध भले ही आत्मा का अस्तित्व न मानें किन्तु चैतन्य का अस्तित्व तो मानते ही हैं।

आस्तिकों की दृष्टि में यह चैतन्य परमात्मा का ही स्वरूप है। जीवत्व की उपाधि के कारण संकुचित हो जाने वाली यही पारमात्मिकी शक्ति **'जीव'** कहलाने लगती है।

तन्त्रशास्त्र की चैतन्य सम्बन्धिनी दृष्टि-

भारतीय तन्त्रशास्त्र 'चैतन्य' को परमशिव (परमात्मा) की मूल शक्ति मानता है।

शिव की स्वसमवेता शक्तियाँ



भगवान शिव की समवायिनी ५ शक्तियों में प्रथम (शिव से अभिन्न) शक्ति **'चितिशक्ति'** है। चैतन्य उसी का स्वरूप है। ब्रह्माण्ड की समस्त व्यष्टि-समष्टि चैतन्य शक्तियाँ शिव की इसी **'चितिशक्ति'** के विस्फुलिङ्ग हैं या उसकी रश्मियाँ हैं। **श्रीमद्भट्ट वामदेवाचार्य** कहते हैं—

"इह खलु निखिलजगदात्मा सर्वोत्तीर्णश्च सर्वमयश्च....सर्वशक्तिरवचित एक एव अस्ति संविदात्मा महेश्वरः। (१) तस्य प्रकाशरूपता **'चिच्छक्तिः।'** (२)

स्वातन्त्र्यम् **आनन्द शक्तिः** (३) तच्चमत्कारः **इच्छाशक्तिः** (४) आमर्शात्मकता **ज्ञानशक्तिः** (५) सर्वाकारयोगित्वं **क्रियाशक्तिः**। इत्थं सर्वशक्तियोगेऽपि आभिर्मुख्याभिः शक्तिभिरुपचर्यते॥''[१]

(१) विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की दृष्टि— 'विरूपपञ्चाशिका' में कहा गया है कि—

(१) विमतिपदमङ्गसर्वं मम **चैतन्यमात्मनः** शरीरमिदम्।

(२) 'अहन्ता' भी चित्स्वरूपात्मिका है—

'ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वस्वरूपा चेति।
अहन्तायाः किल पर्यायाः सद्भिरुच्यते॥'[२]

(३) **'चैतन्य'** प्रत्यवमर्शात्मा है—

'प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परावाग् या।'

(२) ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकार की दृष्टि— ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकार कहते हैं कि आत्मा चित्स्वरूप है और यही **'चिदात्मा'** जो कि भीतर स्थित है अपनी इच्छा के कारण बाह्य जगत में व्यक्त होकर एक योगी की भाँति, निरूपादान रहकर भी अनन्त पदार्थों एवं पादार्थिक जगत को प्रादुर्भूत करती है—

'चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद् बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥'[३]

ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकार कहते हैं कि 'परावाक्', 'स्फुरत्ता', 'महासत्ता', 'सार', 'हृदय', 'स्वातन्त्र्य' एवं 'ऐश्वर्य' आदि सभी शब्द एवं इनकी वाच्य सत्ता **'प्रत्यवमर्शात्मा चिति'** से अभिन्न ही हैं; क्योंकि वे इसके पर्याय हैं—

''**चितिः** प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।
सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः॥''[४]

समस्त 'अध्वा' ['शब्दाध्वा' एवं 'अर्थाध्वा' या 'कालाध्वा' एवं 'देशाध्वा'] **चिन्मात्र** में प्रतिष्ठित है—

---

१. जन्ममरणविचारः।
२. वि. प. (१/८)।
३. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा (१/५/७)।
४. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा (१/५/१३)

"अध्वा समस्त एवायं **चिन्मात्रे** सम्प्रतिष्ठितः।
यत्तत्र नहि विश्रान्तं तन्नभः कुसुमायते॥"[१]

जो चिन्मात्र में एवं अध्वा में नहीं है वह उसी प्रकार है यथा आकाशकुसुम॥

(३) शिवदृष्टिकार सोमानन्दपाद की दृष्टि— आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि **चिद्विभु** आत्मा ही समस्त भावों (सत्तावान पदार्थों) में स्फुरित हो रही है—

"आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन् निवृतचिद्विभुः।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरद् दृक्क्रियः शिवः॥" (१/२)

सभी पदार्थों में आत्मा ही सत्ता बनकर स्थित है। चूँकि **आत्मा चैतन्यस्वरूप** है अतः **सभी पदार्थ भी चैतन्यप्राण हैं।**

(४) आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— आचार्य महेश्वरानन्द **'महार्थमञ्जरी'** में कहते हैं कि इस स्थावरजङ्गमात्मक एवं जड़चेतनात्मक अखिल विश्व का मूल तत्त्व आत्मा है—

"आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽप्यर्थयते।
कस्य वा भवति पिपासा गङ्गास्रोतसि निमग्नस्य॥"[२]

यदि विश्व का मूल चैतन्यविग्रह आत्मा है तो स्पष्ट है कि विश्व के सभी जड़ाजड़ पदार्थों (जड़ जगत एवं चेतन प्राणिवर्ग) में चैतन्य किसी न किसी रूप में अवश्यमेव संस्थित होगा। सारांश यह कि **'विश्व'** आत्मा के सरोवर का पुष्प है और उस पुष्प की सुगंध **चैतन्य** है।

(५) आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' के प्रणेता आचार्य क्षेमराज ने अपने प्रथम सूत्र में सृष्टि-स्थिति-लय की विधायिका (या सूत्रधार) और भोग-मोक्ष रूप सिद्धियों की 'हेतु' परा शक्ति को **'स्वतन्त्रा चिति'** कहा है—

"चिति स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः॥"[३]

अर्थात् **'विश्वस्य'** सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य, **'सिद्धौ'** निष्पत्तौ, प्रकाशने, स्थित्यात्मनि, परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि च संहारे, पराशक्तिरूपा **'चितिः'** एव भगवती, **'स्वतन्त्रा'** अनुत्तर विमर्शमयी शिवभट्टारिका भिन्ना **'हेतुः'** कारणम्॥[४]

"स्वतन्त्र **चिति** (चैतन्य शक्ति) ही सृष्टि, स्थिति और लय या भोगमोक्ष-

---

१. तन्त्रालोक (८/३)।
२. महार्थमञ्जरी (३)।
३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (१)।
४. आचार्य क्षेमराज : प्र. हृदयम् (सूत्र १)।

स्वरूप सिद्धियों का कारण है : **'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः ॥१ ॥**

"सदाशिव से भूमिपर्यन्त विश्व की सिद्धिरूप **निष्पत्ति**, स्थितिरूप **प्रकाशन** और परप्रमाता में विश्रान्ति रूप **संहार** के लिए **'स्वतन्त्र'** अनुत्तर विमर्शमयी और शिवभट्टारक से अभिन्न पराशक्तिरूप **भगवती चिति** ही कारण हैं।"[1]

विश्व के प्रादुर्भाव का मूल कारण प्रकाशरूपा चिति ही है—

'प्रकाशरूपा चितिरेव हेतुः ॥"[2]

चैतन्य और परमात्मा— परमात्मा को **'सच्चिदानन्द'** कहा जाता है— अर्थात् वह **'सत्'**, **'चित्'** एवं **'आनन्द'** का मूर्तिमान स्वरूप है। इन तीनों गुणों में **'चित्'** ही चैतन्य है।

(६) शिवसूत्रकार की दृष्टि— शिवसूत्रकार ने 'शिवसूत्राणि' में चैतन्य को आत्मा का एवं आत्मा को चैतन्य का स्वरूप कहा है। वे कहते हैं—

"चैतन्यमात्मा"[3] (चैतन्य आत्मा है।)

राजानक क्षेमराज की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि—

(१) **'चैतन्य'** परमार्थतः शिव तत्त्व ही है।

(२) **'चैतन्य'** और **'शिव'** विश्व की आत्मा हैं।

(७) वार्तिककार की दृष्टि— वार्तिककार कहते हैं कि—

"चैतन्यमात्मनो रूपं सिद्धं ज्ञानक्रियात्मकम्।
तस्यानावृतरूपत्वाच्छिवत्वं केन वार्यते॥"

चिति क्रिया प्रकाशाभिमर्श है। उसका भाव ही **'चैतन्य'** है।

वार्तिककार वरदराज की दृष्टि भी सर्वचैतन्यवादी है।

वरदराज कहते हैं— (१) **'परमशिव'** चित्क्रियास्वरूप हैं। वे **चैतन्य की मूर्ति** हैं। वे **चेतन जीव** एवं **जड़ जगत** दोनों हैं।

(२) परमशिव (चैतन्यस्वरूप परमशिव) **प्रपञ्च की आत्मा** हैं—

'चित्क्रियात्मक चैतन्यमूर्तिर्जीव जडात्मनः।
परमः शिव एवात्मा प्रपञ्चस्येति कथ्यते॥'

(३) विश्व का पारमार्थिक स्वरूप चैतन्य ही है जड़ नहीं—

---

१. प्रत्य. हृ. (६)।

२. प्र. हृ. (७)।

३. शिवसूत्र (१/१)।

'एवं शिवोक्तया नीत्या जङ्गमस्थावरात्मनः।
चैतन्यमेव विश्वस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्॥'[१]

(४) परशिव की चित्क्रिया या चैतन्य ही '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' है और इसी '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' से महिमामण्डित परमशिव '**आत्मा**' हैं—

''**चैतन्यं** चित्क्रियारूपं शिवस्य परमस्य यत्।
स्वातन्त्र्यमेतदेवात्मा ततोऽसौ परमः शिवः॥''[२]

वार्तिककार कहते हैं कि यदि '**चैतन्यमात्मा**' (१/१) (चैतन्य ही आत्मा है) न कहा गया होता तो जब प्रष्टा यह पूँछता है कि ''आत्मा कौन है?'' तब उसे यह उत्तर देना पड़ता कि 'आत्मा देह नहीं है', 'यह प्राण भी नहीं है', यह मन भी नहीं है, यह आकश, शून्य एवं पृथ्वी भी नहीं है प्रत्युत् आत्मा चैतन्य है; क्योंकि परमेष्ठी ऐसा ही कहते हैं— ''किन्तु चैतन्यमेवात्मेत्यादिष्टं परमेष्ठिना॥''[३]

अतः निष्कर्ष यह कि—

'अथ **चैतन्यमेवैतदात्मा स्वाभाविकं वपुः**॥'[४]

आत्मा का स्वाभाविक शरीर चैतन्य ही है—

जगत चेत्यरूप है— 'जगतश्चेत्यरूपिणः॥'[५]

किसी का भी शरीर अचेत्यमान नहीं है, चेत्यमान वह है जो **चिद्रूपता** से तादात्म्य प्राप्त करके चिन्मय हो चुका हो—

''चेत्यमानं तु चिद्रूपतादात्म्याच्चिन्मयं भवेत्।''[६]

अतः स्थावरजङ्गमात्मक समस्त विश्व चैतन्य मात्र ही है अतः विश्व का यह चैतन्यस्वरूप ही पारमार्थिक है न कि जड़ एवं मिथ्या।

''एवं शिवोक्तया नीत्या जङ्गमस्थावरात्मनः।
चैतन्यमेव विश्वस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्॥''[७]

विश्व के प्रति यह तांत्रिकी चैतन्यप्रतिष्ठित दृष्टि ही तन्त्र का '**सर्व चैतन्यवाद**' है।

---

१. शिवसूत्र वार्तिकम् (१/१)।
२. शि. सू. वा.।
३. शि. सू. वा.।
४. शि. सू. वा.।
५. शि. सू. वा.।
६. शि. सू. वा.।
७. शि. सू. वा.।

आचार्य क्षेमराज की 'चैतन्य' एवं 'चैतन्यवाद' सम्बन्धिनी दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'ललितासहस्रनाम' में प्रतिपादित शक्ति की चैतन्यरूपता

'ललिता सहस्रनाम' में पराशक्ति को सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं आनन्द-स्वरूप कहते हुए भी उसे मुख्यतः **'चैतन्यस्वरूप'** कहा गया है—

(१) **चितिस्तदपदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी**।

(२) परा **प्रत्यक् चितीरूपा** पश्यन्ती परदेवता।

(३) **चिच्छक्तिश्चेतनारूपा** जडशक्तिर्जडात्मिका।

('शक्ति' चैतन्य एवं जड़ता दोनों गुणों से संवलित है; क्योंकि जड़ एवं चेतन में कोई तात्त्विक भेद नहीं है।)

(४) सर्वार्थदात्री सावित्री **सच्चिदानन्दरूपिणी**।

(५) **चित्कलानन्द**कलिका प्रेमरूपा प्रियंकरी।

(६) **चैतन्यार्घ्यसमाराध्या चैतन्य**कुसुमप्रिया।

भगवती चैतन्यस्वरूपा है या स्वयं चैतन्यविग्रह है—

'देवीसूक्त' में कहा गया है—

'या देवी सर्वभूतेषु **चेतने**त्यभिधीयते'

भगवती को **'चिदग्निकुण्डसम्भूता'** कहा गया है—

'चिदग्निकुण्डसम्भूता देवकार्यसमुद्यता' (ल. स.)

'ललितात्रिशती' में भी भगवती के चैतन्यस्वरूप को रेखांकित करते हुए कहा गया है—

(१) एतत्तदिव्यनिर्देश्या चैका**नन्दचिदाकृतिः**।

(७) **'सर्वचैतन्यवाद'**— सब कुछ चेतन है। कोई भी जड़ है ही नहीं।

आचार्य क्षेमराज पूँछते हैं कि "क्या जगत चितिशक्ति से बिल्कुल ही अभिन्न है?" वे कहते हैं कि **चिति और जगत पूर्णतः अभिन्न हैं**— "ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्॥"

फिर अभेदभाव में कार्यकारणभाव (हेतुहेतुमद्‌भाव) कैसे सम्भव है? इसी प्रश्न के उत्तर में आचार्य कहते हैं कि—

* (क) **'चिदेव भगवती** स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्त**जगदात्मना स्फुरति**—

इत्येतावत्परमार्थोऽयं कार्यकारणभावः ॥'' अर्थात् जब जगत चिति से भिन्न नहीं है तब अभेदावस्था में इन दोनों की कार्यकारणता कैसी? इस प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं कि स्वच्छ और स्वतन्त्र **भगवती चित् शक्ति ही** भिन्न भिन्न **अनन्त संसारों के रूप में स्फुरित हुआ करती है** और हो रही है— बस यहाँ पारमार्थिक कार्यकारणभाव है। यही **प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेयरूप विश्व** के प्रकाशन में कारण है अतः स्वतन्त्र, अपरिच्छिन्न एवं स्वप्रकाशरूप इस **'चिति शक्ति'** की सिद्धि में नवीन अर्थ को प्रकाशित करनेवाला बेचारा प्रमाण उपयोगी एवं उपपन्न नहीं है।

'चैतन्य' की शक्ति और उसका कृतित्व

'शक्तिसूत्र' (प्रत्यभिज्ञाहृदय) में आत्मा को **'चैतन्य'** कहकर फिर दूसरे सूत्र में उसकी सार्वभौम अचिन्त्य शक्ति एवं उसके कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि वह ''**स्वेच्छा से ही** स्वात्मा रूप भित्ति पर विश्व का उन्मीलन किया करती है''—

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥'[1] 'चिति शक्ति' (शिव की समवायिनी पराशक्ति) **अपनी इच्छा मात्र से** अर्थात् ब्रह्मा आदि देवों की भाँति अन्य की इच्छा एवं प्रेरणा से नहीं तथा स्वातिरिक्त किन्हीं अन्य उपादानों की अपेक्षा के बिना ही, मात्र अपनी इच्छा से और वह भी किसी बाह्य देश में नहीं प्रत्युत् स्वयं अपनी आत्मा की दीवार पर, विश्व को प्रादुर्भूत या उन्मीलित कर देती है।

सारांश— **(१) चितिशक्ति स्वरूपतः स्वात्मदेवता है** ('तत्र **स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र कारणत्वं**' : क्षेमराज)।[2]

(२) 'चितिशक्ति' स्वतन्त्र है : (''चितिः स्वतन्त्राविश्वसिद्धि हेतुः॥'' शक्तिसूत्र १)।

'स्वतन्त्रा' का यह अर्थ है कि— (१) 'चैतन्य (चितिशक्ति)' को ब्रह्मादिक अन्य देवों की भाँति किसी **दूसरी की इच्छा या प्रेरणा का दास बनकर कार्य नहीं करना पड़ता** प्रत्युत् वह सारे कार्य स्वतन्त्र रूप से और **अपनी ही (स्वतन्त्र) इच्छा** से निष्पादित करती है।

(३) कुम्भकार को घड़ा बनाने के लिए अपने से पृथक् **अन्य उपादानों** (मिट्टी, साँचा, चाक एवं डण्डा आदि वस्तुओं) की आवश्यकता पड़ती है किन्तु भगवती चितिशक्ति (परम चैतन्य) को विश्व के सृजन के लिए परेच्छा-प्रेरणा, एवं **स्वातिरिक्त अन्य उपादानों की आवश्यकता नहीं पड़ती।**

---

१. शक्तिसूत्र।

२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (क्षेमराज)।

(४) कुम्भकार को घटनिर्माण के लिए **अपने से पृथक् देश की आवश्यकता** पड़ती है किन्तु परम चैतन्य (चितिशक्ति) को इसकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसीलिए सूत्रकार ने कहा है—

(क) 'चितिः **स्वतन्त्रा**', (ख) '**स्वेच्छया**', (ग) '**स्वभित्तौ**' 'विश्व-मुन्मीलयति'॥ या 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः'॥

(५) भगवती '**स्वतन्त्र**' इसलिए भी है कि संसार के सारे पदार्थों (कार्यों) की उत्पत्ति के लिए कार्यातिरिक्त किसी स्वेतर अन्य **कारण पदार्थ** की आवश्यकता पड़ती है अतः '**कार्यकारणभाव' का नियम** पालन करना पड़ता है किन्तु '**चैतन्य**' को विश्वनिर्माण के लिए न तो स्वेतर 'कार्यकारणभाव' की अपेक्षा होती है और न तो स्वेतर किसी अन्य (उपादान, निमित्त या निमित्त) कारण की। चिति (परम चैतन्य) स्वयं विश्व का '**उपादान**' भी है और '**कारण**' भी— 'कार्य' भी है और 'कारण' भी— क्योंकि वह विश्व का '**अभिन्ननिमित्तोपादान कारण**' है। यहाँ सांख्य, न्याय, वैशेषिक एवं वेदान्त का कार्यकारणभाव नहीं है प्रत्युत् यहाँ 'पारमार्थिक कार्यकारण-भाव' है क्योंकि—

"**चिदेव भगवती** स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति— इत्येतावत् परमार्थोऽयं कार्यकारणभावः॥' (आचार्य क्षेमराजः प्र. हृ.)

सृष्टि-स्थिति और प्रलय (संहार) का कार्य

(६) '**सृष्टि' का अर्थ** स्थूल जगत की उत्पत्ति नहीं है प्रत्युत् '**सदाशिव से लेकर भूमिपर्यन्त' समस्त तत्त्वों का जगत के रूप में प्रकटीकरण ('उन्मीलन')** **है**— (न कि नव्योत्पत्ति)—

(क) '**उन्मीलनं** च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्।'

(ख) 'जगतः **प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम्**॥'

(ग) 'विश्वस्य **सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य सिद्धौ**।'

(घ) सृष्टि या '**जगत' दर्पण में प्रतिबिम्बित** नगर के समान न तो दर्पण से पृथक् है और न तो उससे अभिन्न। वह **भिन्नाभिन्न स्थिति** में विद्यमान है—

"प्राक् निर्णीतं विश्वं दर्पणे नगरवत् **अभिन्नमपि भिन्नमिव** उन्मीलयति॥"

(ङ) **प्रकाशन या 'स्थिति'** के स्तर पर भी जगत 'चितिशक्ति' से बाहर नहीं है प्रत्युत् वह आत्मा या 'प्रकाश' (शिव) में ही विद्यमान या प्रकाशित होता है— 'स्थित्यात्मनि' 'जगतः प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम्॥'[१]

---

१. **जगत की नवोत्पत्ति** माननी पड़ेगी।

(च) सृष्टि (जगत) का **'संहार' परप्रमातृ में आत्मविश्रान्ति है न कि महाविनाश—**

'परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि **संहारे**'

(छ) **जगत का 'जन्म'** तो इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि 'जन्म' किसी जन्मदाता से पृथक् किसी वस्तु का होता है। चैतन्य से पृथक् कोई अन्य तो है ही नहीं फिर 'जन्म' किसका होगा?

(ज) **'जगत की स्थिति'— 'स्थिति'** तो किसी अन्य देश से पृथक् किसी अन्य देश में अवस्थान है किन्तु भगवती चिति के अतिरिक्त अन्य कोई देश है ही नहीं अत: **'स्थिति'** कहाँ होगी?

(झ) **जगत का संहार** भी सम्भव नहीं है; क्योंकि संहार का अर्थ है अस्तित्व का अत्यन्ताभाव या सार्वकालिक ध्वंस। शाक्त तान्त्रिकों का मत यह है कि **'संहार'** जगत का शिव में विश्राम है न कि अत्यन्ताभाव; क्योंकि जगत का अत्यन्ताभाव हो जायेगा तो—

(१) जगत की नवोत्पत्ति माननी पड़ेगी, शाक्त इसे नहीं मानते।

(२) आत्यन्तिक विनाश मानने पर शाक्तों का **'उन्मीलनवाद'** (**'उन्मीलनं** च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्') का सिद्धान्त कैसे सिद्ध होगा ? शाक्त 'उन्मीलन' मानते हैं।

(३) जब **जगत चिति से अभिन्न है**— [(१) ननु 'जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्' (२) 'चिदेव भगवती तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति' (३) 'विश्वं दर्पणे नगरवत् **अभिन्नमपि** भिन्नमिव **उन्मीलयति**॥']— तो अनश्वर चितिशक्ति ('स्वातन्त्र्य शक्ति' या 'परम चैतन्य') के स्वरूपभूत जगत का नाश कैसे हो सकता है? अत: जगत का 'संहार' (विनाश) भी, आत्यन्तिक महाविनाश के अर्थ में, नहीं होता।

यदि कच्छप अपने पैरों को अपने शरीर के भीतर लीन कर लेता है तो उसके अङ्गों का विनाश नहीं हो जाता। इसी प्रकार जब 'चितिशक्ति' (विश्व का समष्टिस्वरूप महाचैतन्य) जगत को अपने कुक्षि में लीन कर लेती है तो जगत का आत्यन्तिक संहार नहीं हो जाता।

इसीलिए शाक्त तान्त्रिकों ने कहा कि **जगत की उत्पत्ति नहीं होती** प्रत्युत् प्रलयकाल में जो जगत भगवती चितिशक्ति की कुक्षि में विश्राम करने लगता है वही सृष्टि के समय पुन: कुक्षि से उन्मीलित हो उठता है। जब उन्मीलित जगत को भगवती अपने कुक्षि में विश्राम प्रदान करती हैं तब उसे **'संहार'** माना जाने लगता है और

अभिव्यक्ति को '**उत्पत्ति**' कहा जाने लगता है। ये 'सृष्टि' 'स्थिति' 'संहार' (या प्रलय) की क्रियायें भी भगवती चिति या परमचैतन्य की ही भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं। ये अवस्थातीत परम चैतन्य से अभिन्न हैं अत: ये अवस्थातीत शक्ति के अवस्थाभास मात्र हैं। 'अज' एक है अत: **'अज' जायमान कैसे हो सकता है? परमार्थत: किसी की भी उत्पत्ति नहीं होती** । घटाकाश, मेघाकाश आदि भिन्नवत भासमान होने पर भी महाकाश के ही रूप हैं— सन्त कबीर ने ठीक ही कहा था—

''घट में जल और जल में घट है, बाहर भीतर पानी।
फूटा जल जल जलहिं सामना यह तथ कथौ गियानी॥''

वेदान्त गौड़पादाचार्य का ''अजातिवाद''

यदि तान्त्रिकों, शैवों एवं शाक्तों के सृष्टि-स्थिति-संहार की दृष्टि पर विचार करें तो आचार्य गौड़पाद के '**अजातिवाद**' की दृष्टि पर भी (तुलनात्मक दृष्टि से) विचार कर लेना चाहिये; क्योंकि ये सभी अजातिवादी हैं।

आचार्य गौड़पाद 'माण्डूक्य कारिका' के अद्वैत प्रकरण में 'अजातिवाद' के सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

(१) अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति॥[१]

(२) न कश्चिज्जायते जीव: सम्भवोऽस्य न विद्यते।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते॥

(३) भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिन: केचिदेव हि।
अभूतस्यापरे धीरा विवन्दत: परस्परम्।

(४) भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते।
विवदन्तोऽद्वया ह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते।

(५) अजातस्यैव धर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिन:।
अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यतां कथमेष्यति।

(६) न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथंचिद्भविष्यति॥

(७) कारणाद्य द्यनन्यत्वमत: कार्यमजं यदि।
जायमानाद्धि वै कार्यात्कारणं ते कथं ध्रुवम्॥

---

१. मा. का. (अ.)।

(८) अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै।
जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते॥
(९) स्वतो वा परतो वापि न किंचिद्वस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वापि न किञ्चिद्वस्तु जायते॥
(१०) उत्पादस्या प्रसिद्धत्वादजं सर्वमुदाहृतम्।
न च भूतादभूतस्य सम्भवोऽस्ति कथञ्चन॥
(११) न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते।
एतदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते॥

परमार्थतः तो परमात्मा 'अज' भी नहीं है जायमान की तो बात छोड़िए; क्योंकि "अजः कल्पितसंवृत्या परमार्थेन नाप्यजः॥"

शङ्कराचार्य भी कहते हैं कि— 'अजान्न किञ्चिज्जायत इति सिद्धं भवती-त्यर्थः।"[१]

(३) 'भगवती' चिति सृष्टि के समस्त पदार्थों एवं समस्त कारणों का महाकारण है—

'तत्र स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र **कारणत्वं**'[२]।

विश्वोत्पत्ति की प्रक्रिया या स्वरूप क्या है?

क्षेमराज कहते हैं— (१) न तु ब्रह्मादिवदन्येच्छया ('स्वेच्छया') तयैव (२) न तु उपादानाद्यपेक्षया क्वापि (३) प्राक् निर्णीतं (४) विश्वं दर्पणे नगरवत् (५) अभिन्नमपि भिन्नमिव (६) 'उन्मीलयति' (७) उन्मीलनं च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम् (८) इत्यनेन जगतः प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम् उक्तम्॥[३]

(क) विश्व नये रूप में उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत् जो पहले से विद्यमान था (किन्तु प्रकट नहीं हुआ था) उस गुप्तरूप में स्थित वस्तु की अभिव्यक्ति है— जगत **'उन्मीलन'** है न कि नव्योत्पत्ति॥

(सांख्य का 'सत्कार्यवाद' भी जगत को कारणतत्त्व से उत्पन्न नहीं मानता प्रत्युत् उसका 'कारण' से मात्र प्रकटीकरण मानता है। कार्य न 'विवर्त' है और न 'परिणाम'। वेदान्त का 'विवर्तवाद' एवं सांख्य एवं विशिष्टाद्वैत आदि का 'परिणाम-वाद' यहाँ मान्य नहीं है।) 'सत्कार्यवाद' भी स्वीकार्य नहीं है।

---

१. मा. का. शाङ्करभाष्य (अलात शान्ति प्रकरण १३)।
२. क्षेमराज (प्र. हृ.)।
३. राजानक क्षेमराजः, प्र. हृ.।

(ख) 'चितिः स्वतन्त्रा' सूत्र में **'चिति'** का एक वचन में प्रयोग इसे देश-काल से अनवच्छिन्न बताता हुआ सम्पूर्ण भेदवादों की अयथार्थता का बोध कराता हुआ यह सिद्ध करता है कि—''महेश्वरता का सार ही चिति है।'' **'विश्व'** शब्द का सूत्र में प्रयोग अशेष शक्तिमत्ता, सर्वकारणता, सुखोपायता एवं महाफलता का बोध कराता है।

(४) चैतन्य का बाह्य प्रकाशन या बाह्य प्रसार ही जगत है

'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्त जगदात्मना स्फुरति॥'[1]

(५) चैतन्य (चितिशक्ति) ही विश्व के सृजन, स्थिति एवं संहार तीनों का कारण है—

''सिद्धौ **निष्पत्तौ, प्रकाशने** स्थित्यात्मनि, परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि **संहारे** पराशक्तिरूपा चितिः.......कारणम्।''[2]

जब भगवती चितिशक्ति ही (परम चैतन्य) स्वयं जगत के रूप में स्फुरित हो रही हैं तब अन्य उपादान एवं अन्य कारण की क्या आवश्यकता है। इसी तथ्य को आचार्य क्षेमराज ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

(१) 'ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्॥'

(२) 'कथं हेतुहेतुमद्भावः?'

(३) 'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा **तत्तदनन्तजगदात्मना** स्फुरति॥'

(४) सूत्रकार कहते हैं— **'स्वेच्छया स्वभित्तौ** विश्वमुन्मीलयति।' 'चिति **स्वतन्त्राविश्वसिद्धिहेतुः॥'**

(५) **'स्वतन्त्ररूपा'** पद में 'स्वतन्त्र' का क्या अर्थ है? आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'यतश्च इयं विश्वस्य सिद्धौ पराद्वयसामरस्यापादनात्मनि च संहारे हेतुः, तत् एव **स्वतन्त्रा'** (अर्थात् यह चैतन्य शक्ति (भगवती चिति) विश्व के सृजन या सिद्धि— अद्वय परतत्त्व के साथ सामरस्य ऐक्य-सम्पादनात्मक संहार में कारण है इसीलिए इसे **'स्वतन्त्र'** कहा जाता है।

(६) 'स्वातन्त्र्य' की प्रत्यभिज्ञा हो जाने पर चैतन्य का यही **'स्वातन्त्र्य'** भोग एवं मोक्ष दोनों का अक्षय केन्द्र बन जाता है—

---

१. प्र. हृ.।
२. प्र. हृ.।

"प्रत्यभिज्ञातस्वातन्त्र्या सती, भोगमोक्षस्वरूपाणां विश्वसिद्धीनां हेतुः॥"[१]

चैतन्य का सङ्कोच— शक्तिसूत्रकार कहते हैं— '**चितिसङ्कोचात्मा चेतनोऽपि सङ्कुचितविश्वमयः॥**'[२]

अर्थात् जिस प्रकार **संसार भगवान का शरीर है** उसी प्रकार **सङ्कुचित चिति शक्तिस्वरूप** जीवात्मा भी सङ्कुचित विश्वमय शरीर को धारण करने वाला है।

चैत्य का सङ्कोच और महाचैतन्य (चितिशक्ति)

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि यदि परमार्थतः विचार किया जाय तो स्वयं सङ्कोच भी चिदैक्यरूप से विकसित होने के कारण चिन्मय ही है। उसके अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं है।[३]

'सङ्कोचोऽपि विचार्यमाणः चिदैकात्म्येन प्रथमानत्वात् चिन्मय एव, अन्यथा तु न किञ्चित्॥'[४]

चिति ही जीव है।

चिति (चैतन्य) ही चित्त है

शाक्त आचार्यों ने सृष्टि की प्रत्येक जड़-चेतन सत्ता को चितिशक्ति (या चैतन्य) का अवतार स्वीकार किया है। योरोप के दार्शनिक लाइबनीज़ ने भी प्रत्येक सत्ता एवं प्रत्येक पदार्थ को चेतन तत्त्व का ही एक रूप स्वीकार किया है।

इस जगत में जड़ (चैतन्य शून्य) कोई है ही नहीं।

सत्ता (EXISTENCE) और चैतन्य

(१)	(२)	(३)	(४)
शतप्रतिशत चैतन्य (परमात्मा)।	लगभग सम्पूर्ण चैतन्य। (१) निर्बीज समाधि में स्थित (मुक्त)। (२) कपिल आदि मुनि, ऋषि। (३) विज्ञानाकल।	अधिकांशतः चेतन= 'प्रलयाकल'।	सांसारिक प्राणियों से अधिक सत्व होने के कारण मनुष्यों से अधिक चेतन। देवता (देवों की अनेक श्रेणियाँ)।

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सू. १)।

२. प्र. हृ.।

३. श. सू.।

४. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र ४)।

(५)	(६)	(७)	(८)
विषयानुरागी मानव। जड़ पदार्थों से तादात्म्य रखने वाला बंधनग्रस्त मानव। (चैतन्य की अल्प मात्रा)	पशु, पक्षी, सरीसृप, सर्प आदि प्राणी। (चैतन्य की अत्यल्प मात्रा)	वृक्ष, सुषुप्त चैतन्य, सुखदुःखादि की अनुभूति एवं विकास से सम्बद्ध चैतन्य।	पत्थर, पहाड़, नदी, समुद्र, धातु आदि में स्थित चैतन्य, प्रगाढ़ निद्रा में मग्न चैतन्य।

प्रश्न— क्या जड़ और चेतन कही जाने वाली सारी सत्ताओं में परस्पर स्वरूप-विपर्यय या पारस्परिक विरोध है?

उत्तर— यदि ऐसा होता तो आत्मा के सम्पर्क में आते ही 'जड़' पैर, हाथ, नाक, रसना (इन्द्रियाँ), मस्तिष्क, हृदय, फुफ्फुस, यकृत, नाड़ियाँ अपना कार्य कैसे करने लगती हैं एवं उसके पृथक् होते ही निष्क्रिय एवं मृत क्यों हो जाती हैं? स्पष्ट है कि जड़ और चेतन में ३६ का आँकड़ा नहीं है— कट्टर विरोध नहीं है। लोहे में कणों का विन्यास ऐसा कुछ अवश्य है, जिसके कारण चुम्बक उसे अपनी ओर खींच लेता है— किन्तु वह अन्य धातुओं को नहीं खींच पाता। यदि दोनों में विरोध होता तो चुम्बक लोहे को खींच न पाता। जड़ देह, जड़ शरीराङ्ग, जड़ इन्द्रियाँ, जड़ मन, जड़ अन्तःकरण चतुष्टय, जड़ सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण, जड़ पञ्चमहाभूत एवं जड़ प्रकृति से निर्मित सम्पूर्ण जड़ शरीर चेतन आत्मा (चैतन्य शक्ति) के सम्पर्क में आकर चेतनवत कार्य करने लगते हैं। उनमें चैतन्य का सञ्चार भी हो जाता है। अतः जड़ एवं चेतन में परस्पर साम्य के गुण भी हैं— आकर्षक एवं आकृष्ट में रहने वाले उभयवर्ती साम्य के बिन्दु भी हैं। प्राणी की मृत्यु हो जाने के बाद भी चेतन (आत्मा) के साथ १७ सूक्ष्म जड़ तत्त्व क्यों जाते हैं? उसके साथ जीवन-मृत्यु दोनों अवस्थाओं में क्यों चिपके रहते हैं? (१) **'स्थूल शरीर'** (२) **'सूक्ष्म शरीर'** एवं (३) **'कारण शरीर'** आदि शरीरों का सम्बन्ध कभी भी जड़ तत्त्वों से क्यों नहीं छूटता? इसलिए नहीं छूटता क्योंकि दोनों में चैतन्य है। जड़ कहे जाने वाले तत्त्वों एवं पदार्थों में चैतन्य की मात्रा बहुत कम रहती है और चेतन कहे जाने वाले प्राणियों में चैतन्य की मात्रा अधिक रहती है। यही दोनों में भेद है। **'चैतन्य'** समस्त जगत, जगत के समस्त अस्तित्वों, पदार्थों तथा प्राणियों का मूलाधार है। 'जड़' चैतन्य की सुषुप्ति या मूर्च्छा की अवस्था है, यह चैतन्य के प्रगाढ़ निद्रा की अवस्था है। यदि जगत चेतन की सृष्टि है तो अचेतन कैसे हो सकता है? कहा गया है कि—

''शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं।''

यदि **जगत शिव की शक्ति का स्वस्वरूप** है तो चेतन शक्ति का कोई भी स्वस्वरूप अचेतन कैसे हो सकता है?

परमशिव, अनाश्रित शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या एवं विज्ञानाकल प्रमाता **चित्प्रधान अध्वा का आभासन** किया करते हैं॥

चैतन्यशक्ति की सृजन-पथ पर चलने की विभिन्न गतियाँ

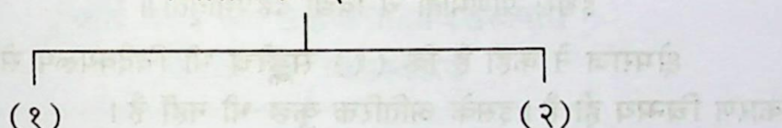
सूत्रकार 'चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्॥' ५ सूत्र में कहते हैं कि 'चेतन पद से अवतरित तथा विषयों द्वारा सङ्कुचित **चिति ही चित्त है।'**

आचार्य क्षेमराज ने ठीक ही कहा है कि चित ही चित्त है वह चितिशक्ति से पृथक् कोई अन्य पदार्थ नहीं है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— क्षेमराज कहते हैं कि—

(१) जब चिति अपने स्वरूप को आच्छादित करके सङ्कोच का अवलम्बन ग्रहण करती है तब उसकी दो प्रकार की गतियाँ होती हैं— (क) वह कभी तो उल्लसित सङ्कोच को गौण करके चित्प्राधान्य को लेकर स्फुरित होती है और (ख) कभी वह सङ्कोच को प्राधान्य देकर स्फुरित होती है।

'चिति' की दो गतियाँ



चित्-प्राधान्यसहित गति ('चित् प्राधान्येन स्फुरति')

चित् का अप्राधान्य और तद्वत् गति॥ ('कदाचित् संकोचप्रधानतया')

स्वाभाविक चित्प्राधान्य पक्ष में प्रकाशमात्र प्रधान होने पर—

(१) **'विज्ञानाकलता स्वरूप'** का विकास होता है।

(२) 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' दोनों के प्राधान्य के स्तर पर **विद्यातत्त्व में अवस्थित प्रमातृता** का विकास होता है।

विमर्शरहित केवल प्रकाश की प्रधानता में विज्ञानाकल प्रमातृता एवं प्रकाश एवं परामर्श (विमर्श) दोनों के प्राधान्य में **'शुद्धविद्या'** तत्त्व में स्थित **'मन्त्रप्रमातृता'** का विकास होता है।

भोक्ता और भोग्य में कोई भेद नहीं है क्योंकि—

'भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः॥'[१]

---

१. स्पन्दकारिका (२/४)।

(३) **'प्रकाश'** एवं **'विमर्श'** के प्राधान्य में भी क्रमशः सङ्कोच के और अधिक क्षीण होने पर चैतन्य को— **'ईश्वर' 'सदाशिव'** एवं **'अनाश्रित शिवरूपता'** प्राप्त होती है।[१]

यदि **चित्तत्व का प्राधान्य समाधि बल से अर्जित** किया गया हो तो **शुद्धाध्वप्रमातृता** प्रकृष्ट होती जाती है।

यदि चित् तत्त्व के **सङ्कोच का प्राधान्य** हुआ तो **'शून्य प्रमातृता'** (प्रलयाकलरूपता) एवं सकलप्रमातृता का विकास होता है।[२]

मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्रमहेश्वर आदि शुद्धाध्व प्रमाता हैं।

'शून्यभूमि' प्रलयाकलावस्था है। **'मायाप्रमाता'**— जीव, पशु, सकल प्रमाता हैं।

अनाश्रित शिव भी **शून्यप्रमाता** है। **'सदाशिव'** बुद्धिप्रमाता है। ईश्वर **'प्राणप्रमाता'** हैं। **'विद्या'** देहप्रमाता है—

'अनाश्रितः शून्य प्रमाता, बुद्धिमाता सदाशिवः।
ईश्वरः प्राणमाता च विद्या देहप्रमातृता॥'[३]

क्षेमराज ने कहा है कि (१) **सङ्कोच** भी चिदैक्यरूप से विकसित होने के कारण **चिन्मय ही** है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

(२) **ख्याति (सङ्कोच) यदि प्रथित नहीं होती** तो उस स्थिति में चितिशक्ति (ख्याति) ही शेष रहती है।

(३) **यदि सङ्कोच क्रियाशील** होता है तो चिद्रूप होने के कारण फिर भी **चिति** (स्वातन्त्र्य शक्ति) ही बची रहती है—

'अख्यातिर्यदि न ख्याति ख्यातिरेवावशिष्यते।
ख्याति चेत्ख्यातिरूपत्वात् ख्यातिरेवावशिष्यते॥'

(४) 'तेन शब्दार्थचिन्तासु न साऽवस्था न यः शिवः'॥ कहकर स्पन्द शास्त्र समस्त अवस्थाओं को शिवमय कहकर **सबके चिन्मयता का ही प्रतिपादन** किया है।

(५) क्षेमराज चित्त को भी चिति का रूपान्तर स्वीकार करके कहते हैं कि "न चित्तं नाम अन्यत्किञ्चित् अपितु सैव भगवती तत्। तथा हि सा स्वयं स्वरूपं

---

१. प्र. हृदयम् (सूत्र ५)।
२. (१) 'विज्ञानाकलप्रमाता' (२) 'मन्त्र प्रमातृता' (३) 'प्रलयाकलप्रमातृता'।
'शुद्धाध्वप्रमातृता'—शुद्धविद्या से लेकर अनाश्रित शिव तक शुद्धाध्वा है।
३. तन्त्रालोक (६/४३-४४)।

गोपयित्वा यदा सङ्कोचं गृह्णाति तदा द्वयी गतिः (१) चित्प्राधान्येन स्फुरति (२) कदाचित् सङ्कोचप्रधानतया॥''[१]

विश्व 'ग्राह्य' और 'ग्राहक' के भेद से द्विविधात्मक है— 'तन्नाना अनुरूप-ग्राह्यग्राहकभेदात्॥'[२]

आत्मा के दो अंश हैं— (१) 'अहं' (२) 'इदम्'॥

(१) 'अहं'= ग्राहक, प्रमाता, ज्ञाता, वेत्ता शिवशक्ति दशा='अहं'॥

(२) 'इदम्'= ग्राह्य, प्रमेय, ज्ञेय, वेद्य सदाशिव दशा='इदन्ता'।

(१) **सदाशिवभट्टारक**= शिव का अधिकारी स्वरूप।

(२) **मन्त्रमहेश्वर**= ये **अणु सदाशिव** कहलाते हैं। 'अणुसदाशिव' सदाशिव-तत्वनिवासी हैं। ये मुक्त हैं तथापि इनमें 'आणवमल' शेष रहता है अतः इन्हें शिवता (परामुक्ति) प्राप्त नहीं होती।

(३) **ईश्वरभट्टारक**= सदाशिव का उन्मेषात्मक या बहिर्मुखस्वरूप। परमशिव का अधिकारी रूप॥

चिति तत्त्व की ग्राहकग्राह्यविश्वरूपता

चैतन्य का विश्वस्वरूप

'सदाशिव'	'ईश्वर तत्त्व'
'सदाशिव' : 'अहमिदम्' (परापररूप विश्व) (**अहं** का प्राधान्य) (सदाशिवतत्त्वे अहन्ताच्छादित अस्फुटेदन्तामयं यादृशं **परापररूपं विश्वं ग्राह्यं**। (तादृगेव श्री सदाशिवभट्टारकाधिष्ठितो मन्त्रमहेश्वराख्यः प्रमातृवर्गः परमेश्वरे-च्छावकल्पिततथावस्थानः॥)[३]	'ईश्वर तत्त्व' ('इदमहम्') ('इदम्' का प्राधान्य एवं 'अहं' की अप्रधानता।) (ईश्वरतत्त्वे स्फुटेदन्ता हन्तासामानाधिकरण्यात्म यादृक् विश्वं ग्राह्यं। 'तथाविध एव ईश्वरभट्टारका-धिष्ठितो।')[४]
(अ) अहं की स्फुटता (ब) इदम् की अस्फुटता } ['सदाशिव']	(अ) 'इदम्' की स्फुटता (ब) अहम् की अस्फुटता } [ईश्वर]

१. प्र. हृ., (सूत्र ५)।
२. प्र. हृदयम्।
३. ई. प्र.।
४. ई. प्र. (क्षेमराज)।

'ईश्वरतत्त्व' में 'स्फुट इदन्ता' और 'अहन्ता' का सामानाधिकरण्य रूप जैसा विश्व ग्राह्य है। **'ईश्वर भट्टारक'** से अधिष्ठित मन्त्रेश्वरवर्ग ही **'ग्राहक'** है। **'विद्यापद'** में श्रीमान अनन्तभट्टारक से अधिष्ठित अनेक शाखाओं से भिन्न मन्त्र रूप **'ग्राहक'** हैं। भेदात्मक विश्व **'ग्राह्य'** है।

माया के ऊर्ध्व भाग में कर्तृताशून्य शुद्ध बोधात्मा जिस प्रकार **विज्ञानाकल ग्राहक** है उसी प्रकार **'सकल'** एवं **'प्रलयाकल'** भी ग्राहक हैं।

इस प्रकार पमशिवभट्टारक (जगत के परात्पर महाचैतन्य) ही अनेक प्रकार से हजारों रूपों में स्फुरित होते हैं—

'श्री पमशिवभट्टारक एव इत्थं नानावैचित्र्य सहस्रै : स्फुरति॥'[१] इसीलिए कहा गया है कि— 'एवं भगवान् **विश्वशरीरः**।' ''श्री **परशिवः** स्वात्मैक्येन **स्थितं विश्वं**॥'' 'भगवान् **विश्वशरीरः** तथा॥' 'सर्वो ग्राहको **विश्वशरीरः** शिवभट्टारक एव॥'

सभी **प्रमाताओं** ('विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल', 'सकल' आदि सभी प्रमाताओं के अपने अपने स्वानुरूप **प्रमेय** हैं।

सप्त प्रमाताओं से परे प्रकाशैकशरीर शिवभट्टारक प्रमाता के लिए प्रकाशैक-रूप ही 'प्रमेय' हैं। परम शिव के प्रमेय हैं— शिव से धरा पर्यन्त सभी तत्त्व।

'गुणत्रय' और चैतन्य— 'पतिदशा' में स्थित ज्ञान, क्रिया और माया जो कि भगवती चिति शक्ति के विविध रूप हैं। वे ही 'पशुदशा' में— (१) **'सत्त्वगुण'** (२) **'रजोगुण'** एवं (३) **'तमोगुण'** के रूपों में रूपान्तरित हो जाते हैं।

'स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।
माया तृतीये ते एव पशोः सत्वं रजस्तमः॥'

अर्थात् 'स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञान-क्रिया माया शक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्वरजस्तमः स्वभावचित्तात्मतया स्फुरति इति श्री प्रतिभिज्ञाया-मुक्तम्॥''[२]

(१) **देह** और **प्राण** चित्तप्रधान हैं।

(२) **शून्यभूमि** भी चित्त के संस्कार से युक्त रहती है।

---

१. प्र. हृदयम् (क्षेमराज)।
'विज्ञानाकल'— ''मायोर्ध्वे यादृशा विज्ञानकलाः कर्तृताशून्य शुद्धबोधात्मानः॥''

२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (आचार्य क्षेमराज)।

(३) माया-प्रमाता सकलाख्य जीव भी चित्तमय है।

(४) चित्त ही आत्मा है— 'चित्तमात्मा'।

आत्मा चैतन्यस्वरूप है अत: देह, प्राण, शून्य, जीव (माया प्रमाता) आदि सभी चैतन्य के ही स्वरूप हैं।[१] अर्थात् सर्वत्र चैतन्य का ही एकछत्र साम्राज्य है।

शिव ही चिदात्मा है

''निर्णीतदिशा शिवभट्टारक एव एक 'आत्मा' न तु अन्य: कश्चित्॥''

चिदात्मा 'प्रकाश' ही 'ग्राह्य' है

प्रकाश ही स्वातन्त्र्य से प्राण आदि के रूप में सङ्कुचित होकर अर्थग्राहकता प्राप्त करता है अत: **चैतन्यस्वरूप** यह आत्मा ही (क) प्रकाशरूपत्व एवं (ख) सङ्कोचावभासत्व के कारण द्विरूपात्मक है।

चिद्रूप आत्मा (परम चैतन्य) ही 'पञ्चकञ्चुक' भी है

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'शिवादि सकलान्त प्रमातृसप्तकस्वरूप: **चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूप**त्वेऽपि **अख्यतिवशात्— कला-विद्या-राग-काल-नियति** कञ्चुकवलितत्वात् पञ्चकस्वभाव:॥'

सारे दर्शनों में सर्वत्र चैतन्य की भूमिकायें ही सर्वस्व हैं

'तद्भूमिका: सर्वदर्शनस्थितय:॥'[२]

अर्थात् चार्वाक आदि समस्त दर्शनों में वर्णित स्थितियाँ या सिद्धान्त उस एक नट (विश्वसूत्रधार चैतन्यदेव) की स्वेच्छाग्रहीत कृत्रिम भूमिका मात्र है।[३]

सम्पूर्ण दर्शनों की स्थितियाँ ही उसकी भूमिकायें हैं। एक ही अद्वैत चिदात्मा (भगवान स्वातन्त्र्यदेव) की 'स्वातन्त्र्यशक्ति' से अवभासित ये सारी भूमिकायें हैं जो कि उस महाचैतन्य (चितिशक्ति) के आत्मप्रच्छादन द्वारा आवृत होकर रह गई हैं और इन समस्त— अभेद-भेदाभेद-भेद स्तर पर प्रसृत समस्त भूमिकाओं में चिदात्मा (चैतन्य देव) ही व्याप्त है—

'एवं एकस्यैव चिदात्मनो भगवत: स्वातन्त्र्यावभासिता: सर्वा इमा भूमिका: स्वातन्त्र्यप्रच्छादनोन्मीलनतारतम्यभेदिता:, अतएव एक एव एतावद् व्याप्तिक आत्मा॥'[४]

---

१. क्षेमराज

२. प्र. हृ. (सू. ८)।

३. प्र. हृ.।

४. प्र. हृ. (सू. ८)।

संसारी (जीव) भी चैतन्य का ही एक रूप है

शक्तिसूत्रकार कहते हैं—

"चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचात् मलावृतः संसारी॥"[१]

जब चिदात्मा परमेश्वर (परात्पर महाचैतन्य) अपनी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' से अभेदव्याप्ति को सङ्कुचित करके भेदव्याप्ति का आश्रय ग्रहण करते हैं तब उनकी ही इच्छा ज्ञान-क्रिया आदि शक्तियाँ सङ्कुचित होकर पश्वात्मक स्वरूप धारण कर लेती हैं और इन्हीं के आच्छादन से ढका चैतन्य संसारी जीव बन जाता है—

"यदा **चिदात्मा परमेश्वरः** स्वस्वातन्त्र्यात् अभेदव्याप्तिं निमज्य भेदव्याप्तिं अवलम्बते तदा तदीया इच्छादिशक्तयः असङ्कुचिता अपि सङ्कोचवत्यो भान्ति, तदानीमेव च अयं 'मलावृतः' संसारी भवति॥"[२]

चितिशक्ति ही 'आणव'-'मायीय'-'कार्य मल' भी है

'कार्ममल' और चितिशक्ति

(१) चैतन्य तत्त्व की अपनी '**क्रिया शक्ति' सर्वकर्तृत्व** की सामर्थ्य का त्याग करके **अल्पकर्तृत्व** का आलिंगन कर लेती है। वह कर्मेन्द्रियरूप संकोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित (संकुचित) हो जाती है और तब उसे ही शुभाशुभ कर्ममय '**कार्ममल**' कहा जाने लगता है।[३]

परम चैतन्य (आत्मा) ही '**ज्ञान शक्ति**' और '**मायीय मल**' दोनों है।

'मायीय मल' और चितिशक्ति

परात्पर परम चैतन्य की अपनी '**ज्ञानशक्ति**' सर्वज्ञत्व की सामर्थ्य का त्याग करके अन्तःकरण एवं ज्ञानेन्द्रियों का दासत्व स्वीकार कर लेती है तब वही अल्पज्ञत्व प्राप्त करके '**मायीय मल**' का स्वरूप धारण कर लेती है।[४]

'आणव मल' और चितिशक्ति

विश्वमय एवं विश्वातीत परम चैतन्य की '**इच्छा शक्ति**' असंकुचित होकर भी भेददृष्टि का अवलम्बन ग्रहण करने से अपूर्णमन्यतात्मक '**आणवमल**' बन जाती है।[५]

---

१. प्र. हृ. (सू. ९)।
२. राजानक आचार्य क्षेमराज।
३. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र ९)।
४. वही।
५. वही।

चैतन्य शक्ति ही 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' भी है

(१) **क्रियाशक्तिः** क्रमेण भेदे सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रियरूप-सङ्कोचग्रहणपूर्वम् अत्यन्तं परिमितितां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं 'कार्मं मलम्'। (प्र. हृ. सूत्र ९)।

(२) '**ज्ञानशक्तिः**' क्रमेण सङ्कोचात् भेदे सर्वज्ञत्वस्य किञ्चिज्ज्ञत्वाप्तेः अन्तः-करणबुद्धीन्द्रियतापत्तिपूर्वं अत्यन्तं सङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्यप्रथारूपं **मायीयं मलम्**।

(३) 'यदा चिदात्मा परमेश्वरः स्वस्वातन्त्र्यात् अभेदव्याप्तिं निमज्ज्य भेदव्याप्तिं अवलम्बते तदा तदीया इच्छादि शक्तयः असङ्कुचिता अपि सङ्कोचवत्यो भान्ति। तदानी-मेव च अयं मलावृतः संसारी भवति। तथा च अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्तिः सङ्कुचिता सती अपूर्णम्मन्यतारूपम् **आणवं मलम्**॥ —प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ९)

स्पन्दशास्त्र में कहा गया है कि—

'सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका॥'[१]

भट्ट कल्लट भी कहते हैं—

'सैव च बन्धकारणम् प्रज्ञाता, ज्ञाता स च पुनः परापरसिद्धिप्रदा भवति पुंसाम्॥'[२]

'स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः।
यतः शब्दानुवेधेन न बिना प्रत्ययोद्भवः॥'[३]

(क) मुक्ति-चक्रेश्वरत्व-प्राप्ति

यदा त्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोदयौ।
नियच्छन् भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत्॥

(ख) बन्धन-पशुत्व-प्राप्ति

(१) शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स **पशुः** स्मृतः॥ (४५)

(पशु भूमिका में यही परा चिति शक्ति बन्धन का भी कारण है।)

(२) परामृतरसापायस्तस्य यः प्रत्ययोद्भवः।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचरः॥ (४६)

---

१. स्पन्दकारिका (कारिका ४८)।
२. स्पन्द सर्वस्व (स्पन्दवृत्ति)।
३. स्पन्दकारिका (४७)।

भट्टकल्लट कहते हैं—

"शब्दराशिरकारादिक्षकारान्तः तत्समुद्भूतस्य कादिवर्गात्मकस्य **ब्राह्मयादि शक्तिसमूहः** भोग्यतां गतः पुरुषो, **ब्राह्मयादीनां कलाभिः** ककाराद्यक्षरैर्विलुप्तविभवः स्वस्वरूपात् प्रच्यावितः **पशुरुच्यते**॥"[१]

चैतन्य, 'मल' और बन्धन

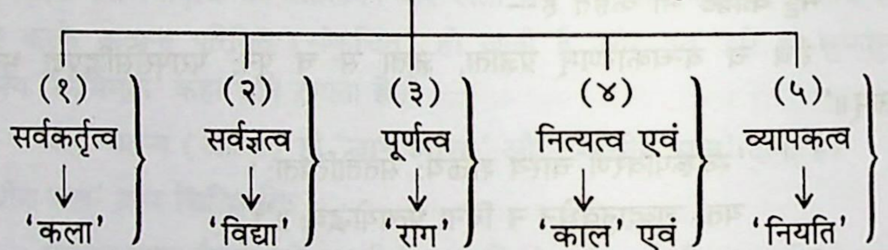
भगवती चितिशक्ति के स्वरूपभूत **'मल'** ('आणव मल', 'मायीय मल', 'कार्म मल') ही मलातीत शुद्ध चैतन्य को संसारी बना देते हैं—

'चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचात् मलावृतः संसारी॥'[२]

'मलावृतः संसारी भवति॥'[३]

(अ) **'इच्छाशक्ति'** का सङ्कोच→	'आणव मल'	चैतन्य की
(ब) **'ज्ञानशक्ति'** का सङ्कोच→	'मायीय मल'	शक्तियाँ और
(स) **'क्रियाशक्ति'** का सङ्कोच→	'कार्म मल'	'मलत्रय'

परम चैतन्य की शक्तियाँ और पञ्चकञ्चुक



[शक्ति का सङ्कुचित रूप='पञ्चकञ्चुक']

क्षेमराज कहते हैं— "तथा सर्वकर्तृत्व—सर्वज्ञत्व—पूर्णत्व—नित्यत्व—व्यापकत्व शक्तयः सङ्कोचं गृह्णाना यथाक्रमं 'कला'—'विद्या'—'राग'—'काल'—'नियति'रूपतया भान्ति। तथाविधश्च अयं शक्तिदरिद्रः संसारी उच्यते, स्वशक्तिविकासे तु शिव एव॥"[४]

चिदात्मा और विश्व-विकास-

चिदात्मा जब अपने ऊपर **'अहं'** एवं **'इदम्'** का आवरण डालकर अपने 'अमित' स्वरूप को मित एवं असङ्कुचित सर्वव्यापक एवं सार्वभौम स्वरूप को

---

१. भट्ट कल्लट-स्पन्द सर्वस्व (का. ४५)।

२. शक्तिसूत्र (९)

३. क्षेमराज।

४. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र ९)।

संकुचित करना प्रारम्भ करता है तब सङ्कुचन के तारतम्य से लगातार अपना सूक्ष्म स्वरूप छोड़ता हुआ स्थूल और स्थूलतर स्वरूप ग्रहण करता जाता है और इस प्रकार **'शिव'-'सदाशिव'-'ईश्वर'-'शुद्धविद्या'** के सोपानों पर उतरता हुआ पृथ्वी तत्त्व के निम्नतम सोपान तक पहुँच जाता है। उसकी अपनी स्वसमवेता शक्तियाँ— **'चित्शक्ति' 'आनन्दशक्ति' 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति'** भी स्थूल एवं स्थूलतर स्वरूप धारण करती हुई इस प्रकार विकसित होती हैं—

'तत्र सृष्ट्युन्मुखो भगवान् शुद्धाध्वनि वर्तमानः स्वशक्तिभिः मायां विक्षोभ्य, **'कला तत्त्वं'** किञ्चित्कर्तृत्वलक्षणं पुद्गलस्य सृजति, ततोऽपि किंचिदवबोधाख्यं **'विद्यातत्त्वं'**; किञ्चिदभिलाषरूपं च **'रागतत्त्वं'** तदेतत्सरागं कर्तृतत्त्वं, भूतभविष्य-द्वर्तमानतया त्रिधा अवच्छिद्यते तत् **'कालतत्त्वं'**, तुल्यत्वेऽपि रागे येन कर्तृत्वस्य अवच्छेदः क्रियते तत् **''नियतितत्त्वं''** तदेतत् कञ्चुकषट्कं अन्तर्मलावृतस्य पुद्गलस्य बहिराच्छादकम्। सा च 'कला' पुरुषस्य परिमितं कर्तृत्वं प्रकाश्य सुखदुःखमोहरूपं भोग्यम् अव्यक्तत्वं सृजति। ततोऽपि अष्टगुणं **बुद्धितत्त्वं** उत्पन्नं, ततोऽपि सात्विक-राजसतामसभेदभिन्नं त्रिस्कन्धम् **अहंकारतत्त्वम्**, तत्र पूर्वस्मात् अहंकारात् **मनो** जातं, अपस्मात् **इन्द्रियाणि**, तृतीयात् **तन्मात्राणि**, एभ्यो भूतानि— इत्येवमयम् एकस्यैव आदिदेवस्य स्वातन्त्र्यमहिम्ना संसारे संसरतः परिमितप्रामृताम् अवलम्बमानस्य तत्त्व प्रसारः।

चिल्लचक्रेश्वर मत में कहा गया है कि—

''माया कला शुद्धविद्या रागकालौ नियन्त्रणा।
षडेतान्यावृतिवशात्कञ्चुकानि मितात्मनः।
एवं च पुद्गलस्यान्तर्मलः कञ्चुकवत्स्थितः।
तुषवत्कञ्चुकानि स्युस्तस्माज्ज्ञानक्रियोज्झितः॥''[१]

जो **परम चिदात्म** तत्त्व है वह तो **'कलातीत'** है तथापि समस्त कलायें उसके भीतर ही स्थित हैं— वह **भुवनातीत** है तथापि सारे भूत एवं भुवन उस चिदात्मा के भीतर ही स्थित हैं—

'परंतु तत्त्वं स्वतन्त्रत्वात् कलातीतम्' आसामेव कलानां तत्त्ववदन्तर्भूतानि भुवनान्यपि बोद्धव्यानि॥'

'स्थूल', 'सूक्ष्म' एवं 'पर' के भेद से तीन प्रमेय भी हैं। यथा— **स्थूल**— 'भुवन'; **सूक्ष्म**— 'तत्त्व'; **पर**— 'कला'।

---

१. जन्ममणविचारः (वामदेवाचार्य)।

इसी प्रकार 'प्रमाण' की भी स्थिति है जो कि इस प्रकार हैं— (१) '**पद**' (२) '**वर्ण**' एवं (३) '**मंत्र**'।

"एवं स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन भुवन-तत्त्व-कलारूपं त्रिविधरूपं **प्रमेयम्** उक्तम्, प्रमाणमपि तथैव पद-मन्त्र-वर्णतया त्रिविधमेव॥"[1]

समस्त 'षडध्व' चैतन्य का ही स्वस्वरूप है

'चिदात्मा' पञ्चकृत्यविधायक है-

शक्तिसूत्रकार कहते हैं कि— 'तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति॥'[2]

'ईश्वराद्वयवाद' एवं 'ब्रह्माद्वयवाद' में भिन्नता

"संसारी दशा में भी चिदात्मा शिव के सदृश पञ्चकृत्य करता है"— यहाँ '**ईश्वराद्वयवाद**' एवं '**ब्रह्माद्वैतवाद**' में भेद है— "इह ईश्वराद्वयदर्शनस्य ब्रह्मवादिभ्यः अयमेवविशेषः" कहा भी गया है—

"सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारकम्।
अनुग्रहकरं देव प्रणतार्तिविनाशनम्॥"
"सदा पञ्चकृत्यकारित्वं चिदात्मता भगवतः॥"

अर्थात् **चिदात्मा** भगवान में सदैव पञ्चविधकृत्यकारिता विद्यमान रहती है। जैसे भगवान "**अशुद्ध अध्वा**" के विकासक्रम से स्वरूप विकासात्मक सृष्टि आदि की रचना करते हैं वैसे ही चित् शक्ति के सङ्कुचित् होने पर '**संसार भूमिका**' में भी पञ्चकृत्यों का निष्पादन करते हैं।

"तदेवं व्यवहारेऽपि प्रभुर्देहादिमाविशन्।
भान्तमेवान्तरर्थौघमिच्छया भासयेद्बहिः॥"[3]

संसारित्व या अज्ञानावरणत्व भी चिदात्मा की ही अपनी कल्पना है

'तदपरिज्ञाने स्वशक्तिभिर्व्यामोहितता संसारित्वम्॥'[4]

जो व्यामोहरूप संसारित्व है वह भी अपनी भी चिदात्मा की अपनी ही कल्पना है। 'तिरोधान' 'स्वस्वरूपावरण' 'स्व-स्वरूप-प्रच्छादन' 'लीलावाद' आदि चिदात्मा की स्वकल्पित एवं स्वसृष्ट लीलायें या अभिनय हैं। इसीलिए कहा गया है कि— "तदपरिज्ञाने स्वशक्तिभिर्व्यामोहितता संसारित्वम्॥"

---

१. जन्ममरणविचारः।
२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (क्षेमराज)।
३. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सू. १०)।
४. शक्तिसूत्र (१२)।

'परावाक्' एवं 'पूर्णाऽहंविमर्श भी चिदात्मा की भूमिकायें हैं

ये चित्प्रकाश से अव्यतिरिक्त हैं—

''चित्प्रकाशात् अव्यतिरिक्ता नित्योदितमहामन्त्ररूपा पूर्णाऽहंविमर्शमयी या इह 'परावाक् शक्तिः' आदिक्षान्तरूपा शेषशक्तिचक्रगर्भिणी सा तावत् पश्यन्तीमध्यमादि-क्रमेण ग्राहक भूमिकां भासयति॥''

अर्थात् चित्प्रकाश से अभिन्न, नित्योदित महामन्त्ररूप पूर्ण अहं विमर्शात्मक जो यह 'परावाक् शक्ति' है जिसके गर्भ में 'अ' से लेकर 'क्ष' तक (वर्णात्मक) समस्त 'शक्तिचक्र' विद्यमान रहता है, वही 'पश्यन्ती' और 'मध्यमा' के क्रम से ग्राहक-भूमिका को आभासित करती है। 'चिति' ही परावाक् है।[1]

विश्व का वमन या विश्व-सृजन

समस्त विश्व की सृष्टि चिदात्मा द्वारा ही हुई है—

भगवती 'चितिशक्ति' ही विश्व का वमन (बहिः प्रकाशन) करने के कारण या संसार रूप वाम-विपरीत आचरण करने से वामेश्वरी का रूप ग्रहण करती हुई— **'खेचरी' 'गोचरी' 'दिक्करी'** एवं भूचरीरूप प्रमाता, अन्तःकरण, बाह्यकरण और वस्तुस्वभाव रूप में स्फुरित होती है। पशुभूमिका में शून्यपद को ग्रहण करके पारमार्थिक **'चिद्गगनचरी'** का स्वरूप छिपाकर, किञ्चित्कर्तृत्वादि रूप कलादि शक्त्यात्मक **'खेचरी'** चक्ररूप में प्रकाशित होती है। अभेदनिश्चयादिरूप को पार-मार्थिक स्वरूप को छिपाकर, भेदनिश्चय, भेदाभिमान, तथा भेदकल्पना ही जिसमें प्रधान है ऐसे अन्तःकरणों की देवीरूप गोचरीचक्र के रूप में प्रकाशित होती है।

अभेदप्रथात्मक पारमार्थिकरूप जिसमें आच्छादित है तथा भेद का आलोचन आदि जिसमें प्रधान है ऐसी बाह्य कारणों की देवीस्वरूप 'दिक्करी चक्र' के रूप में भी वही **'चिति'** उदित होती है तथा सर्वात्मरूप को छिपाकर, भेदाभासस्वभाव, प्रमेयरूप 'भूचरी चक्र' के रूप में पशु हृदयों को मूढ बनाती हुई शोभित होती है। चितिशक्ति ही **'पतिभूमिका'** में सर्वकर्तृत्व आदि शक्तिरूप **'चिद्गगनचरी'**, अभेदनिश्चयादिरूप **''गोचरी''** अभेदालोचनाद्यात्मक **'दिक्चरी'** और निजाङ्गस्वरूप अद्वैतप्रथासारभूत प्रमेयात्मक **'भूचरी'** रूप से, पतिहृदय को विकसित करती हुई स्फुरित होती है।

चिदात्माशक्ति ही मुक्तिदा एवं बन्धनप्रदा दोनों होती है

भट्टदामोदर कहते हैं— पूर्णप्रमाता, परिमितप्रमाता तथा उसके अन्तःकरण,

---

१. 'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः॥'

—ई. प्र. कारिका (१/५)

बाह्यकरण एवं प्रमेयगत '**वामेश्वरी (वामेशी)**' आदि शक्तियाँ ज्ञात होने पर मुक्ति एवं अज्ञात होने पर बन्धप्रद बन जाती हैं—

''पूर्णाविच्छिन्नमात्रन्तर्बहिष्करणभावगा:।
वामेशाद्या: परिज्ञानाज्ञानात् स्युर्मुक्तिबन्धदा: ॥''

चिदात्मा की अविनाशी तथा स्पन्दन जिसमें सार है ऐसी कर्तृतारूप एक ही निजी '**ऐश्वर्यशक्ति**' है। वह शक्ति जब अपने स्वरूप को छिपाकर पशुदशा में प्राण, अपान एवं समान शक्ति की दशाओं, जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति भूमियों, देह, प्राण एवं पुर्यष्टकात्मक कलाओं द्वारा व्यामोहित करती है तब उसी से जनित व्यामोहितता को '**संसारित्व**' कहते हैं। जब वह चैतन्य शक्ति (ऐश्वर्य शक्ति) मध्यधाम (सुषुम्ना मार्ग) के उल्लासरूप '**उदानशक्ति**' एवं विश्व-व्याप्ति-सारभूत '**व्यानशक्ति**' को, जिसे क्रमश: आनन्दघन, तुर्यदशा और चिदघनरूप '**तुर्यातीत दशा**' कहा जाता है, उन्मीलित करती है तब देह आदि अवस्था में भी पतिदशात्मक '**जीवन्मुक्ति**' प्राप्त होती है। जब चित्प्रकाश सङ्कोच ग्रहण करता है तब व्यक्ति संसारी (बन्धनग्रस्त) बन जाता है।[१]

चित्त भी चैतन्यतत्त्व (चितिशक्ति) ही है-

प्रत्यभिज्ञाहृदयकार कहते हैं—

''तत्परिज्ञाने चित्तमेव अन्तर्मुखीभावेन **चेतनपदाध्या**रोहात् चिति: ॥'' (१३)

अर्थात् उसके पूर्णतया ज्ञात होने पर **चित्त**, अन्तर्मुखी दशा में **चेतन पद** पर आरूढ़ होकर चिति का रूप ग्रहण करता है। चित्त संकोचात्मक बहिर्मुखता का त्याग करके अन्तर्मुख हो जाता है और सङ्कोच कला के विलगित हो जाने पर स्वरूप का लाभ करके **चिति का रूप ग्रहण** करता है। अपनी चिन्मयी परावस्था में प्रविष्ट हो जाता है।

''चित्तं तदेव सङ्कोचिनीं बहिर्मुखता जहत् अन्तर्मुखीभावेन चेतनपदाध्यारोहात् ग्राहकभूमिकाक्रमण क्रमेण सङ्कोचकलाया अपि विगलनेन स्वरूपापत्या चिति: भवति, स्वां चिन्मयीं **परां भूमि**माविशति इत्यर्थ: ॥''[२]

चैतन्य ही अग्नि है

'चिति' ही संसार का ग्रास कर लेने के कारण '**अग्नि**' कही जाती है। यही अवरोह पद या जीवदशा में, अधिक राख से ढकी अग्नि के समान, आच्छादित होने पर भी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' द्वारा अंशत: नील-पीत आदि पदार्थों के इन्धन को आत्मसात् कर लेती है।

---

१. प्र. हृ. (सूत्र १२)।

२. प्र. हृ.।

चैतन्य ही 'बल' है

चितिशक्ति (चैतन्य) ही देह, प्राण आदि आवरणों को निमज्जित करके स्वरूप को उन्मिषित करती हुई 'बल' के नाम से कही जाती है अतः कहा गया है—

"बललाभे विश्वमात्मसात् करोति॥" (सूत्र १५)

चिदानन्द (चैतन्यानन्द) की प्राप्ति से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है

प्रत्यभिज्ञाहृदयकार कहते हैं—

(१) चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्य प्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः॥ (१६)[१]

(२) मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः॥ (१७)[२]

मध्य के विकास से चिदानन्द की प्राप्ति होती है और चिदानन्द (चैतन्यानन्द) की प्राप्ति से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है।

चिदैक्यामर्श से 'नित्योदितसमाधि' प्राप्त होती है

'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' में कहा गया है—

"समाधिसंस्कारवति व्युत्थाने भूयो भूयश्चिदैक्यामर्शान्नित्योदितसमाधि-लाभः॥" (१९)

समाधि (समावेश, समापत्ति) के संस्कार से सम्पन्न व्युत्थान दशा में वारम्वार चित् के साथ ऐक्य का परिशीलन करने से नित्योदित (एक रस) समाधि का लाभ होता है।

चैतन्याप्ति द्वारा परभैरवता की प्राप्ति

इस प्रकार समस्त दशाओं में एक ही **'चितिशक्ति'** (यदि उसमें प्रवेश और स्थिरता की युक्ति से) प्राप्त कर ली जाती है तो उसमें समाहित होने से पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बाह्य एवं अन्तःकरणों के **'उन्मीलन'** एवं **'निमीलन'** क्रम से सब वस्तुओं के सर्वमय होने के कारण उस वस्तु के संहारादि कार्यों में भी सदैव सृष्टि और संहार करने वाला जो अमायीय आभ्यन्तर और बाह्य मरीचि (शक्ति) पुञ्ज है, उसमें प्रभुत्व स्थापित हो जाता है, अर्थात् परमयोगी को **'परभैरव रूपता'** प्राप्त हो जाती है। यदि योगी **चितिशक्ति** से अपने चित्त को लय कर देता है तब सर्वाधिपति बन जाता है—

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम्।

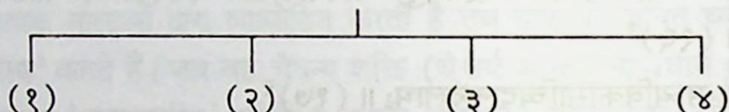
२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम्।

"यदात्वेकत्र संरूढ़स्तदा तस्य लयोद्भवौ।
नियच्छन्भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत्॥"[१]

चैतन्य की व्यक्तावस्थायें

तत्त्वत: तो परात्पर चैतन्य अवस्थातीत है। अत: उसके अखण्ड होने के कारण उसके अवस्थागत खण्ड या उसकी अवस्थानुगत खण्डित भूमिकायें हो ही नहीं सकतीं किन्तु व्यावहारिक दशा में वे अवश्य होती हैं।

चैतन्य की अवस्थायें



'जाग्रतावस्था' 'स्वप्नावस्था' 'तुरीयावस्था' 'तुरीयातीतावस्था'

आचार्य भास्कर राय की दृष्टि-

दस इन्द्रियों के गण की व्यवहाररूप जाग्रतावस्था होती है—
"इन्द्रिय दशकव्यवहतिरूपा या **जागरावस्था**॥"

अन्तःकरण चतुष्क (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) **की व्यावहारिक** अवस्था '**स्वप्नावस्था**' है— "अन्त:करणचतुष्कव्यवहार: स्वाप्निकावस्था॥"

वार्तिक-मत में वृत्तिसामान्याभाव ही सुषुप्ति है। **विवरणकार** का कथन है कि सुषुप्ति 'आत्मसुखाज्ञानविषयी' अवस्था है।

चैतन्य को अभिव्यक्त करने वाले नाद की अवस्था को '**तुरीयावस्था**' कहते हैं—

'**तुर्यावस्था** चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनं प्रोक्तम्॥'

पूरिपूर्ण आनन्द (आनन्दैकघन) की अवस्था जो कि व्यक्ति को वाणी द्वारा गोचर नहीं होती '**तुरीयातीतावस्था**' कहलाती है।

"आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम्।
तुर्यातीतावस्था सा नादान्तादिपञ्चके भाव्या॥"[२]

चैतन्य आत्मा की अवस्थायें

चैतन्यस्वरूपा आत्मा की मुख्यत: तीन अवस्थायें होती हैं—

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम (सूत्र २०) "एवं एषा सर्वदशासु एकैव चिति शक्ति: विजृंभमाणा.... (प्राप्नोति) पर भैरवात्मता॥" —प्रत्यभिज्ञा हृदयम्

२. वरिवस्यारहस्यम् (१/३७-३८-३९, ४०)।

(१) '**केवलावस्था**' (२) '**सकलावस्था**' (३) '**शुद्धावस्था**'।[१]

चैतन्य का सप्त प्रमातास्वरूप

(१) **परप्रमातृ**

(२) सत्यप्रमाता। शिवतत्त्व। परप्रमाता। '**शिव भट्टारक**'

(३) सदाशिव तत्त्वावस्थित प्रमाता= '**मन्त्रमहेश्वर**'

(४) शुद्धविद्यातत्त्व में अवस्थित प्रमाता='**मन्त्र**' ७ करोड़ मन्त्र

(५) शुद्धविद्यातत्त्वावस्थित = '**विज्ञानाकल**'

(६) मायातत्त्वावस्थित प्रमाता=प्रलयाकल, '**प्रलयकेवली**' '**शून्यप्रमाता**'

(७) मायाप्रमाता, परिमित प्रमाता, सङ्कुचित प्रमाता '**सकल**' (जीव) (आणव, मायीय एवं कार्ममलों से आवृत आत्मा = '**सकल प्रमाता**'।

मन्त्रेश्वर— 'मुख्यमन्त्रेश्वराणां

यत् सार्धं कोटित्रयं स्थितम्।

तन्नायका इमे तेन विद्येशाश्चक्रवर्तिनः॥'

—तन्त्रालोक(२४४)

'**अनन्तभट्टारक**' प्रधान विद्येश्वर हैं। ७ विद्येश्वरों एवं मन्त्रेश्वरों के नायक भी हैं।

चैतन्य का मन्त्रेश्वरों के रूप में स्वस्वरूप

(अष्ट विद्येश्वर)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
'शिखण्डी'	'श्रीकण्ठ'	'त्रिमूर्ति'	'एकनेत्र'	'एकरुद्र'	'शिवोत्तम'	'सूक्ष्म'	'अनन्त'

ये ही ८ विद्येश्वर हैं।

१. शैव परिभाषा (योगीन्द्रनाथ शिवाचार्य)।

(क) शिव का स्वरूप-

आचार्य क्षेमराज ने शिवतत्त्व को इस प्रकार परिभाषित व्याख्यात किया है—

''यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाऽखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः **शिवतत्त्व**मुच्यते तज्ज्ञैः॥''

(ख) 'सदाशिव' का स्वरूप-

'सदाशिव' अहमिदम् की अनुभूतिवाले हैं। उनका स्वरूप इत्याकारक है—

'स्वेच्छाशक्त्युद्गीर्णं जगदात्मा हन्तया समाच्छाद्य।
निवसन् स एव निखिलानुग्रहनिरतः सदाशिवोऽभिहतः॥'

(ग) 'शुद्धविद्या' का स्वरूप (विद्यापद का स्वरूप)

'विश्वं पश्चात्पश्यन्निदन्तया निखिल**मीश्वरो** जातः।
सामवति **'शुद्धविद्या'** येदन्ताहन्तयोरभेदमतिः॥'

—षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह

'इदन्ता' और अहन्ता में सामानाधिकरण्य ही **'शुद्ध विद्या'** है। जहाँ इदन्ता एवं अहन्ता की समुतुल्यता है **'विद्या'** है।

'ईश्वर' और 'सदाशिव' में भेद

(१) **'ईश्वर'** 'ईश्वरो बहिरुन्मेषो'[१]

(शिव का बाह्योन्मेष 'ईश्वर' है।)

(२) **'सदाशिव'**— 'निमेषोऽन्तः सदाशिवः॥'

(शिव का अन्तः निमेष **'सदाशिव'** है।)

'निमेषोऽन्तः **सदाशिवः**॥'

'उन्मेषनिमेषौ बहिरन्तःस्थिती एवेश्वरसदाशिवौ।'[२]

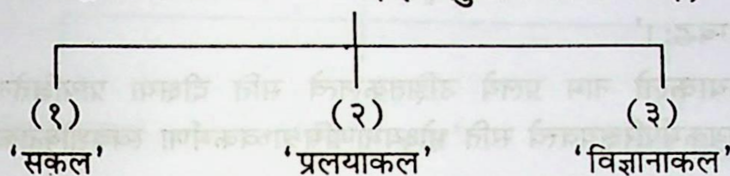
(३) **'शुद्धविद्या'**— ''बाह्याभ्यन्तरयोर्वेद्यवेदकयोरेकचिन्मात्रविश्रान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमहमिति विश्वात्मनो **मतिः 'शुद्धविद्या'**।[३]

'यदा नु मध्यकोटौ समधृततुलावत् विश्राम्यतः तया अहमहमिति ग्राह्ये स्फुटीभूतेऽहमिति प्रक्षेपात् सामानाधिकरण्यं विमर्श ईश्वरभट्टारके।'

—ई. प्र. वि. वि. भाग ३

१. प्रत्यभिज्ञा कारिका (आगमाधिकार)।
२. प्र. का. वृत्ति।
३. प्र. का वृत्ति (अ. ३/३)।

पश्वात्मक चैतन्य के भेद (पशु प्रमाता के भेद)



'पशवस्त्रिविधा ज्ञेयाः **सकलः प्रलयाकलः**।
विज्ञानाकल इत्येषां शृणुध्वं लक्षणं क्रमात्॥'

(१) **'सकल'**

'मलोपरुद्धदृक्छक्तिस्तत्प्रसृत्यै कलादिमान्।
भोगाय कर्मसम्बन्धः **सकलः** परिपठ्यते।'

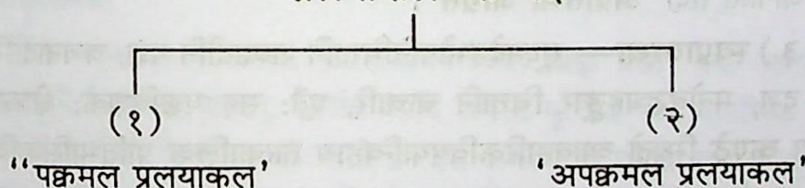
(२) **'प्रलयाकल'**

प्राग्वन्निरुद्धदृक्छक्तिः कर्मपाकात्कलोज्झितः।
कर्मणैष्यत्कलायोग्यो यस्स स **प्रलयाकलः**।

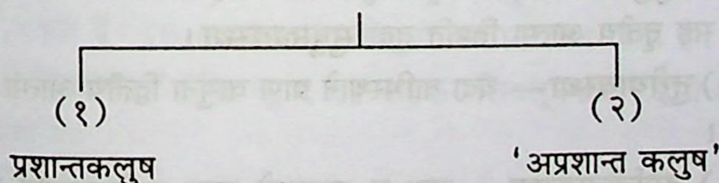
(३) **'विज्ञानकेवली'**

मलोपरुद्धशक्तित्वाच्छून्यकल्पस्वदृक्रियः।
तृतीयः पठ्यते तन्त्रे नाम्ना विज्ञानकेवलः॥

'प्रलयाकल' के भेद



विज्ञानकेवल के भेद



(विज्ञानरूपा कला येषामिति **विज्ञानकला:**॥)

(अवस्थाभेदोपेतो मलसम्बद्धचिद्रूपो व्यापकः पशुरिति सिद्धम्। एष च पशु-रुपाधिभेदेन त्रिविधः—

'सकलः' 'प्रलयाकलो' 'विज्ञानाकलश्चेति'।

'तत्र **सकलो** नाम मलोपरुद्धदृक्छक्तित्वे सति तत्प्रसाराय कलादिमत्वे सति भोगाय कर्मसम्बद्धः।'

'**प्रलयाकलो** नाम प्रलये उज्झितकलत्वे सति दीक्षया प्रायश्चित्तेन भोगाद्वा अशुद्धाध्वविषयकर्मपरिक्षयवत्त्वे सति भोक्ष्यमाणमिश्राध्वकर्मणा स्ववशीकृतकलासम्बन्धवान्॥'

'**विज्ञानाकलो** नाम विज्ञानादिना सर्वं कर्मणि कलाश्च विहाय दृक्क्रियावारकाणवमलमात्रयुक्तो **विज्ञानकेवलः**॥'[१]

'ईश्वर' एवं 'सदाशिव' रूप चैतन्य का स्वरूप

चैतन्य की विविध अवस्थायें

जाग्रदवस्थायें

(१) 'सप्रतिभा जाग्रदवस्था'— नादादिपृथिव्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वैः सह यदा ललाटस्थः सर्वान् विषयाननुभवति तदा **सप्रतिभा जाग्रदवस्था**, सैव **सकलावस्था**॥

(२) अप्रतिभा जाग्रदवस्था— विषय भोजकादृष्टाभावेन प्रेरकाणि शुद्धानि पञ्च तत्त्वानि भोजयितृकाणि सप्ततत्त्वानि प्रञ्चमहाभूतानि च, एतेषु सप्तदशसूपतरेषु श्रोत्रादीनि पञ्च, वागादीनि पञ्च, मनोबुध्यहङ्कारचित्तानि चत्वारि, शब्दादीनि पञ्च, तात्विकानि वचनादीनि पञ्च, प्राणादीनि दश चैत्यतैः सहक्षेत्रज्ञनामक आत्मा पञ्चत्रिंशो यदा मुखे तिष्ठन्नपि प्रेरकभोजयितृकाण्डयोर्निर्व्यापारत्वेनाणवातिशयाज्जाग्रन्नपि विषयान् सम्यङ् न जानाति तदा '**अप्रतिभा जाग्रत**'।

(३) स्वप्नावस्था— सूक्ष्मदेहभोगनिमित्तानि शब्दादीनि पञ्च, वचनादीनि पञ्च, प्राणादीनि दश, मनोबुद्ध्यहङ्कार चित्तानि चत्वारि, एतैः सह पञ्चविंशकः क्षेत्रज्ञनामक आत्मा यदा **कण्ठे** स्थितो व्यावहारिकविषयान्विहाय तात्कालिक प्रातिभासिकविषयाननुभवति तदा '**स्वप्नावस्था**'॥

(४) सुषुप्त्यवस्था— स्थूल-सूक्ष्मदेहभोगान् त्यक्त्वा यदा हृदये चित्त-प्राणवायुभ्यां सह तृतीय आत्मा तिष्ठति तदा **सुषुप्त्यवस्था**।

(५) तुरीयावस्था— यदा नाभिस्थाने प्राण वायुना द्वितीय आत्मा तिष्ठति तदा **तुरीयावस्था**।

(६) तुर्यातीतावस्था— यदा तु मूलाधारे तत्त्व तात्त्विकादीन् सर्वान्विहाय आत्मैवैक आणवावृतस्तिष्ठति तदा **तुर्यातीतावस्था**।[२]

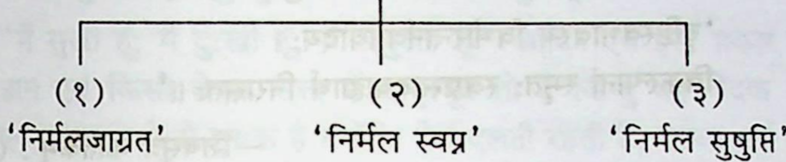
केवलावस्था के भी चार भेद हैं।

---

१. शैव परिभाषा।

२. शैव परिभाषा।

अवस्थाओं के अन्य भेद



(१) 'निर्मलजाग्रत' (२) 'निर्मल स्वप्न' (३) 'निर्मल सुषुप्ति'

—शैव परिभाषा

चैतन्य की पञ्चावस्थायें

स्पन्दशास्त्र की दृष्टि—

(१) जाग्रत अवस्था

मित प्रमाता की वह अवस्था जिसमें वह अन्त:करण और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सामान्य एवं स्थिर विषयों को ग्रहण करता है 'जाग्रतावस्था' कही जाती है।

'ज्ञानं जाग्रत' (शि. सू. १.८) कहकर शिवसूत्रकार ने इसी अवस्था को परिभाषित किया है। इस अवस्था में इन्द्रियबोध के विषयीभूत पदार्थ स्वप्नावस्था में अनुभूयमान पदार्थों की भाँति क्षणपर्यवसायी नहीं होते।

तीन अन्त:करणों, पाँच बाह्येन्द्रियों की वृत्तियों द्वारा निश्चयन, अभिमान, संकल्प, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के रूप में उत्पन्न सामान्य ज्ञान को '**जाग्रत अवस्था**' कहते हैं।

जाग्रत अवस्था में **सत्वगुण का प्राधान्य**[1] रहता है।

(२) स्वप्नावस्था

जिस अवस्था में प्रमाता के इन्द्रियवर्ग का बाह्य प्रसार रुक जाता है और फलत: उसकी निश्चयन, शब्दन, स्पर्शन आदि समस्त वृत्तियाँ मात्र मानसिक संकल्प-विकल्पात्मिका में ही केन्द्रीभूत हो जाती है। इस अवस्था में प्रमाता जाग्रत अवस्था की भाँति नगर, गिरि, उपवन आदि पदार्थों की अनुभूति मानसिक विकल्पों के द्वारा करता है। केवल मानसिक संकल्पविकल्पाकता द्वारा विषयानुभव करने की अवस्था को '**स्वप्नावस्था**' कहते हैं। इस अवस्था में **रजोगुण का प्राधान्य** रहता है।

'**स्वप्नो विकल्पा:**' (शि. सू. १.१) कहकर शिवसूत्रकार ने इसी अवस्था को परिभाषित किया है।

---

१. बौद्धं गार्वं च सांकल्पं शाब्दं च रूपजम्।
रसजं गन्धजं चान्यदैन्द्रियज्ञानमेव यत्।
अत्र गृहीतृग्रहणग्राह्यरूपा चिदात्मन:।
स्फुरत्येव ज्ञानशक्तिर्जाग्रद्वृत्तिरिहैव सा॥

—शि. सू. वा. सूत्र ८

वार्तिककार ने स्वप्न को परिभाषित करते हुए कहा है कि—

'दृष्टिस्वभावस्य विभोरन्तर्नवनवोदय:।
विकल्पानां स्मृत: **स्वप्नस्तदबाह्यार्थ** निरासत:॥'

—शिवसूत्र वार्तिकम् : (९ सूत्र)

(३) सुषुप्त्यवस्था

इस अवस्था में प्रमाता के अन्तर्जगत में तमोगुण की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि उसे अपने समस्त तन मन की स्मृति खो जाती है और वह मोह में पड़ जाता है। इस अवस्था में इन्द्रियों की शक्ति ज्ञान एवं ज्ञेय दोनों रूपों में काम नहीं कर पाती। प्रमाता मात्र चित्त द्वारा अनुभूति कर पाता है। इस अवस्था में **तमोगुण का प्राधान्य** रहता है। तमोगुण की मात्रा अधिक होने के कारण प्रमाता को इस अवस्था से उठने के बाद इसमें प्राप्त अनुभवों का स्मरण बना रहता है। सोने के बाद उठने पर ''मैं सुख से सोया था और मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं था''— इसका धुंधला स्मरण बना रहता है। प्रगाढ़ निद्रा में पड़कर केवल चित्त के द्वारा विषयानुभव करने की अवस्था को सुषुप्ति की अवस्था कहते हैं।

इस अवस्था को परिभाषित करते हुए वार्तिककार ने कहा है कि—

''ज्ञानज्ञेयस्वरूपाया: शक्तेरनुदयो यदा।
चिद्रूपस्याविवेक: स्यादसावेवाविमर्शत:।
सैव माया वृत्तिजालपोषकत्वात् प्रकीर्तिता।
अर्थस्मृती स्वात्मसंस्थे चिद्रूपे सा सुषुप्तता॥''

— शिवसूत्र वार्तिकम् (सूत्र १०)

अवस्थायें

(१) सात्विक अंश की प्रधानता वाली वृत्ति के समय= 'जाग्रत'।

(२) राजसिक अंश की प्रधानता वाली वृत्ति के समय= 'स्वप्न'।

(३) तामसिक अंश की प्रधानता वाली वृत्ति के समय= 'सुषुप्ति'।

पाँचों अवस्थाओं में एक ही चेतन प्रमाता की अवस्थिति रहती है। अवस्थाओं में पारस्परिक भेद रहने पर भी उपलब्धता एवं अनुभविता में भेद नहीं रहता। इन पाँचों अवस्थाओं में प्रमाता के **चैतन्यात्मक स्वभाव में कोई भेद** नहीं आता। ये एक ही चैतन्य सत्ता की भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं।

अवस्थायें और चैतन्य

अहं सुखी च दु:खी च रक्तश्चेत्यादिसंविद:।

सुखाद्यवस्थानुस्यूते वर्तन्तेऽन्यत्र ताः स्फुटम्॥

"मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं अनुरक्त हूँ" आदि। एवं इसी प्रकार के अन्य विकल्प-ज्ञान एवं किसी वेदक सत्ता में अनुस्यूत तो हैं किन्तु वह वेदक सत्ता इन अनुभवों एवं अवस्थाओं से पृथक है क्योंकि ये बदलती रहती हैं, उत्पन्न एवं नष्ट होती रहती हैं किन्तु चेतना न बदलती है न उत्पन्न होती है न नष्ट होती है।

स्पन्द शक्ति (चैतन्य) का स्वरूप तो इन अवस्थाओं एवं विषयानुभूतियों से पृथक इस प्रकार है—

'न दुःखं न सुखं यत्र न ग्राह्यो ग्राहको न च।
न चास्ति मूढ़भावोऽपि तदस्ति परमार्थतः॥'[1]

तात्त्विक दृष्टि से (सर्वचैतन्यवाद की दृष्टि से) तो—

'तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न यः शिवः।
भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः॥'

सारांश— (१) सारी अवस्थायें शिवात्मक हैं।

(२) भोग्य पदार्थ भी भोक्ता (चैतन्य तत्त्व)ही हैं।

ऐसी दृष्टि रखने वाला ही '**जीवन्मुक्त**' कहा जाता है—

'इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः॥'

(एवं स्वभावं यस्य चित्तं यथा 'मन्मयमेव जगत् सर्वम् इति'— ['स्पन्द-सर्वस्व'।[2]]

शैवागम के 'शैव सिद्धान्त' के अनुसार—

'चैतन्य' की अन्य अवस्थायें

(१) 'केवलावस्था' (२) 'सकलावस्था' (३) 'शुद्धावस्था'

ये ही तीन आत्मा की अवस्थायें हैं : 'आत्मनस्तिस्रोऽवस्थाः॥'

—शैव परिभाषा

१. स्पन्दकारिका (५)।
२. भट्टकल्लट।

(१) **'केवलावस्था'**— तत्र यदा द्विविधेन देहेन प्राणेन्द्रियान्तः करणैश्च विनाकृतोश्रुतएवाभिव्यञ्जकविधुरतयाऽऽणवावृतसङ्कल्पज्ञानक्रियाशक्तिः किमप्यबुध्यमान आस्ते तदा **केवलावस्था**।

(२) **'सकलावस्था'**— यदा सूक्ष्मदेहेनान्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयकोशैश्चावच्छिन्नस्तदा **सकलावस्था**।

(३) **'शुद्धावस्था'**— यदा कर्मसाम्ये तन्नियतशक्तिनिपाते च सति गुरुकृपावशाच्छिवानन्दाभिव्यक्तेर्मलत्रयनिवृत्या **शिवैक्याभिव्यक्तिस्तदा शुद्धावस्था**।

इस प्रकार **सकल अवस्था से केवलावस्था प्राप्ति** के समय में अवस्था भेद हैं जो संख्या में पाँच हैं।[१]

चैतन्य के चतुर्दिक प्रसृत आवरण (कोष)



१. शैव परिभाषा।



(सूक्ष्मतम)

चैतन्य और जगत

'जगत' चेतनालोक का महान स्वरूप है। यह **चेतनारूप वायु का स्पन्दन** है। ये **चेतन रूप अग्नि की ऊष्णता** है। यह **चेतन रूप जल** का द्रवत्व है। यह **चैतन्य** रूप हिम का **शैत्य** है। यह **चेतन रूप ज्वाला की ज्वाला** है। यह चैतन्य-मयी सरिता की **तरङ्ग** है। यह चैतन्यरूपी **स्वर्ण का कङ्कण** है। सारांश यह कि **चेतन की सत्ता ही इस जगत की सत्ता है।**[१]

यदि यह कहा जाय कि चेत्य जगत के असत् होने पर चेतन भी असत् हो जाएगा क्योंकि वह अपने स्वरूपभूत चेत्य से पृथक नहीं है— तो यह कथन ठीक नहीं है। जैसे समुद्र के भीतर जल के स्पन्द (प्रकम्प) जल के स्वभाव से च्युत हुए बिना ही लहरों के वेग के रूप में प्रकट होते हैं, उसी प्रकार चेतन परमात्मा में दृश्य जगत की प्रतीतियाँ होती रहती हैं। चेतनाकाश रूपी परब्रह्म परमात्मा में दृष्टिगोचर होने वाले ये पृथ्वी आदि जगत इन्द्रियों के अनुभव में आने पर भी वास्तव में हैं नहीं।[२]

एक शुद्ध **चेतन** ही **परमात्मरूप आकाश** है दूसरा **मन रूप आकाश** है और तीसरा **भूताकाश** है। **चित्ताकाश** और भूताकाश से सर्वथा शून्य ही **चिन्मय आकाश** है। **चिन्मय आकाश** का एकाग्र मन से चिन्तन करने पर वह दृष्टिगोचर होता है। योगवासिष्ठ में सरस्वती जी ने लीला से कहा कि सम्पूर्ण संकल्पों का त्याग करके **चेतनाकाश रूप पर ब्रह्म** में स्थित हो जाओ। **चेतन आकाशरूपी दर्पण** में भीतर और बाहर भी सृष्टि प्रतीत होती है। उनमें से कौन-सी सृष्टि सत्य है यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता है। **चिन्मय आकाश** में ही कहीं एक देश में संसाररूपी मण्डप है। चिन्मय आकाश ब्रह्म है। चिन्मय आकाश रूप परमात्मा के भीतर मायारूपी आकाश में ही जगत की भ्रान्तियाँ भासित हो रही हैं। साधक को चाहिए कि वह चेतन ब्रह्ममय आकाश का स्वरूप बन जाय।[३]

---

१. योगवासिष्ठ।

२. योगवासिष्ठ।

३. योगवासिष्ठ।

चक्रेश्वरत्व (सर्वाधिपतितत्व) की प्राप्ति और चैतन्य

''जब योगी चिति शक्ति में ही अपने चित्त को लीन कर देता है तब सुख-दुःखादि संवेदनों के लय और उदय को नियन्त्रित करता हुआ भोक्तृत्वपद को प्राप्त करके '**चक्रेश्वर**' बन जाता है।'' सूत्रकार का कथन है—

''चक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवतीतिशिवम्॥'' (सूत्र २०)

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि

'स्पन्दकारिका' में कहा गया है कि—

'यदा त्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोद्भवौ।
नियच्छन्भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत्॥'

यह चक्रेश्वर कौन है? उसका स्वरूप क्या है?

''अन्तः और बाह्य करणों की अधिष्ठात्री संवित् शक्तियों के समुदाय से सेवित, चितिमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट 'स्वतन्त्र' कोई महेश्वर सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है।''

''स्वतन्त्रश्चितिचक्राणां चक्रवर्ती महेश्वरः।
संवित्तिदेवताचक्रजुष्टः कोऽपि जयत्यसौ॥''

सर्वशिववाद और चैतन्य

'प्रत्यभिज्ञाशास्त्र' यह भी कहता है कि— (१) 'एषा सर्वदशासु एकैव **चितिशक्तिः**।

(२) '**चितिः** स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः॥

(३) '**चिदेव** भगवती.....कार्यकारणभावः॥

(४) 'ननु जगदपि **चितो भिन्नं नैव किञ्चित्**।

(५) '**चिदेव भगवती** स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति।

(६) 'स्वेच्छया **स्वभित्तौ** विश्वमुन्मलयति॥२॥[१]

(७) '**चितिसङ्कोचात्मा** चेतनोऽपि सङ्कुचित विश्वमयः ॥४॥

आदि आदि किन्तु साथ ही साथ वह यह भी कहता है कि— (क) सर्वं शिवम् (ख) सर्वं शिवं शिवात् (ग) शिवप्राप्ति हेतुत्वात् (घ) शिवस्वरूपाभिन्नत्वाच्च (ङ) (सर्वं) शिवमयमेव (च) विश्वशरीरः शिवभट्टारकः एव (छ) एवं भगवान्

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

विश्वशरीरः। (ज) श्री परमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं।[१] (झ) एक एव स्थितः शक्तः **शिव** एव तथा तथा। (४/५)। (ञ) अथेदानीं प्रवक्तव्यं यथा **सर्वं शिवात्मकम्**॥ (४/१) (ट) इह तद्वन्न विज्ञेयं तस्मात्सर्वं स्थितः **शिवः**। (३/९९) (ठ) **सर्वं शिवात्मकं** तद्वत्कथनीयमिहाग्रतः॥ (३/६१)[२]

इस द्विधा कथन का अर्थ क्या है?

इसका अर्थ यह है कि—

(१) **शक्तिमानेव** शक्तिः स्याच्छिववत्करणार्थतः।
शक्तेः स्वातन्त्र्यकार्यत्वाच्छिवत्वं न क्वचिद्भवेत्॥

(२) न **शिवः** शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।

(३) शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते॥

अतः— यथा सर्वपदार्थानां भगवच्छिवरूपता॥

अतः— 'न वाच इष्यते तद्वत्तस्मात्**सर्वं शिवात्मकम्**'।

पारमार्थिक सत्य तो **शिव** मात्र है—

यत्सत्तत्परमार्थो हि परमार्थस्ततः **शिवः**।
सर्वभावेषु **चिद्व्यक्तेः स्थितैव** परमार्थता॥

—शिवदृष्टि

इन सबके रहने पर भी 'सर्वभावेषु चिद् व्यक्तेः स्थितैव परमार्थता' अर्थात् समस्त सत्ताओं में मात्र— '**चित्शक्ति**' की ही व्याप्ति है।

यदि शिव की सर्वात्मकता, सर्वानुस्यूतता, सर्वव्यापकता की बात कही गई है तो वह भी चित् शक्ति की ही बात कही गई है; क्योंकि शिवसूत्रकार जब '**चैतन्यमात्मा**' (शिवसूत्र १/१) कहते हैं तब राजानक क्षेमराज इस '**चैतन्य**' एवं '**आत्मा**' को शिव के रूप में ही व्याख्यात करते हैं—

(१) "**चैतन्य**परमार्थतः **शिव एव विश्वस्य आत्मा** इति आदिशति चैतन्यमात्मा।"[३]

(२) '**चैतन्यम्**' उक्तं स एव 'आत्मा' स्वभावः, भावाभावरूपस्य जगतः॥

(३) '**चैतन्यं** विश्वस्य स्वभावः॥'

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
२. शिवदृष्टि (सोमानन्द)
३. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१)।

(४) 'जीवजडात्मनो विश्वस्य **परमशिवरूपं चैतन्यमेव स्वभाव:**॥'[१]

"**चिति:** स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतु:।" (शक्तिसूत्र १)

सूत्र में 'चिति (चैतन्य)' तत्त्व पराशक्ति के रूप में व्यवहृत हुआ है—

(क) "**चिति:** एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवभट्टारिका-भिन्ना।।" (शि. सू. वि.)

(ख) ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्॥"

(ग) **सङ्कोचोऽपि** विचार्यमाण: **चिदैकात्म्येन** प्रथमानत्वात् चिन्मय एव, अन्यथा तु न किञ्चित्॥[२]

निष्कर्ष— (क) 'न साऽवस्था न य: **शिव:**।'[३]

(ख) ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्।[४]

'चिति: स्वतन्त्राविश्वसिद्धिहेतु:' (१/१)

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥' (१/२)

दोनों कथन परमार्थत: अभिन्न हैं।

(१) 'चैतन्य' आत्मा है

'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र: १/१)[५]

(२) 'चैतन्य' शिव है

'चैतन्यपरमार्थत: शिव एव' (शिवसूत्र विमर्शिनी, सूत्र १/१)।

(३) 'चैतन्य' और 'शिव' जगत की आत्मा हैं

'**चैतन्य**परमार्थत: **शिव** एव विश्वस्य आत्मा इति आदिशति 'चैतन्यमात्मा।' (शिवसूत्र विमर्शिनी १/१)।

(४) 'चैतन्य' विश्व का स्वभाव है

"यत: चैतन्यं विश्वस्य स्वभाव:।" (शि. सू. वि.)

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी।

२. प्रत्यभिज्ञा हृदयम्।

३. स्पन्दकारिका।

४. प्र. हृ.।

५. परमात्मस्वरूपं तु सर्वोपाधिविवर्जितम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥
—मृत्युजित् भट्टारक

(५) चेतन एवं जड़ दोनों प्रकार के समस्त विश्व का स्वभाव परम-शिवस्वरूप चैतन्य ही है

"जीवजडात्मनो विश्वस्य परमशिवरूपं **चैतन्यमेव स्वभावः॥**" (शिवसूत्र-विमर्शिनी)।

(६) जगत की उत्पादिका शक्ति 'चैतन्य' ही है

'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः॥ (प्र. हृदयम्)

(७) जगत चितिशक्ति की भित्ति पर ही उन्मीलित होता है

"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥"

—(प्र. हृदयम्)

प्रश्न— यदि सब कुछ चितिशक्ति (चैतन्य) ही है तो वह कभी दिखायी क्यों नहीं पड़ती?

उत्तर— 'स्वप्न, जागरण और निद्रा आदि कलाओं में देह, प्राण और **सुखादिक पाशों द्वारा बाँधा जाता हुआ** मित प्रमाता, पूर्णानन्दघन अपनी इस माहेश्वरी चिति को नहीं पहचानता।"[१]

सर्वशिववाद'— 'ज्ञानात्मक अमृत पयोधि के मध्य, चारों ओर फेनपिण्ड की भाँति प्रसृत इस **विश्व को जो देखे वह साक्षात् अद्वितीय शिव ही है॥'** यही है त्रिकदर्शन का '**सर्वशिववाद**'।

षडाकारित अस्मिता भी 'चिति' की ही है उससे पृथक नहीं है

भगवान विरूपाक्ष इन्द्र को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे इन्द्र! प्राणियों में षडाकारित अस्मिता है वह भी **चितिशक्ति** की है न कि ग्राहक की—

'विषयशरीरेन्द्रियधी प्राणनिरोधप्रसिद्ध्यदस्मित्वाम्।
इत्थं **चितिमखिलेऽध्वनि** धारयतो विश्वदेहत्वम्॥'[२]

अर्थात् "विषयादिषु षट्सु येयस्मिता प्रसिध्यति सा चितेरेवोपपद्यते॥"[३]

---

१. "देहप्राणसुखादिभिः प्रतिकलं संरुध्यमानो जनः।
पूर्णानन्दघनामिमां न चिनुते माहेश्वरीं स्वां चितिम्।
मध्ये बोधसुधाब्धि विश्वमभितस्तस्फेनपिण्डोपमं,
यः पश्येदुपदेशतस्तु कथितः साक्षात्स एकः शिवः॥"
"स्वतन्त्रश्चितिचक्राणां चक्रवर्ती महेश्वरः।
संवित्तिदेवताचक्रजुष्टः कोऽपि जयत्यसौ॥"

२. विरुपाक्ष पञ्चाशिका (४)।

३. विरूपाक्ष. विवृति (विद्या चक्रवर्ती)।

ये षडाकारित अस्मिताएँ क्या हैं? ये निम्नाङ्कित हैं—

'सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि स्निह्यत्करणोऽस्मि मोदमानोऽस्मि।
प्राणिभि शून्योऽस्मीति च षट्सु **पदेष्वस्मिता** दृष्टा॥'[१]

अर्थात् षट् अस्मिताएँ चिति का ही स्वरूप हैं। **'चिति' की अस्मिता सर्वत्र** है और वह विश्वाहन्तात्मक है।

चैतन्य की अहन्ता— 'चितिशक्ति' की अहन्ता, परिच्छिन्न, मित, सङ्कुचित दृश्य पदार्थों की व्यष्टिभूत एवं परिमित इकाइयों या खण्डों में नहीं प्रत्युत् समग्र दृश्य (विराट एवं अखण्ड विश्व) में [ऐकात्म्यभाव के साथ अर्थात् एकात्मता, एकीभाव, तद्रूपता के साथ] विद्यमान है। **चिति का अहं 'विश्वोऽहं'** है। उसकी अस्मिता से बाहर कोई नहीं है; क्योंकि उसके लिए समस्त चराचर विश्व ही उसका अहं है और यही उसकी अपनी '**अहन्ता**' है।

'चैतन्य' ही 'परावाक्' 'विमर्श' 'वर्णमाला' एवं 'अहन्ता' है

विरूपाक्ष पञ्चाशिकाकार की दृष्टि

भगवान विरूपाक्ष उक्त ग्रन्थ में कहते हैं कि 'चैतन्य' अपने विराट स्वरूप में (१) '**प्रत्यवमर्श**' (२) '**स्व रसवाहिनी परा वाक्**' (३) आद्यन्त प्रत्याहृत**वर्णगण** एवं (४) '**विश्वाहन्ता**' या '**पूर्णाहन्ता**' है—

'प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परावाग् या।
आद्यन्त प्रत्याहृतवर्णगणा सत्यहन्ता सा॥'[२]

विद्या चक्रवर्ती कहते हैं कि चिति के निम्न लक्षण हैं—

(१) वह प्रत्यवमर्शात्मा या विमर्शस्वभावा है।

(२) वह सर्वस्वानुभवसिद्ध है।

(३) वह चेतनस्वरूपा है और विगलित चेत्योपरागा है।

(४) वह स्वरसवाहिनी संतत स्फुरद्रूपा है।

(५) वह विमर्शस्वभावा होने के कारण वाक् है।

(६) वह 'परा' है— 'स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी' (वा. प. स्वो., १/१४२)।

(७) चूँकि वह शुद्ध वाग्रूपा है अतः वर्णात्मिका है।

(८) वह अहन्ता है।[३]

---

१. वि. पञ्चा. (३)।

२. वि. पं. (द्वि. स्कन्ध)।

३. वि. पञ्चा. विवरण (९/२)।

'चैतन्य' भोक्ता और भाग्य दोनों है

'विरूपाक्षपञ्चाशिका' में कहा गया है—

''रूपादिपञ्चविषयात्मनि **भोग्यहृषीकभोक्तृ**रूपेऽस्मिन् जगति प्रसरदनन्तस्वशक्तिचक्रा चितिर्भाव्या॥''[१]

जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध रूप पञ्च विषय **'भोग्य'** बनते हैं तब उसके ग्रहीता कान, त्वगेन्द्रिय, आँख, जिह्वा एवं नासिका रूप इन्द्रियाँ भोग्यों के **'भोक्ता'** बनते हैं। ग्रहीता ताद्रूप्य प्राप्त करता है।

जगत (१) 'भोक्ता' एवं (२) 'भोग्य' रूप ही तो है।

(१) **भोग्य** है— ५ विषय (२) **भोक्ता** है— ५ ज्ञानेन्द्रियाँ।

भोग्यरूप विश्व का उदय चितिशक्ति से ही तो होता है। 'चिति' की अनन्त शक्तियाँ अनन्त भोग्य-भोक्ताभाव से विद्यमान हैं।

एक मात्र चिति ही उन सभी में एक होकर विद्यमान है। वे तो अनन्त हैं।

चैतन्य और पञ्चतत्त्व

चेतन आत्मा स्वयं अपने स्वरूप में स्थित रहकर **आकाश के रूप में आविर्भूत** होता है। फिर यह **चैतन्य वायु बनकर स्पन्दन के साथ** प्रकट होता है। फिर यह आत्मा तेजस्तत्त्व (अग्नि) बनकर प्रादुर्भूत हुआ। फिर यह **चैतन्य जलतत्व** बनकर आविर्भूत हुआ। फिर यह चैतन्य पृथ्वी तत्त्व एवं देवता, असुर एवं मनुष्यादि के शरीर के रूप में आविर्भूत हुआ। यह चैतन्य ही **चिन्मय प्रकाश** बनकर आविर्भूत हुआ।

चैतन्य और जड़ता तथा संसारी अवस्था

यही **चैतन्य** जड़तावश स्थावर आदि पदार्थों में अहं भाव करने से **सुषुप्ति** अवस्था बन जाता है और **चिन्मय महाकाश** रूप ब्रह्म अविचारावस्था में स्पन्दनशील प्राणादिक में आत्मभावना की कल्पना करके स्पन्दी (संसारी) बन जाता है। यह सम्पूर्ण जगत चेतनरूपी तेज का प्रकाश है। **जगत ब्रह्मदृष्टि से** ब्रह्म स्वरूप ही है। जगत चेतनालोक का महान स्वरूप है।[२]

चैतन्य और जगत

जगत और चैतन्य अभिन्न हैं। 'चेतन आत्मा का **जो चैतन्य है** उसी को जगत समझना चाहिये।' **चैतन्य की** ही जो भिन्न-भिन्न आकार में **स्फुरणायें** होती हैं वे ही **जगत** हैं। अत: यह जगत चैतन्यशक्ति या चेतन आत्मा से भिन्न नहीं है। यदि

१. वि. पं. (१४/२)।
२. योगवासिष्ठ।

चैतन्य को जगत्‌भाव से रहित या भिन्न मान लिया जाय तो चित् चित् नहीं रह सकता— चेतन को चेतन नहीं कहा जा सकेगा। चेतन से जगत की प्रतीति मात्र से भेद है यथार्थतः भेद नहीं है।[१]

चैतन्य और अहन्ता

चेतन की जो यह आकाश से भी सूक्ष्म शक्ति सर्वत्र प्रसृत है वह स्वभाव से ही पहले इस अहन्ता का दर्शन (अनुसन्धान) करती है। जिस प्रकार जल अपने आप में स्वयं ही बुदबुद और तरङ्ग आदि के रूप में स्फुरित होता है उसी प्रकार जब आत्मा अपने आप में स्वयं ही स्फुरणशील होता है तब उस चेतन आत्मा की यह चिच्छक्ति उस सूक्ष्म अहन्ता का दर्शन करती है और यही उत्तरोत्तर स्थूलता प्राप्त करती हुई अन्त में ब्रह्माण्ड का आकार धारण कर लेती है। चेतन की चिति शक्ति जिस चमत्कार की सृष्टि करती है वही 'जगत' है।[२]

चैतन्याब्धि में ही समस्त विश्व निमग्न है

प्रकाशरूप पमशिव अनवच्छिन्न **'चैतन्यसमुद्र'** को स्वेच्छारूप पर्वत से संक्षुब्ध (कार्योन्मुख) करके खेचरी आदि स्वीय शक्ति-तरङ्गों से ब्रह्माण्ड को आविर्भूत करके स्वाभिन्न **विश्व को स्वभित्ति पर अवभासित** करते हैं—

'चिद्‌गगनक्षीरोदं स्वयमिच्छामन्दरेण संक्षोभ्य।
तच्छक्ति वीचिभिरसावुत्थापयतीन्दुमण्डाख्यम्॥'[३]

'ज्ञाता', 'ज्ञेय' एवं 'ज्ञान' तीनों चितिशक्ति हैं

(१) **ज्ञेय** का अन्तर्मुख स्वभाव ही **'ज्ञान'** है।

(२) **ज्ञाता** के अनुवर्तित्व में ही **'ज्ञान'** का उदय होता है। अतः **ज्ञान** ज्ञाता का अन्तरतम स्वरूप है।

(३) **ज्ञाता** भी चिति ही है।

(४) चिति का **'अहं एकः'** ही रहस्य तत्त्व है।

(५) सारांश यह कि **'ज्ञाता' 'ज्ञेय'** एवं **'ज्ञान'** तीनों चैतन्य ही हैं। भावनोपनिषद् में कहा गया है कि—

'ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्री चक्रपूजनम्' यह समस्त चिद्रूप सत्ता **'अहं'** ही है।

---

१. योगवासिष्ठ।

२. योगवासिष्ठ।

३. विरूपाक्ष पञ्चाशिका (२०/२)।

(६) भावों के दो रूप हैं— (क) 'अन्तर्मुख', (ख) 'बहिर्मुख'। ये दोनों स्वरूप भी चिति एवं 'अहं' के हैं—

'अन्तर्मुखं स्वरूपं ज्ञेयस्य ज्ञानमस्य तु ज्ञाता।
ज्ञानस्य ज्ञातृतनोश्चितिरेकाऽस्यास्त्वहं नान्यः॥'[१]

क्रम और अक्रम दोनों ही चिति हैं

(१) ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय में क्रम हैं।

(२) **चैतन्य (चिति)** सक्रम-अक्रम दोनों है।

(३) ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय में वस्त्वन्तर नहीं है।

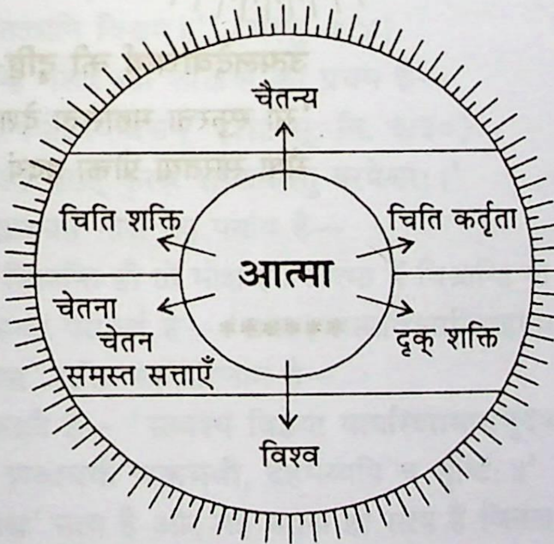
'अक्रमता में क्रमिकं ज्ञात्राद्यं सक्रमाक्रमातु **चितिः**॥'
मद्वद् ज्ञाता, ज्ञानं, शक्तिरिव त्रितयवद् ज्ञेयम्॥[२]

विभिन्न प्रमाताओं में जो सार तत्त्व है वह चिति ही है

(१) 'अप्रबुद्ध' (२) 'प्रबुद्ध कल्प' (३) 'प्रबुद्ध' (४) 'सुप्रबुद्ध कल्प' एवं (५) 'सुप्रबुद्ध' प्रमाताओं में विद्यमान अस्मिता एवं सत्ता भी चिति ही है।

आत्मा और चैतन्य : 'चैतन्यमात्मा'

(शिवसूत्र १/१)



उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि—

''आत्मात एवं चैतन्यं, चित्क्रियाचितिकर्तृता।''

—प्र. का १/४३)

१. वि. पं. (३२/३)।

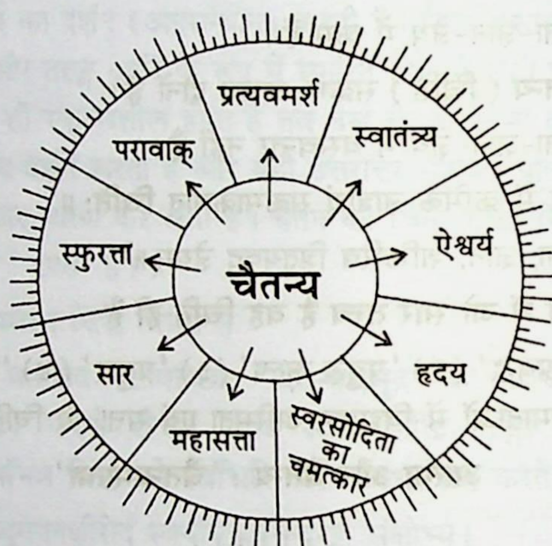
२. विरूपाक्ष पञ्चाशिका (३३/३)।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि—

चैतन्य का स्वरूप

'चिति: प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मन: ॥'

—प्र. का. १/४४



उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि—

'सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिन: ॥'

—प्र. का. १/४५

******

अध्याय-६

विश्व

तान्त्रिकी दृष्टि में विश्व का स्वरूप

उत्पलदेव कहते हैं— ''विश्व भगवन्मय है— हे देव! भवद्रूप विश्व की मैं वन्दना करता हूँ।''

विश्व के सम्बन्ध में तन्त्र-समाम्नाय की वही दृष्टि नहीं है जो कि वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य एवं मीमांसा की है। तान्त्रिकाम्नाय की अपनी मौलिक स्थापनायें एवं दृष्टियाँ भी हैं।

काश्मीय त्रिक दर्शन और विश्व का स्वरूप

यदि हम **काश्मीर के तान्त्रिकों की दृष्टि से** विचार करें तो हम विश्व के सम्बन्ध में अन्य दर्शनों से उसमें निम्न दृष्टिवैलक्षण्य पाते हैं। तन्त्र की दृष्टि के अनुसार—

(१) **'विश्व'** षट्त्रिंशदात्मक है—

''षट्त्रिंशत्तत्वानि विश्वम्॥'' (परशु. १/४)

(२) **'विश्व'** शिव की शक्तियों का प्रचय है—

'स्वशक्तिप्रचयोऽस्यविश्वम्' (शि. सू. वि. ३/३०)

'शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांस्तु परमेश्वरः।'

(३) **विश्वाहन्ता** मोक्ष का पर्याय है—

आत्मा में विश्रान्ति ही तो मोक्ष है। आत्मा में विश्रान्ति या लय ही तो अहंभाव विश्वाहन्ता या पराहन्ता परामर्श है— **'प्रकाश्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तितः॥'**

(४) **'विश्व'** शक्ति का परिणाम है—

भास्कर कहते हैं— 'सावश्यं विज्ञेया **यत्परिणामाद**भूदेषा।

अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी, देहमय्यपि च सृष्टिः॥'

(५) **'विश्व'** सत्य है और यह उतना ही सत्य है जितना कि 'शक्ति' क्योंकि दोनों अभिन्न हैं।

'ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्।' (प्र. हृदयम् १)

(६) 'विश्व' उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत् 'उन्मीलित' होता है—

'स्वेच्छया स्वभित्तौविश्वमुन्मीलयति॥' (शक्तिसूत्रः २) **'उन्मीलनं** च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्।' —क्षेमराज

(७) **'विश्व' का मूलोपादान** जड़ परमाणु या पञ्च तत्त्व नहीं है प्रत्युत् **'शक्ति'** है; क्योंकि शक्ति ही जगत के रूप में स्फुरित होती है—

'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपातत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति।' (प्र. हृ.)

(८) **'विश्व'** का विनाश कभी नहीं होता—

(९) **'विश्व'** केवल ब्रह्माण्ड-समुच्चयमात्र ही नहीं प्रत्युत **'प्रकृत्यण्ड'** एवं **'शक्त्यण्ड'** भी है।

(९) **विश्वोत्पादिका शक्ति जड़माया नहीं प्रत्युत चिद्रूपा शाम्भवी शक्ति है—**

(१०) विश्व की 'सृष्टि' नव्योत्पत्ति नहीं प्रत्युत् पूर्वावस्थित अव्यक्त सत्ता का अभिव्यक्तिकरण या **'उन्मीलन'** है।

विश्व 'शक्ति' (या शिव-शक्ति) का 'अवरोहण' है।

(११) विश्वोत्पादिका **'शक्ति'** शिव की **सिसृक्षा** है।

(११) **विश्व-सृष्टि आवरण-विक्षेप** नाम मायिक शक्तियों का व्यापार नहीं प्रत्युत **'सिसृक्षा'** (सिसृक्षास्वरूप शाम्भवी शक्ति) का परिणाम है।

(१२) **'विश्व'** शब्द तत्त्व का **'विवर्त'** है—

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥'

(१३) शक्ति ही 'विश्व' है : 'चिदेव भगवती जगदात्मना स्फुरति।'

(१४) वर्ण ही विश्व है या **वर्ण ही जगत बन गया—**

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥'

(१५) **विश्व** शिव-निर्मित वह **'चित्र'** है जिसे देखकर वे **अत्यन्त प्रसन्न** होते हैं—

'जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छा तूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य **प्रीणाति परमेश्वरः॥**

(शिव अपनी स्वेच्छा से अपनी आत्मा से चित्रफलक पर इस जगत रूप **चित्र** को निर्मित करते हैं और उसे देखकर परमाह्लादित होते हैं।)

(क) **'जगत'** शिव की आत्मा में शिव-निर्मित एक ही **आनन्दप्रद चित्र** है।

बौद्धों का '**दुक्खं अरियसच्चं**' त्रिकाम्नायानुवर्ती तान्त्रिकों को मान्य नहीं है; क्योंकि दोनों दृष्टियों में वैषम्य है—

(१) बौद्धों की दृष्टि— जगत दुःखमय है।

(२) तान्त्रिकों की दृष्टि— **आनन्दकन्द की रचना 'जगत' आनन्दमय है।** आनन्दकन्द की रचना में दुःख कहाँ है?

'**परावासना**' में भी यही दृष्टि स्वीकृत है—

'जगच्चित्रं समालिख्य स्वयमेवात्मविग्रहम्।

स्वयमेव समालोक्य सन्तुष्टां परमाद्भुताम्।'

विश्व शिव का आत्मविग्रह है—

'स्वयमेवात्मविग्रहम्'— इसीलिए उसे देखकर वह सन्तुष्ट हो उठता है।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि

आचार्य उत्पलदेव ने विश्व को भगवन्मय देखकर उस भगवन्मय विश्व की वन्दना की है—

'वन्दे देव विश्वं भवन्मयम्।' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)

"विश्व" एक क्रीडा है : (उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि)

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि— **आचार्य उत्पलदेव** कहते हैं कि—

(१) विश्व एक क्रीड़ा है।

(२) संविदात्मा परमेश्वर ही क्रीडाकारी है।

(३) उसने विश्वरूपी क्रीड़ा को साकार रूप देने हेतु विभिन्न स्वरूप धारण कर लिए हैं।

"स एव संविदात्मा परमेश्वरः स्वेच्छया विश्व क्रीडोल्लिलासयिषायां प्राणाद्यात्मतामवभास्य तत्प्रमातृत्वेन संकुचित्तीभूय जीवतामेति॥"[१]

अर्थात् संविदात्मा परमेश्वर अपनी इच्छा के वशीभूत होकर विश्वक्रीड़ा को साकाररूप देने हेतु प्राण आदि को अवभासित करके उसके प्रमाता के रूप में संकुचित भूमिका ग्रहण करके '**जीव**' बन जाता है।

पशु दशा में अख्याति के कारण ही, यह जीवत्व अस्तित्व में आता है— अख्यातेर्जीवता परम्। (अजड २१) परमशिव की लीला हेतु (१) विश्व एवं (२)

---

१. अजप्रमातृसिद्धि (१६)।

जीव दोनों बन जाता है अत: दोनों तत्त्वत: अभिन्न हैं। विश्वरूपत्व एवं जीवरूपत्व भी विश्वरङ्गमञ्च की अभिनयक्रीड़ायें या नाटकीय अभिनय हैं।

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि

आचार्य सोमानन्द 'शिवदृष्टि' में कहते हैं कि '**प्रमोदात्मा प्रभु विश्वात्मक क्रीड़ा किया करता है**' वे आगे कहते हैं—

''यथा नृप: सार्वभौम: प्रभावामोदभावित:।
क्रीडन् करोति पादातधर्मांस्तद्धर्मधर्मत:।
तथा प्रभु: प्रमोदात्मा **क्रीडत्येवं** तथा तथा।
इत्थं शिवो बोधमय: स एव परनिर्वृति:।
सैव चोन्मुखतां याति **सेच्छाज्ञान**क्रियात्मताम्।
सैव शाक्तशरीरादिनारकान्तं हि भूतता।
प्रसूयते स्वचिद्रूपप्रमुखं पार्थिन्तकम्॥
पदार्थत्वेन भगवान् सर्वत्रैव तदात्मता।
स्वशिवत्वमिवाजानन् पश्चात्मव्यपदेशत:॥
एवं भेदात्मकं नित्यं शिवतत्त्वमनन्तकम्।
तथा तस्य व्यवस्थानान्नानारूपेऽपि सत्यता॥''[१]

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि संवित्शक्ति ही विश्वस्फुरत्ता का केन्द्र है। वह '**स्वातन्त्र्य शक्ति**' के द्वारा विभिन्न प्रकार के पदार्थों के रूप में स्फुरित हो रही है और **विश्व का जीवन** है—

'संविदेव विश्वस्फुरत्तामयी स्वस्वातन्त्र्यादेव विचित्रार्थात्मनाविभिन्नप्रकाशमयेन प्रस्फुरन्ती विश्वजीवितं।''[२]

उत्पलदेव कहते हैं कि 'माया' नाम वाली जो शिव की अव्यतिरेकिणी स्वरूपगोपनात्मिका क्रीड़ा है उसी के कारण ही अख्याति रूप **अज्ञान रूप 'विश्व' भासित** होता है। वे कहते हैं—

'मायाभिधायास्तच्छक्तेरेव चान्याप्रसिद्धित:।
तदख्यातिमयं ह्येतज्जगन्निर्मातृतेशिता॥' (अजड. २४)

---

१. शिवदृष्टि (अ. १)।
२. अजडप्रमातृसिद्धि।

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि

स्पन्दकारिकाकार का कथन है कि भोक्ता (आत्मा) ही भोग्य (प्रमेय पदार्थ) बनकर सर्वत्र स्थित है अर्थात् विश्व और उसके सारे पदार्थ आत्मा या शिव ही हैं। कारिकाकार कहते हैं—

'भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः॥' (२९)

और यह भी सत्य है कि ऐसी कोई अवस्था ही नहीं है जो कि **'शिव'** न हो— ''तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न यः शिवः।'' (का. २९)

विश्व मेरी ही क्रीड़ा है— स्पन्दकारिकाकार का कथन है कि विश्व अपनी क्रीड़ा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं—

'इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।

स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः॥ (३०)

(१) अजड प्रमातृसिद्धि (११) (२) माया नाम शक्तिः शिवस्य शक्तिमतोऽ-व्यतिरेकिणी स्वरूपगोपनात्मिका क्रीडा, तन्निमित्तादेव यस्मादख्यातिमयमेत**द्विश्वं भासते**॥ (अजड. वृत्ति : २४)

(२) ''मन्मयमेव जगत् सर्वम् इति'' स सर्वं क्रीडात्वेन पश्यन् नित्ययुक्तत्वात् जीवन्नेव मुक्तो, नत्वस्य शरीरादि बन्धकत्वेन वर्तते।''[1]

'यथा मन्मयमेव सर्वम्। सोऽखिलं समग्रं जगत् क्रीडासमतया पश्यन् विभावयन्नित्युक्तत्वाच्च बन्धकारणस्याज्ञानस्य क्षयात् प्रबोधात्सौ जीवन्नेवेश्वरवन्मुक्तो॥''[2]

विश्व ग्राह्य ग्राहकात्मक दृष्टि से भिन्न रूप या अनन्तरूपात्मक है तथापि यथार्थतः देखें तो अन्य कोई ग्राह्यग्राहक है ही नहीं। **'परमशिव'** ही अनन्त विचित्र-ताओं के रूप में सर्वत्र स्फुरित हो रहे हैं—

''श्रीमत्परमशिवस्य पुनः विश्वोत्तीर्ण-विश्वात्मक परमानन्दमयप्रकाशैकघनस्य एवंविधमेव शिवादिधरण्यन्तं अखिलं अभेदेनैव स्फुरति **न तु वस्तुतः अन्यत् किञ्चित् ग्राह्यं ग्राहकं वा,** अपितु श्री परमशिवभट्टारक एव इत्थं नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति॥''[3]

सारांश यह है कि— 'श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं' 'एवं भगवान् विश्वशरीरः॥'

---

१. भट्टकल्लट : स्पन्द वृत्ति।

२. स्पन्द प्रदीपिका।

३. प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (सूत्र ३)।

'यथा च भगवान् विश्वशरीरः तथा—

चितिसङ्कोचात्मा चेतनोऽपि सङ्कुचित विश्वमयः॥[१]

विश्व और शिव अभिन्न हैं

प्रकाशात्मा परमेश्वर अपनी माया शक्ति द्वारा अपने स्वरूप को विश्व के रूप में भेदात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करता है— "प्रकाशात्मनः परमेश्वरस्य माया शक्त्या स्वात्मरूपं विश्वं भेदेनाभास्यते॥"[२]

"मायाशक्त्या विभोः सैव भिन्नसंवेद्य गोचरा॥"[३]

परमात्मा ही लीला हेतु विश्व बन जाता है— एक होकर भी अनेक बन जाता है। माया शक्ति चित्तत्व को **एक से अनेक रूप में** (एक शिव को अनेकात्मक विश्व के रूप में) परिवर्तित कर देती है—

'चित्तत्वं मायया हित्वा भिन्न एवावभाति यः॥'[४]

'विश्वात्मा' परमाणु या पदार्थ नहीं प्रत्युत् प्रकाशात्मक परमेश्वर है—

"जयत्येकोऽपि विश्वात्मा प्रकाशः परमेश्वरः॥"[५]

यह विश्वात्मा केवल विश्व की आत्मा मात्र है या कि 'एक' होकर भी अनेक सम्बन्धों में व्यक्त अनेकात्मक विश्व भी है?

उत्पलदेवाचार्य कहते हैं कि वह अनेकात्मक विश्व भी है—

"भावभेदादिसम्बन्धमयेन वपुषोन्मिषन्।
जयत्येको विश्वात्मा प्रकाशः परमेश्वरः॥"[६]

महेश्वर ही 'विश्व' हैं

उत्पलदेवाचार्य **'प्रत्यभिज्ञाकारिका'** में कहते हैं— "विश्वरूपो महेश्वरः॥" (१/२३)

परमाशक्ति का रूपान्तर ही 'विश्व' है

आगम में कहा गया है कि परमाशक्ति अपनी इच्छा से **विश्व का रूप धारण** कर लेती है—

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ३)।
२. प्रत्यभिज्ञा का. (४९)।
३.
४. प्रत्यभिज्ञाकारिका (५६)।
५. सम्बन्धसिद्धि (२) उत्पलदेव)।
६. सम्बन्धसिद्धि (२)।

''यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया **विश्वरूपिणी**।
स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥''

'शक्ति' के हृदय में स्थित 'बीज का विकास ही जगत है

जिस प्रकार न्यग्रोध बीज में स्थित **'शक्ति' का विकसित स्वरूप** ही महावृक्ष कहा जाता है उसी प्रकार शक्ति के हृदय में जो बीज स्थित है उसी का विकास ही चराचर जगत है—

यथा न्यग्रोधबीजस्थ शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥

कामकलाविलासकार की दृष्टि— 'विश्व' शक्ति का रूपान्तर है।

आचार्य **पुण्यानन्द** कहते हैं कि समस्त चराचर का **'बीज'** केवल 'शक्ति' है—

'सा जयति शक्तिराद्या' 'भाविचराचर **बीजं**'' (२)

यही शक्ति शिवादिक्षित्यन्त षट्त्रिंशदात्मरूप में रूपान्तरित होकर **जगत** बन जाती है—

'सैव शिवादिक्षित्यन्त षट्त्रिंशत्तत्वमयसर्व**प्रपञ्चा**त्मिका।'[१]

वह शक्ति **'विश्वात्मिका'** और **'तदुत्तीर्ण'** दोनों है—

'विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।'[२]

'विश्व' शिवशक्त्यात्मक है

नटनानन्दनाथ कहते हैं कि विश्व अकेले शिव या अकेले शक्ति की रचना नहीं है प्रत्युत् दोनों की सम्मिलित रचना है—

'तस्मान्न केवलेन शिवेन वा केवलया शक्त्या वा जगन्निर्मीयते। किन्तु उभाभ्यामेव कामकामेश्वराभ्यां अखिलं तत्वजातमातन्यते॥'[३]

चिदात्मा एक योगी की भाँति है जो कि निरूपादान (परमाणु, पञ्चभूत, तन्मात्रा आदि से निरपेक्ष) **जगत की सृष्टि** अपने भीतर से **कर देता है अर्थात् जगत**

---

१. चिद्वल्ली (नटनानन्द)।
२. सच्चिदानन्द वासना।
३. चिद्वल्ली (२)
'सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य सिद्धौ निष्पत्तौ प्रकाशने स्थित्यात्मनि परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि च संहारे पराशक्तिरूपा चितिः एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तर विमर्शमयी शिवभट्टारकाभिन्ना हेतुः कारणम्॥ (प्र. हृ.)

विश्वात्मा का आत्मप्रकाशन मात्र है।

'चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद् बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥''

विश्व **'देवोऽन्तः स्थित है'** केवल इच्छा मात्र करनी पड़ती है कि वह शिव के अन्दर से बाहर आ जाता है।

इसीलिए प्र. हृदयसूत्र में कहा गया है कि—

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥'

यह भी कहा गया है कि—

''स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युदगिरत्यपि॥''

श्रुति भी इस दृष्टि को स्वीकार करती है—

'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च॥'

ऊर्णनाभि (मकड़ी) अपने भीतर से जाले का आतानवितान निर्मित करती है किन्तु किसी पदार्थान्तर की अपेक्षा नहीं रखती ठीक उसी प्रकार परमात्मा भी जगन्निर्माण अपने भीतर से करता है उसके लिए पदार्थान्तर की अपेक्षा नहीं रखता॥

"World As An Idea" (विश्व केवल अपना एक विचार मात्र है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है)— कहकर जर्मनी के महान दार्शनिक **शोपेन हावर** ने एवं बौद्ध विज्ञानवादियों ने भी **'विश्व'** को अपनी 'विज्ञप्ति' या 'विज्ञान' (चित्त) मात्र कहकर विश्व की अपने साथ एकता स्थापित की है और अपने से भिन्न उसकी किसी भी पृथक सत्ता को स्वीकार नहीं किया है।

त्रिक दर्शन का **'अहमिदम्'** या **'इदमहम्'** भी इसी दृष्टि का उच्चस्थ शिखर है, जो कि **विश्वैकात्म्य** के मेरुशृङ्ग पर प्रतिष्ठित है। बौद्धों ने कहा कि हमारा जो भावात्मक-विचारात्मक अन्तर्जगत है उसी की प्रतिच्छाया बाह्य जगत है। यदि अन्तर्जगत मिट जाय तो बाह्य जगत भी मिट जायेगा। यह बात सत्य भी है कि हम विश्व को अपनी कल्पनाओं-भावनाओं-सस्कारों एवं वृत्तियों के रङ्ग में रङ्गकर देखते हैं अतः यदि हम उसे तटस्थ दृष्टि से (वृत्याकारित न करके) देखें तो हमारे संस्कारानुगत, कल्पनाश्रित एवं भावानुरञ्जित बाह्य विश्व का दृश्य नष्ट हो जाएगा। विश्वका भावात्मक स्वरूप विकल्पाश्रित है। विकल्प अन्तःकरणाश्रित हैं। अन्तःकरण जीवांश्रित हैं अतः समस्त जगत भी जीवों की कल्पना के आश्रित हैं। अतः विकल्पानुरञ्जित है।

विश्व शिव का 'शरीर' है— विद्याचक्रवर्ती कहते हैं— **''नमो विश्वशरी-**

राय विश्वैकात्म्यावभासिने।'' शिव और शिव का शरीर दोनों अभिन्न एवं नित्य हैं। विश्व शिव का शरीर है।

महेश्वरानन्द कहते हैं—

तिलमात्रेऽपि शरीरे प्रेक्षध्वं कीटस्यैतावती शक्तिः।

सा स्वच्छन्दश्रियो **विश्वशरीरस्य** कियती भवतु॥[१]

सूत्रकार की दृष्टि— शिवसूत्रकार ने 'दृश्यं शरीरम्' (शिवसूत्र १/१४)।

विश्व की आत्मा शिव हैं— आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'चैतन्यं परमार्थतः शिव एव विश्वस्य आत्मा।''[२]

विश्व का स्वभाव चैतन्य है

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'जीवजडात्मनो विश्वस्य परमशिवरूपं चैतन्यमेव स्वभावः।'[३]

'विश्व' मेरा (द्रष्टा का) देह है

'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि—

'सर्वं जगत्स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्।

युगपत्स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत्॥'

विश्व को अपना शरीर मान लेने से साधक को अनिवर्चनीय परानन्द की अनुभूति होती है।

'विश्व' एक आनन्दनिकेतन उद्यान है

वेदान्तियों एवं भक्तों की दृष्टि से दुःख की खान दिखाई देने वाला यह विश्व शिव के लिए आनन्दनिकेतनात्मक उद्यान है—

विश्वोद्यानविरूढानि गन्धप्रमुखानि सुगन्धीनि पुष्पाणि।

पञ्चाप्याजिघ्रन् क्रीडति त्रैलोक्यधूर्तो देवः॥[४]

इसीलिए तो परमात्मा इसे देखकर प्रसन्न हो उठता है—

'स्वयमेव समालिख्य **प्रीणाति** परमेश्वरः॥'

---

१. महार्थ मञ्जरी (२९)।

२. शिवसूत्र विमर्शिनी (१/१)।

३. शि. सू. वि. (१/१)

४. महार्थ मञ्जरी।

उसे अपना विश्व अत्यन्त अद्भुत लगता है और उसे देखकर वह अत्यन्त सन्तुष्ट हो उठता है—

'स्वयमेव समालोक्य **सन्तुष्टां** परमाद्भुतम्।'

'विश्व' एक नाटक है और शिव विश्वनाटक का शैलूष है

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं—

'य एष विश्वनाटकशैलूषः शुद्धसंविच्छम्भुः।
वर्णकपरिग्रहमयी तस्य दशा कापि पुरुषो भवति॥'[१]

'परमेश्वरो......विश्वनाटकस्य शैलूषो नट इति व्यपदिश्यते।'[२]

शिवसूत्रकार की दृष्टि— शिवसूत्रकार का कथन है कि 'नर्तक आत्मा'

श्रीनैश्वासकार की दृष्टि - श्री नैश्वास में कहा गया है कि—

जननशैशवयौवनवार्द्धकव्ययमयैरखिलैरपि सन्धिभिः।
अभिनयन्नपि पौरुष **नाटकं** परिणतौ स शिवोऽस्मि **महानटः**॥

श्रीभट्टनारायण की दृष्टि— निसृष्टानेकसद्बीजगर्भं **त्रैलोक्यनाटकम्**॥

विश्व (साधक के लिए भी) आनन्द का असीम रत्नाकर है

चूँकि विश्व अथाह आनन्द का सागर है इसी कारण साधक आत्मस्वरूपानन्द की मादकता से उद्वेजित होकर अपने आनन्दोन्माद को कम करने के लिए लोकयात्रा (व्यावहारिक जीवन) का उसी प्रकार वरण करता है यथा आसवोन्मत्त व्यक्ति अपने उन्माद को कम करने के लिए इमली के खट्टे फल आदि का सेवन किया करता है—

उल्लोकानन्दसुधाशीधुरसोद्वेजितेन हृदयेन।
अभिलषित लोकयात्रा तिन्तिणिचर्वणरसान्तरं योगी॥[३]

आगे इसी तथ्य की पुनः पुष्टि की गई है—

अहो संसारसुखातिशयः अहो सुलभं मोक्षमार्गसौभाग्यम्।
त्रुटितातङ्कलङ्का अहो शिवयोगिनां यामली सिद्धिः॥[४]

'विश्व' शिव के स्वाङ्ग में स्थित होने से उससे अभिन्न है

'विरूपाक्षपञ्चाशिका' में कहा गया है—

स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि दुग्धोदधिनिभः स्वशक्तिलहरीणाम्।

---

१. अंग्रेज कवि **शेक्सपियर** ने भी जगत को एक नाटक ही कहा था। महार्थमञ्जरी (१९)।
२. महार्थमञ्जरी (६२)।
३. महार्थमञ्जरी (६५)।
४. परिमल (१९)।

सम्भेद-विभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति चैष **जगत्**॥

'शक्ति' ही विश्व है-

'सृष्टिस्तु कुण्डलीख्याता'— कहकर शैव-शाक्त शास्त्रों ने विश्व को **'शक्ति का स्वरूप'**— **'शक्ति का परिणाम'** या **'शक्ति का आभास'** निरूपित किया है। 'विश्व' ३६ तत्त्वों का सङ्घात है। ३६ तत्त्व 'शक्ति' के ही विभिन्न रूप हैं और शक्ति की कुक्षि में ही अवस्थित हैं।

यदि शक्ति में स्पन्दन न हो, क्रिया न हो, या गति न हो तो सृष्टि हो ही नहीं सकती। राजानक क्षेमराज ने कहा है कि 'शक्ति' अभेदात्मक रूप से अर्थात् 'अभेदात्मना' परिस्फुरित होती है, स्वस्वरूपतया परिणत होती है— 'कारण' होकर भी 'कार्य' के रूप में व्यक्त होती है और उसके इसी **'परिस्फुरण' 'स्पन्द' 'क्रिया' 'गति' 'व्यक्तीभाव' 'परिणमन'** या **'उद्गिरण'** को विश्व कहते हैं। शक्ति 'ऊर्णनाभि' की भाँति अपने भीतर से विश्वरूपी तन्तु-जाल का उद्गिरण करती है। उसे **'वामा'** इसीलिए कहा जाता है; क्योंकि वह विश्व को वमनक्रिया की भाँति बाह्याभिव्यक्त करती है।

विश्व का कारण ('कारणकार्यवाद' (Cause and effect)

'विश्व' एक कार्य है। 'कारण' कार्य से पृथक् होता है; क्योंकि **'कार्य'** जात या जन्य होता है और **'कारण'** जनक होता है किन्तु शाक्ताद्वैत दर्शन में **'पारमार्थिक कार्यकारणवाद'** निहित है। इसमें **'कारण' ही 'कार्य' बन जाता है—**

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— आचार्य क्षेमराज इसी दृष्टि की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि—

''तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति— इत्येतावत्**परमार्थोऽयं कार्यकारण-भावः**॥''[१] क्योंकि 'ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्' अतः 'अभेदे च कथं हेतु हेतुमद्भावः ?'

विश्व के अस्तित्व या उसकी सत्ता का कारण यदि कोई भी है तो वह है चितिशक्ति—

(१) 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः॥'[२]

(२) 'स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र **कारणत्वं** ॥'[३]

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (१)।

२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (१)।

३. तत्रैव।

(३) 'प्रकाशरूपा चितिरेव हेतुः॥'

(४) अन्यस्य तु मायाप्रकृत्यादेः चित्प्रकाशभिन्नस्य अप्रकाशमानत्वेन असत्वात् न क्वचिदपि हेतुत्वम्॥''

'प्रकाशरूपा चितिरेव हेतुः॥'[१]

माया, प्रकृति आदि तो चित्प्रकाश से भिन्न अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व तो रखती नहीं अतः वे तो '**कारण**' बन ही नहीं सकतीं। अतः चितिशक्ति ही विश्वाविर्भाव (या विश्वोन्मीलन) का एकमात्र कारण है।

यदि यह कहा जाय कि जगत चितिरूप कारण से पृथक कोई अभिनव पदार्थ है तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि इसको सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है—

'अभिनवार्थप्रकाशनरूपं न प्रमाणवराकमुपयुक्तम् उपपन्नं वा॥'

जगत कोई नव्य पदार्थ होता और उसका प्रागभाव होता तो उत्पन्न होता किन्तु जगत तो अपने बीज में (प्रलय काल में) एवं अङ्कुरितावस्था-विकसितावस्था (सृष्टि-काल में) सदैव विद्यमान रहता है अतः वह उत्पन्न नहीं '**उन्मीलित**' होता है—

'उन्मीलनं च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्॥'[२]

विश्व के दो भेद हैं (विश्व भेदद्वयात्मक है)

विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की दृष्टि— विरूपाक्षपञ्चाशिका में कहा गया है कि जगत के दो भेद हैं—

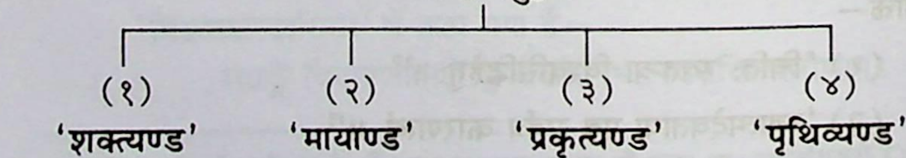
(१) व्यक्त— 'पदार्थात्मक' स्थूल जगत।

(२) अव्यक्त— 'शक्त्यात्मक' सूक्ष्म जगत।

'व्यक्तं हि पदार्थात्मकमिदं जगन्नित्यमेव तल्लग्नम्।
शक्त्यात्मकमव्यक्तं तत्रैव पुनर्निमज्जति च॥'[३]

अण्डात्मक विश्व चतुर्विधात्मक है

समस्त विश्व को चार अण्डों में विभाजित किया गया है—



---

१. प्र. हृ. (१)।

२. प्र. हृ. (२)

३. वि. पञ्चा. (१६/२)।

'विरूपाक्ष पञ्चाशिका' (२१/२) में कहा गया है कि—

'शक्तिर्माया प्रकृतिः पृथ्वीति चतुर्विभागमण्डं यत्।
यश्च विभागोऽस्य पुनर्बहुधा सर्वं स्थितं मयि तत्॥'

यह सारा विश्व (चतुष्टयात्मक) शिव या शक्ति (चै. में स्थित है— 'सर्वं स्थितं मयि तत्॥) (वि. पं.)

'पार्थिवं प्राकृतं चैव मायीयं शाक्तमेव च।
इति संक्षेपतः प्रोक्तमेतदण्डचतुष्टयम्॥'[1]

'विश्व' षड्विधात्मक है— (विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की दृष्टि)

'बिन्दु' से (१) **'सोम'** (२) **'रवि'** एवं (३) **'वह्नि'** का आविर्भाव होता है। ये तीनों भोग्यादि रूप हैं अर्थात्—

(१) सोम— **भोग्य** है (२) रवि— **इन्द्रिय** है

(३) वह्नि— **भोक्ता** है (भोग-साधन)।

सोम-रवि-वह्नि लक्षण भोग्येन्द्रियभोक्तृभानपिण्डात्मा।
बिन्दुर्विमर्शधर्मा षण्णामेकोध्वनां प्राणः॥ (१५/२)

प्रत्यभिज्ञाहृदयकार की दृष्टि

'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' में कहा गया है कि 'विश्व' के दो भेद हैं— (१) **'ग्राह्य'** (२) **'ग्राहक'** : 'तन्नाना अनुरूपग्राह्यग्राहकभेदात्॥'' (शक्तिसूत्र ३)

विश्व के भेद

'प्रत्यभिज्ञादर्शन' में विश्व को दो द्विभेदात्मक कहा गया है। ये भेद हैं— (१) **'ग्राह्य'** (२) **'ग्राहक'**— 'तन्नाना अनुरूपग्राह्यग्राहकभेदात्॥'[2]

सारांश यह कि—

(१) स्वानुरूप 'ग्राह्य' एवं 'ग्राहक' के भेद से 'विश्व' अनेक प्रकार का है। भेदों का आधार है ग्राह्य (प्रमेय) पदार्थों एवं ग्राहकों (प्रमाताओं) में भेद।

(२) **'सदाशिवतत्त्व'** में अहन्ता से आच्छादित एवं अस्फुट इदन्ता से युक्त **परापरस्वरूप विश्व 'ग्राह्य'** है।

उसी प्रकार सदाशिवभट्टारक से अधिष्ठित **'मन्त्रमहेश्वर'** नामक प्रमातृवर्ग भी परमेश्वर की इच्छा से कल्पित है।

---

१. मा. वि. तन्त्र (४९/२)।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ३)।

(३) **'ईश्वरतत्त्व'** में स्फुट 'इदन्ता' और 'अहन्ता' का सामानाधिकण्यस्वरूप जैसा विश्व **'ग्राह्य'** है उसी प्रकार ईश्वर भट्टारक से अधिष्ठित **'मन्त्रेश्वरवर्ग'** ही **'ग्राहक'** है।

(४) **'विद्यापद'** में श्रीमद् अनन्त भट्टारक से अधिष्ठित बहु शाखाओं एवं अन्यान्य भेदों से भिन्न जैसे **'मन्त्र' रूप ग्राहक** हैं। उसी प्रकार का भेदात्मक विश्व **'ग्राह्य'** है।

(५) माया के ऊर्ध्व भाग में कर्तृता शून्य एवं शुद्धबोधात्मा **'विज्ञानाकल'** ग्राहक हैं और **'प्रलयाकल'** एवं **'सकल'** इनके ग्राह्य हैं।

(६) **'माया' के धरातल पर प्रलयकेवली**— शून्यप्रमाताओं का उनके अनुरूप प्रलीन सदृश प्रमेय (ग्राह्य) भी रहा करता है।

(७) भूमि पर्यन्त अवस्थित **'सकल'** नामक **प्रमाताओं** के (जो परिमित एवं भिन्न भिन्न हैं) स्वानुरूप ही ग्राह्य (प्रमेय) भी हैं।

(८) इन **सप्त प्रमाताओं** (शिव। सदाशिव। ईश्वर। शुद्धविद्या। विज्ञानाकल। प्रलयाकल। सकल) से परे **प्रकाशैकशरीर शिवभट्टारकरूप प्रमाता** के लिए प्रकाशैकरूप ही **प्रमेय** (ग्राह्य) हैं।

(९) विश्व से परे तथा विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकाशैकघन परमशिव का शिव से क्षिति पर्यन्त सम्पूर्ण जगत ग्राह्य है।

विश्व और उसकी सृष्टि

(क) विश्व और शिव

विश्व : शिव की क्रीड़ा के रूप में— 'विश्व' परमशिव की मोदभावित क्रीड़ा है। जिस प्रकार समस्त ऐश्वर्यों के आनन्दों का उपभोग करने वाला— प्रमोदात्मा राजा आनन्द की इच्छा से प्रेरित होकर पैदल चलने वाली सेना के पदाति सिपाहियों की भाँति आचरण करता है उसी प्रकार समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण होते हुए भी परमेश्वर आनन्दोल्लास के कारण भिन्न-भिन्न प्राणी के रूप में प्रकट होकर उसी-उसी प्रकार का आचरण करता है।[१]

परमेश्वर परम शिव 'आत्मप्रच्छादन क्रीडा' करता हुआ ३६ तत्त्वों के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। **आचार्य सोमानन्द** भी यही दृष्टि रखते हैं।

---

१. यथा नृपः सार्वभौमः प्रभावामोदभावितः।
क्रीडन् करोति पादातधर्मांस्तद्धर्मधर्मतः॥
तथा प्रभुः प्रमोदात्मा क्रीडत्येव तथा तथा॥ ३८/१॥

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि

आचार्य सोमानन्द कहते हैं—

"आत्मप्रच्छादनक्रीडां कुर्वतो वा कथञ्चन।
मायारूपमितीत्यादि षट्त्रिंशत् तत्त्वरूपताम्॥"
बिभ्रद् बिभर्ति रूपाणि तावता व्यवहारतः।
यावत् स्थूलं जडाभासं संहतं पार्थिवं घनम्॥

परमशिव ही स्थूल, सूक्ष्म, जड़, चेतन सभी कुछ बन जाता है। वह अनेक शरीर, अनेक भुवन, स्थानानुरूप अनेक देह, तदनुरूप अनेक भावनायें, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक आदि सभी कुछ बन जाता है—

'बिभ्रद् बिभर्ति रूपाणि तावता व्यवहारतः।
यावत् स्थूलं जडाभासं संहतं पार्थिवं घनम्।
तथा नानाशरीराणि भुवनानि तथा तथा।
विसृज्य रूपं गृह्णाति प्रोत्कृष्टाधममध्यमम्॥
स्थानानुरूपतो देहान् देहाकारेण भावनाः।
आददत् तेन तेनैव रूपेण प्रविभाव्यते॥
क्रीडया दुःखवेद्यानि कर्मकारीणि तत्फलैः।
सम्भत्स्यमानानि तथा नरकार्णवगह्वरे॥'[१]

आचार्य सोमानन्द एवं अन्य सभी त्रिकाम्नाय के दार्शनिक 'विश्व' को शिवरूप या शक्तिरूप मानते हैं।

विश्व : शिव के रूप में

चूँकि षट्त्रिंशत्तत्व परमेश्वर शिव से ही उत्पन्न होते हैं और निखिल विश्व षट्त्रिंशत्तत्वात्मक है। अतः शिवादि क्षित्यन्त सारे तत्त्व, सारे पदार्थ एवं निखिल विश्व शिव का ही व्यक्त रूप है।

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि— आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि शिवादि क्षित्यन्त समस्त षट्त्रिंशदात्मक 'विश्व' आनन्दघन शिव ही का स्वस्वरूप है। वह चेतन जीव ही के रूप में नहीं प्रत्युत् सारे पदार्थों के रूप में भी सर्वत्र अवस्थित है—

'पदार्थत्वेन भगवान् सर्वत्रैव तदात्मता।
स्वशिवत्वमिवाजानन् पश्चात्मव्यपदेशतः॥'

---

१. निवासीनि शरीराणि गृह्णाति परमेश्वरः। —शिव दृष्टि

भगवान शिव संसार की प्रत्येक सत्ता एवं प्रत्येक पदार्थ की आत्मा बनकर अवस्थित हैं— 'सर्वत्रैव तदात्मता॥'

भगवान परमशिव ही निरपेक्ष अखण्ड ज्ञानस्वरूप परनिर्वृति अर्थात् आनन्दात्मा हैं। वे ही निर्वृति मायाशक्ति के कारण स्वयं उससे आवृत होकर जगन्निर्माण की इच्छा के पूर्वभागरूप उन्मुखता प्राप्त करती है। फिर वही आनन्दस्वरूप पर निर्वृति 'इच्छा'-'ज्ञान'-'क्रिया' के रूप में प्रकट होती है। फिर वही शक्त्यात्मक शरीर से लेकर नारकीय शरीर तक भौतिक रूप में आविर्भूत होती है। पृथ्वीपर्यन्त पदार्थ की सृष्टि के रूप में वही आनन्दज्ञानघन भगवान ही जन्म लेता है और वही आत्मस्वरूप से समस्त विश्व के रूप में स्थित है—

'एवं शिवो बोधमयः स एव परनिर्वृतिः।
सैव चोन्मुखतां याति सेच्छाज्ञानक्रियात्मताम्।
सैव शाक्तशरीरादिनारकान्तं हि भूतता।
प्रसूयते स्वचिद्रूपप्रमुखं पार्थिवान्तकम्।
पदार्थत्वेन भगवान् सर्वत्रैव तदात्मता।
स्वशिवत्वमिवाजानन् पश्चात्मव्यपदेशतः॥

वही ज्ञानाधिकरण बनकर पाँच रूपों में अवस्थित है।

(१) कहीं वे **पशु** के रूप में रहते हैं।

(२) कहीं वे **प्रलयाकल** के रूप में रहते हैं।

(३) कहीं वे **विज्ञानाकल** के रूप में रहते हैं।

(४) कहीं वे **'ईश्वर'** के रूप में रहते हैं।

(५) कहीं वे **'सदाशिव'** के रूप में रहते हैं।

(६) कहीं वे शिव के रूप में रहते हैं। और वे

(७) सर्वत्र ही 'सर्वमय', 'विश्वमय' तथा 'विश्वातीत' के रूप में रहते हैं।

आचार्य सोमानन्द पाद ने इसी तथ्य को 'शिवदृष्टि' में प्रतिपादित किया है। उनका कथन है कि परमशिव की 'इच्छा' ही विश्व बन गई है और 'पशु' 'प्रलयाकल' 'विज्ञानाकल' 'ईश्वर' 'सदाशिव' 'शिव' एवं शिवादि क्षित्यन्त सारे तत्त्व एवं पदार्थ शिव के विभिन्न रूप हैं। शिव ही विश्व के रूप में प्रकट हो उठा है।[1]

---

१. समस्त विश्व परमशिव की **'इच्छा' की परिणति मात्र है—**
''तथा भगवदिच्छैव तथात्वेन प्रजायते॥'' सारे रूप उसी के हैं—

— शेष अगले पृष्ठ पर

'शिव' विश्व के ३६ तत्त्वों के रूप में

चूँकि शिव 'विश्ववपु' हैं अत: विश्व के संघटक ३६ तत्त्व भी शिव ही हैं।

आचार्य सोमानन्द कहते हैं—

'मायारूपमितीत्यादि षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपताम्॥'

—शिवदृष्टि (३२/१)

'शिव' विश्व के समस्त भुवनों एवं शरीरों के रूप में

आचार्य सोमानन्द 'शिव दृष्टि' में कहते हैं कि विश्व के सारे भुवन, सारे शरीर. सारी इन्द्रियाँ एवं सभी भावनायें भी शिव ही हैं—

'तथा नाना शरीराणि भुवनानि तथा तथा॥'

'स्थानानुरूपतो देहान् देहाकारेण भावना:॥'

—शिवदृष्टि ३५/१

'शिव' विश्व के पदार्थों के रूप में

आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि 'शिव' विश्व के नि:शेष पदार्थ हैं—

'पदार्थत्वेन भगवान् सर्वत्रैव तदात्मता।'

'एवं सर्व पदार्थानां समैव शिवता स्थिता॥'

'अभेद 'शिव' विश्व के अनन्त भेदों के रूप में

शिव ही सर्वस्व हैं अत: विश्व में शिव से भिन्न कुछ है ही नहीं। यदि हम भेद मानते हैं तो अनन्त भेदों के रूप में शिव ही भासित हो रहे हैं—

'एवं भेदात्मकनित्यं शिवतत्त्वमनन्तकम्॥'

—शिवदृष्टि, (४९/१

(ख) विश्व और शक्ति

अद्वैतवादी शैव-शाक्त तान्त्रिकों ने विश्व को 'प्रमेय' एवं परमशिव को

''तद्रूपत्वेन वा पश्यन् स्थित: शान्त इव क्वचित्।
केवलेश दृढ़त्वेन क्वचित् केवलशम्भुता॥ ४२॥ १॥
अप्रबुद्धो निष्कलश्च क्वचित् **प्रलयकेवली**।
आत्मबोधी विकलवत् क्वचित् **विज्ञानकेवली**॥ ४३॥ १॥

—शिवदृष्टि (आ. प्रथम)

साधन निरपेक्ष, परोपादाननिरपेक्ष वह स्वतन्त्र शिव योगियों की भाँति सारे विश्व को नानारूपात्मक आकृतियाँ धारण करके अपने भीतर से प्रकट करता है—
योगिनामिच्छया यद्वन्नानारूपोपपत्तिता।
न चास्ति साधन किञ्चिन्मृदादीच्छां विना प्रभो:॥

'प्रमाता' के रूप में स्वीकार नहीं किया प्रत्युत् दोनों को अभिन्न रूप में अङ्गीकृत किया।

एक ओर तो विश्व 'शिव' है

(१) 'श्रीमत् परमशिवस्य पुनः विश्वोत्तीर्णविश्वात्मकपरमानन्दमयप्रकाशैक-घनस्य एवं विधमेव शिवादिधरण्यन्तं अखिलं अभेदेनैव स्फुरति....श्री परमशिवभट्टारक एवं इत्थं नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति॥''[१]

(२) एवं भगवान विश्वशरीरः। 'विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव।'

(३) यथा च भगवान् विश्वशरीरः।

(४) श्री परमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं 'विश्वं।' (प्र. हृदयम्)

वहीं दूसरी ओर विश्व 'शक्ति' है

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

(१) 'ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्॥'

(२) 'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति॥'

—'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्'

शक्ति महाद्रुम है—

'यथा न्यग्रोध बीजस्थं शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥'

स्वतन्त्र चिदात्मा ही (१) परिमित (२) अपरिमित (जीव एवं शिव) के रूप में अपने को विभक्त करके विश्वात्मभाव से उल्लसित हो रहा है— 'स्वतन्त्रश्चिदात्मैवेति परिमिता परिमितत्वेन द्विविधत्वम्॥'[२]

जीव भी शिव ही है

संविदात्मा परमेश्वर स्वेच्छापूर्वक विश्व क्रीडा को उल्लसित करने हेतु प्राणादिक अनात्म वस्तुओं को आत्मा के रूप में अवभासित करके अपने विराट स्वरूप को संकुचित बनाकर जीव बन जाता है— 'स एव संविदात्मा परमेश्वरः स्वेच्छया विश्व-क्रीडोल्लिलासयिषायां प्राणाद्यात्मतामवभास्य तत्प्रमातृत्वेन संकुचितीभूय जीवतामेति।

'स्वतन्त्रश्चिदात्मैवेति परिमितापरिमितत्वेन द्विविधत्वम्।'

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदम् (सूत्र ३)।
२. अजडप्रमातृसिद्धि (१६)।

'स्वशक्तिप्रचयोऽस्यविश्वं' कहकर शिवसूत्रकार ने विश्व को 'शक्ति प्रचय' के रूप में घोषित किया है।

विश्व और उसकी सृष्टि का स्वरूप क्या है?

शिव विश्वशरीरी हैं। सृष्टि शिवरूपा है। शिव ही आत्मगोपनात्मिका क्रीड़ा के द्वारा 'विश्व' और 'जीव' बन जाते हैं। 'शुद्धाध्वा' अशुद्धाध्वा, शिव, सदाशिव, ईश्वर, विज्ञानाकल, प्रलयाकल, सकल तथा सारे ३६ तत्त्व महामाया, माया, प्रकृति पुरुष आदि सारा विस्तार एवं बन्धन-मोक्ष आदि समस्त क्रियाकलाप भगवान परमशिव की स्वातन्त्र्यशक्ति की क्रीड़ा या लीला मात्र हैं। यह सारी सृष्टि एवं यह निखिल विश्व उनकी आत्मप्रच्छादनात्मिका क्रीड़ा मात्र है।

शिव का **स्वस्वरूपगोपन** ही विश्व और विश्व की सृष्टि है।

सृष्टि-कम

(१) **'परमशिव'** सगुण ब्रह्म के रूप में अवतीर्ण होकर अपनी 'स्वातन्त्र्य-शक्ति' या स्वाव्यभिचरित महामाया शक्ति से अपने को सङ्कुचित जैसा अवभासित करके (१) **'विज्ञानाकल'** (२) **'प्रलयाकल'** एवं (३) **'सकल'** बन जाते हैं।

वे सृष्ट्युन्मुख भगवान शुद्धाध्वा में स्थित होकर अपनी शक्ति से **'माया शक्ति'** को विक्षुब्ध करके **'कलातत्त्व'**, **'विद्यातत्त्व'**, **'रागतत्त्व'**, **'कालतत्त्व'** एवं **'नियतितत्त्व'** के स्वरूप वाले 'कञ्चुक षट्क' की रचना करते हैं और इन ६ कञ्चुकों से। अपने को आच्छादित करके संसारी जीव बन जाते हैं।

भट्टवामदेव की दृष्टि— भट्टवामदेव कहते हैं— "तदेवम् असौ भगवान् स्वमायाशक्त्याख्ये न अव्यभिचरितस्वातन्त्र्यशक्तिमहिम्ना स्वात्मनैव आत्मानं सङ्कुचित-मिव अवभासयन् विज्ञानाकलः प्रलयाकलः सकलश्च प्रतिपद्यते।"[१]

(१) **'विज्ञानाकल'** (१ मल से युक्त) : 'आणवेन एकेनैव मलेन संयुक्तो **'विज्ञानाकल'** उच्यते॥ ('आणवमल और विज्ञानाकल')

(२) **'प्रलयाकल'** (२ मलों से युक्त) 'द्वाभ्याम् आणवमायीयाभ्यां अपवेद्यः **'प्रलयाकलः'** (आणव मल, मायीय मल और 'प्रलयाकल')।

(३) **'सकल'** (३ मलों से युक्त) 'त्रिभिराणवमायीयकार्मैः संवेद्यः तैरेव कलादि-धरण्यन्ततत्त्वमयः सकलः।

तदर्थमेव **अयमर्थसर्गः**। ('आणवमल', 'मायीयमल' एवं 'कार्ममल'— ३ मलों से युक्तः 'सकल')।

---

१. जन्ममरणविचारः।

'पञ्चकञ्चुक' या 'कञ्चुकषट्क' क्या है?

'माया' को भी अन्तर्गणित कर लेने पर कञ्चुकों की संख्या ६ हो जाती है और इसे 'कञ्चुक षट्क' कहा जाता है।

(१) **'कलातत्त्व'**— 'मायां विक्षोभ्य **'कलातत्त्वं'**— **किञ्चित्कर्तृत्व-लक्षणं** पुद्गलस्य सृजति।

(२) **'विद्यातत्त्व'**— 'ततोऽपि किञ्चिदवबोधाख्यं **'विद्यातत्त्व'**।

(३) **'रागतत्त्व'**— किञ्चिदभिलाषरूपं च **'रागतत्त्वं'**।

(४) **'कालतत्त्व'**— तदेतत्सरागं कर्तृतत्त्वं भूतभविष्यद्वर्तमानतया त्रिधा अवच्छिद्यते तत् **'कालतत्त्वं'**।

(५) **'नियतितत्त्व'**— तुल्यत्वेऽपि रागे येन कर्तृत्वस्य अवच्छेदः क्रियते तत् **'नियतितत्त्वं'**— तदेतत् कञ्चुक षट्कम्॥''— अन्तर्मलावृतस्य पुद्गलस्य बहिराच्छादकम्॥''

'चिल्लचक्रेश्वरमत' में कहा गया है—

''**माया कला शुद्धविद्या राग कालौ** नियन्त्रणा।
षडेतान्यावृतिवशात्कञ्चुकानि मितात्मनः।
एवं च पुद्गलस्यान्तर्मलः कञ्चुकवत्स्थितः।
तुषवत् कञ्चुकानि स्युस्तस्माज्ज्ञानक्रियोज्झितः॥''

(१) 'कला'— सा च कला पुरुषस्य परिमितं कर्तृत्वं प्रकाश्य सुखदुःख-मोहरूपं भोग्यं अव्यक्तत्वं सृजति। (परिमित कर्तृत्वपूर्वक सुखदुःखमोहरूपभोग्य)।

(२) **'बुद्धितत्त्व'**— 'ततोऽपि अष्टगुणं बुद्धितत्त्वं उत्पन्नम्॥ बुद्धितत्त्व ८ गुण।

(३) **'अहङ्कारतत्त्व'**— ततोऽपि (क) सात्विक (ख) राजस एवं (ग) तामस भेदभिन्नं त्रिस्कन्धम् अहङ्कारतत्त्वम्।

(अहंकार के ३ भेद हैं।)

(क) 'सात्विक अहंकार' से मन की उत्पत्ति हुई।

(ख) 'राजस अहंकार' से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई।

******

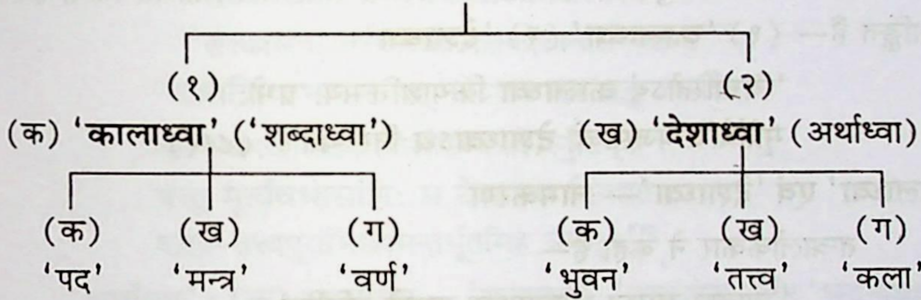
अध्याय-७

अध्व-विज्ञान और तन्त्र

तान्त्रिक दर्शन में अध्व-विज्ञान का अत्यधिक महत्त्व है।

'अध्व' का अर्थ— **'अध्व'** का अर्थ है मार्ग। 'मार्ग' चलने का रास्ता है। सृष्टि-पुरुष को भी चलने का मार्ग चाहिए ('सृष्टि' अर्थात् विश्व-सृजन एवं जगत को भी चलने का मार्ग चाहिये)। सृष्टि या जगत के चलने के दो मार्ग हैं— (१) **'कालाध्वा'** (२) **'देशाध्वा'**।[१]

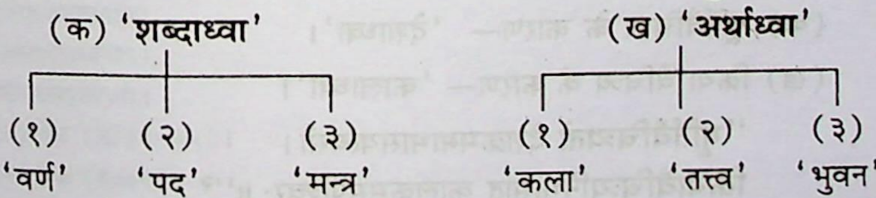
*** 'अध्वा' : (षडध्व) ***



इस प्रकार ६ अध्वा होते हैं। इन छहों के प्रविभाग के कारण ही 'त्रिक दर्शन' को **'षडध्व दर्शन'** भी कहते हैं। 'अध्वा' की प्रक्रिया का क्रम **'कालाग्नि रुद्र भुवन'** से **'अनाश्रित'** पर्यन्त विकसित है।

'अध्वा' का वर्गीकरण— **'षडध्व'** को किन वर्गों (समूहों में विभाजित किया जाय?— इस विषय में मतभेद है। 'अध्व षट्क' का विभाजन इस प्रकार भी किया जा सकता है—

*** 'अध्वा' : (अध्व षट्क) ***



अर्थात् (१) **प्रथम सूमह** हुआ— **'वर्णाध्वा'**। 'पदाध्वा'। 'मन्त्राध्वा'।

---

१. 'क्रियया कालाध्वा, मूर्त्या च देशाध्वा'।

(२) **द्वितीय समूह हुआ**— 'कलाध्वा'। 'तत्त्वाध्वा'। 'भुवनाध्वा'।

अभिनवगुप्तपादकृत वर्गीकरण— अभिनवगुप्तपादाचार्य ने 'तन्त्रालोक' (आह्निक ६-१२) एवं 'तन्त्रसार' (पृ. ४५-११२) में उक्त अध्व-समूह का वर्गीकरण— (क) '**कालाध्वा**' एवं (ख) '**देशाध्वा**'— के रूप में ही किया है।

(क) जहाँ क्रियाभासन होता है उन अध्वसमूहों को '**कालाध्वा**' कहते हैं। यथा— '**पद**', '**मन्त्र**' एवं '**वर्ण**'।

(ख) जहाँ मूर्त्यवभासांश होता है उन अध्वसमूहों को '**देशाध्वा**' कहते हैं यथा— 'कला' 'तत्त्व' एवं 'भुवन' ॥

'कालाध्वा' एवं 'देशाध्वा'

आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने '**षडध्व**' को दो वर्गों में विभाजित किया है। ये निम्नाङ्कित हैं— (१) '**कालाध्वा**' (२) '**देशाध्वा**'।

'विचारितोऽयं **कालाध्वा** क्रियाशक्तिमय: प्रभो:।
मूर्तिवैचित्र्यजस्तज्जो **देशाध्वाऽथ** निरूप्यते॥' (८/२)

'कालाध्वा' एवं 'देशाध्वा'— नामकरण

तन्त्रालोककार ने कहा है—

''यावान् समस्त एवायमध्वा **प्राणो** प्रतिष्ठित:।
द्विधा च सोऽध्वा क्रियया मूर्त्या च प्रविभज्यते॥''[1]

(१) **क्रियापरकता** के कारण '**कालाध्वा**' का नामकरण हुआ है।

(२) **मूर्तिमत्ता** के कारण '**देशाध्वा**' का नामकरण हुआ है।

(३) वर्ण, पद, मन्त्र से सम्बद्ध अध्वा— शब्दात्मक हैं।

(४) कला, तत्त्व, भुवन से सम्बद्ध अध्वा— अर्थात्मक हैं।

(५) सारे अध्वा प्राण में स्थित हैं, किन्तु (१) काल तत्त्व एवं (२) देश तत्त्व की दृष्टि से इनके दो भेद हो गये हैं, जो निम्नाङ्कित हैं— (१) '**कालाध्वा**' (२) '**देशाध्वा**'।

(क) मूर्तिवैचित्र्य के कारण— 'देशाध्वा'।

(ख) क्रिया वैचित्र्य के कारण— 'कालाध्वा'।

''**मूर्तिवैचित्र्यतो** देशक्रममाभासयत्यसौ।
क्रियावैचित्र्यनिर्भासात् कालक्रममपीश्वर:॥''[2]

---

१. तन्त्रालोक (६/२१-२२)।

२. प्रत्यभिज्ञाकारिका (३)।

'**कालाध्वा**' के सारे अध्वा प्राण में प्रतिष्ठित हैं।

चूँकि 'पद', 'मन्त्र' एवं 'वर्ण' तीनों के केन्द्र में कालतत्त्व प्रतिष्ठित हैं। तन्त्रालोककार कहते हैं—

'प्राणचारेऽत्र यो **वर्णपदमन्त्रोदयः** स्थितः।'

इनके तीन भेद हैं— 'यत्नजोऽयत्नजः सूक्ष्मः परः स्थूलः स कथ्यते॥'[१]

क्रियाशक्तिमय अध्वा '**कालाध्वा**' है तो मूर्तिवैचित्र्यमूलक अध्वा '**देशाध्वा**' है।

समस्त 'षडध्व' देवीस्वरूप हैं किन्तु देवी '**षडध्वातीत**' भी है— 'अभ्यासातिशयज्ञाता **षडध्वातीतरूपिणी**'[२] भगवती 'तत्त्व' भी है और '**तत्त्वाधिका**' भी है।

'**तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थ**स्वरूपिणी।'[३]

'**तत्त्वासना तत्त्वमयी** पञ्चकोशान्तरस्थिता॥''[४]

''तत्र **क्रियाभासनं** यत् सोऽध्वा **कालाह्व** उच्यते।
वर्णमन्त्रपदाभिख्यमत्रास्तेऽध्वत्रयं स्फुटम्।
यस्तु **मूर्त्यवभासांशः** स **देशाध्वा** निगद्यते।
कला-तत्त्वपुराभिख्यमन्तर्भूतमिह त्रयम्॥''[५]

'**अर्थाध्वा**' : (क) **स्थूलाध्वा**— '**कलाध्वा**', '**तत्त्वाध्वा**' और '**भुवनाध्वा**'।

'**शब्दाध्वा**' : (ख) **सूक्ष्माध्वा**— '**वर्णाध्वा**' '**पदाध्वा**' और '**मन्त्राध्वा**'।

त्रिकद्वयेऽपि प्रत्येकं स्थूलं सूक्ष्मं परं वपुः।
यतोऽस्ति तेन सर्वोऽयमध्वा षड्विध उच्यते॥[६]

अध्वषट्क (संहारक्रम')—

''मन्त्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः।
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चाऽर्थतः क्रमात्॥''[७]

---

१. तन्त्रालोक (६/२१६)।
२. ललितासहस्रनाम।
३. ललितासहस्रनाम।
४. ललितासहस्रनाम।
५. तन्त्रालोक (६/३४-३५)।
६. तन्त्रालोक (६/३६)।
७. ''उक्तं **कलाध्वा तत्त्वाध्वा भुवनाध्वेति** च त्रयम्।
वर्णाध्वा च **पदाध्वा** च **मन्त्राध्वे**त्यपरं त्रयम्॥''
—'अर्थाध्वा' 'शब्दाध्वा' लक्ष्मण देशिकेन्द्र —शारदातिलकम्

'सृष्टिक्रम'— 'उक्तं **कलाध्वा तत्त्वाध्वा मन्त्राध्वेत्यपरं** त्रयम्।'

'अध्व' 'पाश' और 'बन्धन'

'अध्व' और उसके सारे प्रकार बन्धन एवं बन्धन के कारण हैं— इसीलिए अध्वषट्क को 'पाश' कहा गया है— "**पाशः** स्यादध्वपञ्चकम्॥"

'मृगेन्द्रतन्त्र के क्रिया पाद में स्वायम्भुव वचन इस प्रकार है— '**अध्व**शब्देन कथ्यन्ते ते सर्वे **बन्धना** अपि॥"

षडध्व-शोधन— 'षडन्वयमहारत्न' में कहा गया है कि '**शोधन**' (१) तत्त्वों का कारणैकत्व-चिन्तन है।

(२) वर्णों एवं कलाओं में बिन्दु की एकता का चिन्तन भी अध्व-शोधन है—

"शोधनं नाम तत्त्वानां कारणैकत्वचिन्तनम्।
वर्णादीनां कलानाञ्च तस्यां बिन्द्वैक्य चिन्तनम्॥"

गुरु अपने शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखकर उसके चैतन्यशक्ति को हृदयपद्म से खींचकर अपनी आत्मा में उसे संयुक्त करके अध्व-शोधन करता है। अतः कहा गया है—

'हृदि स्थितं तच्चैतन्यं प्रस्फुरत्तारकाकृति।
आदाय स्थापयेत् स्वीये हृदयेऽङ्कुशमुद्रया॥'

और—

"**शोधनं** नाम तत्त्वानां कारणैकत्व चिन्तनम्।
वर्णादीनां कलानाञ्च तस्यां बिन्द्वैक्यचिन्तनम्॥"

प्रश्न— क्या कालाध्वा का 'काल' कञ्चुक है?

'कालाध्वा' का काल कञ्चुक नहीं है॥

यह कालतत्त्व परमात्मा शिव की '**क्रियाशक्ति**' है।

(१) समस्त '**कालाध्वा**' प्राण में प्रतिष्ठित है।

'एष एव स कालाध्वा प्राणे स्पष्टं प्रतिष्ठितः॥'[१]

(२) '**काल**' कौन है? पञ्चकञ्चुकों में परिगणित '**काल**' यहाँ स्वीकार्य नहीं है। यह 'काल' तो परमेश्वर की 'क्रियाशक्ति' है और सभी तत्त्वों का उत्स है। विश्व इसी से प्रकाशित होता है—

---

१. तन्त्रालोक (६/३७)।

(क) तत्त्वमध्यस्थितात्कालादन्योऽयं '**काल**' उच्यते॥[१]

(ख) एष **कालो** हि देवस्य विश्वाभासनकारिणी।
क्रियाशक्तिः समस्तानां तत्त्वानां च परं वपुः।

(ग) एतदीश्वरतत्त्वं तच्छिवस्य वपुरुच्यते।
उद्रिक्ताभोगकार्यात्मविश्वैकात्म्यमिदं यतः॥

एतदीश्वररूपत्वं परमात्मनि यत्किल॥ (६/३८-४०)

सारांश— (१) एक '**काल**' जो पञ्च कञ्चुकों में एक है।

(२) यहाँ कञ्चुकात्मक '**काल**' गृहीत नहीं है। यह 'काल' परमेश्वर की **क्रिया शक्ति** है। यह सभी तत्त्वों का उत्स है।

(३) यह ईश्वर तत्त्व है। 'काल' शिवतत्त्व का ही एक बाह्य उल्लास है। विश्व की कलना ही **कालात्मक क्रियाशक्ति** है। विश्व 'क्रियाशक्ति' का बाह्यरूप ही तो है।

(१) **अनाश्रित** (शक्तितत्त्व) ही बाह्यावभास में '**माया**' है।

(२) **सदाशिव** ही '**कला**' और '**विद्या**' है।

(३) **ईश्वर** ही '**काल**' एवं '**नियति**' है।

(४) **सद्विद्या** ही राग बनकर व्यक्त होती हैं—

'अनाश्रितं यतो माया कलाविद्ये सदाशिवः।
ईश्वरः कालनियती सद्विद्या **राग** उच्यते॥'[२]
अनाश्रितः **शून्यमाता बुद्धिमाता** सदाशिवः।
ईश्वरः **प्राणमाता** च विद्या **देहप्रमातृता**॥[३]
'तेन प्राणपथे विश्वाकलनेयं विराजते॥'

प्राण भी '**काल**' है। विश्व की निखिल कलना प्राण में ही प्रस्फुटित है। 'कन्द' ही प्राणप्रयत्न का आधार है।

(अ) कालाध्वा

'कालाध्वा' प्रथम अध्व का त्रिक है। 'कालाध्वा' के तीन अङ्ग हैं— (१) '**वर्णाध्वा**', (२) '**पदाध्वा**' एवं (३) '**मन्त्राध्वा**'।

---

१. तन्त्रालोक (६/३७)।

२. तन्त्रालोक (६/४२)।

३. पृथ्वी से प्रधान तक के स्वामी **ब्रह्मा** हैं। पुरुष से कला तक के स्वामी हैं— विष्णु, माया के स्वामी हैं— रुद्र। सदाख्यतत्त्व फैले हुए जो लोक फैले हैं उनके स्वामी हैं— अनाश्रित शिव। परशिव॥

वर्णाध्वा

'वर्णाध्वा' कालाध्वा या शब्दाध्वा का एक भेद है। 'अकार' से लेकर 'क्षकार' पर्यन्त समस्त वर्ण-राशि को समष्टि रूप से 'वर्णाध्वा' कहा गया है। **लक्ष्मणदेशिकेन्द्र** इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

"वर्णाध्वेति वदन्त्यर्णानादिक्षान्तान् मनीषिणः॥"[१]

'**कालाध्वा**' के अन्य भेद निम्नाङ्कित हैं—

(क) '**पदाध्वा**' (ख) '**मन्त्राध्वा**'

'वर्णसङ्घः पदाध्वा' **स्यान्मन्त्राध्वा** मन्त्रराशयः॥[२]

वर्णों का वह समूह जिसे '**पद**' कहते हैं (अर्थात् 'सुब्तिङ्गन्तं **पदम्**')— उसके समूह को '**पदाध्वा**' कहते हैं।

मन्त्र-राशि को '**मन्त्राध्वा**' कहते हैं—

'**स्यान्मन्त्राध्वा** मन्त्रराशयः॥'[३]

'**वायवीय संहिता**' में कहा गया है कि—

"अनेकभेदसम्भिन्नः **पदाध्वा** पदसंहतिः।
महामन्त्रोपमन्त्राणां वर्ततेऽवयवात्मना॥
प्रधानावयवत्वेन सोऽध्वा पञ्चपदात्मकः।
मन्त्रराशयः अ क च ट त प याः सप्त मन्त्राः॥"

सारांश— (क) भुवन समूह— '**भुवनाध्वा**' कहा जाता है।

(ख) वर्णसमूह (अ से क्ष पर्यन्त) '**वर्णाध्वा**' कहा जाता है।

(ग) पदों का समूह '**पदाध्वा**' कहा जाता है।

(घ) मन्त्रों का समूह '**मन्त्राध्वा**' कहा जाता है।

यह '**षडध्व दर्शन**' या षोढा अध्वा 'शक्ति' का स्वाभाविक स्पन्दन है। शक्ति का स्पन्द शिव का स्पन्द है। शक्ति के परिस्पन्द का आधार शिव है। स्पन्द शिव में है यही शैव स्वातन्त्र्य रूप शक्ति का उच्छलन है।

'**वर्ण**' तत्त्वतः भगवतीस्वरूप हैं—

---

१. शारदातिलकम् (पटल ५)।
२. शारदातिलकम् (पटल ५)।
३. शारदा तिलकम् (५/९१)।

'उदार कीर्तिरुद्दामवैभवा **वर्णरूपिणी**॥'[१]

'मन्त्राध्वा' की मूल शक्ति 'मन्त्र' वस्तुतः भगवती पराशक्ति ही है— 'छन्दः-सारा शास्त्रसारा **मन्त्रसारा** तलोदरी॥'[२] वह **'मातृकावर्णरूपिणी'** भी हैं। वे मातृका भी हैं 'माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी'।[३]

'वर्णाध्वा'— वर्णाध्वा प्रमास्वरूप है। यह प्रमेय, प्रमाण एवं प्रमाता इन तीनों का विश्रान्ति-धाम है। भगवान शिव अपनी चिद्भूमि (शुद्ध विद्या दशा) में, 'माया' से 'क्षिति' पर्यन्त, वाच्य रूप भिन्न-भिन्न तत्त्वात्मक अर्थों के साथ अभेदरूप से वर्णसमूह की रचना करते हैं। इन वर्णों में सर्वाभिधान क्षमता वर्तमान रहती है। ये अचिन्त्य शक्ति महिमान्वित हैं। वैयाकरण भी कहते हैं— "सर्वः शब्दः सर्वार्थप्रतिपादनशक्ति युक्तः॥'

वर्णाध्वा का महत्त्व

वे वर्णों को ब्रह्म भी मानते हैं।

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"[४]

\+ \+ \+ \+ \+

"वर्णज्ञानं वाग्विषयः यत्र च ब्रह्म वर्तते।
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते॥"

महाभाष्यकार कहते हैं कि "यह अक्षर समाम्नाय या वर्णमाला समस्त वाग्व्यवहार में अनुस्यूत है। अभ्युदयरूप **दृष्टकल** तथा **निःश्रेयसात्मक अदृष्ट** फल ही इस वर्णमाला का प्रयोजन है। यह ज्ञाता के लिए उपर्युक्त स्वरूप में पुष्पित-फलित होती है। चन्द्रतारक के सदृश यह वर्णमाला अव्युच्छिन्न एवं अकृतिक है। यह प्रतिपुरुष में व्यवस्थित **ब्रह्मराशि है। यह मूल वेद** है।"

नन्दिकेश्वर की दृष्टि— नन्दिकेश्वर ने भी वर्णों को ब्रह्म माना। नन्दिकेश्वर काशिका में कहते हैं—

वर्णों का स्वरूप— (१) "**अकारो** ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।"

---

१. ललिता सहस्रनाम।
२. ललितासहस्रनाम।
३. ललितासहस्रनाम।
४. वाक्यपदीय (भर्तृहरि)।
'शान्तां नाम कला उच्यन्ते। सर्वातीतत्वात् शिवतत्त्वे 'शान्त्यतीता'। (जन्मनसा विचार)

(२) 'अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः।'

(३) **अकारं** सन्निधीकृत्य जगतां कारणत्वतः।

इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं गतम्॥

(४) **अकारो** ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कला मता।

उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः॥

(५) ए ओङ् मायेश्वरात्म्यैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु।

साक्षित्वात् सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम्॥

ॐ= ''प्रणवेन जगद्व्याप्तं मायायामवतिष्ठते॥''

वर्णों की उत्पत्ति— (महातत्त्व प्रकाशिनी के अनुसार)

''उच्छूनकाले बिन्द्वात्मा तस्मादक्षरसम्भवः।

बिन्दुस्फोटनमात्रेण वर्णानां च समुद्भवः।

तस्मादाकाशमुख्यानि भूतानि समजायत।

बिन्दुः श्रीचक्रराजस्य परब्रह्मात्मकस्त्विति॥''

अभिनवगुप्त जी की दृष्टि— (वर्णों के प्रकार)— वर्ण के दो प्रकार हैं—

(१) 'अमायीय' (२) 'मायीय'।

अमायीय वर्णों से मायीय वर्ण उत्पन्न होते हैं।

मायीय वर्णों में अमायीय वर्ण वीर्य के रूप में स्थित रहते हैं। **अमायीय वर्ण** अकृत्रिम एवं सङ्कोचशून्य होने के कारण अनन्त हैं। मायीय वर्णों में **अमायीय वर्णात्मक वाचक शक्ति** अग्नि में ऊष्णता की भाँति विद्यमान रहती है—

''शब्दे वाचकशक्तिश्च नित्यैवाग्नाविवोष्णता।

तेनानन्तो ह्यमायीयो यो वर्णग्राम ईदृशः।

संविद्विमर्शसचिवः सदैव स हि जृम्भते।

यत एव च मायीया वर्णाः सूतिं वितेनिरे।

ये च मायीयवर्णेषु वीर्यत्वेन निरूपिताः।

संकेतनिरपेक्षास्ते प्रमेतिं परिगृह्यताम्॥''[१]

वर्णों में अकृत्रिमता का महत्त्व

वर्णों में जैसे जैसे अकृत्रिमता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उनमें चमत्कृति भी

---

१. तन्त्रालोक (आह्निक ११)।

बढ़ती जाती है। वाक् सिद्धि, सर्वज्ञत्वादि सिद्धि, कवित्व शक्ति, वक्तृत्वक्षमता एवं वैदुष्य आदि वर्णों की शक्ति के ही विवर्त हैं।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनव ने भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है—

"यथा यथा चाकृतकं तद्रूपमतिरिच्यते।
तथा तथा चमत्कारतारतम्यं विभाव्यते।
आद्या मायीयवर्णान्तर्निमग्ने चोत्तरोत्तरे।
सङ्केते पूर्वपूर्वांशमज्जने प्रतिभाभिदः॥"[१]

मन्त्राध्वा

'**मन्त्राध्वा**' नामक अध्वा कालाध्वा (शब्दाध्वा) का एक भेद है। 'मन्त्राध्वा' मन्त्रों का अध्वा (मार्ग) है।

मन्त्र की परिभाषा और उसका स्वरूप

'**मन्त्र**' तत्त्वतः पराशक्ति हैं— 'महातन्त्रा महामन्त्रा'[२]

(१) जो मनन करने से त्राण करे उसे ही '**मन्त्र**' कहते हैं—

'मननात् त्राणधर्माऽसौ **मन्त्रोऽयं** परिकीर्तितः॥'[३]

(२) 'मननत्राणधर्माणो **मन्त्राः**॥' (आम्नायोक्त)

(३) 'चित्तं **मन्त्रः**' (३/१) (शिवसूत्र)।

(४) 'संविद्देव्यः **मन्त्रः**।' (क्रमकेलि)।

(५) 'देव्येव **मन्त्रः**।' (भूतिराज)

(६) 'चिदग्निसंहार मरीचिमन्त्रः संविद्विकल्पान्
ग्लपयन्नुदेति॥ (स्तोत्र भट्टारक)

(७) '**मन्त्राश्चिन्मरीचयः**'।

(८) 'नास्ति नादात् परो **मन्त्रः**।'

(९) '**मन्त्रः** पदार्थोदयसंरम्भात्मा परामर्शः।'
(महार्थमञ्जरी : 'परिमल')

---

१. तन्त्रालोक (आह्निक ११)।
२. ललितासहस्र नाम।
३. सङ्केतपद्धति।
४. तन्त्रालोक (७/२-५)।

(१०) 'तद्विमर्शस्वभावा हि सा वाच्या **मन्त्रदेवता**।'
महासंवित् समासन्ना।
(११) 'प्रमातृभूमिगता **मन्त्रा:**' (मतङ्गटीका)।
(१२) '**मान्त्रीं शक्तिं** मनसि महती देवतेत्याद्रियन्ते।' (संविदुल्लास)।
(१३) यस्माद् देवो जगन्नाथ: कृत्वा मन्त्रमयी तनुम्।
मग्नानुद्धरते लोकान् (जयाख्यसंहिता)।
(१४) 'अग्निरूपा **मन्त्रा:**' 'मन्त्रा न मीमांस्या' (रौरवागम)।
(१५) 'सर्वे वर्णात्मका: **मन्त्रा:**' (तन्त्रसद्भाव)।
(१६) '**मन्त्रा:** वर्णात्मका: सर्वे' (सर्ववीर)।
(१७) 'ते **मन्त्रा** वर्णरूपेण सबाह्याभ्यन्तरोदिता:।' (सङ्कर्षण सूत्र)
(१८) 'पशुभावे स्थिता **मन्त्रा** केवलं वर्णरूपिण:॥
सौषुम्णेऽध्वन्युच्चरिता: पतित्वं प्राप्नुवन्ति ते।' (हंसपारमेश्वर)

जितने भी मन्त्र हैं वे सब भगवती के ही स्वरूप हैं—

भगवती चितिशक्ति **मन्त्रों में मातृका** एवं **शब्दों में ज्ञान** है—

'मन्त्राणां **मातृका** देवी शब्दानां **ज्ञानरूपिणी**।'[1]

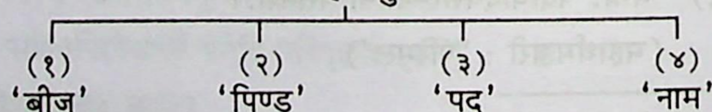
तत्त्वस्वरूप एवं अनन्त तेजस्वरूप परमात्मा का मनन करने से जो साधक का त्राण कर दे वही मन्त्र है।

''मननात् तत्त्वरूपस्य देवस्यामिततेजस:।
त्रायते सर्वभयस्तत्रस्मान्**मन्त्र** इतीरित:॥''
यम भूतादि सर्वेभ्यो भयेभ्योऽपि कुलेश्वरि।
त्रायते सततश्चैव तस्मान्मन्त्र इतीरित:॥[2]

अर्थात् चूँकि यम एवं भूतादिक दुष्टात्माओं से उत्पन्न भयों से मन्त्र साधक का सदा परित्राण करता रहता है इसीलिए इसे मन्त्र कहा जाता है। 'मन्त्र' मनन क्रिया द्वारा त्राण करने का साधन है।

'मनन त्राणधर्माणो मन्त्रा:॥' मन्त्र के दो धर्म हैं—(१) 'मनन' (२) 'त्राण'।

मन्त्र में निहित मुख्य तत्त्व[3]



---

१. अथर्वशीर्ष।
२. कुलार्णव तन्त्र।
३. स्पन्द प्रदीपिका।

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि-

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।

प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनः॥[१]

स्पन्दकारिकाकार की मान्त्री दृष्टि-

स्पन्दकारिकाकार का कथन है कि—

(१) मन्त्र आत्मचैतन्य के साथ तादात्म्य प्राप्त करके ही माहेश्वर शक्तियाँ प्राप्त कर पाते हैं—

'तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।'

(२) आत्मसान्निध्यप्राप्त मन्त्र साधक के समस्त आकांक्षित कार्यों को पूर्ण अधिकार के साथ निष्पादित कर देते हैं—

'प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्।'

'निरावरणचिद्रूप में अधिष्ठान' होने से ही मन्त्रों में बल आता है— ''तत् बलं निरावरणचिद्रूपमधिष्ठाय, मन्त्राः सर्वज्ञत्वादिना बलेन श्लाघायुक्ताः प्रवर्तन्ते अनुग्रहादौ स्वाधिकारे। करणानि यथा देहिनाम्॥''[२]

ये (मन्त्र) साधक के चित्त के साथ चिदाकाश में लीन हो जाते हैं—

'सहाराधक चित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः।'

'तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जनाः।'[३]

मन्त्र और उसका व्यापक स्वरूप

प्रश्न— **(१) क्या 'मन्त्र' वर्णसमुदाय मात्र हैं ?**

नहीं। **'वर्ण'** सुषुम्णा नाड़ी में प्रवाहित प्राण में निनादित अनाहतनाद है अतः वर्ण-समुदय 'मन्त्र' नहीं है।

(२) क्या उच्चार्यमाण 'मन्त्र' यथार्थतः मन्त्र है?

नहीं। **'सर्वज्ञानोत्तर'** में कहा गया है—

'उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान्विदुः।

मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः॥'

(३) **'मन्त्र' की शक्ति** तन्निहित शक्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ है या कोई

---

१. स्पन्द कारिका।

२. स्पन्द सर्वस्व (भट्ट कल्लट)।

३. स्पन्दकारिका।

अन्य ? मन्त्र की प्राणशक्ति अव्यय शक्ति है। मन्त्र में अन्तर्निहित शब्दार्थशक्ति उसकी यथार्थ शक्ति नहीं है प्रत्युत् उसमें अव्यक्तभाव से अवस्थित अचिन्त्य, नित्य एवं पारमेश्वरी शक्ति है—

'मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्कलाः शरदभ्रवत्॥'[१]

(४) क्या 'मन्त्र' मान्त्रिक (जापक) से पृथक हैं?

'मन्त्र' और 'मान्त्रिक' मान्त्रीसाधनारूप सिक्के के दो पक्ष हैं। इन्हें पृथक-पृथक रखने पर मन्त्रत्व सिद्ध नहीं होता—

'पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा नैव सिद्ध्यति॥'[२]

(५) मन्त्र-साधना वाचिक है या चैत्तिक?

'मन्त्र' की शक्ति वर्णों में नहीं प्रत्युत् उनमें निहित चैतन्य तत्त्व में है—क्योंकि ''वर्णेषु नादोऽनुस्यूतः॥'

'आधारोत्थित**नादो** गुण इव परिभाति **वर्णमध्यगतः**।'[३]

अतः जब तक वर्णों में अनुस्यूत नाद का चित्त के साथ ऐकात्म्य प्राप्त नहीं होता तब तक नादाश्रित 'मन्त्र' का न तो उदय होता है और न मन्त्र में शक्ति का स्फुरण होता है अतः कहा गया है—

'सहाराधकचित्तेन तनैते शिवधर्मिणः॥'[४]

(६) 'मन्त्र' का अन्तर से क्या सम्बन्ध है?

शुद्धाध्व

(१) शुद्धाध्व-निवासियों का भोग अत्यन्त विचित्र एवं उत्कृष्ट हुआ करता है। किन्तु जब वे कर्म ही नहीं करते तो भोग कैसा?

(२) शुद्धाध्व-वासियों में उत्कृष्टतर ज्ञान भी होता है। किन्तु जब वहाँ कला ही नहीं है तब ज्ञानोदय कैसे?

(३) शुद्धाध्ववासियों में विषयाभिमुख्य भी होता है, किन्तु जब उनमें विद्या का अभाव है तो भोगेच्छा कैसे?

---

१. श्रीतन्त्रसद्भाव।
२. श्री कण्ठी संहिता।
३. वरिवस्यारहस्यम्।
४. स्पन्द कारिका।

(४) उनमें विषयासक्ति भी होती है। किन्तु जब वहाँ राग है ही नहीं तब विषयासक्ति का उदय कैसे?

(५) वहाँ भोगेयत्तापरिच्छेद है किन्तु जब वहाँ काल ही नहीं है तब इयन्ता-परिच्छेद कैसे?

(६) वहाँ भोक्तृविशेष नियम भी है। जब वहाँ नियति ही नहीं है तब यह कैसे?

उत्तर— सारे पञ्च कञ्चुकों का 'शुद्धाध्व' में अभाव होने पर भी मलपरिपाक एक शक्तिशाली भोग-नियामक तत्त्व है।

यद्यपि यह सत्य है कि वहाँ भोग-वैचित्र्य के कारणभूत कर्म नहीं है तथापि भोग सम्भव है—

'तत्र यद्यपि भोगवैचित्र्यकारणं कर्म नास्ति। तथापि मलपरिपाकवशाद्विचित्रो भोगाः सम्भवति।'

(१) इनमें से जिनका **प्रकृष्ट** मल-परिपाक होता है वे **'सादाख्य तत्त्व'** में उत्कृष्ट भोग प्राप्त करते हैं।

(२) जिनका **प्रकृष्टतर मल-परिपाक** होता है वे **'विद्यातत्त्व' 'ईश्वरतत्त्व'** में प्रकृष्टतर भोग प्राप्त करते हैं।

अतः सिद्ध होता है कि यहाँ भोग का कारण कर्म नहीं है प्रत्युत् कारण है **'ईश्वरेच्छा'**। सारांश यह कि—

''तस्माच्छुद्धाध्वनि मलपरिपाकाधीनः सुखात्मैक भोगः॥''

''किं च कर्मान्वयाभावाच्छुद्धाध्वानो न बन्धकाः॥''

— (पौ. बिन्दु. प. श्लोक-४३)

'अध्वायं भोग्य उद्दिष्टो भोगो रागादिभिः स्थितः।
अत्र तेषामभावेन कथं भोगो महेश्वर।'

जिसके द्वारा अन्तर्जगत का परमेश्वर के साथ अभेद स्थापन है वही साधन नादात्मक साधन 'मन्त्र' है—

'अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः॥'[१]

(७) क्या 'शक्ति' और 'मन्त्र' में अन्तर्सम्बन्ध है?

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि— **''शक्ति मन्त्रवीर्यस्काररूपा।''**

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (२) १।

(८) 'मन्त्र' का चित्त से क्या सम्बन्ध है?

''चित्तं मन्त्रः'' (शिवसूत्र विमर्शिनी २/२) कहकर शिवसूत्रकार ने चित्त और मन्त्र में अभेद सम्बन्ध माना है। आचार्य क्षेमराज तो यह कहते हैं कि—

चूँकि चित्त के द्वारा परम् तत्त्व का विमर्शन किया जाता है इसीलिए इसे **'चित्त'** कहा जाता है— 'चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तम्।'

क्षेमराज की दृष्टि— (१) 'शक्ति' मन्त्रवीर्यस्कारस्वरूपा है अतः 'मन्त्र' पराशक्ति की अचिन्त्य सामर्थ्य है।

(२) 'चित्त ही मन्त्र है।'

चित्त मन्त्र क्यों है? आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

(क) परमतत्त्व का चिन्तन **'मन्त्र का अर्थभावन'** : ''तज्जपस्तदर्थभावनम्'' (यो. सू.) चित्त के द्वारा होता है अतः चित्त ही **'मन्त्र'** है।

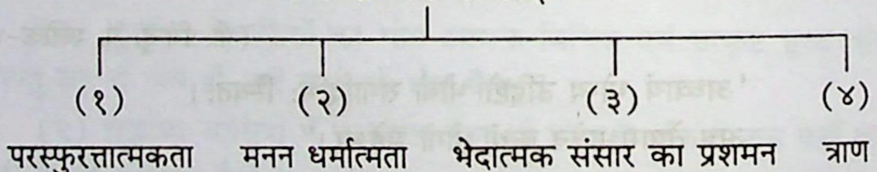
(ख) चूँकि इसी चित्त के द्वारा परमेश्वर का अभेद रूप में चिन्तन किया जाता है अतः इसी अभेदात्मक विमर्शन को 'मन्त्र' कहा जाता है—

'अन्तर अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः॥'

(ग) 'पूर्णस्फुरत्तासतत्त्वप्रासादप्रणवादिविमर्शरूप ही **संवेदन** है और उसीका गुप्त रूप में मनन किया जाता है— 'तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्' उसी का परमेश्वर के साथ तादात्म्यभाव रखकर अभेदात्मक विमर्शन करना होता है। इसीलिए उसे **'मन्त्र'** कहते हैं।

(घ) 'मन्त्र' के विभिन्न धर्म हैं—

मन्त्र के धर्म या लक्षण



(१) ''परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता।'' (२)
'भेदमयसंसार प्रशमनात्मक त्राणधर्मता च अस्य निरुच्यते॥'

—शिवसूत्रविमर्शिनी

(२) मन्त्र के देवता के विमर्शन से सामरस्य प्राप्त आराधक का चित्त ही **'मन्त्र'** है न कि 'विचित्र वर्णसङ्घट्टनमात्र'।[१]

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी।

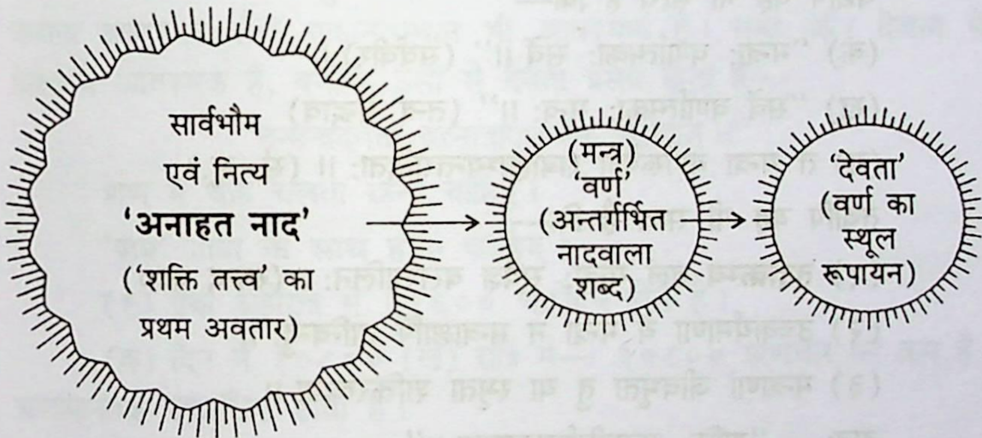
(क) "अतएव च परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता भेदमय संसारप्रशमनात्मक-त्राणधर्मता च अस्य निरुच्यते ॥"[१]

(ख) "मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्तसामरस्यम् आराधकचित्तमेव मन्त्रः न तु विचित्रवर्णसंघट्टनामात्रकम् ॥"[२]

प्र० क्या 'मन्त्र' एवं मन्त्र के देवता में भेद है?

उत्तर— कोई तात्त्विक भेद नहीं है। यदि कोई भेद है तो वह मात्र व्यावहारिक एवं अतात्त्विक है।

प्रत्येक प्राणी के मुख्यतः दो शरीर हैं। एक है स्थूल शरीर और दूसरा है सूक्ष्म शरीर। देवता का सूक्ष्मशरीर ही **'मन्त्र'** है और मन्त्र का स्थूल रूपायन ही देवता का स्थूल स्वरूप है। जब अनाहत नाद स्थूलोन्मुख विकास करता है तब उसकी विकास-यात्रा क्रमशः तीन सोपानों में विकसित होती है—



इसी तथ्य को (अर्थात् मन्त्र और देवता में तादात्म्य या अभिन्नता को) दृष्टि-पथ में रखते हुए ही कहा गया है कि—

(१) 'देव्येव मन्त्रः' (देवी ही मन्त्र है।)

(२) "पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन॥"

(३) "शिवो भूत्वा शिवं यजेत्॥"

(४) "तज्जपस्तदर्थ भावनम्॥" (योगसूत्र)

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी।

२. शिवसूत्रविमर्शिनी (२/१)।

नागोजी भट्ट कहते हैं कि— "तस्य प्रणवस्य सहाचिन्त्यैश्वर्ययुक्तस्य तदर्थस्य परमात्मनः श्रद्धाद्यैर्भावनं ध्यानम् ॥"

भोजवृत्तिकार कहते हैं— "प्रणवस्य जपो यथावदुच्चारणं तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावनं पुन पुनश्चेतसि विनिवेशनमेकाग्रताया उपायः ॥"

जपंश्च प्रणवं नित्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
कोटिसूर्यसमं तेजोध्यायेदात्मनि निर्मलम् ॥

मणिप्रभाकार भी वही बात कहते हैं—

"प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना। तदस्य योगिनः (१) प्रणवं जपतः (२) प्रणवार्थं च भावयतः चेत्तमेकाग्रं सम्पद्यते ॥"

प्र०— क्या मुखोच्चारित सारे मन्त्र यथार्थ (तात्त्विक अर्थ में) मन्त्र हैं?

नहीं। वर्णों से संघटित मंत्र यथार्थ नहीं हैं।

यद्यपि यह भी सत्य है कि—

(क) "मन्त्राः वर्णात्मकाः सर्वे ॥" (सर्ववीर)।

(ख) "सर्वे वर्णात्मकाः मन्त्रः ॥" (तन्त्र सद्भाव)

(ग) ते मन्त्रा वर्णरूपेण सबाह्याभ्यन्तरोदिताः ॥ (सं. सू.)

तथापि यह भी सत्य है कि—

(१) **तदाक्रम्य** बलं मन्त्राः सर्वज्ञ बलशालिनः । (स्पन्द का०)

(२) उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान्विन्दुः ॥

(३) मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया ॥

अतः— "शक्तिः मन्त्रवीर्यस्काररूपा ॥"

इसी दृष्टि से कहा गया है कि— अव्ययशक्ति एवं अनाहतनाद से शून्य तथा स्थूलवर्णों से संघटित मन्त्र पशुभाव में अवस्थित हैं—

"**पशुभावे** स्थिता मन्त्रा केवलं वर्णरूपिणः ॥'

फिर ये मन्त्र **पतिभूमिका** पर कब आरूढ़ होते हैं? ये यथार्थ मन्त्र कब बनते हैं?

उत्तर— सौषुम्ण पथ में उच्चरित होने पर ही ये 'यथार्थ मन्त्र' बन जाते हैं— "सौषुम्णेऽध्वन्युच्चरिताः पतित्वं प्राप्नुवन्ति ते ॥" (हंस पारमेश्वर)

अभिनवगुप्त की मन्त्रविषयक दृष्टि-

अभिनव गुप्त की मन्त्रविषयक दृष्टि इस प्रकार है—

"बीजपिण्डादिकं सर्वं संविदः स्पन्दनात्मताम्।
विदधत परसंवित्तावुपाय इति वर्णितम्।
एकानुसन्धानबलाज्जाते मन्त्रोदयेऽनिशम्।
तन्मन्त्रदेवता यत्नात् तादात्म्येन प्रसीदति ॥"

अर्थात् यह समस्त बीज पिण्ड रूप मन्त्रवर्ग प्राण में ही स्फुरित होता है। यह संविद् की स्पन्दनात्मकता, उसके शाक्त स्वरूप एवं आवेश का अभिव्यञ्जक है। यह शाक्त स्तर से ऊपर उठकर शाम्भव स्थिति रूप परासंवित् की प्राप्ति का कारण भी है। "जपः प्राणसमः कार्यः ॥" अर्थात् जप प्राणक्रिया है। **मन्त्रों का उदय प्राण के भीतर होता है। प्राण में ही वर्णोदय होता है।** रहट पानी खींचने का एक यन्त्र है। वह लगातार पानी भरता, ऊपर चढ़ाता एवं खेतों को सींचता जाता है। **मन्त्रजप की क्रिया भी रहट** के समान की जाननी चाहिये— "यथारघट्टचक्राग्र घटीयन्त्रौघवाहनम् ॥"[१]

मन्त्रजप का चक्र घुमाना ही मन्त्रजप की पद्धति है। माला में १०८ चक्र चलाना आवश्यक है।[२] एकानुसन्धान भी आवश्यक है। **मन्त्र और देवता में तादात्म्य** आवश्यक है; क्योंकि उसी से देवता प्रसन्न होता है—

"तन्मन्त्रदेवता यत्नात्तादात्म्येन प्रसीदति ॥"

प्राण में चक्र चलता रहना चाहिए।

'जप' प्राण के साथ होना चाहिए।

(१) एक अहोरात्र में २१६०० चक्रोदय होते हैं।

(क) दिन में १०८०० (ख) रात्रि में— १०८०० प्राणचार का क्रम है। प्राणापानवाह स्वारसिक होता है।

(१) **प्राणजित् साधक** यदि ३ प्राणाचार की अवधि का एक प्राण चार बना ले तो **२१६०० के स्थान** पर **७२०० प्राणचार** रह जायेगा और तादात्म्य होने लगेगा।

(२) ४ प्राणाचारों को एक करने पर— ५४०० प्राणाचार रह जायेगा और तादात्म्यकाल बढ़ जायेगा।

(३) इसी क्रम से **५ में**– ४३२०; **६ में**– ३६००; **७ में**– ३०८६; **८ में**– २७००; **९ में**– २४००; **१० में**– २१६; **११ में**– १९६४; **१२**

१. तन्त्रालोक (७/३)।
२. तन्त्रालोक (आह्निक ७)।

में– १८००; **१३ में–** १६६२; **१४ में–** १५४३; **१५ में–** १४४०; **१६ में–** १३५०; **१७ में–** १२७१; **१८ में–** १२००; **२४ में–** ९००; **२७ में–** ८००; **३२ में–** ६७५; **४८ में–** ४५० प्राणचार उदित होंगे।

५४ में– केवल ४००; **६४ में–** ३३७ १/३ जिसमें ३२ शेष रहते हैं। **८१ में–** २६६; **९६ में–** २५५; १०८ में २०० प्राणचार के सिद्ध हो जाते हैं।[१]

प्राणजित् साधक अपने यत्न के बल पर एक अहोरात्र में मात्र १०८ बार **प्राणचार** कर ले तो २०० चक्रोदय में अहोरात्र सिमट जाएगा और तादात्म्य का समय अत्यधिक बढ़ जायेगा।

१०८ प्राणचार का ६ बार दूना करने पर ६९१२; दुगुना करने पर १३८२४ हो जाता है और १३८२४ चक्रोदय होते हैं। अहोरात्र के प्राणचारीय १६ भाग करने पर २१६००×१६=३४५६०० और इसकी अर्धकलना करने पर ३२ गुना (६ लाख ९१ हजार २०० प्राणचार) की आंशिकता परिलक्षित होती है।

प्राणग्रास कर लेने पर 'कालसङ्कर्षिणी स्थिति' आ जाती है और संविदैक्य भाव दृढ़ हो जाता है।

अभिनवगुप्त पादाचार्य ने 'योगिनी कौल' 'सिद्धामत' 'विंशतिकत्रिक' 'स्वच्छन्द तन्त्र' एवं 'मालिनी तन्त्र' आदि का प्रामाण्य देकर **'मन्त्रोदय'** एवं **'चक्रोदय'** की व्याख्या की है—

"मन्त्रचक्रोदययज्ञस्तु विद्याचक्रोदयार्थवित्।
क्षिप्रं सिद्धयेदिति प्रोक्तं श्रीमद्विंशतिकेत्रिके॥"[२]

इससे वीर्य अत्यधिक शक्तिशाली बन जाते हैं।

मन्त्र वीर्य

'संवित्स्तोत्र' में इसी मन्त्र शक्ति के विषय में इस प्रकार कहा गया है—
"आदिमान्तिमगृहीतवर्णराश्यात्मिकाहमिति या स्वतः प्रथा। मन्त्रवीर्यम्॥"

'त्रिकहृदय' में कहा गया है कि—

"चक्रशूलाम्बुजादीनां प्राणिनां तरितां नृणाम्।
...यो निवेशस्तु वर्णानां तद्वीर्यं तत्र मन्त्रगम्॥"

---

१. श्री योगिनी कौल। तन्त्रालोक (७/१८-१९-२०)।

२. तन्त्रालोक (७/५६)।

'त्रिकसार' में कहा गया है कि—

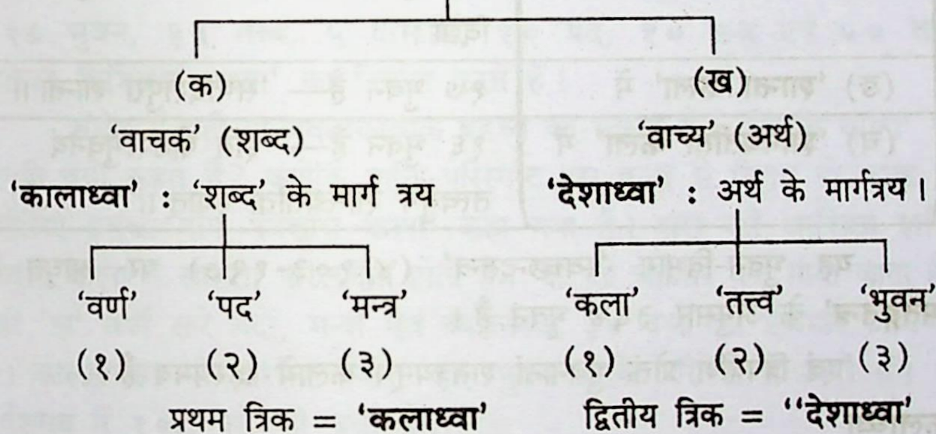
'अर्थस्य प्रतिपत्तिर्या ग्राह्यग्राहकरूपिणी ।
सा एव मन्त्रशक्तिस्तु वितता मन्त्रसन्ततौ ॥'

(अ) देशाध्वा)

देशाध्वा के अङ्ग हैं— (१) **'कला'** (२) **'तत्त्व'** एवं (३) **'भुवन'**। **कलायें** पाँच हैं।

''तत्त्व''– ३६ हैं। **'भुवन'– 'कालाग्निरुद्र'** से लेकर अनाश्रित पर्यन्त २२४ 'भुवन' हैं। ये कलापञ्चक द्वारा क्रोडीकृत हैं। भगवती तत्त्वस्वरूपा हैं। ३६ तत्त्व उसी के रूप हैं।

सारांश– अत: कहा गया है कि— 'तत्त्वासना तत्त्वमयी' (ल. स.)।



तन्त्रालोककार अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि—

'श्रीपूर्वशासने पुनरष्टादशाधिकं शतं कथितम् ॥'[१]

अर्थात् श्रीपूर्वशास्त्र के अनुसार— ''शान्त्यतीता', 'शान्ति, 'विद्या', 'प्रतिष्ठा' एवं 'निवृत्ति' नामक पाँच कलाओं के अन्तर्गत शिव तत्त्व से लेकर पृथ्वी तक ३६ तत्त्वों एवं सदाशिव से लेकर अनन्त तक ११८ भुवनों का समाहार हो जाता है। इस मत के अनुसार ''शान्त्यतीता' कला **भुवनरहित** है। ''शान्त्यतीतात्वभुवनैव ॥''[२]

---

१. तन्त्रालोक (आ. ८/४३६)।
२. तन्त्रालोक (आ. ८)।

मतान्तर के अनुसार २२४ भुवन हैं। 'निवृत्तिकला' के अन्तर्गत १०८ भुवन हैं। सारांश यह कि—

"चतुःषष्ट्यधिकं तेषु विचित्रा भुवनेश्वराः ॥"

'कला'	'भुवन'
(क) **'शान्त्यतीता कला'** में	(१) एक भी भुवन नहीं है। (२) २२४ भुवन हैं।
(ख) **'निवृत्ति कला'** में	१०८ भुवन हैं। 'निवृत्तिस्तु साष्टशत-भुवना'।
(ग) **'प्रतिष्ठा कला'** में	५६ भुवन हैं (षट्पञ्चाशद् भुवना तेन प्रतिष्ठेति कला कथिता)।
(घ) **'विद्या कला'** में	२७ भुवन हैं "इति सप्तविंशतिपुरा-विद्या ॥"
(ङ) **'शान्ता कला'** में	१७ भुवन हैं— 'सप्तदशपुरा शान्ता ॥'
(च) **'शान्त्यतीता कला'** में	१६ भुवन हैं— 'इति षोडशभुवनेयं तत्त्वयुगं शान्त्यतीता स्यात् ॥'[१]

यह भुवन-विभाग 'स्वच्छन्दतन्त्र' (४/१०३-१९७) पर आधृत है। **'मतङ्गतन्त्र'** के अनुसार ३६४ भुवन हैं।

'एवं त्रिपर्वणि प्रोक्तं भुवनानां शतत्रयम्। कलायें रहस्यमय हैं।

कलाध्वा

कलायें संख्या में पाँच हैं। इनके नाम हैं— 'निवृत्ति', 'प्रतिष्ठा', 'विद्या', 'शान्ता' एवं 'शान्त्यतीता'।

(१) **'निवृत्ति कला'**– इसके अन्तर्गत क्षितिरूप वाच्य के लिए 'क्ष' रूप **'वर्ण', 'पद'** एवं **'मन्त्र'** वाचक हैं। **'कालाग्नि'** से लेकर **'वीरभद्र'** पर्यन्त **षोडश भुवन** हैं।

(२) **'प्रतिष्ठा कला'**– प्रतिष्ठा या आप्यायिनी कला में जल से लेकर अव्यक्त पर्यन्त तत्त्वों के लिए **'ह'** से लेकर **'ट'** पर्यन्त २३ वर्ण वाचक हैं और

---

१. तन्त्रालोक (४०७-४२७ : आह्निक ८) निवर्तन्ते यतस्तत्त्ववर्गाः सा **निवृत्तिर्नाम 'कला'**। कारणत्वे पूरणाप्यायकारित्वात् **प्रतिष्ठानाम 'कला'** उच्यते। वैद्यविलये संविदाधिक्यात् **विद्या नाम कला**। कञ्चुकतरङ्गोपशमात्।

५६ भुवन हैं। ५ पद एवं ५ ही मन्त्र हैं। दो, चार अक्षरों वाले और तीन, पाँच अक्षरों वाले मन्त्र हैं।

(३) **'विद्या कला'**– विद्या या बोधिनी में पुरुष से माया पर्यन्त तत्त्वों के लिए 'अ' से 'घ' तक सात वर्ण वाचक हैं। पञ्चाक्षर एवं द्व्यक्षर दो पद एवं दो मन्त्र हैं। इसमें २८ भुवन विद्यमान हैं।

(४) **'शान्ता कला'**– शान्ता या उत्पूयिनी में 'शुद्धविद्या', ईश्वर और सदाशिव के लिए ग, ख एवं क ये ३ वर्ण हैं। ३ अक्षरों वाला एक पद और एक ही मन्त्र है। इसके १८ भुवन हैं।

(५) **'शान्त्यतीता कला'**– इस कला में ३६ वें शिव नामक तत्त्व के लिए विसर्ग से लेकर 'अ' पर्यन्त १६ स्वर्ण तथा स्वरषोडशात्मक एक पद और एक ही 'मन्त्र' है।

यहाँ **शक्तिसमेत शिव** समझना चाहिए। इसमें **भुवन नहीं** हैं। इस प्रकार **११८ भुवन, ३६ तत्त्व, ५ कलायें, १० पद, १० मन्त्र** एवं **५० वर्ण** मिलकर **'षड्विध अध्वा'** का निर्माण करते हैं।

संक्षेप में यही वाच्यवाचकात्मक षडध्व का स्वरूप है। **'निवृत्ति कला'** को निवृत्ति क्यों कहते हैं? क्योंकि शक्ति-परिस्पन्द इस कला से निवृत्त हो जाता है; इसीलिए इसका नाम **'निवृत्ति कला'** कहा गया है। **धरा की धारिका शक्ति निवृत्ति कला** में स्पष्टत: परिलक्षित होती है। 'क्ष' तो चक्रेश्वर वर्ण माना जाता है। यही **'क्ष' वर्ण** सारे पदों, मन्त्रों एवं व्यञ्जनरूप ३४ वर्णों का एकमात्र अधिपति है। कालाग्निरुद्र से वीरभद्र पर्यन्त १६ भुवन इसके परिवेश में आते हैं। श्री पूर्वशास्त्र में १०८ पुरों की चर्चा है।

"श्री पूर्वशासने पुनरष्टादशाधिकं शतं कथितम्[१]।
तदिह प्रधानमधिकं संक्षेपेणोच्यते शोध्यम्॥" (८/४/३६)

'सकल'— माया तत्त्व में स्थित हैं।

सादाख्य तत्त्व में– मन्त्रमहेश्वर हैं। **'ईश्वर तत्त्व'** में **'मन्त्र'** हैं (अनन्त आदि ८ विद्येश्वर मन्त्रों से भिन्न हैं।

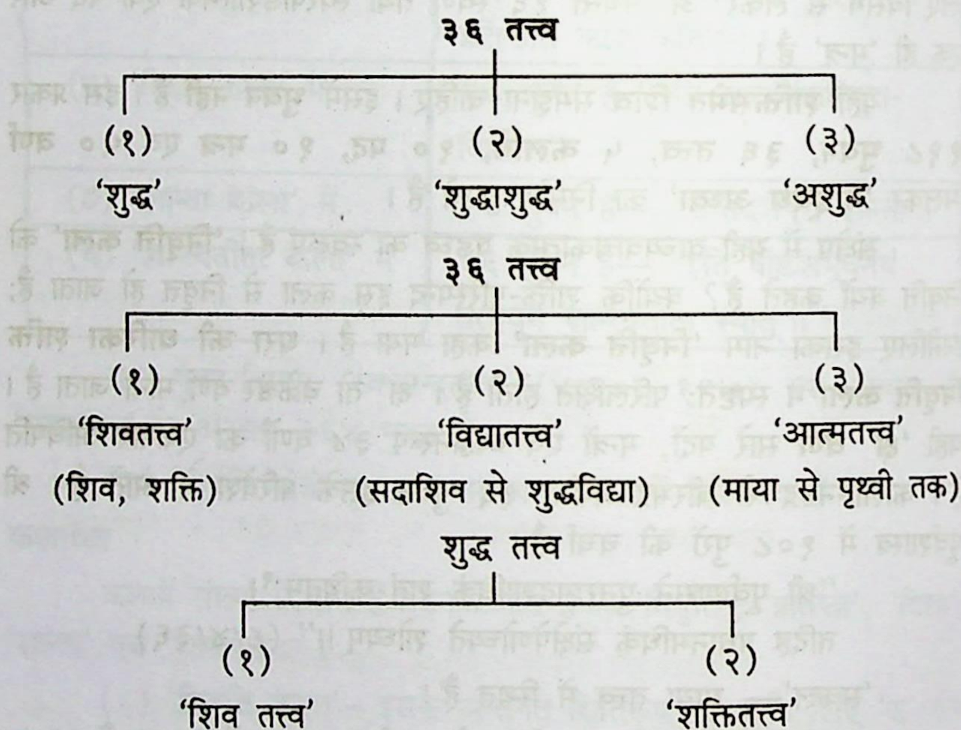
'विज्ञानाकल'– शुद्धविद्या से नीचे किन्तु माया से ऊपर है।

क्रम	कला	वर्ण	तत्त्व	मन्त्र	पद	भुवन
१.	निवृत्ति	०१	०१	०१	०१	१६

१. विवेक : ११/५१ (जयरथ)

२.	प्रतिष्ठा	२३	२३	०५	०५	५६
३.	विद्या	०७	०७	०१	०१	२८
४.	शान्ता	०३	०३	०१	०१	१८
५.	शान्त्यतीता	१६	०२	०२	०२	—
योग= ०५		५०	३६	१०	१०	११८

'कला' कहते हैं शक्ति के सामान्य एवं परात्पर रूप को। ये ५ हैं—शान्त्यातीता, शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा एवं निवृत्तिकला। ये तत्त्वसमुदाय का सम्पिण्डित रूप हैं।



५ कला / तत्त्व ३६ / भवन २२४।

"षडध्वविज्ञान" शैव एवं शाक्त दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों में स्वीकृत है।

८ **'विद्येश्वर'** (परिपक्वमल वाले विज्ञानाकल)

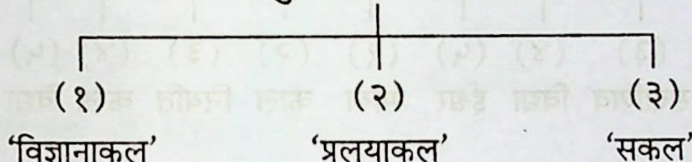
संख्या	नाम	रंग
१.	अनन्तेश	शोण
२.	सूक्ष्म	श्वेत

शिव-शक्ति तत्त्व
↓
'मन्त्रेश्वर'
↓
'विद्येश्वर'

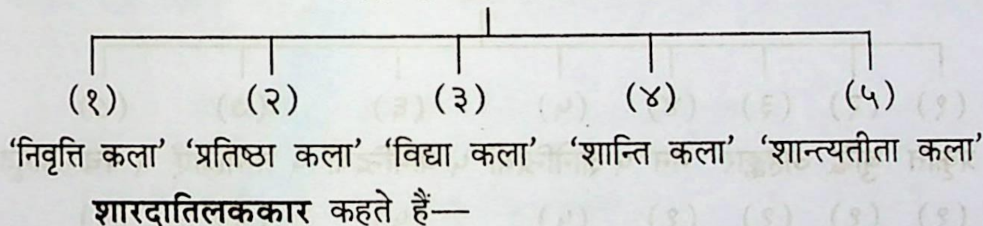
३.	शिवोत्तम	नील
४.	एकनेत्र	पीत
५.	एकरुद्र	कृष्ण
६.	त्रिमूर्ति	लोहित
७.	श्रीकण्ठ	रक्त
८.	शिखण्डी	श्याम

'विद्येश्वर' (परिपक्व मल वाले (विज्ञानाकल।)
'मन्त्रेश्वरों को प्राप्त हैं— शुद्ध तनु, शुद्धकरण शुद्ध भुवन, शुद्धभोग **'मन्त्र'**= विज्ञानाकल से श्रेष्ठतर है— 'मन्त्र'।

पशुओं की श्रेणियाँ



'कलाध्वा' के पाँच प्रकार



शारदातिलककार कहते हैं—

'निवृत्याद्याः कलाः पञ्च **कलाध्वेति** प्रकीर्तितः ॥[१]

(२) 'तत्त्वाध्वा'– 'अर्थाध्वा' का एक भेद तत्त्वाध्वा भी है। **लक्ष्मण-देशिकेन्द्र** ने कहा है कि जहाँ तक 'तत्त्वाध्वा' की बात है उसके विषय में शास्त्र-दृष्टि भेद के कारण शास्त्रकारों ने उसके अनेक भेदों की बातें की हैं।

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं—

'**तत्त्वाधा** बहुधा भिन्नः शिवाद्यागमभेदतः ॥'[२]

(१) तत्त्व संख्या पर विचार करें—

(क) **त्रिक दर्शन**– ३६ तत्त्व।

(ख) **वैष्णवागम**– ३२ तत्त्व (शैव-शाक्त आगमों की दृष्टि)।

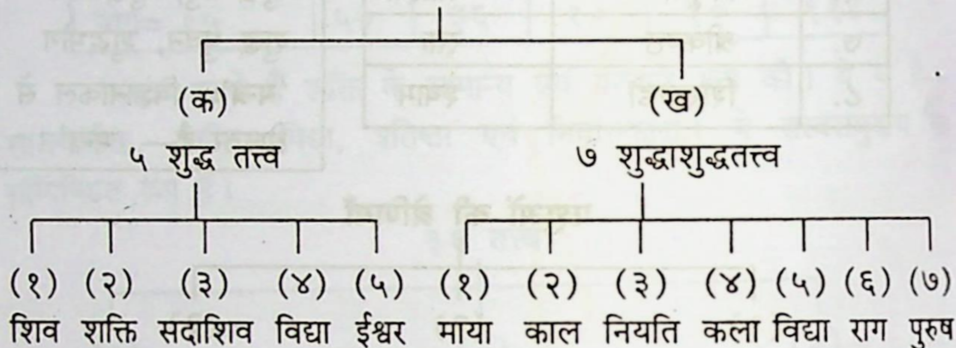
---

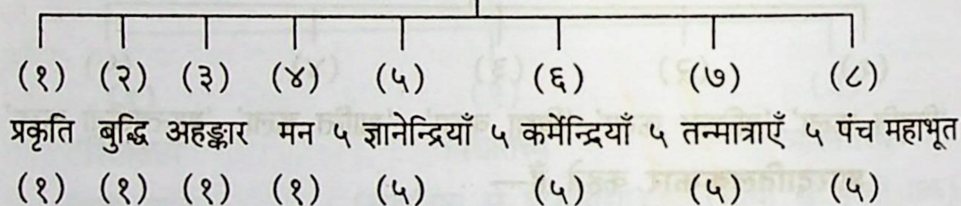
१. लक्ष्मणदेशिक : शा. ति. (५/७९)।

२. शारदातिलकम् (पटल ५)।

(ग) **सांख्य दर्शन–** २४ तत्त्व (घ) **वैशेषिक दर्शन-** ७ तत्त्व।

(ङ) **न्याय दर्शन–** १६ तत्त्व (च) **त्रिपुरामत-**०७ तत्त्व, आदि शैव-शाक्त, आदि आगमिक दृष्टियों में स्थापित तत्त्वभेद के कारण 'तत्त्वाध्वा' एक-रूपात्मक नहीं है।





शव-शाक्त-आगम के अनुसार जो ३६ तत्त्व हैं उनका स्वरूप ऊपर दिया जा चुका है।

"तत्त्वानि शैवान्युच्यन्ते शिवः शक्तिः सदाशिवः।
ईश्वरो विद्यया सार्द्धं पञ्च शुद्धान्यमूनि हि।
माया कालश्च नियतिः कला विद्या पुनः स्मृता।
रागः पुरुष एतानि शुद्धाशुद्धानि सप्त च।
प्रकृतिर्बुध्यहङ्कारो मनो ज्ञानेन्द्रियाण्यथ।
कर्मेन्द्रियाणि तन्मात्राः पञ्चभूतानि देशिकाः।
एतान्याहुरशुद्धानि चतुर्विंशतिरागमे।
शैवानामिति तत्त्वानां विभागोऽत्र प्रदर्शितः।"

वैष्णवागम का तत्त्वाध्वा

जीवप्राणधियश्चित्तं ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यथ।

तन्मात्राः पञ्चभूतानि हृत्पद्मं तेजसां त्रयम्।
वासुदेवादयश्चेति तत्त्वान्येतानि शार्ङ्गिणः।

मैत्र तत्त्व

पञ्चभूतानि तन्मात्रा इन्द्रियाणि मनस्तथा।
गर्वो बुद्धिः प्रधानञ्च मैत्रायीति विदुर्बुधाः।

प्रकृतितत्त्व

निवृत्याद्याः कलाः पञ्च बिन्दुः कला पुनः।
नादः शक्तिः सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतेर्विदुः॥

त्रिपदतत्त्व

"आत्मविद्या शिवः पश्चाच्छिवो विद्या स्वयं पुनः।
सर्वतत्त्वञ्च तत्त्वानि प्रोक्तानि त्रिपदात्मनः॥"
"तत्त्वाध्वा" कथितो ह्येष तत्तदागमवेदिभिः॥[१]

'शुद्धाध्व' को शुद्ध क्यों कहते हैं?

राघवभट्ट कहते हैं कि चूँकि तत्त्वों में 'शुद्धाध्व' नामक वर्ण **'आणव'**, **'मायीय'** एवं **'कार्म'** नामक मलत्रय से रहित होता है अतः उसे 'शुद्धाध्व' कहते हैं—

'आणवकार्ममायीयमलत्रयरहितत्वात् शुद्धतत्त्वम्।'[२]

(१) **'आणव मल' :** तत्राणवो सदाशिवस्य स्वस्यानवमर्शः॥
(२) **कार्मो** नाम पुण्यपापवानहमिति प्रतीतिः॥
(३) **मायीयो** नाम अहङ्कारादावात्मबुद्धि।

इसीलिए **'वायवीयसंहिता'** में कहा गया है—

'शिवः शक्तिस्ततो नादस्तस्माद् बिन्दुः सदाशिवः।
तस्मान्महेश्वरो जातः शुद्धा विद्या महेश्वरात्॥'

'कारणत्वेन मलत्रयराहित्याच्छुद्धत्वम् कार्यरूपत्वेन तद्युक्तत्वादशुद्धत्वम्।'

३६ तत्त्व 'शुद्ध' 'अशुद्ध' एवं 'शुद्धाशुद्ध' के रूप में तीन वर्गों में विभाजित हैं।

'वायवीय संहिता' में सृष्टि के मूलभूत तत्त्वों के उदय-क्रम को निरूपित करते हुए 'वर्ण' एवं 'मातृका' को, वाणी की ईश्वरी 'वागीशी' का स्वस्वरूप कहते हुए, अन्य तत्त्वों के भी उन्मेष को इस प्रकार कहा गया है—

---

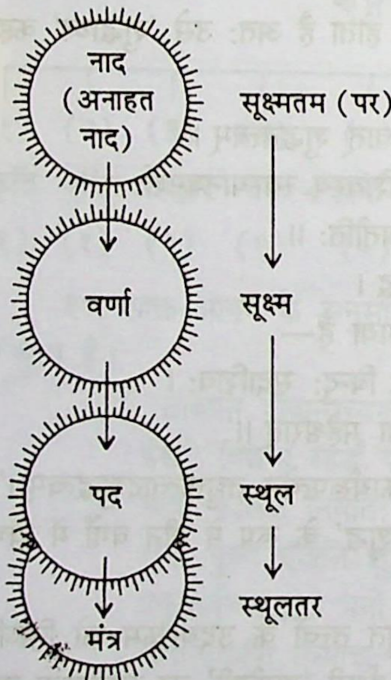
१. शारदातिलकम् (पटल ५)।
२. पदार्थादर्श (पटल ५)।

"सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागीशाख्यस्य शूलिनः।
या सा **वर्ण**स्वरूपेण **मातृकेति** विजृम्भते।
अथानन्तसमायोगान्मायां कालमवासृजत्।
नियतिञ्च कलां विद्यां कलातो रागपूरुषौ॥"[१]

'अध्व'-निरुक्ति– अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—
'मूर्तिक्रियासाधनं यत् स एवा**ध्वा** महेशितुः।
अध्वा क्रमेण यातव्ये पदे सम्प्राप्तिकारणम्॥'[२]

इनमें 'मन्त्राध्वा' वर्ण एवं पद पर आश्रित हैं—
'**पदानि** मन्त्रारब्धानि **मन्त्रा** वर्णैकविग्रहाः।
वर्णाः स्वनिष्ठा इत्येषां स्थूलसूक्ष्मपरात्मता॥'

(**पदों** से '**मन्त्र**' बनते हैं। **वर्णों** से '**पद**' बनते हैं। नादों से '**वर्ण**' बनते हैं। '**वर्ण**' नाद-दृष्टि से स्वनिष्ठ हैं। इस प्रकार (१) 'स्थूल' (२) 'सूक्ष्म' एवं (३) 'पर' के भेद से भेदत्रय है।) पद-मन्त्र-वर्ण के रूप में स्थूलता-सूक्ष्मता एवं परात्परता स्थापित है।



'**पदानि** मन्त्रारब्धानि **मन्त्रा** वर्णैकविग्रहाः। **वर्णाः** स्वनिष्ठा इत्येषां **स्थूलसूक्ष्मपरात्मता।**

'पदमन्त्रवर्णानां स्थूलसूक्ष्मपरत्वम् भुवन-तत्त्व-कला=स्थूल, सूक्ष्म पर॥

"त्रिकद्वयेऽपि प्रत्येकं स्थूलं सूक्ष्मं परं वपुः॥" यतोऽस्ति तेन सर्वोऽयमध्वा षड्-विध उच्यते॥ (तन्त्रालोक)

'भुवनव्यापिता तत्त्वेष्वनन्ता दिशि वान्तके॥' (अनन्तभट्टारक से शिवपर्यन्त व्याप्ति॥)

'एको नादात्मको **वर्णः** सर्ववर्णाविभाग-वान्॥"[३]

---

१. राघवभट्ट : 'पदार्थादर्श' (पटल ५)।
२. तन्त्रालोक ६/२९-३०)
३. तन्त्रालोक (६/२१७-२१८)। 'मन्त्र' अपने तात्त्विक धरातल पर 'अनाहत नाद' है। अतः ध्वनि या वर्ण का परात्पर श्रेष्ठ स्वरूप है।

*** (३) भुवनाध्वा ***

'ईरितो **भुवनाध्वेति** भुवनानि मनीषिभिः ॥'

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र— शारदातिलकम् **राघवभट्ट** 'भुवन' को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं— "**भुवनानि** आकाश-वायु-तैजस-साप्य-पार्थिवभुवनानि पञ्च ॥" **वायवीय संहिता** में कहा गया है—

"आधाराद्युन्मन्यन्तञ्च **भुवनाध्वा** प्रकीर्तितः ॥"

भुवनाध्वा

३६ 'तत्त्व'– शुद्ध / शुद्धाशुद्ध / अशुद्ध

२२४ 'भुवन'– शुद्ध / शुद्धाशुद्ध / अशुद्ध

कला	तत्त्व	भुवन संख्या	भुवनों के नाम
(१) 'शान्त्यातीता कला'	**शुद्ध तत्त्व**		अनाश्रित/अनाथ/अनन्त/व्योमरूपिणी/व्यापिनी ।
	(१) 'शिव तत्त्व'	१०	ऊर्ध्वगामिनी, मोचिका रोचिका, दीपिका, इन्धिका ।[१]
	(२) 'शक्ति तत्त्व'	०५	शान्त्यतीता/शान्ति/विद्या/प्रतिष्ठा/निवृत्ति/
		१५	(ये 'बैन्दवपुर' कहे जाते हैं ।)
(२) शान्ति कला	(३) 'सदाशिव तत्त्व'	१	सदाशिव भुवन ।
	(४) 'ईश्वर तत्त्व'	८	शिखण्डी/श्रीकण्ठ/त्रिमूर्ति/एकनेत्र/एकरुद्र/शिवोत्तम/सूक्ष्म/अनन्त ।
	(५) 'शुद्धविद्या तत्त्व'	९	मनोन्मनी/सर्वभूतदमनी/बलप्रमथनी/बल विकरणी/कल विकरणी/काली/रौद्री/ज्येष्ठा/वामा ।
		१८	

१. इनमें से ५ शाक्त भुवन हैं और शेष नादोर्ध्वभुवन हैं ।

*** शुद्धाशुद्ध तत्त्व ***

(३) विद्या कला	(६) माया	८	अंगुष्ठमात्र/ईशान/एकेक्षण/एकपिङ्गल/उद्भव/भव/वामदेव/महाद्युति।
	(७) काल	२	(१) शिखेश (२) एकवीर।
	(८) कला	२	(१) पञ्चान्तक (२) शूर।
	(९) विद्या	२	(१) पिङ्ग (२) ज्योति।
	(१०) नियति	२	(१) संवर्त (२) क्रोध।
	(११) राग	५	एकशिव/अनन्त/अज/उमापति/प्रचण्ड।
	(१२) पुरुष	६	एकवीर/ईशान/भव/ईश/उग्र/भीम/वाम।
		२७	

*** अशुद्ध तत्त्व ***

कला	तत्त्व	भुवन संख्या	भुवनों के नाम
(४) प्रतिष्ठा कला	१३ प्रकृति	८	श्रीकण्ठ/औम/कौमार/वैष्णव/ब्रह्म/भैरव/कृत/अकृत
	१४ बुद्धि	८	ब्राह्म/प्रजेश/सौम्य/ऐन्द्र/गन्धर्व/यक्ष/राक्षस/पिशाच।
	१५ अहंकार	१	स्थलेश्वर— १ भुवन मात्र।
	१६ मन १७ श्रोत्र १८ त्वक् १९ चक्षु २० जिह्वा २१ नासिका	१	स्थूलेश्वर— १ मात्र भुवन है।
	२२ वाक् २३ पाणि		

	२४ पाद २५ पायु २६ उपस्थ	१	शङ्कुकर्ण— १ मात्र भुवन है।
'प्रतिष्ठा कला'	२७ शब्द २८ स्पर्श २९ रूप ३० रस ३१ गन्ध	५	कालञ्जर/मण्डलेश्वर/माकोट/द्राविड/छगलाण्ड। ५ भुवन हैं।
	३२ आकाश	८	स्थाणु/स्वर्णाक्ष/भद्रकर्ण/गोकर्ण/महालय/अविमुक्त/रुद्रकोटि/वस्त्रपाद।
	३३ वायु	८	भीमेश्वर/महेन्द्र/अट्टहास/विमलेश/नल/नाकल/कुरुक्षेत्र/गया
	३४ तेजस्	८	भैरव/केदार/महाकाल/मध्यमेश/आम्रातक/जल्पेश/श्रीशैल/हरिश्चन्द्र।
	३५ जल	८	लकुलीश/पारभूति/डिण्डी/मुण्डी/विधि/पुष्कर/नैमिष/प्रभास/अमरेश।
		५६	
(५) निवृत्ति कला	३६ पृथ्वी (महायोग)	१०८ २२४	भद्रकाली से कालाग्नि पर्यन्त।

लोक	अवस्थान
स्वर्लोक	भुवर्लोक एवं ध्रुव के मध्य स्वर्लोक स्थित है।
नक्षत्रमण्डल	चन्द्रमा से १ लाख योजन की दूरी पर नं. मं. है।
भौममण्डल	२ लाख योजन की दूरी पर स्थित है भौम मण्डल
बुध	भौममण्डल से ऊपर 'बुध' स्थित है।
	बुध से शनिश्चर तक **'सौरमण्डल'** है।

सप्तर्षि मण्डल ध्रुवमण्डल	सौरमण्डल से १ लाख योजन ऊपर है।[१] सप्तर्षि मण्डल में ऊपर **'ध्रुवमण्डल'** है। (ध्रुव=यह अचल है। यह समस्त गतिचक्रों का नियामक है।[२]
भुवर्लोक	भू लोक से सूर्यलोक का परिवेश
स्वर्लोक का आरम्भ	भुवर्लोक का अन्त अर्थात् सूर्यमण्डल है। भुवर्लोक के अन्त के स्थान से ध्रुव तक 'स्वर्लोक' है।
ध्रुव	भूमि से १५ लाख योजन दूर ध्रुव है। (वैज्ञानिकों का मत— भूमि से सूर्य ९ करोड़ मील दूर है। सूर्य से ऊपर सोम, नक्षत्रमण्डल, सप्तर्षि एवं ध्रुव की दूरी है। ध्रुव की दूरी १५ लाख है। (१० करोड़ १५ लाख योजन) है। मीलों में ८१ करोड़ २० लाख मील है। **भूमि से ध्रुव** तक १५ लाख योजन का अन्तराल है।[३]
अनिलमण्डल	स्वर्लोक के वातावरण में ७ अनिल मण्डल हैं। इनके नाम हैं— (१) आमेध (२) भास्कर (३) सोम (४) नक्षत्र (५) ग्रह (६) सप्तर्षि (७) ध्रुवान्त। (स्वच्छन्द तन्त्र में १०/५१२ में) इन ७ मरुत स्कन्धों के नाम उल्लिखित हैं।)

७ अनिल स्कन्ध

(१) पृथ्वी का प्रथम स्कन्ध— **'आवह स्कन्ध'**।

---

१. स्वच्छन्द तन्त्र (१०/४६८-५१०)।

२. तन्त्रालोक, आ. ८।

३. तन्त्रालोक, आ. ८।

(२) मेघ एवं सूर्य के अन्तराल में रहने वाला **'प्रवह स्कन्ध'**।

(३) सूर्य से ऊपर सोम पर्यन्त 'उद्वह स्कन्ध'।

(४) सोम से ऊपर नक्षत्र मण्डल तक— 'संवह स्कन्ध'।

(५) नक्षत्रों से ऊपर ग्रहमण्डल तक— **'विवह स्कन्ध'**।

(६) ग्रहों से सप्तर्षि मण्डल तक विवाह के बाद 'परावह'।

(७) सप्तर्षियों से ध्रुव तक 'परिवह स्कन्ध'।

सप्तर्षि– अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, ७ सप्तर्षिमण्डल के ऋषि हैं।[१]

लोक	अवस्थान
'महर्लोक'	(भूमि से ध्रुव तक=१५ लाख योजन का अन्तराल है। स्वर्लोक से २ करोड़ २५ लाख योजन दूरी पर मह० है। 'महर्लोक' में मार्कण्डेय आदि सिद्ध मुनि रहते हैं। देवलोकों के अधिकार से वंचित (यथा संक्रन्दन आदि) देवता भी यही रहते हैं।
'जनलोक'	महर्लोक से ८ करोड़ योजन दूर **'जनलोक'** है। इसमें कपिल, एकपाद, जह्न आसुरि, भौतिक बाड्वलि और साध्य नामक पवित्रात्मा भी यहीं रहते हैं।
'तपोलोक' **सत्यलोक**	जनलोक से १२ करोड़ योजन दूर **'तपोलोक'** है। यहीं जगत्स्रष्टा ब्रह्मा रहकर विश्व के सर्जन-कार्य में संलग्न रहते हैं। इसी लोक में चारों वेद स्थित हैं। यहीं— उपनिषद्, आरण्यक, मीमांसा, स्वाहा, वषट् एवं गायत्री आदि शक्तियों की उल्लास भूमि है। (**तपोलोक** में **सनक, सनन्दन,** सनत्कुमार एवं सनन्दन रहते हैं। यहीं शंकु, त्रिशङ्कु आदि आगमिक भी रहते हैं।

१. तन्त्रालोक, आ. ८।

'ब्रह्मासन'	सत्यलोक से १ करोड़ योजन पर 'ब्रह्मासन' नामक दिव्य स्थान स्थित है।
'विष्णु आसन'	ब्रह्मासन से २ करोड़ योजन ऊपर **'विष्णु आसन'** स्थित है।
रुद्र भुवन	विष्णु-संस्थान से ७ करोड़ योजन ऊपर **परमेश्वर रुद्र का भुवन** है। ये सृष्टि संहारकारी परमदेव हैं। यह ब्रह्माण्डवर्त्म का अद्भुत लोक है। स्वर्लोक से रुद्र तक की दूरी ४८ करोड़ ८५ लाख योजन है।
दण्डपाणि शिव का लोक	रुद्र लोक के ऊपर और ब्रह्माण्ड के नीचे **'दण्डपाणि शिव'** का स्थान है। वे शिवेच्छा से अण्डावरण तोड़कर मोक्ष प्रदान करते हैं। (रुद्र लोकों के अधिपति पशुपति भगवान शिव हैं।)

* ('तन्त्रालोक' एवं 'स्वच्छन्द तन्त्र' के अनुसार) *	
१. स्वर्लोक से महर्लोक	२ करोड़ ८५ लाख योजन।
२. महर्लोक से जनलोक	८ करोड़ ०० लाख योजन।
३. जनलोक से तपोलोक	१२ करोड़ ०० लाख योजन।
४. तपोलोक से सत्यलोक	१६ करोड़ ०० लाख योजन।
५. सत्यलोक से ब्रह्मासन	०१ करोड़ ०० लाख योजन।
६. ब्रह्मासन से विष्णुलोक	०२ करोड़ ०० लाख योजन।
७. विष्णुलोक से रुद्रलोक	०७ करोड़ ०० लाख योजन।
कुल योग ४८ करोड़ ८५ लाख योजन।	

शर्व, रुद्र, भीम, भव, उग्र, महादेव ईशान (७) के शर्व

भू लोक से लेकर सत्य लोक तक के लोकेश्वर हैं— शर्व, रुद्र, भीम, भव, उग्र, महादेव आदि।

१. तन्त्रालोक।

२. तन्त्रालोक।

३. तन्त्रालोक (आठवाँ आह्निक)।

(१) भूलोक शर्व	(२) भुवःलोक रुद्र	(३) स्वर्लोक भीम	(४) महर्लोक भव
(५) जनलोक उग्र	**(६) तपोलोक** महादेव	**(७) सत्यलोक** ईशान	लोकेश्वर शिवों का क्रम

निष्कर्ष-
(१) भू पृष्ठ से ऊपर ध्रुव तक--- १५ लाख योजन।
(२) महर्लोक--- २ करोड़ ८५ लाख योजन।
(३) जनलोक--- ८ करोड़ योजन का विस्तार।
(४) तपोलोक--- १२ करोड़ योजन का विस्तार।
(५) सत्य लोक--- १६ करोड़ योजन का विस्तार।
(६) ब्राह्मभुवन--- ०१ करोड़ योजन का विस्तार।
(७) वैष्णव भुवन--- ०२ करोड़ योजन का विस्तार।
(८) २ रौद्र--- ०७ करोड़ योजन का विस्तार।
(९) कटाह--- ०१ करोड़ योजन का विस्तार।
अर्थात् ५००,०००००० पचास करोड़ के परिवेश में उल्लसित हैं।

'कालाग्निरुद्र' से **'दण्डपाणि'** भैरव का कुल क्षेत्र (स्वच्छन्द तन्त्र के अनुसार) इसी के अन्तराल में आता है और ५० **करोड़ योजन का है**। इस अन्तराल में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यं--- ये ७ लोक आते हैं।

इसका संकलन (१) भू से ध्रुव तक= १५ लाख + महः २८५ लाख + जन ८०० लाख + तप १२०० लाख + सत्य १६०० लाख=योग १९ करोड़ योजन। ब्राह्म, वैष्णव, रौद्र एवं कटाह की दूरी मिलाने पर ५० करोड़ योजन और कुल मिलाकर यह १०० करोड़ **विस्तृत क्षेत्र 'भूः तत्त्व का पार्थिव तत्त्व से व्याप्त है**। इसके अनन्तर **शतरुद्रों** के परिवेश के विस्तार को **'सौवर्ण परिमण्डल'** मानते हैं।

शतरुद्र प्रत्येक दिशा में १०-१० की संख्या में हैं।

ये १०० हैं।

'शत रुद्र' और उनका दिशावस्थान

(१) पूर्व दिशा	कपालीश/अज/बुध्न/वज्रदेह/प्रमर्दन/विभूति/अव्यय/शास्ता/पिनाकी/त्रिदशाधिप।
(२) अग्निदिशा	अग्निरुद्र/हुताशी/पिङ्गल/खादक/हर/ज्वलन/दहन/ब्रभु/भस्मान्तक/क्षयान्तक।
(३) दक्षिणदिशा	याम्य/मृत्यु/हर/धाता/विधाता/कर्ता/संयोक्ता/वियोक्ता/धर्म/धर्मपति।
(४) नैऋत्यदिशा	नैऋत/दारुण/हन्ता/क्रूरदृष्टि/भयानक/ऊर्ध्वकेश/ विरू-पाक्ष/धूम्र/लोहित/दंष्ट्रक।
(५) पश्चिमदिशा	बल/अतिबल/पाशहस्त/महाबल/श्वेत/जयभद्र/दीर्घ-बाहु/जनान्तक/मेघनादी/सुनादी।
(६) वायव्यदिशा	शीघ्र/लघु/वायुवेग/सूक्ष्म/तीक्ष्ण/भयानक/पञ्चान्तक/पञ्चशिखी/कपर्दी/मेघवाहन।
(७) उत्तरदिशा	निधीश/रूपवान/धन्य/सौम्यदेह/जटाधर/लक्ष्मी/रत्नधर/कामी/प्रसाद/प्रभासक।
(८) ईशानदिशा	विद्यापति/सर्वज्ञ/ज्ञानदृक्/वेदपारग/शर्व/सुरेश/ज्येष्ठ/भूतपाल/बलि/प्रिय।
(९) ऊर्ध्व दिशा	वृष/वृषधर/अनन्त/अक्रोधन/मारुताशन/ ग्रसन/उम्बरेश/फणीन्द्र/वज्रदंष्ट्रक।
(१०) अध:दिशा	शम्भु/विभु/गणाध्यक्ष/अक्ष/त्रिदशेश्वर/संवाह/विवाह/नभ/लिप्सु/त्रिलोचन।

— स्वच्छन्द तन्त्र (१०/६२३-६४४)

अण्ड और रुद्र

(१) **पूर्वाण्ड** का अधिपति श्वेत रुद्र हैं।
(२) **आग्नेय दिशाण्ड-अधिपति–** वैद्युतरुद्र हैं।
(३) **दक्षिणदिशाण्ड-अधिपति–** महाकाल रुद्र हैं।
(४) नैऋत्य दिशाण्ड-अधिपति— विकट रुद्र हैं।
(५) पश्चिम दिशाण्ड-अधिपति— महावीर्य रुद्र हैं।
(६) वायव्याण्ड का अधिपति— वायुवेग रुद्र हैं।

(७) उत्तराण्ड का अधिपति— सुभद्र रुद्र हैं।
(८) ईशानाण्ड का अधिपति— विद्याधर रुद्र हैं।
(९) अधस्ताताण्ड-अधिपति— कालाग्नि रुद्र हैं।
(१०) ऊर्ध्वाण्ड का अधिपति— वीरभद्र रुद्र हैं।

'स्वच्छन्दतन्त्र' में कहा गया है कि—

(१) ''स्थितौ वै पूर्वतोऽण्डस्य श्वेत'' (स्वच्छन्द तन्त्र, १०/६४६)।
(२) ''आग्नेय्यामग्निसंकाशो वैद्युत्' (स्व. तं., १०/६४८)।
(३) ''याम्येऽण्डस्य महाकाल' (स्व. तं., १०/६५१)।
(४) 'नैऋते विकटो नाम' (स्व. तं. १०/६५०)।
(५) 'पश्चिमेऽस्य यो रुद्रो महावीर्य इति स्मृतः (स्व. तं., १०/६४९)।
(६) 'वायव्यां दिशि चाण्डस्य वायुवेग (स्व. तं. १०/६५२)।
(७) 'सुभद्रनामोत्तरतः (स्व. तं., १०/६५३)।
(८) 'विद्याधरो नाम रुद्रऐशान्याम् (स्व. तं., १०/६५४)।
(९) 'अधः कालाग्नि रुद्रोऽन्य (स्व. तं., १०/६५६)।
(१०) शतैः समावृतो रुद्रो (स्व. तं., १०/६५७)।
(११) वीरभद्रो वृतो रुद्रैरूपर्यण्डस्य संस्थितिः।
(१२) एकादशो महाकायैः..... (स्व. तं., १०/६५८)।

एकादश रुद्र

(१) अनन्त (सर्वोच्च महिमाशाली), (२) कपालीश, (३) अग्नि, (४) यम, (५) नैऋत, (६) बल, (७) शीघ्र, (८) विद्येश्वर, (९) निधीश्वर, (१०) शम्भु, (११) वीरभद्र।

—मालिनीविजयोत्तर तन्त्र, ५/१३-१४

इन रुद्रों में **'अनन्त'** नामक रुद्र ही प्रमुख हैं। उनकी गणना सर्वप्रथम की जाती है। वीरभद्र, विधूम, ज्वलत्प्रभु महारुद्र हैं। सभी रुद्र वीरभद्र के ही परिवार के हैं। वीरभद्र सदैव क्रोधोत्पन्न रुद्रों से घिरे रहते हैं।

''अण्ड के ऊपर स्थित **वीरभद्र** एकादश महाकाय रुद्रों से घिरे रहते हैं।''

(स्व. तं., १०/६५८)

सभी रुद श्री कण्ठ से अधिष्ठित हैं।

अध्वा-शोधन की प्रक्रिया

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र ने 'अध्वा-शोधन' की प्रक्रिया का निरूपण इस प्रकार किया है—

'क्रमादेतानध्वनः षट् शोधयेद् गुरुसत्तमः ।
पादान्धुनाभिहृद्भालमूर्द्धस्वपि शिशोः स्मरेत् ।।'[1]

गुरु कुण्ड के निकट बैठे हुए शिष्य के ऊपर **षडध्वों का संशोधन करे** और उन्हीं **षडध्वों** का क्रमशः (१) 'पाद' (२) 'गुह्य' (३) 'नाभि' (४) 'हृदय' (५) 'भाल' एवं (६) 'शिरःप्रदेश' में स्मरण करके उनका शोधन करें।

(१) **'कलाध्वा' का शोधन–** चरणों में कलाध्वा का स्मरण करके— 'गुह्यनाभिहृदवक्त्रशिरःसु पञ्चकलाविन्यसामि।' पढ़कर **'कलाध्वा' का शोधन** करना चाहिये।

(२) **'तत्त्वाध्वा' का शोधन–** शिष्य के गुह्यस्थान में तत्त्वाध्वा का चिन्तन करके— 'नाहृदयभालशिरःसु तत्त्वान् विन्यसामि'— कहकर **तत्त्वाध्वा का शोधन** करना चाहिये।

(३) **'भुवनाध्वा' का शोधन–** देशाध्वा के तृतीय भेद भुवनाध्वा का **नाभि में** शोधन करना चाहिये।

(४) **'वर्णाध्वा' का शोधन– हृदय में 'वर्णाध्वा'** का।

(५) **'पदाध्वा' का शोधन–** भाल में **'पदाध्वा'** का।

(६) **'मन्त्राध्वा' का शोधन– 'मन्त्राध्वा'** का शिर में ध्यानपूर्वक न्यास करके और इस प्रकार **षडध्वों का संशोधन करना चाहिये।।**

इसके अनन्तर कुश-समूह से शिष्य का स्पर्श करते हुए **आठ आहुतियाँ** समर्पित की जानी चाहिये। आचार्य को चाहिए कि वे कुण्ड में शुद्धीकृत तिलों को घृत से रसार्द्र करके 'अध्वानं शोधयाभि स्वाहा' मन्त्र से अध्वा के लिए पृथक रूप से आहुति प्रदान करे। फिर गुरु प्रणव के उच्चारण करके ८ आहुतियाँ समर्पित करके संहारक्रम द्वारा उस अग्नि को शिव को समर्पित करते हुए उसे उसमें विलीन कर दें। फिर उस विलीन अग्नि को सृष्टिमार्ग से उत्पन्न करे।[2]

इसी सन्दर्भ में आगे कहा गया है—

---

१. शारदातिलकम् (५/९२)।
२. शारदातिलकम् (५/९४-९५)।

'ध्यानेनात्मनि तं शिष्यं संहृत्य प्रलयक्रमात्।
पुनरुत्पाद्य तत् पाणौ दद्याद्दर्भांश्च मन्त्रितान्॥'

फिर कहना चाहिये कि— 'ॐ अमुष्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा'— यही प्रयोग-विधि है।

'शिवे शिवात्तान् संलीनान् जनयेत् सृष्टिमार्गतः॥'

शिष्य में आत्म चैतन्य का योजन करना चाहिये—

'विलोकयन् दिव्य दृष्ट्या तं शिशुं देशिकोत्तमः।
आत्मस्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये नियोजयेत्॥'

(**'शिवे'**=सहस्रारस्थित परमशिव में। 'शिवात्'=शिवोत्पन्न सृष्टिमार्ग से।

शिष्य में गुरु के द्वारा आत्मचैतन्य का नियोजन

आचार्य को चाहिए कि वह दिव्य दृष्टि से शिष्य की ओर देखते हुए आत्मगत चैतन्य को शिष्य के भीतर स्थापित करे।

समस्त शरीर षडध्वमय है

कहा भी गया है—

'**शान्त्यतीत**कलामूर्द्धा **शान्ति**वक्त्र शिरोरुहा।
निवृत्ति जानु जङ्घाङ्घ्रिर्भुवनाध्वशिरोरुहा।
मन्त्राध्वमांसरुधिरा पदवर्णशिरायुता।
तत्त्वाध्वमज्जमेदोऽस्थि धातुरेतोयुता शिवे॥'

आहुति-समर्पण

मन्त्रज्ञ साधक मूलमन्त्र पढ़कर स्रुचा से पूर्णाहुति समर्पित करे। फिर अग्नि में स्थापित अङ्ग आवरण सहित, समस्त देवताओं का विसर्जन करके उन्हें कुम्भ में स्थापित करे। व्यस्त एवं समस्त व्याहृतियों से हवन करके अग्नि की जिह्वाओं एवं अधिदेवता, अङ्ग-मूर्ति, लोकपाल तथा उनके आयुधों को भी नाम के आगे चतुर्थ्यन्त विभक्तिपूर्वक अन्त में **'स्वाहा'** लगाकर एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये। फिर प्रोक्षणी के जल से अग्नि को अभिषिक्त करके उस अग्नि को अपनी आत्मा में एकीकरण करके, परिधियों को परिस्तरण सहित अग्नि में जला देना चाहिये। यह क्रिया मन्त्रज्ञ साधक को नैमित्तिक कर्म में ही करनी चाहिये। नित्य कर्म में इन परिधियों का दहन नहीं करना चाहिये।

वायवीय संहिता में इस प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

''ततो होमावशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम् ।
निधाय पुष्पं तस्याग्रे स्रुवेणाऽधोमुखे नताम्
सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनाऽञ्जलिनोत्थितः ।
वौषडन्तेन जुहुयाद्धारान्तु यवसम्मिताम् ।
इत्थं पूर्णाहुतिं कृत्वा ।।''

गणेशविमर्शिनी में कहा गया है—

'भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ।
इति मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य वह्निमुद्वासयेदपि ।।'

शारदातिलककार कहते हैं कि फिर नवीन वस्त्र से 'नेत्र-मन्त्र'— 'नेत्राभ्यां वौषट्'— पढ़ते हुए आचार्य शिष्य के नेत्रों को बाँध दे और शिष्य का हाथ पकड़कर उसे कुण्ड के समीप ले आयें।

इसके अनन्तर शिष्य की अञ्जलि को पुष्पों से विधिपूर्वक परिपूर्ण करके मूल मन्त्र पढ़ते हुए पश्चिम द्वार पर उसे ले आकर कलश के ऊपर उन पुष्पों को चढ़ा देना चाहिये जिससे देवता प्रसन्न हो सकें।

''नेत्रे शिष्यस्य बध्नीया**न्नेत्रमन्त्रेण** वाससा ।
करे गृहीत्वा तं शिष्यं **कुण्डतो मण्डलं नयेत्** ।
तस्या**ञ्जलिं पुनः पुष्पैः** पूरयित्वा यथाविधि ।
कलशे देवताप्रीत्यै क्षेपयेन्मूलमुच्चरन् ।।''

नारायणीय में भी कहा गया है—

''न्यासं शिष्यतनौ कृत्वा तं प्रदक्षिणमानयेत् ।
पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत् कुसुमाञ्जलिम् ।।''

'पिङ्गलामत' की दृष्टि

''पुष्पैरञ्जलिमापूर्य योगपीठे प्रदापयेत् ।
पश्चिमोत्तररुद्रैन्द्रे पुष्पपातः शुभाशुभे ।।''

इसके अनन्तर उसका नेत्र खोल देना चाहिये और सुखपूर्वक कुश के आसन पर बैठाकर अग्रिम विधि के अनुसार भूतसंहार तथा भूत-सृष्टि क्रम से उससे आत्मत्याग कराना चाहिये।

आचार्य सर्वप्रथम उस शिष्य से कुम्भ-स्थित तत्तद् देवताओं का न्यास करे। फिर तन्त्रशास्त्रोक्त विधि के अनुसार उसका **'सकलीकरण'** (कला से युक्त करने की क्रिया) करें। इसके अनन्तर उस शिष्य को अन्य अलंकृत मण्डल में बैठाना चाहिए। इसी प्रकार आगे की अनेक क्रियाओं को सम्पन्न करना चाहिए। (इसका सम्बन्ध **'वर्ण दीक्षा'** से भी है।

षडध्वशोधन के सन्दर्भ में अभिनवगुप्त की दृष्टि

'तन्त्रालोक' (११/८३) में अभिनवगुप्तपाद कहते हैं कि— "षड्विधः स्ववपुशुद्धौ शुद्धिं सोऽध्वाऽधिगच्छति ॥"[१]

'शुद्धि' का स्वरूप इस प्रकार है— **अभिनवगुप्त कहते हैं-**

"शोधनं बहुधा तत्तद्भोगप्राप्त्येकतानता।
तदाधिपत्यं तत्त्यागस्तच्छिवात्मत्ववेदनम् ॥
तल्लीनता तन्निरासः सर्वं चैतत् क्रमाक्रमात् ॥"[२]

अभिनवगुप्तपादाचार्य प्रश्न उठाते हैं कि क्या छहों अध्वा को शुद्ध करने के बाद दीक्षा दी जाय या नहीं? अभिनव गुप्त कहते हैं कि— एक ही कलादि शरीर में से किसी एक की शुद्धि मे भी दीक्षा दी जा सकती है। यह गुरु को निश्चय करना पड़ता है कि किस शरीर की शुद्धि हो चुकी है या नहीं? गुरु ही यह भी निश्चय करे कि— शुद्धि कैसे की जाय?— इसके बाद ही दीक्षा देनी चाहिये—

'षड्विधः स्ववपुशुद्धौ शुद्धिं सोऽध्वाधिगच्छति।' (तन्त्रालोक)

एक ही कला आदि शरीर में से किसी एक की शुद्धि में दीक्षा दी जा सकती है—

'एकेन वपुषा शुद्धौ तत्रैवान्यप्रकारताम् ॥' (तन्त्रालोक)

'प्रमा', 'प्रमाता', 'प्रमाण' एवं 'प्रमेय' आदि से छहों 'अध्वा' अवभासित होते हैं। अपने **शरीर की शुद्धि होने पर ये अध्वा भी शुद्ध हो जाते हैं**। शरीर शुद्धि का अर्थ है असाधारण कला आदि की शुद्धि। इस शुद्धि की दशा में भोग के प्रति स्वाभाविक आसक्तिजन्य मालिन्य विनष्ट हो जाता है—

'एवं मा-मातृ-मानत्व-मेयत्वैर्योऽवभासते ॥' (तन्त्रालोक)

(१) शरीर-शुद्धि होने पर अध्वा-शुद्धि भी हो जाती है।

---

१. तन्त्रालोक (११/८३)।
२. तन्त्रालोक (११/८५-८६)।

(२) शुद्धि है भोगों के प्रति स्वाभाविक आसक्तिस्वरूप मालिन्य का ध्वंस।[१]

एक ही (कला आदि एक ही) की शरीर में शुद्धि होने पर भी शुद्धि हो जाती है और शिष्य को दीक्षा दी जा सकती है।

यदि एक ही शरीर से दीक्ष्य शुद्ध हो और अन्तर्भाव में भी यदि समर्थ न हो तो **सूक्ष्म-सूक्ष्म सरणी का शोधन** करना चाहिये। बीजभाव के स्पर्श से उसमें भी **विशुद्धता** आ जाती है।

· शिष्य एक क्रमानुसार दीक्षा योग्य न हो तो दूसरे क्रम से दीक्षा देनी चाहिये—

"अन्तर्भाव्याचरेच्छुद्धिमनुसन्धानवान् गुरुः।
अनन्तर्भावशक्तौ तु सूक्ष्मं सूक्ष्मं तु शोधयेत्।
तद्विशुद्धं बीजभावात् सूते नोत्तरसंततिम्॥'

ऐसी सरणी का भी उपयोग किया जा सकता है जिसमें **'वर्ण'-शरीर के साथ ही दीक्ष्य शरीर** का भी शोधन हो जाता है।

सूक्ष्मता का **वाचक=**पर वर्ण में प्रतिफलित होता है। **वाच्य स्तर पर कला की सूक्ष्मता भी शोध्य है।**

शोधन-क्रिया दीक्ष्य शिष्य के संस्कारों पर निर्भर है। **भोगेच्छु साधक** में भोगेप्सा की एकतानता रहती है। तीन स्थितियाँ हैं— (१) भोगाधिक्य की ईप्सा। (२) भोगत्याग की इच्छा। (३) शिवात्मत्व की सम्भूति॥

(१) **प्रथम स्थिति** (भोगाधिक्य की अवस्था) में भोग में लीनता बनी रहती है।

(२) **द्वितीय स्थिति** (भोग त्याग में भी भोग भाव में प्रवृत्ति बनी ही रहती है।

(३) **तृतीय स्थिति** (शिवात्मत्व) में आसक्ति-ध्वंस हो जाता है।

ये स्थिति **'क्रम'** एवं **'अक्रम'** दोनों में सम्भव है। भोग्यत्व के लिए **विभिन्न** शरीर धारण करने पड़ते हैं। इसमें जितनी आसक्ति रहेगी उतनी ही अधिक **उसमें** आत्मबुद्धि एवं राग होगा, उतनी ही लिप्तता, लिप्सा एवं एकतानता होगी—

---

१. 'स्ववपुशुद्धौ'। 'स्वस्य'=असाधारणस्य कलाद्यात्मनः स्वरूपस्य। 'शुद्धौ'=भोगसङ्गमालिन्यत्वि-निवृत्तौ॥" —विवेक

"पूर्व जन्मों में सम्पादित कर्मों की वासना के कारण कर्मफलों के भोगों को भोगने हेतु संसृति-चक्र भी चलता रहता है ॥" (स्वच्छन्द तन्त्र : ४/११४)

"विभिन्न देहों में उन्हीं भोगों को भोगने के लिए वागीश्वरी शक्ति द्वारा निर्धारित योनियों में पुद्गल (जीव) भेज दिए जाते हैं ॥" (स्वच्छन्द तन्त्र : ४/११५)

'स्वच्छन्द तन्त्र' (४/१३३) में कहा गया है कि दीक्षा की शक्ति से पाश के ध्वस्त हो जाने पर शुद्ध तत्त्वरूपा **'निवृत्ति कला'** दीक्ष्य (अणु पुरुष) के लिए अनावृत हो जाती है और इससे वह उसमें स्थित होने का अधिकारी बन जाता है। दीक्ष्य साधक ही चैतन्य-संविद् एवं निवृत्ति कला की दिव्य दीप्ति दोनों चैतन्योत्कर्ष के कारक बन जाते हैं। अध्वशोधन के कारण साधक का निम्नस्थ अध्वावर्ग से उद्धार हो जाता है। साधक शिवत्व का संवेदन प्राप्त कर लेता है। इसी अवस्था को **'स्वच्छन्दतन्त्र'** में— **'तच्छिवात्मत्ववेदनम्'** कहा गया है। इससे अपने शारीर स्वरूप के प्रति यह भाव जागृत हो जाता है कि यह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है।

(१) **'भोगप्राप्त्येकतानता'**— 'स्वच्छन्द तन्त्र' (४/१२०) में कहा गया है कि गुरु दीक्षा देते समय यह जान लेता है कि अणु शिष्य पूर्व जन्म के कर्मों का कितना भोक्तव्य भोग अर्जित कर चुका है।

"सञ्चित कर्मों के रूप में अर्जित सुखदुःखरूप भोग भोगना ही पड़ता है।"[१]

व्यक्ति प्रत्येक क्षण अपने सञ्चित कर्मों के भोग प्रारब्ध के रूप में कितना भोग रहा है— इस भोग-सम्प्राप्ति को ही **'भोग्यता'** एवं उसमें संलीनता ही **'एकतानता'** है।

"पूर्व जन्मों में निष्पादित कर्मों की वासना के कारण कर्मफलों के **भोगों को भोगने के लिए संसृति-चक्र** चलता रहता है ॥"[२] यही **एकतानता** है; क्योंकि इसी से पुद्गल विभिन्न शरीरों में विभिन्न कल भोगने में लिप्त रहते हैं।

"विभिन्न शरीरों में उन्हीं भोगों को भोगने हेतु **वागीश्वरी शक्ति** द्वारा निर्धारित योनियों में पुद्गल जीव भेज दिए जाते हैं।"[३]

भोग्यत्व की प्राप्ति हेतु ही भिन्न-भिन्न देह धारण करने पड़ते हैं। इसमें

१. स्वच्छन्द तन्त्र (४/२१)।
२. स्वच्छन्द तन्त्र (४/११४)।
३. स्वच्छन्द तन्त्र (४/११५)।

लिप्तता की मात्रा ही एकतानता को बढ़ाती है और शरीर तथा शारीर-भोगों में आत्मबुद्धि एवं राग को जीवित रखती है।

(२) **'तदाधिपत्यम्'**– "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" शिष्य का स्वकृत कर्मों के भोगों में अधिकार होता है। कर्म-विपाक होने पर भोग भोगने का यह अधिकार ही आधिपत्य है।

(३) **'तत्त्यागः'**– भोग्य का विषय जीवन में देश, काल एवं स्थान के रूप में प्रत्यक्ष होता है। कभी-कभी उनसे **मुक्ति की भी इच्छा** होती है। फिर उसके त्याग का समय आता है— जो कि (१) वैराग्य से या (२) कर्मफल की समाप्ति से निष्पादित होता है।

विषय **भुवनाकार** एवं **भोग्यरूप** भी होते हैं। इसमें स्त्रियों की भी गणना है। **'भुवन'** देशरूप होता है। **नारी भी** देशरूप होती है। इसी के साथ **काल एवं स्थान** का भी निर्धारण होता है। इन सबके शोधन से भोगों में वैराग्य होता है। निःशेष करने वाली कृति **'निष्कृति'** कही जाती है। इसे **दीक्षा द्वारा शोधन** से पूर्ण किया जाता है।

(४) **'तच्छिवात्मत्ववेदनम्'**– (स्व. तन्त्र : ४/१३३)

(५) **'तल्लीनता'**– साधक भोग में कितना तल्लीन है— इसका आकलन भी गुरु को करना चाहिये। भोग-प्रवृत्ति में आधिक्य ही **'तल्लीनता'** है।

(६) **'तन्निरास'**– दीक्षा द्वारा भोगों से वैराग्य होना (सम्बन्ध-विच्छेद होना) ही निरास है। इस **भावात्मक विश्लेष** (सुख-दुःख दोनों का) एवं भोग समाप्ति रूपी निष्कृति के बिना **दीक्षा के संस्कार शुद्ध नहीं होते**।

(७) **'क्रमाक्रमात्'**– आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि— "**शोधनं** बहुधा तत्तद्भोगप्राप्त्येकतानता। तदाधिपत्यं तत्त्यागस्तच्छिवात्मत्ववेदनम् तल्लीनता तन्निरासः सर्वं चैतत्क्रमाक्रमात्॥"[१]

भोग (सुखःदुख) भोक्तव्य ही है—

"अर्जिते सति भोक्तव्यो भोगो दुःखसुखात्मकः॥"

"प्राक् कर्मवासनाशेषफलभोग्यत्वहेतवे॥"[२]

'शोधनं बहुधा.................क्रमात्॥"— यह तो होना ही चाहिये। यह

---

१. तन्त्रालोक (आह्निक ११)।

२. स्वच्छन्द तन्त्र (४/११४)।

किसी भी उपाय से हो किन्तु होना ही चाहिये। इसमें किसी भी क्रम की आवश्यकता नहीं है।

जीवन-क्रम (जन्म, अधिकारानुरूप भोग, भोगों में संलीनता, उनसे **निष्कृति** एवं **विश्लेष** और परिणामत: (विश्लेषजन्य) शुद्धि ही **'शोधन'** है।

इनसे दीक्ष्य शिष्य का नवसंस्कारों के कारण मुक्ति हो जाती है।[१]

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि— "गुरु जिस-जिस अध्वा के शोधन की आवश्यकता का अनुभावन करता है उसी विधि का अनुसरण करे और जननादिविहीन एकतत्त्वान्त दीक्षा के द्वारा शिष्य का उद्धार करे॥"[२]

शोधन-व्यापार अमंत्रक नहीं समन्त्रक होता है। मन्त्रों में अचिन्त्य शक्ति होती है। इसके द्वारा तो अक्रमभाव से भी सिद्धि हो सकती है। क्रमवत्ता आवश्यक भी नहीं है।

"स्वच्छन्दतन्त्र' (४/११६-११८) की दृष्टि

'स्वच्छन्दतन्त्र' में कहा गया है कि जन्म, अधिकारलय, निष्कृति, विश्लेष के अवान्तर संस्कारों के सन्दर्भ में जहाँ जनन प्रक्रिया का प्रथम क्रम आता है उसके विषय में कहा गया है कि—

(क) "गर्भावस्था की अवधि पूर्ण हो जाने पर गर्भ की निष्पत्ति (विकास) के लिए **'भैरव मन्त्र'** से तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। गर्भ से बाहर आने (प्रजनन) से पूर्व यह होम कर लेना चाहिये। जन्मोपरान्त भी उसी मन्त्र से तीन हवन करना चाहिये। यहाँ भैरव मन्त्र गर्भकर्मानुसारी होना चाहिये। इसे ही **'स्वच्छन्द तन्त्र'** में **'ऊहमन्त्र'** कहा जाना चाहिये।

'मन्त्र' शोधक होते हैं। अनुत्तर त्रिकार्थ में अक्रम मन्त्रों का कथन किया गया है। सारे मन्त्र इच्छापूर्त्ति के साधक होते हैं। समन्त्रक हवन प्रशस्त हैं। मन्त्र भी संस्कार-निर्माता होते हैं। ये शुद्धि के कारक भी हैं। ये **सभी प्रकार की शुद्धियों के कारण होते हैं।** 'शुद्धि' **क्रमिकी-अक्रमिकी** दो प्रकार की हो सकती है।

'मालिनीविजयोत्तरतन्त्र' (९/७१-७४) की दृष्टि

"दीक्षा-क्रम में मायान्त मार्गरूप **अशुद्ध अध्वा की संशुद्धि** के लिए विज्ञ गुरु शुद्धि की प्रक्रिया में यदि किसी मन्त्र का उल्लेख न किया गया हो तो अपने

---

१. 'तीव्रतीव्रशक्तिपात' इसमें सर्वाधिक कारक हैं।

२. तन्त्रालोक (१८/२)।

विवेक से किसी मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये।''

''विद्या से सकल पुरुष पर्यन्त के **'शोधन'** में परापर मन्त्र का योजन करणीय है। ईश्वर से ऊर्ध्व किसी मन्त्र का योजन नहीं करना चाहिये। सकल के ऊपर के ६ अङ्ग भी इसी श्रेणी में आते हैं। निष्कलस्तरीय दीक्षा में परा प्रक्रिया प्रयुक्त होती है। शोधन-क्रम में **'परा' 'परापरा'** और **'अपरा'** स्तरों की विशेष स्थितियों की योजनिका पर मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिये।[1]

मालिनी देवी की त्रिभागता के त्रिदेवता, वक्त्र आदि अङ्गों की अष्टकता के मन्त्र विशोधक माने जाते हैं।

'तन्त्रालोक' के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में मूल मन्त्र की शोधकता का वर्णन किया गया है। हृदय आदि मन्त्रों की शोध्यता और शोधकता दोनों स्वीकार की जाती है।

मालिनी देवी की त्रिभागता के त्रिदेवता, वक्त्र आदि अङ्गों की अष्टकता के मन्त्र विशोधक माने जाते हैं—

(१) **देवीत्रय**—	(१) परा (२) परापरा (३) अपरा॥
	(१) अघोरा (२) घोरा (३) घोरतरी॥
(२) **देवत्रय**—	(१) अघोर (२) घोर (३) घोरतर॥
	(१) पर (२) परापर (३) अपर॥
(३) **वक्त्र**—	अघोर/सद्योजात/वामदेव/ईशान आदि॥
(४) **अङ्ग**—	माहेश्वरी/ब्रह्माणी/कौमारी/वैष्णवी/ऐन्द्री/याम्या/ चामुण्डा/योगेशी।

यहाँ उक्त मालिनी शक्तियों का शोधकत्व भी स्वीकृत है।

६ अध्वा शोध्य हैं। **'पर' 'अपर'** मन्त्र-शोधक होते हैं। **शोध्य शोधक** भाव का अपना स्वतन्त्र तन्त्र है।

(१) **शोध्य**– अध्वा (२) **शोधक**– मन्त्र।

शास्त्रों में सिद्धान्त-वाम-दक्षिण-सिद्धा-मालिनी आदि मन्त्रों का शोधकत्व एवं शोध्यत्व प्रतिपादित है। यद्यपि शिव अभेदात्मक है अत: विश्व उससे अभिन्न है तथापि (शिवाभेद की स्थिति में भी) **'स्वातन्त्र्य शक्ति** के चमत्कार के कारण **शोध्यशोधकभाव** (प्रतिबिम्ब स्वरूप से) परमेश्वर में प्रतिभासित होता है, किन्तु

---

१. तन्त्रालोक (११/८८)।

बाह्य रूप में इसकी कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। यह समस्त **"अध्वा"** संविदा श्यानघन मात्र है और ऐसा सोचना ही शोधन का यथार्थ स्वरूप है। यह समस्त अध्वा जिस प्रकार संवित् तत्त्व में स्थित है उसी प्रकार उसके द्वारा अन्तः शून्य-धी-प्राण-नाडीचक्र में और बाहर लिङ्गमूर्ति वह्नि स्थण्डिल आदि में समस्त व्यस्त रूप से, क्रमाक्रम रूप में (यह अध्वा) संस्थित है।[१]

अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि– उपर्युक्त तथ्यों एवं बिन्दुओं की पुष्टि करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि—

"**अध्वा** समस्त एवायं चिन्मात्रे सम्प्रतिष्ठितः।
यत्तत्र नहि विश्रान्तं तन्नभःकुसुमायते।
संविद्द्वारेण तत्सृष्टे शून्ये धियि मरुत्सु च।
नाडी चक्रानुचक्रेषु बहिर्देहेऽध्वसंस्थितः॥"[२]

जो संवित्तत्त्वात्मक अध्वा बाहर व्यवस्थित है वह वहाँ पर अपने समुचित रूप में ('स्वातन्त्र्य' द्वारा) भासित होता है। साधक को चाहिये कि वह देशकालमय एवं स्पन्दात्मक **सम्पूर्ण विश्वाध्व को अपना शरीर समझे**। साधक को **यही दृष्टि घट-पट-लिङ्ग-स्थण्डिल आदि सभी में सर्वत्र रखनी चाहिये**।

यहाँ इस प्रकार का विभावन ही षडध्वविलापन है और इसे ही **षडध्व-शुद्धि** कहते हैं। अध्वा वर्ग को जान लेने पर इसका विलापन उन उन अध्वाधिपतियों में करने की विधि ज्ञात हो जाती है—

"ज्ञात्वा समस्त अध्वानं तदीशेषु विलापयेत्।
तान् देहप्राणधीचक्रे पूर्ववद् गालयेत् क्रमात्।
तत्समस्तं स्वसंवितौ सा संविद्भरितात्मिका।
उपास्यमाना संसारसागरप्रलयानलः॥"[३]

---

१. संवित् शक्ति ६ अध्वाओं को भी धारण करती है। ४ प्रमाता-वर्ग में प्राण ही प्रधान है। 'सवित् प्राक् प्राणे परिणता।' प्राण का सञ्चार समस्त नाडी-चक्रों एवं अनुचक्रों में भी होता है। यही बाह्यावभास-रहस्य है। 'यह समस्त अध्वमण्डल **उसी चिन्मात्र** में ही सम्प्रतिष्ठित है। उसके अतिरिक्त यह कुछ नहीं है। जो उसमें है, वही है। जो नहीं है वह नहीं है। वह मात्र आकाशकुसुम (अस्तित्वहीन) है। (तन्त्रालोक ८/३) संवित शक्ति स्वात्म स्वातन्त्र्य के प्रभाव से स्वस्वरूप का गोपन करके शून्य प्राण, बुद्धि, देह प्रमाताओं के अतिरिक्त बाह्य जागतिक प्रमेयों में एक रहते हुए भी पृथकवत, (अनतिरिक्त रहते हुए भी अतिरिक्त की भाँति) भासित होती है। (८/४)

२. तन्त्रालोक (आह्निक ८/३-४)।

३. तन्त्रालोक (८/३-४)।

अर्थात् अध्वावर्ग के अध्वापतियों में विलपित करने की विधि ज्ञात हो जाने पर शून्य, प्राण एवं बुद्धि चक्रों में उन अधीश्वरों का विलापन भी सरल हो जाता है और एक के बाद दूसरे को आत्मसात करता हुआ साधक अपनी सत्ता को परमात्म-चिन्मयता में समाहित कर देता है। वह **समस्त देहादिवर्ग को स्वात्म संवित् में स्वात्मसात कर लेता है।** उसकी संवित् शक्ति **समस्त प्रमेय रूप वेद्यवर्ग का ग्रास कर लेती है।** और साधक **अद्वयभाव प्राप्त** कर लेता है।

आचार्य **अभिनवगुप्त** कहते हैं—

"संविदेकात्मतानीतभूतभावपुरादिकः।
अव्यवच्छिन्नसंवित्तिर्भैरवः पमेश्वरः।
श्री देव्या यामले चोक्तं षट्त्रिंशत्तत्त्वसुन्दरम्।
अध्वानं षड्विधं ध्यायन् सद्यः शिवमयो भवेत्॥"[१]

सारांश यह कि **संविद् तत्त्व से ऐकात्म्य के प्रभाव से** यह समस्त **भूतभाव** और समस्त **षडध्व-विस्तार अभेद रूप से उल्लसित** प्रतीत होता है। संवित्ति ही परमेश्वर का 'स्व' का भाव है। **देवीयामल** में भी यही दृष्टि प्रतिपादित की गई है। इसके अनुसार तो ३६ तत्त्वों से संवलित षडध्व विश्व का **ध्याता शिवमय हो जाता है।** 'ध्यान' **स्वात्म संविदैक्य के परामर्श** से युक्त होना चाहिये। ३६ तत्त्वों से प्रकाशमान षडध्वात्मक विश्व का ध्याता तत्काल शाश्वत पद पा लेता है— (देवीयामलकार की दृष्टि)

"श्री देव्या यामले चोक्तं षट्त्रिंशत्तत्त्वसुन्दरम्।
अध्वानं षड्विधं ध्यायन्सद्यः शिवमयो भवेत्॥"[२]

(अभिनवगुप्त की दृष्टि)

संविदेकात्मतानीतभूतभावपुरादिकः।
अव्यवच्छिन्नसंवित्तिर्भैरवः परमेश्वरः।

विश्व षडध्वात्मक है। इसका ध्याता शाश्वतपद प्राप्त करता है—

"अध्वानं निखिलं देवि! तत्त्वषट्त्रिंशदुज्ज्वलम्।
चिन्तयन् सद्य आप्नोति पदं शाश्वतमुत्तमम्॥"

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि– तन्त्रालोक में प्रतिपादित दृष्टि को ही शब्दान्तर द्वारा क्षेमराज ने **'स्वच्छन्दोद्योत'** (४/९७) में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. तन्त्रालोक (८/१५-१७)।
२. तन्त्रालोक (८/१६)।

"परमेश्वरश्चिदानन्दघनः स्वतन्त्रभट्टारक उन्मनाख्यया स्वस्वातन्त्र्यशक्त्या शून्यादिक्षित्यन्तमनन्तं वाच्यवाचकरूपं स्वभित्तौ स्वानधिकमप्यधिकमिव युगपदवभासयति॥ तत्र वाचकं ग्राहकभागावस्थितं परसूक्ष्मस्थूलभेदेन वर्णमन्त्र पदात्मकं त्रिधा, वाच्यमपि ग्राह्यभागाभिनिविष्टं कलातत्त्वभुवनात्मकम्। वर्णा ह्यभेदविमर्शसाराः किञ्चित्स्थौल्येन भेदाभेदविमर्शनात्मकमन्त्ररूपतामाश्रित्य ततोऽपि स्थौल्येन भेदविमर्शावगमकतया भान्ति। एवं वाच्यरूपा पारमेश्वरी कलाख्या शक्तिरुत्तरोत्तरवैशिष्ट्येन तत्त्वभुवनात्मतां गृह्णाति। वस्तुतश्चेयमक्रमैव पारमेश्वरी शक्तिः स्फुरति। तत्रापि च स्वातन्त्र्याद् दर्पणनगरवत् क्रममप्यादर्शयति। क्रमेऽपि च पूर्वं पूर्वमुत्तरत्र व्यापकतया स्थितं मृदिव घटादौ, उत्तरमुत्तरं तु पूर्वत्र शक्त्यात्मना स्थितं वृक्ष इव स्वबीज इति सर्वं सर्वात्मकमेव॥"

'पञ्चतत्त्वदीक्षा' में अनाश्रिततत्त्व पर्यन्त भूतव्याप्ति विद्यमान है।

पशुभाव के शमन के लिए **पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्ति** (शिव से अभिन्न आचार्य के हृदय में पारमार्थिक स्वरूप से स्फुरित होकर) **शिष्य के समस्त अध्वा को,** संकोचप्रशमन द्वारा संकुचितस्वशक्तिसार के रूप में विस्फुरित होती हुई (दीक्षाज्ञान आदि के द्वारा) **शोधित करती है।** शुद्ध प्रमाता परभैरवस्वरूप है।

'सर्वं सर्वात्मकम्' कहकर **आचार्य क्षेमराज** ने सारे द्वैतविस्तार में अद्वैत की प्रतिष्ठा की है। मन्त्रादिक **शोधक** हैं। पश्चात्मा में अभिनिविष्ट तत्त्व ही **शोध्य** हैं।

महेश्वरानन्द की अध्वशोधन-प्रक्रिया-

आचार्य महेश्वरानन्द 'महार्थमञ्जरी' की कारिका— 'यदध्वनां च षट्कं तत्र प्रकाशार्थलक्षणमर्धम्। विमर्श शब्दस्वभावमर्धमिति शिवस्य यामलोल्लासः॥' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—

(१) **अध्व ६ हैं** अर्थात् वे हैं—'वर्ण'। 'पद'। 'मन्त्र'। 'कला'। 'तत्त्व'। 'भुवन'॥ ये च वर्णाः, पदानि, मन्त्राः, कलाः तत्त्वानि, भुवनानि व्याख्यायन्ते॥"

(२) **'वर्ण'** ५० हैं। (३) **'पद'** अनन्त हैं। ये व्योम, आप्य आदि से सम्बद्ध ८१ हैं। (४) **'मन्त्र'** भी अनन्त हैं किन्तु ब्रह्मपञ्चक अङ्गषट्क की सङ्कोचदृष्टि के आधार पर तो ११ ही हैं। **'कला'**– निवृत्ति आदि ५ कलायें हैं।

(१) **निवृत्तिकला** में क्षितिरूप वाच्य के लिए 'क्ष' रूप वर्ण, पद और मन्त्र वाचक हैं। २८ पद हैं। हृदयसद्योजात मन्त्र है। पृथ्वी तत्त्व है। कालाग्निरुद्र से भद्रकाली तक १०८ भुवन हैं।

(२) **प्रतिष्ठा कला** में 'ह' से लेकर 'ट' पर्यन्त २३ वर्ण वाचक हैं। ५६ भुवन, ५ मन्त्र, दो, चार अक्षरों वाले मन्त्र, ३, ५ अक्षरों वाले मन्त्र। २१ पद हैं, शिवोवामदेव मन्त्र हैं, जल से लेकर प्रकृति (अव्यक्त) पर्यन्त तत्त्व हैं और उनके वाचक 'ह' से 'ट' पर्यन्त २३ वर्ण हैं। २३ तत्त्व हैं। अमरेश से श्रीकण्ठ पर्यन्त षट्पञ्चाशत (५६) भुवन हैं।

(३) **'विद्या कला'** (बोधिनी) में अ से घ पर्यन्त वाचक वर्ण हैं। २० पद हैं। शिखा एवं घोर दो मन्त्र है। पुरुष आदि माया पर्यन्त सात तत्त्व हैं। भीम आदि अगुष्ठमात्रान्त **२७ भुवन** हैं।

(४) **'शान्ता कला'** में 'ग' 'ख' 'क' ३ वर्ण हैं। ११ पद हैं। कवच तत्पुरुष दो मन्त्र हैं। शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव ३ तत्त्व हैं और उनके वाचक 'ग' 'ख' 'क' वर्ण हैं। वामादिसदाशिवान्त १८ भुवन हैं।

(५) **'शान्त्यतीता कला'** में १६ स्वर ही वर्ण हैं। पद एक हैं। ईशान नेत्र एवं अस्त्र ३ मन्त्र हैं। तत्त्व केवल एक है और वह है शक्तिस्वभाव शिव। यहाँ निवृत्ति आदि में अनाश्रितान्त १५ भुवन हैं।

—महेश्वरानन्द

ऊपर के विवरण को देखने पर यह सिद्ध होता है कि इस विषय में दृष्टिभेद भी है।

'पाञ्चरात्र' नामक ग्रन्थ की षडध्वशोधन सम्बधिनी दृष्टि

'पाञ्चरात्र' नामक वैष्णवागम में षडध्वशुद्धि की प्रक्रिया भिन्न है। **'सात्वत-संहिता'** आदि वैष्णव संहिताओं में उसका सविस्तार वर्णन किया गया है। तदनुसार (अध्वषट्क में) **'भुवनाध्वा'** एवं **'पदाध्वा'** में स्थित सुषुप्ति आदि त्रिक की हेयता का वर्णन किया गया है तथा तुर्यपद में स्थित मन्त्राध्वा आदि की उपादेयता को प्रतिपादित किया गया है। शुद्ध-बुद्धमुक्त के लिए तो उपादेय भी हेय हो जाते हैं।

षडध्व-शुद्धि

प्रमा, प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेय आदि से छहों अध्वा अवभासित होते हैं। अपने शरीर की शुद्धि होने पर ये अध्वा भी शुद्ध हो जाते हैं। 'अपने शरीर की शुद्धि' का अर्थ है असाधारण कलाद्यात्मक स्वरूप की शुद्धि। इस शुद्धि की दशा में भोग के प्रति स्वाभाविक आसक्तिजन्य मालिन्य विनष्ट हो जाता है।[1]

---

१. "एवं मामातृमानत्वमेयत्वैर्योऽवभासते।
षड्विधः स्ववपुः शुद्धौ शुद्धि सोध्वाधिगच्छति॥" (१५/८२)

अभिनव गुप्त कहते हैं—

'षड्विधः स्ववपुः शुद्धौ शुद्धिं सोऽध्वाधिगच्छति ॥'

प्रश्न– 'शुद्धि' किसे कहते हैं?

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—

"शोधनं बहुधात्तदभोगप्राप्त्येकतानता।
तदाधिपत्यं तत्त्यागस्तच्छिवात्मत्ववेदनम्।
तल्लीनता तन्निरासः सर्वं चैतत् क्रमाक्रमात् ॥"[१]

(१) **'भोगप्राप्त्येकतानता'**= कर्मोपभोग में लिप्सा एवं लिप्तता ही कर्मभोगों की वासना हेतु चलने वाले संसृति चक्र की अनवरतता 'एकतानता' कही जाती है।

(२) **'तदाधिपत्य'**= अणु का अपने कर्मभोग में प्राप्त अधिकार।

(३) **'तत्त्याग'**= भोगोपरान्त कर्मफल का अन्त होने पर **'निष्कृति'** प्राप्त।

(४) **'तच्छिवात्मत्ववेदन'**= पाशभंग होने पर 'निवृत्ति कला' का अनावरण और शिवत्व-प्राप्ति।

(५) **'तल्लीनता'**= भोग में आसक्ति।

(६) **'तन्निरास'**= भोगसमाप्ति।

(७) **'क्रमाक्रमात्'**= चाहे क्रम से हो चाहे अक्रम से हो किन्तु शुद्धि होनी चाहिये ॥

षडध्व-शुद्धि (कालाध्वा की शुद्धि; देशाध्वा की शुद्धि)

कलाध्वा-शुद्धि– (१) वर्णशुद्धि, (२) पद शुद्धि, (३) मन्त्र शुद्धि।

देशाध्वा-शुद्धि– (१) कलाध्व-शुद्धि, (२) तत्त्वाध्वा-शुद्धि, (३) भुवनाध्वा-शुद्धि [शब्दाध्वा एवं अर्थाध्वा की शुद्धि]

'स्वच्छन्द तन्त्र' में षडध्वशुद्धि का स्वरूप

'स्वच्छन्द तन्त्र' के चतुर्थ पटल में व्याप्यव्यापकभावावलोकन द्वारा 'षडध्व शुद्धि' की व्याख्या की गई है। यहाँ पर पाँच कलाओं के शोधन को ही प्रमुखता प्रदान की गई है। वहाँ कहा गया है—

---

१. तन्त्रालोक (११/८५-८६)।
'मन्त्र' **शोधक** है और **'अध्व' 'शोध्य'** है। यह शोधन भी व्यावहारिक है न कि तात्त्विक है।

'**कलाश्च** पञ्चविज्ञेयास्त**त्त्वं** षट्त्रिंशदेव तु।
स **चतुर्विंशतिर्ज्ञेयं** भुवनानां **शतद्वयम्**।
एकाशीतिपदान्यत्र वर्णार्धशतिका स्मृता।
मन्त्रा एकादश ज्ञेया इत्येतच्चाध्वमण्डलम् ॥

इस प्रकार वहाँ षडध्व के सिद्धान्तागम को स्वीकार तो किया ही गया है। वहाँ अध्वषट्क को प्राण में संस्थित माना गया है—

'अध्वषट्कं यथा प्राणे संस्थितं कथयामि ते।' (४/२४१)

'षट्त्यागात् सप्तमे लयः' (स्वच्छन्द तन्त्र ४/२४६) एवं नेत्र तन्त्र २२/२०) स्वच्छन्द एवं नेत्र दोनों तन्त्रों में स्वीकार किया गया है।

नेत्रोद्योतकार क्षेमराज कहते हैं–

''षण्णामध्वनां कारणानां च त्यागात् सप्तमेऽध्वकाररणातीते परधाम्नि (लयः) ॥''

स्वच्छन्दो द्योतकार क्षेमराज कहते हैं—

'सर्वोपलभ्या **अकारोकारमकार कलाः, योगिगम्यास्तु** बिन्दुनादव्यापिन्य इत्यासां षण्णामपि त्यागात् परमयोगिनां सप्तमे परशक्तिमति परतत्त्वे एव लयो विश्रान्तिः कार्या ॥''

प्र. षडध्व के कारण कौन हैं? (कारणाष्टक) ॥

'उद्गीथाक्षरसम्बद्धं तत्त्ववर्णपदात्मकम्।
भुवनानि कला मन्त्राः कारणानि षडेव तु।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चापीश्वरश्च सदाशिवः।
शिवश्चेति (२२/१९-२०) षडध्व के कारण) ॥''

समस्त अध्व षट्क संवित्तत्व में ही संस्थित है। उसके द्वारा ही अन्तः-करण-शून्य-बुद्धि-नाडीचक्र आदि आन्तरिक एवं बाहर लिङ्ग-मूर्ति-वह्नि-स्थण्डिल आदि में समस्त एवं व्यस्तरूप में तथा क्रमाक्रम पद्धति से अवस्थित हैं।

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि

आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि कलाध्वा में ही शेष अध्वों की वर्तमानता है। अष्टमाह्निक में कहा गया है कि सारे अध्वा चिन्मात्र में सम्प्रतिष्ठित हैं और जो वहाँ नहीं है उनके अस्तित्व की कल्पना आकाशकुसुम की कल्पना की भाँति मिथ्या है।

"अद्वा समस्त एवायं चिन्मात्रे सम्प्रतिष्ठितः।
यत्तत्र नहि विश्रान्तं तन्नभः कुसुमायते।
संविद्द्वारेण तत्सृष्टे शून्ये धियि मरुत्सु च।
नाडीचक्रानुचक्रेषु बहिर्देहेऽध्वसंस्थितिः॥"[1]

साधकों का कार्य है कि वे अपने शरीर को सम्पूर्ण विश्वाध्व के रूप में कल्पित करें और उसके साथ एकात्मता की अनुभूति करें। इस प्रकार घट-पट-लिङ्ग-स्थण्डिल आदि सभी बाह्य पदार्थों में अपनी स्थिति देखकर उनके साथ तादात्म्य स्थापित करें।

'षडध्व-शुद्धि' है क्या? विश्वाध्व या अध्वषट्क के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करके षडध्व की पृथक स्थिति का विलापन ही 'षडध्व शुद्धि' है—

"इदं विभावनमेवात्र षडध्वविलापनं **षडध्वशुद्धिरित्युच्यते**॥"

तन्त्रालोककार कहते हैं–

"ज्ञात्वा समस्तमध्वानं तदीशेषु विलापयेत्।
तान् देहप्राणधी चक्रे पूर्ववद् गालयेत् क्रमात्।
तत्समस्तं स्वसंवित्तौ सा संविद्भरितात्मिका।
उपास्यमाना संसारसागर प्रलयानलः॥"[2]

\+ \+ \+ \+

संविदेकात्मतानीतभूतभावपुरादिकः।
अव्यववच्छिन्नसंवित्तिर्भैरवः परमेश्वरः।
श्रीदेव्यायामले चोक्तं षट्त्रिंशत्तत्त्वसुन्दरम्।
अध्वानं षड्विधं ध्यायन् सद्यः शिवमयो भवेत्॥[3]

अर्थात् समस्त अध्वामण्डल चिन्मात्र में ही सम्प्रतिष्ठित है। उसके अतिरिक्त यह कुछ भी नहीं है। जो उसमें स्थित है उसी मात्र की सत्ता है अन्य की नहीं। अन्य की कल्पना आकाशकुसुम की कल्पना है।

अध्वावर्ग संवित् तत्त्व के अतिरिक्त है ही नहीं फिर बाह्य भाव के रूप में

---

१. तन्त्रालोक (८/३-४)।
२. तन्त्रालोक (८/७-८)।
३. तन्त्रालोक (८/१५-१६)।

दृष्टिगत कैसे होता है? इसका कारण यह है कि संवित शक्ति स्वात्मस्वातन्त्र्य के प्रभाव से स्वस्वरूपगोपन करके शून्य, प्राण, बुद्धि एवं देह प्रमाताओं के अतिरिक्त बाह्य जागतिक प्रमेयों से अपृथक रहकर भी पृथकवत एवं अनतिरिक्त रहकर भी अतिरिक्तवत भासित होती है और अपने में ही ६ अध्वाओं को भी धारण करती है।

समस्त अध्वावर्ग को जान लेने के उपरान्त इसका **विलापन** उन-उन अध्वाओं के अधिपतियों में करना चाहिये। शून्य, प्राण एवं बुद्धि चक्रों में उन **अधीश्वरों का भी विलापन** करना चाहिये। एक के बाद एक को आत्मसात् करते हुए साधक को अपनी सत्ता को परमसत्ता की चिन्मयता में समाहित कर देना चाहिये। संवित् शक्ति समस्त प्रमेयों (वेद्यवर्ग) का ग्रास कर लेती है। परिशील्य-मान संवित् संसारसागर को प्रलयानल की भाँति सुखा डालती है और साधक परमाद्वैतभाव प्राप्त कर लेता है।

संवित् तत्त्व से ऐकात्म्य-प्राप्ति के महाप्रभाव से यह समस्त भूतभाव एवं यह निखिल षडध्व-विस्तार अभेद रूप से उल्लसित प्रतीत होने लगता है। अव्यवच्छिन्न संवित्ति ही परमेश्वर भैरव का 'स्व' भाव है। **श्री देवी यामल** के कथनानुसार ३६ तत्त्वों से संवलित इस षडध्व-सुन्दर विश्व का ध्याता तत्काल शिवमय हो जाता है। **'ध्यान'** स्वात्मसंविदैक्यपरामर्शसंवलित होना चाहिये। इसीलिए कहा गया है कि— ३६ तत्त्वों से प्रकाशमान षडध्वसुन्दर विश्व का ध्याता (चिन्तक) सर्वोच्च एवं शाश्वत पद प्राप्त कर लेता है—

'अध्वानं निखिलं देवि ! तत्त्वषट्त्रिंशदुज्ज्वलम्।
चिन्तयन् सद्य आप्नोति पदं शाश्वतमुत्तमम्॥'[१]

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि -

आचार्य क्षेमराज ने भी अभिनवगुप्त प्रतिपादित अध्वशोधन की प्रक्रिया का अनुसरण किया है। वे कहते हैं— (१) चिदानन्दघन, स्वतन्त्रभट्टारक परमेश्वर **'उन्मना'** नामक अपनी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' के द्वारा शून्य से लेकर क्षितिपर्यन्त अनन्त वाच्य-वाचकरूप विश्व को स्वभित्ति पर अपने से अनधिक होते हुए भी अधिक की भाँति अवभासित करता है।

(२) उस अवभासन क्रिया में वाचक-वाच्य विभाग में से **'वाचक'** ग्राहक है जो कि पर, सूक्ष्म एवं स्थूल भेद के द्वारा वर्ण-पद-मन्त्र के रूप में तीन प्रकार

---

१. 'विवेक' में उद्धृत।

का है। जहाँ तक **'वाच्य'** की बात है वह 'ग्राह्य' है और (१) **कला** (२) **तत्त्व** (३) **भुवन** के रूप में तीन भेदों में अवस्थित हैं।

'वर्णाध्वा' या 'वर्ण' अभेदविमर्शसारात्मक हैं तथा थोड़ा भी स्थूलता प्राप्त करने पर **भेदाभेदविमर्शनात्मकमन्त्र** का स्वरूप धारण कर लेते हैं तथा पूर्ण स्थूल रूप धारण कर लेने पर **भेदविमर्शात्मक स्वरूप** में अवभासित होते हैं।

(३) वाच्यस्वरूपा भगवती पारमेश्वरी **'कला' 'शक्ति'** उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य द्वारा **'तत्त्व'** एवं **'भुवन'** का स्वरूप धारण कर लेती हैं। यथार्थत: तो सर्वत्र पारमेश्वरी शक्ति ही स्फुरित होती है। किन्तु वहाँ भी **'स्वातन्त्र्य शक्ति'** के द्वारा शक्ति दर्पणनगरवत् क्रम भी परिलक्षित करती है। क्रम में भी पूर्ववर्ती परवर्ती में व्यापक रूप में स्थित है यथा घटादिक में मृत्स्ना। इसी प्रकार क्रमश: उत्तरोत्तर स्थित पदार्थ शक्ति की दृष्टि से पूर्ववर्ती पदार्थों (सत्ताओं) में अवस्थित है यथा वृक्ष एवं बीज। इसीलिए सिद्धान्त यह स्थापित होता है कि सभी में सभी कुछ है—

"उत्तरमुत्तरं तु पूर्वत्र शक्त्यात्मना स्थितं।
वृक्ष इव स्वबीज इति **सर्वं सर्वात्मकमेव** ॥"

अत: पञ्चतत्त्व दीक्षा में अनाश्रित तत्त्व पर्यन्त भूत व्याप्ति है।[१]

एक भी प्रमाता-भाव वस्तुत: षडध्वस्काररूप पारमेश्वरी शक्ति से संवलित आदि हान्त (अ से ह पर्यन्त) परामर्शसाररूप एवं अहन्ताविश्रान्ति रूप परभैरव-स्वरूप ही है। इस रहस्य के अज्ञान के कारण पारमेश्वरी मायाशक्ति के द्वारा प्रमाता (अपूर्णमन्य सकल प्रमाता) शब्दराशि की कला के विभव के विलुप्त हो जाने से—

("शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गत: सन् स पशु: स्मृत: ॥")[२]

वर्णों एवं कलाओं के द्वारा तात्त्विक स्वरूप में स्फुरित 'प्रत्ययोद्भव'-क्रम के द्वारा—

"स्वरूपावरणे चास्य शक्तय: सततोत्थिता:।
यत: शब्दानुवेधेन न विना **प्रत्ययोद्भव:** ॥"[३]

---

१. क्षेमराज— स्वच्छन्दोद्योत (४/९७)।
२. स्पन्दकारिका (४५)।
३. स्पन्दकारिका (४७)।

"सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका ॥"[१]

जीव देहादिक में अहंभाव ग्रहण करके तथा पञ्च महाविषयों में भोक्तृत्वाभिमान द्वारा, 'खेचरी' आदि शक्तिचक्र (**'खेचरी'**, **'भूचरी'**, **'दिक्चरी'** एवं **'गोचरी'** या माहेश्वरी, ब्राह्मणी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, याम्या, चामुण्डा तथा योगीशी आदि शक्ति समूह) का भोग बनकर बन्धनग्रस्त **'पशु'** बन जाता है—
"कला- विलुप्तविभवो गतः सन् स **पशुः** स्मृतः ॥"

इस पशुभाव के शमनार्थ पारमेश्वरी अनुग्राहिकाशक्ति शिव से अभिन्न आचार्य के हृदय में अपने पारमार्थिक स्वरूप में स्फुरित होकर शिष्य के समस्त अध्वाओं के सङ्कोच का प्रशमन करके, असङ्कुचित स्वशक्ति के रूप में स्फुरित होती हुई साधक का दीक्षा-ज्ञान आदि साधनों द्वारा **शोधन** करती है। इस प्रकार शक्तिसम्पन्न मन्त्रादिक (जो आचार्य द्वारा शक्तिसम्पन्न बना दिये जाते हैं) ही **शोधक** बन जाते हैं तथा **शोध्य** पश्वात्मा का शोधन करते हैं। यही है **शोध्यशोधक भाव**।

'तन्त्रसार' में प्रतिपादित अध्वशोधन की प्रक्रिया-

'तत्त्वप्रकाशतात्पर्यदीपिका' के ग्रन्थकार ने कालाध्वा को उपादेय माना है तथा अन्य को हेय माना है। **महेश्वरानन्द की भी यही दृष्टि है**।

षडध्व (१) **'शब्दाध्वा'** एवं (२) **'अर्थाध्वा'** के रूप में दो स्वरूपों में विभाजित हैं। **'भुवनाध्वा'** को तत्त्वाध्वा में, **'तत्त्वाध्वा'** को **'कलाध्वा'** में लयीभूत कर देना चाहिये। **'मन्त्राध्वा'** को पदाध्वा में एवं **'पदाध्वा'** को वर्णाध्वा में लयीभूत कर देना चाहिये। **'स्वच्छन्द तन्त्र'** एवं **'तन्त्रालोक'** में कहा गया है कि शिष्ट अध्वाओं का **'कलाध्वा'** में उपसंहार कर दिया जाना चाहिये। वर्णपारम्यवादियों के मतानुसार **अनुत्तर अकार का** एवं **कलापारम्यवादियों** के मतानुसार **'शान्त्यतीता कला'** का **'परशिव'** में लय कर देना चाहिये।

मालिनीविजयतन्त्र के मतानुसार वर्णात्मिका मालिनी में अवशिष्ट अध्वाओं का उपसंहार कर देना चाहिये।

'अभिन्नमालिनीकाये' तत्त्वानि भुवनानि च।
कलाः पदानि मन्त्राश्च यथावदवधारिताः ॥'[२]

---

१. स्पन्दकारिका (४८)।
२. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र (४/१०)।

'एकमेकं पृथक् क्षार्णं पदार्णमनुषु स्मरेत्।

कालाग्निभुवनाद्यावद्वीरभद्रपुरोत्तमम्।

पुरषोडशकं ज्ञेयं षड्विधोऽध्वा प्रकीर्तिता: ।।''[१]

कहकर 'मालिनीविजय' में षडध्व पर प्रकाश डाला गया है। लय क्रम बताया गया है।

नवमाधिकार में— "ततः **षड्विधमध्वानमनेनाधिष्ठितं स्मरेत्**" कहकर आगे शोधन-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है यथा–

"शिष्यमण्डलवह्नीनां तत्रैकं भावयेत्स्थितम्।

शोध्याध्वानं तु शिष्याणां न्यस्य देहे पुरोक्तवत् ।।''[२]

'तद्वच्च **वर्णमार्गे**ऽपि चतुर्धा पदवर्त्मनि।

अष्टधा मन्त्रमार्गेऽपि कलाख्येऽपि च तद्विधा।

त्रिखण्डे विंशतिगुण: स एव परिकीर्तित:।

इति **सर्वाध्वसंशुद्धिः** समासात्परिकीर्तिता ।।''[३]

षडध्वशोधन का अन्तिम लक्ष्य

'मालिनीविजयोत्तर तन्त्र' में षडध्वशोधन का लक्ष्य शिवत्व-योजन, **'अहमिदं' की अनुभूति** या **'विश्वहन्ता'** की प्राप्ति बताया गया है।

(१) इत्येतत्सर्वमालोच्य **शोध्याध्वानं** विचिन्तयेत्।[४]

(२) अहमेव परं तत्त्वं मयि सर्वमिदं जगत्।

अधिष्ठाता च कर्ता च सर्वस्याहमवस्थित:।

तत्समत्वं गतो जन्तुर्मुक्त इत्यभिधीयते।

एवं सञ्चिन्त्य भूयोऽपि शोध्यमाद्यं समाश्रयेत् ।।[५]

(३) विलीनं भावयेच्छुद्धमशुद्धे परमेश्वरि ।।[६]

(४) कृत्वा शिष्यं तथात्मस्थं मूलमन्त्रमनुस्मरेत्।

---

१. मा. वि. तन्त्र, (२/५१-५२)।
२. मा. वि. तन्त्र (९/५१)
३. मा. वि. तन्त्र (९/८१-८२)।
४. मा. वि. तन्त्र (९/५०)।
५. मा. वि. तं. (९/५२-५३)।
६. मा. वि. तं. (९/६९)।

शिवशक्तिं तथात्मानं शिष्यं सर्पिस्तथानलम्।
एकीकुर्वनञ्छनैर्गच्छेद्द्वादशान्तमनन्यधी: ।''[१]
(५) एवंभूतं शिवं ध्यात्वा तद्गतेनान्तरात्मना।
भाव्यं तन्मयमात्मानं दशधा वर्तयेच्छिवम् ॥''[२] आदि।

लोक-कल्पना

उपनिषदों, पुराणों एवं तन्त्रग्रन्थों (तन्त्राम्नाय) में भिन्न-भिन्न लोकों का उल्लेख मिलता है।

मायोर्द्धव स्तर पर संक्षुब्ध बिन्दु से नाद, ज्योति या वाच्य-वाचक अध्वा की सृष्टि होती है। **'वाचकाध्वा'** में ३ अध्वा— 'वर्ण', 'पद' एवं 'मन्त्र' सम्मिलित हैं और **'वाच्याध्वा'** में ३ अध्वा— 'कला', 'तत्त्व' एवं 'भुवन' सम्मिलित हैं। पूर्व-पूर्व 'अध्वा' उत्तरोत्तर अध्वों में व्याप्त हैं। इनमें ५ **कलायें** हैं— शान्त्यतीत, शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति। **''तत्त्व''** ३६ हैं। **'भुवन'** असंख्य हैं।

यदि हम भुवनों की ओर दृष्टि डालें और **'षट्त्रिंदशदात्म जगत्'** का लोकात्मक विभाजन करें तो—

(१) 'पुराणों के अनुसार

''ब्रह्माण्ड'' सर्वोपरि है; क्योंकि इसी में (क) ७ ऊर्ध्वलोक : भुलोक से सत लोकपर्यन्त समस्त लोक एवं (ख) ७ अधोलोक : ७ पातालादिक अधोभुवन सम्मिलित हैं और इन सबकी समष्टि **'ब्रह्माण्ड'** है।

(२) तंत्राम्नाय के अनुसार

'ब्रह्माण्ड' से ऊपर अनेक लोक-रचनायें हैं यथा (क) 'प्रकृत्यण्ड' (ख) 'मायाण्ड' (ग) 'शाक्ताण्ड' 'ब्रह्माण्ड' प्रकृत्यण्ड' 'मायाण्ड' और 'शाक्ताण्ड'— को अन्तर्गर्भित करके जो स्थित है उसे कहते हैं **'विश्व'**। शिवतत्त्व **'विश्वातीत'** है।

परशुराम जी की दृष्टि

परशुराम जी **'परशुराम कल्पसूत्र'** में कहते हैं कि 'विश्व' में सारे ३६ तत्त्व अन्तर्गर्भित हैं।

---

१. मा. वि. तं., (९/७६-७७)।
२. मा. वि. तं., (९/४२)।

"षट्त्रिंशत्तत्त्वानि विश्वम् ॥" दीक्षाविधि[1]

'प्रकृत्यण्ड'
(१) असंख्य प्रकृत्यण्ड हैं ।
(२) एक-एक प्रकृत्यण्ड में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं ।
(३) प्रकृत्यण्डों का उपादान जल से प्रकृति पर्यन्त है ।

'मायाण्ड'
(१) एक 'मायाण्ड' में असंख्य प्रकृत्यण्ड हैं ।
(२) 'मायाण्ड' पुरुष से लेकर षट् कञ्चुक पर्यन्त फैला हुआ है ।

(प्रकृत्यण्डों का उपादान जल से प्रकृति पर्यन्त समस्त तत्त्व ही इसके उपादान हैं ।)

'शाक्ताण्ड'
(१) यह माया से ऊपर का लोक है ।
(२) माया तत्त्व के ऊर्ध्व ज्योतिर्मय, शुद्ध एवं सत्वात्मक लोक शाक्ताण्ड है ।

(मायाण्ड का उपादान पुरुष से लेकर षट् कञ्चुक इसके उपादान हैं ।)

(शाक्ताण्ड का उपादान– (१) शुद्धविद्या, ईश्वर एवं सदाशिव हैं ।)

'शाक्ताण्ड' (४)	**कला– 'शान्तिकला' अधिष्ठाता=ईश्वर, सदाशिव** ।। यह शुद्धाध्वा में स्थित है । वैष्णव एवं शैव आचार्य भी इसे शुद्ध जगत स्वीकार करते हैं । महायानी इसे **'अनाश्रव धातु'** कहते हैं ।
'मायाण्ड' (३)	**कला= 'विद्याकला' । अधिष्ठाता–रुद्र ।**
'प्रकृत्यण्ड' (२)	**'कला= 'प्रतिष्ठा कला' । अधिष्ठाता–विष्णु ।**
'ब्रह्माण्ड' (१)	**कला='निवृत्ति कला'=अधिष्ठाता=ब्रह्मा ।।**

---
१. परशुरामकल्पसूत्र (प्रथम खण्ड) ।

कलायें

'शाक्ताण्ड'	'मायाण्ड'	'प्रकृत्यण्ड'
में='शान्ति कला'	**में 'विद्या-कला'**	**में 'प्रतिष्ठा-कला'**

ब्रह्माण्ड में
='निवृत्तिकला'

शिवतत्त्व में
'शान्त्यतीता कला'

(१) 'विश्वातीत'
(२) 'विश्व'

विश्वातीत परमशिव
* ईश्वर सदाशिव *
* रुद्र *
* विष्णु *
* ब्रह्मा *
१४ भुवन
ब्रह्माण्ड
प्रतिष्ठा कला
प्रकृत्यण्ड
विद्या कला
मायाण्ड
रुद्र
ईश्वर सदाशिव
शाक्ताण्ड
शून्य
शून्य
शुद्ध विद्या से सदाशिव
विश्वातीत परमशिव

'शान्त्यतीता कला' : विश्वातीत

विश्व

१. 'शान्ति कला'
'शाक्ताण्ड'
↑
२. 'विद्या कला'
'मायाण्ड'
↑
३. 'प्रतिष्ठा कला'
'प्रकृत्यंड'
↑
४. 'निवृत्ति कला'
'ब्रह्माण्ड'
(ब्रह्माण्ड)

अहं के स्तर

(१) **अभेद भूमि**



(२) **'भेदाभेदाभूमि'**



(३) **'भेदभूमि'**



विश्व के विभिन्न स्तर

(१)	(२)	(३)
अभेद भूमि (परमशिव)	**भेदाभेद भूमि शिव-शक्ति से शुद्ध विद्या**	**भेद भूमि** माया से पृथ्वी पर्यन्त
	(१) 'ईश्वर' (२) 'शुद्ध विद्या'	माया भूमि

अभेद भूमि का स्वरूप

"व्यपदेष्टुमशक्यासौ अकथ्या परमार्थत: ॥" (विज्ञानभैरव)

'शिव'	'अहमिदम्'	'इदमहम्'
"सिसृक्षारूपोपाधि विशिष्ट: **'परमशिव'** एव।"	"जगत: अहन्तया यद्दर्शनं तदहमिति वृत्तिमान **'सदा शिवपद'**वाच्य- **स्तृतीयं तत्वम्**	इदं जगदिति केवल भेदविषयिणी सा वृत्तिस्तद्वान ईश्वर पद वाच्य।[1]

शुद्ध विद्या का भुवन

'महामाया' के ऊर्ध्वभाग में **शुद्ध विद्याभुवन** हैं।
=शुद्ध विद्या के भुवन में— ९ शक्तियाँ स्थित हैं। (१) 'वामा' (२) 'रौद्री' (३) 'ज्येष्ठा' (४) 'काली' (५) 'कलविकरणी' (६) 'बलविकरणी' (७) 'मथनी' (८) 'दमनी' (९) 'मनोन्मनी'। यहीं ७ करोड़ मुख्य 'मन्त्र' भी रहते हैं।

"**महामायोर्ध्वत:** शुद्धा **महाविद्या**ऽथ मातृका।
वागीश्वरी च तत्रस्थं वामादि नवसत्पुरम्॥
वामा ज्येष्ठा रौद्री काली कलविकरणी बलविकारिके तथा।
मथनी दमनी मनोन्मनी च त्रिदृश: पीता: समस्तास्ता:॥
सप्तकोट्यो मुख्यमन्त्रा विद्यातत्त्वेऽत्र संस्थिता:॥"[2]

शक्तियाँ और उनके कार्य

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'वामा' वमन (विराग) शक्ति।	**'ज्येष्ठा'** पालिका शक्ति।	**'रौद्री'** विश्वोपसंहार की शक्ति।	**'काली'** प्राणियों का आकलन करने वाली शक्ति।	**'कल विकरणी'** कला का विकीर्णन करने वाली शक्ति।

१. प. क. सू. की टीका।
२. तन्त्रालोक (८/३३७-३३९)।

(६)	(७)	(८)	(९)
'बल विकरणी' कला का विकीर्णन करने वाली शक्ति।	**'बल प्रमथनी'** बल का मन्थन करने वाली शक्ति।	**'दमनी'** मन के सङ्कल्पों का दमन करने वाली शक्ति।	**'मनोन्मनी'** मन को अमन बनाने वाली शक्ति।

स्वच्छन्दतन्त्र (१०/११४९)

(इन मन्त्रों और विद्याओं की सात स्वामिनियाँ हैं।)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	
त्रिगुणी	ब्रह्मवेताली	स्थाणुमती	अम्बिका	रूपिणी	मर्दिनी	ज्वाला	= ७ नाम

दीक्षा के अवसर पर इनका शोधन कर दिया जाय तो समस्त विद्याओं एवं मन्त्रों का शोधन हो जाया करता है।

'शुद्धविद्या' मायान्त सम्पूर्ण विश्व के भेदवादिता का इदन्ता के रूप में विमर्श करती है। ये सर्वज्ञा एवं मन्त्राश्रया है। यह **ईश्वरफलक** में **अहन्ता और इदन्ता के सामान्याधिकरण्य को आभासित** करती है। 'शुद्धविद्या' शुद्धाध्वा का प्रथम सोपान है। शुद्धविद्या का प्रथम विमर्श—

'अहम् अहम् अस्मि'— 'इदम् इदम् अस्ति' की अनुभूति होती है। ईश्वर का अहं-विमर्श है—

"अहमिदम्"

"त्रिगुणी ब्रह्मवेताली स्थाणुमत्यम्बिका परा।
रूपिणी मर्दिनी ज्वाला सप्तसंख्यस्तदीश्वराः।
विद्याराज्ञयस्तथा ख्याता.......... .... ॥

—स्वच्छन्द तन्त्र (१०/११४९)

ये सभी दिव्यस्वर्ण-कमनीया, **पञ्चानना** और **त्रिलोचना** देवियाँ हैं। ये अमोघवीर्य, तेजोमयी और सर्वज्ञ हैं। इनकी संख्या है तो मात्र नौ तथापि ये **७ करोड़ मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं**। ये सभी **'शुद्धविद्या तत्त्व'** में विराजमान हैं। इनमें से प्रत्येक शक्ति के **एक-एक अरब परिवार हैं**। ये दिव्य भुवनों की निवासिनी हैं।

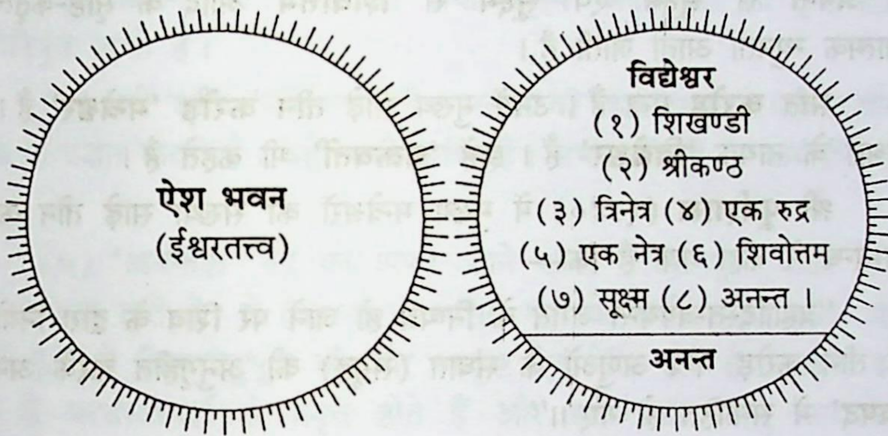
('एकैकार्बुदलक्षांशाः पद्माकारपुरा इह।
विद्याराज्यस्त्रिगुण्याद्याः सप्त सप्तार्बुदेश्वराः ॥')

(**'अर्बुद'**=करोड़ । **'अंश'**=परिवार । —जयरथ)

'ऐश तत्त्व' 'ऐशमण्डल' : 'ईश्वर तत्त्व के भुवन 'ऐश भुवन'=ईश्वर का लोक।

'विद्या तत्त्व' के ऊपर **'ईश्वर तत्त्व' के भुवन** हैं।

प्रथम ७ विद्येश्वरों के नायक **'अनन्त'** हैं। अनन्त महाप्रभु सर्वोपरि हैं, ध्येय हैं और पूज्य हैं।



'स्वच्छन्द तन्त्र' (१०/११६१) के अनुसार, ये आठों दिशाओं के अधीश्वर भी हैं। इनके भुवन का नाम— 'ऐश भुवन'। वहीं भगवान ईश्वर साक्षात् विराजमान हैं।

'बाह्ये तस्यै**श्वरं तत्त्वं** भुवनान्यत्र ये शृणु ॥'[१]
'तत्रस्थ **ईश्वरो** देवो वरदः सर्वतोमुखः ॥'[२]
'विद्यातत्त्वोर्ध्वमैशं तु तत्त्वं तत्र क्रमोर्ध्वगम्।
शिखण्ड्याद्यमनन्तान्तं पुराष्टकयुतं पुरम्।
शिखण्डी श्रीगलो मूर्तिरेकनेत्रैकरुद्रकौ।
शिवोत्तमः सूक्ष्मरुद्रोऽनन्तो विद्येश्वराष्टकम् ॥
क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थानं सप्तानां नायको विभुः।
अनन्त एव ध्येयश्च पूज्यश्चाप्युत्तरोत्तरः ॥[३]

१. स्वच्छन्द तन्त्र (१०/११४९)।
२. स्वच्छन्द तन्त्र (१०/११५२)।
३. तन्त्रालोक (८/३४१-३४३)।

"ऐशं तत्त्वम्" ईश्वरतत्त्वं तत्र पुरमप्यैशमित्यार्थाद्योज्यं, यत्र भगवानीश्वर: साक्षादस्ति ।।"[१]

शिखण्ड्याद्यअनन्तान्त विद्येश्वर पूर्व से ईशान कोण तक अष्ट दिशाओं के अधीश्वर हैं—

'विद्येश्वरानतो वक्ष्ये पूर्वदीक्षान्तगान्क्रमात् ।।'[२]

'शिखण्डी' से सृष्टिकर्ता **'श्रीकण्ठ'** और श्रीकण्ठ से **'त्रिमूर्ति'** श्रेष्ठतर हैं। **'अनन्त'** से **'सूक्ष्म'** एवं **'सूक्ष्म'** से **'शिवोत्तम'** आदि के सृष्टि-कर्तृत्व में कलात्मक न्यूनता आती जाती है।

सात करोड़ मन्त्र हैं। उनमें मुख्य साढ़े **तीन करोड़ 'मन्त्रेश्वर'** हैं। इन मन्त्रेश्वरों के नायक **'विद्येश्वर'** हैं। इन्हें **'चक्रवर्ती'** भी कहते हैं।

श्री पूर्वशास्त्र (१.४०) में मुख्य मन्त्रेश्वरों की संख्या साढ़े तीन कहकर तत्सम्बन्ध में कहा गया है कि—

"ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त जगत के निष्पन्न हो जाने पर शिव के द्वारा नियोजित साढ़े तीन करोड़ मन्त्र अणुओं के संघात (समूह) को अनुगृहीत करके अनामयं **'शैवपद'** में समाहित हो गए।।"

"ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ते जातमात्रे जगत्यलम्।
मन्त्राणां कोट्यस्तिस्र: सार्धा: शिवनियोजिता: ।।
अनुगृह्याणुसंघातं याता: पदमनामयम् ।।"[३]

"**मुख्यमन्त्रेश्वराणां** यत् **सार्धं कोटित्रयं** स्थितम्।
तन्नायका इमे तेन विद्येशाश्चक्रवर्तिन: ।।"[४]

'मन्त्र' सात करोड़ ही हैं किन्तु इनके नायक होने के कारण रुद्रों को **'विद्येश्वर'** कहना पड़ता है।

'स्वच्छन्द तन्त्र' में **अनन्ताद्य शिखण्ड्यन्त** रुद्रों का वर्णन है।[५] **'तन्त्रालोक'** में **शिखण्डाद्य अनन्तान्त** वर्णन मिलता है।[६]

---

१. जयरथ (विवेक)।
२. स्वच्छन्द तन्त्र (१०/११५९)।
३. मा. वि. (१.४०)।
४. तन्त्रालोक (८/३४४)।
५. स्वच्छन्द तन्त्र (१०/११६१-११६२)।
६. तन्त्रालोक (८/३४१)।

शिव तनु शास्त्र की दृष्टि-

(१) सैकड़ों ग्रन्थियों से युक्ता **माया** के मूर्द्धा**स्थान** अर्थात् शिरोभाग में विराजमान **'शुद्धविद्या'** के दिव्यासन पर **विभु अनन्त** सुशोभित हैं। ये **आठ वामा आदि विद्याओं** से भी **समन्वित** हैं।

(२) 'श्री **अनन्त**' **'गहन' से लेकर निरय पर्यन्त** सारे सर्ग के सर्जन का दायित्व भी सँभालते हैं।

(३) **'अनन्त'** ही **'शिखण्डी'** तथा **'सूक्ष्म'** आदि रुद्रों को सृष्टि प्रक्रिया में विनियुक्त करते हैं।

(४) नवीं शक्ति **'मनोन्मनी'** है। अनन्त की व्यवस्थानुसार यही **मनोन्मनी शक्ति** ही उद्धार करती है। **यही नवी शक्ति** है। सभी शक्तियों के कार्य भिन्न-भिन्न हैं।

(५) **'अनन्तेश'** रुद्र को अपने-अपने कार्यों में विनियुक्त करते हैं तथा स्वयं मध्यस्थ रहते हैं। ये (अनन्तेश) असित मार्ग के अधीश्वर हैं। अतः साधक उनकी कृपा से चिन्मयानुभूति की ओर आकृष्ट एवं प्रेरित होते हैं। साधक इनकी कृपा से **परतत्त्वामर्श** से प्रवृत्त होते हैं और इस प्रकार अणु साधकों का कल्याणारम्भ होता है।

(६) **'गहन' से 'अनन्त'** तक के **अधिकारों के नियन्त्रक शिव हैं :**

'सोऽव्यक्तमधिष्ठाय प्रकरोति जगन्नियोगतः शम्भोः।
शुद्धाशुद्धस्रोतोऽधिकारहेतुः शिवो यस्मात्॥''[१]

(७) शिव के विनियोग के अवसित (समाप्त) हो जाने पर अनेक करोड़ मन्त्रों के साथ **'अनन्तनाथ'** निर्वाण प्राप्त करते हैं।

(८) **'अनन्त'** के निर्वाणस्थ होने पर **'सूक्ष्मरुद्र'** विज्ञानाकल रूप अणुओं पर अनुग्रह करते हैं। **'सूक्ष्म रुद्र'** अनन्त के धाम में पहुँच जाते हैं (उनकी पदोन्नति हो जाती है)।

(९) अष्टम रुद्र— **शिखण्डी 'श्रीकण्ठ' के पद पर आसीन** होने की पदोन्नति प्राप्त कर लेते हैं।

(१०) अपने दायित्व को पूर्ण करने की यह व्यवस्था **'निर्वाण'** प्राप्त करने के सोपान पर समाप्त हो जाती है। इसे **'पराकृति'** (तन्त्रालोक ८/२१९)

---

१. तन्त्रालोक (८/३०६)।

कहते हैं। सारांश यह कि अनन्त भी कार्यमुक्त होकर **निर्वाण** प्राप्त कर लेते हैं। अवशिष्ट मन्त्र-नायक कार्य करते रहते हैं। एक पद से दूसरे उच्चतर पद पर ये मानों पदोन्नत होते चलते हैं। आगे वाले के अवकाश (कार्यमुक्ति) प्राप्त करने पर अन्य की क्रमोन्नति होती जाती है। **'सूक्ष्म'** के अवकाश पाने पर **'शिवोत्तम'** की उन्नति हो जाती है। इन्हें पञ्चमन्त्र विग्रह शिव आदेश प्रदान करते हैं। इस प्रकार इस अधश्चक्र का सञ्चालन **'सूक्ष्म'** करने लगते हैं। उनके बाद **'शिवोत्तम'** कार्य-भार सँभालते हैं। इस प्रकार क्रमोन्नति प्राप्त पद से ऊर्ध्व पद पर समुन्नत होकर एक-एक के अवकाश (कार्यमुक्ति) प्राप्त करने पर क्रमशः ये सभी अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। यही है आवागमन की कारणावस्था।

(११) ये आठों आठ शक्तियों से युक्त हैं और **उत्फुल्ल अरविन्दासन पर आसीन हैं।** परमकारण **'अनन्तेश्वर भगवान'** का हृदय में ध्यान करते हुए ये सभी चक्रवर्ती रुद्र अपना अधिकार समाप्त करके **'परमपद'** प्राप्त कर लेते हैं। ये ७ कोटि **'मन्त्र'** स्वात्म शैव संवित् में विलीन हो जाते हैं। इनमें **'अष्ट शक्तियाँ'** वामा, रौद्री आदि हैं। इन शक्तियों से सदा संयुक्त अणु हैं— **''अनन्त''**।

(१२) परमेश्वर अनन्त **'मनोन्मनी'** शक्ति के द्वारा परम पद प्राप्त करते हैं।

(१३) अधःपथानुयायी अणुगण (जीव) का उद्धार 'अनन्त' **'उन्मनी शक्ति'** द्वारा ही करते हैं। अधःपथानुयायी अणु 'असितक्षेत्र' (अशुद्धाध्वा) के उपासक हैं तथा उच्चतर साधक 'सित क्षेत्र' (शुद्धाध्वा) के उपासक हैं। कहीं यह भी लिखा है कि 'अनन्त असित (या अशुद्धाध्वा) के ही प्रभु हैं।' अनन्तेश (अनन्तेश्वर) के निर्वाणोपरान्त उनके धाम में द्वितीय रुद्र 'सूक्ष्म' का प्रवेश होता है।

'नयते परमं स्थानमुन्मन्या परमेश्वरः ॥'

'सूक्ष्म' 'अनन्त' के स्थान पर पहुँचते हैं और उन्हें अणुआं के उद्धार का दायित्व-निर्वहन करना होता है। उस स्तर पर अणु **'विज्ञानाकल'** के स्तर पर पहुँच जाता है। **'विज्ञानाकल' का स्तर ''शुद्धविद्या'' के स्तर से नीचे है।** अतः वे **असित अध्वा** में है और **'अणु'** कहलाते हैं। मन्त्रेश्वरों के नायक **'विद्येश्वर' हैं।**

''**अनन्त प्रभु** के सद्यः समुदित एवं अव्यक्त **शाङ्कर धाम में आरोहण करते समय** करोड़ों मन्त्र कार्यत्व का परिहार करके **निर्वाण का वरण कर लेते हैं।**'' उसी समय अनन्त नाथ भी निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। श्री अनन्तेश्वर के

निर्वाण के वरण के अनन्तर उनके धाम में द्वितीय रुद्र **'सूक्ष्म'** का प्रवेश हो जाता है। अब **'सूक्ष्म' रुद्र** अणुओं का उद्धार करने का कार्य करते हैं।

अनन्त के उपरत होने पर शेष चक्रवर्ती नायक उस अधिकार का प्रयोग करते हैं। एक से दूसरे पद पर जाते हुए ये रुद्र वहाँ के **'अधिकारी'** हो जाते हैं। यथा अनन्त के उपरत हो जाने पर उस पद पर (अनन्त के पद पर) **'सूक्ष्मरुद्र'** अधिष्ठित होते हैं और **'सूक्ष्मरुद्र'** के स्थान पर **'शिवोत्तमरुद्र'** प्रतिष्ठित हो जाते हैं। **'विज्ञानाकल'स्तरीय अणु** को **'शिखण्डी'** नामक रुद्र के श्रीकैण्ठ धाम अवस्थापित कर देते हैं।

श्रीमतङ्गशास्त्र (५/६२) की दृष्टि

इसमें कहा गया है कि— अनन्तेश्वर के कृतकृत्य होकर निर्वाण प्राप्त कर लेने पर (समारोहण पर्व के अन्त में) **पञ्चमन्त्रतनुभगवान शिव विद्येश्वर सूक्ष्म** को अनन्तेश्वर के दायित्व को वहन करने हेतु आदेश देते हैं। **'शिवोत्तम रुद्र'** सूक्ष्म के भी उपरत हो जाने पर शिव रुद्र सङ्घ को कारण की चरमावस्था में अधिष्ठित कर देते हैं। एक पद से दूसरे पद पर क्रमशः अधिष्ठित एवं उपरत होते हुए इन रुद्रों के निर्वाणारूढ होने पर अन्तिमावस्था आती है जिसे मतङ्ग **'परमाकाष्ठा'** कहते हैं।

'विज्ञानाकलों की स्थिति'– ये मायोपरि तो हैं किन्तु **'शुद्धविद्या'** के नीचे हैं और ये अणुरूप शिव हैं। शुद्धाध्वाधिकारी महान चक्रवर्ती रुद्र अपना अधिकार समाप्त करके **'परमपद'** में समाहित हो जाते हैं।

माया के ऊर्ध्वावरण के नीचे अधरान्त **'अवीचि'** रूप निरयावस्था है। अवीचि रूपा निरयावस्था स्पन्दन शून्य, वीचिरहित, निस्तरङ्ग, जड़ एवं शून्यवत हैं यही है— "असूर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ॥"

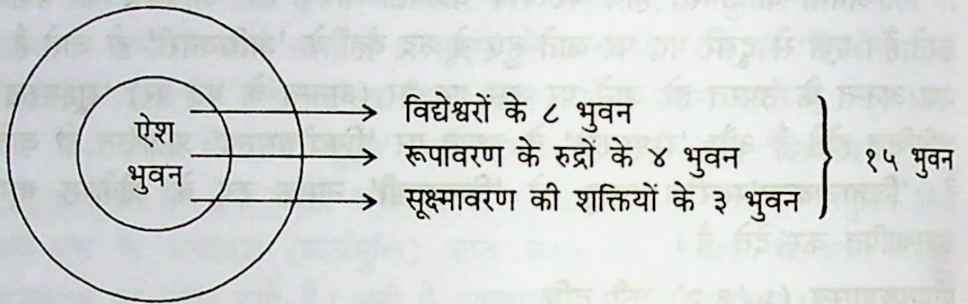
ऊर्ध्वाधर अन्तराल **'भव'** कहलाता है। अनन्त से आगे की सृष्टि सृष्टि नहीं है अतः उसे **'अभवसर्ग'** कहते हैं। **'अभवसर्ग'** (अनन्त से अनाश्रित शिव तक स्थित सर्ग) श्रेष्ठतम सर्ग है।

सदाशिव तत्त्व का आश्रय **'शक्तितत्त्व'** है। 'शक्तितत्त्व' का आश्रय **'शिवतत्त्व'** है। शिवतत्त्व का आश्रय **'अनाश्रित शिव'** है। पराशक्ति अनाश्रिताश्रित है। माया तक का पद **'हेय'** है।

'ऐश तत्त्व' में १५ भुवन हैं—

(१) विद्येशों के ८ (२) रूपावरण के रुद्रों के ४ (३) सूक्ष्मावरण की शक्तियों के ३ भुवन हैं। ये सभी ईश्वर तत्त्व में अवस्थित हैं—

"सुशुद्धावरणादूर्ध्वं शैवमेकपुरं भवेत् ।
शिवावृतेरुर्ध्वमाहुर्मोक्षावरणसंज्ञितम् ।।"[१]



"ईश्वरतत्त्व" ५९ भुवनों से सम्पन्न हैं। उसके ५९ भुवन निम्नांकित हैं—

ईश्वर
तत्त्व के
५९ भुवन

ईश्वर १
विद्येश ८
रूपावृति ४
सूक्ष्मावृति ३
शुद्धावृति में २
विद्यावृति में २
प्रमाणवृति में २
नामावृति में ४
शुद्धावृति में ३
शिवावृति में १
मोक्षावृति में ११
ध्रुवावृति में इच्छा, वामादि ४
प्रबुद्धावृति में ८
समयावृति में ५ = ५९ भुवन ।।

---

१. तन्त्रालोक (८ आह्निक, ३६१)।

'विद्यावरण' 'प्रमाणावरण' एवं **'शक्त्यावरण'**—

(१) **'विद्यावरण'** के ऊपर **'प्रमाणावरण'** है। इसे ही **'शक्त्यावरण'** कहा गया है। (इसमें २ भुवन हैं— तेजेश। ध्रुवेश)।[१]

आचार्य जयरथ की दृष्टि

आचार्य जयरथ ने स्वच्छन्दोद्योतकार क्षेमराज की दृष्टि का खण्डन करते हुए कहा है कि—

'शक्त्यावृतिः प्रमाणाख्या' (**'शक्त्यावरण'** ही **'प्रमाणावरण'** है। **क्षेमराज** शक्त्यावरण एवं प्रमाणावरण दोनों को ऊर्ध्व मानते हैं।

'प्रमाणावरण' के ऊपर 'मान' नामक **'वेदपुर आवरण'** (जिसमें ब्रह्मा, रुद्र, प्रतोद और अनन्त रुद्रों के चार भुवन स्थित हैं) स्थित है।

'प्रमाणावरण' के ऊपर **'मानावरण'** एवं मानावरण के ऊपर **'सुशुद्धावरण'** ('एकाक्ष', 'पिङ्गल' एवं 'हंस' नामक तीन रुद्रों के भुवन एवं रुद्रों के असंख्य परिवार इसी आवरण में इन्हीं भुवनों में रहते हैं।) है।

(१) सशुद्धावरण के ऊपर **'शिवावरण'** है। (शिवावरण में एक 'ध्रुव' नामक भुवन है।)

(२) सुशिवावरण के ऊपर **'बिन्दु का आवरण'** है।

(३) बिन्द्वावरण के ऊपर **'अर्धचन्द्र का आवरण'** है।

(बिन्दु अर्धमात्र और चतुष्कल होता है। उसका अर्धभाग अर्धचन्द्र होता है। इसकी कलाये ५ हैं— 'ज्योत्स्ना' 'ज्योत्स्नावती', 'कान्ति', 'प्रभा', 'विमला'।

अर्धचन्द्रावरण के ऊपर रोधिका (रेखिनी) या **'निरोधिका का आवरण'** आता है। उसकी पाँच कलायें हैं— 'रुन्धनी', 'रोधनी', 'रादध्री', 'ज्ञानबोधा' एवं 'तमोपहा'। ये ५ कलायें निरोधिका के आवरण हैं। **'निरोधिका'** अर्द्धचन्द्र का अष्टमांश है। **'निरोधिनी शक्ति'** ब्रह्मा आदि कारण तत्त्वों को भी आगे बढ़ने से रोक देती है।

निरोधिका के बाद **'सादाख्य परमभुवन का परिवेश'** आता है। सादाख्य पर सदाशिव मन्त्रशरीरी हैं।

---

१. प्रमाणावरण (शक्त्यावरण) ('तेजेश' एवं 'ध्रुवेश' २ भुवन), (स्वच्छन्द तन्त्र, १०/११७२)।

पूर्वोक्त सदाशिव यहाँ पर रूप से विराजमान हैं। निरोधिकावरण के ऊपर **'नादावरण'** है। यह सूर्यप्रभ पुरुषों से भरा हुआ भुवन है। इसकी नायिकाएँ हैं— 'इन्धिका', 'दीपिका', 'रोचिका', 'मोचिका' और **ऊर्ध्वगा**।

नाद के ऊर्ध्व में **'ऊर्ध्वगा शक्तिधाम'** ऊर्ध्वगेश **नादान्तदेव** स्थित हैं।

नाद-नादान्त के ऊपर **'सौषुम्न भुवन का आवरण'** है। **'सुषुम्ना'** शशिप्रभा महादेवी है। उसके स्वामी हैं— **'सुषुम्नेश'**। ये सुषुम्ना में रहते हैं। सुषुम्नेश इड़ा-पिङ्गला शक्तियों से घिरे हैं। सुषुम्नेश के वामभाग में इडा, दक्षिण भाग में पिङ्गला एवं गोद में **सुषुम्ना देवी** हैं। यह शक्ति (सुषुम्ना) नाद की आश्रय शक्ति है।

'नाद' के दो कार्य हैं– (१) अध:शक्ति के प्रभाव से मूलाधार से उद्गात होता है। (२) फिर वह ऊर्ध्वरूपा प्राणात्मिका शक्ति का आश्रय लेकर ऊपर उठता है। इस ऊर्ध्वगामिनी शक्ति में ही **'ऊर्ध्वगेश'** विराजमान हैं।

सुषुम्ना के ऊपर **'ब्रह्मबिल' संज्ञक त्रिदृक आवरण** है। इसमें **ब्रह्मा** अपने पर रूप से विराजमान हैं।

'ब्रह्मबिल' का भेदन करने पर शक्तिव्यापिनी धाम **'समना'** में प्रवेश होता है। **समना के ऊर्ध्वभाग में ऊर्ध्व कुण्डली भूमि** है। क्रम-'ब्रह्मबिल'-'शक्ति'-'व्यापिनी' 'समना'-'उन्मना'—

"अधो **ब्रह्मबिलं** देवि **शक्तितत्त्वं** ततः परम्।
पञ्चकारणसंयुक्ता **व्यापिनी** तु तथा परा।
समना उन्मना चैव प्रकियाण्डैर्युता प्रिये॥"

'शिवावरण' के ऊपर **'मोक्षावरण'** स्थित है।

'मोक्षवरण' के ऊपर **'इच्छाशक्ति का आवरण'** है।

'इच्छावरण' के ऊपर **'प्रबुद्धावरण'** है।

'प्रबुद्धावरण' के ऊपर **'समयावरण'** है।

'समयावरण के ऊपर **"सौशिव आवरण"** है।

इसमें सदाशिव अपने **सदाख्य भुवन** में विराजमान हैं। यह **ईश्वर तत्त्व का आश्रय-फलक** है। **'सदाशिव तत्त्व'** के अतिरिक्त अपर रूप यह **'सदाशिव देव'** है। इनके वाम भाग में क्रिया एवं दक्षिण (अपसव्य) भाग में ज्ञान शक्तियाँ स्थित हैं। **'इच्छा'** परा शक्ति है। यह सदाशिव के उत्सङ्ग में स्थित है। इसी शक्ति (नित्य आत्मवर्तिनी शक्ति) के द्वारा ही 'सृष्टि', 'स्थिति', 'संहार', 'तिरोधान'

और 'अनुग्रह' रूप ५ कृत्यों का निष्पादन सदाशिव किया करते हैं। ये— (१) 'सद्योजात' (२) 'वामदेव' (३) 'अघोर' (४) 'तत्पुरुष' और (५) 'ईशान' (ब्रह्मपञ्चक)— इन ५ मुखों से युक्त हैं। ये १० शिवों से युक्त हैं जो निम्नांकित हैं— 'ओंकार', 'शिव', 'दीप्त', 'हेतु', 'दशेश', 'सुशिव' 'काल', 'सूक्ष्म', 'सुतेज' एवं 'शर्व'।

सौशिव आवरण के अन्तर्गत ही **'सादाख्य भुवन'** का प्रसार है। **'सादाख्य भुवन'** श्री सदाशिव भट्टारक का साक्षात् अधिष्ठान है।

राजानक क्षेमराज की दृष्टि– ''ईश्वर तत्त्व के ऊपर सदाशिवतत्त्ववर्ती **सदाशिव भुवन के नीचे** सदाशिव तत्त्वाश्रित सुशिव आवरण है॥'' — जयरथ इस मान्यता को अनुचित एवं भ्रान्तिपूर्ण मानते हैं।

अध्वा के शुद्धाशुद्धरूप

'अध्वा' के दो रूप हैं— (१) **'शुद्ध अध्वा'** एवं **'अशुद्ध अध्वा'**।

(क) चित् का अपकर्ष— अशुद्ध अध्वा
(ख) चैत्य का अपकर्ष— शुद्ध अध्वा } (चित् एवं चैत्य की भूमिकायें)

(१) **चित् के अपकर्ष** के कारण अध्वा अशुद्ध हो जाता है।

(२) चैत्य का जब भी अपकर्ष होता है तब उसके कारण अध्वा शुद्ध हो जाता है।

(३) चित-चैत्य के अपकर्ष-उत्कर्ष में साम्य होने पर अध्वा का स्वरूप **'मिश्राध्वा'** होता है। इसे **'मायिक पद'** कहते हैं।

''अध्वाभवेच्चिदपकर्षवशादशुद्धः
शुद्धस्त्वसौ भवति चैत्यपदापकर्षात्।
चिच्चैत्ययोरूपचयाऽपचयाऽविशेषान्।
मिश्रो हि मायिकपदं भवतीदमध्वा॥''[१]

******

१. मातृकाचक्रविवेक (२०/३)

द्वितीय खण्ड

आचार-मीमांसा

(साधना-पक्ष)

साधना और उसका यथार्थ स्वरूप

आचार्य शङ्कर की 'पूजा' का स्वरूप

'आत्मा त्वं, गिरिजा**मतिः**, **सहचराः** प्राणाः, शरीरं **गृहं**,
पूजा ते विविधोपभोगरचना, निद्रा **समाधि स्थितिः**।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः, स्तोत्राणि सर्वागिरो,
यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो **तवाराधनम्**।'

—शङ्कराचार्य

आचार्य अभिनव गुप्त की 'पूजा' का स्वरूप

'तव च का किल न स्तुतिरम्बिके!
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो,
मनसिजासु बहिः प्रसरासु च॥
इति विचिन्त्य शिवे! शमिताशिवे!
जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुति जपार्चनचिन्तन वर्जिता,
न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

—अभिनवगुप्तपादाचार्य

अध्याय-८

पूजा और उसका यथार्थ स्वरूप

(१) पूजा और उसका यथार्थ स्वरूप

जिस प्रकार भक्ति-पंथ में बाह्योपचारात्मक पूजा के स्थान पर रहस्यवादी भक्तों ने 'प्रेमा भक्ति', 'भाव भक्ति' एवं 'नारदीया भक्ति' या 'मानसपूजा' को स्वीकार किया था उसी प्रकार रहस्यवादी तान्त्रिकों ने भी पूजा में बाह्योपचारात्मक पूजा के स्थान में प्रतीकात्मक एवं भावात्मक पूजा को स्वीकार किया था।

त्रिकाम्नायानुसृत पूजा या साधना का स्वरूप

काश्मीरीय तान्त्रिक शैव दर्शन में पूजा का जो स्वरूप अङ्गीकृत किया गया है वह सामान्यतया प्रतीकात्मक है।

शिवसूत्रकार की दृष्टि– "प्रयत्नः साधकः"—

(१) साधनाध्यवसाय का स्वरूप

'शिवसूत्र' में साधना रूप आध्यात्मिक व्यापार के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि— जो अनुसन्धित्सात्मक **अकृतिक 'प्रयत्न'** है और जो मन्त्रोपासक को **देवता के साथ तादात्म्यस्थापन** में सहायक व्यापार है वही सहज, स्वाभाविक साधनात्मक व्यापार मात्र साधनोपयोगी ('साधक') है अन्य कृत्रिम व्यापार नहीं— **'प्रयत्नः साधकः।।'** (२/१)

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि– आचार्य क्षेमराज इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि इस साधनारूप **'प्रयत्न'** के सहायक ('साधक') तत्त्व निम्नाङ्कित हैं—

(१) 'साधना-व्यापार अकृत्रिम (सहज) होना चाहिये'।

यह औपचारिक या बाह्य नहीं होना चाहिये—

'अकृतको यः प्रयत्नः स स व साधको।'

अर्थात् साधना में किए गए सारे प्रयत्न, सारे व्यापार या समस्त साधनात्मक क्रियायें 'साधक' (उपयोगी) नहीं है केवल 'अकृतिक' (स्वयम्भू, सहज) कियायें सहायक हैं।

(२) यह साधना-व्यापार ऐसी स्वाभाविक क्रिया होनी चाहिये कि इसके निष्पादन से साधक का देवता के साथ तादात्म्य हो सके— साधक और साध्य में एकीकरण हो सके— "मन्त्रयितुर्मन्त्रदेवता तादात्म्यप्रद: ॥"

— "यथोक्तरूपस्य मन्त्रस्य अनुसन्धित्सा प्रथमोन्मेषावष्टम्भ प्रयतनात्मा अकृतिको य: प्रयत्न: स एव 'साधको' मन्त्रयितुर्मन्त्र देवता तादात्म्यप्रद: ॥"[१]

(३) साधक को चाहिए कि इस साधना-व्यापार में वह **"अकृतिक-निजोद्योगबल"** (स्वाभाविक या स्वयं स्फूर्त आत्मबल) के द्वारा **'मन' 'कर्म'** एवं **'बिन्दु' का विकर्षण करे–** और उन्हें 'परप्रकाश' में लयीभूत कर दे—

"अत्र हि तद्वत् अकृत्रिकनिजोद्योगबलेन योगीन्द्रो मन: कर्म बिन्दुं विकर्षयेत् परप्रकाशात्मतां प्रापयेत् इति ॥"[२]

(४) इस अकृतिक साधना में **'बिन्दु'** (पर प्रकाश=शिव) 'अकृतक' (सहज) उद्यन्तृता द्वारा (परमात्मैक्य-विमर्शन द्वारा) ही प्रसृत होता है— "बिन्दु: पर प्रकाश: अकृतकोद्यन्तृतात्मना उच्चारेण धावति प्रसरति इत्यर्थ: ।"[३]

विशेष– यहाँ क्षेमराज ने कतिपय पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है अत: उन्हें स्पष्ट करना चाहिये ।

"बल"– यहाँ 'बल' का अर्थ शारीरिक-मानसिक बल नहीं प्रत्युत् साधना-प्राप्त आत्मिक बल है—

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं–

'न हीच्छानोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्तते ।
अपि **त्वात्मबलस्पर्शात्** पुरुषस्तत्समो भवेत् ॥'[४]

'भूय: स्फुटतरो भाति **स्वबलोद्योग**भावित: ॥'[५]

यह **'आत्मबल'** क्या है? आत्मसत्ता में स्पन्दात्मक **'पूर्णाहन्ता'** का बल है। **पति प्रमाता में यह बल** अपरिमित होता है ।

'अकृतक'– कार्योन्मुख प्रयत्न से परे अर्थात् स्वाभाविक ॥

स्पन्दकारिकाकार भी इसी अकृतक प्रयत्न की बात का प्रतिपादन करते

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (२/२)।
२. शि. सू. वि. ।
३. शि. सू. वि. (२/२)।
४. स्पन्दसूत्र (८/१)।
५. स्पन्द कारिका ।

हुए कहते हैं कि—

"**कार्योन्मुखः प्रयत्नो** यः केवलं सोऽत्र लुप्यते।
तस्मिल्लुप्ते विलुप्तोऽस्मीत्यबुधः प्रतिपद्यते॥"[१]

भट्ट कल्लट भी कहते हैं— 'कार्यसम्पादनसामर्थ्यं बाह्यकरणव्यापाररूपं केवलं विलुप्यते, स्थगितेन्द्रियस्य तस्मिन् विलुप्ते।'[२]

'प्रयत्न'– प्रयत्न का अर्थ है **'अकृतक निजोद्योगबल' स्पन्दकारिकाकार** कहते हैं—

'भूयः स्फुटतरो भाति **स्वबलोद्योग**भावितः॥'

अर्थात् "**आत्मबल** का प्रयोग करने पर तत्काल ही वही पदार्थ स्पष्टतर रूप में दृष्टिगत होने लगता है।"

इसी "**उद्योग**" शब्द का प्रयोग 'स्पन्दसूत्र' में आत्मोत्कर्ष की साधना में प्रयुक्त प्रयत्न के लिए किया गया है—

"अतः **सततमुद्युक्तः** स्पन्दतत्वविविक्तये॥"[३]

शिवसूत्रकार ने प्रथमोन्मेष में **'उद्योग'** शब्द का प्रयोग भी इसी अर्थ में करते हुए कहा है—

"उद्यमो भैरवः।" (शिवसूत्र : ५/१)

"**उद्यम**" का अर्थ है— प्रसरद्रूपायाः विमर्शमय्याः संविदो झगिति उच्छलनात्मक**प्रतिभोन्मज्जनरूप उद्यमः**॥" "स एव सर्वशक्तिसामरस्येन..... **भैरवात्मक**स्वस्वरूपाभिव्यक्तिहेतुत्वात्..... अन्तर्मुखैतत्तत्वाधानधनानां जायते॥"[४]

भैरवात्मक स्वरूप इष्ट क्यों? इसलिए कि—

'आत्मनो भैरवं रूपं भावयेद्यस्तु पूरुषः।
तस्य मन्त्राः प्रसिध्यन्ति नित्ययुक्तस्य सुन्दरि॥'[५]

यही **'भैरव समापत्ति'** प्रत्येक साधना में काम्य है।

आचार्य क्षेमराज ने जो 'बिन्दुं विकर्षयेत्' की साधना बताई है वह **'तन्त्र-**

---

१. स्पन्दसूत्र (१५/१)।
२. 'स्पन्द सर्वस्व' (स्पन्दवृत्ति)।
३. स्पन्दकारिका (२१)।
४. शिवसूत्रविमर्शिनी (५/१)।
५. शि. सू. वि. (५/१ में उद्धृत)।

सद्भाव' में पहले से ही प्रतिपादित है—

''आमिषं तु यथा खस्थः संपश्यन्शकुनिः प्रिये।
क्षिप्रमाकर्षयेद्यद्वद्वेगेन सहजेन तु ॥
तद्वदेव हि योगीन्द्रो मनोबिन्दुं विकर्षयेत्।
यथा शरो धनुः संस्थो यत्नेनाताड्य धावति।'
तथा बिन्दुर्वरारोहे **उच्चारेणैव धावति** ॥''

इसीलिए आचार्य क्षेमराज ने कहा है कि—

''बिन्दुः परप्रकाशः अकृतककोद्यन्तृतात्मना उच्चारेण धावति प्रसरति इत्यर्थः।''[१]

इसी दृष्टि को **स्पन्दसूत्रकार** ने भी प्रतिपादित करते हुए कहा है—

''अयमेवोदयास्तस्यध्येयस्य ध्यायि चेतसि।
तदात्मतासमापत्तिःरिच्छतः साधकस्य या ॥''

वार्तिककार की दृष्टि– वार्तिककार वरदराज कहते हैं—

''उक्तमन्त्रानुसन्धानावष्टम्भोद्यन्तृतात्मकः।
प्रयत्नोऽन्तःस्वरंसम्भः स एव खलु साधकः।
यतो मन्त्रयितुर्मन्त्रदेवतैक्यप्रदः स्मृतः ॥''

भैरवात्मक स्वस्वरूपाभिव्यक्ति का स्वरूप-

साधना का लक्ष्य है— '**भैरवसमापत्ति**।' यह 'भैरव समापत्ति' ही समस्त बन्धनों का प्रशमन या ध्वंस करती है। '**बन्धन**' ही साधना का प्रतियोगी है अतः साधक को सर्वप्रथम '**बन्धन**' के मूलभूत कारकों का उच्छेद करना चाहिये। ये '**बन्धन**' अनेकात्मक हैं यथा—

(१) योनिवर्गः कलाशरीरम्। (३/१) (शिवसूत्र)।

(२) ज्ञानाधिष्ठानं मातृका। (४/१) (शिवसूत्र)।

(३) ज्ञानं बन्धः। (२/१) (मलत्रय एवं प्रज्ञान) (शिवसूत्र)।

(क) '**आणवमल**' (ख) '**कार्ममल**' एवं (ग) '**मायीय बल**' भी बन्धन हैं और प्रज्ञान भी '**अज्ञान**' है—

अनात्मा में आत्मा एवं आत्मा में अनात्मा का ज्ञान—

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (२/२)।

(क) "एवमात्मनि अनात्मताभिमानरूपाख्याति लक्षणाज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलो 'बन्धो'।

(ख) 'यावद् अनात्मनि शरीरादौ आत्मताभिमानात्मकम् अज्ञानमूलं ज्ञानमपि 'बन्ध' एव।'[१]

अज्ञान एवं बन्धन के विनाश के उपाय– भैरव समापत्ति, वैसे तो अज्ञान एवं बन्धन के विनाश के अनेक उपाय हैं यथा— (१) **आत्मज्ञान** (२) **ज्ञानमूला-भक्ति** (३) **उपायत्रय– 'शाम्भवोपाय', 'शाक्तोपाय'** एवं **'आणवोपाय'** आदि।

(४) किन्तु प्रधान उपाय है **'भैरव समापत्ति'–**

"एवं झगिति परप्रतिभोन्मेषावष्टम्भोपायिकां भैरवसमापत्तिम् अज्ञानबन्धन-प्रशमैकहेतुं प्रदर्श्य, एतत् परामर्शप्रकर्षाद् व्युत्थानमपि प्रशान्तभेदावभासं भवति॥"[२]

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि– आचार्य अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि—

'शिवमयीभाव' 'शिवरूपत्व' एवं **'शिवीभाव'** ही साधना का लक्ष्य है। वे कहते हैं—

(१) परतत्त्वरूढिलाभे पर्यन्ते **शिवमयीभावः**॥९७॥
(२) मुक्तमप्युपाध्यन्तरशून्यमिवाभवति **शिवरूपम्**॥८८॥
(३) विश्रान्तिस्थानवशाद् भूत्वा जन्मान्तरे **शिवीभवति**॥९९॥
(४) तस्मात् सन्मार्गेऽस्मिन् निरतो यः कश्चिदेति स **शिवत्वम्**॥१०३॥
(५) अतितीव्रशक्तिपातात् तदैव निर्विघ्नमेव **शिवः**॥९६॥

—परमार्थसार

अज्ञानग्रन्थि का उद्भेदन ही 'मोक्ष' है

अभिनवगुप्तपाद के मत में (१) अज्ञान ग्रन्थि का उद्भेदन एवं

(२) स्वशक्ति की अभिव्यक्ति ही मोक्ष है—

अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता **मोक्षः**॥[३]

(३) उद्भिन्न अज्ञानग्रन्थि वाला साधक ही 'मुक्त' है—

भिन्नाज्ञानग्रन्थिर्गतसन्देहः पराकृतभ्रान्तिः।

---

१. क्षेमराज— शिवसूत्रविमर्शिनी (२/१)।
२. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी (५/१)।
३. परमार्थसार (६००)।

प्रक्षीणपुण्यपापो विग्रहयोगेऽयमसौ मुक्तः ।। (६१)[१]

'उपाय' ही मोक्ष के साधन हैं

ये उपाय हैं कौन ?

(१) 'शाम्भवोपाय'— अभेददृष्टिप्रधान उपाय

(२) 'शाक्तोपाय'— भेदाभेददृष्टिप्रधान उपाय

(३) 'आणवोपाय'— भेददृष्टिप्रधान उपाय।

'ज्ञान' को कारण एवं 'मोक्ष' को कार्य मानना ही उचित नहीं है।[२]

साधना में अन्तर्मुखता की भूमिका

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि– आचार्य महेश्वरानन्द ने भी साधना एवं साधक के यथार्थ स्वरूप पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि योगी (साधक) को साधना में अग्रपद होने के लिए सर्वप्रथम **'अन्तर्मुखी'** होना चाहिये—

"अविकारोऽभयपार्श्वे चाषपिज्जसदृक्षेऽर्थे ।

अन्तर्मुखो योगी बहिर्मुख इति कल्पना कुतः ?"[३]

प्र०— 'अन्तर्मुखत्व' क्यों आवश्यक है?

यह इसलिए आवश्यक है; क्योंकि अन्तर्मुख (अहं रूप में नित्यस्पन्दायमान) चेतनसत्ता सर्वज्ञता आदि आत्मिक गुणों का एक मात्र उपाय है और उसका कभी नाश भी नहीं होता। इसी तथ्य का प्रतिपादन **स्पन्दकारिकाकार** ने भी किया है—

'न तु **योऽन्तर्मुखो** भावः सर्वज्ञत्वगुणास्पदम् ।

तस्य लोपः कदाचित् स्यादन्यस्यानुपलम्भनात् ।।'[४]

भट्टकल्लट की दृष्टि– भट्टकल्लट कहते हैं—

'न तु यः **अन्तर्मुखः** अन्तश्चक्रारूढस्वभावः ।

सर्वज्ञत्वादिगुणाश्रयः तस्य विनाशः कदाचित् ।।'[५]

साधना में बहिर्मुखता की कल्पना भी नहीं की जा सकती—

---

१. परमार्थसार (६१)।

२. अभिनवगुप्तपादाचार्य।

३. महार्थमञ्जरी (६०)।

४. स्पन्दकारिका (१६)।

५. स्पन्द सर्वस्व (का. १६)।

"बहिर्मुख इति कल्पना कुतः?"

३. साधना का अन्तिम लक्ष्य-शिवत्वाप्ति

आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि जो शैव-शासन का अनुयायी है वह साधना का अन्तिमलक्ष्यभूत सिद्धि के रूप में 'शिवत्व' रूप परम पद प्राप्त करता है—

'तस्मात् सन्मार्गेस्मिन् निरतो यः कश्चिदेति स शिवत्वम् ॥'[१]

शिव का साधक योगाभ्यास द्वारा **'दिव्य अमृत'** प्राप्त करता है जिससे कि उसका पुनः जन्म नहीं होता। वह विश्रान्त स्थानवश जन्मान्तर में शिवीभाव प्राप्त करता है—

"विश्रान्तिस्थानवशाद् भूत्वा जन्मान्तरे **शिवीभवति** ॥"॥ ९९ ॥

गुरुमुख से परमार्थमार्ग प्राप्त करते ही वह **अतितीव्रशक्तिपात** प्राप्त करने पर **'शिव'** बन जाता है।

"परमार्थमेनं झटिति यदा गुरुमुखात् समभ्येति।
अतितीव्रशक्तिपातात् तदैव निर्विघ्नमेव **शिवः** ॥"[२]

मन्त्र-साधना और 'मन्त्र' का यथार्थ स्वरूप

'मन्त्र' का यथार्थ स्वरूप-

(१) **शिवसूत्रकार की दृष्टि-** शिवसूत्रकार ने "मनन-त्राण धर्माणाः मन्त्राः" कहकर मन्त्र की सीधी-सादी लोक-प्रचलित परिभाषा देकर अपनी व्याख्या की इतिश्री नहीं कर दी प्रत्युत् उसके रहस्यात्मक पक्ष को आधार बनाकर 'मन्त्र' की बड़ी रहस्यपूर्ण व्याख्या की है और कहा है कि—

"विद्याशरीरसत्तामन्त्ररहस्यम् ।।"[३]

इसका अर्थ यह है कि **'विद्या'** (अहं एवं इदम् में सामानाधिकरण्यरूप अद्वैत अर्थात् 'इदमहम्' का परामर्श) ही है **'शरीर'** या स्वरूप जिसका वह अर्थात् **'विद्या शरीर'** अर्थात् विद्याविग्रह (पराद्वय प्रथा के स्वरूप वाला) रूप भगवान शब्दराशि की **'सत्ता'** (अशेष विश्वाभेदमयपूर्णाहं विमर्शनात्मा स्फुरत्ता) ही मन्त्रों का रहस्य है—

---

१. परमार्थसार (१०३)।
२. परमार्थसार (९६)।
३. शिवसूत्र (३/२)।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि– आचार्य क्षेमराज कहते हैं— "विद्या पराद्वय प्रथा शरीरं स्वरूपं यस्य स विद्याशरीरो भगवान् शब्दराशिः तस्य या सत्ता अशेष-विश्वाभेदमयपूर्णाहंविमर्शनात्मा स्फुरत्ता सा मन्त्राणां रहस्यम् ॥"[१]

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि—

(१) सारे 'मन्त्र' वर्णात्मक एवं शक्त्यात्मक हैं।

(२) 'शक्ति' ही **मातृका** है जो अपने यथार्थ स्वरूप में **शिवात्मिका** है।

(३) **शक्तिसंयुक्त वर्ण ही यथार्थ हैं** शेष केवल सामान्य वर्ण हैं।

मन्त्र-रहस्य

(१) अस्मात्तु कारणाद्देवि ! मया वीर्यं प्रगोपितम्।
तेन गुप्तेन ते गुप्ताः शेषा वर्णास्तु केवलाः ॥

(२) उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा **न मन्त्रा**श्चापि तान्विदुः।
मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः ॥[२]

(३) **मन्त्राणां जीवभूता** तु या स्मृता **शक्तिव्यया**।
तया हीना वरारोहे निष्फलाः शरदभ्रवत् ॥[३]

(४) सहाराधकचित्तेन तनैते **शिवधर्मिणः**।[४]

(५) पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री **न सिद्ध्यति कदाचन**।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा नैव सिद्ध्यति ॥[५]

सारांश यह है कि— (१) मन्त्रों में निहित शक्ति को भगवान ने गुप्त कर रखा है; क्योंकि गुरुगण अपात्र हो गये हैं; क्योंकि—

"न जानन्ति गुरुं देवं शास्त्रोक्तान्समयांस्तथा।
दम्भकौटिल्यनिरता लौल्यार्थाः क्रिययोज्झिताः ॥"

मन्त्रों की शक्ति एवं उसका स्वरूप

मन्त्रों की शक्ति उच्चार्यमाण स्थूल वर्णों में नहीं है। मन्त्र **'मातृकाओं'** से निर्मित होते हैं और मातृकाओं के लक्षण इस प्रकार हैं—

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी।
२. सर्वज्ञानोत्तर।
३. मन्त्रश्री सद्भाव।
४. स्पन्दकारिका।
५. श्री कण्ठीसंहिता।

(१) मातृकायें परतेजसमन्वित हैं।

(२) ब्रह्मलोक से १४ भुवन पर्यन्त समस्त विश्व मातृकाओं के इस परमतेज से व्याप्त है।

(३) **'मन्त्रों'** का प्राणभूत तत्त्व अव्यय शक्ति है। इस शक्ति से रहित समस्त **'मन्त्र'** शरदभ्रवत निष्फल एवं निरर्थक हैं।

(४) **'मन्त्र'** इतने सूक्ष्म हैं कि इनका उच्चारण नहीं किया जा सकता और जिनका उच्चारण किया जा सकता है वे मन्त्र हैं ही नहीं।

(५) मांत्रिक का मंत्र से तादात्म्य स्थापित होने पर मन्त्र शिवधर्म (सर्व-कर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वव्यापकत्व आदि) से युक्त हो जाते हैं।

(६) यदि मान्त्रिक एवं उसका जप्य मन्त्र मन्त्र-साधना के समय ऐकात्म्य स्थापित न कर सकें तो वे कभी सिद्ध नहीं हुआ करते।

मन्त्र का तान्त्रिक स्वरूप

(१) शिवसूत्रकार की दृष्टि— 'शिवसूत्र' के द्वितीयोन्मेष के प्रथम सूत्र में मन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि—

'चित्तं मन्त्रः ।।'[1] अर्थात् चित्त ही मन्त्र है।

(१) 'चित्त' क्या है ?

जिस साधन के द्वारा विमर्शन किया जाता है वही पर तत्त्व चित्त है— "चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तं।"

(२) विमर्शन क्या है?

'पूर्णस्फुरत्तासतत्त्वप्रासादप्रणवादि का परामर्शरूप जो संवेदन है वही **'विमर्श'** है— "पूर्णस्फुरत्तासतत्त्वप्रासादप्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम् ॥"

(३) स्वात्मतत्त्व के विमर्शन का जो साधन है, उसी विमर्शरूप संवेदन की जिसके द्वारा गुप्त रूप से मन्त्रणा की जाती है अर्थात् जिसके द्वारा अभेद रूप में परमेश्वर का विमर्शन किया जाता है वही 'मन्त्र' है—

"तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्, अन्तर् अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः ॥"[2]

(४) इन सारे लक्षणों से निष्कर्ष यह निकलता है कि— मन्त्र के देवता-

---

१. शिवसूत्र (१/२)।

२. 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः'।

विमर्शन में तल्लीनता के कारण जो उसके साथ सामरस्य प्राप्त हो जाता है उस देवसामरस्य-प्राप्त चित्त को ही **'मन्त्र'** कहते हैं।

"मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यम् आराधकचित्तमेव **मन्त्रः** ॥"[१]

(५) विविध वर्णों की संघट्टना मात्र 'मन्त्र' नहीं है—

"आराधकचित्तमेव मन्त्रः न तु विचित्रवर्णसंघट्टना मात्रकम् ॥"

मन्त्र का यथार्थ स्वरूप



(१) अभेदेन विमृश्यते परमेश्वरम् रूपम् अनेन इति कृत्वा **मन्त्रः**।

(२) परस्फुरत्तात्मकमनधर्मात्मता।

(३) भेदमय संसारप्रशनात्मक त्राणधर्मता च अस्य निरुच्यते।

(४) मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्तत्सामरस्यम् आराधकचित्तमेव **'मन्त्रः'**।

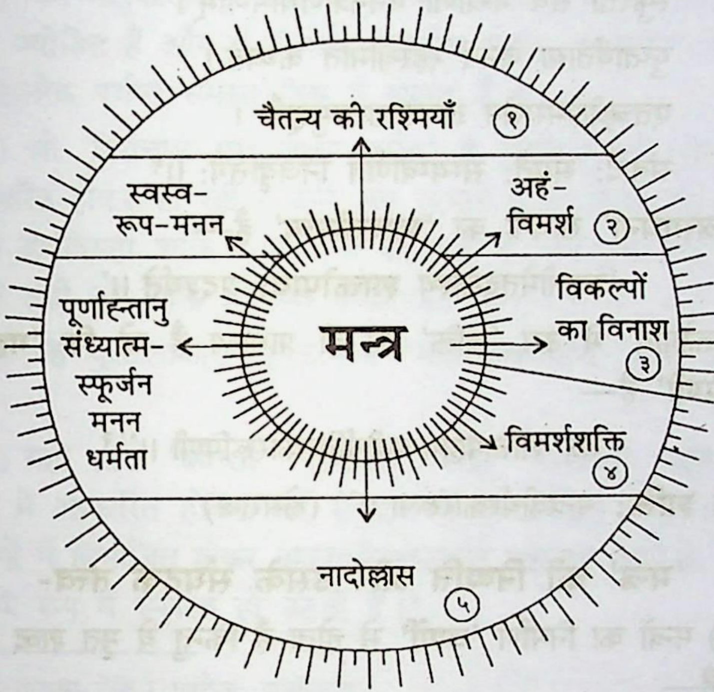
—आचार्य क्षेमराज, शिवसूत्र विमर्शिनी

'चेत्यतेऽनेन परमं **स्वात्मतत्त्वं** विमृश्यते **इति चित्तं** स्फुरत्तात्मप्रासादादि विमर्शनम् तदेव मन्त्र्यते गुप्तम**भेदेन विमृश्यते। स्वस्वरूपमनेनेति**मन्त्रस्तेनास्य दैशिकैः। **पूर्णाहन्तानुसंधात्मस्फूर्जन्मननधर्मता**। संसारक्षयकृत त्राणधर्मता च

१. मन्त्रश्च **विमर्शनात्मा** (ई. प्र. वि. १.५.१४)।

निरुच्यते। तन्मन्त्र देवतामर्शप्राप्ततत्सामरस्यकम् आराधकस्य चित्तं च मन्त्रस्तर्द्धर्म-योगतः ॥

—शिवसूत्र वार्त्तिकम्



(३) "**कवलित विश्व विकल्पा** अनुभूतिः कापि **मन्त्र** शब्दार्थः ॥"

—महेश्वरानन्द

(४) विमर्शः शक्तिः सैव **'मन्त्रः'** ॥

(५) नादोल्लासो भवे**न्मन्त्रः** ॥ (वि. भै.)

निर्वीर्यमन्त्र (तन्त्रालोक)—

लिपिगत मन्त्र निर्वीर्य हैं— 'लिपि स्थितस्तु **यो** मन्त्रो **निर्वीयः** सोऽत्र क्लिपतः ॥

वार्त्तिकार की दृष्टि

मन्त्रों के इसी रहस्यात्मक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए वरदराज ने मन्त्र के निम्नांकित अवयवों को रेखाङ्कित किया है—

'विद्या शरीर सत्ता मन्त्ररहस्यम् ॥ (३/२) (शिवसूत्र)।

'विद्येति परमाद्वैतसंप्रवेदनरूपिणी ।
शरीरं यस्य भगवान् शब्दराशिः स उच्यते ।
तस्य सत्ता समस्ताध्व पूर्णाहन्तास्वरूपिणी ।
स्फुरत्ता सैव मन्त्राणां मननत्राणधर्मिणाम् ।
गुप्तार्थताया जननं रहस्यमिति कथ्यते ।
एतच्छ्रीक्षेमराजेन तन्त्रसारात्समुद्धृतैः ।
संवादैः संमतैः सम्यग्वर्णितं निजवृत्तिगैः ।।[१]

'मन्त्रसाधना' साधना का **'शाक्तोपाय'** है—

'इदानीमेतदन्तस्थ **शाक्तोपायः** प्रदर्श्यते ।।'

'शाक्तोपाय' में उस 'शक्ति' का ही प्राधान्य है जो कि **'महामन्त्रवीर्य-विस्काररूपिणी'** है—

"तत्र शक्तिर्महामन्त्रवीर्यविस्काररूपिणी ।।"[२]

'तत्र **शक्तिः** मन्त्रवीर्यस्काररूपा ।।" (क्षेमराज)

'मन्त्र' की निष्पत्ति और उसके संघटक तत्त्व-

(१) मन्त्रों का निर्माण **'वर्णों'** से होता है किन्तु ये मृत शब्द या प्राणहीन अक्षर नहीं हैं—

"सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ।।"[३]

मन्त्रों के वर्ण

(१) मातृकात्मक हैं, वर्णात्मक हैं।

(२) **'वर्ण'** एवं **'मातृकायें'** शिवात्मक एवं शक्त्यात्मक दोनों हैं।

(३) सारे **'मन्त्र' शक्त्यात्मक** हैं अतः शक्तिरहित 'मन्त्र' मन्त्र नहीं हैं वे केवल वर्णसमष्टि मात्र हैं।

(४) भगवान शिव ने मन्त्रों में निहित शक्ति को, वर्णों में अव्यक्तसञ्चरित संवित शक्ति को गुप्त कर दिया है।

---

१. वरदराज (शि. सू. ३/२)।

२. वरदराज।

३. क्षेमराज : शि. सू. वि. (४)।

'अस्मात्तु कारणाद्देवि मया वीर्यं प्रगोपितम् ॥''

अतः वर्णशक्तिहीन अक्षर मात्र रह गए हैं—

''तेन गुप्तेन ते गुप्ताः शेषा वर्णास्तु केवलाः ।''

(५) जिन मातृकाओं से मन्त्रों की निष्पत्ति होती है वे अवयवभूत मातृकायें **परमतेज से ज्योतित** हैं और वे त्रिलोक, चतुर्दश भुवन, अण्डत्रय, पातालसप्तक से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त विश्व में व्याप्त हैं।[१]

(६) जो 'निराचारा परा सूक्ष्मा शक्ति' है हृद्बिन्दु को आवेष्टित करके भुजङ्गाकाराकारित होकर सो रही है और जब जागती है तो निनाद के साथ जागती है और यही वर्णविग्रहा शक्ति कुण्डलिनी कहलाती है और सारे वर्णों, मातृकाओं एवं मन्त्रों में उसी की शक्ति प्रवाहित होती रहती है।[२]

(७) यह कुटिलाकारा कुण्डलिनी **'मथ्यमन्थनयोग'** द्वारा ऋजुता प्राप्त करती है।

(८) यही शक्ति **'ज्येष्ठा'** **'रेखिणी'** **'रौद्री'** **'रोधिनी'** **'अम्बिका'** आदि अनेक रूपों में आकारित होकर वर्ण समुदाय में अन्तर्निहित (१) नव नादों एवं (२) नव वर्गों में विभाजित होकर अकारादिक्षकारान्त पञ्चाशत वर्णों के रूप में और 'शब्दब्रह्म' के रूप में स्फुरित हो उठती है।[३]

---

१. या सा तु मातृका देवि ! परतेजः समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम् ॥

२. या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराचारेति कीर्तिता ।
हृद्बिन्दुं वेष्टयित्वान्तः सुषुप्तभुजगाकृतिः ॥
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणा ।
मथिता चोदरस्थेन विन्दुना वरवर्णिनि ॥
उत्थिता यु यदा तेन कला सूक्ष्मा तु **कुण्डली** ॥

३. मथ्यमन्थन योगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये ।
ज्येष्ठाशक्ति स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यमा ॥
विन्दुना क्षोभमायाता रेखेवामृतकुण्डली ।
रेखिणी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दू यदन्तगौ ॥
त्रिपथा सा समाख्याता **रौद्री** नाम्ना तु गीयते ।
रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात् ।
शशाङ्कशकलाकारा **'अम्बिका'** चार्धचन्द्रिका ॥
एकैवेत्थं पराशक्तिस्त्रिधा सा तु प्रजायते ।
आभ्यो युक्तवियुक्ताभ्यः संजातो नववर्गकः ॥

.........क्रमशः

(९) **मातृकायें** 'परभैरवीयपरवाक्शक्ति' से युक्त हैं— "पर भैरवीयपर-वाक्शक्त्यात्मक मातृका ॥" (क्षेमराज)

(१०) **'ज्येष्ठा', 'रौद्री', 'अम्बिका'** शक्तियाँ समस्त वर्णों को जन्म देती हैं।[१]

(११) भगवती को **'विद्याशरीरसत्ता'** कहा गया है। स्पष्ट है कि **वर्ण-सङ्घट्ट से ही मन्त्रों के शरीर का निर्माण होता है**– "वर्णसङ्घट्टनाशरीराणां मन्त्राणां ॥" (क्षेमराज)। और यही भगवती का भी स्वरूप है—

सर्ववर्णोदयकारिका 'ज्येष्ठा'-'रौद्री'-'अम्बिका' आदि शक्तियों से उत्पन्न वर्णों से ही मन्त्र-कलेवर का निर्माण होता है अतः **मन्त्र भी भगवती के ही रूप हैं**— "वर्णसङ्घट्टनाशरीराणां मन्त्राणां सैव भगवती व्याख्यातरूपा "विद्याशरीरसत्ता" रहस्यम् इति प्रदर्शितम् ॥"[२]

स्पन्दकारिकाकार की मन्त्रविषयक दृष्टि-

'स्पन्दकारिका' में कहा गया है कि—

"प्रत्येक प्रकार के **'मन्त्र'** स्पन्दरूप **आत्मबल** के साथ तादात्म्य प्राप्त करने से ही सर्वज्ञता आदि ६ प्रकार के **माहेश्वरबलों** (सर्वज्ञता, पूर्णतृप्ति, अनादिबोध, अप्रतिहत स्वातन्त्र्य, शक्ति का निर्बाध सर्वव्यापी प्रसार, एवं विश्व के रूप में विकसित अनन्त शक्तियों का ऐश्वर्य) को प्राप्त करके सुशोभित होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में ये मन्त्र मनोवांछित समस्त कार्यों को साधिकार सिद्ध करने हेतु सहज ही उसी प्रकार क्रियाशील हो उठते हैं यथा शरीरधारियों की इन्द्रियाँ संकल्प मात्र से ही अपने-अपने कार्यों को सिद्ध कर देती हैं और सारे मन्त्र उस आवरण-

---

नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता।
पञ्चमन्त्रगता देवि ! सद्य आदिरनुक्रमात् ॥
तेन पञ्चविधा प्रोक्ता ज्ञातव्या सुरनायिके।
स्वर द्वादशगा देवि ! द्वादशस्था उदाहृता ॥
अकारादिक्षकारान्ता स्थिता पञ्चाशताभिदा ॥
हृत्स्था**एकाणवा** प्रोक्ता, कण्ठे प्रोक्ता **द्वितीयका**।
त्रिराणवा तु ज्ञातव्या, जिह्वामूले सदाश्रिता।
जिह्वाग्रे वर्णनिष्पित्तिर्भवत्यत्र न संशयः।
एवं शब्दस्य निष्पत्तिः शब्दव्याप्तं चराचरम् ॥
—शिवसूत्रविमर्शिनी में उद्धृत (द्वि. ३०)

१ ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बाख्यशक्तिप्रसरसंभेदवैचित्र्येण सर्ववर्णोदयस्य (शि. सू. वि. ३/२)।
२, शि. सू. वि.।

हीन चिद्रूपता के साथ एकाकार होने से ही सर्वज्ञता आदि माहेश्वर बलों को प्राप्त करके महनीय बन जाते हैं और जीवों की इन्द्रियों की भाँति अपने अनुग्रह आदि कार्यों के प्रति प्रयत्नशील हो जाते हैं किन्तु ये मन्त्र आत्मबल का स्पर्श प्राप्त किये बिना वर्णसंघटनामात्र से किसी भी कार्य को कभी सिद्ध नहीं कर सकते।[१]

'मन्त्र' शान्तरूप (शुद्ध संविद्रूप) और 'निरञ्जन' (मायीय उपरागरहित) होकर, आराधक के चित्त के साथ-साथ, चिदाकाश में ही लीन हो जाते हैं और वे मूलतः शिव की शक्तियों से सम्पन्न हैं।[२]

भट्टकल्लट की दृष्टि– भट्टकल्लट कहते हैं—

(१) "तत् **बलं** निरावरणचिद्रूपमधिष्ठाय, मन्त्राः सर्वज्ञत्वादिना बलेन श्लाघायुक्ताः प्रवर्तन्ते अनुग्रहादौ स्वाधिकारे।"

(२) 'तत्रैव स्वस्वभावव्योम्नि निवृत्ताधिकाराः प्रलीयन्ते शान्तरूपाः, माया-कालुष्यरहिताः सह साधकचित्तेन अनेक कारणेन शिवसंयोजनास्वभावेन, इति शिवात्मिका उच्यन्ते ॥'[३]

ये समस्त **'मन्त्र'** सांसारिक भोगसिद्धि से निवृत्त होकर और माया के उपराग से रहित होकर शान्तरूप बन जाने के कारण (साधक के चित्त के साथ ही साथ) उस स्वभाव (विशुद्ध चिद्रूपता, सामान्य स्पन्दात्मक शाक्त भूमिका) के असीम आकाश में संलीन हो जाते हैं। **मन्त्रों का पार्यन्तिक एवं अनौपचारिक स्वभाव** यही है कि **वे** पशात्मा को **शिवभाव के साथ एकाकार बना देते हैं**। इन्हीं कारणों से सारे मन्त्रों को शिवरूप (शिवात्मक) कहा गया है—

'सहाराधकचित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः ॥'[४]

मन्त्रों के दो प्रकार हैं—

(१) **'साञ्जन मन्त्र'–** सांसारिक भोगों के प्राप्त्यर्थ प्रयुक्त मन्त्र।

(२) **'निरञ्जन मन्त्र'–** शिवत्वाभिव्यक्त्यर्थ प्रयुक्त मन्त्र ॥

---

१. तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम् ॥ (२६/२)

२. तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जनाः।
सहाराधकचित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः ॥ (२७/२)

३. स्पन्दसर्वस्व (२६-२७/२)।

४. स्पन्दकारिका (२७/२)।
सारे **'मन्त्र'** अहंरूप ही हैं, वे 'परावाक्' के स्वरूप ही हैं। **'परावाक्'** सामान्य स्पन्दना है। यह चलत्ता (स्पन्द) ही परमेश्वर की ज्ञानक्रियात्मक **'विमर्शना'** है।

'मन्त्र' शब्द अवबोधनार्थक 'मनु' एवं पालनार्थक 'तृ' धातुओं से निष्पन्न हुआ है। अत: **'मन्त्र'** लिपिबद्ध वर्णरचना से ऊपर उठकर— **'आन्तरिक संवेदन'** से जुड़े हैं। मानव में स्थित **संवेदनात्मक शक्ति** द्वारा ही वह सामान्य-स्पन्दरूप स्वरूप का आन्तर रूप में मनन करने से आत्मा की **'पशुता'** से ऊपर उठाकर **'शिवता'** तक पहुँचा सकता है। यह **'संवेदन'** ही **'चित्त'** कहा गया है— "चित्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति 'चित्तं', पूर्णस्फुरत्तासतत्त्वप्रासाद-प्रणवादिविमर्शरूपं **'संवेदनम्'** तदेव मन्त्र्यते गुप्तम् अन्तर अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपमनेन इति कृत्वा मन्त्र: ॥" [१]**'संवेदन' 'चित्त' 'मन्त्र'** और **'विमर्श'** का स्वरूप आन्तरिक आत्मस्फुरणा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ये समस्त शब्द पर्याय हैं। **आत्मस्पन्दना** के **'विमर्श'** ही आत्मस्पन्दना है और यह **'विमर्श'** ही प्रत्येक भाव का हृदय है। सारे भाव यहीं से उदित होकर यहीं विलीन हो जाते हैं।

(१) जड़ का हृदय— 'चेतन' है।

(२) चेतन का हृदय— 'प्रकाश' है।

(३) 'प्रकाश' का हृदय— 'विमर्श' है

— अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि[२] (ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी)

(४) विमर्शात्मक आत्मस्फुरणा ही **'परमन्त्र'** है और इसका यथार्थ स्वरूप है— **'अहं-विमर्श'**।

(५) **'मन्त्र'** का यथार्थ स्वरूप है— **'अहं विमर्श'**।

(६) विमर्शात्मक शब्दना का उच्चतम शिखर है—

'परावाक्'। यह **आन्तर शब्दना** है। यह **स्पन्दनामयी** शब्दना है। यहाँ सारे वाचक-वाच्य मयूराण्डरसवत् अभिन्न एवं एकरूप हैं।

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं कि **मन्त्र के तीन लक्षण** हैं—

(१) 'मननमयी निजविभवे'

(२) 'निजसङ्कोचे च त्राणमयी'

(३) 'कवलित विश्वविकल्पा'

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/२)।

२. 'हृदयं च नाम प्रतिष्ठास्थानमुच्यते। तच्च उक्तनीत्या **जडानां चेतनम्**। तस्यापि **प्रकाशात्मकत्वम्** तस्यापि विमर्शशक्ति: इति विश्वस्य परमे पदे तिष्ठन्तो विश्रान्तस्य इदमे हृदयं विमर्शरूप परमन्त्रात्मकं यत्र-तत्र अभिधीयते। (ई. प्र. वि.)

मन्त्रानुसन्धान की दिशायें

(१) 'विभवावस्था'	(२) 'सङ्कोचावस्था'
(१) परम ऐश्वर्यों की अवस्था।	(१) (पाशवरूप, पाशवस्वभाव।
(२) पूर्ण आत्मविकास की स्थिति ही **'विभव'** है। **पूर्णाहम्भावनात्मक विकास** रूप परमात्मैश्वर्य ही आत्मविभव है। भाव-चमत्कार।	(२) पशुपति का 'पशु' के रूप में स्वरूपाच्छन।
(३) पूर्णाहन्ता की अवस्था।	(३) मित प्रमाता की स्वस्वरूपावरण की स्थिति।
(४) **मननरूप से ग्राह्य।** **'मननमयी निज विभवे'** 'मननमयी निजविभवे' कवलितविश्वविकल्पा	(४) मलत्रय के द्वारा पारमित्य की अवस्था।
	(५) **भय-त्राणार्थ ग्राह्य।** **'निजसङ्कोचेभये त्राणमयी'** निज सङ्कोचे भये त्राणमयी। **अनुभूतिः** कापि मन्त्रशब्दार्थः ॥ —महार्थमञ्जरी (४९)

सर्वात्ममयी भगवती ही **'मन्त्र'** हैं। संवेद्यविमर्शशक्ति ही **'मन्त्र'** है। संवित् तत्त्व ही **'मन्त्र'** है।

मन्त्रानुसन्धान की जो दो अवस्थायें हैं उनका नाम है— (१) **'विभव'** (२) **'सङ्कोच'** : 'तत्र मन्त्रानुसन्धातुः स्वेच्छामात्रेणोपाधिना **'विभवः'** **'सङ्कोच'** इत्यवस्थाद्वयमस्ति ॥

(क) **'विभव'=** ''तयोर्**विभवो**नामविश्वतदुत्तरोमयसामरस्य युक्त्या **पूर्णाहम्भावनात्माविकासः** यत् **पारमैश्वर्य**मित्युच्यते ॥

(ख) **'सङ्कोच'=** ''**सङ्कोच**श्च तद्विपर्ययादपूर्णत्वाभिमानः यत् पाशवमित्या-

ख्यायते ॥''

'विभव' स्वाभाविक है। **'सङ्कोच'** आरोपित है।

महेश्वराचार्य की दृष्टि– महेश्वराचार्य कहते हैं कि समस्त वेद्यों के विक्षोभ को कवलित करने से जो स्वहृदयैकसंवेद्या अनुभूति होती है वही **'विमर्श शक्ति'** है और वही 'मन्त्र' भी है—

(१) स्वस्वभाव-भङ्ग-प्रसङ्गरूप चाकित्य-व्यपोहलक्षणम्।

(२) तन्मयी च भवन्ती तेनैव हेतुद्वयेन वेद्यविक्षोभसर्वस्वग्रासविशृंखलोल्लासायाऽनुभूतिः स्वहृदयैकसंवेद्या **'विमर्श शक्तिः'** सैव मन्त्र इति।

विज्ञानभट्टारककार की दृष्टि– विज्ञानभैरव में कहा गया है कि—

(१) वर्णों से रचित रचना **'मन्त्र'** नहीं है।

(२) नादोल्लास ही **'मन्त्र'** है—

'**वर्णात्मको न मन्त्रो** दशभुजदेहो न पञ्चवदनोऽपि।
सङ्कल्पपूर्वकोटौ **नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः** ॥'

(३) चित्त ही **'मन्त्र'** है— 'चित्तं मन्त्रः ॥' (शि. सू.)

(४) **श्रीस्तोत्रभट्टारककार की दृष्टि–** इसमें कहा गया है कि ''चिदग्निसंहारमरीचिमन्त्रः संविद्विकल्पान् ग्लपयन्नुदेति ॥''

(५) **क्रमकेलिकार की दृष्टि–** 'क्रमकेलि' में कहा गया है कि भगवती संविद् देवता ही 'मन्त्र' है—

'सेयमेवं विधा भगवती संविद्देव्येव मन्त्रः ॥'

(६) **भट्ट श्रीभूतिराज की दृष्टि–** भूतिराज कहते हैं कि ''देवी ही मन्त्र हैं।'' : 'सर्वक्रोडीकारेण स्थितत्वाद् देव्येव मन्त्रः ॥'

(७) **महेश्वरानन्द की दृष्टि–** महेश्वरानन्द की मान्यता है कि ''स्वात्मसंवित् स्वरूप ही **'मन्त्र' शब्द का मुख्य** अर्थ है—

''स्वात्मसंवित्स्वरूपस्यैव मन्त्रशब्दार्थत्वं मुख्यम् ॥'[1]

'परामर्शानुस्यूतिस्वभावश्चमत्कारः ॥' ही **'मन्त्र'** का लक्षण है।[2]

'मन्त्र' वैश्वात्म्यानुभूति है[3]—

---

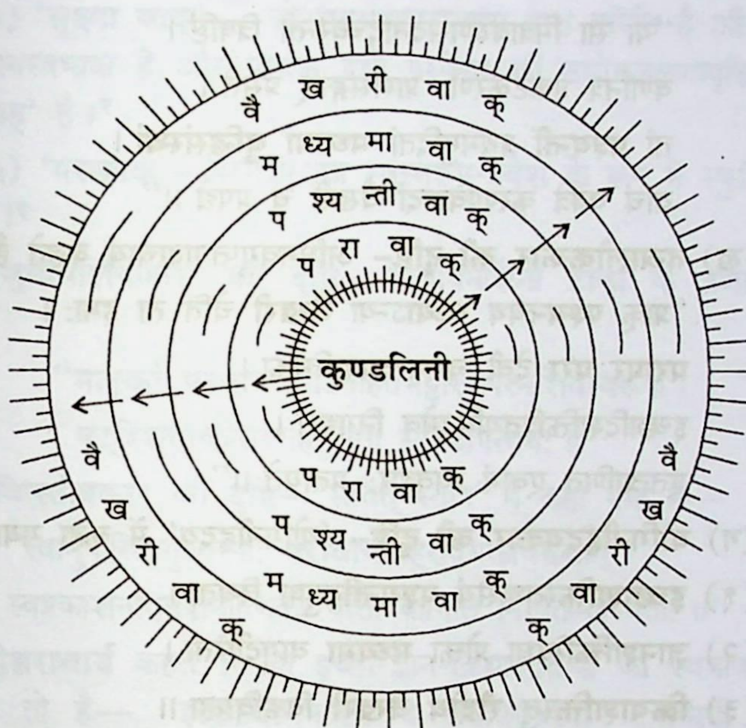
१. महेश्वरानन्द : 'परिमल'।

२. महेश्वरानन्द (गाथा ४९)।

३. 'परिमल'— गाथा-४९।

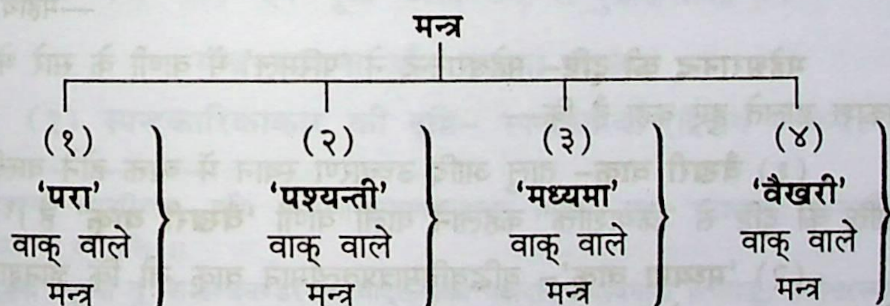
"**मन्त्रस्य** च वैश्वात्म्यानुभूतिरूपत्वात् ।"

मन्त्र के चार स्तर



'सर्ववर्णात्मका: मन्त्रा: ।।

यदि सारे मन्त्र वर्णात्मक हैं तो वर्ण तो चार प्रकार के हैं अत: मन्त्र भी चार प्रकार के होने चाहिये ।



वाणियों का स्वस्वरूप

'परावाक्'– अभेद भूमि में, शुद्धाध्वा में, परमेश्वर के स्वस्वरूप में एवं पराशक्ति में प्रतिष्ठित है । **'पश्यन्तीवाक्** इच्छाशक्ति **'मध्यमा वाक्'** ज्ञानशक्ति एवं **'वैखरी वाक्'** क्रियाशक्ति से सम्बन्ध है ।

'मूलाधार चक्र' से प्रथमोदित भाव ही **'परावाक्'** है। (शङ्कराचार्य)

(क) **साम्बपञ्चाशिकाकार की दृष्टि–** कार्तिकेय कहते हैं—

"या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती त्रिषष्टिं।
वर्णानत्र प्रकटकरणैः प्राणसङ्घात् प्रसूते।
तां **पश्यन्तीं** प्रथममुदितां **मध्यमां बुद्धिसंस्थां**।
वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये॥"

(ख) **तन्त्रालोककार की दृष्टि–** अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—

"प्राक् **पश्यन्त्यथ मध्याऽन्या वैखरी** चेति ता इमाः।
परापर परा देवी चरमात्वपरात्मिका।
इच्छादिशक्तित्रितयमिदमेव निगद्यते।
एतत्प्राणित एवायं व्यवहारः प्रतायते॥"

(ग) **योगिनीहृदयकार की दृष्टि–** 'योगिनीहृदय' में कहा गया है—

(१) **इच्छाशक्तिस्तथासेयं पश्यन्ती**वपुषा स्थिता।
(२) **ज्ञानशक्तिस्त्रिधा** प्रोक्ता **मध्यमा** वागुदीरिता।
(३) **क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी** विश्वविग्रहा॥

(घ) **महेश्वरानन्द की दृष्टि–** महेश्वरानन्द कहते हैं—

'वैखरिका नाम **क्रिया ज्ञानमयी** भवति **मध्यमा** वाक्।
इच्छा पुनः **पश्यन्ती, सूक्ष्मा सर्वासां** समरसा वृत्तिः॥'

—महार्थ मञ्जरी

महेश्वरानन्द की दृष्टि– महेश्वरानन्द ने 'परिमल' में वाणी के सारे भेदों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

(१) **वैखरी वाक्–** तालु आदि उच्चारण स्थान में व्यक्त होने वाली और शक्ति की दृष्टि से 'क्रियाशक्ति' कहलाने वाली वाणी **'वैखरी वाक्'** है।[1]

(२) **'मध्यमा वाक्'–** बुद्धिवृत्तिमात्रप्रवर्त्यमान वाक् जो कि ज्ञानशक्तिरूप है 'मध्यमा वाक्' है।[2]

---

१. तत्र **वैखरी**तिप्रसिद्धा वाक् ताल्वादिकरणव्यापारोपारूढ़ स्फुरणतयाक्रियाशक्तिरित्यध्यवसीयते॥ (परिमल/५०)।

२. **'मध्यमा'** च बुद्धिवृत्तिमात्रप्रवर्त्यमानत्वाद् ज्ञानशक्तिः।

(३) **'पश्यन्ती वाक्'**– ज़ो वाक् सर्वोच्च वाक् 'परावाक्' को देखती है और इच्छाशक्तिस्वरूपा है वह **'पश्यन्ती वाक्'** है।[१]

(४) **'सूक्ष्मा वाक्'**– जो मयूराण्डरसन्यास द्वारा वर्णित है और वाक्यत्रयशबलाभावस्वभावा है और प्रत्यक् द्रष्टा परमेश्वर की उद्योगलक्षणावृत्ति है वही **'सूक्ष्मा वाक्'** है।[२]

(५) **'परावाक्'**– परमेश्वर का स्वस्वरूप-प्रवेश के रूप में स्फुरित वाणी परावाक् है।[३]

ऋजुविमर्शिनीकार की दृष्टि– ऋजुविमर्शिनी टीका के प्रणेता कहते हैं—

"**मातृकां परवागात्मा**ऽनाहतभट्टारकपरमशिवस्वरूपां।
षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरणहेतुभूतां संविदमित्यर्थः॥"

संवित्स्तोत्रकार की दृष्टि– 'संवित् स्तोत्र' में कहा गया है—

"त्वामुपासितगुरूत्तमाः **परावाच**माहुरविभक्तविश्वकाम्।
स्वप्रकाशनविमर्शनात्मिकां वक्ति वागिति निरुक्तिमास्थिताः॥"

महेश्वराचार्य कहते हैं कि इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तियों का स्वभाव स्वात्मस्फुरत्ता ही तो है— "इच्छादिस्वभावैव च स्वात्मस्फुरत्ता।" तन्मयी कोई भी अनुभूति हो वह **'मन्त्र'** ही तो है— "तन्मयी च काचिदनुभूतिर्मन्त्रशब्दार्थ इति सर्वं सङ्गच्छते।"

'प्रकाश' की आत्मा **'विमर्श शक्ति'** ही सर्वत्र सभी को अनुप्राणित करती है और वही 'मन्त्र' 'जप' एवं 'पूजा' आदि नामों से पुकारी जाती है।[४]

मन्त्र-साधना और उसका स्वरूप

(१) स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि– स्पन्दकारिका (द्वितीय निष्यन्द) में

---

१. **'पश्यन्ती'** पुनरिच्छा, बहिः प्रसरणाभ्युपगमरूपत्वात् तस्याः, यतः **'परावाक्'** पश्यन्तीति पश्यन्त्या व्युत्पत्तिः॥

२. **'सूक्ष्मा'** सूक्ष्मा तु शिखण्ड्यण्डरसन्यायादुक्तवाक्त्र यशबलीभावस्वभावा प्रत्यग्द्रष्टुः परमेश्वरस्योद्योग्रलक्षणावृत्तिरित्याख्यायते॥

३. **'परावाक्'**– परावाक् पुनस्तस्यैव परमेश्वरस्य स्वरूपमनुप्रविशन्ती परिस्फुरति॥
—परिमल (गाथा ५०)

४. प्रकाशरूपस्यात्मनो विमर्शशक्तिरेवानुप्राणनम्।
सा च मन्त्रजपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति॥ (परिमल गाथा-५०)

कहा गया है कि—

(१) प्रत्येक प्रकार के **मन्त्र** उस स्पन्दरूप **आत्मबल** के साथ तादात्म्य प्राप्त करने से सर्वज्ञता आदि ६ प्रकार के **माहेश्वर बलों** (१) सर्वज्ञता (२) तृप्ति (३) अनादिबोध (४) अप्रतिहत स्वातन्त्र्य (५) शक्ति का निर्बाध प्रसार एवं (६) विश्वरूप में विकसित अनन्त शक्तियों के ऐश्वर्य— को प्राप्त करके सुशोभित हो उठते हैं।

(२) वे मन्त्र शान्तरूप (शुद्ध संविद्रूप) और निरञ्जन (मायायी उपराग से शून्य) होकर आराधक के चित्त के साथ-साथ चिदाकाश में ही लीन हो जाते हैं। ये सारे मन्त्र मूलतः शिवधर्मी हैं— शिवरूप ही हैं। **''शिवात्मकाः उच्यन्ते ।।''** (भट्टकल्लट : स्पन्दवृत्ति) ॥[1]

(३) साधक को इतना शिवमय हो जाना चाहिये कि वह यह अनुभव करने लगे—

'तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न यः शिवः ।।'

और यह भी अनुभव करना चाहिये कि—

'भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः ॥'

(४) साधक के लिए जगत अपनी क्रीडा-सी दिखाई पड़ने लगे— **''इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत् ।''** ऐसी भावना करते-करते उसे **जीवन्मुक्ति** प्राप्त हो जाती है— **''स पश्यन् सततयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ।।''**

आत्मसत्ता की ऐसी ही पूर्वोक्त व्यापकता का बार-बार अनुसन्धान करने से योगी मन्त्रोच्चारण करने मात्र से मन्त्र के देवता के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है।[2]

तदात्मता-समापत्ति और अमृत-प्राप्ति

स्पन्दशास्त्र में कहा गया है कि यह जो **'अमृत प्राप्ति'** है (इसमें) और जो

---

१. तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः ।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम् ॥२६॥
तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्तरूपाः निरञ्जनाः ।
सहाराधकचित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः ॥२७॥

२. अयमेवोदयस्तस्य ध्येयस्य ध्यायि चेतसि ।
तदात्मतासमापत्तिरिच्छतः साधकस्य या ॥
(स्पन्द का. ३१)

'तदात्मता समापत्ति' है उसमें कोई भेद नहीं है।

कारिकाकार का कथन है कि–

"इयमेवामृतप्राप्तिरयमेवात्मनो ग्रहः।
इयं निर्वाणदीक्षा च शिवसद्भावदायिनी॥"

(१) 'इयमेव सा मिथ्याज्ञानशून्यस्य साधकस्य निरावरण स्वस्वरूपसंवित्तिः अमृतत्व प्राप्तिः।

(२) यैव मन्त्रोच्चारणमात्रेणैव मन्त्रस्वरूपावस्थिति प्राप्तिः सैवात्मनो ग्रहणम्। कथितं च—

'आत्मनो ग्रहणं कुर्याद्दीक्षाकाले गुरुर्धिया॥'

(३) "एवमेव सा निर्वाणदीक्षा शिवसद्भावदायिनी, परमशिवस्वरूपाभिञ्जिका॥"[१]

आन्तर अभ्यर्थना द्वारा जाग्रत-स्वप्न-स्वातन्त्र्य-प्राप्ति

जिस प्रकार 'धाता' (चितशक्ति) देहाभिमान विगलित न रहने पर भी नियमित योगाभ्यास द्वारा संकल्पात्मक **इच्छा-बल** के रूप में अभ्यर्थना किये जाने पर उसके नेत्रों में अत्यन्त तीव्र अवधानात्मक शक्ति को उदित करके उसे जाग्रत अवस्था में उन पदार्थों का दर्शन कराता है, जिन्हें देखने की इच्छा हो उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी अवश्यमेव अभिलषित पदार्थों को ही देखता है। इसका कारण यह है कि वह **धाता** (प्रत्येक प्राणी के अन्तर्हृदय में स्थित चित् शक्ति) इस स्तर पर स्थित योगियों के मध्यधाम (सुषुम्णा धाम) में प्रत्येक काल में स्फुटतर रूप में प्रकाशित रहता है। यदि योगी स्वरूपसाक्षात्कार प्राप्त कर लेने पर भी उस भाव पर निश्चलतापूर्वक अवस्थित नहीं रहता तो उसके लिए जाग्रत एवं स्वप्न दोनों पदों में भावों की सृष्टि लौकिक प्राणियों की ही भाँति चलती रहती है। स्वतन्त्र रूप में भावों की उत्तरोत्तर सर्जना करते रहना स्पन्द शक्ति का अकाट्य स्वभाव है। इस प्रकार योगाभ्यासी के— (१) जाग्रत स्वातन्त्र्य एवं (२) स्वप्न स्वातन्त्र्य— दोनों **सिद्धयाँ नष्ट हो जाती हैं–**

"अन्यथा तु स्वतन्त्रा स्यात् सृष्टितद्धर्मकत्वतः।
सततं लौकिकस्येव जाग्रत् स्वप्न पदद्वये॥"[२]

---

१. स्पन्दसर्वस्व (३२)।
२. स्पन्दकारिका, ३३-३५।

साधना-प्रतिपक्षी क्रियायें

साधना में अभ्यासानैरन्तर्य

कारिकाकार कहते हैं—

"अन्यथा तु स्वतन्त्रा स्यात् सृष्टिस्तद्धर्मकत्वत: ।
सततं लौकिकस्येव जाग्रत्स्वप्नपदद्वये ॥३५॥"

अर्थात् यदि योगी **स्वरूप-साक्षात्कार प्राप्त कर ले पर भी भाव पर निश्चलता से अवस्थित नहीं रहता** तो उसके लिए जाग्रत एवं स्वप्न दोनों में **भावों की सृष्टि** उसी प्रकार चलना प्रारम्भ हो जाती है **जैसे लौकिक प्राणियों में,** क्योंकि भावों की उत्तरोत्तर सर्जना करना स्पन्द शक्ति का निजी स्वभाव है।

अशुभ विकल्पों का उदय

विकल्प दो प्रकार के होते हैं—

(१) शुद्ध विकल्प एवं (२) अशुद्ध विकल्प।

अशुद्ध विकल्प एवं असत् परामर्श साधना के पक्षी होते हैं।

आत्मशक्ति का अभाव

क्षेमराज कहते हैं—

(१) "**शक्तिदरिद्रः संसारी** उच्यते, स्वशक्तिविकासे तु शिव एव ॥"

(२) शिव की भाँति जीव भी पञ्चकृत्यों का निष्पादन करते हैं— "पञ्चविधकृत्यकारित्वं चिदात्मनो भगवत: । यथा च भगवान् शुद्धेतराध्वस्कारक्रमेण स्वरूपविकास रूपाणि सृष्ट्यादीनि करोति, तथा सङ्कुचितचिच्छशक्तितया संसारभूमिकायामपि पञ्चकृत्यानि विधत्ते ॥"[१]

शक्तिदरिद्र संसारी कहलाते हैं और वे ही शक्तिदरिद्र अपनी शक्ति का विकास करने पर 'शिव' बन जाते हैं—

'शक्तिदरिद्रः संसारी उच्यते, स्वशक्तिविकासे तु शिव एव ॥'[२]

स्वरूपगोपन ही संसारित्व (जीवत्व) का कारण है

वही मित प्रमाता या संसारी जीव पतिदशावस्थित होने पर जीवन्मुक्त होने पर शिव बन जाता है—

---

१. प्रत्यभिज्ञा हृदयम (सूत्र १०)।
२. तत्रैव (सूत्र १०)।

"तुर्यदशारूपां तुर्यातीतदशारूपां च चिदानन्दघनाम्।
उन्मीलयति तदा देहाद्यवस्थायामपि **पतिदशात्मा**॥"[१]

अशुद्धि (मल) ही जीवन का कारण है

अशुद्धि ही जीवत्व का उद्रेक-स्रोत है।

*** अशुद्धियाँ ***

'आणव मल'	'मायीयमल'	'कार्ममल'
'आणव मलगत अशुद्धियाँ'	'मायीय अशुद्धियाँ'	'कर्तव्यात्मक अशुद्धियाँ'

कारिकाकार का कथन है—

"निजशुद्ध्यासमर्थस्य कर्तव्येष्वभिलाषिणः।
यदा क्षोभः प्रलीयेत् तदा स्यात्परमं पदम्॥"[२]

अर्थात् अपने ही स्वातन्त्र्य से उत्पन्न सहज अशुद्धि (मल) के द्वारा असमर्थ बने हुए और संसार के वासनात्मक कर्तव्यों की अभिलाषाओं में पड़े हुए, मित-प्रमाता का क्षोभ, जब स्वरूप में ही लीन हो जाय तब उसे **परमपद** प्राप्त होता है।

भट्ट कल्लट की दृष्टि– भट्ट कल्लट कहते हैं कि स्वभावसंजात 'अशुद्धि' में निमग्न रहने एवं वासनात्मक कर्मों में लिप्त रहने एवं उसकी सतत आकांक्षा करते रहने के कारण मितप्रमाता कभी **'आत्मबल'** का स्पर्श ही नहीं कर पाता। जब वह **'क्षोभ'** (देहादि में 'अहं' अभिमानमूलक **विकल्पपरम्परा**) स्वरूप में लयीभूत हो जाय तब वह परमपद में प्रतिष्ठित हो जाती है।[३]

मित प्रमाता की दो अवस्थायें

(१)	(२)
'क्षोभ' की अवस्था	'परमपद' की अवस्था

१. प्र. हृ. (सूत्र १२)।

२. स्पन्दकारिका (९)।

३. स चास्य **आत्मबलस्पर्शः** सहजया अशुद्ध्या व्याप्तस्य कार्यमिच्छतोऽपि न भवति किन्तु यदा क्षोभः 'अहमिति' प्रत्ययभावरूपोऽस्य प्रलीयेत् तदास्य भवति परमे पदे प्रतिष्ठानम्॥ (स्पन्दवृत्ति)

(बन्धन की अवस्था)	(मुक्ति की अवस्था)
('पशु' की अवस्था)	(पशुपति की अवस्था)
(स्वात्मविस्मृति रूप अख्याति एवं अनात्म पदार्थों में आत्मा की एवं आत्मा में अनात्मा की अनुभूति की अवस्था।)	'क्षोभ' से परे की अवस्था। 'अशुद्धि से परे की अवस्था। 'कर्तव्य' (कार्ममल) से परे की अवस्था

अशुद्धि क्या है? अशुद्धि, मल, अज्ञान एवं अविद्या आदि है—

सात्वतसंहिताकार की दृष्टि– 'सात्वत संहिता' में कहा गया है कि अज्ञता, कर्मचक्रावलम्बन, प्रकृति, अशुद्धि, माया, अविद्या, मोह, अज्ञान एवं मल एक ही वस्तु हैं—

"अज्ञताव्यापकत्वं च सुखदुःखादिवेदनम्।
सर्वज्ञस्यात्मतत्त्वस्य कर्मचक्रावलम्बनात्।
गतीस्वेषा प्रकृत्याख्या शुद्धिः प्राक्कर्मवासना।
मायाऽविद्या भ्रमो मोहो ज्ञानं मलमिति क्वचित्॥"

'कर्तव्य' (कर्म) भी संसृति का कारण है—

'षड्धातु समीक्षा' में कहा गया है कि—

'कर्माणि मोहमूलानि संसृतेः कारणं यतः।
तत्क्षयात् कर्मनिर्मुक्तिः स्वस्थः शान्ततमस्ततः॥'

'परमपद' की प्राप्ति तो अज्ञान पङ्क के हटने पर ही संभव है। तभी कैवल्याप्ति होती है। [१]**'अशुद्धि'** अविवेकमूला अविद्या है। (स्पन्द प्रदीपिका)। इसके नष्ट होने से ही परमपद प्राप्त होता है।

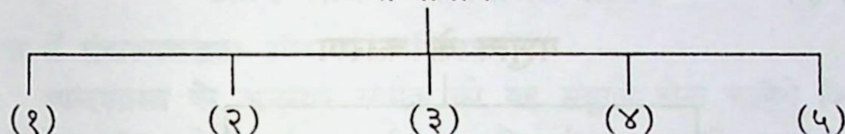
विकल्पात्मक ज्ञान और परामृत से विश्लेष

कारिकाकार का कथन है कि विकल्पात्मक ज्ञान ही वे कारक हैं जिनसे

---

१. **स्वात्मसंबोधकार कहते हैं–**
यथाग्निपोत्रं ज्वलनोद्धृतं सच्छैत्यं प्रयायाच्छनकैर्न सद्यः।
अज्ञानपङ्केऽपि तथा निरस्ते कालेन कैवल्यमुपैति देही॥
कर्मबीज के नष्ट होने पर फिर संसृति कहाँ है?
"यथा सुभर्जितं बीजं नेह भूयः प्रोहति।
विकल्पक्षीणचित्तस्य तथा भूयो न संसृतिः॥"

जीवों का स्वनिहित परामृत रस (शिवभक्ति सामरस्य) छिन जाता है। इसी कारण वह **'अस्वतन्त्र'** बन जाता है। इसके विकल्प ज्ञान के विषय पाँच तन्मात्रायें हैं।



'शब्द तन्मात्रा' 'स्पर्श तन्मात्रा' 'रूप तन्मात्रा' 'रस तन्मात्रा' 'गन्ध तन्मात्रा'

ब्राह्मी आदि शक्तियों द्वारा स्वरूपावरण

मितप्रमाता का 'शिवत्व' से 'पशुत्व' के मार्ग में प्रयाण करने के कारणों में एक कारण शाब्दी शक्तियाँ (पीठेश्वरियाँ) भी हैं। कारिकाकार का कथन है कि— ब्राह्मी आदि वर्ण-शक्तियाँ शिव के स्वरूप पर आवरण डालने हेतु सदैव उद्यत रहती हैं। यह भी सत्य है कि शब्दों की अनुस्यूतता के बिना प्रत्ययोद्भव सम्भव नहीं है और—

'यतः शब्दानुवेधेन न बिना प्रत्ययोद्भवः ।।'

'पशु' बिना शब्दों का आश्रय लिये न तो सोच सकता है और न तो कुछ कर सकता है। शब्दाश्रय लेते ही जीव में विकल्पों का सृजन होने लगता है और उसके परिणामस्वरूप शाब्द शक्तियाँ (ब्राह्मी आदि) जीव के आत्मस्वरूप पर आवरण डाल देती हैं—

'स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः ।
यतः शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भवः ।।'

प्रत्ययोद्भव से परामृत छिन जाता है—

'परामृतरसापायस्तस्य यः प्रत्ययोद्भवः ।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचरः ।।४६।।'

ये शब्दाधिष्ठात्री शक्तियाँ (क्रियात्मिका शक्तियाँ) अपने शब्दमार्ग पर चलने वालों को 'पशु' बना देती हैं—

'सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी ।'

किन्तु यह भी सत्य है कि इन शक्तियों की दासता छोड़कर इनके स्वरूप को जान लिया जाय तो ये मुक्ति भी प्रदान करती हैं—

'बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका ।।४८।।'

पशुत्व का कारण

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं कि पशुत्व का कारण शब्दों की अधिष्ठात्री शक्तियाँ हैं।

पशुत्व के कारण

(१) आत्मवैभव (स्वातन्त्र्य का विलोप)

(२) शक्ति वर्ग की भोग्यता (शब्दों की अधिष्ठात्री शक्ति का दास बनना।

"शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स पशुः स्मृतः ॥४५॥"

'ग्लानि' का त्याग

मानसिक औदासीन्य जो कि अज्ञान के कारण जन्म लेती है शरीर में सभी का ध्वंस कर देती है। यदि 'उन्मेष' के द्वारा अज्ञान का समुच्छेद कर दिया जाय तो, उस कारण के विद्यमान न रहने पर, वह कहाँ से उत्पन्न हो सकती है ?

यह 'उन्मेष' क्या है ? 'एकचिन्ताप्रसक्तस्य यतः स्यादपरोदयः। उन्मेषः स तु विज्ञेयः स्वयं तमुपलक्षयेत्॥ (का. ४१) यदि किसी चिन्तक का चित्त किसी एक विषय से सम्बद्ध चिन्ता में एकाग्रभाव से निलीन हो तो उसमें जिस स्वभाव के द्वारा सहसा कोई दूसरी चिन्ता उभरकर आ जाती है उस दूसरी चिन्ता के उत्पन्न होने के कारण को **'उन्मेष'** कहते हैं— 'एकत्रविषये व्यापृतचित्तस्य यतो यस्मात् स्वभावात् झगित्यन्या चिन्तोत्पद्यते स चिन्तायाः कारणम् 'उन्मेषो' ज्ञातव्यः।'[१]

अध्यात्म-साधना में अग्रपद होने के लिए **'ग्लानि'** का त्याग भी परमावश्यक है। कारिकाकार कहते हैं—

'ग्लानिर्विलुम्पिका देहे तस्याश्चाज्ञानतः सृतिः।
तदुन्मेषविलुप्तं चेत् कुतः सा स्यादहेतुका॥'[२]

अर्थात् मानसिक औदासीन्य (ग्लानि) शरीर में सारी क्षमताओं को नष्ट कर डालती हैं। ग्लानि अज्ञानोद्भूत है। यदि 'उन्मेष' के द्वारा अज्ञान का समूल उच्छेद कर दिया जाय तो वह स्वयं नष्ट हो जाता है।

---

१. भट्टकल्लट (स्पन्द सर्वस्व) (का. ४१)।
२. स्पन्द कारिका (४०)।

(१) अज्ञान → ग्लानि → शरीर में क्षमताओं का विनाश।

(२) उन्मेष → अज्ञान → ध्वंस॥

आत्म-साधना के विभिन्न साधन

साधना में संकल्पबद्धता और अनन्यनिष्ठा

स्पन्दशास्त्र के अनुसार साधक को यह सङ्कल्प लेना चाहिये कि "यह स्पन्दात्मिका शक्ति मुझे जिस प्रकार की स्वरूपविमर्शात्मक अनुभूति करायेगी मैं उस पर आरूढ़ होकर रहूँगा।" इस प्रकार सङ्कल्पबद्ध होकर जिस प्रकार की वृत्ति प्रत्यस्तमिता मानसिक अवस्था का आश्रय लेकर अवस्थित रहता है।[१]

उस योगी की उसी अवस्था का आश्रय लेकर, उसके चन्द्रमा और सूर्य (मन एवं प्राण या प्राण-अपान) शरीर व्याप्ति को छोड़कर ऊर्ध्वमार्ग से सुषुम्ना धाम में पहुँचकर उसी में लयीभूत हो जाते हैं।[२]

जहाँ पहुँचकर चन्द्र-सूर्य दोनों लीन हो जाते हैं। उस महान आकाश (तुर्यरूप शक्ति भूमिका के अनन्ताकाश में प्रबुद्ध योगी की चिन्मात्ररूप अनुभूति पर कोई भी आवरण नहीं रहता है। इसके प्रतिकूल मूढ़ योगी उस अवस्था में भी सुषुप्तिपदवत प्रगाढ अन्धतमस की अवस्था में अचेत पड़ा रहता है।[३]

जो कोई प्रबुद्ध भूमिका पर अवस्थित योगी अपने आप में स्पन्द तत्त्व को अभिव्यक्ति के लिए प्रतिसमय अथक प्रयत्न करता रहता है उसे जाग्रतावस्था में ही अपने चिन्मात्र भाव की उपलब्धि अति अल्प समय में हो जाती है—

'अतःसततमुद्युक्तः स्पन्दतत्त्वविविक्तये।
जाग्रदेव निजं भावं न चिरेणाधिगच्छति॥२१॥'

साधकों को विशेषस्पन्दों से अपनी रक्षा भी करते रहना चाहिये; क्योंकि गुणादिरूपों में प्रवहमान विशेष स्पन्द प्रति समय स्वरूप की यथार्थ स्थिति (चिन्मयता) पर आवरण डालने पर कटिबद्ध रहते हैं। ये अप्रबुद्ध पशुओं को दुरुत्तार एवं भयावह मार्ग पर स्थित करके दिग्भ्रम में डाल देते हैं—

अप्रबुद्धधियस्त्वेते स्वस्थितिस्थगनोद्यताः।
पातयन्ति दुरुत्तारे घोरे संसारवर्त्मनि॥[४]

---

१. स्पन्द कारिका (२३)।
२. स्पन्द कारिका (२४)।
३. स्पन्द कारिका (२५)।
४. स्पन्द कारिका (२०) (५)।

'विशेष स्पन्द' और 'सामान्य स्पन्द' की भूमिकायें

गुणादि स्पन्दों के अनन्त प्रवाहों को सामान्य स्पन्द का ही आधार होने के कारण उन उन रूपों में सत्ता प्राप्त हुई है।

अतः वे उस योगी के शत्रु नहीं बन सकते; क्योंकि उन्होंने उसके रहस्य का अवगाहन कर लिया है।

आत्मसाधना– योगी को चाहिए कि वह इसका चिन्तन एवं अनुभव करे कि शक्तिघन एवं सर्वव्यापक आत्मतत्त्व जाग्रत अवस्था में केवल ज्ञेयपदार्थों का रूप धारण करने वाली एवं स्वप्नावस्था में केवल 'ज्ञान' का रूप धारण करने वाली महान विमर्श-शक्ति के द्वारा प्रकाशमान रहता है। उन दो अवस्थाओं से इतर अवस्थाओं में (सुषुप्ति एवं तुर्या में) केवल चिन्मात्र रूप में प्रकाशमान रहता है।[1]

'सुप्रबुद्ध योगी' को उस चिद्रूप स्वभाव की प्राप्ति जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं के आदि-मध्य-अन्त में समान एवं अखण्ड रूप में, प्रतिसमय होती रहती है, किन्तु इसके प्रतिकूल 'प्रबुद्ध योगी' को इन तीन अवस्थाओं में से पहली (जाग्रत अवस्था) की अन्तिम दो अवस्थाओं में (स्वप्न एवं सुषुप्ति) उपलब्धि होती है।

आत्म-साधना से संसरण का अन्त

'स्पन्दशास्त्र' यह मानता है कि जो कोई साधक 'स्वभाव' (स्पन्दात्मक आत्मस्वरूप से) का ही, विश्व को कण-कण में अनुस्यूत रहने वाली सत्ता के स्वरूप में साक्षात्कार करता है और विस्मयान्वित होकर अवस्थित रहता है वह हेय एवं त्याज्य आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है।

तमधिष्ठातृभावेन स्वभावमवलोकयन्।
स्मयमान इवास्ते यस्तस्येयं कुसृतिः कुतः ? (११)

स्पन्दप्रदीपिकाकार की भी यही दृष्टि है। वे कहते हैं—

'तस्य अविद्याविलयादियं कुतः कुसृतिः ?'[2]

---

१. ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्या शक्त्या परमया युतः।
पदद्वये विभुर्याति तदन्यत्र तु चिन्मयः ॥१८॥
तस्योपलब्धि सततं त्रिपदाव्यभिचारिणी।
नित्यं स्यात् सुप्रबुद्धस्य तदाद्यन्तेऽपरस्य तु ॥१७॥

२. तं शुद्धमात्मस्वभावमधिष्ठातृभावेन चिद्रूपतया सर्वव्यापकत्वेनावलोकयन् पश्यन् प्रतिजानन् स्मयमान इव विस्मयाविष्ट इव विकसन्निव यस्तिष्ठति तस्य अविद्याविलयादियं कुतः कुसृतिः? (स्पन्द प्रदीपिका, ११)

स्पन्दतत्त्व का निमालन

साधक को चाहिये कि वह अपने अनुभव की प्रत्येक दशा में अपने संवेदन द्वारा प्रत्येक ज्ञेय विषय का विश्लेषण करते-करते उसमें अनुस्यूत स्पन्द-तत्त्व का निमालन करता रहे। ऐसा करने से समस्त प्रमेय वर्ग को एक ही तत्त्व में किया जा सकता है। योगी को यह लय क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये।

विश्वात्मभावपूर्वक प्रत्येक भाव में स्वावस्थान

जब योगी प्रत्येक भाव में केवल और केवल स्पन्दात्मक स्वरूप को निमालने का संकल्प धारण करके उसमें स्वरूपतः **व्याप्त होकर** अवस्थित रहता है तब वह स्वयं उस तत्त्व का साक्षात्कार करने में सक्षम हो जाता है—

'दिदृक्षयेव सर्वार्थान् यदा व्याव्यावतिष्ठते।
तदा किं बहुनोक्तेन स्वयमेवावभोत्स्यते ॥

(अवभोत्स्यते=ज्ञास्यति। ''**तदवस्थास्थइव** सर्वान् भावान् यदा व्याप्यावतिष्ठते तदा...स्वयमेव तत्त्वस्वभावं अवभोत्स्यते ज्ञास्यति'— भट्टकल्लट)

उन्मेषानुशीलन और तत्संजात सिद्धियों की प्राप्ति

'एकचिन्ताप्रसक्तस्य यतः स्यादपरोदयः।
उन्मेषः स तु विज्ञेयः स्वयं तमुपलक्षयेत् ॥४१॥

इस स्वरूप मे 'उन्मेष' का अनुशीलन करते से **'बिन्दु' 'नाद' 'रूप'** एवं **'रस'** नाम वाली सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं किन्तु योगी में देहाभिमान होने पर ये सिद्धियाँ क्षोभ में ही डाल देती हैं—

'अतो बिन्दुरतो नादो रूपमस्मादतो रस;।
प्रवर्तन्ते चिरेणैव क्षोभकत्वेन देहिनः ॥' (४२)

'प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेज्ज्ञानेनालोच्य गोचरम्।
एकत्रारोपयेत् सर्वं ततोऽन्येन न पीड्यते ॥' (४४)

ऐसा होने पर वह कलासमूह से पीड़ित नहीं होगा।

(१) साधक को चाहिये कि वह सदैव शक्ति का संकोच किए बिना एक प्रबुद्ध के रूप में स्थित रहे—

'प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेत् ''प्रबुद्धोऽसंकुचितशक्तिः सर्वकालं तिष्ठेत् ॥'
—(स्पन्द वृत्ति)

(२) साधक प्रत्येक ज्ञेय विषय का विश्लेषण करे।

(३) साधक सभी को 'विद्यात्मक तत्त्वसद्भाव' में आरोपित (लयीभूत) करे— 'एकत्रारोपयेत् सर्वं ॥'

आत्मबल का उदय

साधनोपयोगी उपायों में 'आत्मबल' सर्वोच्च साधन है

'यदि आत्मबल' के बिना कोई भी कार्य संभव नहीं है तो फिर आध्यात्मिक उत्कर्ष जैसा दुरूहतम कार्य कैसे सम्भव होगा ?

जिस प्रकार किसी व्यक्ति को कोई दूरस्थ पदार्थ, चित्त के सावधान रहने पर प्रथम दृष्टि में ही दृष्टिगत नही हो जाता है किन्तु **'आत्मबल** के उदित होने पर वही पदार्थ स्पष्टतर दृष्टिगोचर होने लगता है उसी प्रकार योगी को स्पन्दात्मक आत्मबल पर आरूढ़ होने की दशा में स्वल्प काल में ही वे समस्त पदार्थ— जो जिस समय, जिस देश एवं जिस आकार-प्रकार में विद्यमान हों वे सभी— उसी अवस्था में दृष्टिगोचर होने लगते हैं।[१]

जिस प्रकार दुर्बलशरीर वाला व्यक्ति भी, किसी अशक्य कार्य को (आवेश में आने पर) एक अलक्ष्य **'आत्मबल'** की प्रेरणा से निष्पन्न कर डालता है। एक क्षुधित व्यक्ति (परिस्थिति आने पर) आत्मबल से क्षुधा पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है उसी प्रकार सिद्ध योगी अपने शरीर के अत्यधिक निर्बल होने पर भी अपने स्पन्दात्मक आत्मबल पर आरूढ़ होकर दुष्कर से दुष्कर कार्य सहज में ही निष्पादित कर डालता है और अत्यधिक बुभुक्षित रहने पर भी अपनी क्षुधा पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है।[२]

जिस किसी भी सर्वसाधारण शरीर में यह चेतयिता स्पन्दतत्त्व अधिष्ठित हो उसे **सर्वज्ञता** आदि धर्म अभिव्यक्त हो जाते हैं। देहाभिमान से हटाकर सीधा उस **आत्मतत्त्व को ही अहं रूप** में अनुभव करने वाले योगी में **सार्वत्रिक सर्वज्ञता** आदि धर्म अभिव्यक्त हो उठते हैं।

आत्माहन्ता और सर्वज्ञतादिक शक्तियों का उदय

साधक में सर्वज्ञता आदि शांभवी शक्तियों का उदय आत्माहन्ता-जन्य हैं—

---

१. यथा ह्यर्थोऽस्फुटो दृष्टः सावधानेऽपि चेतसि।
भूयः स्फुटतरो भाति स्वबलोद्योगभावितः ॥३६॥
तथा यत्परमार्थेन यदा यत्र यथा स्थितम्।
तत्तथा बलमाक्रम्य न चिरात् सम्प्रवर्तते ॥३६७॥

२. दुर्बलोऽपि तदाक्रम्य यतः कार्ये प्रवर्तते
आच्छादयेद् बुभुक्षा च तथा योऽतिबुभुक्षितः ॥३८॥

'अनेनाधिष्ठिते देहे यथा सर्वज्ञतादय: ।
तथा स्वात्मन्यधिष्ठानात् सर्वत्रैवं भविष्यति ।।'[१]

आत्मबल का सतत परीक्षण

"जिस **स्पन्दात्मक बल (आत्मबल)** के संस्पर्श मात्र से ही, आन्तर शक्ति चक्र के साथ-साथ, उस बाह्य अचेतन इन्द्रिय समूह को भी चेतनवत सृष्टि-स्थिति-संहार करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है उस **स्पन्दात्मक स्वभाव का परीक्षण श्रद्धा एवं भक्ति के साथ करना चाहिये।** यह आवश्यक है; क्योंकि उस तत्त्व की स्वभावभूत स्वतन्त्रता विश्व के अणु-अणु में व्याप्त है ?

"यत: करणवर्गोऽयं विमूढोऽमूढवत् स्वयम्।
सहान्तरेण चक्रेण प्रवृत्तिस्थितिसंहती: ।।
लभते, तत्प्रयत्नेन परीक्ष्यं तत्त्वमादरात्।
यत: स्वतन्त्रता तस्य सर्वत्रेयमकृत्रिमा ।।"[२]

आन्तर करणेश्वरी चक्र ('खेचरी', 'गोचरी', 'दिक्चरी', 'भूचरी' : शक्तिवर्ग के चार भेद) करण (अन्त:करण एवं करण, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ एवं अन्त:करण) आदि को स्पन्दतत्त्व (आत्मा) ही शक्ति प्रदान करता है। खेचरी आदि शक्तिवर्ग पशुभाव-विमोहित शिव को मोहाविष्ट करके उसमें हेय पदार्थों (अनात्मपदार्थों) के प्रति अहं-अभिनिवेश का दुराग्रह उत्पन्न करता है।

आत्मबल के परीक्षण से **'स्वातन्त्र्य शक्ति'** की प्राप्ति होती है— "लभते तत्प्रयत्नेन परीक्ष्यं तत्त्वमादरात् ।।"

अत: उसका अखण्ड निरीक्षणपरीक्षण आवश्यक है।[३]

आत्मबल और उसका महत्त्व

स्पन्दकारिकाकार ने कहा है कि मितप्रमाता पुरुष केवल पारमेश्वरी इच्छा के अङ्कुश का प्रेरकमात्र बनकर ही नहीं रह जाता प्रत्युत वह आत्मबल का स्पर्श करके ही मितप्रमाता के स्थान पर **'पतिप्रमाता'** के समान बन जाता है— 'शिव-तुल्यो जायते' (शिवसूत्र)।

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं—

---

१. स्पन्दकारिका (३९)।
२. स्पन्दकारिका (६.७)।
३. स्पन्दकारिका (६/७)।

'न हीच्छानोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्तते।
अपि त्वात्मबलस्पर्शात् पुरुषस्तत्समो भवेत्॥'

आत्मसाधना से सम्प्राप्त सर्वज्ञत्व माहेश्वर ऐश्वर्यों का कभी नाश नहीं होता— "न तु योऽन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञगुणास्पदमा तस्य लोपः कदाचित् स्यात्...॥"[१]

"तस्योपलब्धि सततं त्रिपदाव्यभिचारिणी॥"[२]

'क्षोभ' के ध्वंस से शैवी शक्तियों का प्रादुर्भाव

स्पन्दशास्त्र की मान्यता है कि (१) 'अशुद्धियाँ' ('आणव', 'मायीय' एवं 'कार्ममल') (२) सांसारिक एवं वासनामूलक कार्यों एवं (३) विषयनिबद्ध आकांक्षाओं तथा (४) उनसे उत्पन्न **'क्षोभ'** के कारण ही प्राणी को परमपद की प्राप्ति नहीं हो पाती है।[३] यदि क्षोभ का स्वस्वरूप में लय हो जाय तो परमपद की प्राप्ति हो जाती है—

'यदा क्षोभः प्रलीयेत् तदा स्यात् परमं पदम्॥'[४]

क्षोभ-ध्वंस के परिणाम

(१)	(२)	(३)
'परमपद' ('तदा स्यात् परमं पदम्') (स्पन्द का. ९)	'सर्वज्ञातृत्व' 'सर्वकर्तृत्व' 'पूर्ण तृप्ति' आदि शांभव ऐश्वर्यों की प्राप्ति॥	तदास्याकृत्रिमो धर्मो, ज्ञत्वकर्तृत्वलक्षणः, यतस्तदीप्सितं सर्वं, जानाति च करोति च। —(स्पन्दकारिका १०)

भट्ट कल्लट की दृष्टि– भट्ट कल्लट ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।[५]

---

१. स्पन्दकारिका (१६)।
२. स्पन्दकारिका (१७)।
३. 'निज......पदम्' (का. ९)।
४. स्पन्दकारिका ९।
५. यतः तस्मिन् प्रलीनक्षोभालके काले अकृत्रिमः सहजो ज्ञत्वकर्तृत्वस्वभावरूपो धर्मो यस्मात् तस्मिन् व प्राप्तयोगात्मके काले यद् यद् ज्ञातुं इच्छति, तत तत् जानाति च करोति च नान्यदा संसार्यवस्थायाम्॥ (स्पन्दसर्वस्व)

स्पन्दप्रदीपिकाकार (उत्पलाचार्य) कहते हैं कि—

'तस्मिन् प्रलीनक्षोभात्मके कालेऽस्य आत्मनः स्वरूपस्थत्वात् अकृत्रिमः सहजो धर्मः स्वभावो भवतीति ।। (स्पन्दप्रदीपिका)

पाञ्चरात्र में कहा गया है कि ऐसी स्थिति में—

'यत् सर्वज्ञो भवति सर्वदर्शी सर्वेश्वरः सर्वशक्तिः ।।'

ऐसी स्थिति में क्या होता है ?

षाड्गुण्य विवेककार का मत–'षाड्गुण्य विवेक' में कहा गया है कि—

"नहि बोधो विचित्रार्थ निर्माणेऽन्यमपेक्षते ।
सङ्कल्पादेव यो रूपसहस्राणि सृजत्यजः ।।"

ध्यानतत्त्व और उसका तान्त्रिक स्वरूप

तान्त्रिक ध्यान में षट्चक्रों का ध्यान, ग्रंथित्रय का ध्यान, पञ्चमहाभूतों का ध्यान, महाविद्याओं का ध्यान, तन्मात्राओं का ध्यान, तारा, काली आदि तांत्रिक देवियों का ध्यान और 'कुण्डलिनी' आदि का ध्यान प्रमुख है ।

ध्यान की तान्त्रिक दृष्टि

'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि—

(१) "ध्यान' **निश्चला** बुद्धि है। यह **निराकार** एवं **निराश्रित** है ।

(२) 'ध्यान' शरीर, आँख, मुख, हाथ की कल्पना नहीं है ।

'ध्यानं हि निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया ।
न तु ध्यानं शरीराक्षिमुखहस्तादिकल्पना ।।"

अर्थात् ध्यान **'निश्चल'** अर्थात् स्थिरतापूर्वक स्थित रहनेवाली अवस्था है परिवर्तनशील नहीं। यह **'निराकार'** है अर्थात् भाँति भाँति की भिन्न-भिन्न आकृतियों से रहित है । यह **'निराश्रया'** है अर्थात् मूलाधार, हृदय द्वादशान्त आदि स्थानों का आश्रय न लेने वाली बुद्धि ही ध्यान है। वेद्य एवं अवेद्य विषयों की उपस्थिति में भी समाधि के अभ्यास के कारण पवनशून्य स्थान में स्थित दीपक की भाँति जो स्थिर निर्विकार बुद्धि होती है, इसे ही शास्त्रों में **'ध्यान'** कहा जाता है।

कुलार्णवतन्त्रकार की दृष्टि– 'कुलार्णव तन्त्र' में **'ध्यान' के स्थूल स्वरूप** को (सामान्य साधकों के लिए) स्वीकार करते हुए कहा गया है कि—

'यावदिन्द्रियसन्तापं मनसा सन्नियम्य च ।
स्वान्तेनाभीष्टदेवस्य चिन्तनं **ध्यान**मुच्यते ।।' (१७/३६)

वैष्णवागम की दृष्टि

गुरु का ध्यान– साधक को सर्वप्रथम तुर्ययाम में गुरु का स्मरण करना चाहिये—

'तुर्ये यामे समुत्थाय शय्यायामेव सुव्रते।
ब्रह्मरन्ध्रे गुरुं ध्यायेत्कर्पूरधवलप्रभम्॥
द्विनेत्रं द्विभुजं चैव श्वेतवस्त्रानुलेपनम्।
पञ्चभूतात्मकैरेव पञ्चभिरुपचारकैः।
पूजयेद्देवदेवेशि आत्मानं तद्गतं स्मरेत्।
तच्चरणोदकधारानिपतितं स्वमूर्द्धनिः।
क्षालितं निर्मलं शुद्धमात्मानं परिचिन्तयेत्।
नमोस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाशिवः।
गुरुरेवं परं तत्त्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।
प्रणम्य मन्त्रयुग्मेन हृदि लीनं विभावयेत्॥'[१]

'ध्यान' शिवत्व-प्राप्ति का एक साधन है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि परब्रह्म का ध्यान करने से साधक शीघ्र ही निजहृदयावेशसहित (अपने हृदय में समावेश के द्वारा) शिवत्व प्राप्त कर लेते हैं—

'अचिरादेव शिवत्वं निजहृदयावेशमभ्येति॥' (परमार्थसार १०४)

परमात्मा का ध्यान

गुरु का ध्यान करने के उपरान्त परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। "मा. तंत्र" में कहा गया है—

ततो लीलाविहारस्य ध्यायेत्कृष्णं हृदाम्बुजे।
पूजयेत् पूर्ववद्देवि ह्युपचारैश्च पञ्चभिः।
ततस्तं प्रार्थयेदीशं बद्धहस्ता प्रियंवदे।

---

१. माहेश्वरतन्त्र (ज्ञानखण्ड) (३१/२-८)।

प्रार्थना—

अहं नाथ त्वदीयास्मि पतिस्त्वं मेऽसि भो प्रभो।
भ्रमितास्मि त्वया नाथ मायागहनवर्त्मनि।
त्वत्पार्श्वं नय मां नाथ विरहो मां प्रबाधते।
अनन्यगतिका चाहं तस्मात्कुरु यथोचितं।
एवं सम्प्रार्थ्य **भर्त्तारं** तत्प्रभापटलारुणम्।
स्वदेहं भावयेद्देवि! नमस्कुर्यात्ततः प्रिये।
ततो भूमिं च सम्प्रार्थ्य दक्षपादं निधापयेत्।
समुद्रमेखले देवि ! पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥'[१]

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान– (सगुणध्यान)

भगवती को **'मणिद्वीप'** में स्थित मानकर उनका ध्यान करना चाहिये। इसमें निवास ही मुक्ति है— ऐसा आचार्य हयग्रीव का मत है—

(१) 'सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरिति हयग्रीवः।'[२]

(२) 'अतो मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।'[३]

(३) ब्रह्मरंध्र सहस्रारम्॥२३॥ देवता परा शक्तिः॥१४/४/२४

आचार्य शङ्कर द्वारा वर्णित देवी का ध्यान-स्वरूप

'सुधासिन्धु' के मध्य प्रदेश में सुरविटपवाटी से परिवृत **'मणिद्वीप'** में, नीप वृक्षों से आच्छादित **'चिन्तामणिग्रह'** में शिवाकार मञ्च पर स्थित परमशिव-रूप पर्यङ्क पर विराजमान जो देवी हैं वे चिदानन्दलहरी हैं। इसी रूप में उनका ध्यान करना चाहिये—

"सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥"[४]

---

१. मा. तं. (३१/९-१४)।
२. शाक्तदर्शनम् (९/४/१४)।
३. शा. द. (१०/४/१८)।
४. सौन्दर्यलहरी (८)।

उनका स्वरूप इस प्रकार है—

'क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तनमता ।
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना ।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपिदधाना करतलैः ।
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहो पुरुषिका ॥'[१]

योगियों के द्वारा ध्येय देवी का स्वरूप

योगशक्ति के रूप में षट्चक्रों में निवास करने वाली तथा 'सहस्रार' में अपने 'पति' से मिलकर विहार करने वाली भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का इस रूप में ध्यान करना चाहिये—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥'[२]

'मूलाधारचक्र' निवासिनी के रूप में देवी का ध्यान

आचार्य शङ्कर ने देवी के **'सहस्रार चक्र'** में स्थित स्वरूप के साथ **'मूलाधारचक्र'** में स्थित देवी के स्वरूप का भी वर्णन करके उनके ध्यान का विधान किया है—

'सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥'[३]

'भैरवयामल' (वामकेश्वरमहातन्त्र) में वर्णित भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के ध्यान का स्वरूप

'भैरव यामल' में भगवती ललिताम्बा के ध्यान का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है—

---

१. सौन्दयलहरी (७)।
२. सौन्दर्यलहरी (९)।
३. सौन्दर्यलहरी (१०)।

''बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः ।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिपण्टपम् ।।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम् ।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे ।।
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः ।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः ।।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम् ।
तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा ।।

\+ + + +

सुधाब्दौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डपमध्यगाम् ।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्वाहां त्रिलोचनाम् ।।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम् ।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम् ।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमाचरेत् ।।

ध्यान के अन्य विधान

(१) प्रतिपदा को **'त्रिपुरसुन्दरी कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(२) द्वितीया को **'कामेश्वरी कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(३) तृतीया को **'भगमालिनी कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(४) चतुर्थी को **'नित्यक्लिन्ना कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(५) पञ्चमी को **'भेरुण्डा कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(६) षष्ठी को **'वह्निवासिनी कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(७) सप्तमी को **'महाविद्येश्वरी कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(८) अष्टमी को **'रौद्री कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(९) नवमी को **'त्वरिता कला'** का ध्यान करना चाहिये ।
(१०) दशमी को **'कुलसुन्दरी कला'** का ध्यान करना चाहिये ।

(११) एकादशी को **'नीलपताका कला'** का ध्यान करना चाहिये।

(१२) द्वादशी को **'विजया कला'** का ध्यान करना चाहिये।

(१३) त्रयोदशी को **'सर्वमङ्गला कला'** का ध्यान करना चाहिये।

(१४) चतुर्दशी को **'ज्वाला कला'** का ध्यान करना चाहिये।

(१५) पञ्चदशी को **'मालिनी कला'** का ध्यान करना चाहिये।

चित्कलारूप ललिता का ध्या

सहस्रदलस्थ चन्द्रमा की चिन्मयी कला के रूप में भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान

'सहस्रदलकमल' में स्थित चन्द्रमण्डल ही 'बैन्दवस्थान' है। उसमें स्थित जो कला है वह चिन्मयी है। वह आनन्दरूपा कला ही 'आत्मा' है। उसे ही 'त्रिपुर-सुन्दरी' भी कहा जाता है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का 'सहस्राकार चक्र' में इसी प्रकार ध्यान करना चाहिये॥

भगवती कुण्डलिनी का ध्यान

वन्दे श्री कुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः साङ्गैः स्वयंभूप्रियां।
प्रविष्ट्याम्बरचित्तमध्यचपलाबालाबला निष्कला।
या देवी परिभाति वेदवदना सम्भावनी तापिनी।
द्रष्टानां शिरसि स्वयंभूवनिता सम्भावयामि क्रियाम्॥

\+ \+ \+ \+ \+

वाणीकोटिमृदङ्गनादमदनानिश्रेणि कोटि ध्वनिः।
प्राणेशीप्रियतामभूलकमनोल्लसैकपूर्णानना।
आषाढोद्भवमेघराजिजनितध्वान्ताननास्थायिनी।
माता मा परिपातु सूक्ष्मपथगे! मां योगिनां शङ्करी॥

\+ \+ \+ \+ \+

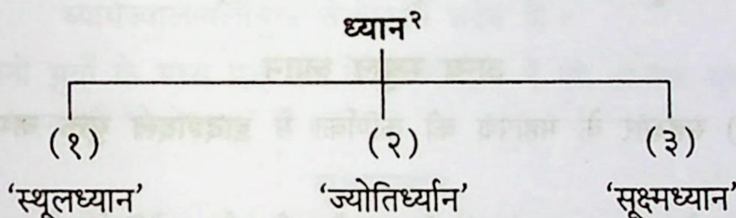
त्वामाश्रित्य नरा व्रजन्ति सहसा वैकुण्ठ कैलासयो-।
रानन्दैकविलासिनीं शशिशतानन्दाननां कारणम्।
मातः श्री कुलकुण्डली प्रियकले काली कलोद्दीपने।
तत्स्थानं प्रणमामि भद्रवनिते! मामुद्धरत्वं पथे॥

\+ \+ \+ \+ \+

कुण्डलीशक्तिमार्गस्थं स्तोत्राष्टकमहाकलम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स योगी भवति ध्रुवम्॥
क्षणादेव हि पाठेन कविनाथो भवेदिह।
पवित्री कुण्डली योगी ब्राह्मणी नो भवेन्महान्॥
महाकुलकुण्डलिनीममृतानन्दविग्रहाम्।
ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥[१]
ध्यायेत् **कुण्डलिनीं** देवीं त्वद**विद्याक्षररूपिणीम्**।
षटचक्रभेदिनीं देवीं तां च **बिन्दुत्रयात्मिकाम्**।
तां **चार्धकलारूपां** तु, चिन्तयेत् पद्मकानने॥

ध्यान के प्रकार

तान्त्रिक योगियों ने (यथा घेरण्ड ने) ध्यान के तीन प्रकार बताए हैं जो इस प्रकार हैं—

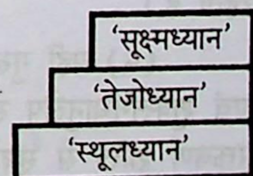


'स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली पदेवता।'[३]

विविध ध्यानों का सोपान क्रम

(१) स्थूल ध्यान से १० गुना श्रेष्ठतर ध्यान='तेजोध्यान'।

(२) तेजो ध्यान से लक्षगुणित श्रेष्ठतर ध्यान='सूक्ष्मध्यान'।



स्थूल ध्यान– (१) एक **'अमृत समुद्र'** है।

(२) अमृत समुद्र के मध्य **'रत्नद्वीप'** है।

(३) रत्नद्वीप में **रत्नों की बालुका** बिछी है।

---

१. श्रीरुद्रयामल।
२. घेरण्ड संहिता (षष्टोपदेश)।
३. घे. सं. (६/१)।

(४) उस रत्नबालुका वाले रत्नद्वीप में पुष्पित नीम के वृक्ष हैं और इन वृक्षों से किले की खाई की भाँति वृक्ष का घेरा है।

(५) यहाँ **मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्पा, बकायन** एवं **स्थल कमल नामक पुष्पों से** समस्त दिशायें सुगंधित हैं।

(६) उसके मध्य एक **'कल्पवृक्ष'** है। यह पुष्पान्वित है और इसकी चार शाखायें चार वेद हैं। यहाँ भ्रमर-कोयल गुञ्जार कर रही हैं और बात भी कर रही हैं।

(७) उस कल्पतरु के नीचे **'माणिक्य मण्डप'** है।

(८) माण्डिक्य मण्डप में एक रत्नों का पर्यंक है और उस पर इष्टदेव विराजमान हैं।

'यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः ॥'[१]

अन्य स्थूल ध्यान

(१) सहस्रार के महापद्म की कर्णिका में **द्वादशदल युक्त कमल** स्थित है।

(२) जो 'द्वादश दल पद्म'' है वह श्वेत है और ज्योतिर्मय है। उसके १२ दलों प्र निम्न वर्ण अङ्कित हैं जो निम्नांकित हैं— ह, स, क्ष, म, ल, ब, र, यूं, ह, स, ख, क्रें। ये बीजमन्त्र हैं।

(३) इस द्वादश दल पद्म की कर्णिका के मध्य—

'अ' 'क' एवं 'थ' ये तीन अक्षर रेखायें हैं। इसमें 'ह' 'ल' एवं 'क्ष' वर्णो से निर्मित कोण हैं और उसके मध्य **'प्रणव'** स्थित हैं।

(४) वहाँ नादबिन्दुमय एक सिंहासन है। उस पर एक 'युगल हंस' स्थित रहता है।

(५) यहीं गुरु पर का ध्यान करना चाहिये। वे द्विभुजी, त्रिनेत्री, श्वेताम्बरी एवं शुक्लगंधानुलेप से उनका शरीर अनुलिप्त है। वे शुक्ल माला पहने हैं और रक्तवर्ण शक्ति से सुशोभित हैं।

इस प्रकार कल्पना करके गुरु का ध्यान करना चाहिये।

---

१. घेरण्ड संहिता (६/८)।

तेजोध्यान

इस ध्यान से (१) योगसिद्धि एवं (२) आत्मदर्शन की प्राप्ति होती है।

'तेजोध्यान' और 'कुण्डलिनी'

(१) मूलाधार चक्र एवं लिंगमूल के मध्य **'कुण्डलिनी शक्ति'** स्थित है। यह सर्पिणी के आकार की है। वहीं प्रदीपकलिका के समान जीवात्मा अवस्थित है। उसमें तेजोमय ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये—

'मूलाधारे कुण्डलिनी भुजङ्गाकाररूपिणी।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिकाकृतिः।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम्॥'

तेजोध्यान का द्वितीय प्रकार

भ्रुवोर्मध्येमनोर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम्
ध्यायेज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि।

दोनों भ्रुवों के मध्य एवं मन के ऊर्ध्वप्रदेश में जो ॐकार युक्त तेजावली है उसका ध्यान ही 'तेजोध्यान' है।

सूक्ष्मध्यान

आत्मा के साथ संयुक्त और नेत्रों के रंध्र से निकलने वाली एक ज्योति है जो कि राजमार्ग में विहार करती है किन्तु वह अत्यन्त चंचल होने के कारण दृष्टिगत नहीं हुआ करती। योगी को चाहिए वह शांभवी मुद्रा का अभ्यास करे और उसके इस ध्यान योग से उसे सिद्धि भी प्राप्त होती है। यही ध्यान सूक्ष्मध्यान है।[१]

बड़े ही भाग्य से कुण्डलिनी जागृत होती है।

तेजोध्यानं श्रुतं चण्ड ! सूक्ष्मध्यानं वदाम्यहम्।
बहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डली जागृता भवेत्॥[२]

इस ध्यान योग से आत्मा प्रकट हो उठती है—

इति ते कथितं चण्ड ध्यानयोगं सुदुर्लभम्।
आत्मा साक्षाद्भवेद्यस्मात्तस्माद् ध्यानं विशिष्यते॥[३]

---

१. घेरण्ड संहिता (१९)।
२. घेरण्ड संहिता (२२)।
३ विज्ञानभैरव (६३)।

'विज्ञानभैरव' में 'धारणाख्य' ध्यान-पद्धति

आत्मगत आनन्द का ध्यान

साधक को चाहिये कि वह यह ध्यान करे कि सारा जगत या उसका अपना शरीर (बाह्यानन्द से व्यतिरिक्त) स्वात्मानन्द से उच्छलित हो रहा है—

'सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत् ।
युगपत् स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत् ।।'

सर्वसमत्ववाद का ध्यान

समता सर्वदेवामोवल्लीमन्त्रवर्णयोः ।
आगमानां गतीनां च सर्वं शिवमयं यतः ।।[१]

\+ \+ \+ \+ \+

समता सर्वभावानां वृत्तीनां चैव सर्वशः ।
समता सर्वदृष्टीनां द्रव्याणां चैव सर्वशः ।।
भूमिकानां च सर्वासामोवल्लीनां तथैव च ।
समता सर्वदेवानां वर्णानां चैव सर्वशः ।। (परिमल)

अन्धकार का ध्यान

एवमेव निमील्यादौ नेत्रे कृष्णाभमग्रतः ।
प्रसार्य भैरवं रूपं भावयस्तन्मयो भवेत् ।। (वि. भै.)

महाविद्यायें और उनका ध्यान

महाविद्यायें :

"काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च मातङ्गी कमलात्मिका ।
धूमावती च बगला महाविद्याः प्रकीर्तिताः ।
एतासां श्रवणादेव सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।"[२]

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान

'कल्पवृक्ष' से परिवृत **'सुधासिन्धु' में नीम या कदम्ब** वृक्षों से आच्छादित एक **'मणिमय मण्डप'** है। उस मणिमय मण्डप में **'चिन्तामणिगृह'**

---

१. तन्त्रालोक (४/२७४-७५)
२. तारा रहस्य (प्रथम पटल १३०-१३१)।

है। उसमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी ईशानी निवास करती हैं। शिव, सदाशिव और महेशान् उनके मञ्च, पर्यंक और उपबर्हण हैं तथा ब्रह्मदेव, हरि, रुद्र और ईश्वर मञ्च के पैर हैं। वहाँ पर ऐसी भी आत्माएँ हैं जो महेश्वर सार में उपनिबद्ध कार्यों को पूरा करती हैं।[१]

'एकजटापक्ष' नामक ग्रन्थ में उपदिष्ट ध्यान-पद्धति

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम्।
रत्नद्वीपञ्च तन्मध्ये **सुवर्णबालुकामयम्**॥
पारिजातवनं तत्र रत्नानाञ्चापि मन्दिरम्।
श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र **कल्पद्रुमं** स्मरेत्॥
तन्मध्ये **मणिपीठञ्च** नानामणिविभूषितम्।
चतुर्दिक्षु शवैर्मुण्डैश्चिताङ्गारास्थिभूषितम्॥
विभाव्य यत्नतो मन्त्री तत्त्वदीपे वसेत् स्वयम्।
ब्रह्मरंध्रे सदा ध्यायेन्महादेवं **जगद्गुरुम्**।
तस्य वामस्थितां देवीं तारां तारस्वरूपिणीम्।
विभाव्य प्रणमेद्विद्यां प्रातः कृतिरितीरिता॥
ब्रह्मरन्ध्रे बिन्दुरूपं पुष्करं तीर्थमुत्तमम्।
प्रकुर्यात् साधकस्तत्र स्नानं सर्वमलापहम्॥
वधूबीजस्वरूपे च शिवतीर्थं हृदि न्यसेत्।
मध्ये सुषुम्ना नाड्यां तु स्नायात् साधक सत्तमः॥

ध्यान का प्रथम सोपान

(सारांश यह कि साधक को चाहिये कि वह प्रातःकाल उठकर अपने हृदय में '**सुधासागर**' का ध्यान करे। उसके मध्य स्वर्णसिकतायुक्त '**रत्नद्वीप**' का ध्यान करे। साधक उस द्वीप में **कल्पवृक्षों के उपवन** का ध्यान करे। कल्पवृक्षों के उपवन में रत्नजटित दिव्य मन्दिर का ध्यान करे और वहीं पर महाश्मशान एवं एक सुन्दर दिव्य '**कल्पवृक्ष**' का स्मरण करे। साधक को चाहिये कि वह उस श्मशान को शवों एवं नरमुण्डों से भरा हुआ देखे, यह भी देखे कि उस महाश्मशान में चारों ओर चिताएँ जल रही हैं और अस्थियाँ बिखरी पड़ी हैं। उसे ब्रह्मरन्ध्र में

---

१. वै. शैव और अन्य धार्मिक मत (रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर)।

जगद्गुरु सदाशिव भगवान का ध्यान करना चाहिये। उसे शिव के वामभाग में ॐकार-रूपिणी **तारा देवी** का ध्यान करना चाहिये तथा उनकी उपस्थिति की भावना करनी चाहिये। उसे अपने ब्रह्मरंध्र में बिन्दुरूप पुष्कर तीर्थ में स्नान करना चाहिये।)

ध्यान का द्वितीय सोपान

माता-पिता का ध्यान स्नानोपरान्त साधक को अनन्य बुद्धि से हृदय में स्थित **सिंहासन** पर स्थित **ज्ञानानन्दस्वरूपिणी शय्या** पर सर्वभूषणविभूषित शिव का ध्यान करना चाहिये। उसी शय्या पर महाकाय, दिगम्बर कामभावोन्मत्त **शिव के ऊर्ध्व लिङ्ग** का ध्यान करना चाहिये और साथ ही साथ **अमृतानन्दस्वरूपिणी शैवी शक्ति** का भी ध्यान करना चाहिए। फिर साधक को चाहिए कि वह प्रतप्त-स्वर्णाभ आभूषणों से विभूषितांग एवं हाथ में पारिजात-पुष्प लेकर स्थित देवी के शिरोभाग **(चोटी) का ध्यान** करे। साधक त्रिकाल सन्ध्या भी करे। उस समय कामेश्वरी देवी को **'माता'** तथा कामेश्वर शिव को **'पिता'** के रूप में ध्यान करे—

''माता कामेश्वरी देवी पिता कामेश्वरः प्रियः ॥''

इसके बाद साधक को 'सर्वतेजोमयी' 'ज्वलत् सूर्याग्निचन्द्राभा' 'तडित्कोटिसमप्रभा' शिवशक्ति का ध्यान करें—

'सर्वतेजोमयीं देवीं शिवशक्तिं यतात्मिकाम्।
ज्वलतर्स्याग्नि चन्द्राभां तडत्कोटिसमप्रभाम् ॥
भावयेत् साधको यस्तु ध्यानयोगेन निश्चलः।
इति **ध्यानं** विधातव्यं साधकैर्मन्त्रसिद्धये ॥' १

पूजा का विधान

तान्त्रिक पूजा का उच्चादर्श स्थूल पूजा के स्थान पर मानसी पूजा या प्रतीकात्मक पूजा है। यहाँ आदर्श पूजा का स्वरूप बाह्य (स्थूल) पूजा नहीं है।

वैष्णवागम (सनत्कुमार संहिता) की दृष्टि

''सनत्कुमार संहिता'' में बाह्योपचारों एवं बाह्य पूजा का निषेध करते हुए कहा गया है कि—

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा क्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात् ॥
बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।

---

१. तारा रहस्यम् (२/१००)।

दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः ॥
अन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः ।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा ॥'

इसी दृष्टि से 'तारा-रहस्यम्' में 'दया' 'ज्ञान' 'आचार' 'आनन्द' 'अर्चन' आदि को प्रतीक के रूप में पुष्प मानकर उन्हें ही भगवदर्पित करने का उपदेश दिया गया है—

दयापुष्पं क्षमापुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ।
ज्ञानपुष्पं पुण्यपुष्पमहिंसापुष्पमुत्तमम् ॥
आचारपुष्पं मे देवि ! स्वयंभूपुष्पमुत्तमम् ।
आनन्दपुष्पं दातव्यं पुष्पञ्च साधकार्चनम् ॥
दश पुष्पं यः प्रदद्यात् स गच्छेत्तारकापदम् ।
त्रिलोकस्थशुभद्रव्यैः पूजयेत् साधकोत्तमः ॥[1]

तर्पण का पात्र ब्रह्मरंध्र होना चाहिये ।

(१) **तर्पण का पात्र** 'ब्रह्मरंध्र' और

(२) **अर्घ्य का पात्र** 'सूर्य' होना चाहिये ।

'ब्रह्मरन्ध्रचन्द्रपात्रात्तर्पयेत्तारिणीं पराम् ।
तत्रस्थसूर्यपात्रेण चार्घ्यं दद्यान्मनोहरम् ॥'

इसके बाद **'मातृकान्यास'** करके वर्णमाला का जप करना चाहिये—

'इति मातृकान्यासं कृत्वा वर्णमालया जपेत् ॥'

हृदय में **योनिमण्डल (त्रिकोण यंत्र)** का ध्यान करके उसे **'कामाख्या योनि'** की भावना करके नीले कमल की कल्पना करके तथा शिवलिङ्गों से उत्पन्न घृत से १६ बार हवन करना चाहिए ॥

******

१. तारा रहस्यम् ।

अध्याय-९

बन्धन और मोक्ष

'बन्धन' का स्वरूप

किसी असीम, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वानुस्यूत एवं नित्य तत्त्व का संकुचित सीमा, संकुचित काल, सङ्कुचित कर्तृत्व, संकुचित ज्ञातृत्व, तृप्ति, प्रसार के **'पाश'** में बँधकर परिमित हो जाना ही **'बन्धन'** है। 'अमित' और 'अनन्त' **पशुपति** हैं और सीमित, मित, संकुचित, अव्यापक, कालावच्छिन्न तथा अनित्य ही 'पशु' है। **'पशुत्व'** ही **'बन्धन' है**। अपने शिवस्वरूप की विस्मृति ही **'बन्धन'** है। अपने आत्मस्वरूप का अज्ञान ही **'बन्धन'** है। आत्मा में अनात्मा एवं अनात्मा में आत्मा की प्रतीति ही **'बन्धन'** है। स्वस्वरूप की पहचान न होना ही **'बन्धन'** है। **आत्म विस्मृति ही बन्धन है**। भेददृष्टि पूर्ण ज्ञान ही **'बन्धन'** है—
'भेदावभासनात्मकं यत् ज्ञानं तत् बन्धः।' (शि. सू. वि.)

'मुक्ति' का स्वरूप

'मुक्ति' या 'मोक्ष' का अर्थ है बन्धन से छूट जाना। परिबद्ध का मुक्त हो जाना ही मुक्ति या **'मोक्ष'** है। 'पशु' (जीव) अज्ञान (आत्मस्वरूप के अज्ञान, आत्मविस्मृति, अपने शिवस्वरूप, अपने ब्रह्मस्वरूप एवं अपने अनन्तस्वरूप की विस्मृति रूप अज्ञान) की रस्सी से (या 'पाश' से) बँधा है। उससे मुक्त हो जाना ही **'मुक्ति'** है। अपनी शक्ति की अभिव्यक्ति ही **'मोक्ष'** है—

'मोक्षस्य नैव किञ्चिद्धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः ।।'[१]

जैनागम में प्रतिपादित सात तत्त्वों में **'बन्ध'** एवं **'मोक्ष'** को भी तत्त्व माना गया है। 'भावास्त्रव', 'भावबन्ध', 'द्रव्यास्त्रव' एवं 'द्रव्यबन्ध' ही 'बन्धन' है और 'सम्यक् दर्शन' 'सम्यक् ज्ञान' सम्यक् चरित्र ही मोक्षमार्ग है—

"सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्गः ।।"[२]

---

१. प. सा. ६०।
२. तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वामी)।

अपने विस्मृत शिवभाव (शिवत्व) की संस्मृति ही 'मुक्ति' है। मल ही 'बन्धन' है— 'मलस्य बन्धकत्वम्।'[१]

अत: मलों से विमुक्ति ही **मोक्ष** है। अज्ञानात्मक ज्ञान ही 'बंधन' है ('ज्ञानं बंध:', १/२) और जीव-शिव में तादात्म्य प्रतीति ही 'मोक्ष' है।[२]

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि—

(१) शिव एवं जीव में अभेदात्मकता का ज्ञान हो जाना ही मोक्ष है और इस तत्त्व का अपरिज्ञान ही 'बन्धन' है—

''जीवशिवयोरभेद एव उक्त:।
एतत्तत्वपरिज्ञानमेव मुक्ति:।
एतत्तत्त्वापरिज्ञानमेव च **बन्ध:**॥''

महेश्वरानन्द की दृष्टि

महेश्वरानन्द ने ठीक ही कहा है कि विकल्पात्मकता ही बन्धन का सृजन करती है अत: बन्धन रूप **'जीवत्व'** विकल्पविशेष का नाम है और निर्विकल्पानुभूति मुक्ति का मार्ग है।

''विकल्प ही बन्धन है और निर्विकल्पानुभूति ही मोक्ष है''

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं—

''यदि तु **जीवत्वं** नामात्मनो विकल्पविशेष: निर्विकल्पनानुभूतिश्च **मोक्ष** शब्दार्थ:॥''

यह **मोक्ष** समाधिकल्प है— 'प्राणशरीरविश्लेषादप्येवमिति सम: **समाधि:**॥

महेश्वरानन्द कहते हैं कि यदि 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' की दृष्टि में मोक्ष का स्वरूप इस प्रकार है कि—

''चिदानन्दलाभे देहादिषु वेद्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्ति:।''

तो मैं भी इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि—

''भोगमोक्षसामरस्यसाक्षात्कारलक्षणो **जीवन्मोक्ष:**।''

---

१. शिवसूत्र विमर्शिनी (१/३)।
२. शिवसूत्रविमर्शिनी।

यह भी सत्य है कि 'विश्वाहन्ता' की यह दृष्टि कि—

"सर्वो ममायं विभव:" अपने स्वस्वरूप का ही अभिज्ञान है और "स्ववैश्वात्म्यानुसन्धानसन्धुक्षितैश्वर्याणां स्वभाव एव" की दृष्टि स्वाभाविक है न कि आहार्य।

संविदुल्लास की दृष्टि

'संविदुल्लास' में कहा गया है कि—

"विश्वं मूर्तिर्वैखरी नाममाला यस्यैश्वर्यं देशकालातिलंघि।
तद्भक्तानां स्वैरचार: सपर्या स्वेच्छाशास्त्रं स्वभावश्च मोक्ष: ॥"[१]

प्राणियों का सहज आत्मस्वभाव ही मोक्ष है

(१) 'भक्तानां स्वैरचार: **'सपर्या'**।' 'सपर्या' और
(२) 'स्वेच्छाशास्त्रं स्वभावश्च **'मोक्ष:'** ॥' 'मोक्ष'

अर्थात् 'स्व' अर्थात् आत्मा का भाव— "मैं आत्मा हूँ"— यह भाव ही 'मोक्ष' है।

'यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभोतवाराधनम्।"[२]

आचार्य शङ्कर का यह कथन भी सत्य ही है; क्योंकि सिद्ध योगियों एवं सन्तों के सारे कर्म ही भगवान की पूजा या आराधना हुआ करते हैं।

'माहेश्वर्य ही जीवन्मुक्ति है'—

'ननु **जीवन्मुक्ति** लक्षणं माहेश्वर्यं' (म. मं.-परिमल ५२)।

प्रत्येक दर्शनशास्त्र 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' के विषय में अपनी अपनी दृष्टि रखता है। तन्त्रशास्त्र भी 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' के विषय में अपनी स्वतन्त्र दृष्टि रखता है तथापि— (१) 'भेद' (२) 'भेदाभेद' एवं (३) 'अभेद' के स्तरत्रय पर उसकी भी दृष्टियाँ भिन्न भिन्न हैं।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि

उत्पलदेवाचार्य ने कहा है कि **'कर्मक्षय'** एवं **'रागक्षय'** से **'मोक्ष** होता है—

(क) 'संवेद्यैकस्वभावत्वात्तस्य **कर्मक्षयान्न** चेत्।
तत्स्वभावत्वमेवस्यान्**मोक्षः कर्मक्षयाश्रयः** ॥'[३]

---

१. परिमल (गाथा ५३)।
२. परिमल (गाथा ५३)।
३. ईश्वरसिद्धि (५०)।

(ख) 'स्युर्ज्ञातपुंविवेकानां कर्माण्यपि कृपादितः ।
न रागात्तानि चेदेवं मोक्षो रागक्षयाद्भवेत् ।।'[१]

अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि

"जो तत्त्व-परिज्ञान है वही **मोक्ष** है। वही प्रबुद्धों की **'पूर्णता'** है। उसे ही **'जीवन्मुक्ति'** कहा गया है।"

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि—

(१) तत्त्वों का **परिज्ञान** (२) मोक्ष (३) प्रबुद्धों की काम्य 'पूर्णता' तथा (४) **'जीवन्मुक्ति'**– ये सभी शब्द मुक्ति के वाचक हैं—

"यत्तत्वस्य परिज्ञानं स **मोक्षः** परमेशतः ।
तत्**पूर्ण**त्वं प्रबुद्धानां **जीवन्मुक्तिश्च** सा स्मृता ।।"[२]

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि

स्पन्दकारिका में कहा गया है कि अपनी ही 'स्वातन्त्रय शक्ति' से उत्पादित सहज, अशुद्धि (मलत्रय) के द्वारा असमर्थ बने हुए तथा संसार के वासनात्मक कार्यों की अभिलाषाओं में पड़े हुए मितप्रमाता का **'क्षोभ'** जब स्वस्वरूप में ही लीन हो जाय तब उसको **'परमपद'** प्राप्त होता है—

'निज शुद्ध्यासमर्थस्य कर्तव्येष्वभिलाषिणः ।
यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम् ।।'[३]

''क्षोभ' के विलीनोपरान्त मितप्रमाता का शिवस्वरूप

"तदास्याकृत्रिमो धर्मो ज्ञत्वकर्तृत्वलक्षणः ।
यतस्तदीप्सितं सर्वं जानाति च करोति च ।।"[४]

'बन्धन' और 'मोक्ष' अभिन्न हैं

काश्मीर के अद्वैतवादी शैव दार्शनिकों ने यह कहा है कि 'बन्धन' और 'मोक्ष' ये दोनों पृथक-पृथक नहीं हैं; क्योंकि ये दोनों परमेश्वर की इच्छा से कल्पित हैं। ये दोनों परमेश्वर के स्वस्वरूप एवं संवित स्वातन्त्र्य से भिन्न नहीं हैं; क्योंकि उससे व्यतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की सत्ता ही नहीं है। महेश्वर स्वेच्छावश

---

१. ईश्वरसिद्धि (५१)।
२. श्री बोधपञ्चदशिका (१३)
३. स्पन्दकारिका (९)
४. स्पन्दकारिका मित प्रमाता की सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्व की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

स्वात्मप्रच्छादन क्रीड़ा का रसास्वादन करने हेतु विश्वरूपी नाट्यक्रीड़ा के प्रदर्शनार्थ अन्तरात्मा रूप रङ्गमञ्च पर अनेकविध प्रमाताओं, प्रमेयों की भूमिकायें ग्रहण करके नाट्याभिनय करता है।

चिद्घन संवित की अपनी शक्ति 'स्वातन्त्र्य' ही अन्तर्बहिर्विश्वोल्लास के रूप में प्रस्फुरित होती है।

इसीलिए **'बन्धन'** एवं **'मोक्ष'** दोनों को महेश्वर की क्रीड़ा मानते हुए कहा गया है कि ये दोनों अभिन्न हैं।

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि

अभिनवगुप्त **'श्रीबोधपञ्चदशिका'** (१४) में कहते हैं कि—

''एतौ बन्धविमोक्षौ च परमेशस्वरूपत:।
न भिद्येते न भेदो हि तत्त्वत: परमेश्वरे॥''

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि

आचार्य सोमानन्दपाद ने **'शिवदृष्टि'** के तृतीय आह्निक में **'बन्धन'** एवं **'मोक्ष'** के स्वरूप की व्याख्या की है और दोनों में अभिन्नता का प्रतिपादन किया—

'बन्धमोक्षौ च भिद्येते सर्वत्रैव शिवत्वत:।
विज्ञानमीदृक्सर्वस्य कस्मान्नस्याद्विमोहिता।
सैवैषा सा च संसारो बन्धमोक्षावत: स्थितौ॥'[१]

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि

उत्पलदेवाचार्य कहते हैं कि—

जिस किसी भी पदार्थ या भाव की सत्ता है वे सभी शिव ही हैं अत: शिव से पृथक तो 'बन्धन' और 'मोक्ष' भी नहीं हैं। यदि हम 'शिवोऽहं' की अनुभूति करने लगें अर्थात् शिवत्व प्राप्त कर लें तब न कहीं बन्धन रह जायेगा और न तो मोक्ष रह जायेगा।

न बन्धन है और न मोक्ष है प्रत्युत् ये दोनों किसी भयभीत व्यक्ति की विभीषिका हैं

'शिवसूत्र' में कहा गया है कि—

१. शिवदृष्टि (३/६८-६९)

(१) 'ज्ञान ही बंधन है'— ''ज्ञानं बन्धः'' (१/२) (शिवसूत्र)।

(२) 'ज्ञान ही बन्धन है'— 'ज्ञानं बन्ध' (३/२) (शिवसूत्र)।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

विज्ञानभैरवकार का मत है कि— **'बन्धन'** और **'मोक्ष'** किसी भयभीत व्यक्ति की विभीषिका मात्र है—

''न मे बन्धो न मोक्षो मे भीतस्यैता विभीषिकाः।
प्रतिबिम्बमिदं बुद्धेर्जलेष्विव विवस्वतः॥''[१]

जिस प्रकार फूस का बनाया हुआ मुझौसा आदमी पक्षियों को तो डरा सकता है किन्तु उस पलालपुरुष से हाथियों को कौन-सा भय होगा ? इसी प्रकार **'बन्धमोक्ष'** अज्ञानियों के लिए तो भयप्रद हो सकते हैं किन्तु ज्ञानी एवं तत्वविदों को उनसे क्या भय हो सकता है ?

''शालीनपलालपुरुषोऽवति यः कृशानु,
दग्धाननश्चटकपेटकभीतिदानैः।
त्रातुं स एव विहितो विपिने विदध्यात्,
किं तत्र भञ्जनकृतां वनकुञ्जराणाम्॥''

निष्कर्ष– न तो संसार है और न तो बंधन है। जब बंधन है ही नहीं तब मुक्ति की क्रिया या मुक्ति कैसी ? ये सारी बंधन-मोक्ष की मिथ्या कल्पनायें रज्जु में भुजंग (रस्सी में सर्प) की भ्रांति मात्र है और इसका अस्तित्वाभास केवल मोह (अज्ञान) के कारण है यथा छाया में पिशाच के होने का मिथ्याभास होने लगता है—

''संसारोऽस्ति न तत्वतस्तनुभृतां बन्धस्य वार्तैव का,
बन्धो यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्तिक्रिया।
मिथ्यामोहकृदेष रज्जुभुजगच्छायापिशाचभ्रमो।
मा किञ्चित् त्यज मा गृहाण विहर स्वस्थो यथावत्स्थितः॥''

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज ने 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' की व्याख्या की है वह शाङ्कर दर्शन के निकट हैं।

---

१. विज्ञानभैरव (धारणा १०९)

'बन्धन' और 'मोक्ष' विश्वरङ्गमञ्च के अभिनय की भूमिकायें हैं

काश्मीरीय अद्वैतवादी शैव तान्त्रिकों ने विश्व को 'रङ्गमञ्च' एवं आत्मा को 'अभिनेता' माना है—

(१) 'नर्तक आत्मा' (३/९) (२) 'रङ्गोऽन्तरात्मा'। (३/१०)

आचार्य वरदराज की दृष्टि

'शिवसूत्रवार्त्तिक' में आचार्य वरदराज कहते हैं—

'रज्यतेऽस्मिन् जगन्नाट्य-क्रीडाकौतुकिनात्मना।
इति रङ्गोऽन्तरात्मेति जीवः पुर्यष्टकात्मकः।
योगी कृतपदस्तत्र स्वेन्द्रियस्पन्दलीलया।
सदाशिवादिक्षित्यन्त जगन्नाट्यं प्रकाशयेत्॥'[१]

वे 'नर्तक' के नर्तकत्व की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

"नृत्यत्यन्त; परिच्छिन्नस्वस्वरूपावलम्बनाः।
स्वेच्छया स्वात्मचिद्भित्तौ स्वपरिस्पन्दलीलया।
जागरास्वप्नसौषुप्तरूपास्तास्ताः स्वभूमिकाः।
आभासयति यत्तस्मादात्मा **'नर्तक'** उच्यते।
एवंविधजगन्नाट्यनर्तकस्यास्य योगिनः।
भूमिकाग्रहणस्थानं रङ्गमाह जगद्गुरुः॥"

महामाहेश्वराचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि

महेश्वरानन्द कहते हैं कि **विश्व एक नाटक** है और शिव शैलूष हैं—

"य एष विश्वनाटकशैलूषः शुद्धसंविच्छम्भुः।"
'विश्वनाटकस्य शैलूषो नट इति व्यपदिश्यते॥"[२]

श्रीनैश्वासकार की दृष्टि

श्री नैश्वास में कहा गया है—

"त्वमेकांशेनान्तरात्मा नतर्कः कोशरक्षिता।"

इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि—

---

१. शिवसूत्र वार्तिक (१३/१०-४८-४९)

२. परिमल

"जननशैशवयौवनवार्द्धकव्ययमयैरखिलैरपि सन्धिभिः।
अभिनयन्नपि पौरुषनाटकं परिणतौ स शिवोऽस्मि महानटः ॥"

श्री भट्टनारायण ने कहा है—

"निसृष्टानेकसद्वीजगर्भं त्रैकोल्यनाटकम्।
प्रस्ताव्य हर ! संहर्तुं त्वतः कोऽन्यः कविः क्षमः ॥"

एक ही (अद्वितीय) शिव विश्वनाट्याभिनयोन्मुख होकर भेदभूमि पर 'पुरुष' की भूमिका निभाता है—

"विश्वनाट्याभिनयोन्मुखस्य भूमिकावलम्बनलक्षणेनार्थेन प्रकृत्या यावस्था सा **पुरुषो** भवति।"[१]

प्रश्न— जीवों को तो 'माया' बन्धन में बाँध लेती है। उसे **'बन्धन'** आबद्ध कर लेता है किन्तु जब **'बन्धन'** है ही नहीं (त्रिकदर्शन के अनुसार बंधन-मोक्ष हैं ही नहीं) फिर जीवों को बन्धग्रस्त करता कौन है?

उत्तर— त्रिक दर्शन इसी के उत्तर में कहता है—

"स्वयं बध्नाति देवेशः स्वयं चैव विमुह्यति।
स्वयं भोक्ता स्वयं ज्ञाता स्वयं चैवोपलक्षयेत् ॥"[२]

शिव की यही **'स्वात्मप्रच्छादन क्रीड़ा'** 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' 'पुरुष' और 'शिव' के भेदावभास को जन्म देता है। परमेश्वर 'स्वाच्छन्द्य' 'नैर्मल्य' एवं 'दुर्घट-घटनाकारित्व' की शक्ति के कारण स्वात्मप्रच्छादन क्रीड़ा में अत्यन्त **'पण्डित'** बना हुआ है—

"किन्तु दुर्घटकारित्वात् स्वाच्छन्द्यान्निर्मलादसौ।
स्वात्मप्रच्छादनक्रीडा पण्डितः परमेश्वरः ॥"[३]

विश्व एक उद्यान है और शिव **'त्रैलोक्य धूर्त'** शिव क्रीड़ा किया करता है—

"विश्वोद्यानविरूढानि गंधप्रमुखानि सुगन्धीनि पुष्पाणि।
पञ्चाप्याजिघ्रन् क्रीडति त्रैलोक्यधूर्तो देवः ॥"[४]

---

१. परिमल (गाथा १८)
२. सारशास्त्र
३. तन्त्रालोक
४. महार्थमञ्जरी (महेश्वरानन्द)

निष्कर्ष यह कि— (१) जगन्नाट्य में जितने भी नट हैं (अभिनय करने वाले पात्र हैं) वे सभी पूर्व प्रदत्त अभिनयांशों की भूमिका निष्पादित कर रहे हैं। उसमें **'बंधन'** एवं **'मोक्ष'** की क्रिया भी एक स्वकल्पित एवं स्वेच्छया स्वारोपित अभिनय-क्रिया है।

(२) चूँकि 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' भी अभिनय के ही अंश हैं अतः—

(क) ये दोनों अभिन्न हैं।

(ख) ये दोनों मिथ्या एवं स्वकल्पित हैं।

(ग) ये दोनों भी शिव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

न बन्धन ही है और न मोक्ष ही है

आचार्य सोमानन्द यह भी कहते हैं कि बन्धन एवं मोक्ष अभिन्न हैं। 'बन्धन' क्या है? अपने शिवत्व की विस्मृति या अपने शिव भाव की अप्रतीति। यदि हम **'प्रत्यभिज्ञा'** ('मैं शिव हूँ'— इसकी स्मृति होने से अपने शिव होने की पहचान) प्राप्त कर लें तो शिवत्व की विस्मृति या अपने शिवभाव की अप्रतीति दोनों नष्ट हो जायेंगी और इनके नष्ट होने से (अप्रतीतिरूप) एतत्स्वरूप **'बन्धन'** भी नष्ट हो जाएगा। इसी कारण **अद्वैतवादी काश्मीरी शैव तान्त्रिकों** का कथन है कि— **'बन्धन'** एवं **'मोक्ष'** में कोई भेद नहीं है और दोनों अभिन्न हैं—

'बन्धमोक्षौ न भिद्येते सर्वत्रैव शिवत्वतः।''[१]

'सर्वभाव शिवत्वेन **नास्तिना बन्धमोक्षयोः** ॥'

आचार्य उत्पलदेव इसी तथ्य को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

(१) ''सर्वस्य शिवत्वे बन्धमोक्षाभावात् शिवोऽहमिति सर्वस्यैव ॥''

(२) 'यदा तु सर्व एव भावाः कर्तृत्वादिच्छादिशक्तियोगात् प्रत्येकं शिवरूपा इति पक्षः, तदा तत्र विभिन्न शिवपक्षे सत्ये यथास्थितस्यार्थस्य दार्ढ्यम्।

(३) 'यदा त्वेक शिवत्वमेव तत्वं तदा तस्मिन् पक्षे न दार्ढ्यं भेदस्य अपितु शिवाभेदप्रतीतिमात्रं **मोक्षस्तदप्रतीतिस्तु बन्धः** इति तावता प्रतीतिमात्रेण, **न तु वस्त्वन्यात्तथात्वे बन्धमोक्षयोर्बन्धमोक्षता ।।''[२]**

आचार्य सोमानन्द ने इस विषय में यह तर्क उठाया है कि **''जब सब**

१. शिवदृष्टि (सोमानन्द)।
२. उत्पलदेवाचार्यः शिवदृष्टिवृत्ति।

शिव ही है और सब कुछ शिव होने के कारण शिवातिरिक्त किसी अन्य की सत्ता है ही नहीं अत: शिव से व्यतिरिक्त बन्धन-मोक्ष की भी सत्ता का होना संभव ही नहीं है फिर शिव से अपने अभेद रूप विज्ञान (शिवाभेद विज्ञान) की प्रतीति क्यों नहीं होती ?— 'विज्ञानमीदृक्सर्वस्य कस्मान्न?' इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य सोमानन्दपाद कहते हैं कि उसका कारण प्राणियों की **'विमोहिता'** (भेद-प्रतीति या शिव से भिन्न होने का अज्ञान) है। यही 'विमोहिता' संसार है और संसार अज्ञान है—

"अज्ञानलक्षणा सा च संसारो 'बन्ध' उच्यते ॥"

आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि इस संसार (अज्ञान या विमोहिता) को ही **'बन्ध'** एवं **'मोक्ष'** कहते हैं—

"सैवैषा सा च संसारो 'बन्धमोक्षावत:' स्थितौ: ॥"[१]

(१) यदि हम (जगत में) शिव से भिन्न रूप में **अपने को, पदार्थों को** एवं **पादार्थिक विश्व** को अनुभव करते रहेंगे तब तो शिव एवं जगत में भेद दृष्टिगत होता ही रहेगा—

"यदा तत्र विभिन्न शिवपक्षे सत्ये यथास्थितस्यार्थ भेदस्य दार्ढ्यम्।"

(२) यदि हम यह अनुभव करने लगें कि 'एकशिवत्वमेव तत्त्वं' तब भेद-दृष्टि की दृढ़ता रह ही नहीं जायेगी— "यदा त्वेकशिवत्वमेव तत्त्वं तदा तस्मिन् पक्षे न दार्ढ्यं भेदस्य ॥"[२]

(३) इस **'शिवाभेदविज्ञान'** ('शिवतादात्म्य' 'शिवोऽहं' की अनुभति) के उदित होते ही **'शिवाभेद की प्रतीति'** होने लगेगी और यह शिवाभेदप्रतीति ही मोक्ष है— "शिवाभेदप्रतीतिमात्रं मोक्ष: ॥"[३]

इस शिवाभेद की अप्रतीति ही 'बन्ध' है— "तदप्रतीति स्तु 'बन्ध' इति ॥"[४]

आचार्य सोमानन्द द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष

आचार्य सोमानन्द प्रश्न करते हैं कि क्या भेद-दृष्टि की स्थिति में 'बन्ध' एवं 'मोक्ष' की विद्यमानता को सत्य मानकर **'बन्धन' एवं 'मोक्ष' को**

---

१. शिवदृष्टि (३/६९)।
२. शिवदृष्टिवृत्ति।
३. शिवदृष्टिवृत्ति।
४. शिवदृष्टिवृत्ति (३/६९-७०)।

तात्त्विक पदार्थ या शिव से भिन्न स्वतन्त्र पदार्थ मान सकते हैं ?

आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि नहीं हम ऐसा नहीं मान सकते; क्योंकि भेद दृष्टि की स्थिति में भी 'बन्धन' एवं मोक्ष की सत्ता नहीं है—

"तदात्मत्वे नास्ति बन्धस्तदभावान्न मोक्षणम् ॥"

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि की विवेचना

आचार्य सोमानन्द ने आचार्य शङ्कर की दृष्टि से 'बन्ध' एवं 'मोक्ष' की व्याख्या नहीं की है। उनकी दृष्टि मौलिक है। उनकी दृष्टि में **'बन्धन' एवं 'मोक्ष' हैं ही नहीं।**

सोमानन्दोक्त बन्धन मोक्ष का स्वरूप

(१)	(२)
अभेदावस्था में **'बन्धन'** एवं **'मोक्ष'** का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।	**भेदावस्था** में भी **'बन्धन'** एवं **'मोक्ष'** का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

(१) शिव के साथ अभेद होने पर (शिवत्व की प्राप्ति होने पर अर्थात् 'मैं शिव हूँ' अपनी यह पहचान होने पर) 'बन्धन का अस्तित्व रह ही नहीं जाता। 'बन्धन' के रहने पर ही 'मोक्ष' की पृथक सत्ता मानी जा सकती है किन्तु जब 'बन्धन' ही नहीं है तब 'मोक्ष किसका? 'मोक्ष की सत्ता' कैसी ? मोक्ष की कल्पना या मोक्ष का विचार कैसा ? सब कुछ नाटक है।

(२) 'विसृष्टशेषसद्बीजगर्भं **त्रैलोक्य-नाटकम्' 'बन्धन'** स्वारोपित, स्वेच्छागृहीत एवं स्वकल्पित रंगमंचीय अभिनय की भूमिका है।

(३ **शिवसूत्रकार कहते हैं–**

(१) 'नर्तक आत्मा' (३/९)।

(१) सारे जीव शिव हैं। 'एकोऽहं बहुस्याम्' की जो कामना उठती है (वह बहुत्व की कल्पना) केवल 'मनोविनोद' 'लीला' या नाट्याभिनय के लिए है अतः यदि रमेश राम का अभिनय करते समय सीता के विरह में रोता है तो क्या उसका राम बनना और सीता के वियोग में रोना सत्य है ? नहीं।

(२) जब शिव स्वरूपाच्छादन करके विश्वाभिनय करने हेतु अनन्त जीव एवं अनन्त पदार्थ बनकर उनकी-उनकी अभिनय-लीलायें करता है तो क्या वे सत्य हैं ? नहीं। **'बन्धन'** तो स्वारोपित है ? **'बन्धन'** तो 'अभेद' का स्वेच्छापूर्वक भेदभूमि पर भेदात्मक अभिनय है, वह यथार्थतः बन्धन

(२) 'रङ्गोऽन्तरात्मा' (३/१०)।

(४) **क्षेमराज की दृष्टि–** (१) रज्यतेऽस्मिन् **जगन्नाट्य क्रीडा-प्रदर्शनाशयेनात्मना** इति 'रङ्गः' तत्तद्भूमिकाग्रहणस्थानम् अन्तरात्मा। (२) नाना भूमिका प्रपञ्चं स्व परिस्पन्द **लीलयैव** स्वभित्तौ प्रकटयति इति नर्तक आत्मा।

(५) **प्रत्यभिज्ञाकार की दृष्टि–** 'संसार नाट्यप्रवर्तयिता सुप्ते जगति जागरूक एक एव परमेश्वरः ॥'

अस्य जगन्नाट्यनर्तकस्य भूमिका-ग्रहणम्। — शिवसूत्रविमर्शिनी।

थोड़ी है। रमेश का रमेशत्व छोड़कर राम बनना एवं सीता के वियोग में रोना न तो रोना है और न तो राम बन जाना है। प्रत्युत् वह राम का रंगमञ्चीय अभिनय मात्र है। अतः विश्व के रंगमंच पर महेश्वर का भेदात्मक अभिनय भी सत्य नहीं है।

सारांश– (१) आचार्य सोमानन्द की दृष्टि–

आचार्य सोमानन्द कहते हैं—

(क) 'तथा तथा शिवावस्था स्वेच्छातः स तदात्मकः।
तदात्मत्वे **नास्तिबन्धस्तदभावान्न मोक्षणम्** ॥' (२/६२)

\+ \+ \+ \+ \+

(ख) प्रतीतिमात्रमेवात्र तावता बन्धमोक्षता॥

आचार्य उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि–

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि शिव से अभेद होने के अतिरिक्त शिव से भेद होने पर भी **'बन्धन'** एवं **'मोक्ष'** का अस्तित्व नहीं है अर्थात् जीव चाहे भेदानुभूति (अपने को शिव से भिन्न समझने का अनुभव) करे या अभेदानुभूति (शिव से अपने को अभिन्न समझने का अनुभव) किन्तु इन भेदाभेद नामक दोनों भूमिकाओं एवं स्तरों पर न तो **'बन्धन'** की सत्ता है और न तो **'मोक्ष'** की। वे कहते हैं—

(क) **'भेदेऽपि** तथा भेदरूपेण शिवस्यावस्थानं स्वेच्छावशात् स **च भेदः शिवात्मकः**।'[1]

---

१. उत्पलदेवाचार्य— 'शिवदृष्टिवृत्ति' (३/७२)।

(अर्थात् भेद के स्तर पर भी यदि विचार किया जाय तो यही परिज्ञात होगा कि भेद में भी शिवावस्थान है; क्योंकि शिव स्वेच्छावश भेदभूमिका स्वीकार करता है अतः भेद और भेदस्तर भी शिवात्मक है। बन्धन एवं मोक्ष की पृथकता की प्रतीति तो केवल भेदस्तर पर होती है किन्तु भेद भी शिवात्मक ही तो है अतः भेदाश्रित ये 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' भी शिव के अतिरिक्त तो कुछ हैं ही नहीं फिर उन्हें शिव से पृथक् मानकर उनकी स्वतन्त्र सत्ता क्यों स्वीकार की जाय ? सारे भेद भी शिवरूप ही हैं।)

(ख) **भेद शिवात्मक है तो बन्धन भी शिवात्मक** है। यदि 'बन्धन' के शिवात्मक होने के कारण उसकी स्वयं की कोई पृथक सत्ता नहीं है तो फिर **'मोक्ष'** की भी कोई (शिव-भिन्न) स्वतन्त्र सत्ता नहीं है; क्योंकि **'बन्धन'** रहने पर ही **'मोक्ष'** की कल्पना की जा सकती है अतः यदि **'बन्धन'** नहीं है तो **'मोक्ष'** भी नहीं है— "एवं च भेदस्य शिवात्मकत्वे नास्ति बन्धस्तदभावात् तदपेक्षो न मोक्षोऽपि ॥"[१]

मातृकायें भी बन्धन हैं– 'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका' –शिवसूत्र।

सारे **'वर्ण' चित् शक्ति के रूप हैं** किन्तु भेदस्तर पर (बहिर्मुखी सृष्टि के समय) ये **आठ वर्गों में बँटकर,** 'ब्राह्मी' आदि मातृकाशक्तियों से अधिष्ठित होकर तथा इनके माध्यम से जीवों को अपना भोग्य बनाकर ये विकल्पों के जन्मदाता वर्ण जीवों के लिए **'बन्धन'** बन जाते हैं।

वर्णमाला के अष्टवर्ग की पृथक्-पृथक् जो शक्तियाँ हैं (अधिष्ठात्री शक्तियाँ हैं) उन्हीं आठ शक्तियों के परिवार को **'मातृका'** कहते हैं। संसार में प्रतिक्षण **वाच्यवाचकात्मक विकल्प-परम्पराओं** की जितनी भी **असंख्य शृङ्खलाओं की असंख्य कड़ियाँ** प्रसृत हैं वे सभी शक्ति के ही अनन्त रूप हैं। शक्तिवर्ग अनन्त हैं अतः इनके प्रमाताओं की संख्या भी इसी प्रकार है।

'मातृकायें' और उनकी भूमिका

'मातृका' पारमेश्वरी शक्ति है—

'शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा देवि परतेजसमन्विता।'

मातृकायें पर तेज-समन्वित हैं।

'सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥'

---

१. उत्पलदेवाचार्य— 'शिवदृष्टिवृत्ति' (३/७२)।

सारे **'मन्त्र'** वर्णात्मक हैं और सारे मन्त्र शक्त्यात्मक हैं। मातृकायें परम-तेजस्वरूपा शक्तियाँ हैं।

मातृकाओं से ब्रह्मादिक से लेकर भुवन व्याप्त हैं। इन वर्णों में नादरूप अवर्ण भी अनुस्यूत है।

'या सा तु मातृका देवि! परतेजः समन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्॥
तत्रस्थं च यदा देवि व्यापितं च सुरार्चिते।
अवर्णस्थो यथा वर्णः स्थितः सर्वगतः प्रिये॥

यह मातृकासमष्टि ज्ञानाधिष्ठान है—

'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका' (शिवसूत्र १/४)

'मालिनीविजय' की दृष्टि-

मातृका शक्ति के अष्ट भेद हैं। कार्यभेदानुसार शक्तिवर्ग के तीन रूप हैं— (१) 'घोरतरा' (अपरा), (२) 'घोरा' (परापरा) एवं (३) 'अघोरा' (परा)।[1]

(१) **'घोरतरा'**– तामसिक प्रकृति वालों के लिए शक्तियों का भयोत्पादक रूप।

(२) **'घोरा'** (परापरा)— राजसिक प्रकृतिवालों के लिए शक्तियों का कुछ कम भयप्रद रूप।

(३) **'अघोरा'** (परा)— सात्विक वृत्तिवालों के लिए शक्तियों का सौम्य एवं कल्याणकारी रूप।

(क) **अन्तर्विमर्श की अवस्था में– ५ मूल स्वर और ५ माहेश्वर शक्तियाँ–** अ, इ, उ, ऋ, ऌ = चित्, निर्वृत्ति, इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्तियाँ (ये पाँचों माहेश्वर शक्तियाँ इन मूल ५ स्वरों से सम्बद्ध हैं।)

(ख) **बहिर्विमर्श की अवस्था में–** ५ मूल स्वर एवं वर्ग पञ्चक।

५ मूल स्वरों की अवतारणा— कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग एवं पवर्ग के रूप में होती हैं।

(ग) **कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग–**

ये क़लातत्त्व, विद्यातत्त्व आदि मायीय जगत के प्रतिनिधि हैं। **'कलावर्ग'** में स्वर की गणना नहीं होती।

जब स्वर एवं व्यञ्जन सम्मिश्रितावस्था में आते हैं तभी **विकल्प-**

---

१. मालिनी विजय (३/३०-३२)।

परम्पराओं का जन्म होता है। यदि केवल स्वर हों या केवल व्यञ्जन हों तो विकल्परूप क्षोभ का जन्म नहीं होता। इन दोनों के संयोग को **'बीजयोनिसंक्षोभ'** कहा जाता है।

प्रत्येक शब्द केवल जड़ ध्वनि मात्र नहीं है प्रत्युत् **स्पन्दमयी चेतनाशक्ति** है।

अपने भोक्ताभाव की अनुभूति के पूर्व प्रत्येक जीव इन शक्तियों का दास बना रहता है।

'शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सत् स पशुः स्मृतः ॥'[१]

("शब्दराशिरकारादिक्षकारान्तः तत्समुद्भूतस्य कलादि वर्गात्मकस्य ब्राह्म्यादि शक्ति समूहस्य भोग्यतां गतः पुरुषो, ब्राह्म्यादीनां कलाभिः ककाराक्षरैर्विलुप्तविभवः स्वस्वरूपात् प्रच्यावितः पशुरुच्यते ॥")[२]

'अ' से 'क्ष' तक प्रसृत समस्त वर्णसमूह **'चिति शक्ति'** का ही बहिर्मुखीन प्रसार है।

भेदात्मक धरातल

(१)	(२)
शब्द का रूपान्तरण	**शक्ति का रूपान्तरण**
(शब्द राशि का अष्ट वर्गों में विभाजन और ब्राह्मी आदि शक्तियों का मूल स्वभाव अपने वास्तविक चिद्रूप को चतुर्दिक घेर कर उनको आच्छादित करके छिपा लेना।)	(शक्ति का ब्राह्मी आदि ८ प्रकार के विकल्परूप शक्ति-परिवार का रूप धारण करके प्रत्येक की एक-एक अधिष्ठात्री के रूप में स्वरूप धारण कर लेना।)

ब्राह्मी आदि शक्तियों का मूल स्वभाव-

(अपने वास्तविक चिद्रूप को चतुर्दिक घेरकर उनको आच्छादित करके छिपा लेना।)

'पीठेश्वरी' (मातृकाशक्ति) : वर्णों की अधिष्ठात्री शक्तियाँ

पीठेश्वरियाँ बन्धन और मोक्ष दोनों के कारण हैं।

वर्णसमाम्नाय के जो **अष्टवर्ग** (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग, क्षवर्ग) हैं वे भेदात्मिका भूमि पर अवतीर्ण **'विमर्शशक्ति'** के आठ रूप हैं।

---

१. स्पन्दकारिका (४५)।

२. स्पन्दसर्वस्व।

वर्णों की अष्टशक्तियाँ=पीठेश्वरियाँ

(१) 'माहेशी' (२) 'ब्राह्मी' (३) 'कौमारी' (४) 'वैष्णवी' (५) 'ऐन्द्री' (६) 'याम्या' (७) 'चामुण्डा' (८) 'योगेशी'

पीठेश्वरियों का कार्य– इनके दो कार्य हैं— (१) 'बन्धन' (२) 'मोक्ष'।

(क) साधारण पशुओं के लिए पीठेश्वरियों का **कार्य–** प्रतिक्षण **विकल्प-परम्पराओं को उद्भूत** करते रहना।

इनका स्वरूप अत्यन्त भयानक है।

(ख) ईश्वरानुग्रह-प्राप्त साधकों के लिए इनका **कार्य–** सत्तर्क, विवेक शाक्तबल को उदित करना। शिवभाव पर आरूढ़ करने हेतु पथ-प्रदर्शन करना।

पीठेश्वरियों का कार्य

(१) 'स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः।' (स्पन्दकारिका)

(२) सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका॥ (स्पन्दकारिका)

ये विकल्पोत्पादिका शक्तियाँ ब्रह्म रन्ध्रस्थ चित्शक्ति को आच्छादित करके वाणी के अभिलाषात्मक सूक्ष्म-स्थूल संकल्प-विकल्पों वाचकों-वाच्यों को जन्म देकर जीवों को बन्धन में डालती है।

(१) करन्ध्रचितिमध्यस्था ब्रह्म पाशावलम्बिकाः।
पीठेश्वर्यो महाघोरा नर्तयन्ति मुहुर्मुहुः॥ (तिमिरोद्घाट)

(२) विषयेष्वेव संलीनानधोऽधः पातयन्त्यणून्।
रुद्राणून या समालिंग्य **घोरतर्यो**ऽपराः स्मृताः[१]॥

(३) मिश्रकर्मकलासक्तिं पूर्ववज्जनयन्ति याः।
मुक्तिमार्गनिरोधिन्यास्ताः स्युर्घोराः परापरा॥

(४) पूर्ववज्जन्तुजातस्य शिवधाम कलप्रदाः।
पराः प्रकथितास्तज्ज्ञैर**घोरा**ः शिवशक्तयः॥[२]

(५) बहिविमर्शेन तु कादिमान्तं पञ्चपञ्चकं अ, इ, उ, ऋ, ऌ शक्तिभ्यः

---

१. मालिनी विजय।
२. मालिनी विजय।

पुरुषान्तं समस्तं प्रपञ्चयति ॥ (शिवसूत्रविमर्शिनी)

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि स्वरूपावबोध से मुक्ति होती है और उसके अबोध से संसाररूप बंधन प्राप्त होता है—

(१) 'अस्यैव सम्यक् **स्वरूपज्ञानात्** यतो **मुक्तिः** असम्यक् तु संसारः ॥'[१]

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं—

(२) "तेन शब्दार्थचिन्तासु न साऽवस्था न यः शिवः ।"

क्षेमराज कहते हैं— "इत्यादिना **शिवजीवयोरभेद** एव उक्तः ॥ एतत्तत्व-परिज्ञानमेव **'मुक्तिः'**, एतत्तत्त्वापरिज्ञानमेव च **'बन्धः'** ॥"[२]

(३) 'ते स्वरूप विकासमयं विश्वं जानाना **जीवन्मुक्ता** इत्याम्नाताः ॥ ये तु न तथा ते सर्वतो विभिन्नं मेयजातं पश्यन्तो बद्धात्मानः ॥"[३]

(४) **संसारित्व ही 'बन्धन' है–**

संसारित्व क्या है?— **सूत्रकार** कहते हैं कि "उसके अपरिज्ञान की दशा में अपनी शक्तियों द्वारा उत्पन्न किया गया व्यामोह ही **संसारित्व** है।"

"तदपरिज्ञाने स्वशक्तिभिर्व्यामोहितता संसारित्वम् ॥"[४]

"**स्वशक्तिव्यामोहिततैव संसारित्वम्** ।" (प्र. हृदयम्)

"**निजशक्ति** व्यामोहिततैव संसारित्वम् ।" (प्र. हृ. १२)

अपना स्वरूप है क्या?

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा कारिका' (१२) में कहा गया है—

"सर्वो ममायं विभव इत्येवं परिजानतः ।
विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता ॥"

"यह सम्पूर्ण ग्राह्यग्राहकरूप विकल्पात्मक 'संसार' मेरा ही स्वातन्त्र्यलक्षण-स्वरूप हैं"— जो ऐसा जानता है उस विश्वात्मा व्यक्ति में विकल्पों के विस्तार की दशा में भी महेश्वरता अक्षुण्ण रहती है।"

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सू. ६)।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र ४)।
३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र १०)।
४. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सू. १२)

चिदात्मा परमेश्वर की अविनाशी एवं स्पन्दन जिसमें सार है ऐसी कर्तृत्व रूप एक ही निजी **'ऐश्वर्यशक्ति'** है। वह शक्ति जब अपने स्वरूप को छिपाकर पशुदशा में प्राण, अपान तथा समान शक्ति की दशाओं— जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति भूमियों, देह, प्राण एवं पर्युष्टकात्मक कलाओं द्वारा व्यामोहित करती है तब उसीसे जनित व्यामोहितता **संसारित्व** है—

"एवं त्रिधा स्वशक्तिव्यामोहितता व्याख्याता।" (प्र. हृ. सू. १२)

यथार्थता तो यह है कि "परमेश्वर ने ही मानव शरीर धारण करके अपने को भिन्न-भिन्न रूपों में आवृत कर रक्खा है।"[१]

ऐसी स्थिति में तो यही मानना पड़ेगा कि जिसे **'बन्धन'** कह करके परारोपित या परादिष्ट 'आवरणशक्ति' समझा जाता है वह उस प्रकार का है ही नहीं (वह शङ्कराचार्य की माया शक्तियों **'आवरणशक्ति'** एवं **'विक्षेपशक्ति'** जैसी बाह्य शक्तियों द्वारा आरोपित अज्ञानावरण नहीं है) प्रत्युत यह स्वेच्छागृहीत भेदावरण है, जो कि मात्र मनोविनोद या लीला के लिए धारण किया गया है।

आचार्य क्षेमराज ने 'शिवसूत्रविमर्शिनी' में "ज्ञानं बन्धः" की व्याख्या में भी 'बन्धन' एवं 'मुक्ति' के स्वरूप की विवेचना की है।

'शिवसूत्रविमर्शिनी' में प्रतिपादित क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

(१) परमेश्वर ने अपनी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' के द्वारा आभासित की गई स्वरूपगोपनात्मिका मायाशक्ति के माध्यम से आकाशवत निर्मल शिव (अनाश्रित) से माया-प्रमातापर्यन्त सङ्कोच अवभासित किया है। वही संकोचावभासन रूप शिवाभेदाख्यात्मक (जीव एवं शिव अभेद सम्बन्ध होने के अप्रथन, अज्ञान या अबोध से युक्त) जो संकुचित ज्ञान उदित होता है और अज्ञानात्मक ज्ञान के द्वारा जो यह अनुभूति होती है कि "मैं अपूर्ण हूँ" उस इत्याकारक **'आणवमल'** से सङ्कुचित ज्ञान को ही **'बन्धन'** कहते हैं।[२]

(२) 'बन्धन' के विविध स्वरूप हैं।

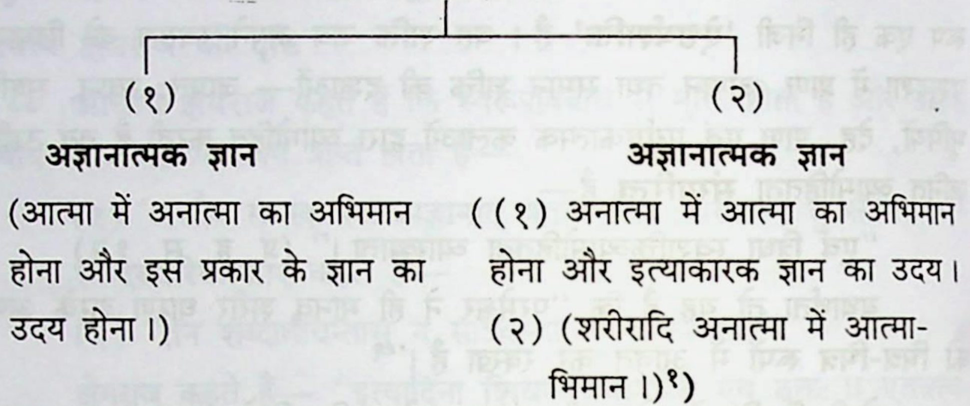
---

१. 'मनुष्य देहमास्थाय छन्नास्ते परमेश्वराः॥' — प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (१२)

२. "यः परमेश्वरेण स्वस्वातन्त्र्यशक्त्याभासितस्वरूपगोपनारूपया महामायाशक्त्या स्वात्मन्याकाशकल्पेऽनाश्रितात् प्रभृति मायाप्रमात्रन्तं सङ्कोचोऽवभासितः स एव शिवाभेदाख्यात्यात्मका ज्ञानस्वभावोऽपूर्णम्मन्यतात्मकाणवमलतत्त्वसङ्कुचित ज्ञानात्मा **बन्धः**॥'

—शिवसूत्रविमर्शिनी (सूत्र १/२)

'बन्धन' के प्रकार और **'ज्ञान'** के भेद



(३) 'अपूर्णोऽहं' का ज्ञान आणवमूलात्मक है। इस मल के दो भेद हैं—

(१) बोध की स्वातन्त्र्य हानि
(२) स्वातन्त्र्य का अबोध } 'आणव मल' के प्रकार द्वय।

'स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः ॥'

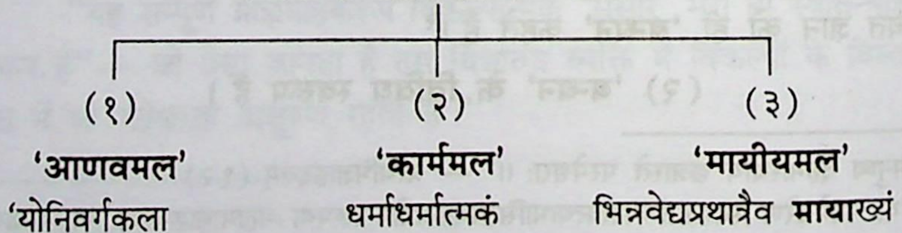
आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

"एवं **चैतन्य**शब्देनोक्तं यत्किञ्चित् स्वातन्त्र्यात्मकं रूपं, तत्र चिदात्मन्यपि स्वातन्त्र्याप्रथात्मक **विज्ञानाकलवद्** अपूर्णम्यन्यतामात्रात्मना रूपेण, स्वातन्त्र्येऽपि देहादौ अबोधरूपेण अनात्मन्यात्मताभिमानात्मनारूपेण द्विप्रकारमाणवमलम् अनेन सूत्रेणसूचितम् ॥"

प्रत्यभिज्ञाकार का मत– प्रत्यभिज्ञाकार उत्पलदेवाचार्य कहते हैं—

"स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः ॥"

बन्धन के कारणरूप 'मलत्रय'



'योनिवर्गकला धर्माधर्मात्मकं भिन्नवेद्यप्रथात्रैव **मायाख्यं**

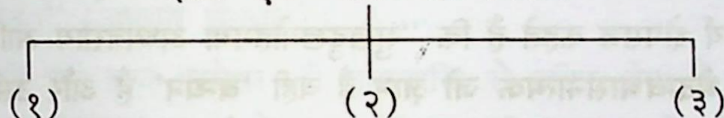
---

१. **आत्मनि** अनात्मताभिमानरूपाख्यातिलक्षणज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलं बन्धो। यावद् अनात्मनि शरीरादौ आत्मताभिमानात्मकम् अज्ञानमूलं ज्ञानमपि 'बन्ध' एव ॥

शरीरम्' (शिवसूत्र) कर्म सुखदुःखादि- जन्मभोगदम्।
(१/३) लक्षणम्॥'' कर्तव्यबोधे कार्मं च''
(विश्व की 'योनि'
(उत्पादिका) माया से
सम्बद्ध वर्ग। **'कला'**
=व्यापार। **'शरीर'**
स्वरूप॥)

(१) **'अज्ञानात्मक ज्ञान'** (२) **'योनिवर्ग'** (३) **'कलाशरीर'**– ये तीन प्रकार के 'मल' ही 'बन्धन' हैं—'अज्ञानात्मक ज्ञान-योनिवर्ग-कलाशरीरूपस्य त्रिविधस्य मलस्य बन्धकत्वम्॥'' (शिवसूत्रविमर्शिनी, १/३)

'ज्ञान एवं 'मल' का स्वरूप[1]



'अपूर्णम्मन्यता' **'भिन्नवेद्यप्रथा'** **'शुभाशुभवासना'**

(अपूर्णम्मन्यता-भिन्नवेद्यप्रथा-शुभाशुभवासनात्मक विविध ज्ञानरूपमुक्तम्॥)

—शि. सू. वि. (क्षेमराज)

सूत्रकार (शिवसूत्र) के प्रणेता ने–

(१) 'ज्ञानं बन्धः' (१/२) (२) ज्ञानं बन्धः (३/२) एवं (३) योनिवर्गः कलाशरीरम् (१/३) (४) **'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका'** (१/४) कहकर 'बन्धन' के स्वरूप एवं बन्धन के कारणों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्याकार आचार्य क्षेमराज ने इन सूत्रों की सविस्तार व्याख्या की है।

मलों का स्वरूप

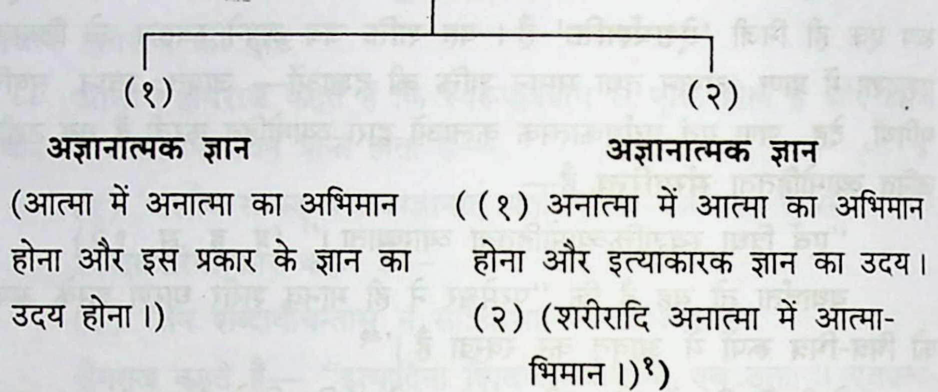
आचार्य क्षेमराज कहते हैं ''योनेर्विश्वकारणस्य मायायाः सम्बन्धी वर्गः साक्षात् पारम्पर्येण च, तद्धेतुको देहभुवनाद्यारम्भी किञ्चित्कर्तृत्वाद्यात्मककलादिक्षित्यन्तस्तत्त्वसमूहः तद्रूपं **मायीयम्**।''

''तथा **'कलयति'** स्वस्वरूपावेशेनतत्तद् वस्तु परिच्छिनत्तीति **'कला'**

---

१. त्रिविधमलस्वरूपम् अपूर्णम्मन्यता-भिन्नवेद्यप्रथाशुभाशुभवासनात्मक विविधज्ञानरूपमुक्तम्॥''
—क्षेमराज

'बन्धन' के प्रकार और **'ज्ञान'** के भेद



(३) 'अपूर्णोऽहं' का ज्ञान आणवमूलात्मक है। इस मल के दो भेद हैं—

(१) बोध की स्वातन्त्र्य हानि
(२) स्वातन्त्र्य का अबोध } 'आणव मल' के प्रकार द्वय।

'स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः॥'

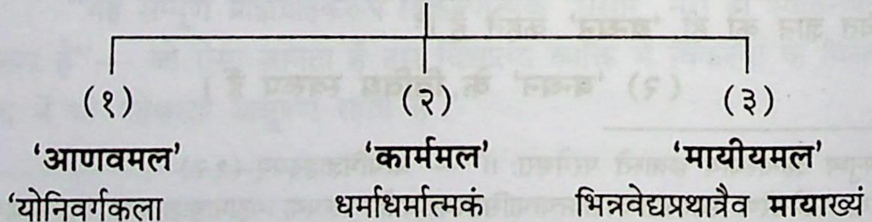
आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

"एवं **चैतन्य**शब्देनोक्तं यत्किञ्चित् स्वातन्त्र्यात्मकं रूपं, तत्र चिदात्मन्यपि स्वातन्त्र्याप्रथात्मक **विज्ञानाकलवद्** अपूर्णम्न्यन्यतामात्रात्मना रूपेण, स्वातन्त्र्येऽपि देहादौ अबोधरूपेण अनात्मन्यात्मताभिमानात्मनारूपेण द्विप्रकारमाणवमलम् अनेन सूत्रेणसूचितम्॥"

प्रत्यभिज्ञाकार का मत– प्रत्यभिज्ञाकार उत्पलदेवाचार्य कहते हैं—

"स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः॥"

बन्धन के कारणरूप 'मलत्रय'



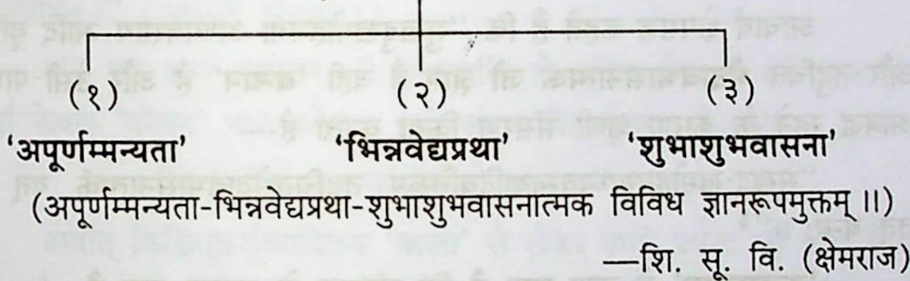
---

१. **आत्मनि** अनात्मताभिमानरूपाख्यातिलक्षणज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलं बन्धो। यावद् अनात्मनि शरीरादौ आत्मताभिमानात्मकम् अज्ञानमूलं ज्ञानमपि 'बन्ध' एव॥

शरीरम्' (शिवसूत्र) (१/३) (विश्व की 'योनि' (उत्पादिका) माया से सम्बद्ध वर्ग। **'कला'** =व्यापार। **'शरीर'** स्वरूप।।)	कर्म सुखदु:खादि- लक्षणम्।।''	जन्मभोगदम्। कर्तव्यबोधे कार्मं च''

(१) **'अज्ञानात्मक ज्ञान'** (२) **'योनिवर्ग'** (३) **'कलाशरीर'**– ये तीन प्रकार के 'मल' ही 'बन्धन' हैं—'अज्ञानात्मक ज्ञान-योनिवर्ग-कलाशरीरूपस्य त्रिविधस्य मलस्य बन्धकत्वम्।।'' (शिवसूत्रविमर्शिनी, १/३)

'ज्ञान एवं 'मल' का स्वरूप[1]



(अपूर्णम्मन्यता-भिन्नवेद्यप्रथा-शुभाशुभवासनात्मक विविध ज्ञानरूपमुक्तम्।।)

—शि. सू. वि. (क्षेमराज)

सूत्रकार (शिवसूत्र) के प्रणेता ने–

(१) 'ज्ञानं बन्ध:' (१/२) (२) ज्ञानं बन्ध: (३/२) एवं (३) योनिवर्ग: कलाशरीरम् (१/३) (४) **'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका'** (१/४) कहकर 'बन्धन' के स्वरूप एवं बन्धन के कारणों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्याकार आचार्य क्षेमराज ने इन सूत्रों की सविस्तार व्याख्या की है।

मलों का स्वरूप

आचार्य क्षेमराज कहते हैं ''योनेर्विश्वकारणस्य मायाया: सम्बन्धी वर्ग: साक्षात् पारम्पर्येण च, तद्धेतुको देहभुवनाद्यारम्भी किञ्चित्कर्तृत्वाद्यात्मककलादिक्षित्यन्तस्तत्त्वसमूह: तद्रूपं **मायीयम्**।''

''तथा **'कलयति'** स्वस्वरूपावेशेनतत्तद् वस्तु परिच्छिनत्तीति **'कला'**

---

१. त्रिविधमलस्वरूपम् अपूर्णम्मन्यता-भिन्नवेद्यप्रथाशुभाशुभवासनात्मक विविधज्ञानरूपमुक्तम्।।''

—क्षेमराज

व्यापार: **'शरीरं'** स्वरूपं यस्य यत् कलाशरीरं **कार्ममलमपि** बन्ध इत्यर्थ—

'निजाशुद्ध्यासमर्थस्य कर्तव्येष्वभिलाषिण: ॥''[१]

एषां च कलादीनां किञ्चित्कर्तृत्वादिलक्षणं स्वरूपमाणवमलभित्तिलग्नं पुंसामावरकतया मलत्वेन सिद्धमेव। यदुक्तं श्रीमत् **स्वच्छन्दे–**

''मल**प्रध्वस्त चैतन्यं कलाविद्या**समाश्रितम्।
रागेण रञ्जितात्मानं **कालेन** कलितं तथा॥
नियत्या यमितं भूय: पुंभावेनोपबृंहितम्।
प्रधानाशयसम्पन्नं **गुणत्रय** समन्वितम्॥
बुद्धितत्त्वसमासीन**महङ्कार** समावृतम्।
मनसा बुद्धिकर्माक्षैस्तन्मात्रै: स्थूलभूतकै: ॥''

'कार्ममलस्यावरकत्वं'। 'तदेतत् मायीयं कार्मं च मलम्।'[२]

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि ''सुखदुखमोहमया अध्यवसाय आदि वृत्तिरूप और तदुचित **भेदावभासनात्मक जो ज्ञान** है वही **'बन्धन'** है और उसी पाश से आबद्ध रहने के कारण प्राणी संसरण किया करता है—

''सुखदु:खमोहमयाध्यवसायादिवृत्तिरूपं तदुचितभेदावभासनात्मकं यत् ज्ञानं तत् बन्ध: ॥''[३]

'तन्त्रसद्भाव' में कहा गया है कि संसरण के कारण गुण हैं—

''**सत्वस्थो राजसस्थश्च तमस्थो** गुणवेदक:।
एवं पर्यटते देही स्थानात् स्थानान्तरं व्रजेत्॥''

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं— 'तन्मात्रोदयरूप' मन-बुद्धि-पुर्यष्क से संरुद्ध एवं तज्जन्य 'प्रत्ययोद्भव' के कारण ही प्राणी भोग एवं संसरण दोनों में प्रवृत्त होता है—

''तन्मात्रोदयरूपेण मनोऽहंबुद्धिवर्तिना।
पुर्यष्टकेन संरुद्धस्तदुत्थं प्रत्ययोद्भवम्।
भुंक्ते परवशो भोगं तद्भावात्संसरेत्॥''
''संसृतिप्रलयस्यास्य कारणं संप्रचक्ष्महे॥''

---

१. स्पन्दकारिका।
२. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी।
३. शिवसूत्र विमर्शिनी (३/२)।

विज्ञानभैरवकार कहते हैं कि 'ज्ञान' सर्वप्रकाशक है और आत्मा भी सर्वप्रकाशक है। इन दोनों में अपृथकत्व का उदय होने पर उत्पन्न ज्ञान से ज्ञानी प्रकाशित होता है।

आत्मा + ज्ञान — दोनों में तादात्म्य→ दिव्य ज्ञान का उदय→ इस ज्ञान को प्राप्त करके ज्ञानी प्रकाशित हो उठता है—

"ज्ञानं प्रकाशकं सर्वम् आत्मा चैव प्रकाशकः।
अनयोरपृथग्भावाज्ज्ञाने ज्ञानी प्रकाशते॥"

प्र०— यदि ज्ञान स्वयमेव प्रकाशक है तो फिर यह बन्धन कैसे है ? कैसे कहा गया है कि 'ज्ञानं बन्धः॥"

उत्तर— यदि परमेश्वर-प्रसाद से इस ज्ञान के द्वारा 'प्रत्यभिज्ञा' का उदय हो जाय तो उस 'ज्ञान' से बन्धन नहीं होगा— "यदि परमेश्वरप्रसादादेवं प्रत्यभिज्ञायेत्।" (आचार्य क्षेमराज)।

यदि यह ज्ञान परमेश्वर की मायाशक्ति से उदित होता है ऐसे ज्ञान का विमर्श केवल 'बन्धन' मात्र बनेगा। इसी कारण शिवसूत्रकार ने कहा—

"कलादीनां तत्वानामविवेको माया॥" (३/३)

अर्थात् किञ्चित्कर्तृत्वादिरूप **'कला'** से लेकर पृथ्वी पर्यन्त **जो तत्त्व** हैं— उनसे और **कञ्चुक-पुर्यष्टक-स्थूलदेह** से युक्त प्राणियों में तत्त्वविषयक अविवेक है (पृथकत्वाभिमानरूप अज्ञान है) वही माया है और जो तत्त्वाख्यातिमय है वह प्रपञ्च है।

तन्त्रसद्भावकार ने इसे प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यही मायात्मक बन्ध है—

"कालोद्वलित**चैतन्यो** विद्यादर्शितगोचरः।
रागेण रञ्जितात्मासौ बुद्ध्यादिकरणैर्युतः।
एवं **मायात्मको बन्धः** प्रोक्तस्तस्योदरात्मकः।
तदाश्रयगुणो धर्मोऽधर्मश्चैव समासतः।
तत्रासौ संस्थितः **पाश्यः पाशित**स्तैस्तु तिष्ठति॥"

स्पन्दसूत्र मे भी कहा गया है—

"अप्रबुद्धधियस्त्वेते स्वस्थितिस्थगनोद्यताः॥"

शिवसूत्रकार द्वारा 'ज्ञानं बन्धः' की पुष्टि

शिवसूत्रकार ने **'ज्ञान ही बन्धन'** है इस सिद्धान्त की पुष्टि में चतुर्थ सूत्र— **'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका'** (१/४) की अवतारणा की है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि (१) जो अपूर्णम्मन्यता (२) भिन्न वेद्यप्रथा एवं (३) शुभाशुभ वासनारूप त्रिविधात्मक ज्ञान ('मल') है उस ज्ञान की उद्भाविका शक्तियाँ **वर्णमाला की अधिष्ठात्री** या मातृका-शक्तियाँ हैं। ये 'अम्बा'-'ज्येष्ठा'-'रौद्री'-'वामा' शक्तियाँ वर्णों के माध्यम से बहिर्मुखी, भेदप्राण एवं अज्ञाननिष्ठ ज्ञान उत्पन्न करती हैं। ये **'अज्ञात'** रहने पर **'बन्धन'** एवं ज्ञात होने पर **'मुक्ति'** प्रदान करती हैं—

"बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका ॥"

इन शक्तियों का यही द्विविध स्वभाव है। ये **'अज्ञाता'** (प्राणी जिनका स्वरूप नहीं जानते) मातृका शक्तियाँ, जो कि विश्वजननी हैं, सङ्कुचित वेद्याभासात्मक ज्ञान (अर्थात् मैं अपूर्ण हूँ, मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ; मैं अग्निष्टोम यज्ञ निष्पादित करता हूँ— इस प्रकार के विकल्पात्मक एवं भेदप्राण ज्ञान) तथा इस अज्ञानात्मक ज्ञान से सम्बद्ध अन्य अविकल्पक-सविकल्पक भेदावभासात्मक परामर्श से युक्त वाचक शब्दों के अनुवेध ('न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दानुगमादृते') अर्थात् शब्द से युक्त ज्ञान द्वारा शोक-स्मय-हर्ष-राग-द्वेष आदि उत्पन्न करके प्राणियों को बन्धन में डालती हैं।[१]

"करन्ध्रचितिमध्यस्था ब्रह्मपाशावलम्बिका।
पीठेश्वर्यो महाघोरा मोहयन्ति मुहुर्मुहुः ॥"[२]

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि

स्पन्दकारिकाकार शब्दानुविद्ध अज्ञानात्मक ज्ञान से बन्धन होने के सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

(१) 'शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स पशुः स्मृत ॥'[३]

---

१. आचार्य क्षेमराज— 'शिवसूत्रविमर्शिनी'।

२. तिमिरोद्घाट।

३. स्पन्दकारिका।

(२) स्वरूपावरणे चास्य शक्तय: सततोत्थिता: ।
यत: शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भव: ।।[१]

ये ही शाब्द शक्तियाँ 'बन्धन' 'मुक्ति' दोनों देती हैं—

(३) सेयं क्रियात्मिका शक्ति: शिवस्य पशुवर्तिनी ।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका ।।[२]

कल्लट कहते हैं— "सैव बन्धकारणम् **'अज्ञाता' 'ज्ञाता'** सा च पुन: प्परापरसिद्धिप्रदा भवति पुंसाम् ।।"[३]

विकल्पों का ज्ञान ही शिवशक्तिसामरस्यरूप 'परामृत रस' से प्राणियों को वञ्चित कर देता है—

'परामृतरसापायस्तस्य य: प्रत्ययोद्भव: ।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचर: ।।'[४]

(**'प्रत्ययोद्भव'**=विषयों का अनुस्मरण) (**'तन्मात्रगोचर'**– रूपाद्यभिलाषात्मक)।

'परामृतरसात् स्वरूपात् अपाय: प्रच्युति: ।।'[५]

पशुओं के लिए ये **'पीठेश्वरी'** नाम की मातृका-शक्तियाँ आत्मज्ञान पर आवरण डाल देती हैं— चितशक्ति को छिपा लेती हैं अत: मोक्ष प्राप्त नहीं हो पाता। **'आत्मज्ञान' ही तो 'मोक्ष' है–** "आत्मज्ञानमेव मोक्ष: ।।"[६]

'ज्ञान' से ही मोक्ष होता है— 'ज्ञानमेवविमोक्षाय' 'ज्ञानात्र ऋते ज्ञानम्'। **'ज्ञान'** कारण है और **मोक्ष** कार्य है— **'ज्ञानमोक्षयो: कार्यकारणभाव** उक्त एव ।।"[७]

'यतो **ज्ञानेन मोक्षस्य** या हेतुफलतोदिता ।।"[८]

मातृका-शक्तियाँ ज्ञान पर आवरण डालकर **'बन्धन'** रूप 'अज्ञान' उत्पन्न करती हैं।

---

१. स्पन्दकारिका ।
२. स्पन्दकारिका ।
३. स्पन्दसर्वस्व ।
४. स्पन्दकारिका ।
५. स्पन्दवृत्ति ।
६. विवेक (तन्त्रालोक की टीका : जयरथ)।
७. जयरथ-विवेक (१/१६१)।
८. तन्त्रालोक (१/१६२)।

बन्धन से मुक्ति के उपाय

दर्शनशास्त्र की प्रत्येक शाखा बन्धन से मुक्ति के उपायों या साधनों को स्वदर्शनारूप प्रस्तुत करती हैं यथा **जैनदर्शन** कहता है कि— (१) **'सम्यक् दर्शन'** (२) **'सम्यक् ज्ञान'** एवं (३) **'सम्यक् चारित्र्य'** ही मोक्षमार्ग है—

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि **मोक्षमार्गः** ।।" (उमास्वामी)

बौद्धदर्शन आष्टाङ्गिक मार्ग— (१) **'सम्मादिट्ठि'** (२) **'सम्मा संकल्प'** (३) **'सम्मा वाचा'** (४) **'सम्मा कम्मन्त'** (५) **'सम्मा आजीव'** (६) **'सम्मा वायाम'** (७) **'सम्मा सति'** एवं (८) **'सम्मा समाधि'** को ही मोक्ष का मार्ग या उपाय बताया।

शैव शासन में शाम्भवोपाय की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन

आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि **'शाम्भवोपाय'** ही श्रेष्ठतम उपाय है; क्योंकि इसमें विश्रान्ति के विना सब निरर्थक है। आणवादि उपाय शाम्भवोपाय के द्वार मात्र हैं। इसी उपाय में सभी उपाय स्थित हैं—

'भाविन्योऽपि ह्युपासास्ता अत्रैवायान्ति निष्ठितम्। एतन्मयत्वं परमं..... ।'

आचार्य जयरथ कहते हैं कि **शाम्भवाद्वैतभाव ही** परमपद की प्राप्ति का सर्वोच्च उपाय है अन्य आणवादि उपाय नहीं—

'परमत्वेचास्यशाम्भवाद्वैतशालित्वं हेतु अन्ये ह्याणवादयो न''

शाम्भवदर्शन भी मुक्ति के साधनों के रूप में जिन साधनों का उपदेश देती हैं उन्हें **'उपाय'** कहती है। ये उपाय— (१) 'अनुपाय' (२) 'शाम्भवोपाय' (३) 'शाक्तोपाय' एवं (४) 'आणवोपाय' कहलाते हैं और इनका विधान साधक के स्तरानुकूल किया गया है। इसमें 'अनुपाय' के बाद **'शाम्भवोपाय'** को उत्कृष्टतम उपाय कहा गया है। **अभिनवगुप्ताचार्य** कहते हैं—

"तदस्मिन्**परमोपाये** शाम्भवाद्वैतशालिनि ।

केप्येव यान्ति विश्वासं परमेशेन भाविताः ।।" (२८८/३)

अर्थात् **शाम्भव अद्वैत सिद्धान्त रूप 'परमोपाय'** को केवल अद्भुत भाग्यशाली साधक ही प्राप्त कर पाते हैं जो कि स्वयं परमेश्वर के तीव्रतीव्रतम शक्तिपात से भावित होते हैं—

"तदस्मिन् परमोपाये शाम्भवाद्वैतशालिनि ।

केऽप्येव यान्ति विश्वासं परमेशेन भाविताः ।।" (२८८/३)

शाम्भवोपायसमाविष्ट योगी ही **'तुरीयपद'** प्राप्त कर पाते हैं—

"शाम्भवोपायसमाविष्ट एव हि तुरीयं पदं प्राप्तः सन् स्फुरति।"

(जयरथ : विवेक : २८७/३)

'अनुपाय'– 'अनुपाय' के नाम से ही ज्ञात होता है कि यह उपाय है ही नहीं प्रत्युत् तीव्र शक्तिपातजन्य किसी महत्तम उपलब्धि का साधन है। इस उपाय को **'आनन्दोपाय'** भी कहते हैं।

'अनुपाय' अनुग्रहमार्गाश्रित है। इसमें भावनात्मक अनुसन्धान की पुनरावृत्तियाँ नहीं की जातीं केवल 'गुरु' या 'इष्टदेव' के सकृदोपदेश मात्र से प्रकाशोन्मीलन अकस्मात् हो जाता है।

'आणव' एवं 'शाक्त' उपाय में उपदेशों की बार-बार आवृत्ति करनी पड़ती है। इसी असकृद् भावनाओं या अनेकोपदेशों के अनन्तर ही उपेयोपलब्धि सम्भव हो पाती है अन्यथा नहीं। सकृद्देशनात्मक अल्पोपाय ही **'अनुपाय'** है। यदि **'शाम्भवोपाय'** में तीव्र शक्तिपात अपेक्षित है तो— 'अनुपायोपाय' में तीव्रतीव्र शक्तिपात अपेक्षित है।

एक दीपक से दूसरे दीपक के जलने के समतुल्य ही है यह 'अनुपाय' नामक उपाय।

क्या 'उपाय' शिव का साक्षात्कार करा देने का अमोघ साधन हैं?

शास्त्रकारों का कथन है कि 'उपाय' उपेय से बड़ा नहीं होता अतः—

"उपाय जालं न शिवं प्रकाशयेद् घटेन किं भाति सहस्रदीधिति ?
विवेचयन्नित्थमुदारदर्शनः स्वयं प्रकाशं शिवमाविशेत् क्षणात्॥"

(१) मालिनीविजयोत्तरतन्त्रकार की दृष्टि

'मालिनी विजयोत्तर तन्त्र' के द्वितीय अधिकार में समावेशों का वर्णन किया गया है।

समावेश

(१)	(२)	(३)
'आणव समावेश'	**'शाक्त समावेश'**	**'शाम्भव समावेश'**
"उच्चारकरणाध्यान वर्ण....सम्यगाणव उच्यते॥"	"उच्चाररहितं...... शाक्तः सोऽत्राभि धीयते।"	"अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव... शाम्भवोऽसावुदाहृतः॥" —मालिनीविजयोत्तर तंत्र

इस तन्त्र में **समावेश के ५०** भेद कहे गये हैं—

"पञ्चाशद्भेदभिन्नोऽयं समावेशः प्रकीर्तितः ॥"

"जाग्रतस्वप्नादिभेदेन सर्वावेशक्रमो बुधैः ।
पञ्चभिस्तु परिज्ञेयः स्वव्यापारात्पृथक् पृथक् ॥"

'जाग्रत', 'स्वप्न', 'सुषुप्ति', 'तुर्य' एवं 'तुर्यातीत' के भेद से समावेश के **५० भेद** हैं।

बौद्धों के सिद्ध-साहित्य में वर्णित **'सहज'** शब्द को **'अनुपाय'** का पर्याय स्वीकार किया जा सकता है। **'तन्त्रसार'** में 'अनुपाय' की विवेचना की गई है। तदनुसार तीव्र शक्तिपात से साधक केवल एक बार के उपदेश से ही **'नित्योदित समाधि'** में संलीन हो सकता है। षडंग योग में उल्लिखित **'तर्क'** नामक साधन को स्वीकृत करके साधक साधना करता है और स्वात्मस्वरूप को परमात्मा मानकर उसका चिन्तन एवं ध्यान करता है। चूँकि स्वात्मस्वरूप निरावरण है, स्वयंप्रकाश है, सर्वानुस्यूत एवं सर्वव्याप्त है अतः उसे प्राप्त करने के लिए किसी उपाय की कोई आवश्यकता है ही नहीं। इस पर तत्त्व में अनुप्रविष्ट होने की भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उसी में तो सभी प्रविष्ट है और उपाय भी उसी में प्रविष्ट हैं उससे बाहर तो कुछ है ही नहीं। यह समस्त विश्व चिन्मात्र है। मैं इस आनन्दघन, स्वतन्त्र, स्वयंभू, परज्योति, स्वप्रकाश एवं स्वात्मा का ही तो प्रतिरूप हूँ। मैं इस स्वात्मस्वरूप से पृथक नहीं हूँ। यह निखिल विश्व इसी अहमात्मक स्वात्मस्वरूप में प्रतिबिम्बित है। इस प्रत्यभिज्ञा का उन्मेष होते ही साधक नित्योदित परमेश्वर में समाविष्ट हो जाता है। इस प्रयोजन हेतु पूजा, ध्यान, मन्त्र, चर्या, समाधि, धारणा आदि किसी भी क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य ने (१) **आणव उपाय** के रूप में 'क्रम दर्शन'—'कुल दर्शन' से भिन्न समस्त तान्त्रिक एवं यौगिक विधियों को अङ्गीकृत किया है।

(२) उन्होंने **'शाक्तोपाय'** के रूप **'क्रमदर्शन'** एवं 'शाम्भव उपाय' के रूप में **'कुल दर्शन'** को स्वीकार किया है।

(३) उन्होंने **'अनुपाय'** के रूप में **'प्रत्यभिज्ञा दर्शन'** को स्वीकार किया है।

'स्वच्छन्द तन्त्र' 'तन्त्रालोक' 'महार्थमञ्जरी' 'सङ्केत पद्धति' एवं **'मालिनी-विजय'** आदि ग्रन्थों में अनुपाय पर सविस्तर प्रकाश डाला है।

'अनुपाय' और सहजयोग लगभग अभिन्न हैं।

अभिनवगुप्त की दृष्टि में तो—

"उपायजालं न शिवं प्रकाशयेद्, घटेन किं भाति सहस्रदीधितिः।

विवेचयन्नित्थमुदारदर्शनः, स्वयंप्रकाशं शिवमाविशेत् क्षणात्॥"

शाम्भव दर्शन में तो 'शुद्धि' को भी अशुद्धि माना गया है। अत; निर्विकल्पता ही सुख है—

"किञ्चिज्ज्ञैर्या स्मृता शुद्धिः साऽशुद्धिः **शम्भुदर्शने**।

न शुचिर्ह्यशुचिस्तस्मान्निर्विकल्पः सुखी भवेत्॥"[१]

परमात्म साक्षात्कार के लिए तो शुद्धि-अशुद्धि दोनों अनावश्यक हैं। धर्मशास्त्रोक्त शुद्धि शरीर मात्र को शुद्ध करती है, किन्तु मन के कालुष्य रूप अशुद्धि से दूर थोड़ी करती है। उससे मन पवित्र नहीं होता। शुद्धि तो वही है जिससे मन पवित्र हो, निर्विकल्पक ज्ञान ही शुद्धि है। उससे मन के कालुष्य (काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि) को धोना चाहिये।

मालिनीविजयतन्त्रकार की दृष्टि

इस ग्रन्थ में योगी की शुद्धि-अशुद्धि और उसके आचार एवं चर्या पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि—

"नात्र शुद्धिर्न चा शुद्धिर्न भक्ष्यादि विचारणम्।
न द्वैतं नापि चाद्वैतं लिङ्गपूजादिकं न च।
न चापि तत्परित्यागो निष्परिग्रहतापि वा।
सपरिग्रहता वापि जटाभस्मादिसंग्रहः॥"

\+ \+ \+ \+ \+

तत्त्यागो न व्रतादीनां चरणाचरणं च यत्।
क्षेत्रादिसंप्रवेशश्च समयादिप्रपालनम्।
परस्वरूपलिङ्गादि नाम गोत्रादिकं च यत्।
नास्मिन् विधीयते किञ्चिन्न चापि प्रतिषिध्यते।
विहितं सर्वमेवात्र प्रतिषिद्धमथापि वा।
किन्त्वेतदत्र देवेशि! नियमेन विधीयते।
तत्त्वे चेतः स्थिरीकार्यं सुप्रयत्नेन योगिना।

---

१. विज्ञानभैरव (१२०)।

तच्च यस्य यथैव स्यात् स तथैव समाचरेत् ।।

+ + + + +

तत्त्वे निश्चलचित्तस्तु भुञ्जानो विषयानपि ।
न संस्पृशेत् दोषैः स पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
विषापहारिमन्त्रादिसन्नद्धो भक्षयन्नपि ।
विषं न मुह्यते तेन तद्वद् योगी महामतिः ।।

— मालिनीविजय (१८/७४-८१)

'शक्तिसङ्गमतन्त्र' में कहा गया है—

विष्ठापूर्णे मृद्घटे तु बहिः शुद्धौ तु किं कलम् ?
अन्तःशुद्धिं समासाद्य बहिं शुद्धिं समाचरेत् ।।

यह भी कहा गया है कि—

''मृज्जलादिविशुद्धोऽपि न पवित्रो बहिर्मुखः ।
बहिर्निर्मलमध्यस्थपुरीषकलशादिवत् ।।
सर्वत्र भैरवोभावः सामान्येष्वपि गोचरः ।
न च तद्व्यतिरेकेण परोऽस्तीत्यद्वया गतिः ।।''[१]

संवित्प्रकाश में ठीक ही कहा गया है कि यदि तत्त्व अपने सम्मुख हो तो उसे उपायों से ढूँढ़ना कहाँ तक समीचीन है ?

''अपरोक्षे भवत्तत्त्वे सर्वतः प्रकटे स्थिते ।
यैरुपायाः प्रतन्यन्ते नूनं त्वां न विदन्ति ते ।।''

अनुपाय का स्तर सिद्धि का स्तर है। यह सिद्ध 'परमावधूत' या 'परमहंस' का स्तर है। वस्तुतः यह उपाय है ही नहीं; इसीलिए इसे 'अनुपाय' कहा गया है। **'अनुपाय'** में 'कौन' 'कहाँ से' और क्यों के प्रश्न नहीं उठते—

''**तेनानुपाये** तस्मिन्को मुच्यते वा कथं कुतः ।'' (अभिनवगुप्त)

'क्यों' 'क्या' 'कैसे' के प्रश्न मात्र भेदस्तर पर उठते हैं।

''तदप्यकल्पितोदारसंविद्दर्पणबिम्बितम् ।
पश्यन्विकल्पविकलो भैरवी भवति स्वयम् ।।'' (अभिनवगुप्त)

संविद्दर्पण में प्रतिबिम्बित सर्वप्रमाता भैरव का दर्शन ही सर्वोच्च सिद्धि है।

---

१. विज्ञानभैरव (१२१)।

यदि कोई साधक धरातत्त्व को ही निर्विकल्प भाव से स्वात्म में स्वात्म-संविन्मात्र रूप से प्रतिबिम्बित अनुभव करने लगे तो उसे **भैरवीभाव** प्राप्त हो सकता है—

"धरामेवाविकल्पेन स्वात्मनि प्रतिबिम्बिताम्।
पश्यन्भैरवतां याति जलादिष्वप्ययं विधिः॥"

(तन्त्रालोक २७५/३)

शाम्भवोपाय और 'जीवन्मुक्ति'– 'अनुपाय' के बाद उपायों में **'शाम्भवोपाय'** श्रेष्ठतम उपाय है। **जयरथ** इस उपाय को 'जीवन्मुक्ति' का पर्याय स्वीकार करते हुए कहते हैं— "त्रिविधमपि शाम्भवोपायमुपासन्नो महात्मा जीवन्नेव मुक्तिं सादयेदित्याह—

भूयोभूयः समावेश निर्विकल्पमिमं श्रितः।
अभ्येति भैरवीभावं **जीवन्मुक्त्य**पराभिधम्॥[1]

अतः निर्विकल्प समावेश ही उत्कृष्ट उपाय है।

"शाम्भवोपाय' द्वारा 'शाम्भव समावेश' प्राप्त करना ही शाम्भवोपाय एवं जीवन्मुक्ति दोनों की कृतार्थता है।

'समावेश' के ५० भेद

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	
भूत	तत्त्व	आत्मा	मन्त्र	शक्ति	
५ भेद	३० भेद	३ भेद	१० भेद	२ भेद	=५० भेद

पाँच प्रकार के 'रुद्रशक्ति समावेश' निम्नांकित हैं—

(१) 'भूत' (२) 'तत्त्व' (३) 'आत्मा' (४) 'मन्त्र' (५) 'शक्ति'।

मालिनीविजयोत्तरतन्त्रकार की दृष्टि-

'मालिनीविजयोत्तर तन्त्र' में समावेश के ५० भेदों का उल्लेख है—

"पञ्चाशदद्भेदभिन्नोऽयं समावेशः प्रकीर्तितः॥"
निर्विकल्पे परामर्शे शाम्भवोपायनामनि।
पञ्चाशद्भेदतां पूर्वसूत्रितां योजयेद् बुधः॥[2]

---

१. तन्त्रालोक (२७१/३)।
२. तन्त्रालोक (२७२/३)।

५० भेदों का उल्लेख तन्त्रालोक में भी किया गया है।

श्रेष्ठतम उपाय 'शाम्भवोपाय' में—

(१) **निर्विकल्प परामर्श** आवश्यक है—

'निर्विकल्पे परामर्शे **शाम्भवोपाय**नामनि ॥ (अभिनव गुप्त)

(२) शाम्भवोपाय **जीवन्मुक्ति** प्रदान करता है।

'अभ्येति **भैरवीभावं जीवन्मुक्त्य**पराभिधम्।'

'भैरवीभाव' एवं 'जीवन्मुक्ति' अभिन्न हैं।

(३) यदि धरा को ही अविकल्प (निर्विकल्प) भाव से स्वात्मा में स्वात्म-संविन्मात्र रूप से प्रतिबिम्बित अनुभव किया जाने लगे तो उससे भी **भैरवीभाव** प्राप्त हो सकता है।[१]

(४) **'मैं मुक्त हूँ, मैं अद्वय हूँ'** यह भाव भी होना आवश्यक है।

''स्वातन्त्र्या**मुक्तमात्मानं** स्वातन्त्र्याददृयात्मनः।
प्रभुरीशादिसङ्कल्पैर्निर्माय व्यवहारयेत् ॥'' (ई. १/५/१६)

(५) 'साधक' सम्पूर्ण अखण्ड 'पर भैरवभाव' के 'समावेश' के कारण शिव ही अवभासित होने लगता है—

'परामृशन्स्वमात्मानं पूर्ण एवावभास्यते ॥' (तं. २७९/३)

(६) साधक के मन में विश्व के प्रति यह भाव होना चाहिये कि—

(क) मत्तएवोदितमिदं (ख) 'मय्येव प्रतिबिम्बितम्' (ग) मदभिन्नमिदं चेति—त्रिधोपायः स शाम्भवः। (तन्त्रालोक, २८०/३)

(७) 'सृष्टि-स्थिति-संहृति तीनों का आधार मैं ही हूँ'—

यह परामर्श भी आवश्यक है—

'सृष्टेः स्थितेः संहृतेश्च तदेतत्सूत्रणं कृतम् ॥' (तन्त्रालोक २८१/३)

(८) भैरवात्मता भी आवश्यक है जो कि इस प्रकार है—

''स्वात्मन्येवचिदाकाशे विश्वमस्य्यवभासयन्।
स्रष्टा विश्वात्मक इति प्रथया भैरवात्मता ॥
अभेदोपायमत्रोक्तं शाम्भवं शाक्तमुच्यते।
भेदाभेदात्मकोपायं भेदोपायं तदाणवम् ॥

---

१. तन्त्रालोक (२७५/३)।

प्राणादिभूमिकैराद्याः सिध्यन्त्युच्चारणादिभिः ।
विकल्पैर्मध्यमाः शुद्धैरन्याः प्रशमितैस्तु तैः ॥''

—अभिनवगुप्ताचार्य, श्री तन्त्रालोक

(१) **'आणवोपाय'**– 'प्राणस्पन्दोच्चारणाद्यशुद्धविकल्प **'आणवः'** ।[१]

(२) **'शाक्तोपाय'**– 'चित्तमात्रनिर्वर्त्यशुद्धविकल्पात्मा **शाक्तः** ॥'[२]

(३) **'शाम्भवोपाय'**– 'विकल्पसर्वविलयस्वभावः शाम्भव इति' त्रिविधेऽप्युपायतत्त्वे स्थूलसूक्ष्मादितारतम्ययोगेन शक्त्युल्लेखस्य सर्वत्राप्यनुस्यूतिः । 'शाक्ते' तु तस्या औल्बण्यमात्रादुत्कर्ष इत्यनुसन्धेयम् ।

यदुक्तम्[३]—

''सा शक्तिराणवैः **शाक्तैः** शाम्भवैश्च त्रिधोदितैः ।
उपायैः शिवमाभास्य स्वसृष्टैर्मोचयत्यमून् ॥''

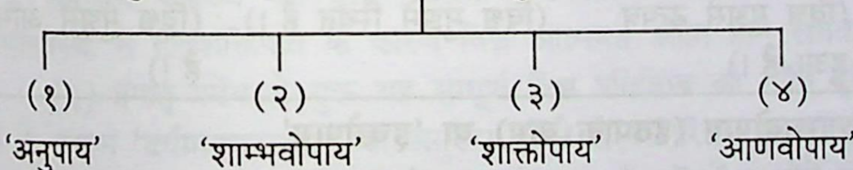
(१) **'शाक्त समावेश'**–

''उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन् ।
यं **समावेश**माप्नोति **शाक्तः** सोऽत्राभिधीयते ॥''

(२) **'शाम्भव समावेश'**–

''अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधितः ।
उत्पद्यते य आवेशः **शाम्भवो**ऽसावुदाहृतः ॥''

मुक्ति के उपाय (अभिनव गुप्तः 'तन्त्रालोक')



(१) 'अनुपाय' (२) 'शाम्भवोपाय' (३) 'शाक्तोपाय' (४) 'आणवोपाय'

'ज्ञानोपाय'–

'भूयो भूयो विकल्पांशनिश्चक्रमचर्चनात् ।
यत्परामर्शमभ्येति **ज्ञानोपायं** तु तद्विदुः ॥

१. परिमल ।

२. परिमल (गाथा ५६) ।

३. परिमल (गाथा ५६) ।

'क्रियोपाय'–

''यत्तु तत्कल्पनाक्लृप्तबहिर्भूतार्थसाधनम् ।
क्रियोपायं तदाम्नातं भेदो नात्रापवर्गगः ।।''

'शाम्भवोपाय'= 'इच्छोपाय' । 'शाक्तोपाय'='ज्ञानोपाय'
'आणवोपाय'= 'क्रियोपाय' } उपाय त्रय

'तत्राद्ये स्वपरामर्शे निर्विकल्पैकधामनि ।
यत्स्फुरेत् प्रकटं साक्षात् **तदिच्छाख्यं** प्रकीर्तितम् ।।' } 'इच्छोपाय'

'शाम्भवोपाय'=

एवं परेच्छाशक्त्यंशसदुपायमिमं विदुः ।
शाम्भवाख्यं समावेशं सुमत्यन्ते निवासिनः ।।
''मत्त एवोदितमिदं मय्येव प्रतिबिम्बितम् ।
मदभिन्नमिदं चेति त्रिधोपायः स शाम्भवः ।।'' विश्वाहन्ता

शाम्भवोपाय के लक्षण

(१)	(२)	(३)
'मत्त एवोदितमिदं' (समस्त विश्व मुझसे उत्पन्न हुआ है ।)	**'मय्येव प्रतिबिम्बितम्'** यह समस्त विश्व मुझमें ही प्रतिबिम्बित है ।	**'मदभिन्नमिदं चेति'** यह समस्त विश्व मुझसे अभिन्न है ।
'विश्वोत्पत्ति' (विश्व मुझसे उत्पन्न हुआ है ।)	**'विश्वस्थिति'** (विश्व मुझमें स्थित है ।)	**विश्व का स्वस्वरूप** (विश्व मुझसे अभिन्न है ।)

(१) शाम्भवोपाय (हठपाक क्रम) या 'इच्छोपाय'

आत्मावबोधस्वरूप **'प्रत्यभिज्ञा'** ('मैं वही शिव हूँ, इस प्रकार की पहचान) के उदयार्थ शिवाद्वयवादी शैव तान्त्रिकों की दृष्टि में **'शाम्भवोपाय'** (या **'अनुपाय'**) सर्वोत्कृष्ट उपाय है ।

'शाम्भवोपाय' अभेदपरामर्श पर आश्रित है। यह **अद्वैतनिष्ठ** है। इस उपाय में **अभेदभावना ही सर्वस्व** है । इसी दृष्टि से कहा गया है कि—

'स्वात्मन्येव चिदाकाशे विश्वमस्य्यवभासयन् ।
स्रष्टा विश्वात्मक इति प्रथमा भैरवात्मता ।।'

अभिनवगुप्तपाद कहते हैं—

'मत्त एवोदितमिदं मय्येव प्रतिबिम्बितम्।
मदभिन्नमिदं चेति त्रिधोपायः स शाम्भवः ॥'

अर्थात् मैं अपनी **आत्मारूपी चिदाकाश** में विश्व को अपने से अपने में अवभासित कर रहा हूँ अतः मैं ही विश्व का **स्रष्टा** हूँ। यह समग्र षडध्वसमष्टि (वर्ण, पद, मन्त्र, कला, तत्त्व, भुवन) मुझमें ही प्रतिबिम्बित है अतएव मैं ही विश्व की **स्थिति** भी हूँ। मुझमें ही यह विश्व हो रहा है अतः मैं ही विश्व का **लय** भी हूँ।'' — इस प्रकार आत्मपरामर्श करते हुए योगी शान्ति प्राप्त करते हुए आत्म-विश्रान्त हो जाता है। वह यह भी सोचता है कि मैं ही सर्वव्यापी कालाग्नि हूँ और मुझमें ही और यह समस्त स्वप्नमन्दिरस्वरूप विश्व मुझमें ही भस्म होता जा रहा है— मुझमें ही लीन होता जा रहा है।

'शाम्भवोपाय' वह उपाय है जिसका लक्ष्य ही शंभु की प्राप्ति, शम्भु-सामरस्य या भैरवसमापत्ति है।

अभिनवगुप्त इसे **'पूर्णाहन्ता'** का पर्याय मानते हैं और कहते हैं कि इस अवस्था में विश्व प्रतिबिम्बवत् दृष्टिगत होने लगता है—

'संविदात्मनि विश्वोऽयं भाववर्गः प्रपञ्चवान्।
प्रतिबिम्बतया भाति यस्य विश्वेश्वरो हि सः ॥२६८॥'
एवमात्मनि यख्येदृगविकल्पः सहोदयः।
परामर्शः स एवासौ शाम्भवोपाय मुद्रितः ॥२६९॥
पूर्णाहन्तापरामर्शो योऽस्यायं प्रविवेचितः।
मन्त्रमुद्राक्रियोपासास्तदन्या नात्र काञ्चन ॥२७०॥

आचार्य जयरथ की दृष्टि– आचार्य जयरथ 'विवेक' में कहते हैं कि शाम्भवावस्था में तीव्रशक्तिपात के कारण विश्व आत्मवत प्रतीत होने लगता है।

(१) प्रमातृ-प्रमेय से युक्त यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिबिम्ब की भाँति दृष्टिगोचर होने के कारण **'दर्पणनगरन्यास'** के अनुरूप अपने से अतिरिक्त (पृथक) होते हुए भी अनतिरिक्त दिखाई पड़ता है और स्वात्मा के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है और ऐसा योगी परप्रकाशात्म भगवान के साथ तादात्म्य प्राप्त करके प्रकाशित हो उठता है।[१]

---

१. तीव्रशक्तिपातवतः साधकादेर्विश्वः प्रमातृप्रमेयात्मातद्भेदोपभेदादिना प्रपञ्चवानप्ययं भाववर्गः प्रति-बिम्बतया भाति दर्पणनगरन्यायेनातिरिक्ताय मानत्वेऽपि अनतिरिक्तत्वेन स्वात्ममात्ररूपतयैवाव-भासते स खलु विश्वेश्वरः परप्रकाशात्मभगवदैकात्म्येन प्रकाशत इत्यर्थः ॥
('विवेक' आ. ३, श्लोक २७०)

इस स्थिति में तो (१) 'समाधियोग' (२) 'व्रत' (३) 'मन्त्र' (४) 'मुद्रा' (५) 'जप' आदि चर्या विष के समान प्रतीत होने लगती हैं—

"अयं रसो येन मनागवाप्तः स्वच्छन्दचेष्टानिरतस्य तस्य।
समाधि-योग-व्रत-मन्त्र-मुद्रा-जपादिचर्या **विषवद्विभाति**॥"

"स्नानं व्रतं देहशुद्धिर्धारणा मन्त्रयोजना।
अध्वक्लृप्तिर्यागविधिर्होमजप्य समाधयः।
इत्यादिकल्पना कापि नात्र भेदेन युज्यते॥" (त. ३/२९०)

'शाम्भवोपाय' में जो परामर्श होता है वह अद्वैतपरक एवं अहं विमर्शात्मक होता है अतः इसमें (शाक्तोपाय में गृहीत) चिन्तन का भी त्याग कर दिया जाता है और विकल्पों को चिदग्नि में हवि के रूप में समर्पित कर दिया जाता है अतः यहाँ (१) कल्पना, चिन्तन एवं (२) विकल्प दोनों नहीं रहते। पारमार्थिक चिदात्मा का बोध होते ही सारे **'विकल्प'** विगलित हो जाते हैं। इस समय भावनादिक से अतीत अविकल्परूपा 'संवित्' शिव के साथ तादात्म्य प्राप्त करती है और यही स्थिति शाम्भव समावेश है। इसके लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः।
उत्पद्यते य आवेशः शाम्भवोऽसावुदीरितः॥

'अकिञ्चिच्चिन्तक'– (१) अर्थात् कुछ भी चिन्तन न करने वाले गुरु के प्रतिबोध से जो आवेश उन्मिषित होता है उसे **'शाम्भव समावेश'** कहते हैं।

(२) इन कुछ भी चिन्तन न करने वाले गुरुओं-शिष्यों के लिए किसी भी **विकल्प की कोई भी उपयोगिता नहीं रह जाती**। और शिष्यों को परिज्ञेय समापत्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है—

"अकिञ्चिच्चिन्तकस्येति विकल्पानुपयोगिता।
तथा च झटिति ज्ञेयसमापत्तिर्निरूप्यते॥"

(३) यह विकल्पहीना संविति भावनाओं की अपेक्षा नहीं करती प्रत्युत् उससे अतीत होती है और यह संवित्ति शिव-तादात्म्य प्रदान करने वाली होती है और इस शिवतादात्म्य वाली संवित्ति से पूर्ण समावेश को **'शाम्भव समावेश'** कहते हैं—

"**शाम्भवोपाये** काश्चन मन्त्रमुद्राक्रियोपासा न ततः पूर्णाहन्तापरामर्शादन्या, परप्रमात्रेकरूपस्वात्माभेदेनैव प्रस्फुरन्तीत्यर्थः॥" — जयरथः विवेक : आ. ३, श्लोक २७०।

"तेनाविकल्पा संवित्तिर्भावनाद्यनपेक्षिणी।

शिवतादात्म्यमापन्ना समावेशोऽत्र शाम्भवः ॥"

श्रीपूर्वशास्त्र की दृष्टि– यद्यपि मुख्यतः तीन ही उपाय हैं किन्तु 'श्रीपूर्वशास्त्र' में इसके **५० भेद बताए** गए हैं।

"रुद्रशक्ति समावेशः पञ्चधा ननु चर्च्यते।

भूततत्त्वात्ममन्त्रैश शक्तिभेदाद्वरानने ॥

पञ्चधा भूतसंज्ञोऽत्र त्रिंशद्वा तु तथापरः।

आत्माख्यस्त्रिविधः प्रोक्तो दशधामन्त्रसंज्ञकः ॥

द्विविधः शक्तिसंज्ञोऽपि ज्ञातव्यः परमार्थतः।

पञ्चाशदभेदभिन्नोऽयं समावेश प्रकीर्तितः ॥"

—मालिनीविजयोत्तर तन्त्र

शाम्भवोपायोपासना में सिद्ध योगी **'जीवन्मुक्ति'** प्राप्त कर लेता है। आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं—

"भूयो भूयः समावेश निर्विकल्पमिमं श्रितः।

अभ्येति **भैरवीभावं जीवन्मुक्यपराभिधम्** ॥२७१॥"

शाम्भवोपायनिष्ठ योगी **भैरवीभाव** या जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

अभिनवगुप्त कहते हैं कि शाम्भवोपायोपासना में सिद्ध योगी को **'जीवन्मुक्ति'** प्राप्त होती है तो इस 'जीवन्मुक्ति' का ही स्वरूप क्या है?

शाम्भवोपाय और जीवन्मुक्ति

चिदानन्दप्राप्त्यात्मक और **'मधुरपाक'** तथा **'हठपाक'** से संवलित जीवन्मुक्ति शाम्भवोपाय से स्वयं प्राप्त हो जाती है। विश्वात्मसात्कारस्वरूप समावेशात्मक चिदानन्द (जो मध्यविकास से प्राप्त होता है) प्राप्त होते ही देह, प्राण, नील, सुख आदि के अभासित रहने पर भी समावेश (समाधि-संस्कार) के बल से साधक चित्तत्व के साथ अविचल एकत्व सम्पन्न होता है। इस दशा में प्राण धारणा करते रहने पर भी साधक (ब्रह्मनाड़ी या परा संवित् के विकसित हो उठने के कारण) स्वरूपाभिज्ञान प्राप्त कर लेता है और यह अनुभव करने लगता है कि— "**यह जगत मेरा ही है।**" इस विश्वतादात्म्यानुभूति के साथ योगी संसार की एक क्रीड़ा मात्र मानता है और जीवन्मुक्त हो जाता है—

"इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥"[१]

वह सोचता रहता है कि 'यह जगत मेरी क्रीड़ा मात्र है।' ऐसी निरन्तर अनुभूति करने वाला ही **'जीवन्मुक्त'** कहलाता है।

स्वरूप प्रथा ही **'मोक्ष'** है और उस सत्स्वरूप का अज्ञान ही **'बन्धन'** है॥

यथार्थ दृष्टि से तो **'बन्धन' और 'मोक्ष'** की भी कल्पना अयथार्थ है क्योंकि—

"संसारोऽस्ति न तत्त्वतस्तनुभृतां बंधस्य वार्तैव का ?
बन्धो यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्तिक्रिया।
मिथ्यामोहकृदेष रज्जुभुजगच्छायापिशाचभ्रमो।
मा किञ्चित्त्यज मा गृहाण विरम स्वस्थो यथावस्थितः ॥"

—तन्त्र प्र. आ., ३३१

(२) 'शाक्तोपाय' (ज्ञानोपाय)

शाम्भवोपाय को 'इच्छोपाय' एवं 'शाक्तोपाय' को 'ज्ञानोपाय' भी कहा गया है।

'शाक्तोपाय' में (१) 'उच्चार' (२) 'करण' (३) 'ध्यान' (४) 'वर्ण' एवं (५) 'स्थानकल्पना' (जो कि 'आणवोपाय' में स्वीकृत है) स्वीकृत नहीं इसी कारण यहाँ अभेदावस्था है और चूँकि चित्त से इनका चिन्तन भी होता है अतः विकल्परूप भेद भी गृहीत है अत **'शाक्तोपाय' 'भेदाभेदात्मक उपाय'** है।

'शाक्तोपाय' की परिभाषा– शाक्तोपाय इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

"उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयत्।
यः समावेशमाप्नोति **शाक्तः** सोत्राभिधीयते ॥"

जब योगी **'आत्मैवेदं सर्वं'** (अर्थात् यह सब कुछ आत्मा ही है— अर्थात् सारा विश्व केवल आत्मा का प्रपञ्चीकरण होने से आत्मस्वरूप ही है) का चिन्तन करता है तो इस सर्वात्मवादी परामर्श में दो पक्ष प्रस्तुत होते हैं— (१) 'आत्मा' (२) 'अनात्मा'। 'यह आत्मा ही अनात्मा के रूप से आभासित या प्रकाशित हो

१. स्पन्दकारिका (३०/२ नि.)।

रही है''— इत्याकारक विमर्श पुनः पुनः अभ्यस्यमान होने पर **अभेदपरामर्श** का उन्मेष होता है अर्थात् 'इदम्' रूप विकल्प आत्मा रूप निर्विकल्पता के रूप में परिणत हो जाता है। यह परिणमन ही **'ज्ञान'** है और इत्याकारित ज्ञान के उदय का उपाय ही **'शाक्तोपाय'** कहलाता है।

'शान्ति' या **'मधुरपाकक्रम'** में **मन्त्र और मुद्रावीर्य** के अनुसन्धान-स्वरूप **'शाक्तोपाय'** का ग्रहण किया जाता है। यह **विमर्शात्मक उपाय** है। **'शाक्तोपाय'** सारे बाह्य एवं आन्तर **विकल्पों** को चिदग्नि में (हवि के रूप में उन्हें मानकर) हवन कर देना पड़ता है। इस भेदाभेदोपाय में **विकल्पों** की **आहुति प्रधान व्यापार** है—

'सर्वभावमयभावमण्डलं विश्वशक्तिमयशक्तिबर्हिषि।

जुह्वतो मम समोऽस्ति कोऽपरो विश्वमेधमय यज्ञयाजिनः॥''[१]

जब सत्तर्क, सदागम एवं सद्गुरु की सहायता से 'उच्चार' 'करण' आदि विकल्प-व्यापारों का शोधन कर लेता है (इन सभी में स्वात्म स्वरूप का ही साक्षात्कार करने लगता है) तो उसके चित्त में विश्वाहन्ता का विकास हो जाता है। योगी जान जाता है कि 'यह सारा विश्व मेरा ही विकास है किन्तु मेरा शुद्ध स्वात्मस्वरूप इससे भी परे है। इस सार्वात्म्य भावना के द्वारा शुद्ध विकल्पों का उदय होने लगता है और साधक समस्त जागतिक पदार्थों में अपने शुद्ध स्वरूप को देखने लगता है।

(३) आणवोपाय

''अणुषु भेदिषूपायेषु भवः आणवः॥''

(१) **'उच्चार'** या **'उच्चारण'** (अर्थात् प्राणायाम मन्त्र एवं मन्त्र जप जो कि प्राणापानादिपञ्चक एवं मुख्य प्राणस्वरूप हैं) (२) **करण** (३) **ध्यान** (४) **वर्ण** (५) **स्थान**-कल्पना के रूप में स्थित भेदों से युक्त 'समावेश' (उपाय) **'आणवोपाय'** कहा जाता है।

भेदप्रथात्मक कल्पनाओं से प्रकल्पित होने एवं उच्चारादिक बहिर्भूत अङ्गों का साधन होने के कारण **'आणवोपाय'** को **'क्रियोपाय'** भी कहा जाता है।

(१) 'क्रियोपाय' या 'आणवोपाय'— 'ज्ञानोपाय' या 'शाक्तोपाय'।

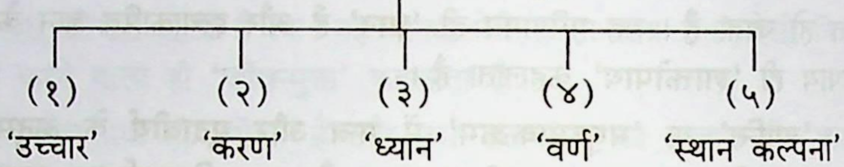
(२) 'ज्ञानोपाय' या 'शाक्तोपाय'— 'शाम्भवोपाय' या इच्छोपाय'।

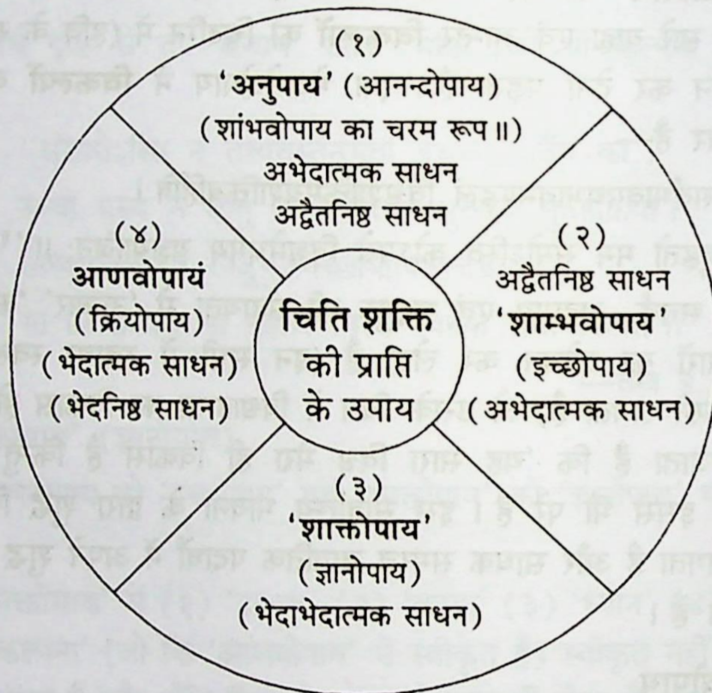
---

१. शिवस्तोत्रावली (उत्पलदेव)।

(३) 'इच्छोपाय' या 'शाम्भवोपाय'— 'अनुपाय' या 'आनन्दोपाय'।

''आणवोपाय' के अङ्ग

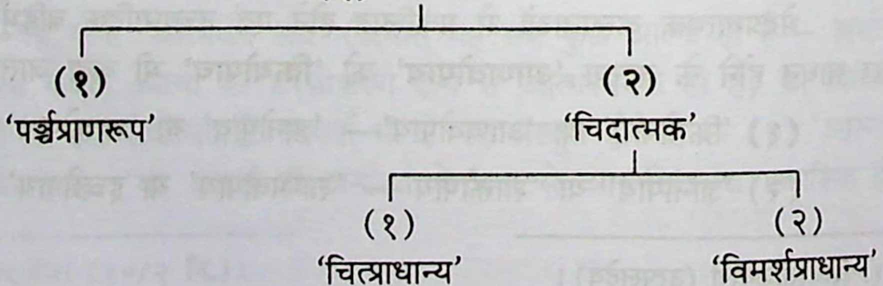




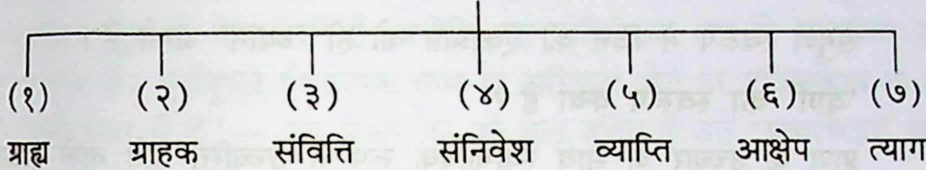
'आणवोपाय' की परिभाषा– आणवोपाय को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि—

''उच्चारकरण ध्यानवर्णस्थान प्रकल्पनैः।
यो भवेत् स समावेशः **सम्यगाणव** उच्यते॥ (१७०/प्र. आ.)

(१) 'उच्चार'



(२) **'करण'**



"**उच्चारणं च प्राणाद्याव्यानान्ताः** पञ्चवृत्तयः।
आद्या तु प्राणनाभिख्यापरोच्चारात्मिका भवेत्॥"' (तं. आ. ४)

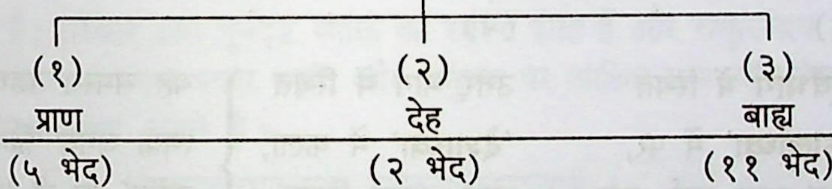
'आणवोपाय' में प्राणायामादि साधनों का आश्रय ग्रहण किया जाता है।

(३) **'वर्ण'**– प्राणात्मक उच्चारण में जो स्वतः स्फुरित **'अनाहतनाद'** है वह सारी वर्णसमष्टि का निमित्त है अतः उसे **'वर्ण'** कहा गया है। **'वर्ण'**= अनाहत नाद॥

"उक्तो य एष उच्चारस्तत्र योऽसौ स्फुरन् स्थितः।
अव्यक्तानुकृतिप्रायो ध्वनिर्वर्णः स कथ्यते॥"[१]

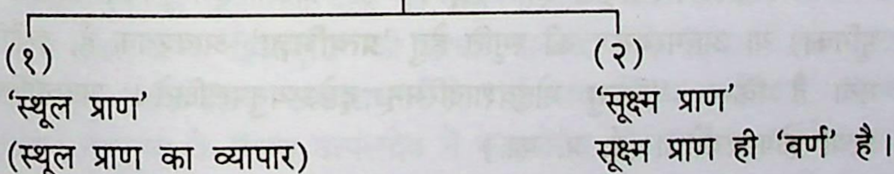
(४) **'स्थानप्रकल्पन'**–

'स्थान'



"प्राणश्च पञ्चधा, देहे द्विधा, बाह्यान्तरत्वतः।
मण्डलं स्थण्डिलं पात्रमक्षसूत्रं सपुस्तकम्।
लिङ्गं तूरं पठः पुस्तं प्रतिमा मूर्तिरिव च। इत्येकादशधा"[२]

'प्राण'



(स्थूल प्राण का व्यापार) **'उच्चार'** कहलाता है। प्राण, अपान आदि वायु की श्वास-प्रश्वास ही छींक आदि वृत्तियाँ ही **'उच्चार'** हैं।

सूक्ष्म प्राण ही 'वर्ण' है।

---

१. तन्त्रालोक (१३१-३२/ तं. आ. ५)।
२. तन्त्रालोक (२-३ आ. ६)।

'ध्यान' क्या है ?

सगुण स्वरूप में चित्त की एकाग्रता को ही **'ध्यान'** कहते हैं।

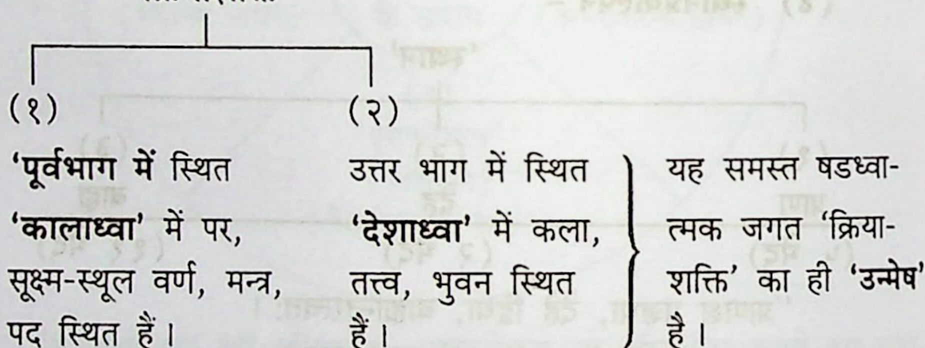
'वर्ण' का स्वरूप क्या है ?

प्राण के उच्चार के साथ स्वाभाविक रूप से उच्चरित होने वाले **सकार** एवं **हकार** **'वर्ण'** कहे जाते हैं। 'वर्ण' रङ्गों को भी कहते हैं।

'करण'– शरीर के अङ्गों को किसी विशेष प्रकार की स्थिति में रखने की संज्ञा है— **'करण'**।

'स्थान कल्पना' क्या है? **घट**-स्थापन, **मण्डल**निर्माण, **मन्दिर, मूर्ति, चित्र** आदि की जैसी विधियों का समावेश करना ही **'स्थानकल्पना'** कहलाता है।

हृदय के स्पन्दनात्मक सामान्य व्यापार में, शरीरस्थ नाडीमण्डल एवं चक्रों में तथा बाह्यवर्ती लिङ्ग एवं प्रतिमा आदि में **'स्थान कल्पना'** की जाती है।



प्रत्यभिज्ञा

स्वस्वरूप-विस्मृति ही 'पशुत्व' का कारण है। अपने शिवभाव (पतिभूमिका) या आत्मस्वरूप की स्मृति हेतु **'प्रत्यभिज्ञा'** आवश्यक है; इसीलिए कहा गया है कि— "किन्तु मोहवशादस्मिन् दृष्टेऽप्यनुपलक्षिते। शक्त्याविष्करणेनेयं प्रत्यभिज्ञोपदर्श्यते॥ (ई. प्र. का.)

"नैवालं निजवैभवाय तदियं प्रत्यभिज्ञोदिता॥" (इ. प्र. का.)

'स एव अयम्' (यह वही है) इसे ही **'प्रत्यभिज्ञा'** या अपनी पहचान कहते हैं। **"प्रत्यभिज्ञा"** आत्मस्वरूप की पहचान है। **'प्रति'** अर्थात् प्रतीप (ज्ञात होने पर भी मोहवश विस्मृत तत्त्व) का, **'अभि'** अभिमुख रूप से— स्फुटतया जो

'ज्ञा' ज्ञान (प्रकाश) है उसे **'प्रत्यभिज्ञा'** कहते हैं। स्वात्मावभास की पूर्वकाल में अनुभूति न हुई हो ऐसा नहीं है; क्योंकि वह अविच्छिन्न रूप से प्रकाशित रहने वाला तत्त्व है। पूर्वानुभूत ईश्वरात्मक तत्त्व के अभिमुख होने पर प्रतिसन्धान के बल से "वही ईश्वर मैं हूँ"— इस प्रकार का जो ज्ञान उदित है उसे **'प्रत्यभिज्ञा'** कहते हैं—

"प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः **प्रत्यभिज्ञा**। प्रतीपमिति स्वात्मावभासो हि न अननुभूतपूर्वो अविच्छिन्नप्रकाशत्वात् तस्य, स तु तच्छक्त्यैव विच्छिन्न इव विकल्पित इव लक्ष्यत इति वक्ष्यते॥"

"**प्रत्यभिज्ञा** च भातभासमानरूपानुसन्धानात्मिका 'स एवायं चैत्र' इति प्रतिसन्धानेन अभिमुखीभूते वस्तुनि ज्ञानम्। लोकेऽपि एतत्पुत्र एवङ्गुण एवं रूपक इत्येवं वा, अन्ततोऽपि सामान्यात्मना वा ज्ञातस्य पुनरभिमुखीभावावसरे प्रतिसन्धित प्राणितमेव ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा इति व्यवह्रियते। इहापि प्रसिद्धपुराण सिद्धान्तागमानुमानादिविदितपूर्ण शक्ति स्वभावे ईश्वरे सति स्वात्मन्यभिमुखीभूते तत् प्रतिसन्धानेन ज्ञानमुदेति— 'नूनं स एव ईश्वरोऽहमिति॥'[१]

'प्रत्यभिज्ञा' ऐसा ज्ञान है जो एक साथ संस्कार और इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होता है। संस्कार द्वारा पूर्वदृष्ट व्यक्ति का स्मरण होता है और चक्षुरिन्द्रिय द्वारा उसी का साक्षात्कार। इस प्रकार स्मृति और अनुभव पर आश्रित एक व्यक्तिविषयक बोध को **'प्रत्यभिज्ञा'** कहते हैं।

"स्मरणानुभवारूढा सामानाधिकरण्यधीः।
संस्कारेन्द्रियजन्या च **प्रत्यभिज्ञा** प्रकीर्तिता॥"[२]

उत्पलाचार्य ही वे प्रथम दार्शनिक हैं, जिन्होंने कहा कि— 'स एव ईश्वरः अहम्'— इस अर्थ में 'प्रत्यभिज्ञा' का प्रयोग सर्वप्रथम उत्पलाचार्य ने ही किया।

त्रिकशासन की दार्शनिक दृष्टि की स्थापना करने वाले आचार्य सोमानन्दपाद के द्वारा रचित ग्रन्थ **'शिवदृष्टि'** को आधार मानकर उनके सिद्धान्तों को दृढता प्रदान करने हेतु उनके शिष्य **उत्पलाचार्य** ने **"ईश्वरप्रत्यभिज्ञा कारिका"** नामक ग्रन्थ लिखा। वसुगुप्त के शिष्य उत्पलदेव ने काश्मीरीय शैवदर्शन के तार्किक पक्ष को प्रस्तुत किया और उन्होंने **'प्रत्यभिज्ञादर्शन'** का प्रवर्तन किया। उनके शिष्य **उत्पलदेवाचार्य** ने 'शिवदृष्टि' की व्याख्या की। वसुगुप्त की दार्शनिक शिक्षा को

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी।

२. भास्कर कण्ठ।

धार्मिक या श्रद्धामूलक स्वरूप प्रदान करने हेतु 'स्पन्दसूत्र' ('स्पन्दकारिका') की रचना की गई—

"परमोपादेयस्वप्रकाशस्वात्मेश्वरप्रत्यभिज्ञानपरस्य तर्कस्य कर्तारो व्याख्यातारश्च परं नमस्कर्तव्या इति आह।"

श्री सोमानन्दबोध श्रीमदुत्पलविनिश्रिताः।
जयन्ति संविदामोदसन्दर्भा दिक्प्रसारिणः ॥[१]

वसुगुप्त और सोमानन्द ने अद्वैत शैवदर्शन की उद्भावना की।

त्रिकदर्शन के दो दार्शनिक स्वरूप

(१)	(२)
'प्रत्यभिज्ञा-दर्शन'	**'स्पन्ददर्शन'**
(**सोमानन्द**– 'शिवदृष्टि'।)	(**भट्टकल्लट** या वसुगुप्त- 'स्पन्दसूत्र' 'स्पन्दकारिका'
(**उत्पलदेव**– 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकारिका'।)	(**क्षेमराज**– 'स्पन्दनिर्णय'
(**क्षेमराज**– 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्')	(**भट्टकल्लट**– 'स्पन्दसर्वस्व' या 'स्पन्दवृत्ति'।)

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि– आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि "जब व्यक्ति को अपने स्वातन्त्र्य की प्रत्यभिज्ञा (पहचान) हो जाती है तब यही भोग-मोक्ष रूप सम्पूर्ण सिद्धियों का कारण बन जाती है— "प्रत्यभिज्ञातस्वातन्त्र्या सती भोगमोक्षस्वरूपाणां विश्वसिद्धीनां हेतुः ॥"[२]

'जीवन्मुक्ति'

जीवितावस्था में ही मुक्त हो जाना **'जीवन्मुक्ति'** है।

शक्तिसूत्रकार की दृष्टि–

शक्तिसूत्रकार कहते हैं—

"चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः ॥ (प्र. हृ. १६)

---

१. तन्त्रालोक।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र)।

अर्थात् चिदानन्द की प्राप्ति के पश्चात् देहादिक के अनुभूत होने पर भी चित् शक्ति के साथ एकात्मता की प्रतिपत्ति की दृढ़ता ही **'जीवन्मुक्ति'** है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि–

विश्व के साथ अभिन्नता रूप समावेशात्मक चिदानन्द की प्राप्ति के अनन्तर व्युत्थानावस्था में सर्प की केंचुल के सदृश देह, प्राण, नील आदि एवं सुख-दुःख आदि के आभासित रहने पर भी जिस अभेदापत्ति के संस्कार बल से एवं ग्रन्थ-प्रतिपादित अन्य युक्तियों के क्रम से **'उद्दीप्त अविचल चिदैक्य'** प्रथित होता है— वही **'जीवन्मुक्ति'** है। यह प्राणों को धारण करते हुए मुक्ति है अतः इसे **'जीवन्मुक्ति'** कहा जाता है। इस दशा में अपने स्वरूप की पहचान हो जाने पर समस्त पाश राशि नष्ट हो जाती है।[१]

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि– स्पन्दकारिकाकार कहते हैं कि— "समग्र जगत मेरा ही स्वरूप है— इस प्रथा का जिसे ज्ञान है वह समस्त जगत को क्रीड़ा के समान देखता हुआ संतत योग युक्तात्मा होने से **'जीवन्मुक्त'** कहलाता है—

> "इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
> स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः॥"

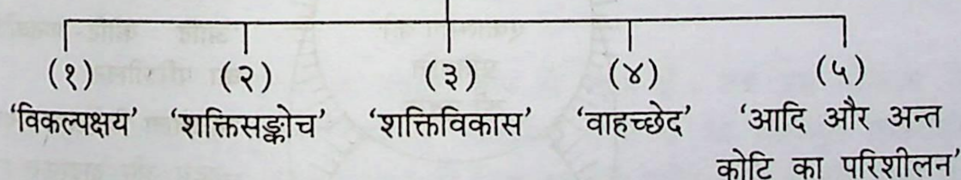
जिस **'चिदानन्द'** की प्राप्ति के बाद चित्शक्ति के साथ एकात्मता की प्रतीति की दढ़तारूप 'जीवन्मुक्ति' की प्राप्ति होती है उस **'चिदानन्द'** की प्राप्ति कैसे होती है?

(१) 'चिदानन्द की प्राप्ति का उपाय

"मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः॥" (शक्तिसूत्र १७)

(२) 'मध्य-विकास' के उपाय क्या हैं?

'मध्यविकास' के उपाय

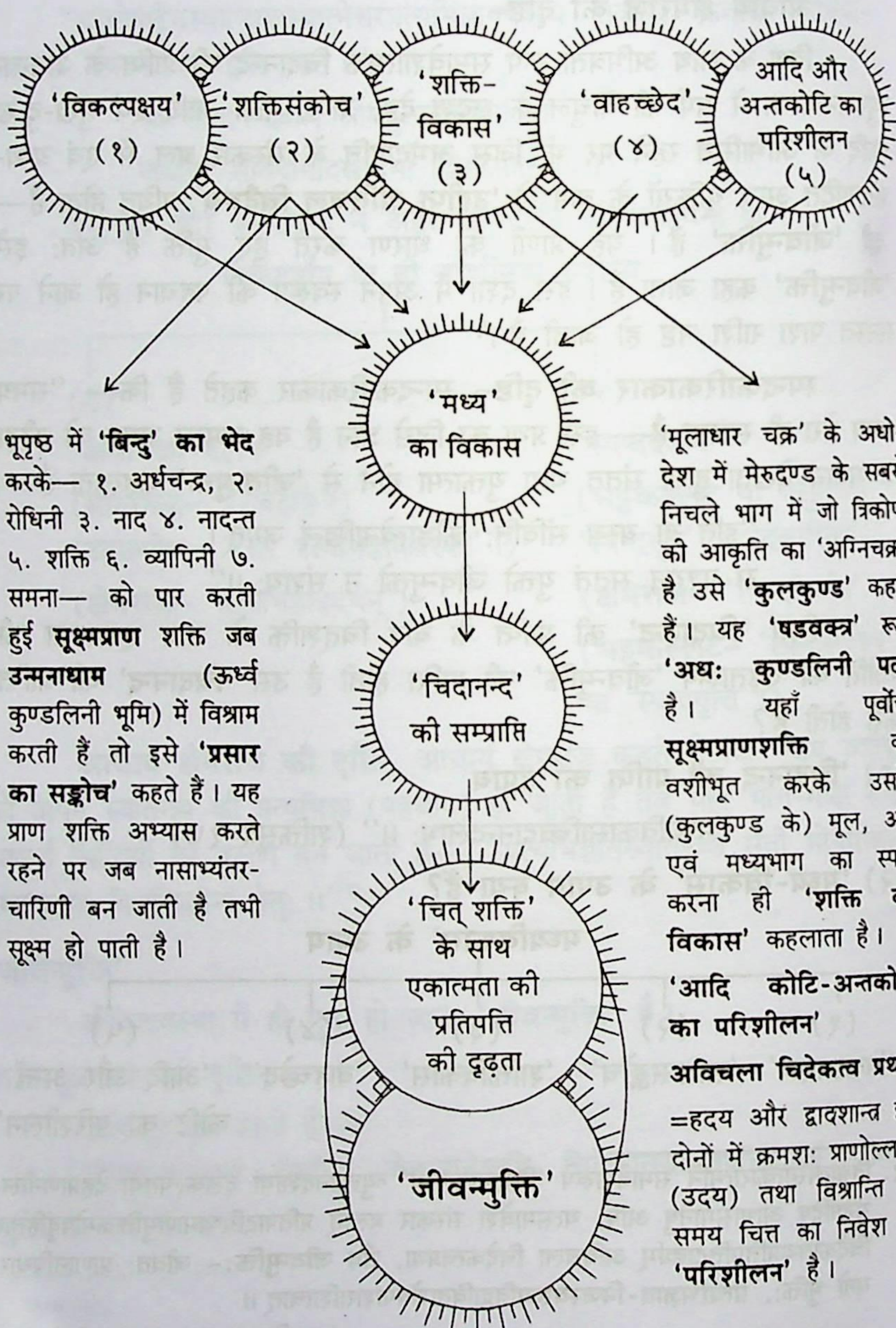


---

१. विश्वात्मसात्कारात्मनि समावेशरूपे 'चिदानन्दलब्धे' व्युत्थानदशायां दलकल्पतया देहप्राणनील-सुखादिषु आभासमानेषु अपि, यत्समावेश संस्कार बलात् प्रतिपादयिष्यमाणमुक्तिक्रमोपबृंहितात् चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यम् अविचला चिदेकत्वप्रथा, सैव **जीवन्मुक्तिः–** जीवतः प्राणानपिधार-यतो भुक्तिः, **प्रत्यभिज्ञात-निजस्वरूप**विद्राविताशेषपाशराशित्वात्॥

(प्रत्यभिज्ञाहृदयम् : आचार्य क्षेमराज)

'विकल्पक्षय-शक्तिसङ्कोचविकास वाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादय इहोपाया: ॥'' (शक्तिसूत्र : १८)



आचार्य क्षेमराज कहते हैं–

(१) '**उपायान्तरं** अपि उच्यते प्राणायाम, मुद्रा, बन्धादि समस्तयन्त्रणा-तन्त्रत्रोटनेन **सुखोपायमेव**' हृदये निहितचित्तः उक्त युक्त्या स्व-स्थिति-प्रतिबन्धकं '**विकल्पम्**' अकिञ्चिच्चिन्तकत्वेन प्रशमयन् ॥''

(२) ''**अविकल्पमरामर्शेन** देहाद्यकलुषस्वचित् प्रमातृतानिमालनप्रवणः, अचिरादेव तुर्यतुर्यातीतसमावेशदशां आसादयति ॥

चिदानन्द एवं जीवन्मुक्ति

'चिदानन्द' की प्राप्ति एवं 'जीवन्मुक्ति'

'मध्यशक्ति' (सुषुम्णानाडी) के विकास से 'चिदानन्द' की प्राप्ति होती है। सूत्रकार का कथन है—

''मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः ।।''[१]

अर्थात् मध्य के विकास से चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

आचार्य क्षेमराज का कथन है कि सबके अन्तरतम रूप से निवास करने के कारण उसका आधारावलम्बन किए बिना कोई भी वस्तु अपना रूप ग्रहण नहीं कर सकती, अतः भगवती संवित् को ही 'मध्य' के नाम से पुकारा जाता है— ''संविदेव भगवती मध्यम् ॥''

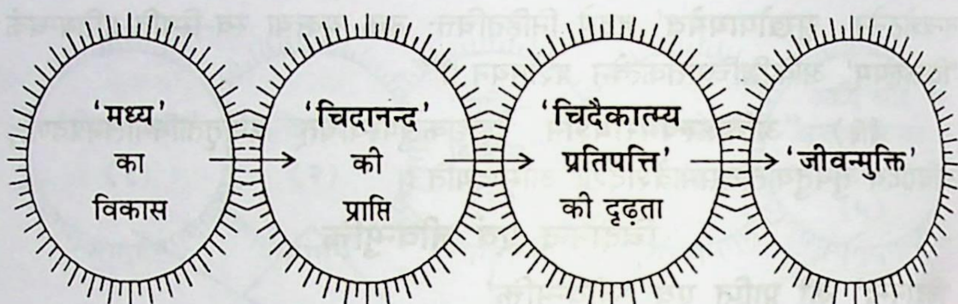
अपने स्वरूप को छिपाकर यह 'संवितशक्ति' सर्वप्रथम 'प्राण' के रूप में परिणत होती है। 'शक्ति' सर्वप्रथम **प्राण की भूमिका स्वीकार** करती है। फिर वह अवरोहक्रम से बुद्धिदेहादि भूमियों को ग्रहण करके हजारों नाड़ियों के मार्ग का अनुसरण करती है। वहाँ पलाशपर्ण मध्यशाखा न्याय से ब्रह्मरन्ध्र से लेकर मूलाधारपर्यन्त '**उदान**' नामक प्राणशक्तिरूप ब्रह्म की आश्रयभूता '**सुषुम्ना नाड़ी**' के रूप में स्थित रहती है। यहीं से समस्त वृत्तियों का उदय होता है और वही लय भी होता है।

यह 'शक्ति' पशुओं में प्रच्छन्न रूप ही रहती है। जब उस योगक्रम से सर्वान्तरतम मध्यगत भगवती संवित् विकसित होती है या मध्यभूत ब्रह्मनाड़ी विकसित होती है तब उसके विकास से चिदानन्द की प्राप्ति होती है और उसी के विकास से चिदानन्द की प्राप्ति के बाद '**जीवन्मुक्ति**' प्राप्त होती है।[२]

---

१. शिवसूत्र (१७)।

२. ''चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः ॥''
—(शक्तिसूत्र १६)



"चिदानन्द की प्राप्ति के पश्चात् देहादिक के अनुभूत होने पर भी चित्शक्ति के साथ जो **'एकात्मताप्रतिपत्ति'** होती है उसे ही अर्थात् उस प्रतिपत्ति की दृढ़ता ही **'जीवन्मुक्ति'** कहलाती है।

'समग्र जगत मेरा ही स्वरूप है'– इस प्रथा का जिसे ज्ञान है वह समस्त जगत को क्रीड़ा के समान देखता हुआ सतत योगयुक्त होने से **जीवन्मुक्त** है॥

—(स्पन्दकारिका)

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं—

"इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः॥"[१]

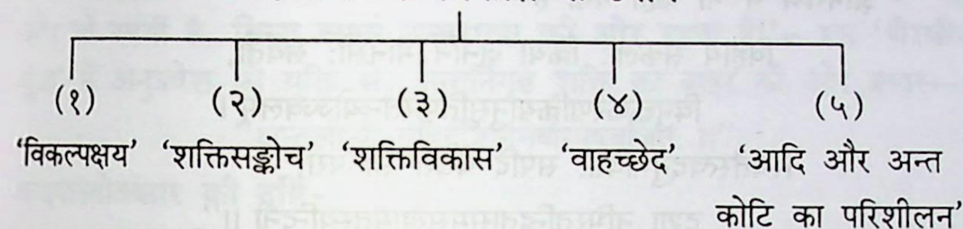
विश्व के साथ अभिन्नता रूप **'समावेशात्मक चिदानन्द'** के उपलब्ध होने पर व्युत्थानावस्था में सर्प की केंचुल के सदृश देह-प्राण-नील एवं सुखादिकों के आभासित रहने पर भी जिस अभेदापत्ति के संस्कारबल से तथा अग्रिम ग्रंथ-प्रतिपादित युक्ति के क्रम से **'उद्दीप्त अविचल चिदैक्य'** प्रथित होता है वही **'जीवन्मुक्ति'** है।

प्राणों को धारण करते हुए होने वाली मुक्ति ही **'जीवन्मुक्ति'** है। इस समय अपने स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा हो जाने पर समस्त पाप-राशि नष्ट हो जाती है।[२]

---

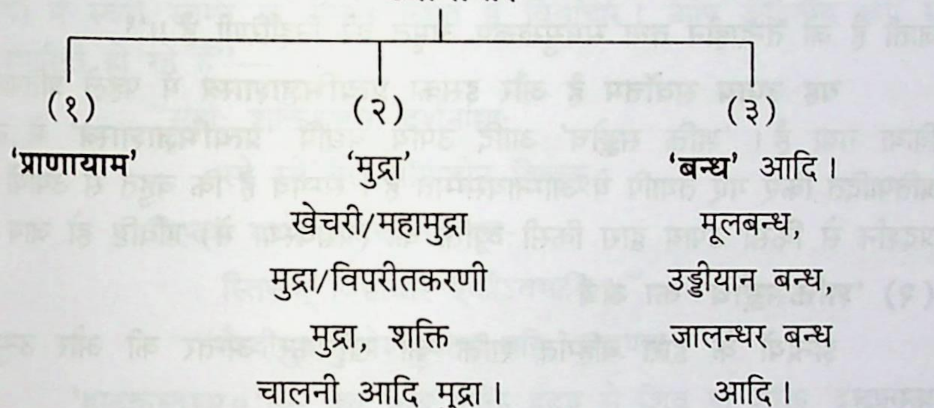
१. स्पन्दकारिका।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र १६)।

.'मध्य' के विकास के उपाय



"विकल्पक्षय-शक्तिसङ्कोचविकास वाहच्छेदाद्यन्त कोटिनिमालनादय इहोपाया: ॥ (सूत्र १८)

उपायान्तर



प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध आदि समस्त पीड़ात्मक व्यवस्था के तोड़ देने से यह सुखोपाय है।

(१) विकल्प-क्षय

हृदय में चित्त को स्थापित करके उक्त युक्ति के अनुसार अपनी स्थिति के प्रतिबन्धक विकल्प को, निश्चिन्त होकर शान्त करता हुआ योगी अविकल्प दशा में स्थित होता है। देह आदि के कालुष्य से शून्य अपनी चित्प्रमातृता के परिशीलन में निष्णात बनकर वह शीघ्र ही, जिसके विकास का उन्मेष हो रहा है— ऐसी 'तुरीय' और 'तुरीयातीत' दशा प्राप्त कर लेता है। पारमेश्वरी सृष्टि **विकल्पों के विनाश** एवं **एकाग्रता** के अभ्यास से क्रमश: ईश्वर पद प्राप्त करा देती है— "विकल्पहानेनैकाग्र्यात् क्रमेणेश्वरतापदम् ॥" (प्रत्यभिज्ञा)

श्री स्पन्द में भी कहा गया है—

"यदा क्षोभ: प्रलीयेत् तदा स्यात्परमं पदम् ॥"

(क्षोभो 'देहाद्यहम् प्रत्ययरूप:'— भट्ट कल्लट)

ज्ञानगर्भ में भी कहा गया है—

"विहाय सकला: क्रिया जननि मानसी: सर्वतो,
विमुक्तकरणक्रियानुसृतिपारतन्त्र्योज्ज्वलम्।
स्थितैस्त्वदनुभावत: सपदि वेद्यते सा परा,
दशा नृभिरतन्द्रितासमसुखामृतस्यन्दिनी ॥"

अर्थात् 'ऐ माँ ! विकल्प और स्मृति आदि सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओं को दूर करके ऊर्ध्व रेचक आदि, मुद्राबन्धरूप दिव्यकरणक्रियाओं के अनुसरण के पारतन्त्र्य के त्याग से उज्ज्वल, योगियों के द्वारा, तुम्हारी वह परावस्था प्राप्त की जाती है जो तन्द्राहीन तथा समसुखरूप अमृत की निर्झरिणी है ॥'[१]

यह उपाय सर्वोत्तम है और इसका **प्रत्यभिज्ञाशास्त्र** में पहले प्रतिपादन किया गया है। 'शक्ति सङ्कोच' आदि उपाय यद्यपि **'प्रत्यभिज्ञाशास्त्र'** में नहीं प्रतिपादित किए गए तथापि ये आम्नायसम्मत हैं। सम्भव है कि बहुत से उपायों के प्रदर्शन से किसी उपाय द्वारा किसी व्यक्ति की (परावस्था में) प्रविष्टि हो जाय।[२]

(२) 'शक्तिसङ्कोच' का अर्थ

इन्द्रियों के द्वारा बहिर्गत शक्ति को खींचकर अन्तर की ओर उन्मुख करना।

इन्द्रियों की प्रकृति– "स्वयम्भू ब्रह्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है अत: मनुष्य बाहर की ओर देखता है, अन्तरात्मा को नहीं देखता। कोई धैर्यवान एवं विवेकवान पुरुष ही, चक्षु आदि इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर से प्रत्यावृत करके अमृतोपभोग करता हुआ अन्तरात्मा को देखता है—

"पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयम्भू-,
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीर: प्रत्यगात्मानमैक्षद्,
आवृत्तचक्षुरमृतत्वमशनन् ॥"[३]

(३) 'शक्ति का विकास'

'शक्ति का विकास' का यह अर्थ ध्वनित करता है कि बिना किसी क्रम के

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
३. आथर्वणिक उपनिषद कठवल्ली (च व., प्रथम मंत्र)।

समस्त इन्द्रियों को फैलाकर "निमेष और उन्मेष से रहित जिसकी **दृष्टि बाहर की ओर तो रहती है, किन्तु लक्ष्य अन्तरात्मा की ओर रहता है"**– इस **'भैरवी-मुद्रा'** में अनुप्रवेश की युक्ति से, अन्तर्निगूढ शक्ति का बाहर की ओर प्रसार—

"अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जितः ॥"

कक्ष्यास्तोत्रकार की दृष्टि-

'कक्ष्यास्तोत्र' में कहा गया है कि—

"दर्शन, श्रवण आदि समस्त शक्तियों को, चित्त के द्वारा एक साथ ही चतुर्दिक अपने-अपने वेद्य पदार्थों (विषयों) में फेंककर मध्यभूमि (सुषुम्ना नाड़ी रूप मार्ग) में स्वर्ण स्तम्भ के समान स्थित है विश्वाधार! आप अद्वितीय रूप से अवभासित हो रहे हैं"—

"सर्वाः शक्तिश्चेतसा दर्शनाद्याः,
स्वे स्वे वेद्ये यौगपद्येन विष्वक्।
क्षिप्त्वा मध्ये ह्याटकस्तम्भभूत-,
स्तिष्ठन् विश्वाधार एकोऽवभासि ॥"

"भैरवीमुद्रानुप्रवेशयुक्त्या बहिः प्रसरणम्।"[१]

'हाटकस्तम्भ०'— जब वायु शक्ति हृदय से शिव या शक्ति 'द्वादशान्त' तक नहीं जाती और न तो द्वादशान्त से हृदय में आती हैं किन्तु सुषुम्ना में दण्डाकार रूप से कुम्भकावस्था में रहती हैं तो— "प्राणदण्डप्रयोगेन पूर्वापरसमीकृतेः" —तन्त्रालोक (आ. ५/५४) के अनुसार पूर्वापर ('प्राणापान वाह') के समीकृत होने पर प्राण, विषुवद्रूप का आलम्बन ग्रहण करके दण्डाकार रूप में अवस्थित होता है। इस अवस्था में 'निमेष' एवं 'उन्मेष' का अभाव हो जाता है और इसमें कोई कष्ट भी नहीं होता।

'शक्ति-विकास' के सम्बन्ध में कल्लट भी कहते हैं कि 'रूपादिकों में परिणत होने के कारण उसकी सिद्धि होती है।'

शक्ति का 'सङ्कोच-विकास'

इसका स्वरूप इस प्रकार है—

"शक्तेश्च सङ्कोच-विकासौ, नासापुटस्पन्दनक्रमोन्मिषत्सूक्ष्मप्राणशक्त्या भ्रूभेदनेन क्रमासादितोर्ध्वकुण्डलिनी पदे प्रसरविश्रान्तिदशापरिशीलनम्, अधः

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्। (क्षेमराज)

कुण्डलिन्यां च षष्ठवक्त्ररूपाणां प्रगुणीकृत्य शक्तिं, तन्मूलतदग्र-तन्मध्यभूमिस्पर्शावेशः ।।''

(क) **'शक्तिसङ्कोच'–** भ्रूपृष्ठ में विद्यमान बिन्दु का भेदन करके— (१) 'अर्धचन्द्र' (२) 'रोधिनी' (३) 'नाद' (४) 'नादान्त' (५) 'शक्ति' (६) 'व्यापिनी' (७) 'समना'— इनको अतिक्रान्त करती हुई सूक्ष्म प्राणशक्ति जब **उन्मनाधाम** या **ऊर्ध्व-कुण्डलिनी भूमि** में विश्राम करती है तो इसे **'प्रसार का सङ्कोच'** कहा जाता है। यह प्राणशक्ति अभ्यास के कारण क्रमशः नासाभ्यन्तरचारिणी बन जाती **है तभी सूक्ष्म होती है।**

(ख) शक्ति का विकास– 'मूलाधार चक्र' के नीचे मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग में त्रिकोणाकार रचना **'अग्निचक्र'** या **'कुलकुण्ड'** है। यह षष्ठ-वक्त्ररूप **'अधः कुण्डलिनी पद'** है। यहाँ पूर्वोक्त **सूक्ष्मप्राणशक्ति** को वश में करके उसके (कुलकुण्ड के) **मूल, अग्र एवं मध्यभाग का** स्पर्श करना **'विकास'** है।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

विज्ञानभट्टारक में कहा गया है—

''वह्नेविषस्य मध्ये तु चित्तं सुखमयं क्षिपेत्।
केवलं वायुपूर्णं वा स्मरानन्देन युज्यते ।।''

(क) अत्र 'वह्निः' अनुप्रवेशक्रमेण **सङ्कोचभूः**।[1]

(ख) 'विषस्थानं' प्रसरयुक्त्या **विकासपदम्**।[2]

सारांश यह कि **'वह्नि' और 'विष'** के मध्य सुखमय केवल चित्त को भावना के द्वारा प्रवेश करा दे या प्राण शक्ति से समापन्न (भरित) चित्त को मध्य में धारण करे तो योगी स्मरानन्द से युक्त हो जाता है।''

(क) यहाँ अनुप्रवेश के क्रम से पूर्वोक्त सङ्कोचभूमि ही 'वह्नि' है और (ख) विकासपद, (विप्लृ व्याप्तौ) धातुगत अर्थ के अनुगमन से **'विष'** कहा जाता है।

विज्ञानभैरव (श्लोक ६८) की व्याख्या करते हुए व्याख्याकार शिवोपाध्याय की विवृति अवलोकनीय है।

शिवोपाध्याय की दृष्टि– शिवोपाध्याय कहते हैं कि इन दोनों के मध्य

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

सृष्टिग्रन्थिरूप मध्य नाड़ी में सुखमय चित्त का, भावना के द्वारा निक्षेप करना चाहिये। वायु की श्वास-प्रश्वास सम्बन्धिनी धारणा का त्याग करके वायु के निर्गम एवं प्रवेश के कारणस्वरूप, दोनों के— ऐक्यानुसन्धानात्मक मध्यभूत उन्मेष-भट्टारक में आनन्दमय चित्त का निक्षेप करना चाहिये।

'केवल'– आरोहावरोहात्मक विषय सम्बन्ध से रहित। **'वायुपूर्ण'**– मध्यनाड़ी मे अक्रमरूप से उच्चरित अनाहतध्वन्यात्मक प्राणशक्ति से पूर्ण। उससे कामानन्द की पूर्ति होती है। समस्त विषयों की विस्मृति का कारण होने से कामानन्द अन्य आनन्दों से परे है।

(४) 'वाहच्छेद' -

'वाह' अर्थात् वाम एवं दक्षिणवर्तिनी नाड़ीगत प्राण एवं अपान का विच्छेद। हृदय में विश्रान्तिपूर्वक अन्दर ककार हकार आदि रूप वाले, स्वररहित वर्णों के उच्चारण के साथ विच्छेद ('वाहच्छेद') ही 'वाहच्छेद' नामक उपाय है।

ज्ञानगर्भस्तोत्रकार की दृष्टि– 'ज्ञानगर्भस्तोत्र' में कहा गया है कि— स्वरहीन **'क'** वर्ण के उच्चारण से इडा और पिङ्गला इन दोनों पार्श्वनाड़ियों में प्रसृत वायु का विच्छेद करने वाले चित्तविजयी योगी के हृदयपङ्कज के अन्तरात्मा में, घोर अज्ञान को नष्ट करने वाले आपकी विद्या का वह अङ्कुर उदित होता है जो कि पशु को परमेश्वर बना देने में समर्थ है—

'अनच्ककककृतायतिप्रसृतपार्श्वनाडीद्वयच्छिदो,
विधृतचेतसो हृदयपङ्कजस्योदरे।
उदेति तव दारितान्धतमसः स विद्याङ्कुरो
य एष परमेशतां जनयितुं पशोरप्यलम्॥

आदिकोटि अन्तकोटि निभालन

'आदिकोटि' (हृदय) एवं **'अन्तकोटि'** (द्वादशान्त) इन दोनों में क्रमशः (१) 'प्राणोल्लास' एवं (२) 'प्राणविश्रान्ति' के अवसर पर चित्त का निवेश पूर्वक परिशीलन ही आदि कोटि-अन्तकोटि-निभालन है—

''आदिकोटिः'' हृदयम्, **''अन्तकोटिः''** द्वादशान्तः, तयोः प्राणोल्लास-विश्रान्त्यवसरे **'निभालनं'**– चित्त निवेशनेन परिशीलनम्॥''[१]

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र १८)।

कुण्डलिन्यां च षष्ठवक्त्ररूपाणां प्रगुणीकृत्य शक्तिं, तन्मूलतदग्र-तन्मध्यभूमिस्पर्शावेशः ।।''

(क) **'शक्तिसङ्कोच'–** भ्रूपृष्ठ में विद्यमान बिन्दु का भेदन करके— (१) 'अर्धचन्द्र' (२) 'रोधिनी' (३) 'नाद' (४) 'नादान्त' (५) 'शक्ति' (६) 'व्यापिनी' (७) 'समना'— इनको अतिक्रान्त करती हुई सूक्ष्म प्राणशक्ति जब **उन्मनाधाम** या **ऊर्ध्व-कुण्डलिनी भूमि** में विश्राम करती है तो इसे **'प्रसार का सङ्कोच'** कहा जाता है। यह प्राणशक्ति अभ्यास के कारण क्रमशः नासाभ्यन्तरचारिणी बन जाती **है तभी सूक्ष्म होती है।**

(ख) शक्ति का विकास– 'मूलाधार चक्र' के नीचे मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग में त्रिकोणाकार रचना **'अग्निचक्र'** या **'कुलकुण्ड'** है। यह षष्ठवक्त्ररूप **'अधः कुण्डलिनी पद'** है। यहाँ पूर्वोक्त **सूक्ष्मप्राणशक्ति** को वश में करके उसके (कुलकुण्ड के) **मूल, अग्र एवं मध्यभाग का** स्पर्श करना **'विकास'** है।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

विज्ञानभट्टारक में कहा गया है—

''वह्नेविषस्य मध्ये तु चित्तं सुखमयं क्षिपेत्।
केवलं वायुपूर्णं वा स्मरानन्देन युज्यते ।।''

(क) अत्र 'वह्निः' अनुप्रवेशक्रमेण **सङ्कोचभूः** ।[१]

(ख) 'विषस्थानं' प्रसरयुक्त्या **विकासपदम्** ।[२]

सारांश यह कि **'वह्नि' और 'विष'** के मध्य सुखमय केवल चित्त को भावना के द्वारा प्रवेश करा दे या प्राण शक्ति से समापन्न (भरित) चित्त को मध्य में धारण करे तो योगी स्मरानन्द से युक्त हो जाता है।''

(क) यहाँ अनुप्रवेश के क्रम से पूर्वोक्त सङ्कोचभूमि ही 'वह्नि' है और (ख) विकासपद, (विप्लृ व्याप्तौ) धातुगत अर्थ के अनुगमन से **'विष'** कहा जाता है।

विज्ञानभैरव (श्लोक ६८) की व्याख्या करते हुए व्याख्याकार शिवोपाध्याय की विवृति अवलोकनीय है।

शिवोपाध्याय की दृष्टि– शिवोपाध्याय कहते हैं कि इन दोनों के मध्य

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

सृष्टिग्रन्थिरूप मध्य नाड़ी में सुखमय चित्त का, भावना के द्वारा निक्षेप करना चाहिये। वायु की श्वास-प्रश्वास सम्बन्धिनी धारणा का त्याग करके वायु के निर्गम एवं प्रवेश के कारणस्वरूप, दोनों के— ऐक्यानुसन्धानात्मक मध्यभूत उन्मेष-भट्टारक में आनन्दमय चित्त का निक्षेप करना चाहिये।

'केवल'– आरोहावरोहात्मक विषय सम्बन्ध से रहित। **'वायुपूर्ण'**– मध्यनाड़ी मे अक्रमरूप से उच्चरित अनाहतध्वन्यात्मक प्राणशक्ति से पूर्ण। उससे कामानन्द की पूर्ति होती है। समस्त विषयों की विस्मृति का कारण होने से कामानन्द अन्य आनन्दों से परे है।

(४) 'वाहच्छेद' -

'वाह' अर्थात् वाम एवं दक्षिणवर्तिनी नाड़ीगत प्राण एवं अपान का विच्छेद। हृदय में विश्रान्तिपूर्वक अन्दर ककार हकार आदि रूप वाले, स्वररहित वर्णों के उच्चारण के साथ विच्छेद ('वाहच्छेद') ही 'वाहच्छेद' नामक उपाय है।

ज्ञानगर्भस्तोत्रकार की दृष्टि– 'ज्ञानगर्भस्तोत्र' में कहा गया है कि— स्वरहीन **'क'** वर्ण के उच्चारण से इडा और पिङ्गला इन दोनों पार्श्वनाड़ियों में प्रसृत वायु का विच्छेद करने वाले चित्तविजयी योगी के हृदयपङ्कज के अन्तरात्मा में, घोर अज्ञान को नष्ट करने वाले आपकी विद्या का वह अङ्कुर उदित होता है जो कि पशु को परमेश्वर बना देने में समर्थ है—

'अनच्ककककृतायतिप्रसृतपार्श्वनाडीद्वयच्छिदो,
विधृतचेतसो हृदयपङ्कजस्योदरे।
उदेति तव दारितान्धतमसः स विद्याङ्कुरो
य एष परमेशतां जनयितुं पशोरप्यलम्॥

आदिकोटि अन्तकोटि निभालन

'आदिकोटि' (हृदय) एवं **'अन्तकोटि'** (द्वादशान्त) इन दोनों में क्रमशः (१) 'प्राणोल्लास' एवं (२) 'प्राणविश्रान्ति' के अवसर पर चित्त का निवेश पूर्वक परिशीलन ही आदि कोटि-अन्तकोटि-निभालन है—

''आदिकोटिः'' हृदयम्, **''अन्तकोटिः''** द्वादशान्तः, तयोः प्राणोल्लास-विश्रान्त्यवसरे **'निभालनं'**– चित्त निवेशनेन परिशीलनम्॥''[1]

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र १८)।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

विज्ञानभैरव में कहा गया है— हृद्याकाश अर्थात् प्राणापान के अन्तराल में मन एवं इन्द्रियाँ जिसकी लीन हैं, ऊर्ध्व और अधोगत पद्मसम्पुट के मध्य भावना द्वारा प्रविष्ट या ऊर्ध्वगत पद्म, **'प्रमाण'** एवं अधरगत **'प्रमेय'** के मध्य चित्प्रमातात्मकस्वस्वरूप में स्थित अतः अनन्यचित्त योगी, परमसौभाग्य— विश्वेश्वरतात्मक परमानन्द की प्राप्ति कर लेता है और इसके अतिरिक्त—

"संवित् शक्ति के प्रसरण द्वारा पूर्वोक्त प्रदेशों के मध्य जिस किसी प्रदेश में या द्वादशान्त में मन को एकाग्र करे— इस प्रकार चञ्चलता क्षीण होने पर स्वल्पकाल में ही असामान्य पर भैरवरूपता प्राप्त हो जाती है।"

स्पन्दशास्त्र की दृष्टि-

स्पन्दशास्त्र में कहा गया है कि एक विषय में व्यापृत चित्त वाले पुरुष में जब अन्य चिन्ता उत्पन्न हो जाती है तब उस चिन्ता का कारण **'उन्मेष'** को समझना चाहिये। योगी दो चिन्ताओं के मध्य अनुभूयमान इस 'उन्मेष' का स्वयं ध्यान रक्खे।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि-

विज्ञानभैरव में कहा गया है कि—

मिष्ठान्न-भोजन, क्षीरपान आदि से उत्पन्न उल्लास (रसानन्द) के उत्कर्ष से पूर्वावस्था की भावना करने से अनुत्तर सुख की प्राप्ति होती है।

गीत, वीणा-श्रवण, रूप, स्पर्श आदि विषयों के चमत्कार (उपभोग) से जनित अनुपम सुख में समाहित चित्त योगी को शाक्त स्पर्शावेश (तन्मयता) के कारण ब्रह्मसुख (तदात्मा) प्राप्त होता है। जहाँ जहाँ मन लगता हो वहीं मन को स्थिर करना चाहिये। और यह सोचना चाहिए कि मैं ही शिव हूँ। यह सौन्दर्य मेरी भङ्गिमा है। ऐसा ध्यान करने से परानन्दस्वरूप व्यक्त हो उठेगा। चिन्ताओं के मध्य में अनुभूयमान इन उन्मेष का स्वयं ध्यान रक्खे। इसके अतिरिक्त **'आदिपद'** से स्मरणीय विषयों का आस्वादन आदि अर्थ ग्राह्य है।

आनन्दपूर्ण स्वात्म भावनायें मध्य विकास के उपाय हैं।[१]

चिदानन्द और 'समाधि

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि– आचार्य क्षेमराज का कथन है कि—

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र १८)।

(१.) मध्य के विकास से **चिदानन्द की प्राप्ति** होती है।

(२) यह **'चिदानन्द की प्राप्ति'** ही परमयोगियों की **'समाधि'** है।

(३) **'चिदानन्द की प्राप्ति'** को **'समावेश'** एवं **'समापत्ति'** का पर्याय भी स्वीकार किया जाता है—

'मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः स एव परमयोगिनः **समावेश समापत्यादि** पर्यायः **समाधिः** ॥'' (सूत्र १८ की व्याख्या : राजानक क्षेमराज : 'प्रत्यभिज्ञा-हृदयम्')।

'चिदानन्द प्राप्ति' ही **'समाधि' 'समापत्ति' 'समावेश'** है।

''शुद्धविद्या'' मोक्ष का उपाय है।

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि यह है कि माया से अन्धे, एवं कर्मपरिबद्ध, संसारी प्रमाता 'शुद्धविद्या' से मुक्ति प्राप्त कर लेता है—

''एष प्रमातामायान्धः कर्मबन्धनः।
विद्याभिर्ज्ञापितैश्वर्यश्चिद्घनो मुक्त उच्यते ॥''

स्वच्छन्दतन्त्र के टीकाकार क्षेमराज कहते हैं—

''यदा तु शुद्धविद्याशक्त्या सङ्कोचविकासोऽस्य विलाप्यते तदा मुच्यतेऽसौ वै न च देहपाते अस्य मुक्तिरपि तु जीवितोऽपि।'' अर्थात् यदि 'शुद्ध विद्या' के द्वारा सङ्कोच-विकास का विलापन हो जाता है तब उस साधक को मुक्त कहा जाता है भले ही सशरीर जीवित हो और देह-पात भले ही न हुआ हो।

महेश्वरानन्द की दृष्टि– आचार्य महेश्वरानन्द का कथन है कि **भोग-मोक्ष का साक्षात्कार ही जीवन्मोक्ष** है—

''भोगमोक्षसाक्षात्कारलक्षणो **'जीवन्मोक्षः'** ॥''[१]

''समावेश'' ही जीवन्मुक्ति है– ''भास्करी'' इसी दृष्टि का पोषक है—

''जीवन्मुक्तावस्था समावेश इत्युक्ता शास्त्रे।'' (भास्करी)

नित्योदित समाधि

'समाधि' क्या है? परमयोगियों का **'समावेश'** एवं उनकी **'समापत्ति'** ही समाधि है—

'परमयोगिनः समावेशसमाप्त्यादिपर्यायाः समाधिः ॥' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)

१. परिमल (५२)।

शक्तिसूत्रकार कहते हैं— "समाधिसंस्कारवति व्युत्थाने भूयोभूयश्चिदेक्यामर्शान्नित्योदित समाधिलाभः ॥" (शक्तिसूत्र १९)

अर्थात् समाधि के संस्कार से सम्पन्न व्युत्थान दशा में वारम्वार चित् के साथ ऐक्य का परिशीलन करने से नित्योदित समाधि का लाभ होता है।

'नित्योदित समाधि' के उपाय

राजानक क्षेमराज की दृष्टि– आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि— "समाधि के संस्कार से सम्पन्न व्युत्थान दशा में वारम्वार चित् के साथ ऐक्य का परिशीलन करने से नित्योदित (एकरस) समाधि का लाभ होता है।"

"समाधिसंस्कारवति व्युत्थाने भूयोभूयश्चिदैक्यामर्शान्नित्योदितसमाधिलाभः ॥"

समावेशदशाप्राप्त योगी **व्युत्थित अवस्था** में भी समाधिरस के संस्कार से उन्मत्त सा आनन्दपूर्वक घूमता हुआ, सम्पूर्ण भावराशि (वस्तुसमूह) को शरदकालीन मेघखण्ड की भाँति विलीन होते हुए देखता है।

वह समाधि प्राप्त योगी **व्युत्थानावस्था** में भी अधिकाधिक अन्तर्मुखता का ही आश्रय लेता हुआ, **'निमीलन समाधि'** के क्रम से चिदैक्य का ही विमर्श करता हुआ, बाह्यदशा में भी समाधि के साथ एकरस बना रहता है।[1]

क्रमसूत्रकार की दृष्टि– क्रमसूत्र में कहा गया है कि "अन्तःस्वरूप 'क्रममुद्रा' द्वारा, **बहिर्मुख होने पर भी साधक समाधिस्थ ही रहता है**। वहाँ पहले बाह्य से अन्तः में प्रवेश होता है तथा आभ्यन्तर से बाह्यस्वरूप में भी प्रवेश, **समाधिबल** से सम्पन्न होता है।"

क्रममुद्रा का प्रभाव

"क्रममुद्रया अन्तःस्वरूपया बहिर्मुखः समाविष्टो भवति साधकः। तत्रादौ बाह्यात् अन्तःप्रवेशः आभ्यन्तरात् बाह्यस्वरूपे प्रवेशः आवेशवशात् जायते, इति सबाह्याभ्यन्तरोऽयं मुद्राक्रमः ॥" (क्रमसूत्र)

अर्थात् अन्तःस्वरूप 'क्रममुद्रा' के द्वारा, बहिर्मुख होने पर भी साधक समाधिस्थ ही रहता है। वहाँ पहले बाह्य से अन्तः में प्रवेश होता है तथा आभ्यन्तर से बाह्य स्वरूप में भी प्रवेश समाधिबल से निष्पन्न होता है— इस प्रकार यह

१. **आसादित समावेशो** योगीश्वरो व्युत्थाने अपि समाधिरससंस्कारेण क्षीब इव सानन्दं घूर्णमानो भावराशिं शरदभ्रलवम् इव चिद्गगन एव लीयमानं पश्यन्, भूयो भूयः अन्तर्मुखताम् एवं समवलम्बमानो, निमीलनसमाधिक्रमेण चिदैक्यमेव विमृशन्' व्युत्थानाभिमतावसरे अपि समाध्येकरस एव भवति ॥" (शक्तिसूत्र, १९)

'मुद्राक्रम' बाह्य और आभ्यन्तर से संयुक्त होता है।

सृष्टि, स्थिति एवं संहार संवित समूह रूप क्रम को जो मुद्रित करती है, आत्मसात् करती है— वह तुरीय चिति शक्ति ही **'क्रममुद्रा'** है। इस पूर्णाहन्ता-स्वरूप क्रममुद्रा के द्वारा विषयों में व्यापृत रहने पर भी जिसने पर **शक्ति के विकास का साक्षात्कार कर** लिया है वह **परमयोगी** हो जाता है और वहाँ बाह्य अर्थात् निगले जाते हुए विषयसमूह से, अन्त: पराचिति भूमि में ग्रसन क्रम से समावेश होता है। आभ्यन्तर अर्थात् साक्षात्कृत चितिशक्तिस्वरूप से **'समावेश'** की सामर्थ्य से ही, इदन्तात्मक विषय समूह में वमन की युक्ति द्वारा प्रवेश चिद्रस की निबिड़ता का प्रसारस्वरूप **'समावेश'** सम्पन्न होता है।

(१) 'एतत् सर्वं शिवस्वरूपमेव इति उपसंहार:।'

(२) ''प्रकाशैकसद्भावापदिताशेषविश्वचमत्कारमय: श्रीमान् महेश्वर एव परमार्थ:।।''

समाधि प्राप्ति का फल क्या है?

''तब प्रकाशानन्दसार महामन्त्रवीर्यात्मक पूर्णाहन्ता के साथ अभेद होने से सदा सब प्रकार की सृष्टि एवं लय करने वाली अपनी संवित् शक्तियों पर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है।''—

''तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मक**पूर्णाहन्ता**वेशात् सदा सर्वसर्गसंहार-कारिनिजसंविद्देवता चक्रेश्वरता प्राप्तिर्भवतीति शिवम्।।'' (सूत्र २०)

नित्योदित समाधि की प्राप्ति हो जाने पर, चिदानन्दघन सब मन्त्रों की प्राणरूप, पराभट्टारिका अहन्ता (अकृत्रिम स्वात्मचमत्कार) से योगी अभिन्न हो जाता है। तब कालाग्नि से लेकर ''शान्त्यतीता' (चरमकला) पर्यन्त विश्व के विचित्र सृष्टि और प्रलय करनेवाली संवित् शक्तियों का ऐश्वर्य प्रस्तुत परमयोगी को प्राप्त होता है।

'यह सब शिवस्वरूप ही है'— यही उपसंहार है। इस संसार में जो कुछ भी संवेद्य है वह संवेदनस्वरूप ही है और उसके भी तत्त्व हैं अन्तर्मुख विमर्शमय प्रमातृगण।

जिसमें देहादि उपाधिरूप संकोच का अभिमान नष्ट हो गया है ऐसी समस्त शरीरों में व्याप्त सदाशिवेश्वरता ही, उन प्रमाताओं का भी सार है। इसका भी सार या परमार्थ है।

''प्रकाश के साथ समग्र विश्व की एकता सम्पादनरूप चमत्कार से पूर्ण

श्रीमान महेश्वर। पारमार्थिक प्रकाशावेश के विना कुछ भी प्रकाशित नहीं होता। वह परमेश्वर, स्वातन्त्र्यसार होने से **'अ' से लेकर 'क्ष'** पर्यन्त अमायिक शब्दराशि के परामर्श से पूर्ण होने के कारण ही तथा इसके द्वारा स्वीकृत समस्त वाच्यों और वाचकों से पूर्ण अशेष जगद्रूप निजानन्द के सद्भाव की सम्पत्ति से परिपूर्ण, समस्त आकांक्षाओं से शून्य तथा आनन्द के प्रसर से सर्वथा युक्त हैं। अत: अनुत्तर और अकुलरूप अकार से लेकर शक्तिविस्तारात्मक 'ह' कला (वर्ण) पर्यन्त जो विश्व प्रसृत है— 'क्ष' तो प्रसार की समाप्ति का सूचक है। उस 'अकार' और 'हकार' से सम्पुटित या प्रत्याहार न्याय से उन दोनों के भीतर स्वीकृत विश्व, अभिन्न वेदनात्मक बिन्दुरूप से स्फुरित होकर अनुत्तर पद में ही लीन होता है। इस प्रकार यह स्वाभाविक विमर्श शब्दराशि स्वरूप ही है।

प्रकाश (नील, सुख आदि) की **आत्मा में विश्रान्ति या लय** को **'अहम्भाव'** या **'पराहन्तापरामर्श'** कहा गया है। समस्त अपेक्षाओं के निरुद्ध होने पर वही विश्रान्ति (तृप्ति) **'स्वातन्त्र्य' 'मुख्यकर्तृत्व'** और **'ऐश्वर्य'** के नाम से कही जाती है—

"प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तित:।
उक्ता च सैव विश्रान्ति: सर्वापेक्षानिरोधत:।
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च॥"

'चक्रेश्वरत्व'-सिद्धि : 'शुद्धविद्योदयाच्चक्रेशत्वसिद्धि:' —(शिवसूत्र १/२१)

शक्तिचक्रों पर प्रभुत्व या अधिपतित्व की प्राप्ति-चक्रेश्वरत्व है।

शक्तिसूत्रकार की दृष्टि-

शक्तिसूत्रकार चक्रेश्वरत्व-प्राप्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

"तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्गसंहार-कारिनिजसंविद्देवताचक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवतीति शिवम्॥"[१]

अर्थात् तब प्रकाशानन्दसार महामन्त्रवीर्यात्मक पूर्ण अहन्ता के साथ अभेद होने से सदैव सभी प्रकार की सृष्टि और लय करने वाली अपनी संवित् शक्तियों पर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है।

'नित्योदित समाधि' अधिगत हो जाने पर, चिदानन्दघन समस्त मन्त्रों की प्राणरूप, पराभट्टारिका अहन्ता अर्थात् अकृत्रिम स्वात्मचमत्कार से योगी अभिन्न हो

---

१. शक्तिसूत्र (२०)।

जाता है। तब कालाग्नि से शान्त्यतीता चरम कला पर्यन्त विश्व के विचित्र सृष्टि-प्रलयकर्त्री संवित शक्तियों का **ऐश्वर्य** योगी को प्राप्त हो जाता है।

यह 'ऐश्वर्य' क्या है?

प्रकाश (नील, सुख, दु:ख आदि) की आत्मा में विश्रान्ति या लय को 'अहंभाव' या **'पराहन्तापरामर्श'** कहते हैं। समस्त अपेक्षाओं के दूर हो जाने पर वही पूर्वोक्त आत्मविश्रान्ति (तृप्ति) 'स्वातन्त्र्य' 'मुख्यकर्तृत्व' एवं **'ऐश्वर्य'** कही जाती है—

"प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तितः।
उक्ता च सैव विश्रान्तिः सर्वापेक्षानिरोधतः।
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च॥"[१]

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि-

स्पन्दकारिकाकार ने स्पन्दकारिका की ५१वीं कारिका (एक को छोड़कर अन्तिम कारिका) में इसी चक्रेश्वरत्व प्राप्ति का लक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहा है—

"यदात्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोदयौ।
नियच्छन् भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत्॥"[२]

अर्थात् जब साधक किसी एक में चित्त को लीन करके स्थित हो जाता है तब सृष्टि-संहार व्यापार को सम्पन्न करता हुआ अपने विलुप्त भोक्तापद को पा लेता है तथा वह शक्तिचक्र का ईश्वर बन जाता है।

समावेशत्रय

'समापत्ति' ही समावेश है। तान्त्रिक शैव साधना में साधनों के रूप में जो तीन **'उपाय'** उपदिष्ट किए गए हैं उन्हीं में तीन समावेश भी निहित हैं। **'समावेश'** समाधि या समापत्ति का पर्याय है।

आचार्य महेश्वरानन्द ने **'उपायों'** को विकल्पों के आधार पर विभाजित किया है। आत्मबोध के **उपायभूत जो तीन साधन हैं** उनका (विकल्पों की दृष्टि से) इस प्रकार स्वरूप है— (१) **अविकल्पक-'शाम्भव उपाय'** (२) **अशुद्ध-विकल्प-'आणवोपाय'** (३) **शुद्धविकल्प='शाक्तोपाय'**।

---

१. उत्पलदेवाचार्य।
२. स्पन्दकारिका (५१)।

'समावेश' के भेद

(१)	(२)	(३)
शाम्भव समावेश	**शाक्त समावेश**	**आणव समावेश**
"निर्विचार अवस्था में तीव्रबोध का प्रत्यभिज्ञान होने से जो आवेश उत्पन्न होता है उसे **'शाम्भव समावेश'** कहते हैं।	उच्चाररहित वस्तु तत्त्व का मनन-चिन्तन करते हुए जो समावेश होता है उसे **'शाक्त समावेश'** कहते हैं।	उच्चार, करण, ध्यान, वर्ण और स्थान प्रकल्पन आदि के द्वारा जो समावेश होता है उसे **'आणव समावेश'** कहते हैं।

समावेशों की परिभाषा[1]

(१)	(२)	(३)
शाम्भव समावेश	**शाक्त समावेश**	**आणव समावेश**
"अकिंचिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः। उत्पद्यते य आवेशः **शाम्भवो**ऽसावुदीरितः॥" (तन्त्रालोक : १/१६८)	उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्। यं समावेशमाप्नोति **शाक्तः** सोऽत्राभिधीयते॥" (तन्त्रालोक, १/१६९)	उच्चारकरणध्यान-वर्णस्थानप्रकल्पनैः यो भवेत् स समावेशः सम्यग**आणव** उच्यते॥ (तन्त्रालोक, १/१७०)

उपायत्रय[2]

(१)	(२)	(३)
अभेदोपाय	**भेदोपाय**	**भेदाभेदोपाय**

---

१. अभिनवगुप्तपादाचार्य।

२. तन्त्रालोक। 'परिमल' (महेश्वरानन्द)—

(१) 'आणवोपाय'— प्राणस्पन्दोच्चारणाद्यशुद्धविकल्प **'आणवः'**।

(२) 'शाक्तोपाय'— चित्तमात्रनिर्वर्त्यशुद्धविकल्पात्मा **'शाक्तः'**।

(३) 'शाम्भवोपाय'— विकल्पसर्वविलयस्वभावः **'शांभवः'** इति॥

'शांभवोपाय'	'शाक्तोपाय'	'आणवोपाय'
'अभेदोपायमत्रोक्तं **शांभवं**'	'शाक्तमुच्यते भेदः ॥'	'भेदोपायं तदाणवम् ॥'

"**अभेदोपाय**मत्रोक्तं **शाम्भवं शाक्त**मुच्यते।
भेदाभेदात्मकोपायं, भेदोपायं तदाणवम् ॥" (तन्त्रालोक)

'अनुपाय' भी एक उपाय है।

विश्वाहन्ता (पूर्णाहन्ता)

विश्वाहन्ता 'पूर्णाहन्ता' है। इसमें 'अहमिदम्' का विमर्श होता है। 'तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मक**पूर्णाहन्तावेशात्** सदा सर्वसर्गसंहारकारिनिजसंवि-देवता चक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवति ॥" (प्रत्यभिज्ञाहृदयम् : शक्तिसूत्र २०)

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि-

आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

(१) 'सर्वम् अहन्ताच्छादितत्वेन स्फुरति'[१]

'अशेषविश्वस्फुरत्तात्मकप्राणनारूप **ग्राहकभूमिकां** श्रित्वा ग्राह्यरूपजगदा-भासात्मना स्फुरतीति ॥[२]

(२) 'विश्वमिदम् अहम्' इति चिद्घनात्मरूपतां सर्वत्र अनुसंधतः ॥[३]

सारांश यह है कि जब योगी अपने अहं में सारे विश्व को समाहित कर लेता है तब उसके उस अनन्त अहंकार को **'विश्वाहन्ता'** कहते हैं।

(३) 'वैश्वात्म्यप्रथावाञ्छया यदा शक्ति संधत्ते तदा—

'अहमेव सर्वम्' इति शुद्धविद्याया उदयात् विश्वात्मक स्वशक्तिचक्रेशत्वरूपं महेश्वर्यस्य सिद्ध्यति ॥'[४]

'अहमेव सर्वम्' की अनुभूति ही **'विश्वाहन्ता'** है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि-

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— (१) **अहन्ता** समस्त मन्त्रों के उदय और विश्रान्ति का स्थान है। पराशक्ति के तादात्म्य-विमर्श द्वारा मन्त्रवीर्य का अनुभव होता है। महामन्त्रवीर्यरूप 'पूर्णाहन्ता' क्या है ? देह, प्राण आदि के निमज्जन

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (३/३३)।
२. शिवसूत्रविमर्शिनी (३/४३)।
३. शिवसूत्रविमर्शिनी (३/२४)।
४. शिवमूत्रविमर्शिनी (१/२१)।

(विलय) से **'पराहन्ता पद'** की प्राप्ति के द्वारा, देहादिकों एवं नीलादिकों का भी उस रस में डूबने से तन्मयीकरण **'पूर्णाहन्ता'** है ।। ''महामन्त्रवीर्यात्मिकायां पूर्णाहन्तायाम् आवेशो देहप्राणादिनिमज्जनात् तत्पदावाप्त्यवष्टम्भेन देहादीनां नीलादीनानपि तद्रसाप्लावनेन तन्मयीकरणम् ।।''[१]

यही **'पूर्णाहन्ता'' की अवस्था 'पर भैरवात्मता'** है—

''तत्र ईश्वरता साम्राज्यं परभैरववात्मता तत्प्राप्तिः भवति परमयोगिनः ।।''[२]

यह 'अहन्ता' तीन रूपों में व्यक्त होती है— (१) 'अहमिदम्' (२) 'इदमहम्' (३) 'अहञ्च इदञ्च पृथक् पृथक्।' इनमें सदाशिव एवं ईश्वर की अहन्ता— 'अहमिदम्' एवं 'इदमहम्' ही आदर्श विश्वाहन्ता हैं।

बन्धन से मुक्ति के उपाय

पारमार्थिक या तात्त्विक दृष्टि से चाहे 'बन्धन' हो और चाहे न हो किन्तु विषयाकुल, मायाग्रस्त एवं शिवभाव (पति-भूमिका) से दूर स्थित **'पशुओं'** को 'बन्धन' की अनुभूति तो होती ही है अतः उसे दूर करने के उपाय भी होने चाहिये। इसी व्यावहारिक धरातल पर शैव-शाक्त तान्त्रिकों ने 'पशुभूमिका' से 'पतिभूमिका' में आरूढ़ होने के लिए चार उपायों का उपदेश दिया है।

उपायचतुष्टय

(१) **'अनुपाय'**	(२) **'शाम्भवोपाय'**	(३) **'शाक्तोपाय'**	(४) **'आणवोपाय'**
(१) 'उपायो नापरः कश्चित्; स्वसत्तावगमादृते। तामेवानुसरन योगी स्वस्थो यः स सुखी भवेत्। (२) 'उपायैर्न शिवो भाति भान्ति ते तत्त्रसादतः। स एवाहं स्वप्रकाशो भासे विश्वस्वरूपकः ।। —तन्त्रालोक (विवेक)	''सर्वविकल्पविक्षोभव्युदासेन स्वस्वभावमात्रोपपादन प्रवृत्ततया शाम्भव इत्यवगन्तव्यः ।।''[२]	उच्चार रहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्। यं समावेश माप्नोति शाक्तः सोऽत्राभिधीयते।। — तंत्रालोक (१/१६९)	उच्चार करण ध्यानवर्ण स्थान प्रकल्पनैः। यो भवेत्स समावेशः सम्यगाण व उच्यते।। — तंत्रालोक (१/१७०)

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र २०)। २. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सू. २०)।

३. अकिंचिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः।
उत्पद्यते य आवेशः शांभवोऽसावुदीरितः।। (तंत्रालोक १/१६८)

शक्ति और 'उपाय'– परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति परिबद्धजीवों (पशुओं) को अपनी शक्तियों से बाँधती है और अपनी शक्ति से मुक्त भी करती है—

(१) '**स्वरूपावरणे** चास्य शक्तयः सततोत्थिताः'।[१]

(२) 'सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य **पशुवर्तिनी**।
'**बन्धयित्री**' स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका ॥[२]

शक्ति द्वारा मुक्ति करने के साधन क्या हैं?

'सा शक्तिराणवैः शाक्तैशाम्भवैश्च त्रिधोदितैः।
उपायैः शिवमाभास्य स्वसृष्टैर्मोचयत्यमून् ॥'[३]

उपाय और उनके भेदोपभेद

(१)	(२)	(३)
'अभेदोपाय'	'भेदाभेदोपाय'	'भेदोपाय'
(१) 'अनुपाय'	'शाक्तोपाय'	'आणवोपाय'
(२) 'शाम्भवोपाय'		

(१) 'उच्चार' (२) 'करण' (३) 'ध्यान' (४) 'वर्ण' (५) 'स्थानकल्पना' का अभ्यास ही **'आणवोपाय'** है। इस अभ्यास से प्राप्त एकाग्रता या समापत्ति ही **'आणव समावेश'** की दशा है।

'मणिद्वीप' और उसकी महत्ता

भगवती के आराधकों की **'सासीप्य मुक्ति'** या **'सालोक्य मुक्ति'** की जो लोकात्मक स्थिति बताई गई है उस परमलोक का नाम ही **'मणिद्वीप'** है। **'मणिद्वीप'** भगवती का दिव्य धाम है। इसे प्राप्त करना भी मुक्ति प्राप्त करना है।

आचार्य हयग्रीव की दृष्टि– आचार्य हयग्रीव कहते है कि— "मणिद्वीप में निवास करना ही 'मुक्ति' है ॥"[४]

---

१. महेश्वरानन्द . परिमल (गाथा ५६)।
२. स्पन्दकारिका (४७-४८)।
३. परिमल में उद्धृत।
४. शाक्त दर्शनम् (१०/३/१८)।

"मणिद्वीप आनन्दमय है।"[१] 'मणिद्वीप सर्वलोक' है : 'सर्व लोको मणिद्वीपम् ॥"[२]

प्रश्न यह उठता है कि यदि मणिद्वीप **'सर्वलोक'** है तो **'सर्वलोक'** कौन है? **अचार्य हयग्रीव** कहते हैं कि— "जिस लोक में संस्काररूप से प्रकृत्यात्मक स्थिति में सृष्टि के सारे लोक तन्मय होकर अवस्थित हैं उस लोक को ही देवी का "**सर्वलोक**" कहा जाता है—

"सर्वेलोका: यस्यां संस्काररूपेण प्रकत्यात्मकास्तन्मय: **'सर्वलोक:'**॥"[३]
इसी **'सर्वलोक'** में भगवती का निवास है— "तत्रेश्वरी परा शक्ति: ॥"[४]

काशीनाथ वासुदेव अभ्यङ्कर ने लिखा है—

"सर्वलोकनाम्ना यो **ब्रह्मलोको** वर्ण्यते तदेव **मणिद्वीपम्**। गुणत्रययुक्त प्रकृतिस्वरूपे अस्मिन्सर्वे लोका: संस्काररूपेण तिष्ठन्ति। ततो दिनाधिदैवतेन सूर्येण। तत: शुक्लपक्षाभिमानिन्या देवतया। तदनन्तरमुत्तरायणेन ततो वत्सरेण स्वर्गलोकं नीयते। ततो ब्रह्मलोकं स गच्छति तत: सर्वलोकनामानं **'मणिद्वीपम्'** ॥"

यहाँ अभ्यङ्कर जी ने मणिद्वीप को **'ब्रह्मलोक'** कहा है।

क्या 'मणिद्वीप' ब्रह्मलोक है?

'मणिद्वीप' ब्रह्मलोक नहीं है क्योंकि 'ब्रह्मलोक' मणिद्वीप से नीचे है। 'देवीमहाभागत पुराण' (स्कन्ध १२) में 'मणिद्वीप' को 'ब्रह्मलोक' से ऊपर स्थित कहा गया है—

"ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति य: श्रुत:।
मणिद्वीप: स एवास्ति यत्र देवी विराजते ॥"

बादरि का मत– 'न शक्ति लोकवासो मुक्ति: ॥"[५]

प्रजापति का मत– 'ब्रह्मलोकवासैव मुक्तिरिति प्रजापति:।"[६]

हयग्रीव का कथन– **'पतनं ब्रह्मलोकात्**। न क्वचिन्मणिद्वीपात् ॥१८॥

---

१. 'तदानन्दं मणिद्वीप एवं॥' (१०/३/१५)।
२. शा. द. (८/४/१)।
३. शा. द., (८/४/२)।
४. शा. द., (८/४/३)।
५. शा. द., (९/२/१)।
६. शा. द. (९/२/२)।

निष्कर्ष : (आचार्य हयग्रीव का सिद्धान्त)–

आचार्य हयग्रीव कहते हैं—

'मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः ॥'[१]

'मणिद्वीप में **निवास ही मुक्ति** है।'

बादरि ने अवश्य कहा था कि— 'न मुक्तिर्मणिद्वीपवासः।' भुवनेश्वरी ःसाभासा माया ॥२॥....न तेन मुक्तिरिति बादरिः ॥''[२]

बादरि के मत का खण्डन– आचार्य हयग्रीव अनेक तर्क उत्थापित करते हुए बादरि के मत का खण्डन करते हुए निष्कर्ष रूप में पुनः कहते हैं कि—

''सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः ॥''[३]

'चिन्तामणिगृह' और 'मणिद्वीप'

आचार्य हयग्रीव का मत यह है कि—

(१) शक्त्यधिष्ठिता प्रकृतिः सर्वलोकः ॥५॥ मणिद्वीपमिति च ॥६॥ स्थूल-प्रपञ्चसंस्कारात्मिका **लोहमयी**। (१०/१/७) विकारसंस्कारात्मिका चिन्ता रत्नमयी। (१०/१/९) चिन्तामणिगृहान्तःस्था तेन शक्तिः ॥ (१०/१/१०)

निष्कर्ष यह है कि शाक्तज्ञानियों के लिए चिन्तामणि ही अपना परम गेह है— 'शाक्तज्ञानिन्श्चिन्तामणि गेहम् ॥'[४] निष्कर्ष यह कि—'चिन्तामणिगेहः शक्तेः ॥'

गर्गाचार्य का मत

गर्गाचार्य कहते हैं कि चिन्तामणिगृह में स्थिति मुक्ति नहीं है। चिन्तामणि तो सत्वमाया है अतः यह गणेश का कार्यस्थान है। वहीं गणेश साक्षी रूप से निवास करते हैं। अद्वैतोपासकों का मुक्तिलोक तो मात्र **'ब्रह्मलोक'** है। उनके सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) अद्वैतभावनारूपनिर्विकल्पसमाधिपरः प्रपञ्चत्रय वासनारहितः स्वानन्द-भवनम् ॥१४॥

(२) अद्वैतावस्थानरूपनिर्विकल्पसम्पन्नो ब्रह्मभूतः (१०/३/१५) आनन्दा-धिक्यं निजलोके ॥१६॥

---

१. शा. द. (९/२/१९)।
२. शा. द., (९/३/११)।
३. शा. द., (९/४/१४)।
४. शा. द., (९/१/११)।

गर्गाचार्य के मत का सारांश

"प्रपञ्चत्रयवासनायुक्तमणिद्वीपवासो न मुक्तिरिति गर्ग: ।।"[१]

गाणपों की दृष्टि

गणपतिसम्प्रदाय के मतानुसार चिन्तामणिगृह ही चिन्तामणिद्वीप है— "चिन्तामणिगृह एव चिन्तामणिद्वीपमिति गाणपा: ।।"[२]

वह आनन्दस्वरूप है— "तदानन्दं मणिद्वीप एव ।।"[३]

अत: आचार्य हयग्रीव पुन: कहते हैं कि—

"अतो मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीव: ।।"[४]

"सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीव: ।।" (९/४/१४)

शक्त्यधिष्ठिता प्रकृति: **सर्वलोक:** । मणिद्वीपमिति च । (१०/२/५-६)

'सर्वलोक' ही 'मणिद्वीप' है और वही भगवती का धाम है और उस धाम की प्राप्ति ही 'मुक्ति' है ।

आचार्य अगस्त्य की दृष्टि-

आचार्य अगस्त्य मुक्ति के विषय में निम्न दृष्टि रखते हैं—

(१) सर्व-दु:खोपरम: श्रेयान् **मोक्ष:** ।। (२/५६)

(२) प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्यतामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोवशिष्यते ।।५३।। मुक्त: शुद्ध: पूर्ण: प्रत्यगात्मैव भवति ।।[५] (३/५४)

इस प्रकार **अगस्त्य के मत से** प्रकृति से मुक्त होकर एकाकी या **एकमात्रैक स्वरूप में स्थित** होकर प्रत्यगात्मास्वरूप में अवस्थान प्राप्त कर लेना ही मुक्ति है ।

आचार्य शङ्कर (समयमत के आचार्य) की दृष्टि

आचार्य शङ्कर 'सुधासिन्धु' 'सुरविटपिवाटी' 'मणिद्वीप' 'शिवाकारमञ्च' 'परमशिवपर्यङ्क' आदि सभी का एक ही श्लोक में इस प्रकार वर्णन करते हैं—

---

१. शा. द., (१०/३/१७) ।
२. शा. द., (१०/४/१) ।
३. शा. द., (१०/३/१५) ।
४. शा. द., (१०/३/१८) ।
५. शक्तिसूत्रम् (अगस्त्य ऋषि) ।

"सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।"[१]

भैरव यामलकार की दृष्टि-

'भैरव यामल' नामक ग्रन्थ में 'बिन्दुस्थान' 'सुधासिन्धु' 'पञ्चयोनि' 'सुरद्रुम' 'नीपश्रेणी' 'मणिमष्ट्य' 'शिवात्मकमहामञ्च' 'महेशानोपबर्हण' एवं तत्रासीना महात्रिपुरसुन्दरी का सविस्तार वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्टपम्।
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा[२]।।

भगवान सदाशिव ने संक्षेप में इसी तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'सुधाब्दौ नन्दनोद्याने रत्नमण्टपमध्यगाम्।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम्।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमाचरेत्।।"

भगवती का धाम 'सहस्त्रार' भी कहा गया है—

"**सहस्त्रारे** पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे।।"[३]

---

१. सौन्दर्यलहरी (८)।
२. भैरवयामल (वामकेश्वर महामन्त्र)।
३. सौन्दर्य लहरी (९)

भगवती के मणिद्वीप का स्वरूप

'मणिद्वीप' भगवती का धाम है। वह उनका 'आत्मसदन' है।

देवी महाभागवतपुराण के अनुसार 'मणिद्वीप' का स्वरूप-

'देवी महाभागवतपुराण' के दशम अध्याय में व्यास जी ने राजा जनमेजय से 'मणिद्वीप' का सविस्तार वर्णन किया है। उसमें कहा गया है कि—

(१) ब्रह्मलोक से ऊर्ध्वभाग में जो **'सर्वलोक'** के नाम से प्रसिद्ध लोक है वही 'मणिद्वीप' है और वहीं पर भगवती निवास करती हैं—

"ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः।
मणिद्वीपः से एवास्ति यत्र देवी विराजते॥"

(२) चूँकि यह लोक सर्वलोकश्रेष्ठतर है अतः इसका नाम **'सर्वलोक'** कहा गया है।

पूर्वकाल में मूलप्रकृतिस्वरूपिणी पराम्बा **भगवती ने** सर्वप्रथम **अपने निवास हेतु स्वेच्छा से निर्मित किया था।**

(३) यह लोक कैलास, वैकुण्ठ एवं गोलोक से भी श्रेष्ठतर है। तीनों लोकों में सभी से अधिक श्रेष्ठतर होने के कारण ही इस लोक को **'सर्वलोक'** कहा गया है। यह 'सर्वलोक' ही 'मणिद्वीप' कहलाता है। **'मणिद्वीप' तीनों जगत का छत्रस्वरूप** है और सांसारिक सन्तापों का नाशक है। यह समस्त ब्रह्माण्डों का भी छायास्वरूप है।

(४) **'मणिद्वीप'** के चतुर्दिक अनेक योजन विस्तार वाला तथा परिमाण में उतना ही गहरा **'अमृत का सागर'** स्थित है। यह अनन्त पवनाघातों से समुत्थित सहस्रों तरङ्गों से परिपूर्ण, **रत्नमयी बालुका** से युक्त, **'मत्स्य एवं शङ्खों से सम्पन्न'** तरङ्गों के परस्पर संघर्ष से उत्पन्न लहरों के द्वारा वह समुद्र और अधिक मण्डित हो उठता है। यह विशाल 'ध्वजाओं एवं **पोतों से सुशोभित** है। उसके रक्षक भी वहीं निवास करते हैं।

उस **परकोटे** में **चार द्वार** हैं तथा सैकड़ों द्वारपाल नियुक्त हैं। यह **सैकड़ों विमानों की घरघराहट** एवं घण्टा-ध्वनि में इतना निनादित रहता है कि लगता है कि दिशायें बधिर हो गई हैं।

वहाँ स्थान-स्थान पर **मीठे जल से भरे** अनेक **सरोवर** एवं **रत्नमय वृक्षों** से युक्त **उद्यान** शोभित होते हैं। सुधासागर के चतुर्दिक तटों पर रत्नमय वृक्ष स्थित हैं। **उसकी उत्तर दिशा में– लौहधातु की सात योजन वाली एक गगनस्पर्शी**

महान प्राचीर स्थित है।

(१) **लौह धातु की प्राचीर** पर अनेक सशस्त्र रक्षक रहते हैं। **परकोटे** में चार द्वार हैं एवं सैकड़ों द्वारपाल हैं। जगदीश्वरी के दर्शनार्थियों के गण एवं उनके वाहन भी यहीं रहते हैं। यह सैकड़ों विमानों की ध्वनि एवं घण्टा-ध्वनि, घोड़ों की हिनहिनाहट, उनके खुरों के आघातों से उत्पन्न ध्वनि एवं विभिन्न प्रकार के कोलाहल से युक्त है। इस भयंकर कोलाहल के कारण यहाँ कोई किसी की बातें नहीं सुन पाता। यहाँ अनेक **सरोवर** एवं **रत्नमय वृक्षों से** भरे हुए **उद्यान** सुशोभित हो रहे हैं।

(२) **परकोटे के आगे स्थित कांस्य धातु निर्मित परकोटा–** यह परकोटा प्रथम परकोटे से भी अधिक विशाल एवं गगनचुम्बी है। यह अपने तेज में प्रथम परकोटे से **शतगुणित अधिक** आलोकभास्वर है। यह गोपुर एवं द्वार से सुशोभित प्राकारमण्डल अनेक वृक्षों से युक्त है और **वृक्षों की समस्त जातियों से युक्त** है। ये वृक्ष सदैव पुष्पों एवं फलों से लदे रहते हैं। यहाँ कटहल, कर्णिकार, इलायची, लौंग, ताल, तमाल, साल, नागकेसर, दाडिम, नीबू, जूही, बेल, तुलसी, मल्लिका आदि वृक्षों के वन-उपवन तथा सैकड़ों बावलियाँ सुशोभित होती हैं। यहाँ कोयलों की मधुर ध्वनि, भौंरों की गुञ्जार, अनेकविध पक्षियों के कलरव, कबूतर, तोता, मैना एवं हंस आदि पक्षियों से युक्त एवं मयूरों की केका ध्वनि से गुञ्जित दिव्य वन मधु का स्राव करते हैं।

(३) **ताम्र धातु की चहरदीवारी–** कांस्य धातु के प्राकार के आगे **ताम्र धातु की चहरदीवारी स्थित है।** यह चौकोर एवं ऊँचाई में सप्तयोजन परिमाण-वाली हैं। इन दोनों प्राकारों के मध्य एक **'कल्पवाटिका'** है। इनके वृक्षों के पुष्प एवं पत्ते स्वर्णाभ हैं। इनके बीज-फल रत्न के समान हैं। **यहाँ १० योजन तक सुगन्ध प्रसृत रहती है।** वसन्त ऋतु इसकी सुरक्षा करता है। वसन्त अपनी दो पत्नियों— **मधुश्री एवं माधवश्री** के साथ पुष्पों के सिंहासन पर विराजमान रहता है। यह स्थान कोयलों एवं गन्धर्वों से युक्त है।

(४) **सीसा से निर्मित प्राकार–** ताम्र धातु के परकोटे के आगे एक **सीसे का परकोटा** स्थित है। यह ७ योजन ऊँचाई वाला है। इन दोनों परकोटों के मध्य **'सन्तान'** नामक वाटिका है। उस वाटिका के वृक्षों के फल-फूलों की सुगन्ध चारों ओर १० योजन तक फैली हुई है। अमृतरस से पूर्ण एवं स्वर्णाभ पुष्पों-फलों से युक्त **'सन्तान'** नामक वाटिका का नायक **'ग्रीष्म ऋतु'** है, जो कि **शुकश्री एवं शुचिश्री** नामक अपनी दो भार्याओं के साथ रहता है। यह अनेक सिद्धों एवं

देवताओं से परिपूर्ण है।

(५) **पीतल धातु से निर्मित प्राकार–** सीसे के प्राकार से भी अधिक लम्बा एक पीतल-निर्मित सातयोजन परिमाणवाला सुन्दर परकोटा है। इन दोनों परकोटों के मध्य **हरिचन्दन वृक्षों की वाटिका** है। यहाँ का स्वामी मेघासीन वर्षाऋतु है जो कि नभ:श्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमालिनी, अम्बा, दुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्ती, चिपुणिका एवं वारिधारा नामक अपनी १२ पत्नियों (शक्तियों) के साथ रहता है। वह विद्युन्नेत्र एवं मेघरूप कवच धारण करने वाला, पिंगलवर्णी, विद्युत्गर्जनरूप मुख वाला एवं इन्द्रधनुषरूप धनुष धारण करने वाला **वर्षाऋतु** चारों ओर हजारों, जलधारायें छोड़ता रहता है। यहां की भूमि वृक्षों, तृणों, नदियों, नदों एवं सरोवरों, सिद्धपुरुषों, देवताओं, वापियों, कूपों एवं सरोवरों से युक्त है।

(६) **पञ्चलौह-निर्मित परकोटा–** पीतल के प्राकार के आगे ७ योजन की लम्बाईवाला एक पञ्चलौह निर्मित परकोटा है। इसके मध्य नाना पुष्प-फल-पल्लवों से सुशोभित **'मन्दार वाटिका'** है। यहाँ **शरदर्तु इक्षुलक्ष्मी** एवं **ऊर्जलक्ष्मी** नामक अपनी भार्याओं, सपत्नीक सिद्धों एवं अनुचरों के साथ निवास करता है।

(७) **रजतधातु-निर्मित परकोटा–** पञ्चलौहमय परकोटा के आगे विशाल शिखरोंवाला ७ योजन लम्बा एवं दीप्तियुक्त तथा रजत से निर्मित परकोटा है। उसके मध्य पुष्पाच्छादित **'पारिजातवन'** स्थित है। इसकी सुगन्ध चतुर्दिक १० योजन तक है। यहाँ का स्वामी **हेमन्त ऋतु** है जो कि अपनी पत्नी **सहश्री एवं सहस्य श्री,** एवं भगवती का व्रत करने वाले सिद्धों के साथ रहता है।

(८) **स्वर्णनिर्मित परकोटा–** रजतनिर्मित परकोटा के आगे तप्त स्वर्ण-निर्मित ७ योजन लम्बा एक अन्य परकोटा है। इसे **'सौवर्णसाल'** कहते हैं। इसके मध्य में पुष्प-पल्लव सुशोभिता **'कदम्बवाटिका'** है जहाँ कदम्ब के आसव की हजारों धारायें नित्य बहती रहती हैं और इनका सेवन करने पर **आत्मानन्दानुभूति** हुआ करती है। यहाँ का स्वामी **शिशिर ऋतु** है जो कि अपनी पत्नियों (तप:श्री एवं तपस्यश्री), गणों एवं सिद्धपुरुषों के साथ निवास करता है तथा महान सिद्ध पुरुष भोगानन्द से विह्वल होकर अपनी भार्याओं तथा परिवार के साथ समूह में निवास करते हैं।

(९) **पुष्परागमणिनिर्मित परकोटा–** स्वर्णनिर्मित परकोटा के आगे कुसुमाभ अरुणवर्ण वाला एवं ७ योजन लम्बा **पुष्परागनिर्मित परकोटा** है। वहाँ की भूमि, वन, उपवन, वृक्ष, परकोटा, पक्षी, मण्डप, स्तम्भ, सरोवर, जल,

कमल, सरोवर एवं वहाँ की समस्त वस्तुएँ पुष्पराग मणि से ही निर्मित हैं।

इनमें से प्रत्येक अगला प्राकार अपने पूर्ववर्ती प्राकार से एक लाख गुना अधिक तेजसम्पन्न है। यहाँ प्रत्येक ब्रह्माण्ड का दिक्पाल अपना एक समूह बनाकर सआयुध निवास करता है।

अमरावती पुरी– मणिद्वीप की पूर्वदिशा में उच्च शिखरापत्र **अमरावती** है। यहाँ अनेकविध उपवन हैं। यहाँ इन्द्र रहते हैं। यह स्वर्ग से भी अधिक शोभायमान है। अनेक इन्द्रों के हजार गुने से भी अधिक इसकी शोभा है। यहाँ इन्द्रदेव ऐरावत पर आरूढ़ होकर देवसेना के साथ निवास करते हैं। देवाङ्गनाएँ वं शची भी यहीं रहती हैं।

'वह्नीपुरी'– मणिद्वीप के अग्निकोण में अग्नि के सदृश प्रज्वलित 'वह्निपुरी' है। यहाँ देवगणों से आच्छादित अग्निदेव 'स्वाहा' 'स्वधा' नामक अपनी शक्तियों, भूषणों एवं वाहनों के साथ रहते हैं।

इसी प्रकार 'मणिद्वीप' के दक्षिणभाग में **'यमपुरी'** नैर्ऋत्यकोण में **'राक्षसों की पुरी'** पश्चिम में **'वरुणलोक'** मणिद्वीप के वायव्यकोण में **'वायुलोक'** (मणिद्वीप के) उत्तर में **'यक्षलोक'** एवं ईशानकोण में **'रुद्रलोक'** स्थित है। ईशान दिशा के अधिपति ईशानदेव हैं।[१]

(१०) **पद्मरागमणि-निर्मित प्राकार–**इसके पूर्व तो पुष्पराग निर्मित प्राकार स्थित है किन्तु इसके आगे कुंकुम के रंग का पद्मरागमणि का प्राकार है जिसकी लम्बाई १० योजन है। यह गोपुर एवं द्वारों से युक्त है और **पद्मरागमणि से निर्मित** स्तम्भों वाले **सैकड़ों मण्डप स्थित** हैं। उसके मध्य भूमि पर भूषणभूषिता ६४ कलाएँ स्थित हैं। उन कलाओं का एक-एक पृथक लोक है। वे अपने अपने लोक की अधीश्वरियाँ हैं। वे अपने लोक के निवासियों से घिरी रहती हैं।

६४ कलाओं में— पिङ्गलाक्षी, विशालाक्षी, विश्वरूपा, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, शुचिव्रता, वागीशी एवं उदारा आदि हैं।

ये सभी **कलायें** रक्तनयना, प्रज्वलितरसना एवं प्रचण्ड अग्नि उगलने वाली हैं और सदैव कहती रहती हैं कि— "हम अभी सम्पूर्ण जल पी डालेंगी, अग्नि को नष्ट कर डालेंगी और हम वायु को रोक देंगी और समस्त संसार का भक्षण कर डालेंगी।'

वे सभी कलाएँ धनुषबाण ग्रहण करके सदैव ययुत्सु रहती हैं और दाँतों के

---

१. देवीमहाभागवतपुराण (स्कन्द १२/अध्याय-११)।

कटकटाने से दिशाओं को बधिर बनाए रखती हैं। इनमें से प्रत्येक कला के पास १००-१०० अक्षौहिणी सेना है। इनमें से एक-एक शक्ति में लाखों ब्रह्माण्डों को नष्ट कर डालने की शक्ति है।

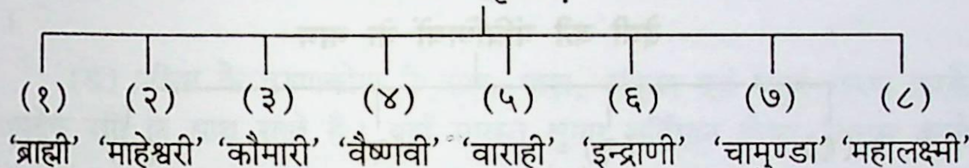
(११) **गोमेदमणि-निर्मित प्राकार–** पद्मरागमय प्राकार के आगे गोमेद-मणि-निर्मित १० योजन लम्बा एक परकोटा है। यह प्रकाशवान जपाकुसुमाभ है। यहाँ की भूमि, पक्षी, भवन, स्तम्भ, वृक्ष, वापी एवं सरोवर आदि सभी गोमेद निर्मित हैं। यहाँ प्राकार के मध्य गोमेदमणिभूषित एवं शस्त्रास्त्रधारिणी ३२ महादेवियाँ (शक्तियाँ) निवास करती हैं। इस प्राकार में पिशाचवत, भयंकर मुखवाली प्रत्येक लोक की निवासिनी शक्तियाँ उसे घेरकर स्थित हैं। ये स्वर्ग-लोकपूज्या-शक्तियाँ हाथों में चक्र लेकर तथा क्रोध से रक्त वर्णा वाली देवियाँ— 'काटो, पकाओ, दौड़ो और भस्म कर डालो' शब्दावली अहर्निश कहती रहती हैं। प्रत्येक शक्ति के पास १०-१० अक्षौहिणी सेना है। उस सेना की एक ही शक्ति एक लाख ब्रह्माण्डों का संहार कर सकती है। वहाँ भगवती की युद्ध सामग्री विद्यमान रहती है। **भगवती की शक्तियों का नाम** इस प्रकार है— 'विद्या', 'ह्री', 'पुष्टि', 'प्रज्ञा', 'कुहू', 'रुद्रा', 'वीर्या', 'प्रभा', 'नन्दा', 'पोषिणी', 'शुभ्रा', 'महारात्रि', 'कालरात्रि', 'भद्रकाली', 'दण्डिनी', 'रुद्राणी', 'नारायणी' एवं 'अम्बिका' आदि॥ यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का तत्क्षण विनाश कर डालें।

(१२) **वज्रमणि (हीरा) से निर्मित प्राकार–** गोमेदनिर्मित प्राकार से आगे हीरे से निर्मित एवं १० योजन ऊँचाईवाला एक अन्य प्राकार भी है। उसमें गोपुर एवं द्वार बने हैं। इस प्राकार का कपाट साँकल से सदैव बन्द रहता है। इस प्राकार की मध्यभाग की भूमि हीरायुक्त है। इसके वृक्ष, भवन, गलियाँ, चौराहे, महामार्ग, आँगन, थाले, सारंग, बावलियाँ, वाजी, सरोवर, कूप आदि सभी हीरकमय हैं। इसमें भुवनेश्वरी की परिचारिकाएँ रहती हैं। एक एक परिचारिका लाखों दासियों से सेवित हैं। युवतियाँ भगवती की लेशमात्र कृपा से तीनों लोकों को तुच्छ समझती हैं। ये देवी की दूतिकाएँ कही गई हैं। इनमें **प्रथम 'अनङ्गरूपा', दूसरी 'अनङ्गमदना'** एवं **तीसरी 'मदनातुरा'** कही गई हैं। ये हाथ में बेंत लेकर सभी ओर भ्रमण करती हैं। प्राकार से बाहर आठों दिशाओं में इन दूतियों के निवासार्थ अनेकविध वाहनों एवं शस्त्रों से सम्पन्न भवन बने हुए हैं। ये परिचारिकायें विद्युल्लता के समान सुन्दर हैं।

(१३) **वैदूर्यमणि से निर्मित प्राकार–** वज्रमणि से निर्मित प्राकारों से आगे वैदूर्यमणि-निर्मित प्राकार हैं। यहाँ भी अनेक गोपुर एवं द्वार हैं। यह प्राकार १०

योजन ऊँचा है। यहाँ की **सम्पूर्ण भूमि वैदूर्यमणियुक्त** है। वहाँ की गलियाँ, भवन, चौराहे और महामार्ग सभी वैदूर्यमणि से निर्मित हैं। इस परकोटे की बावलियाँ, कूप, तडाग, नदियों के तट एवं बालू सभी वैदूर्यमणि-निर्मित हैं। इस प्रकार की आठों दिशाओं में सब ओर अपने गणों से सदा घिरी रहने वाली ब्राह्मी आदि देवियों का मण्डल सुशोभित रहता है। ये प्रत्येक ब्रह्माण्ड के **मातृकाओं की समष्टियाँ** कही गई हैं। ये आठ हैं।

अष्ट मातृकाएँ



ये जगत का कल्याण करनेवाली एवं अपनी-अपनी सेनाओं से घिरी हुई ये मातृकायें, ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं के समान आकार वाली हैं।

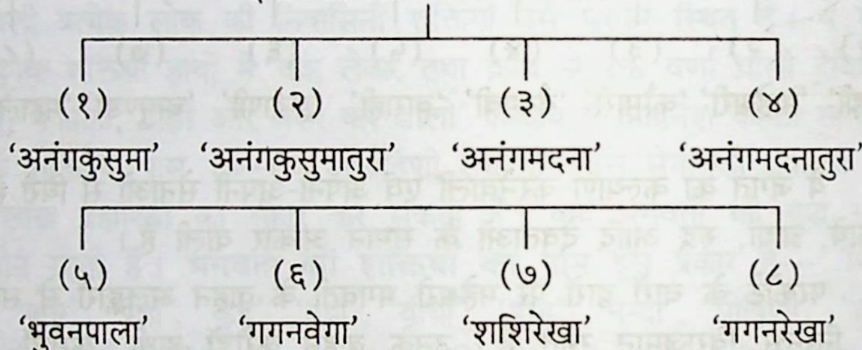
परकोटे के चारों द्वारों पर महेश्वरी भगवती के वाहन अलङ्कारों से सज्जित होकर निरन्तर विराजमान रहते हैं। उनके वाहन करोड़ों हाथी, करोड़ों घोड़े, पालकियाँ, हंस, सिंह, गरुड, मयूर और वृषभ हैं। इन वाहनों से युक्त करोड़ों रथ भी वहाँ विद्यमान हैं। इन पर सेनापति स्थित रहते हैं। यहाँ वाद्ययन्त्रों से युक्त, विशाल ध्वजाओं से सुशोभित करोड़ों विमान प्राकार में स्थित हैं।

(१४) **इन्द्रमणिनिर्मित प्राकार–** वैदूर्यमणिमय प्राकार के भी आगे इन्द्र-नीलमणिनिर्मित १० योजन ऊँचा एक दूसरा प्राकार है। उस प्राकार के मध्य की भूमि, गलियाँ, राजमार्ग, भवन, वापी, कुएँ एवं सरोवर सभी उसी मणि से निर्मित हैं।

यहाँ द्वितीय सुदर्शन चक्र की भाँति सुन्दर एवं प्रकाशमान, अनेक योजन विस्तीर्ण एवं १६ दलों का एक दीप्तिमान पद्म विद्यमान है। उस पर १६ शक्तियों के लिए समस्त सामग्रियों एवं समृद्धियों से सम्पन्न विविध स्थान बने हैं। ये सभी जगदीश्वरी की सशस्त्र एवं युयुत्सु सेनानी हैं। इन्हें **श्री देवी की** सेनानी कहा गया है। ये प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित शक्तियों की नायिकाएँ हैं। ये रथारूढ़ शक्तियाँ ब्रह्माण्ड को क्षुब्ध करने में सक्षम हैं।

(१५) **मोती का प्राकार–** इन्द्रनीलमणि के विशाल प्राकार के आगे १० योजन की ऊँचाई तक समुत्थित एक अति विस्तीर्ण तथा प्रकाशमान मोती का प्राकार है।

इसके मध्य की भूमि मौक्तिक निर्मित है। उसके मध्य में मुक्तानिर्मित एवं केसरयुक्त **अष्टदल वाला विशाल** पद्म है। **उसके आठों दलों पर** जगदम्बाकार वाली एवं सआयुधा देवियाँ सदैव स्थित रहती हैं। ये **भगवती की 'मन्त्रिणी'** कहलाती हैं, जो कि देवी को जगत के समाचार की सूचना दिया करती हैं। ये भगवती के संकेत एवं इच्छा को जाननेवाली अत्यन्त सुन्दर हैं। ये विविध शक्तियों से सम्पन्न हैं और ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी का समाचार जान लेती हैं। उनके नाम क्या हैं ?



विविध शक्तिसम्पन्ना ये देवियाँ अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी के हृदय की गुप्त बातों को जान लेती हैं। ये अनंगकुसुमा आदि देवियाँ हाथों में पाश, अङ्कुश, वर तथा अभयमुद्रायें धारण किये रहती हैं। ये रक्तवर्णा हैं।

(१६) **महामरकतमणि-निर्मित प्राकार–** मुक्तानिर्मित प्राकार के आगे १० योजन लम्बा महामरकतमणिनिर्मित प्राकार है। इसके मध्य की भूमि मरकतमणिनिर्मित है। वहाँ के भवन मरकतमणिनिर्मित हैं। उस प्राकार में **भगवती का एक विशाल एवं ६ कोणोंवाला 'यन्त्र' है।** उसके कोणों पर देवता स्थित हैं।

(क) पूर्वकोण में– कमण्डल, अक्षसूत्र, अभयमुद्रा, दण्ड एवं आयुध धारण करनेवाले **ब्रह्मा जी गायत्री के साथ** विद्यमान हैं। यहाँ सारे वेद, शास्त्र, स्मृतियाँ तथा पुराण मूर्तिमान होकर वहाँ रहते हैं। ब्रह्मा, गायत्री एवं व्याहृतियों के विग्रह भी यहाँ रहते हैं।

(ख) (इस षट्कोणात्मक यन्त्र के) **नैऋत्यकोण** में भगवती सावित्री अपने करों में शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण किए हुए हैं। वहाँ महाविष्णु हैं। मत्स्य, कूर्म एवं महाविष्णु के विग्रह भी सावित्री के विग्रह हैं। ये भी यहाँ रहते हैं।

(ग) **वायुकोण** में परशु, अक्षमाला, अभय एवं वर मुद्रा युक्त महारुद्र यहीं विराजमान हैं। सरस्वती भी उसी रूप में वहाँ रहती हैं। भगवान रुद्र के दक्षिणास्य आदि जो जो रूप हैं और इसी प्रकार भगवती गौरी के जो जो रूप हैं— वे सभी वहाँ निवास करते हैं। ६४ प्रकार के आगम एवं अन्य आगमशास्त्र भी यहाँ मूर्तिमान हैं।

(घ) **अग्निकोण में** कुबेर अपने दोनों हाथों से रत्नयुक्त कुम्भ एवं मणिमय करण्डक (पात्र) धारण करके स्थित हैं। कुबेर महालक्ष्मी के साथ यहाँ विराजमान हैं।

(ङ) पश्चिम के वरुणकोण में बाण, पाश, अंकुश एवं धनुष धारण करके **कामदेव रति** के साथ रहते हैं। यहाँ समस्त शृंगार मूर्तिमान होकर निवास करते हैं।

(च) ईशानकोण में विघ्नेश्वर गणेश जी पाश-अंकुश धारण करके स्थित हैं।

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहने वाले ब्रह्मा आदि की समष्टियाँ ब्रह्मा आदि नाम से कही गई हैं। ये जगदीश्वरी की सेवा में सदा निरत रहती हैं।

(१७) **प्रवालमणि निर्मित प्राकार–** महामरकतमणिनिर्मित प्राकार के आगे कुसुमाभ, रक्त वर्णवाला एवं **१०० योजन लम्बाई वाला** प्रवालमणि प्राकार हैं। उसके मध्य की भूमि में जो भवन स्थित हैं वे भी प्रवालमणि निर्मित हैं। उसके मध्यभाग में पंचभूतों की **५ स्वामिनियाँ निवास** करती हैं। इन शक्तियों का नाम क्या है?[१]

शक्तियों का नाम

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
'हल्लेखा'	'गगना'	'रक्ता'	'करालिका'	'महोच्छुष्मा'

ये पाशाङ्कुशवराभयमुद्रा धारण करने वाली ये शक्तियाँ जगदम्बावत वेषभूषा-वाली हैं।

(१८) **नौ रत्नों से निर्मित प्राकार–** प्रवालमय प्राकार के आगे ९ रत्नों से निर्मित एवं अनेक योजन विस्तृत एक विशाल प्राकार है। यहाँ स्थित भवन,

१. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण संहिता : द्वादश स्कन्ध।

तडाग एवं सरोवर आदि ९ रत्नों से निर्मित हैं। **श्री देवी के समस्त अवतार** एवं **महाविद्या** के सभी रूप यहाँ विद्यमान हैं।

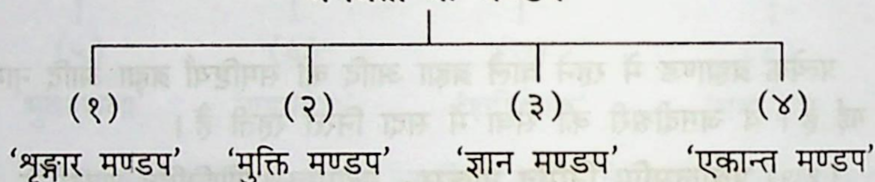
करोड़ों सूर्यों के समान, प्रभाभास्वर ये समस्त देवियाँ अपनी-अपनी आवरणशक्तियों, भूषणों, एवं वाहनों के साथ यहाँ निवास करती हैं। ७ करोड़ महामन्त्रों के देवता भी वहाँ रहते हैं।

९ रत्नमय प्राकार के आगे **'चिन्तामणि'** से निर्मित एक विशाल भवन है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु चिन्तामणि से निर्मित है। उसमें सूर्य, चन्द्रमा एवं विद्युत के समान दीप्ति वाले पत्थरों से निर्मित सहस्त्रों स्तम्भ हैं।[१]

भगवती जगदम्बा के मण्डप एवं मणिद्वीप

त्रिकोण के मध्यभाग में भगवती जगदम्बा का वही **'चिन्तामणि नामक भवन'** विराजमान है। उसमें हजार स्तम्भों वाले चार मण्डप विद्यमान हैं।

भगवती के मण्डप



'श्रृङ्गार मण्डप' 'मुक्ति मण्डप' 'ज्ञान मण्डप' 'एकान्त मण्डप'

ये सुन्दर मण्डप करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान हैं। मण्डपों के चतुर्दिक **केसर, मल्लिका** एवं **कुन्द की वाटिकाएँ** स्थित हैं। इनमें मृगभदों से परिपूर्ण एव मदस्त्रावी असंख्य गन्धमृत स्थित हैं। उसी प्रकार मण्डपों के चारों ओर रत्न से निर्मित सोपानों वाली **'महापद्माटवी'** है। वह अमृत रस से परिपूर्ण, गुंजार करते हुए मत्त भौरों से युक्त, कारण्डवों एवं हंसों से सुशोभित और चारों ओर से सुगन्ध से परिपूर्ण तटवाली हैं। इस प्रकार वह **'मणिद्वीप'** इन वाटिकाओं की सुगन्धों से सदा सुवासित रहता है।

(क) **'श्रृङ्गार मण्डप'** के मध्यभाग में स्थित जगदम्बिका के चतुर्दिक श्रेष्ठ देवगण विद्यमान रहते हैं और वहाँ देवियाँ अनेक स्वरों में सदा गीत गाती रहती हैं।

(ख) **'मुक्ति मण्डप'** के मध्य में विराजमान भगवती जगदम्बा भक्तों को सदा मुक्ति प्रदान करती रहती हैं।

(ग) **'ज्ञान मण्डप'** में भगवती ज्ञानोपदेश करती हैं।

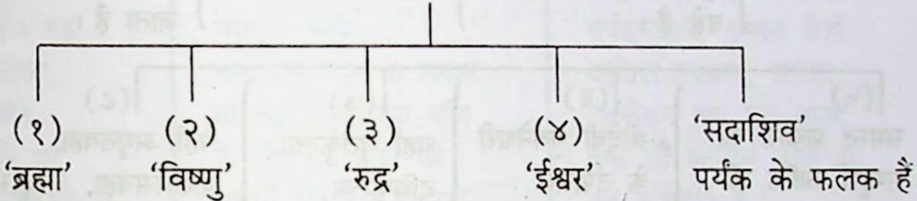
---

१. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण संहिता : एकादश स्कन्ध।

(घ) **'एकान्त मण्डप'** (चतुर्थ मण्डप) में अपनी मन्त्रिणियों के साथ भगवती जगत की रक्षा के विषय में नित्य विचार-विमर्श किया करती हैं।

'चिन्तामणिगृह' में भगवती के शक्तितत्त्वरूपी १० श्रेष्ठ सोपानों से युक्त उनका मञ्च सुशोभित होता है।

भगवती के मञ्च के पाये



(१) 'ब्रह्मा' (२) 'विष्णु' (३) 'रुद्र' (४) 'ईश्वर' 'सदाशिव' पर्यंक के फलक हैं

इसी पर **'भुवनेश्वर महादेव'** विराजमान हैं।

भगवती ने सृष्टि-लीला हेतु अपने स्वरूप को दो रूपों में विभक्त किया। उन्हीं के **अर्धांगस्वरूप भगवान महेश्वर** हैं। ये कोटि कामदेवों के समान सुन्दर, **पञ्चमुखी, त्रिनेत्री** एवं मणिभूषाभूषित हैं। वे सदा **षोडशवर्षीय लगने वाले**, भुजाओं में हरिण, अभयमुद्रा, परशु एवं वरमुद्रा धारण करके स्थित रहते हैं। वे त्रिनेत्री महादेव कोटिसूर्यवत भास्वर, कोटि चन्द्रवत शीतल, शुद्धस्फटिकवत आभा एवं शीतल कान्ति वाले हैं।

इन्हीं भुवनेश्वर महादेव के वामाङ्क में भगवती श्री भुवनेश्वरी देवी स्थित हैं। वे ९ रत्नों से जटित स्वर्ण की **'करधनी'** पहने हुए हैं। इनके **'बाजूबन्द'** तप्त स्वर्ण एवं वैदूर्यमणि से निर्मित हैं।

भगवती 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' से सम्पन्न हैं।

लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा, स्मृति एवं लक्ष्मी तथा जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा एवं मङ्गला नाम्नी ९ पीठ शक्तियाँ पराम्बा की निरन्तर सेवा करती हैं। **'शंख'** एवं **'पद्म'** नामक दोनों निधियाँ भगवती के पार्श्वभाग में स्थित हैं।

(१) नवरत्नवहा (२) काञ्चनस्रवा (३) सप्तधातुवहा नामक सरितायें उन्हीं दोनों निधियों से निःसृत हुई हैं। ये सभी नदियाँ अन्त में सुधा-सिन्धु में जाकर समाहित हो जाती हैं।

परमेश्वर के वामाङ्क में विराजमान भगवती के सान्निध्य से ही महेश्वर को **सर्वेश्वरत्व** प्राप्त है।

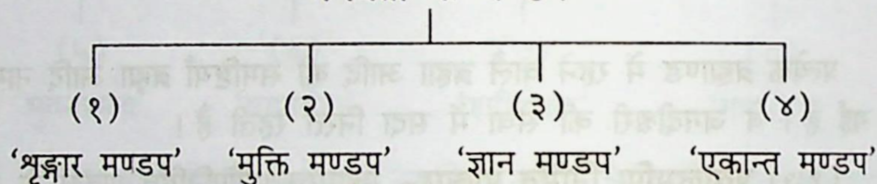
तडाग एवं सरोवर आदि ९ रत्नों से निर्मित हैं। **श्री देवी के समस्त अवतार** एवं **महाविद्या** के सभी रूप यहाँ विद्यमान हैं।

करोड़ों सूर्यों के समान, प्रभाभास्वर ये समस्त देवियाँ अपनी-अपनी आवरणशक्तियों, भूषणों, एवं वाहनों के साथ यहाँ निवास करती हैं। ७ करोड़ महामन्त्रों के देवता भी वहाँ रहते हैं।

९ रत्नमय प्राकार के आगे **'चिन्तामणि'** से निर्मित एक विशाल भवन है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु चिन्तामणि से निर्मित है। उसमें सूर्य, चन्द्रमा एवं विद्युत के समान दीप्ति वाले पत्थरों से निर्मित सहस्रों स्तम्भ हैं।[१]

भगवती जगदम्बा के मण्डप एवं मणिद्वीप

त्रिकोण के मध्यभाग में भगवती जगदम्बा का वही **'चिन्तामणि नामक भवन'** विराजमान है। उसमें हजार स्तम्भों वाले चार मण्डप विद्यमान हैं।



ये सुन्दर मण्डप करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान हैं। मण्डपों के चतुर्दिक **केसर, मल्लिका** एवं **कुन्द की वाटिकाएँ** स्थित हैं। इनमें मृगभदों से परिपूर्ण एव मदस्रावी असंख्य गन्धमृत स्थित हैं। उसी प्रकार मण्डपों के चारों ओर रत्न से निर्मित सोपानों वाली **'महापद्माटवी'** है। वह अमृत रस से परिपूर्ण, गुंजार करते हुए मत्त भौंरों से युक्त, कारण्डवों एवं हंसों से सुशोभित और चारों ओर से सुगन्ध से परिपूर्ण तटवाली हैं। इस प्रकार वह **'मणिद्वीप'** इन वाटिकाओं की सुगन्धों से सदा सुवासित रहता है।

(क) **'शृङ्गार मण्डप'** के मध्यभाग में स्थित जगदम्बिका के चतुर्दिक श्रेष्ठ देवगण विद्यमान रहते हैं और वहाँ देवियाँ अनेक स्वरों में सदा गीत गाती रहती हैं।

(ख) **'मुक्ति मण्डप'** के मध्य में विराजमान भगवती जगदम्बा भक्तों को सदा मुक्ति प्रदान करती रहती हैं।

(ग) **'ज्ञान मण्डप'** में भगवती ज्ञानोपदेश करती हैं।

---

१. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण संहिता : एकादश स्कन्ध।

(घ) **'एकान्त मण्डप'** (चतुर्थ मण्डप) में अपनी मन्त्रिणियों के साथ भगवती जगत की रक्षा के विषय में नित्य विचार-विमर्श किया करती हैं।

'चिन्तामणिगृह' में भगवती के शक्तितत्त्वरूपी १० श्रेष्ठ सोपानों से युक्त उनका मञ्च सुशोभित होता है।

भगवती के मञ्च के पाये

(१)	(२)	(३)	(४)	'सदाशिव'
'ब्रह्मा'	'विष्णु'	'रुद्र'	'ईश्वर'	पर्यंक के फलक हैं

इसी पर **'भुवनेश्वर महादेव'** विराजमान हैं।

भगवती ने सृष्टि-लीला हेतु अपने स्वरूप को दो रूपों में विभक्त किया। उन्हीं के **अर्धांगस्वरूप भगवान महेश्वर** हैं। ये कोटि कामदेवों के समान सुन्दर, **पञ्चमुखी, त्रिनेत्री** एवं मणिभूषाभूषित हैं। वे सदा **षोडशवर्षीय लगने वाले**, भुजाओं में हरिण, अभयमुद्रा, परशु एवं वरमुद्रा धारण करके स्थित रहते हैं। वे त्रिनेत्री महादेव कोटिसूर्यवत भास्वर, कोटि चन्द्रवत शीतल, शुद्धस्फटिकवत आभा एवं शीतल कान्ति वाले हैं।

इन्हीं भुवनेश्वर महादेव के वामाङ्क में भगवती श्री भुवनेश्वरी देवी स्थित हैं। वे ९ रत्नों से जटित स्वर्ण की **'करधनी'** पहने हुए हैं। इनके **'बाजूबन्द'** तप्त स्वर्ण एवं वैदूर्यमणि से निर्मित हैं।

भगवती 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' से सम्पन्न हैं।

लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा, स्मृति एवं लक्ष्मी तथा जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा एवं मङ्गला नाम्नी ९ पीठ शक्तियाँ पराम्बा की निरन्तर सेवा करती हैं। **'शंख'** एवं **'पद्म'** नामक दोनों निधियाँ भगवती के पार्श्वभाग में स्थित हैं।

(१) नवरत्नवहा (२) काञ्चनस्रवा (३) सप्तधातुवहा नामक सरितायें उन्हीं दोनों निधियों से निःसृत हुई हैं। ये सभी नदियाँ अन्त में सुधा-सिन्धु में जाकर समाहित हो जाती हैं।

परमेश्वर के वामाङ्क में विराजमान भगवती के सान्निध्य से ही महेश्वर को **सर्वेश्वरत्व** प्राप्त है।

'चिन्तामणिगृह' और उसका स्वरूप

(१) इसका सहस्त्र योजन विस्तार है।

(२) उत्तर भाग में अनेक विशाल प्राकार हैं। जो पूर्व प्राकार से द्विगुणित बड़े हैं।

(३) मणिद्वीप बिना आधार के अन्तरिक्ष में स्थित है।

(४) सृष्टिकाल में मणिद्वीप का विकास एवं प्रलय काल में सङ्कोच हो जाता है।

(५) समस्त प्राकारों की सम्पूर्ण कान्ति की परम सीमा ही **'चिन्तामणिगृह'** है। यहीं तेजोमयी देवी विाजमान हैं।

(६) श्रीदेवी भुवनेश्वरी के उपासक 'मणिद्वीप' में निवास प्राप्त करते हैं।

(७) यहाँ घृतकुल्या, दधिकुल्या, मधुस्त्रवा नदियाँ सदा प्रवाहित होती हैं।

(८) यहाँ अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा, आम्ररसवाहिनी, इक्षुरस-वाहिनी आदि सहस्त्रों नदियाँ भी यहाँ बहती हैं।

(९) यह धाम यथामनोरथ फल देने वाले वृक्षों, बावलियों एवं कूपों, यथेष्ट फल एवं जल प्रदान करने वाले वृक्ष एवं जलाशय भी इसमें विद्यमान हैं।

(१०) 'मणिद्वीप' में रोग, जरा, वार्धक्य, चिन्ता, मात्सर्य, काम, क्रोध, आदि का अभाव है।

(११) यहाँ के निवासी युवावस्थासम्पन्न, पत्नीयुक्त, सहस्त्रों सूर्य के समान तेजस्वी, एवं निरन्तर भुवनेश्वरी की उपासना करने वाले होते हैं। यहाँ सात कोटि महामन्त्र एवं समस्त महाविद्यायें भी भगवती की उपासना करती हुई स्थित रहती हैं।

(१२) यहाँ के निवासियों में कुछ सालोक्य, कुछ सामीप्य, कुछ सारूप्य एवं कुछ सार्ष्टिमुक्तिप्राप्त लोग होते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के देवताओं का समूह भी वहाँ भगवती की उपासना करते हुए स्थित हैं।

(१३) करोड़ों सूर्य, करोड़ों चन्द्रमा एवं करोड़ों अग्नि मिलकर भी मणिद्वीप के करोड़वे अंश के करोड़वे अंश के समतुल्य नहीं हैं।

(१४) यहाँ कहीं मूँगे के समान तो कहीं मरकत के समान, कहीं विद्युत के समान तो कहीं सूर्य के समान, कहीं मध्याह्नकालिक सूर्य के समान तो कहीं करोड़ों विद्युत की महान धाराओं

(१५) यह पुरी सुरम्य लाखों सरोवरों से घिरी हुई है। मणिद्वीप का मध्यभाग रत्नमय कमलों से सुसज्जित है। इसके चतुर्दिक १०० योजन तक का क्षेत्र उत्तमोत्तम गन्धों से सुवासित है। यहाँ का आकाश

मणिद्वीप का शिखर रत्नमय है। इसके गोपुर भी रत्न निर्मित हैं। यहाँ फल, पत्ते तथा वृक्ष सभी रत्नमय हैं। यह पुरी मयूरनृत्य, स्रोत-ध्वनि, शुक-ध्वनि एवं कोकिल काकली से मण्डित है। महादेवी का यह परमधाम सम्पूर्ण उत्तम लोकों से भी उत्तम है।

के समान, कहीं सिन्दूरवत तो कहीं नीलेन्द्र-मणिवत, कही माणिक्यवत तो कहीं हीरा-मोती के सदृश, कहीं दावानल के समान तो कहीं प्रतप्त स्वर्ण के समान, कहीं चन्द्रकान्तमणि के समान तो कहीं सूर्यकान्त-मणि के समान प्रकाश की धारायें प्रवाहित हो रही हैं।

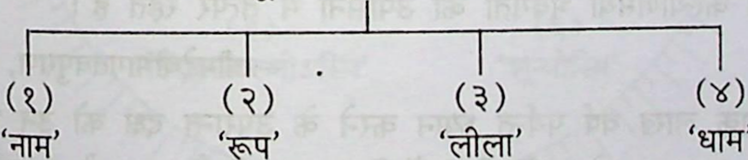
इस मणिद्वीप के स्मरण मात्र से सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। मृत्युकाल में इसका स्मरण हो जाने पर प्राणी उसी पुरी को प्राप्त हो जाता है।

चिन्तामणि के समूहों की ज्योति से आलोकित है और इस द्वीप का मध्यभाग रत्न-मय पद्मों से सुशोभित है। अनन्त एवं समग्र ऐश्वर्यों, सम्पूर्ण शृङ्गारों, समस्त सर्वज्ञाताओं, समस्त तेजों, अखिल पराक्रम, समस्त उत्तमोत्तम गुण एवं समग्र दया की अन्तिम सीमा ही यह मणिद्वीप है।

एक राजा के आनन्द से लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो जो आनन्द हो सकते हैं, वे सब इस मणिद्वीप के आनन्द में अन्तर्निहित हैं।

('देवी भागवत पुराण' के ८ वें से १२वें अध्याय का जो पाठ करता है उसे भूत, पिशाच आदि की बाधायें नहीं होतीं। नये भवन के निर्माण एवं वास्तु यज्ञ के अवसर पर इसका पाठ करने पर कल्याण होता है।)

भगतवती की पूजा एव साधना के चार साधन



—श्रीमद्देवीभागवत महापुराणः स्कन्धः १२

मणिद्वीप में समासीन भगवती का स्वरूप

''ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे **सर्वलोको**ऽस्ति यः श्रुतः।
मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते॥

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमाराङ्गवल्लरी।
सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी॥
निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सित कच्छपी।
कोटिकोटिरवीन्दूनां कान्तिं या बिभ्रती परा॥
नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवाङ्गनादिभिः।
सर्वादिभिर्देवताभिस्तु समन्तात्परिवेष्टिता॥
या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्।
समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवन्ते जगदीश्वरीम्॥
सप्तकोटिमहामन्त्रामूर्तिमन्त उपासते।
महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्।
कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥

अर्थात् **ब्रह्मलोक के ऊर्ध्वभाग** में जो **'सर्वलोक'** नामक लोक सुना गया है वही **'मणिद्वीप'** है। यहाँ भगवती **भुवनेश्वरी देवी** विराजमान रहती हैं। वे भगवती समस्त शृङ्गारवेष से मण्डित लता की भाँति मसृण शरीरांगोंवाली, समस्त सौन्दर्यों की आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणा से ओतप्रोत हैं। वे अपनी वाणी के माधुर्य से विपञ्ची के मधुर स्वरों को भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती कोटि कोटि सूर्यों एवं चन्द्रों की कान्ति धारण करती हैं। वे बहुतसी सखियों, दासियों, देवाङ्गनाओं एवं समस्त देवताओं से चतुर्दिक आच्छादित रहती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहने वाले जो जो देवता हैं उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रह कर जगदीश्वरी की उपासना करते हैं। मूर्तिमान होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्यायें उन साम्यावस्था वाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भवगती की उपासना में तत्पर रहते हैं।

—श्रीमद्देवीभागतवपुराण, स्कन्ध १२

एक लाख वर्ष पर्यन्त ध्यान करने के उपरान्त दक्ष को उन भगवती का साक्षात्कार हुआ था जो **'मणिद्वीप'** में निवास करती हैं। दक्ष ने वर माँगा कि "हे देवि! आप मेरे कुल में जन्म ग्रहण करें।" दक्ष के घर में एक शक्तिसम्पन्न महान तेज प्रकट हुआ जो सूर्यवत था। दक्ष ने उनका नाम **'सती'** रखा क्योंकि वे ब्रह्मस्वरूपिणी थीं। वे भगवती प्रत्यगात्मस्वरूपिणी एवं प्रकृतिस्वरूपा भी हैं।

यज्ञ में भस्मीभूत भगवती सती के शरीर को अपने कन्धे पर रखकर

घूमनेवाले शिवकी दशा से क्षुब्ध विष्णु ने **धनुष उठाकर बाणों** से सती के अङ्गों को काट डाला। वे अङ्ग जिन-जिन स्थानों पर गिरे उन-उन स्थानों पर भगवान शङ्कर अनेक विग्रह धारण करके प्रकट हो गए।

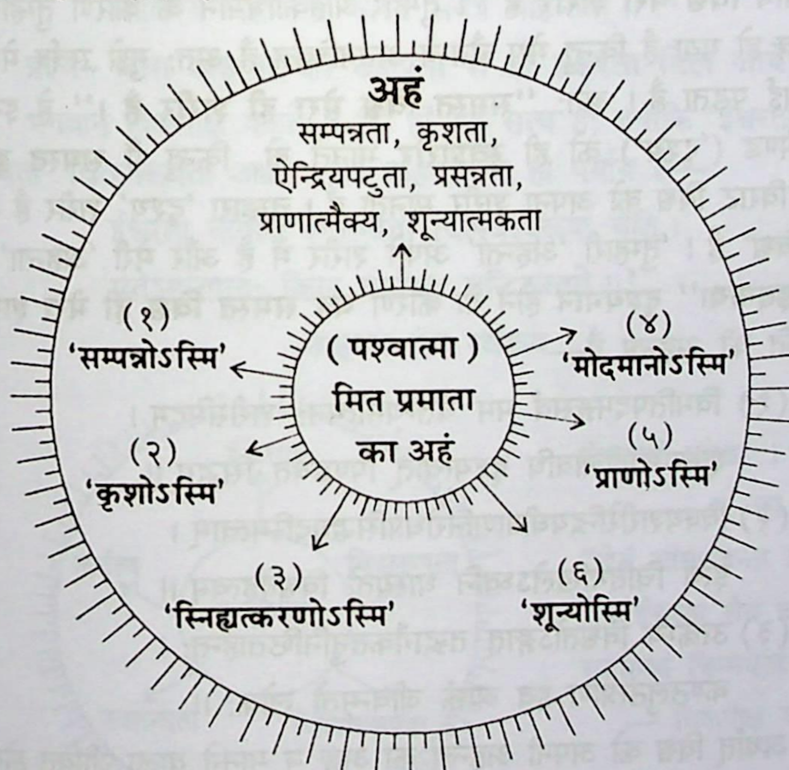
भगवती सती के शरीर के कटे अङ्ग जहाँ गिरे वे स्थान **'सिद्धपीठ'** कहलाये। सिद्धपीठ १०८ हैं। १०८ सिद्धपीठों में भिन्न-भिन्न रूपों में परमेश्वरी देवियाँ भी स्थित हैं और शङ्कर भी॥

—देवीभागवत पुराण

विश्वाहन्ता' और भगवान विरूपाक्ष की दृष्टि

(१) मितप्रमाता का मित 'अहं'

विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की दृष्टि— शरीर और शरीर के विविध धर्मों में ही 'अहन्ता' की अनुभूति करने वाले 'सकल' प्राणियों में (मायाबद्ध जीवों में) षडाकारित अहन्ता होती है—



"सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि स्निह्यत्कररणोऽस्मि मोदमानोऽस्मि। प्राणिभि-शून्योऽस्मीति च षट्सु पदेष्वस्मिता दृष्टा॥"

—विरूपाक्षपञ्चाशिका

(१) अपने घर, धन, अचल सम्पत्ति, आय आदि से सम्बद्ध **'सम्पन्नता'**।

(२) अपने शरीर, बाह्येन्द्रिय आदि से सम्बद्ध **कृशता**, पृथुलता, स्वस्थता आदि।

(३) अपनी प्रिय वस्तुओं, सम्बन्धों, कुटुम्बियों आदि से सम्बद्ध **स्नेह**।

(४) अन्तःकरण में उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता या **मोद**।

(५) प्राण, अपान आदि १० वायुओं के साथ ऐकात्म्य रूप **'प्राणोऽस्मि'- अहन्ता**।

(६) सोते समय सुषुप्तिगत शून्यता में निहित 'अहन्ता'।[१]

परमशिव विरूपाक्ष (शिव) इन्द्र से विश्वाहन्ता का रहस्य समझाते हुए कहते हैं कि— हे इन्द्र ! तुम जो शिव से क्षितिपर्यन्त समस्त विश्व को अपने से पृथक अनुभव करते हो यह तुम्हारा मतिभ्रम है (विमति है)। यह समस्त **''दृश्यमान विश्व मेरा शरीर है''**। तुम्हारे ग्राहकाभिमान के कारण तुम्हारा चैतन्य अवच्छिन्न हो गया है किन्तु मेरा चैतन्य अनवच्छिन्न है अतः मुझे सर्वत्र मेरा चैतन्य ही दिखाई पड़ता है। अतः **''समस्त विश्व मेरा ही शरीर है।''** हे इन्द्र ! तुम अपने पिण्ड ('दृश्य') को ही **स्वशरीर** मानते हो, किन्तु मैं **समस्त इदन्तया-भासित** विराट विश्व को अपना शरीर मानता हूँ। तुम्हारा 'दृश्य' शरीर है और मेरा दृश्य **'विश्व'** है। 'तुम्हारी 'अहन्ता' अपने शरीर में है और मेरी 'अहन्ता' विश्व में है।[२] **''इदन्तया'' दृश्यमान** होने के कारण **यह समस्त विश्व ही मेरा शरीर है**। यही चिति की अहन्ता है—

(१) विमतिपदमङ्गसर्वं मम चैतन्यमात्मनः शरीरमिदम्।
शून्यपदादीलावधि दृश्यत्वात् पिण्डवत् सिद्धम्॥

(२) विषयशरीरेन्द्रियधीप्राणनिरोधप्रसिद्ध्यदस्मित्वाम्।
इत्थं चितिमखिलेऽध्वनि धारयतो विश्वदेहत्वम्॥

(३) उत्क्रम्य विश्वतोऽङ्गात् तद्भागैकतनुनिष्ठिताहन्तः।
कण्ठलुठत्प्राण इव व्यक्तं जीवन्मृतो लोकः॥

अर्थात् विश्व को अपनी अहन्ता का अङ्ग न मानने वाला जीवित होता हुआ भी मृतवत है।

---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका।
२. विरूपाक्षपञ्चाशिका।

विश्व में हृदाभिनिवेश से योगी पर्वतों का भी आस्फालन कर सकता है यथा इन्द्रियाँ वस्तुओं का विश्व में 'अहम्' के अभिनिवेश के शैथिल्य के कारण ही प्राणियों में अनैश्वर्य है। चिद्विलास चितिशक्ति (आत्मतत्त्व) में दृढ़ अहंभाव होने से नित्यसिद्ध विभूतियों का आविर्भाव हो जाता है—

"देहेस्मितया यद्वज्जडयोरास्फालनं मिथो बाह्वोः।
इच्छामात्रेणेत्थं गिर्योरपि तद्वशाज्जगति॥"[१]

सर्वत्र 'अहन्ता' की अनुप्रवेशरूप साधना

भगवान विरूपाक्ष कहते हैं कि हे इन्द्र! बिन्दु, सूक्ष्म, अहं प्रतीति, प्राण, बुद्धि, अहङ्कार, इन्द्रियमण्डल एवं शरीर इन सभी में इनका सञ्चालन करनेवाली उस अहन्ता को सर्वत्र धारण करो—

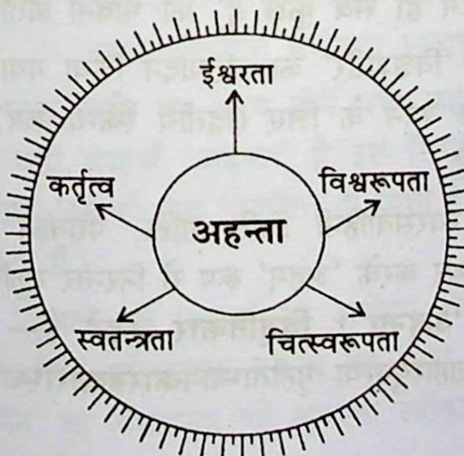
"बिन्दुं प्राणं शक्तिं मन इन्द्रियमण्डलं शरीरं च।
आविश्य चेष्टयन्तीं धारय सर्वत्र चाहन्ताम्॥"[२]

प्रश्न– क्या अहन्ता की कल्पना से ही ईश्वरता मिल जायेगी?

भगवान विरूपाक्ष कहते हैं कि हाँ यह सत्य है; क्योंकि 'ईश्वरता' 'कर्तृत्व' 'स्वतन्त्रता' चित्स्वरूपता आदि सभी अहन्ता के ही पर्याय हैं—

ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वस्वरूपा चेति।
एतेऽहन्तायाः किल पर्यायाः सद्भिरुच्यते॥[३]

अहन्ता का स्वरूप



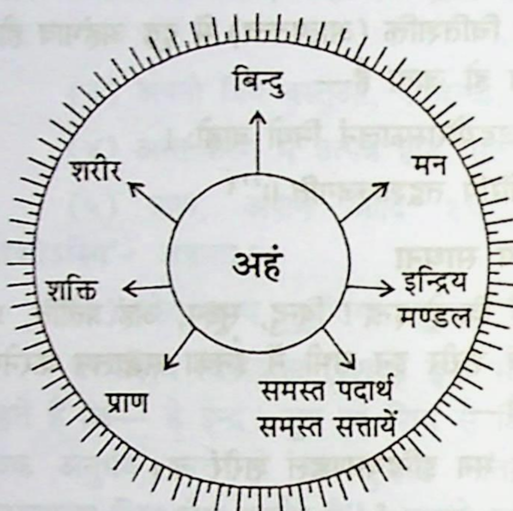
विश्वरूपो महेश्वरः।
— प्र. का. (१/२३)

"येयं त्वयाऽहन्ता प्रत्यभिज्ञाता
सैव ईश्वरता सैव च कर्तृत्वं
स्वातन्त्र्यं चिन्मयत्वं च॥"
— विरूपाक्ष पं. विवृति[४]

---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका (६)।
२. विरूपाक्षपञ्चाशिका (७)।
३. विरूपाक्षपञ्चाशिका (१/८)।
४. विद्याचक्रवर्ती (१/८)।

अहन्तास्पद क्षेत्र



"बिन्दुं प्राणं शक्तिं च इन्दिय-मण्डलं शरीरं च। आविश्य चेष्टयन्तीं धारय सर्वत्र चाहन्ताम्"

—विरूपाक्षपञ्चाशिका-१/७

योगी को अपने व्यक्तित्व को विराट बनाने के लिए अपनी अहन्ता के क्षेत्र को व्यापक बनाना होगा और इसके लिए उसे (१) बिन्दु (२) प्राण (३) शक्ति (४) इन्द्रियमण्डल (५) शरीर एवं (६) समस्त पदार्थ-समूहों में प्रवेश करके उसकी सञ्चालिका चिति शक्ति को धारण करना होगा।[१]

'विश्वकुटुम्बत्व' भी छोटी कल्पना है; क्योंकि यहाँ मैं और विश्व पृथक-पृथक हैं (भले ही वे मेरे कुटुम्ब हों) किन्तु 'विश्वाहन्ता' में **'मेरे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं'– 'मैं ही विश्व हूँ'– 'मैं ही सब कुछ हूँ'** की भावना प्रतिष्ठित है।

'विरूपाक्ष पञ्चाशिका' में 'विश्वशरीर' का प्रतिपादन किया गया है और देहदेहिभाव रूपी भ्रम का अपनोदन करने के लिए (द्वितीय स्कन्ध रूप) 'प्रकाशात्मा' स्कन्ध प्रस्तुत किया गया है।

विमर्शरूपा, स्वयंस्फुरित, स्वरसवाहिनी चिति शक्ति, परावाक् भी है। वर्णमाला के आद्यन्त वर्णों का प्रत्याहार करके 'अहम्' रूप से निरन्तर स्फुरित होती रहती है। इसी का नाम है— **'अहन्ता'**। **विवृतिकार** कहते हैं— 'शुद्ध-वाग्रूपत्वाद् येयं वर्णात्मिका सा प्रत्याहारयुक्त्या गृहीताभ्याम**कारहकाराभ्यामहन्ते**ति निरुच्यते ॥''[२]

---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका।

२. विरूपाक्षपञ्चाशिका (विद्या चक्रवर्ती)।

परावाग्रूपा-प्रत्यवमर्शात्माचिति ही 'अहन्ता' है–

(१) चितिशक्ति ही सर्वानुस्यूत एवं अनन्त अहन्ता है। (२) स्वयं का एवं नीलपीतादिक समस्त पदार्थों का अवभासन करने वाले चेतनाचेतन समग्र विश्व का आत्मा ही **'प्रकाश'** है। वह देशकालापरिच्छिन्न है। आगमशास्त्रों में उसे ही **'अहम्'** कहा गया है। वह समस्त वेद्यों का अवभासक है। वह स्वयंवेदक है। जब उस वेदक **'प्रकाश'** में सिसृक्षा हुई तब पञ्चाशत वर्णमाला का आविर्भाव हुआ। इसे ही **'विमर्श'** कहते हैं। **'प्रकाश'** परमशिव है और उसकी शक्ति है वर्णमाला। इस वर्णमाला (वर्ण-समुदाय) से ही समस्त वाङ्मय एवं समस्त विश्व का प्रादुर्भाव होता है। आगम शास्त्रों में इसका प्रत्याहार करके **'अहम्'** शब्द से इसका व्यपदेश किया गया है। जो **'विमर्श'** है वही **'प्रकाश'** है— ''एको ज्योतिरभूद् द्विधा ॥'' 'इदम्' 'अहम्' के अतिरिक्त (प्रमेय और प्रमाता से व्यतिरिक्त) तो कुछ है ही नहीं किन्तु सत्य तो यह है कि **'इदम्' भी 'अहम्' ही है और इसीकी अनुभूति ही 'विश्वाहन्ता' है।**

(३) सर्वव्याप्त आत्मा में अहन्ता की अनुभूति ही **'पराहन्ता'**, **'पूर्णाहन्ता'** एवं **'विश्वाहन्ता'** है—

''स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ।
अहमिति स एक उक्तोऽहन्ता स्थिररीदृशी तस्या ॥''[१]

सर्वव्याप्त चिति ही 'अहन्ता' है और यह परावाक् रूपा है

'प्रत्यवमर्शात्मासौ **चितिः** स्वरसवाहिनी **परावाग्** या।
आद्यन्तप्रत्याहृत वर्णगणा **सत्यहन्ता** सा ॥'[२]

शुद्ध चिति का उदय होने पर 'अहं' 'इदं' में एकता का उदय होता है और वही यथार्थ 'अहन्ता' है इस स्थिति में ग्राह्यग्राहकभाव, वेद्यवेदकभाव, और 'इदम्'-'अहम्' भाव विगलित हो जाता है और सर्वैकात्म्य या **'पूर्णाहन्ता'** का उदय होता है।

'युष्मद्' एवं 'अहम्' का अपोहन होते ही मध्यम-प्रथम पुरुष में व्यावृत्ति होते ही) जिस उभयात्मक एकत्व का उदय होता है उसे ही आगमशास्त्र में— 'एकोऽस्मि' या विश्वाहन्ता की अवस्था स्वीकार किया गया है।

---

१. विरूपाश पञ्चाशिका (१०/८)।
२. विरूपाक्ष पञ्चाशिका (९/२)।

'अहं' और 'त्वं' में एकत्व ही 'अहन्ता' है

भगवान उक्त दृष्टि के प्रतिपादन में कहते हैं कि—

'युष्मच्छेषापोहवदहमिति यद्भाति भिन्नमिह रूपम्।
तदिदं भागविभेदो न त्वहमेकोऽस्मि यन्नित्यम्।।'

'अहं' एवं 'त्वं' का प्रतियोगिभाव ही बाधा[1] है **'अहन्ता'** के मार्ग की। प्रकाशैकात्म्यभाव या अस्मद्-युष्मद् भाव में एकत्वसञ्चार ही **'पूर्णाहन्ता'** है।

भगवान विरूपाक्ष इन्द्र से कहते हैं—

"विच्छिन्नाविच्छिन्ने इदमित्यहमित्युभे प्रथे तस्य।
आभास्याभासकतां स्फुटयन्त्यौ चेत्यचित्पदयोः।।
एकः स आत्मनासौ नहि क्रमोऽस्तीहदेशकालाभ्याम्।
भेदिनि मिथः स मुक्तश्चेत्ये भेदाश्रयः खलु सः।।"

'प्रकाश' ही धर्मभूत दो प्रथायें हैं— (१) विच्छिन्नरूप परस्पर व्यावृत्तिरूप **'इदन्ता'** (२) अवच्छिन्नरूप अनुवृत्ति रूप **'अहन्ता'**। चेत्यपद में इदन्ता **'आभास्य'** है और चितिपद में अहन्ता **'आभासक'** है।

'यह नील है, यह पीत है'— इस वाक्य में 'इदम्' प्रथा परस्पर **व्यावृत** है किन्तु अहंप्रथा **अनुवृत्तिरूप** है, 'अहं नीलं वेद्मि अहं पीतं वेद्मि' वाक्य में अनुवृत्त है। भेद **'व्यावृत्त'** है और अभेद **'अनुवृत्त'** है। देशकालगत भेद **चेत्य** में है उसके आश्रयभूत **'चित्'** में नहीं है। शुद्धचिति का उदय होते ही 'इदन्ता-अहन्ता' का भेद मिट जाता है। उपाधि-विगलन होते ही **पूर्णाहन्ता** उदित हो जाता है। इस स्थिति में ग्राह्य-ग्राहक, वेद्य-वेदक, ज्ञेय-ज्ञाता दृश्य-द्रष्टा, त्वं-अहम् एवं इदम्-अहम् एकरूप हो जाते हैं। यही है यथार्थ **'अहन्ता'**।[2]

'अहं' कौन है ?

क्या यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि है या कि इनसे परे कोई अभौतिक परा सत्ता है ?

विरूपपञ्चाशिकाकार कहते हैं–

"अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि तेजसां तमसाम्।
अन्तःस्थितो ममान्तस्तेजांसि तमांसि चैकस्य।।"[3]

---

१. विरूपाक्ष पञ्चाशिका (२४/३)।
२. विरूपाक्ष पञ्चाशिका (११/१२/२)।
३. विरूपाक्ष पञ्चाशिका (२२/३)।

अर्थात् अहं अनस्तमितप्रकाशरूप है, नित्योदितज्योतिरूप है, अद्वितीय है, अनन्तरात्मस्वरूप है। इस **'अहं'** के भीतर ही तम और ज्योति दोनों अवस्थित हैं।

यही अहं का तात्विक स्वरूप है।

'सः' 'त्वं' 'अहम्' ये पुरुष (प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुष) भी अहं के ही भेद हैं।

'युष्मच्छेषापोहवदहमिति यद्भाति भिन्नमिह रूपम्।
तदिदं भागविभेदो न त्वहमेकोऽस्मि यन्नित्यम् ॥२४॥''

द्यौ, पृथिवी, देश, दिन एवं रात्रि रूप काल का जो प्रसार है उसका भान एवं तिरोधान भी अहं की शक्तियों का ही कार्य है।

तिरोधान में **'धूमावती'**, पुष्टि में **'ह्लादा'**, भान में **'भास्वती'**, क्षोभ में **'स्पन्दा'** एवं सर्वव्याप्ति में **'विभ्वी'** नामक पाँच शक्तियाँ भी अहं की ही शक्तियाँ हैं। **'धूमावती'** पृथ्वी में, **'ह्लादा'** जल में, **'भास्वती'** अग्नि में, **'स्पन्दा'** वायु में, एवं **'विभ्वी'** आकाश में व्याप्त है किन्तु वस्तुतः सभी में 'अहं' ही व्याप्त है।[1]

चितितत्त्व और अहं से पृथक् अन्य कुछ है ही नहीं

'ज्ञानस्य ज्ञातृतनोश्चितिरेकाऽस्यास्त्यवहं नान्यः ॥'

—वि. पं. (३२/३)

स्वस्वरूप में विश्रान्ति का विमर्शन ही 'अहं' है

'या स्वस्वरूपे विश्रान्तिर्विमर्शः सोऽहमित्ययम् ॥'[2]

'अहन्ता' का स्वरूप कैसा होना चाहिये?

उत्पलदेवाचार्य का कथन है कि— ''यद्विश्वं स्वात्मैक्येनान्तः स्थितं बहिरिदन्तयोद्भासयन् उद्भास्यमानमपि पुनः पूर्णाहन्ताविश्रान्त्याभेदमापादयेत् ॥''[3]

'कस्त्वं' ? तुम कौन हो ? 'अहमस्मि'– मैं हूँ ?

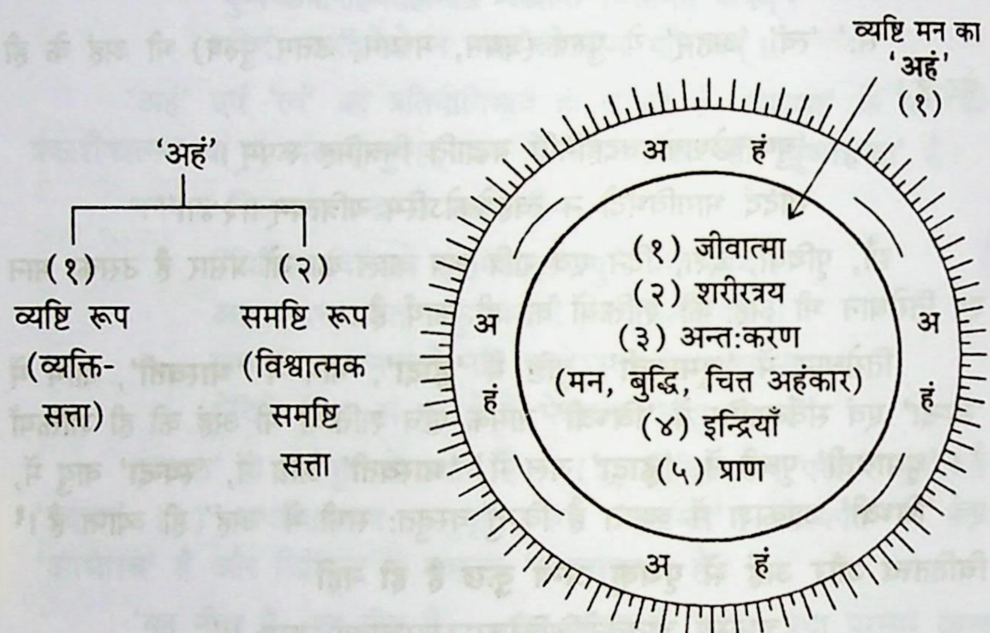
यह ''अहं' कौन है ? भारतीय तन्त्राचार्यों ने कहा कि यह **'अहं'** अत्यन्त विराट और यह समस्त विश्व-सत्ता का मूल है। यह समस्त सत्ताओं का अधिष्ठान है।

'अहं' कौन है ? अहं सर्वस्व है। अहं समग्रता है। अहं **'विश्वाहन्ता'** है।

---

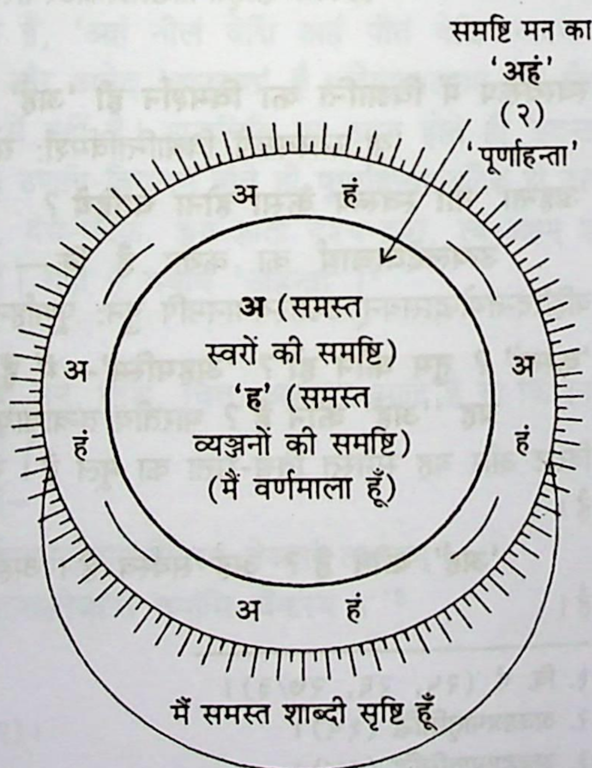
१. वि. पं. (२५, २६, २७/३)।
२. अजडप्रमातृसिद्धि (१५)।
३. अजडप्रमातृसिद्धि (१४)।

(१) 'अहं' अपनी व्यष्टि सत्ता है। 'मैं' अपने शरीरों, अपनी इन्द्रियों, ऐन्द्रिय कार्यों, अन्तःकरणों (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) एवं अन्तःकरणों के धर्मों एवं व्यापारों की समष्टि हैं—



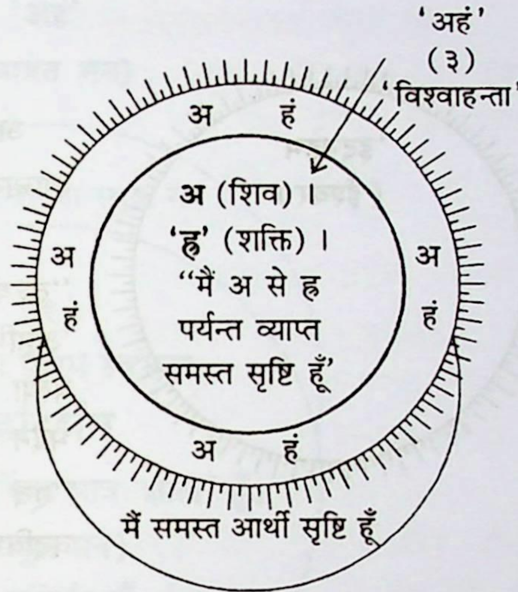
(२)

'अहं समग्र विश्व की समग्रता के साथ ऐकात्म्य-बोध है। **'अहं'** अपनी विराट एवं **समष्टिगत सत्ता,** सार्वत्रिक व्यापकता एवं **'पूर्णाहन्ता'** की अनुभूति है। 'अहं' अपनी **'सर्वमयता'** का अन्तर्बोध है।

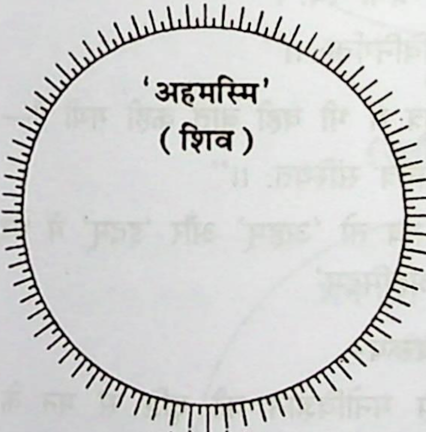


(३)

'अहं' षट्त्रिंशदात्म 'विश्व' के साथ 'सामरस्य' 'तादात्म्य' एवं तद्रूपता की अनुभूति है।



'विश्वाहन्ता' के विभिन्न सोपान



प्रश्न– क्या 'मन' इतना सूक्ष्म है कि वह बिन्दु, अर्धचन्द्र निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति व्यापिनी आदि का अतिक्रमण करके और आगे जा सके ?

उत्तर– अवश्य वह 'समना' तक जा सकता है जो कि **'उन्मना'** के सोपान से नीचे का सोपान है।

'मन'– वाणियों के विभिन्न सोपानों में 'पश्यन्ती वाक्' तक जा सकता है।



'सद्विद्या' और 'विश्वाहन्ता'

३६ तत्त्वों (प्रमेयों में) तत्त्व 'सद्विद्या' भी है जो कि **'शुद्धाध्व'** के अन्तर्गत परिगणित है।



अहमिदम् परामर्श का स्वरूप-
आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

'दृश्यं शरीरम्' (१/१४) यद्यद् "दृश्यं बाह्यमाभ्यन्तरं वा, तत्तत् सर्वम् 'अहमिदम्' इति सदाशिववन्महासमापत्त्या स्वाङ्गकल्पमस्य स्फुरति न भेदेन ॥"[१]

"एवं देहे बाह्ये च सर्वत्रास्य मयूराण्डरसवदविभक्तैव प्रतिपत्तिर्भवति।"[२]

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि– विज्ञानभैरव में कहा गया है कि—

"जलस्येवोर्मयो वह्नेर्ज्वालाभङ्गा: प्रभा रवे: ।
ममैव भैरवस्यैता विश्वभङ्ग्यो विनिर्गता: ॥"

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि– स्पन्दसूत्र में भी वही बात कही गयी है—

"भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थित: ॥"

जब सारे भोग्य भोक्ता के ही रूप हैं तब तो 'अहम्' और 'इदम्' में भेद ही विलुप्त हो गया और फिर शेष रहा— 'अहमिदम्'

मनोविज्ञान शास्त्र की दृष्टि से 'मन' का स्वरूप-

मनोविश्लेषणवादी आधुनिक असमान्य मनोविज्ञान की दृष्टि से मन के अनेक रूप हैं। जब व्यक्ति जागृतावस्था में रहता है तब वह **'ज्ञाता'** (Knower) तो रहता है किन्तु 'ज्ञेय' (Knowable) नहीं बन पाता।

जागृति अवस्था में **'द्रष्टा'** एवं **'दृश्य', 'ज्ञाता'** एवं **'ज्ञेय'** 'पद' और 'अर्थ' ('शब्द' और 'अर्थ') अनुभविता एवं अनुभूयमान में भेद बना रहता है अर्थात् 'रोटी खाने वाला', रोटी खाने वाला (भोक्ता) तो है, किन्तु रोटी (भोग्य) नहीं है। दोनों में भेद है।

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१४)।
२. शिवसूत्रविमर्शिनी (१/१४)।

'अहं'

('जाग्रत मन)

जागृतावस्था का स्थूल मन

(१)

मन का प्रथम स्वरूप

बहिर्मन

मैं 'ज्ञेयु' से भिन्न मात्र 'ज्ञाता' हूँ।

(स्थूल मन)

मैं बहिर्मन हूँ

(द्वैत)

'अहं'

(स्वाप्निक मैं)

मन का द्वितीय स्वरूप

अन्तर्मन

(स्वप्न)

'मैं' ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हूँ।

मैं (पद और अर्थ (Subject and object) का एकीकरण होने से) अद्वैत सत्ता हूँ।

मैं अन्तर्मन हूँ।

(सर्वरूपधारण)

स्वप्नावस्था का सूक्ष्म मन

(अद्वैत)

जब व्यक्ति स्वप्नावस्था में रहता है तब वह **'ज्ञाता'** (Knower) और **'ज्ञेय'** **'द्रष्टा'** (Seen) एवं **'दृष्ट'** (Seen object) या **'दृश्य'** 'अनुभविता' एवं 'अनुभूयमान' 'शब्द' और अर्थ या Subject and Object की पृथक् अनुभूति नहीं करता है। स्वप्न का **'द्रष्टा'** दृश्य के साथ, **'ज्ञाता'** ज्ञेय के साथ **'अनुभविता'** अनुभूयमान के साथ ऐकात्म्य **तादात्म्य, तद्रूपता, एकरूपता, तदाकारता, सामरस्य, अद्वैत** या अभेदात्मकता स्थापित करके सारे अनुभव करता है।

सारांश– (१) **जागृतावस्था का 'मन'** (स्थूल मन) विश्व के साथ भेद, पृथकत्व, अलगाव, 'मैं', 'तू' का भाव बनाकर कार्य करता है। यह द्वैत (Dualism) का प्रस्तोता है।

(२) **स्वप्नावस्था का मन** ('सूक्ष्ममन') द्रष्टा-दृश्य, ज्ञाता-ज्ञेय एवं बोद्धा-बोध्य, संवेदक-संवेद एवं ग्राहक-ग्राह्य (Subject and Object) में ऐकात्म्य की अनुभूति करते हुए कार्य करता है। यह अद्वैत (Absolute Monism) का प्रस्तोता है।

(३) **'मैं'** और मकान, टेबिल, थाली, रोटी, चावल, दाल, सब्जी, पानी, चटनी, रायता, भोक्ता, भोग्य और सूपकार सभी एक ही सत्ता हैं आरै वह सत्ता है **सूक्ष्म मन (स्वप्न का मन)** का स्वप्नगत 'अहं' ।। यहाँ का मन भेदों में अभेद की अनुभूति करता है। अकेला मन सब कुछ बन जाता है।

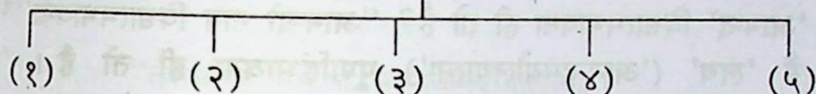
मनोविश्लेषणशास्त्र का मन और तन्त्रशास्त्र का मन

प्रश्न– क्या मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों एवं तान्त्रिकों की ('समना' तक विद्यमान) सूक्ष्ममन की अवधारणा अभिन्न हैं?

उत्तर– कदापि नहीं। तान्त्रिकों की सूक्ष्म मन की अवधारणा अत्यन्त सूक्ष्म है एवं परीक्षण, निरीक्षण एवं प्रयोगशाला का विषय नहीं है। तान्त्रिकों का 'सूक्ष्ममन' परीक्षण, निरीक्षण एवं प्रयोगशाला से परे है, किन्तु मनोविज्ञान के मन का है।

मनोवैज्ञानिकों के परीक्षण एवं निरीक्षण की पहुँच चेतना की मात्र दो अवस्थाओं (१) **'जागृति'** की अवस्था एवं (२) **'स्वप्न'** की अवस्था तक सीमित है। यदि यह विज्ञान और आगे बढ़ा तो शायद यह **'सुषुप्ति'** की अवस्था को भी अपने परीक्षण, निरीक्षण एवं प्रयोगशाला का विषय बना ले किन्तु इसके आगे 'मन' का निरक्षण-परीक्षण (भौतिक साधनों के माध्यम से) सम्भव नहीं है।

'मन' और चेतना की अवस्थाएँ (तन्त्रशास्त्र की दृष्टि से)



(१) 'जागर अवस्था' (२) 'स्वप्नावस्था' (३) 'सुषुप्त्यवस्था' (४) 'तुर्यावस्था' (५) 'तुर्यातीतावस्था'

(१) **सुषुप्ति की अवस्था–** ∸ ='बिन्दु' की अवस्था

(२) **तुर्यावस्था–** 'अर्धचन्द्र'◡, 'रोधिनी' ▽◡, 'नाद' ॰।॰ की अवस्था।

(३) **तुर्यातीतावस्था**— 'नादान्त' ॰৮, 'शक्ति' !̥̥, 'व्यापिका' ▽̥◡ 'समना' !̊, 'उन्मना' !◡।

आधुनिक मनोविज्ञान तो **'सुषुप्तिगत' 'बिन्दु'** तक भी नहीं पहुँच पाया है कि वह **'तुर्यावस्था'** और **'तुर्यातीतावस्था'** तक कैसे पहुँच पायेगा ? **'मन'** तो, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति **'तुर्य' एवं 'तुर्यातीत'** तक विद्यमान है। 'मन' तो 'तुर्यातीत' अवस्था (आत्मा की अवस्था) के अन्तिम सोपान **'उन्मना'** के पूर्व तक विद्यमान है। अत: 'मन' की सर्वव्यापी, सर्वाकार, सर्वगत एवं सर्वरूप समग्र (समष्टिरूप) सत्ता का शोध तो मनोविज्ञान आगे के लाखों-करोड़ों वर्षों में भी नहीं कर पायेगा।

'तुर्यातीत पद' है क्या ? आचार्य क्षेमराज कहते हैं—

"तुर्यपरिशीलनप्रकर्षात् प्राप्त**तुर्यातीतपदः** परिपूर्णस्वच्छस्वच्छन्दचिदानन्दघनेन भगवता तुल्यो— देहकलाया।"

परब्रह्म और पूर्णाहन्ता

'पूर्णाहन्ता' और ब्रह्म के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए नटनानन्दनाथ 'चिद्वल्ली' में कहते हैं कि— परब्रह्म पूर्णाहन्ताविशिष्ट हैं। वे कहते हैं कि—

"पूर्णाहन्ताविशिष्टं परब्रह्म ब्रवीति॥"

वे कहते हैं कि 'आनन्द ब्रह्म' कहकर ब्रह्म एवं आत्मा को शास्त्रकारों ने आनन्दस्वरूप तो कहा है किन्तु किसी ने उसे 'पूर्णाहन्ता विशिष्ट' तो नहीं कहा। फिर परब्रह्म को पूर्णाहन्ताविशिष्ट कैसे कहें ? नटनानन्द—

'तत्कथमुच्यते पूर्णाहन्ताविशिष्टं परब्रह्मेति"— कहकर अपना पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हैं और फिर इसको निराकृत करते हुए कहते हैं कि— **"सुबालोपनिषद्** में कहा गया है कि— 'अन्तमयो **भूतात्मा,** प्राणमय **इन्द्रियात्मा,** मनोमय:

सङ्कल्पात्मा, विज्ञानमय: **कालात्मा**, आनन्दमयो **लयात्मा** ॥''

'आनन्द' विश्वात्मभावना ही तो है? ''**आनन्दो** नाम विश्वात्मभावना''[१] इस प्रकरण में **'लय'** ('आनन्दमयोलयात्मा') **पूर्णाहंभावना ही तो है**। 'ध्यान कोटिसमो **लय:**'' वाक्य में करोड़ ध्यान के बराबर एक **'लय'** कहा गया है। **'आनन्द'** विश्वाहन्ता परिणाम है— ''आनन्दो विश्वाहन्तापरिणाम:'' (नटनानन्द)। या यह जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय के हेतुभूत अकृत्रिम **अहंभाव का परामर्श या विमर्श है–**

''अथवा जगदुत्पत्तिस्थितिलयेहेतुभूताकृत्रिमाहंभाव परामर्शो विमर्श: ॥''[२]

'विमर्श' है क्या ? **नागानन्द** कहते हैं—

''**विमर्शो** नाम **विश्वाकारेण** वा, विश्व **प्रकाशेन** वा **विश्वोपसंहारेण** वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् तयां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम् ॥'' (नागानन्द)।

''अन्तर्लीनोऽन्तर्मुखीभूतो विमर्श: **पूर्णाहंभावना**''[३]

विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की दृष्टि

'विरूपाक्षपञ्चाशिका' में कहा गया है—

''स्वपरावभासनक्षम: आत्मा विश्वस्य य: प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्त: अहन्तास्थितिरीदृशी तस्य ॥''

शिवानन्दस्वामी ने भी इसी बात को इस प्रकार कहा—

''अहमित्यक्लमाक्रान्तसमस्तभुवनत्रयम् ॥''

उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर का 'प्रकाशैकस्वभावत्व' या 'सर्वस्मात्परत्व' है। महेश्वर प्रकाशमात्रतनु है।

'प्रकाश' क्या है? प्रकाशत्व है— 'इच्छा करता हूँ' 'जानता हूँ' 'करता हूँ' रूप स्वान्तस्थस्फुरणस्वरूप अहं परामर्श— ''**प्रकाशत्वं** नाम इच्छामि जानामि, करोमि इत्युत्तमपुरुषान्तर्गतस्फुरणरूपाहं परामर्श एव ॥''[४]

इसी प्रकार परमेश्वर में— ''सर्वज्ञत्व-सर्वेश्वरत्व-सर्वकर्तृत्व-पूर्णत्व-व्यापकत्वरूपपञ्चशक्तिसंवलितं परं ब्रह्मेत्युक्तं भवति ॥''[५]

---

१. नटनानन्द (चिद्वल्ली)।
२. चिद्वल्ली।
३. चिद्वल्ली।
४. चिद्वल्ली (नटनानन्द)।
५. चिद्वल्ली।

परमेश्वर तो पूर्णतः अपरिच्छिन्न है और पूर्ण है— उसमें सारे भावों की पूर्णता है—

"तस्यैवैषा परादेवी स्वभावामर्शनोत्सुका।
पूर्णत्वं सर्वभावानां यस्या नाल्पं न वाधिकम्॥"

इसीलिए तो **आर्थर्वणोपनिषद्** में कहा गया है कि—

"अथ कस्मादुच्यते महेश्वरः ? सर्वान् लोकान् उद्गृह्णाति, सृजति, विसृजति वासयति। तस्मादुच्यते महेश्वरः॥"

वही समस्त प्राणियों का स्वभाव है—

"स एव सर्वभूतानां **स्वभावः** परमेश्वरः।
स एव भैरवो देवो जगद्भरणलक्षणः॥"

उसकी शक्ति स्वभावामर्शनोत्सुका है—

"तस्यैवैषा परादेवी स्वभावामर्शनोत्सुका।
पूर्णत्वं सर्वभावानां यस्या नाल्पं न वाधिकम्॥"

यही है परमेश्वर के सम्पूर्णरूपत्व एवं पूर्णत्व वाले अहं का स्वरूप।

परमेश्वर का 'अहं'

परमेश्वर का 'अहं' विश्व की समस्त सत्ता के साथ तादात्म्यभाव (एकरूपता) से आपन्न है। विश्व के साथ तादात्म्याभावापन्नता ही परमेश्वर की अहन्ता है। यही है **'पूर्णाहन्ता'** और **'विश्वाहन्ता'**।

महेश्वरानन्द ने ठीक ही कहा है कि—

"परमेश्वरो हि **'अहमेवसर्वमिति'** वैश्वात्म्यप्रथानुभूतिस्कार चमत्कारः॥"[१]

आत्मविश्रान्ति और 'अहं'

स्वस्वरूप में आत्मविश्रान्ति ही 'अहं' है।

"इदमित्यस्य विच्छिन्नविमर्शस्थ कृतार्थता।
या स्वस्वरूपे विश्रान्तिर्विमर्शः सोऽहमित्ययम्॥"[२]

'अहम्' अघोर शिव का epithet है या 'परावाक्' का सार तत्त्व है।

---

१. परिमल (१९)।
२. अभिनवगुप्त द्वारा उद्धृत : 'परात्रिंशिकाविवृति'

शिव के 'अहं' का स्वरूप

शिव का अहं शक्त्याश्रित है, शक्ति निरपेक्ष नहीं है

जिस प्रकार कोई सिंहासीन नृपति अपने समक्ष दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उस प्रतिबिम्ब को ''यह मैं हूँ''— ऐसा कहता है ठीक उसी प्रकार परमेश्वर भी स्वाधीनभूता स्वात्म शक्ति को सम्यक् रूप से देखकर ही अपने स्वरूप का परिचय (ज्ञान) प्राप्त करता है कि **'मैं परिपूर्ण हूँ'**।

शिव से रहित शक्ति की भी यही स्थिति है—

''यथा सिंहासनारूढः कश्चिद्राजा अतिसुन्दरः स्वात्माभिमुखावस्थित-स्वच्छ-दर्पणतले स्वात्म प्रतिबिम्बं सम्यक् प्रसमीक्ष्य तत्प्रतिबिम्बं **'अयमहमिति'** इति जानाति। एवं परमेश्वरोऽपि स्वाधीनभूतां स्वात्मशक्तिं सम्यगवलोक्य स्वस्वरूपमवगच्छति 'परिपूर्णोऽहमिति'— एवं च दर्पणस्य स्वसन्निहित वस्तुसम्बन्धाभावे स्वान्तर्गतप्रतिबिम्बावभासनमनुपपन्नं भवति। तद्वत् पराशक्तिरपि परमशिवसम्बन्धाभावे स्वान्तस्थितप्रपञ्चनिगरणं न सङ्गटत॥''[१]

वर्णमाला और 'अहं'

परमशिव से उत्पन्न प्रथम स्पन्द ''अहं'' है। सृष्टि की विधायिका शक्तियों की भूमिका एवं सृष्टि के विभिन्न सोपान परवर्ती वस्तुएँ हैं।

यह भी सत्य है कि समस्त जगत की सृष्टि **'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति'** एवं **'क्रियाशक्ति'** द्वारा हुई है किन्तु इन शक्तियों के पूर्व भी एक वस्तु थी जो सारी शक्तियों का मूल थी।

परात्रिंशिकाकार की दृष्टि

'परात्रिंशिका' नामक ग्रन्थ में यह कहा गया है कि 'परमशिव' से उनकी (१) **'ज्ञानशक्ति'** एवं (२) **'क्रियाशक्ति'** की अभिव्यक्ति के पूर्व— समस्त मातृकाओं एवं सम्पूर्ण वर्णमाला के उद्भावक **'अहं'** की अभिव्यक्ति हुई। इसी **'अहं'** में **'अ'** से लेकर **'ह'** पर्यन्त समस्त स्वर एवं व्यंजन वर्ण अन्तर्गर्भित थे। **'अहं'** के उदय के बाद ही **'इच्छाशक्ति'** में शाखायें फूटीं। परमशिव की 'इच्छाशक्ति' रूपी वृक्ष से दो शाखायें निकलीं। इनके नाम हैं—

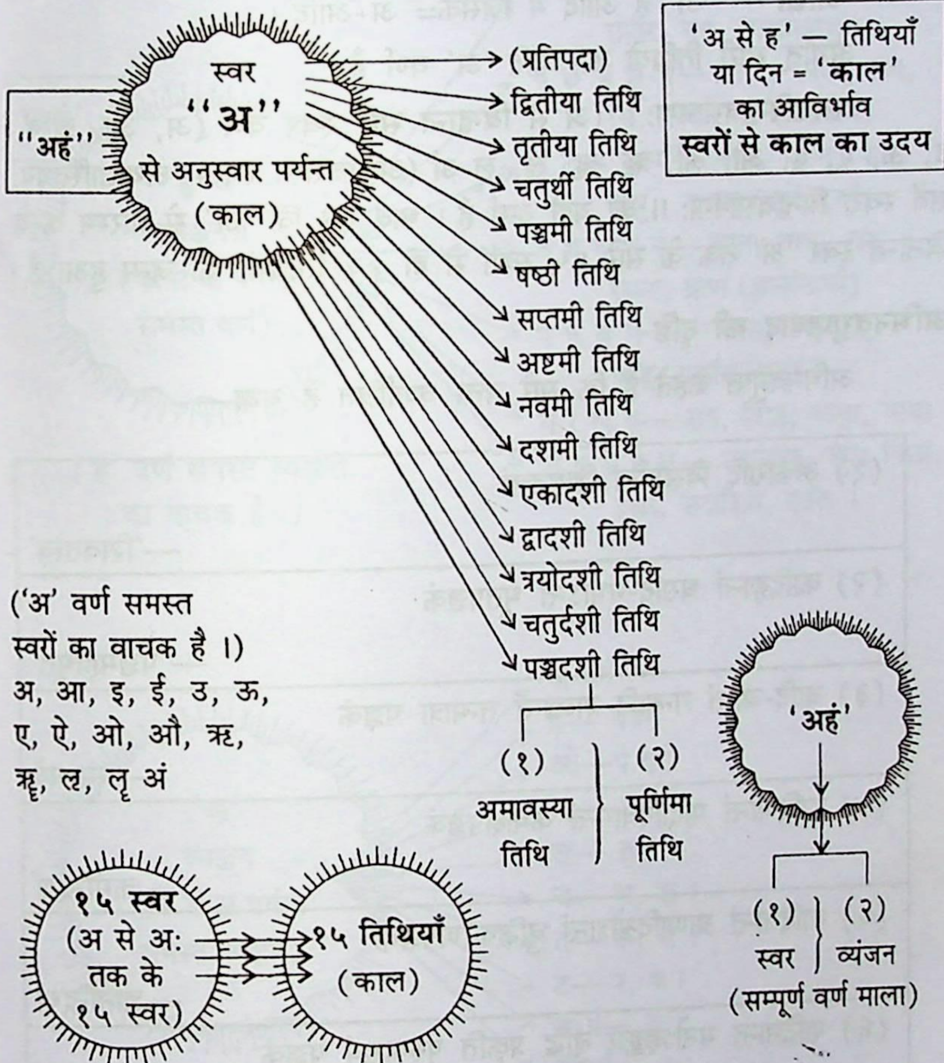
(१) **'ज्ञानशक्ति'** की शाखा तथा

(२) **'क्रियाशक्ति'** की शाखा।

---

१. चिद्वल्ली।

(१) स्वराश्रित सृष्टि– अ से अनुस्वार तक के समस्त स्वर वर्ण से १५ तिथियों का आविर्भाव हुआ—



'अहं' में समस्त वर्णमाला अनुस्यूत या केन्द्रीभूत है।

'अहं' में काल का सम्बन्ध है; क्योंकि 'अहं' से जिस वर्णमाला का उद्भव होता है उसके प्रत्येक वर्ण को अपने को व्यक्त करने के लिए (उच्चारणार्थ) काल (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत उच्चारणार्थ समय) की आवश्यकता होती है। तिथियाँ जो कि **'अहं'** से तिथि के रूप में जन्म ग्रहण करती हैं वे दिन, तिथि, सप्ताह, पक्ष, माह, वर्ष भी बताती हैं और काल की सूक्ष्म इकाइयों में 'लव' 'क्षण' 'मिनट' 'घण्टा' आदि भी बताती हैं। वर्णोच्चारण कालाश्रित है।

'परात्रिंशिका' में कहा गया है—

"अथाद्यास्तिथय: सर्वे स्वराबिन्द्ववसागगा: ।"

'आद्या'— 'अ' है आदि में जिसके= अ+आदि ।

अर्थात् सारी तिथियों का आदि 'अ' वर्ण है ।

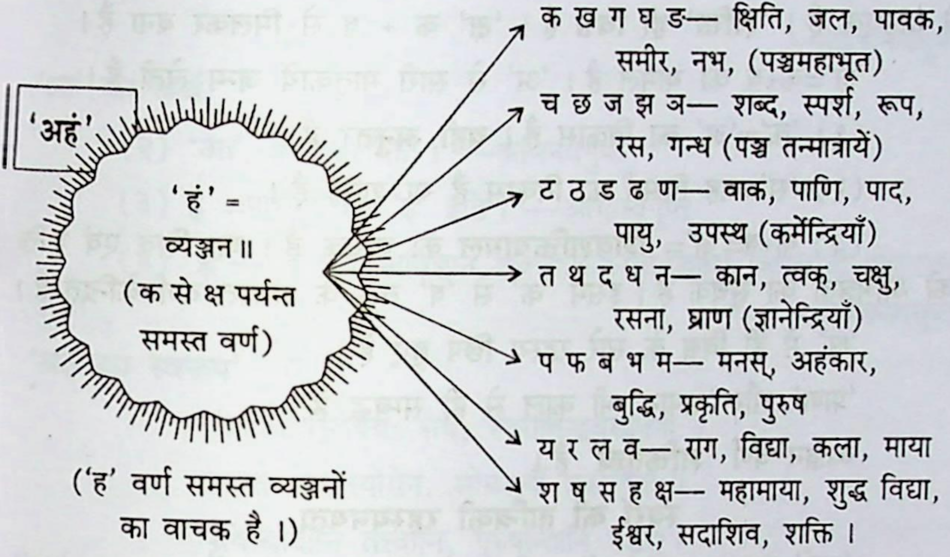
'स्वराबिन्द्ववसानगा: ।' (**अ से बिन्द्वान्त सारे स्वर** वर्ण (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ **अं** (अनुस्वरान्त स्वर) 'अथाद्यास्तिथय: सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगा: ।। का यही अर्थ है । भाव यह कि 'अ' से प्रारम्भ करके बिन्द्वन्त स्वर 'अं' तक के सारे १५ स्वरों से ही १५ तिथियों का जन्म हुआ है।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि-

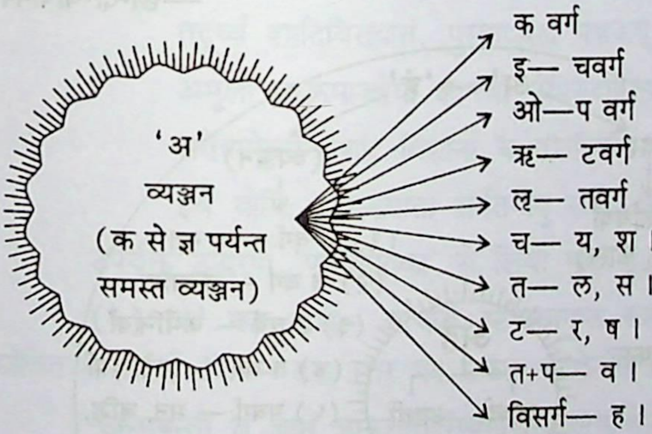
अभिनवगुप्त कहते हैं कि सारे तत्त्व वर्णाश्रित हैं यथा—

(१) अकारादि विसर्गान्तं शिवतत्त्वं —'शिवतत्त्वं'
(२) कादिङ्गान्तं धरादि-नभोऽन्तं भूतपञ्चकं —'पञ्चमहाभूत'
(३) चादि-ञान्तं गन्धादि शब्दान्तं तन्मात्रा पञ्चकं —तन्मात्रायें
(४) टादिणान्तं पादादिवागन्तं कर्मक्षपञ्चकं —कर्मन्द्रियाँ
(५) तादिनान्तं घ्राणादिश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकं —ज्ञानेन्द्रियाँ
(६) पादिमान्त मनोऽहङ्कार बुद्धि प्रकृति पुरुषाख्यं पञ्चकं —'मन', 'अहङ्कार', 'बुद्धि', 'प्रकति', 'पुरुष' ।।
(७) वाटवादिशब्दवाच्या यादयोवकारान्ता रागविद्याकलामायाख्यानि तत्त्वानि —पञ्चकञ्चुक
(८) शादिक्षान्तं महामाया विद्येश्वर सदाशिव शक्त्याख्यं तत्त्वपञ्चकं —'महामाया', 'विद्या', 'ईश्वर', 'सदाशिव' 'शक्ति' ।।

(२) व्यञ्जनाश्रित सृष्टि



('ह' वर्ण समस्त व्यञ्जनों का वाचक है।)



'अ' से 'क्ष' पर्यन्त प्रसृत मातृकाओं द्वारा सृष्टि होती है। **'अहं'** प्रत्याहार है अत: 'अ' से 'ह' तक के समस्त वर्णों (समस्त स्वर-व्यञ्जनों) का वाचक है। १५ स्वरों का विसर्ग के साथ योग कर देने पर १५ स्वरों को **'शिवतत्त्व'** कहा जाने लगता है। यह चित् का शुद्ध प्रकाश है। यह विश्वबीज में निहित प्राण या जीवन है।

जगत की सृष्टि के लिए स्वरों से व्यञ्जनों का प्रादुर्भाव हुआ करता है। यही **'शक्तितत्त्व'** है। यथा 'व्यञ्जन' स्वरों से अपृथक हैं उसी प्रकार 'शक्ति' शिव से अपृथक है। **'शक्ति' ही विश्व है**। **'क्ष'** क + ष से मिलकर बना है।

'क्ष'=क+ष का यामल है। 'अ' से सारी मातृकायें जन्म लेती हैं।

(१) 'क'='अ' का विकास है। **यही अनुत्तर** है।

(२) 'स'=यह विसर्ग का विकास है या शक्ति है।

(३) क+ष='क्ष'= **शिवशक्तियामल** का वाचक है। यह शिव एवं शक्ति की अभिन्नता का सूचक है। इसमें 'क' से 'ष' तक के समस्त वर्ण केन्द्रित हैं।

'क्ष' में ही विश्व के सारे रहस्य छिपे हुए हैं।

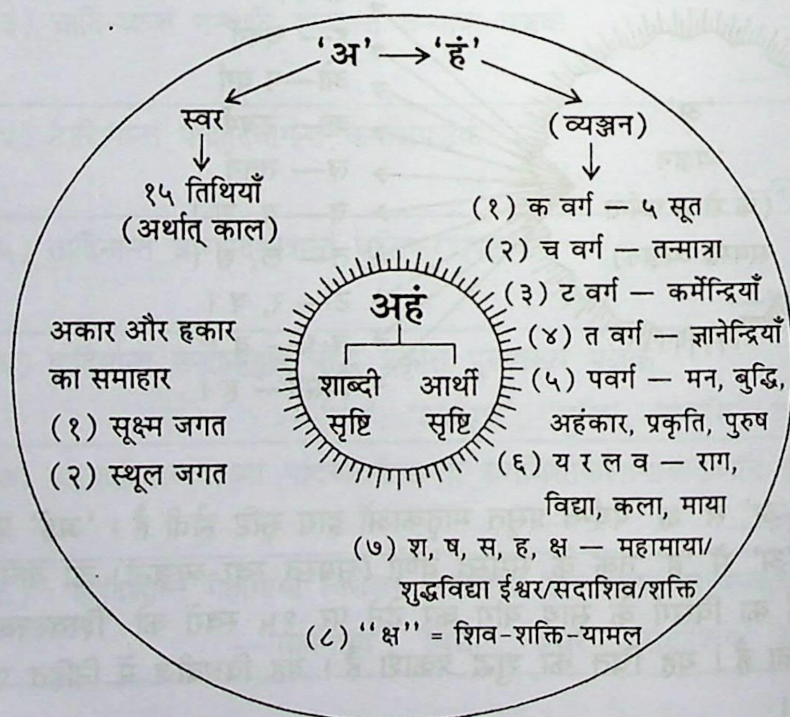
'प्राण' और 'अपान' भी काल से ही सम्बद्ध हैं।

व्यञ्जन वर्ण **'शक्तितत्त्व'** है।

स्वरों की तान्त्रिकी रहस्यमयता

'अहं' एवाधस्तात्, 'अहं' उपरिष्टात 'अहं' पश्चात्, 'अहं' पुरस्तात्, 'अहं' दक्षिणतोऽहं उत्तरत: अहं एवेदं सर्वम्॥''

—छान्दोग्योपनिषद्



(१) **'अ' का अर्थ–** 'परमेश्वरस्य स्वात्मनि इच्छात्मिका स्वातन्त्र्यशक्ति-रनुन्मीलितभावविकासा तथा विधान्तर्घनसंवित्स्वभावविमर्शसारा 'अ' इत्युच्यते ॥

—अभिनवगुप्त[१]

'आ' का अर्थ

(२) **'आ'** आनन्दशक्तिः । —अभिनवगुप्त

(३) **इ** =परिपूर्णेच्छा 'इ' इति । —अभिनवगुप्त

(४) **'ई'**— इच्छैव भाविज्ञान शक्त्यात्मकस्वातन्त्र्येण जिघृक्षन्ती ईशनरूपा 'ई' ॥

—अभिनवगुप्त

'अहं का स्वरूप'

"अथाद्यास्तिथयः सर्वे, स्वराविन्द्ववसानगाः ।
तदन्तः कालयोगेन, सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ ॥
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि, पुरुषान्तानि पञ्चसु ।
क्रमात्कादिषु वर्गेषु, मकारान्तेषु सुव्रते ॥
वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां, धारणानां चतुष्टयम् ।
तदूर्ध्वं शादिविख्यातं, पुरस्ताद्ब्रह्म पञ्चकम् ॥
अमूला तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्त्या सृष्टिरुदाहृता ।
सर्वेषामेवमन्त्राणां, विद्यानां च यशस्विनि ।
इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा ॥"[२]

उपर्युक्त उद्धरण 'परात्रिंशिका' से लिया गया है ।

(५) **'उ' का अर्थ–** आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि स्वर 'उ' यह द्योतित करता है कि— इस स्तर पर सकल भावोन्मेष है—

'उन्मिषन्ती तु ज्ञान ज्ञानशक्तिरिष्यमाणसकलभावोन्मेषमयी 'उ' इति ॥[३]

(६) **'ऊ' का अर्थ–** आचार्य अभिनवगुप्त ने 'ऊ' को परिभाषित करते हुए कहा है कि— सुस्फुटा प्रसृता ज्ञानशक्ति ही 'ऊ' है।

---

१. परात्रिंशिकाविवृति ।

२. परात्रिंशिका ।

३. परात्रिंशिकाविवृति ।

'अ'— अकारः शिवइत्युक्तस्थकारः शक्तिरुच्यते ॥

उन्मिषत्तैव उन्मिमिषतामपि अन्त:प्राणसर्वस्वरूपोन्मेषोत्तरैकरूपैरपि अन्त:-प्राणसर्वस्वपोन्मेषोत्तरैकरूपैरपि अन्त:करणवेद्यदेशीयास्फुटप्राय भेदांशभासमानभाव-राशिभि: सङ्कोचवशेन ऊनीभूतानुत्तरसंवित्सर्वभावगर्भीकारेण अनङ्गधैनवीरूपपरदेव-ताया ऊधोरूपा ऊढसकलभावराशि: सुस्फुटा प्रसृता ज्ञानशक्ति: 'ऊ' इति ॥

'आ' का स्वरूप क्या है?

अभिनवगुप्त कहते हैं कि— 'सा चावस्थानेन इच्छेति व्यपदेश्या इष्यमाणा-नुद्रेका, तत एवानुत्तरसत्तापरामर्शात्मिकैव एषा, परमेश्वर: सततं स्वस्वरूपामर्श-कोऽकुलशक्तिपदात्मकमपिरूपमामृशन् यद्यपि कुलशक्तीरनुयातु तथापि कुलपरामर्श-तोऽस्य स्यादेव विशेष: इति भैरवशक्तिमद्विमर्शसत्तेयं तादृश्येव पुन: प्रसरन्ती आनन्दशक्ति: आ इति प्रसृता ॥

जार्ज ग्रियर्सन ने स्वरों का अर्थ इस पकार व्यक्त किया है—

(१) **'अ'**– 'The first element in the conception of the upper most Ego, perfect Egoily, essentially transcendental in nature.

(२) **'आ'**– 'The sinking to nest inthat same (perfect egoity) hence the power of joy consisting in the combination of two 'अ's.

(३) **'इ'**– 'The power of hill, styled Aghora, consisting of an instinct towards external selfmanifestation amidst the union consisting of the Equilibrium of Siva.'

(४) **'ई'**– 'The same when mistrenness and as it were, fallen to rest in the self, hence composed of the combination of two 'इ' s.[1]

(५) **'उ'**– 'The power of thought in the form of an opening out (unmesha) of Universe while there is (in the power of) will an instinct outwards.

(६) **'ऊ'**– 'A condition revealing deficiency in the principle of consciousness, owing to the excess of the object of thought, while this (power of thought) is still undivided live (the image) of a town in a mirror.

(७) **'ऋ-ॠ'**– 'As the twofold will reposing upon the realm of the void, touches the luminious principles (Tejas) by the agency of the Power of thought, it reveals itself in the round ऋ live the lightning— flash and the lightning.'

(८) **'ऌ-ॡ'**– 'When the same (will) advances far in the realm of

1. Sir Grorge Grierson, "on the Shanda Alphatet'

the void, and owing to a certain deficiency of the Power of Thought assumes the form of wood and stone, it reveals itself in the same way as the lightning— flash and the lightning the means of the sound ऌ because of its solid nature; hence these things (wood etc.) are similarly eternal, because they sink to rest solely in the self. The term 'neuter' is applied because (the ऌ and ॡ) are unable to generate any other letter (Bija, a mystical letter forming the essential part of the spell of a deity) owing to their lock of instinct outwards.'

(९) 'ए'– ' A triangular radical (Bija) due to the predominance of the uppermost and joy are proceeding in will (its triangular form being) because of the equilibrium of will, thought and Action.

(१०) 'ऐ'– 'Prolongation owing to greater (vocalic) sound as a result of the extreme extension of the same to to two (Scil, the uppermost reprensented by a अ and joy, represented by 'आ') in the will (the letter इ) and the Mistness (the ई).

(११) 'ओ'– 'Having the form of an extention of the uppermost and joy, due to the desire for manifestation outwards, the Power or Thought (when the letter is) in the condition in which the universe opens out into manifestation.

(१२) 'औ'– 'As this an extreme prolongation of the same (vowel ओ) it is a trident radical letter (Trisula Bija) because will, Thought and Action are distinct in it.

(१३) 'अं'– ' A power inspired intuition for the first time of the Universe, so far (as it yet exists) as being the Bindu, because it consists of sensation.

(१४) 'अः'– 'An intution of the predominance of Power in the above mentioned uppermost (when the latter is) in unbroken union with the Power of joy (so that the uppermost and the Power of joy are intuited) as being in the form of Visarg.'

Likewise on the base of the vowels of the creation of the consonants from 'क' to 'ह' is effected. The consonants of the क, च, प, ट and त series being serially the developd forms of अ, इ, ओ, ऋ and ऌ are like them guttunals, palatals, labials cerebrals and dentals respectively (i) य and श are but developed form of 'च'; (ii) 'र' and 'ष' of 'ट' (iii) ल and स of त

(iv) while व is the developed form of त and (v) प is combined, (vi) 'ह' is the development of Visarga.

To sum up, the Universe is an aggregate of the Matrikas from 'अ' to 'ह' and may be traced to 'अ' as its source. (i) In the end the mystery of Universe finds its solution in the enigmatical joint letter 'क्ष' which is but a combination of 'क' (ii) the developed form of 'अ' on the Anuttara (iii) and 'स' the developed form of Visarga or Shakti. In other words, it brings to light the inseparability or oneness of Shiva and Shakti.

(15) The import of the Universe as referred to before forms the subject-matter of all the Shastras. **'अ' the Anuttara**, which is the origin of the Matrikas, being combined with the penultimate vowel 'अ' and the last consonant 'ह'.

In order of **'अ'**, **'ह'** and **'म'** (anusvāra) and forming in the word 'अहम्' is an epithet of Aghora. The omniscient one and is regarded as the essence of 'परावाक्' of i. e, the All transcending word.

The dawning of the form on vision of Bhairava or Param Shiva on the mind in the course of medication and thereby the clearing away as Param Shiva.

To conclude, the **individual self** is identical with the **Supreme Self** and can attain to perfection by satability of meditation on the significance of the word 'अहम्'.

The reason why he regards himself as apart from the Highest Reality in due to inpurity or 'मल'— **'आणवमल'** subection to limitatioas, **'मायीय मल'** that effected by **'माया'** the **'कार्ममल'** that resulting from deeds good on ill which will easily Vanish on regularly practicing in the doctrines laid down in the Shastras of which the Para Trinshika, forms a typical one.

'अहं' में स्थित 'षट्त्रिंशत् तत्त्व' और 'मातृकाएँ'

अभिनवगुप्तपादाचार्य ने वर्णमाला के प्रत्येक 'वर्ग' एवं तन्निहित **प्रत्येक वर्ण को किसी तत्त्व का वाचक (प्रतीक) स्वीकार किया है**। यथा—

(१) **'शिवतत्त्व'** (अकारादि विसर्गान्त सारे वर्ण)।

(२) **'भूतपञ्चक'** (कादि-ङान्तं धरादिनमोऽन्तं भूतपञ्चकं)।

(३) **'तन्मात्रपञ्चक'** (चादि-ञान्तं गन्धादिशब्दान्तं तन्मात्रपञ्चकं)।

(४) **'कर्माक्षपञ्चक'** (टादि-णान्तं पादादि, वागन्तं कर्माक्षपञ्चकं)।

(५) **'ज्ञानेन्द्रियाँ'** (तादि-नान्तं घ्राणादिश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकं)।

(६) **प्रकृति-पुरुष आदि तत्त्व** (पादि-मान्तं मनोऽहङ्कारबुद्धिप्रकृति-पुरुषाख्यं पञ्चकं)।

(७) **'कञ्चुक'** (वाय्वादि शब्दवाच्या यादयोवकारान्ता राग-विद्या-कला-मायाख्यानि तत्त्वानि)।

(८) **शुद्ध विद्या आदि तत्त्व** (श ष स ह क्ष=महामाया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति।

विरूपाक्षपञ्चाशिकाकार की अहं विषयक दृष्टि

विरूपाक्षपञ्चाशिका में कहा गया है कि—

"स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य य: प्रकाशोऽसौ।

अहमिति स एक उक्तोऽहन्ता स्थितिरीदृशी तस्य॥"

अर्थात् स्व एवं पर को प्रकाशित करने वाला विश्वात्मारूप प्रकाश ही एक 'अहं' द्वारा कहा गया है।

'कामकला' और 'अहम्'

'अ' शिव का एवं **'ह'** शक्ति का प्रतिनिधि अक्षर है। 'ह' **'अर्धकला'** है। यह **'अर्धकला'** '('ह' अक्षर) शिव के प्रतिनिधि रूप अक्षर 'अ' से मिलकर **'कामकला'** (त्रिपुरसुन्दरी) का स्वरूप धारण करता है और इस प्रकार 'शिव' एवं 'शक्ति' के संयोग का फल है। इस प्रकार वह **'अहं'** कहलाती है जिसमें 'अ' शिव है एवं 'ह' शक्ति हैं।

'मैं' अपने **'अहं'** (मैं) के स्वरूप में तत्त्वत: शिव एवं शक्ति का **सामरस्य** है या **शिवशक्तियामल है**। उस शिवशक्तियामलस्वरूप के सभी विकास (निखिल सृष्टि) इसी 'अहं' के अहंकार से युक्त हैं। व्यक्ति 'अहं' ('अहमस्मि') कहकर उसे अपनी सङ्कुचित, क्षुद्र एवं व्यष्टि सत्ता का बोधक (या प्रतिनिधि) मान लेता है किन्तु इस सृष्टि के **खण्डरूप** 'अहं' के अनन्त रूपों में सर्वत्र एक ही अखण्डरूप (समष्टिगत, विश्वव्याप्त) एवं शिवशक्त्यात्मक **'अहं'** स्फुरित हो रहा है।

असीम एवं विराट अहं ।
विश्वमय एवं विश्वातीत विराट अहं

समष्टि अहं
(शिव शक्त्यात्मक एवं शिवशक्तिरूप विराट अहं

व्यष्टि अहं

व्यष्टि अहं

व्यष्टि क्षुद्र अहं

विश्वमय एवं विश्वातीत विराट अहं

व्यष्टि अहं

अ हं अ हं अ हं अ हं अ हं अ हं

'अहं' 'अहं' 'अहं'
'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं'
'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं'
'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं'
'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं'
'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं' 'अहं'
'अहं' 'अहं' 'अहं'

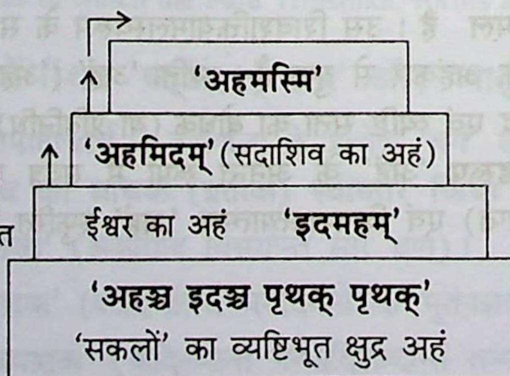
विराट अहं

व्यष्टि क्षुद्र अहं

विश्वमय एवं विश्वातीत विराट 'अहं'

असीम एवं विराट अहं

'अहं' के स्तर



समस्त व्यष्टि अहं-समूहों को अपने अहं में निलीन करके स्थित 'विश्वोऽहं' की विराट अहं भावना से परिपूर्ण अहं ॥



‘अहं के अ एवं ह तथा ‘हार्धकला’ के योग से उच्छूनता उत्पन्न हो जाती है। यही है **‘कामकला’**।

भगवती कामकला का परिचय

स्तन
स्तन
(सूर्य)
(संयुक्त बिन्दु मुख)
(१)
कामकला
का मुख
रक्त
बिन्दु
(अग्नि)
स्तन
(२)
(चन्द्र)
स्तन
(३)
श्वेत
बिन्दु
(हार्धकला)
कामकला की
योनि
(४)

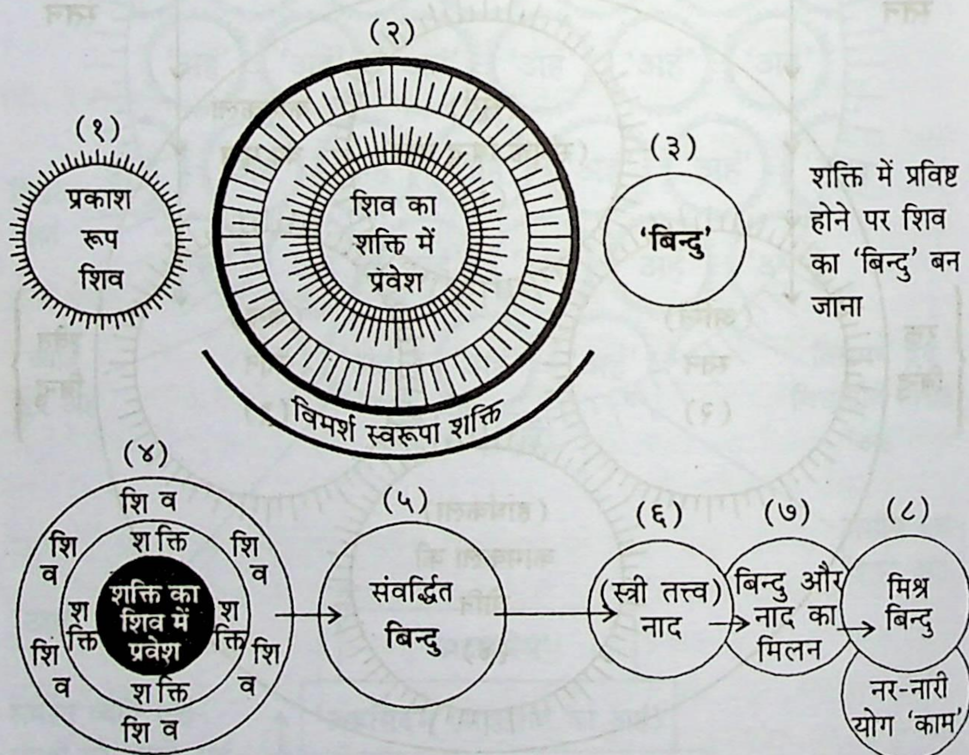
‘कामकला’ में पहले ‘तुरीयबिन्दु’, उसके, नीच ‘काम’ नामक ‘बिन्दु’ और उसके नीचे ‘विसर्गाख्य बिन्दुद्वय’ और उसके नीचे ‘हार्द्धकला’ है।

त्रिकोण के तीनों विन्दु (१) **'रक्तबिन्दु'** (२) **'श्वेतबिन्दु'** एवं (३) **'मिश्रबिन्दु'** तथा त्रिकोण के मध्य स्थित **'महाबिन्दु'** चारों मिलकर **'कामकला'** के विग्रह को अभिव्यक्त करते हैं।

'शिव' और 'शक्ति' आद्य तत्त्व हैं। इनमें **'शिव'** प्रकाशस्वरूप एवं **'शक्ति'** विमर्शस्वरूप (स्फूर्तिरूप) हैं। सृष्टि विधान में सर्वप्रथम **प्रकाशस्वरूप शिव** विमर्श रूप 'शक्ति' में प्रवेश करते हैं **(शिव प्रकाश का** शक्ति **(विमर्श में प्रवेश)**।

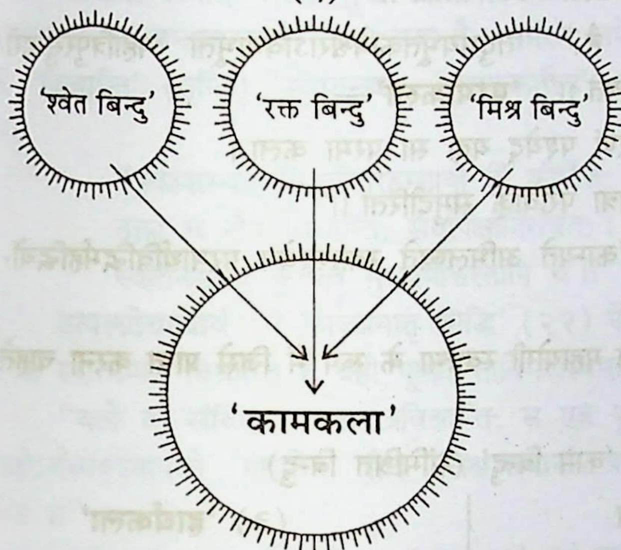
'शक्ति' में प्रवेश करके शिव **'बिन्दु' का स्वरूप धारण कर लेते हैं।** इसी प्रकार 'शक्ति' शिव में अनुप्रविष्ट होती है। इसमें **'बिन्दु'** संवर्द्धित होता है। संवर्द्धित बिन्दु से **'नाद'** का आविर्भाव है। बिन्दु और नाद दोनों मिलकर **'मिश्रबिन्दु'** बन जाते हैं।

जगत के सृष्टि की प्रक्रिया



(नर, बिन्दु) एवं 'नाद' (नारी) का योग होने से यह 'मिश्रबिन्दु' ही **'काम'** कहा जाता है। बिन्दु नाद का संयोग=**'काम' 'श्वेत'** और **'रक्त'** **बिन्दु** (पुरुष-स्त्री तत्त्व के प्रतीक) एवं **'मिश्रबिन्दु'** मिल जाते हैं।

(९)



'श्वेत बिन्दु' 'रक्त बिन्दु' एवं **'मिश्र बिन्दु'** मिलकर एक हो जाते हैं और फिर **'कामकला'** कहलाते हैं।

'मूल बिन्दु' (विश्वोपादान) + 'नाद' + 'श्वेत पुरुष बिन्दु' + रक्त 'स्त्री बिन्दु' → **'कामकला'** ॥

'कामकला' का स्वरूप **तत्त्वसृष्टि की प्रथमावस्था** है। यह इच्छा बहिरुन्मुख होने पर **'विसर्ग'** कहलाती है। बहिरुन्मुख होने का कारण **'क्षोभ'** है। इस क्षोभ की **पूर्वावस्था** है **'अ'** (अनुत्तर, चित्त)। इसकी **परावस्था** है—'आ' (आनन्द)।

महात्रिपुरसुन्दरी ही 'कामकला' है–

स्वान्तर्गत अनन्त अक्षर-समुदाय को अन्तर्गर्भित किए हुए महामन्त्रवीर्य-स्वरूप **पूर्णाहन्तात्मक**, प्रकाशानन्द सर्वस्व, शोण (आरक्त) सित (श्वेत) एवं मिश्र (सम्मिलित) बिन्दुओं की समष्टिस्वरूपा एवं लिप्यक्षररूपा ही **'कामकला'** है और वह है महात्रिपुरसुन्दरी मातृका—

''स्वान्तर्गतानन्ताक्षरराशि**महामन्त्रवीर्यपूर्णाहन्तारूपिणी, प्रकाशानन्दसारा, बिन्दुत्रयसमष्टिरूपलिप्यक्षररूपिणी** 'कामकला' नाम महात्रिपुरसुन्दरी मातृका परमयोगिभिः महामाहेश्वरैरनिशमनुस्मर्तव्या इति ॥''[१]

''कामकला'' तत्त्वसृष्टि की प्रथमावस्था है। यह इच्छा बहिरुन्मुख होने पर **'विसर्ग'** के नाम से बोधित होती है। बहिरुन्मुखता का कारण है **'क्षोभ'**। इस क्षोभ की पूर्वावस्था है 'अ' (अनुत्तर अनुत्तर चित्त) और परावस्था है 'आ' (अर्थात् आनन्द) ॥ चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपा एवं कामेश्वराऽविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी को परमा कला, परम काम अर्थात् **'कामकला'** कहा गया है—

१. चिद्वल्ली (२)।

'कला' क्या है? ''**कला** विमर्शशक्तिः ॥''

'कामकला' क्या है? ''तदुभयभूतकामेश्वराऽविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकलेत्युच्यते ॥'' **'परमाकला'**—

''आत्मनः स्फुरणं पश्येद् यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता ॥''

'काम' क्या है? ''काम्यते अभिलष्यते स्वात्मत्वेन परमार्थविद्भिर्महद्भिर्योगिभिरिति **कामः** ॥''

('अर्थात् परमार्थज्ञाता महायोगी स्वात्मा के रूप में जिसे प्राप्त करना चाहते हैं वही प्रकाश 'काम' है।)

(१) 'काम बिन्दु' (संमिश्रित बिन्दु)

(२) **'विसर्ग'**=बिन्दुद्वय (शोण और सित बिन्दु) (शुक्ल बिन्दु + रक्त बिन्दु)

(३) **'हार्धकला'** (अभिवृद्ध रूप) (मिश्र बिन्दु का अभिवृद्ध रूप)

'कामकला'

(१) अकार (शिव)

(२) हकार (शक्ति

'अहं'

अकार+हकार का अद्वैत (दोनों की अद्वयता) (**शिव**-शक्ति की अद्वयता **''अहं''**

'अहंभाव' क्या है? ''**अहं देवी** न चान्योऽस्मि ॥''

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि-

राजानक क्षेमराज कहते हैं कि—

अनुत्तर एवं अकुलरूप **'अकार'** से लेकर शक्ति विस्तारात्मक **'हकार'** कला (वर्ण) पर्यन्त जो विश्व प्रसृत है उस **'अकार'** और **'हकार'** से सम्पुटित या 'प्रत्याहार न्याय' से उन दोनों के अन्दर स्वीकृत विश्व, अभिन्नवेदनात्मक बिन्दुरूप से स्फुरित होकर अनुत्तर पद में ही लीन हो जाता है। कहा भी गया है—

"प्रकाश अर्थात् **नील, सुख आदि की आत्मा में विश्रान्ति** या लय को अहंभाव या **'पराहन्तापरामर्श'** कहा गया है। समस्त अपेक्षाओं के निरुद्ध होने पर वही **'विश्रान्ति'** (तृप्ति) **'स्वातन्त्र्य', 'मुख्यकर्तृत्व'** और **'ऐश्वर्य'** कही जाती है—

"प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तितः।" २२॥
उक्ता च सैव विश्रान्तिः सर्वापेक्षानिरोधतः।
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च॥" २३॥

उत्पलदेवाचार्य ने 'अजप्रमातृ सिद्धि' (२२) में कहा है कि— संवित्तत्व की जो स्वात्ममात्र विश्रान्ति है वही पूर्णाहन्ताविमर्शस्वभाव **'अहंभाव'** है—

"यतो वा संविदः स्वात्ममात्रविश्रान्तिः स एव पूर्णाहन्ता विमर्शस्वभावोऽहंभावोऽर्थव्यवस्थापको गीयते। **सैव विश्वभावानां** पर्यन्त प्रतिष्ठाभूमिकत्वद्विश्रान्तिः॥"

यही अहंभाव सर्वापेक्षानिरुद्ध **'स्वातन्त्र्य'** एवं **सर्वकर्तृत्वं** एवं **मुख्य ऐश्वर्य** है।

'अहं' स्वातन्त्र्य है– अर्थात् 'विश्वप्रसरणे स्वव्यतिरिक्तसामग्री निरपेक्षत्वात् **स्वातन्त्र्यं**॥ **अहं 'कर्तृत्व' है–** अर्थात् 'तदेव कर्तृत्वं' (**'स्वातन्त्र्य'** ही सर्वकर्तृत्व है।)

अहं **मुख्य ऐश्वर्य** है— अर्थात् 'कर्तृत्व' (अर्थात् निरपेक्ष सर्वकर्तृत्व शक्ति) ही ऐश्वर्य है।

अहम्

परमेश्वर की अभेदावस्था में एक साथ
दो तत्त्वों का अवभासन

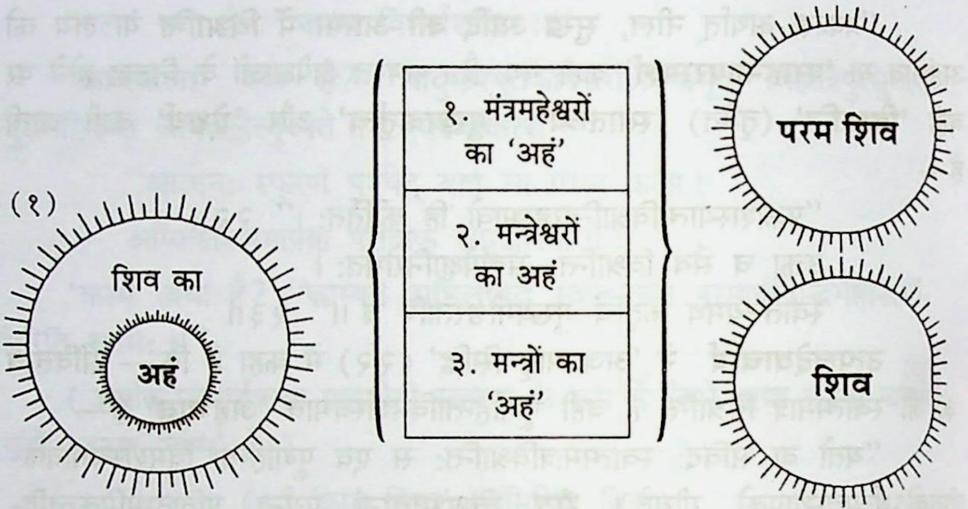
'अपरिमित अहं'
के दो रूप

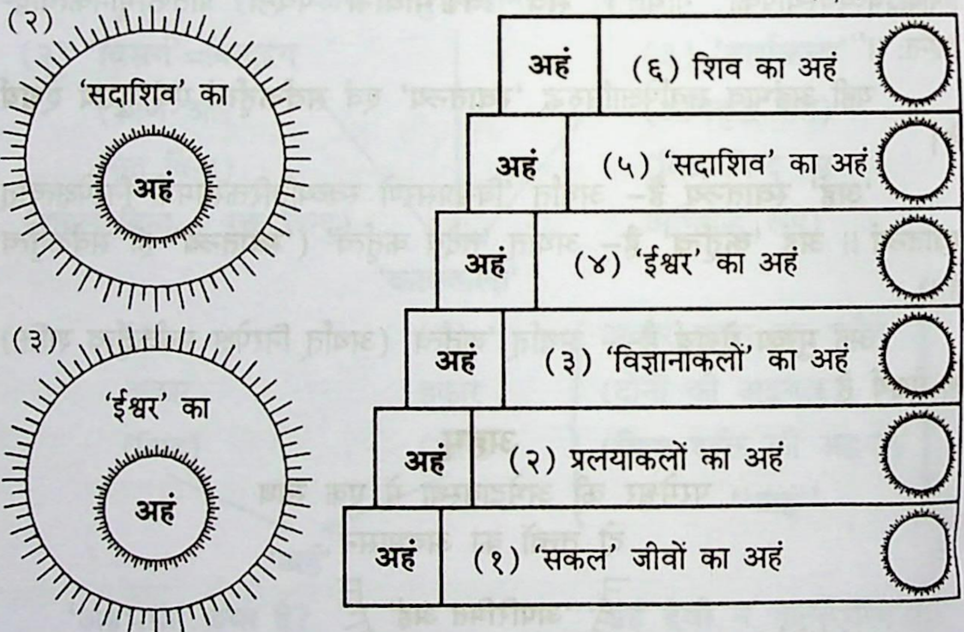


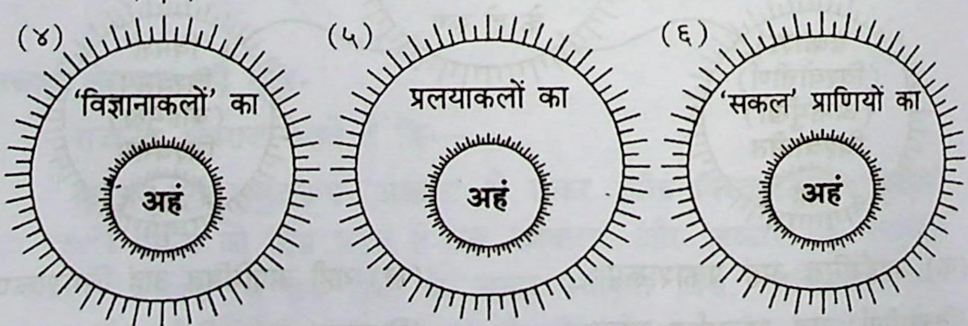
(क) अपरिमित अहं प्रकाशरूप (विश्वोत्तीर्ण) एवं अन्तर्मुख रहता हुआ **'शिवतत्त्व'** कहलाता है।



(ख) यही अपरिमित अहं विमर्शरूप (विश्वमय) एवं बहिर्मुख होता हुआ **'शक्तितत्त्व'** कहलाता है।







देवता (३), मनुष्य (२), तिर्यक् (१)

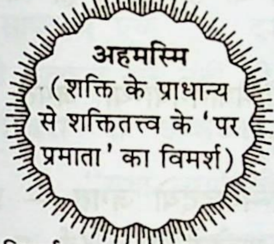
'अहं' के विभिन्न सोपान

(३) ''मैं''=



(२) मैं हूँ =

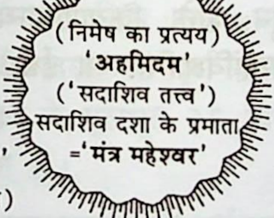
''शिवतत्त्व'



(मंत्रमहेश्वर के विमर्श का स्वरूप)=

(१) ''मैं'' यह हूँ =

''अहं' + 'इदम'
(शिव) (विश्व)



आभास क्रम में तृतीय तत्त्व **'सदाशिव'** कहलाता है जिसकी अभिव्यक्ति **शिव की 'इच्छाशक्ति'** से होती है। शिव की इच्छाशक्ति का अन्तर्मुख स्पन्द **'ज्ञानशक्ति'** है और उसका बहिर्मुख स्पन्द **'क्रियाशक्ति'** कहलाता है। अन्तर्मुख स्पन्द में ज्ञान का प्राधान्य एवं क्रिया की अस्फुटता रहती है।

''पदार्थद्वय'' (१) 'शिव' (२) 'शक्ति'

''शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते ॥''

(१) 'अहं' 'मैं' शिव तत्त्व के परप्रमाता का प्रत्यय ॥

शिवतत्त्व के परप्रमाता (शिव) का शुद्ध आद्य विमर्श 'अहं' है।

''प्रकाशस्य यदात्ममात्रविश्रमणमनन्योन्मुख-स्वात्मप्रकाशता विश्रान्तिलक्षणो विमर्शः 'सोऽहं'

(२) अहं के साथ 'अस्मि' मैं हूँ ='अहमस्मि' ('मैं हूँ'— यह प्रत्यय (बोध) शक्ति तत्त्व का द्योतक है। **'अहमस्मि'** का विमर्शा-नन्द की स्फुटता है। इसी कारण 'तन्त्र-सार' में शिव की **'आनन्दशक्ति'** का प्राधान्य होने पर वह 'शक्तितत्त्व' कहा गया है। परमशिव की अभेद दशा में।

एक साथ दो तत्त्वों का जो अवभासन होता है उसमें **अपरिमित 'अहं'** प्रकाशरूप (विश्वोत्तीर्ण) एवं अन्तर्मुख होता हुआ **शिवतत्त्व** कहा जाता है और इसके विपरीत यही अपरिमित **'अहं'** विमर्शरूप (विश्वमय) तथा बहिर्मुख होता हुआ **'शक्तितत्त्व'** कहलाता है।[१] यथार्थतः तो दोनों तत्त्व अभिन्न हैं न शिव शक्तिरहित है और न शक्ति शिव-रहित ॥[२]

---

१. **'शक्तिमान'** एवं **'शक्ति'** के सामरस्य में 'शिव' और 'शक्ति' का पृथक परामर्श नहीं होता अतः इस 'सामरस्यावस्था' के परामर्श का स्वरूप केवल 'अहम्' होता है—
'अनुत्तरविसर्गात्मशिवशक्त्यद्वयात्मनि। परामर्शो निर्भरत्वादहमित्युच्यते विभोः ॥'
— तन्त्रालोक (आ. ३/२०३-४)

२. 'शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते। शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वरः ॥
—नेत्रतन्त्र टीका

'विश्वाहन्ता' में स्थित विराट अहं का स्वरूप

महेश्वरानन्द कहते हैं कि परमेश्वर का 'अहं' सर्वोच्च 'अहं' है। उसमें 'अहं' और 'इदम्' के द्वैत के लिए स्थान नहीं है। **–परमेश्वर का अहं—**



'परमेश्वरो हि **'अहमेव सर्वमिति'** वैश्वात्म्य प्रथानुभूतिस्कार चमत्कारः ॥'' (परिमल)

विश्व की स्फुट प्रतीति ही बाह्यता का 'उन्मेष' है। ईश्वरतत्त्व के उन्मेष से ही विश्व का उदय होता है।

(१) 'यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ' (स्पन्दकारिका)

(२) 'यस्योन्मेषादुदयो जगतः— इत्यत्र ईश्वर-तत्त्वमेवोन्मेष शब्देनोक्तम् ॥ (ई. प्र. विमर्शिनी)

(३) यत्र पुनः शक्तेः क्रियाप्राधान्येन बहिर्गृहोतोन्मेषायाः पराहंविश्रान्तिः सा ईश्वरदशा ॥

— स्पन्द विवृति



महेश्वरानन्द कहते हैं—

'ज्ञाता स आत्मा ज्ञेयस्वभावश्च लोहव्यवहार-एरसां संसृष्टिं यत्र गतौ सा खलु निस्तुषा विद्या ॥ सद्विद्या अहम्+इदम् का सामान्याधिकरण्य है— 'सामानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदं धियोः ॥''

अभेदभूमिका

'परमशिव' शुद्ध अद्वैत की तत्त्वातीता स्थिति है। इसे न तो 'शिव' कह सकते हैं और न तो 'शक्ति'। इसे **'विश्वोत्तीर्ण'** कहते हैं। **'विश्वोत्तीर्णता'** उसकी **'प्रकाशरूपता'** है, **'विश्वमयता'** उसकी **'विमर्शरूपता'** है। उस तत्त्वातीत की भावना करना भी सम्भव नहीं है।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

उसी विश्वोत्तीर्ण शिव के सम्बन्ध में **'विज्ञान भैरव'** में कहा गया है कि—

"तत्त्वतो न नवात्मासौ शब्दराशिर्न भैरवः।
न चासौ त्रिशिरा देवो न च शक्तित्रयात्मकः।।
दिक्कालकलनोन्मुक्ता देशोद्देशा विशेषिणी।
व्यपदेष्टुमशक्यासावकथ्या परमार्थतः।
अन्तः स्वानुभवानन्दा विकल्पोन्मुक्तगोचरा।
यावस्था भरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः।।[१]"

सामरस्य एक ऐसी दशा में जिसमें 'शक्ति' और 'शक्तिमान' जैसे पृथक शब्दों की कल्पना तक नहीं की जा सकती। उस तत्त्वातीत स्थिति को ही **'अन्तः-स्वानन्दगोचरा'** या **'अकथ्या'** कहा गया है। शिव बट बीजवत स्थित है।

"यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।"[२]

अर्थात् जिस प्रकार अनन्त पत्रों, पुष्पों शाखाओं वाला विशाल वटवृक्ष अपनी बीजावस्था में पूर्ण सामरस्यभाव से बटबीज में अवस्थित रहता है उसी प्रकार विश्व के मूलभूत ३६ विराट तत्त्व समरसतापूर्वक **'परमशिव'** में अन्तर्निहित रहा करते हैं।

स्वात्मानन्द में घूर्णमान **'परमशिव'** के आनन्दोच्छलन से सामरस्य की स्थिति में ही जब उसका स्वरूप प्रकाशरूपता या विमर्शरूपता के प्राधान्य से प्रकाशित होता है तभी अपने परम स्वरूप में अवस्थित **'परमशिव'** के लिए **'शक्तिमान'** एवं **'शक्ति'** या **'विश्वोत्तीर्ण'** एवं **'विश्वमय'** शब्दों का प्रयोग होता है। **'प्रकाश'** विमर्श से एवं **'विमर्श'** प्रकाश से अनुप्राणित है। अनन्त सृष्टि दर्पण नगरवत आत्मस्वरूप में अभिन्नभाव से अवस्थित है।

शिव की शक्तिदशा– अभिनवगुप्त कहते हैं—
"चिन्मात्र स्वभावः पर एव शिवः पूर्णत्वात् निराशंसोऽपि स्वातन्त्र्यमाहात्म्याद् बहिरुल्लिलसिषया परानन्दचमत्कारतारताम्येन प्रथमम् **'अहम्'** इति परामर्शतया शक्तिदशामधिश्यानः प्रस्फुरेत्।।" — तन्त्रालोक टीका

विश्वोन्मीलन (विश्व-प्रादुर्भाव) की ओर उन्मुख परमेश्वर की उक्त आद्या

---

१. विज्ञानभैरव (का. ११-१५)
२. परात्रिंशिका (का. २४-२५)

इच्छावस्था की ही परिभाषिक संज्ञा **'प्रथम स्पन्द'** है— 'यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छया-खिलमिदं जगत्स्रष्टुं पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्वमुच्यते तज्ज्ञैः ॥

— षट्त्रिंशततत्वसंदोह

(क) **''अभेद भूमिका''** में २ तत्त्व हैं— (१) **'शिव'** (२) **'शक्ति'**=२

(ख) **''भेदाभेद भूमिका''** में ३ तत्त्व हैं— (१) **'सदाशिव तत्त्व'**=(३) ग (२) **'ईश्वरतत्त्व'** (३) **'सद्विद्या'** या 'शुद्धविद्या'

(ग) **''भेद भूमिका''**– माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, वह्नि, सलिल, पृथिवी ॥

'विद्या तत्त्व'– अभिनवगुप्त सद्विद्या का स्वरूप निर्वचन करते हुए कहते हैं कि—

(१) 'ये एते **अहम्** इति **इदम्** इति धियौ तयोर्मायाप्रमातरि पृथगधिकरण-त्वम् अहम् इति ग्राहके इदम् इति च ग्राह्ये तन्निरासेनैकस्मिन्नेवाधिकरणे यत्सङ्गमनं सम्बन्ध स्वरूप प्रथनं तत् सती **शुद्ध विद्या** ।।''[१]

(२) यः समधृततुलापुटन्यायेन अहमिदमिति परामर्शः तत्क्रियाशक्तिप्रधानं विद्यातत्त्वम् ।[२]

(३) सा भवति शुद्धविद्या, येदन्ताहन्तयोरभेद मतिः ।[३]

'शुद्ध विद्या' के लक्षण

(क) **'अहं'** और **'इदं'** की समान स्फुटता से प्रतीति होती है।

(ख) माया प्रमाता के विमर्श की भाँति यहाँ **'अहं'** और **'इदम्'** की प्रतीति पृथक पृथक अधिकरण में नहीं होती है।

(ग) यहाँ अभेदात्मक ज्ञानदशा में समान स्फुटता पूर्वक **'अहम्'** एवं **'इदम्'** का प्रत्यवमर्श होता है।

''अहमिदम्'' स्वरूप वाला शुद्ध परामर्श (भेदाभेदमय विमर्श) ही **'शुद्ध-**

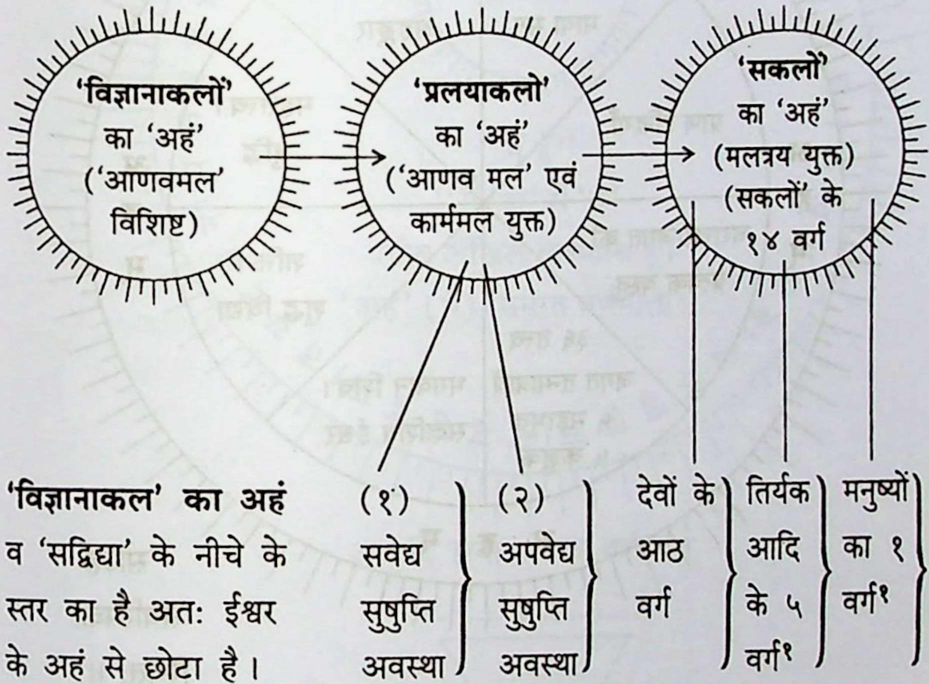
---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी

२. तन्त्रालोक टीका

३. षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह

विद्या' है। यहाँ **'अहन्ता'** एवं **'इदन्ता'** दोनों चिद्रूप ही प्रतीत होते हैं। **'अहं'** एवं **'इदम्'** दोनों एक ही चिद्रूपता का परामर्श होने के कारण **'सद्विद्या'** में अभेद भी हैं। **'शक्ति'** का **'निमेष-उन्मेष'** ही **'सदाशिव'** एवं **'ईश्वर'** हैं। यहाँ वेद्य-वेदक दोनों की एक चिन्मात्र रूप में विश्रान्ति होने के कारण यहाँ **वेद्य-वेदक में अभेद** है। यहाँ पर **'सामानाधिकरण्यभाव'** से समष्टि प्रमाता का **''अहम् इदम् अस्मि''** ऐसा विमर्श **'शुद्धविद्या'** कहलाता है।



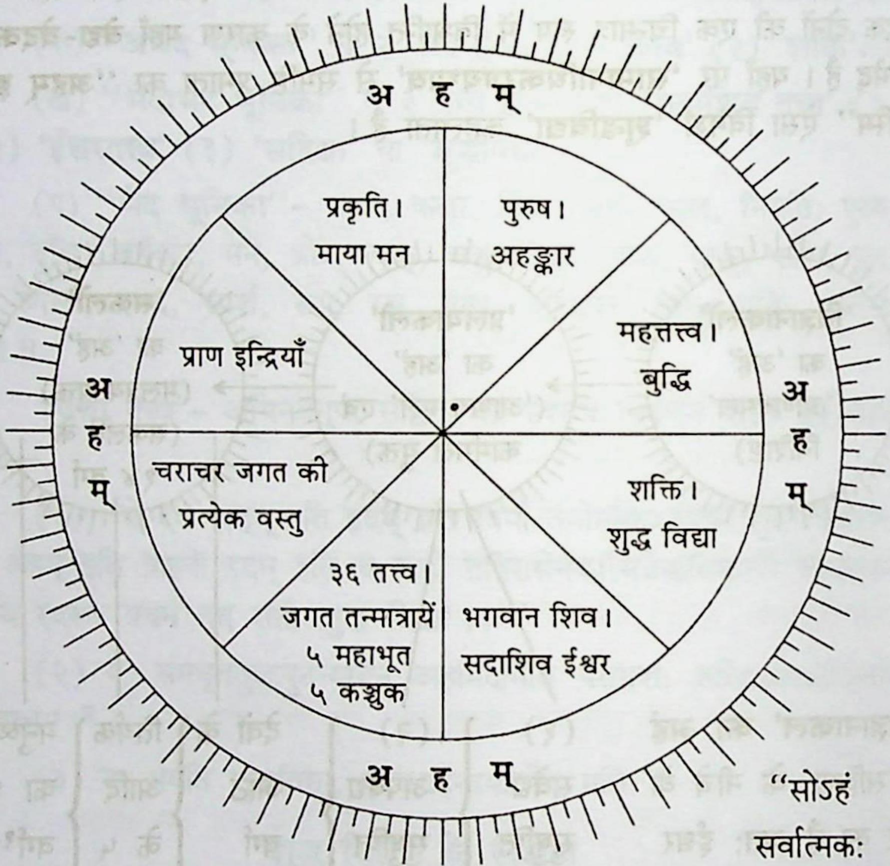
'अहन्तामय त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूप वर्णात्मा **'कामकला'** त्रिगुणात्मक त्रिकोण रूप में परिणत होकर जगज्जननी बनती है—

''एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूप वर्णमयी।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता॥''

— कामकला विलास

१. मलत्रयोपरक्ताः सकला मायातत्त्वान्तरालवर्तितः॥
—महार्थमञ्जरी टीका

'अहं-चक्र'



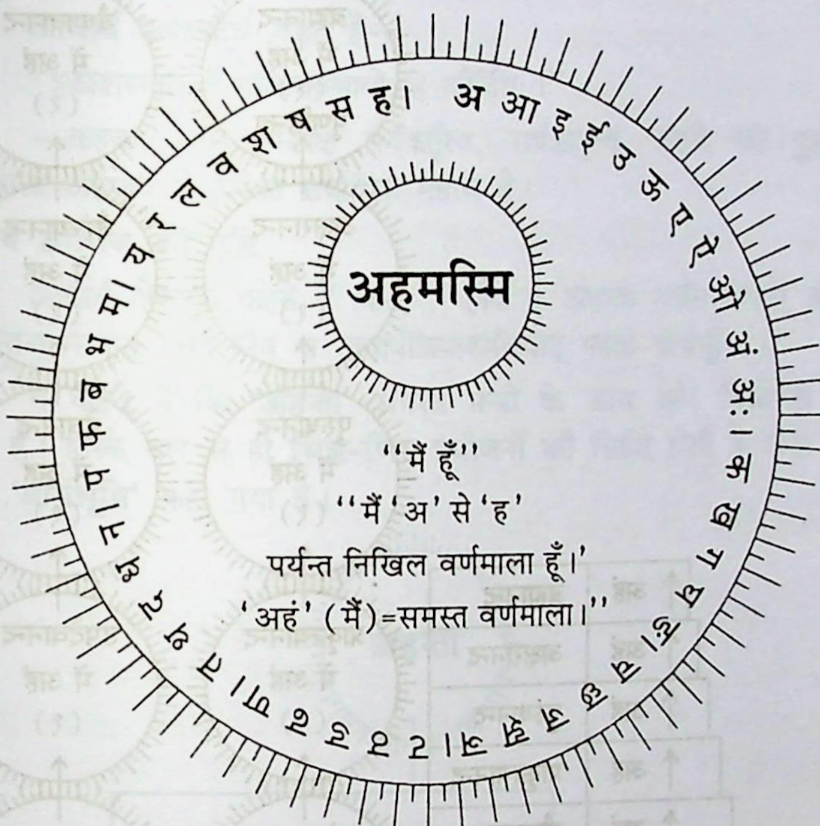
"सोऽहं
सर्वात्मक:
स्थित: ॥"

('परिमल में उद्धृत')

'अहं' के अतिरिक्त सृष्टि में कुछ है ही नहीं। 'प्राण' 'मन' अहंकार, बुद्धि, शक्ति यहाँ तक कि स्वयं भगवान शिव, जगत और इस चराचर जगत की प्रत्येक वस्तु 'अहं' में अन्तर्भूत है—

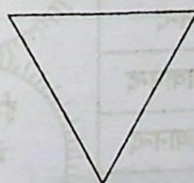
"अहं प्राणो मनश्चाहमङ्कारोऽप्यहं मत: ।
अहं बुद्धिरहं शक्तिरहं स भगवान् शिव: ।
किं वा बहुप्रलापेन जगत्यस्मिंश्चराचरे ।
योऽर्थ: प्रमाणोपारूढ: सोऽहं सर्वात्मक: स्थित: ॥"

वर्णमालारूप अहं



अआदि हान्त समस्त वर्णमाला

"अ.......................ह"

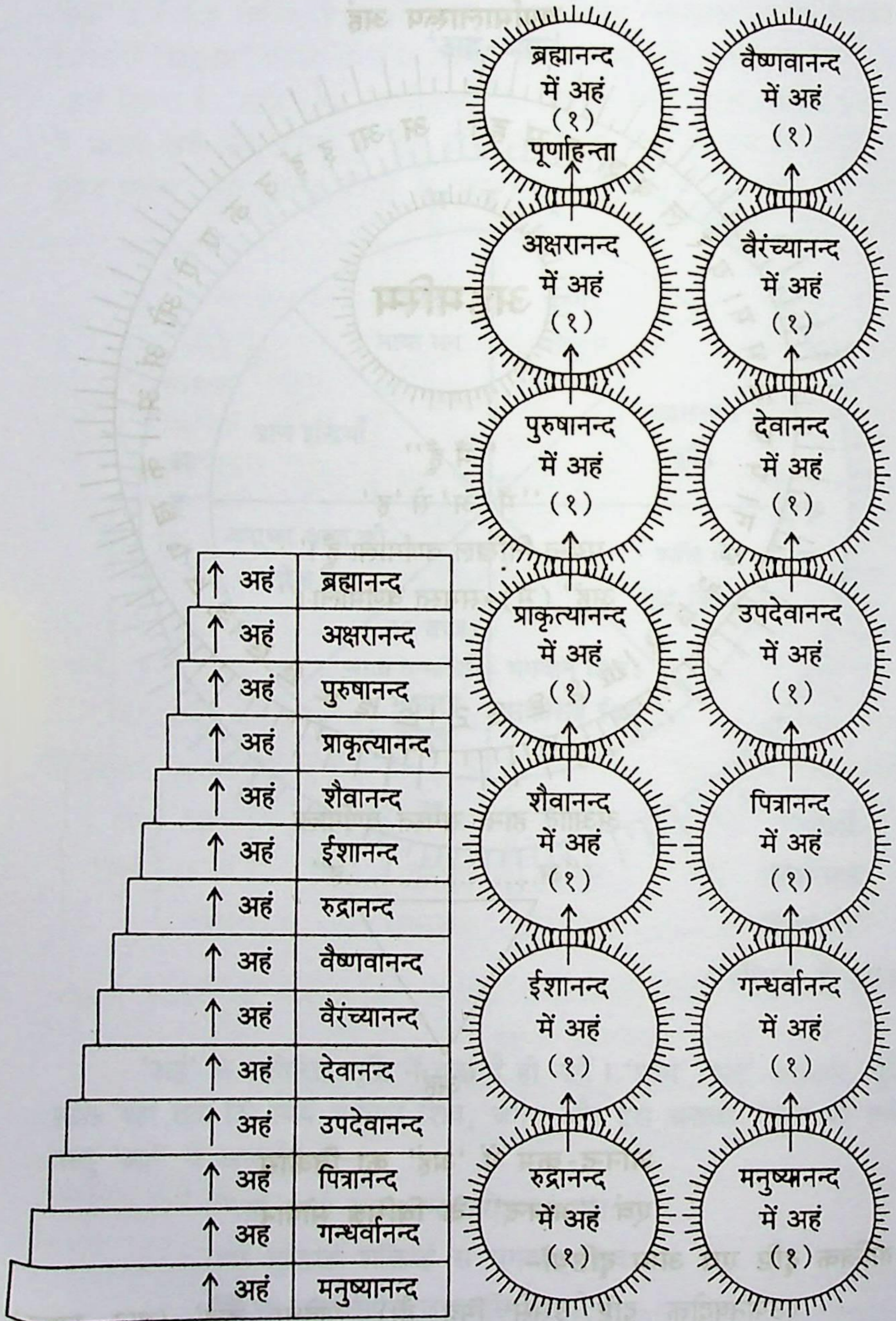


"अहं"

आनन्द-क्रम में 'अहं' का विकास एवं "आनन्द" के विभिन्न सोपान

तान्त्रिक दृष्टि एवं अन्य दृष्टियाँ–

(उपनिषदोक्त दृष्टि इससे भिन्न है।) 'माहेश्वर तन्त्र' (ज्ञान खण्ड) विंशखण्ड)— में आनन्दानुगत अहं के विभिन्न स्तर—



आनन्द के विभिन्न सोपान एवं तन्निहित 'अहं' के विभिन्न स्तर भिन्न भिन्न हैं।

प्रकाश की आत्मा में विश्रान्ति (स्व विश्रान्ति ही) अहं है।

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

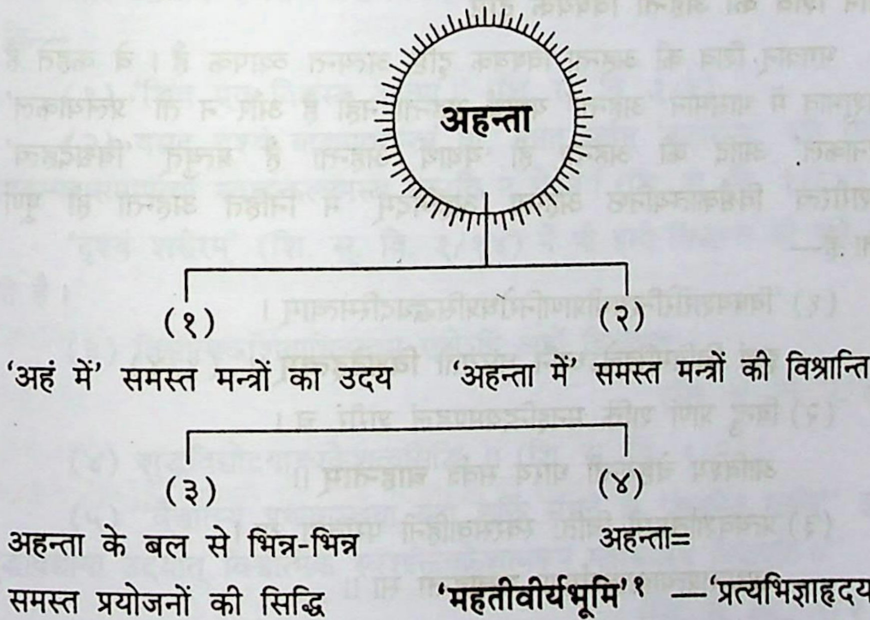
"प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तित:।"

—कहकर जिस निरपेक्ष सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञातृत्व, आदि की पुञ्जीभूत शक्तिवाला अहंभाव है उसका सर्वाधिक महत्त्व है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि— "एषैव च **अहन्ता** सर्वमन्त्राणाम् उदय-विश्रान्तिस्थानत्वात् एतद्बलेनैव च तत्तदर्थक्रियाकारित्वात् महती वीर्यभूमि: ॥"

वे कहते हैं कि **'अहन्ता' समस्त मन्त्रों के उदय** और **विश्रान्ति का स्थान** है। इसके बल से ही **भिन्न-भिन्न प्रयोजनों की सिद्धि** होती है अत: इसे महती **'वीर्यभूमि'** कहा गया है।



'स्पन्दकारिका' में कहा गया है— "तदाक्रम्य बलं मन्त्रा:" आदि। अर्थात् उस निरावरण चिद्रूप बल को अधिष्ठित करके मन्त्र, सर्वज्ञत्व आदि सामर्थ्य से युक्त होकर अनुग्रह आदि स्वाधिकार में प्रवृत्त होते हैं; क्योंकि **'य एते शिव-धर्मिण: ॥'** महाह्रद (पराशक्ति) **के साथ तादात्म्य** स्थापित करने से, **विमर्श** के द्वारा, मन्त्रवीर्य का अनुभव होता है—

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

"महाह्रदानुसन्धानान्मन्त्रवीर्यानुभवः ॥" (सूत्र २२)

यहाँ **महामन्त्रवीर्यरूप 'पूर्णाहन्ता' में आवेश** का अर्थ है— देह-प्राण आदि के निमज्जन (विलय) से **पराहन्ता पद की** प्राप्ति के द्वारा देह आदि एवं नींल आदि का भी उस **रस में डूब जाने से तन्मयीकरण**।[1]

यथा देह, सुख, नील आदि जो आन्तर या बाह्य, विषय प्रकाशित होता है, बुद्धि के द्वारा निश्चित किया जाता है, (मन के द्वारा) स्मृति या संकल्प का विषय बनता है— वहाँ सर्वत्र भगवती चितिशक्तिमयी 'ख्याति' ही आधार बनकर स्फुरित होती है। यदि वह स्फुरित न हो तो किसी की भी स्फुरणा सम्भव नहीं है। केवल मितिरूप से स्फुरित होती हुई वह **'चितिशक्ति'** अपनी माया द्वारा अवभासित नील देहादि विषयों के उपराग (तादात्म्य) से जनित अभिमान के कारण भिन्न-भिन्न स्वभाववाली सी प्रतीति होती है।[2]

भगवान शिव की अहन्ता विषयक दृष्टि

भगवान् शिव की अहन्ता विषयक दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। वे कहते हैं कि पशुभाव में भासमान 'अहन्ता' यथार्थ अहन्ता नहीं है और न तो 'प्रलयाकल' 'विज्ञानाकल' आदि की अहन्ता ही यथार्थ अहन्ता है प्रत्युत् 'विश्वदेहत्व' 'विश्वशरीरत्व' विश्वैकात्म्यनिष्ठ अहन्ता 'अहमिदम्' में निहित अहन्ता ही पूर्ण अहन्ता है—

(१) 'विषयशरीरेन्द्रियधीप्राणनिरोधप्रसिद्ध्यदस्मित्वाम्।
इत्थं चितिमखिलेऽध्वनि धारयतो **विश्वदेहत्वम्**॥' (१/४)

(२) बिन्दु प्राणं शक्तिं मनइन्द्रियमण्डलं शरीरं च।
आविश्य चेष्टयन्तीं धारय सर्वत्र **चाहन्ताम्**॥

(३) प्रत्यवर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परावाग् या।
आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा **सत्यहन्ता** सा॥

(४) स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ।
अहमिति स एक **उक्तो हन्ता** स्थितिरीदृशी तस्य॥

(५) **अहमेको**ऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि तेजसां तमसाम्।
अन्तः स्थितो ममान्तस्तेजांसि तमांसि चैकस्य॥

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र २०)

(६) युष्मच्छेषापोहवदहमिति यद्भाति भिन्नमिह रूपम्।
तदिदं भागविभेदो न **त्वहमेकोस्मि** यन्नित्यम् ॥

(७) यह **अहन्ता** है क्या ? यह ईश्वरत्व, सर्वकर्तृत्व, निरपेक्ष पूर्ण स्वातन्त्र्य, चित्स्वरूपत्व का पर्याय है—

"ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वरूपा चेति।
एतेऽहन्तायाः किल पर्यायाः सद्भिरुच्यते ॥"[१]

व्याख्याकार वि. पं. वृत्ति में उसी विश्वशरीरी की वन्दना करते हुए उसकी विश्वाहन्ता की पुष्टि करते हैं—

"नमो विश्वशरीराय विश्वैकात्म्यावभासिने।
नित्यप्रत्यवमर्शाय शम्भवे विश्वसिद्धये ॥"

और आचार्य क्षेमराज उस विश्वाहन्तानिष्ठ के शिव के विषय में यह कहते हैं कि—

(१) 'शिव एव विश्वस्य आत्मा।' (शि. सू. वि. १/१)

(२) यद्यद् दृश्यं बाह्यमाभ्यन्तरं वा, तत्तत् सर्वम् 'अहमिदम्' इति सदाशिववन्महासमापत्या स्वाङ्गकल्पमस्य स्फुरति न भेदेन। (शि. सू. वि. १/१४)

'दृश्यं शरीरम्' (शि. सू. वि. १/१४) में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गयी है।

(३) विश्वात्मकशिवाभिन्नत्वम् एषोऽपि अर्थो विवक्षितः।

(शि. सू. वि. १/१७

(४) शुद्धविद्योदयाच्चक्रेशत्वसिद्धिः ॥ (शि. सू. वि. १/२१)

(५) "वैश्वात्म्य प्रथावाञ्छया यदा शक्तिं संधत्ते दा **'अहमेव सर्वम्'**' इति शुद्धविद्याया उदयात् विश्वात्मक स्वशक्तिचक्रेशत्वरूपं माहेश्वर्यस्य सिद्ध्यति ॥"

(शि. सू. वि., १/२१)

"**स्वाङ्गरूपेषु** भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या ॥"

(६) दिदृक्षयेव सर्वार्थान्यदा व्याप्यावतिष्ठते।
तदा किं बहुनोक्तेन स्वयमेवावभोत्स्यते ॥

—स्पन्दकारिका

---

१. विरूपाक्षपञ्चाशिका

(७) 'भगवान **विश्वशरीर**' (प्र. हृ. ३) 'श्रीपरमशिवः **स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं**' (प्र. हृ. ४) 'यथा च एवं **भगवान् विश्वशरीरः** (प्र. हृ. ४) '**विश्वशरीरः** शिवभट्टारक एव (प्र. हृ. ४) 'न सावस्था न यः शिवः' (स्पन्दकारिका)— इन उद्धरणों से शिव के विश्वशरीरी **'विश्वाहन्तामय'** स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है और योगी की मुक्ति का आदर्श स्वरूप भी 'विश्वाहन्ता' ही है।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि– उत्पलदेव भी इसी 'विश्वाहन्ता' की प्राप्ति को साधना का चरम लक्ष्य मानते हुए कहते हैं—

'**सोऽहं ममायं विभवं** इत्येवं परिजानतः ॥'

'विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्श बृंहितः ॥'

उत्पलदेव— 'प्रत्यभिज्ञाकारिका'

'विश्वाहन्ता' या 'पूर्णाहन्ता' के दो पक्ष-

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि 'प्रत्यवमर्श का माहात्म्य यह है कि इस दशा में— (१) अपनी आत्मा से एकीभूत जो यह विश्व है यह अपने भीतर स्थित है।

(२) यही अन्तस्थ विश्व बाहर 'इदन्ता' के रूप में **'विश्व'** बनकर उद्भासित हो रहा है।

"यद्विश्वं स्वात्मैक्येनान्तः स्थितं बहिरिदन्तयोद्भासयन्।"

(३) योगी को चाहिए कि वह **पूर्णाहन्ता में विश्रान्तिरूप** अभेदात्मक अवस्था में संलीन रहे—

"पूर्णाहन्ताविश्रान्त्याभेदमापादयेत् ॥"

(४) योगी का **स्वस्वरूप में विश्रान्ति रूप जो विमर्श** है वही **'अहम्'** है—

"या स्वस्वरूपे विश्रान्तिर्विमर्शः सोऽहमित्ययम् ॥"[१]

स्वस्वरूप में विश्रान्ति ही यथार्थ 'अहम्' है।

"प्रकाश (नील, सुख आदि) की आत्मा में विश्रान्ति या लय को ही **'अहम्भाव'** या **'पराहन्तापरामर्श'** कहा गया है। समस्त अपेक्षाओं के निरुद्ध हो जाने पर वही विश्रान्ति (तृप्ति) **'स्वातन्त्र्य' 'मुख्यकर्तृत्व'** एवं **'ऐश्वर्य'** के नाम से कही जाती है।"—

१. अजडप्रमातृसिद्धि (१५)

"प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तितः।
उक्ता च सैव विश्रान्तिः सर्वापेक्षा निरोधतः।
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च॥"

पूर्णाहन्ता-प्राप्ति का कल-

पूर्णाहन्ता प्राप्त हो जाने पर विश्व की सृष्टि-लय करने वाली संवित् शक्तियों पर अपना सम्पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो जाता है— "तदा प्रकाशानन्दसार-महामन्त्र वीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्गसंहारकारि निज संविद्देवता चक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवतीति शिवम्॥"[१]

विश्वात्मैक्यवाद और विश्वाहन्ता-

तान्त्रिक शैव-शाक्त दर्शन विश्व को शिव एवं जीव दोनों से अभिन्न मानता है और साधना के लिए इस विश्वाहन्ता का चिन्तन भी करता है।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि-

विज्ञानभैरवकार इसी विश्वाहन्तात्मक परामर्श का उपदेश देते हुए कहते हैं—

"सर्वं देहं चिन्मयं हि जगद् वा परिभावयेत्।
युगपन्निर्विकल्पेन मनसा परमोदयः॥"[२]

"सर्वं देहं चिन्मयं" का सिद्धान्त **'सर्वचिन्मयवाद'** की ओर भी सङ्केतित करता है।

"विश्वाहन्ता" (जगत के रूप में अपनी विराट अस्मिता की अनुभूति) के इसी विराट स्वरूप में नित्यस्थिति होना या उसका निरन्तर परामर्श करते रहना ही शैव-शाक्त-साधना का लक्ष्य है। इसी विषय में शब्दान्तर में यही बात इस प्रकार कही गयी है—

"सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्।
युगपत् स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत्॥"[३]

'शिव' 'आत्मा' 'शक्ति' और 'विश्व' ये सभी अभिन्न हैं। इन सभी में एकता की अनुभूति करना ही अद्वैतवादी शैव शाक्त दर्शन का चरम लक्ष्य है।

******

---

१. शक्तिसूत्र (२०)
२. विज्ञानभैरव (६२)
३. विज्ञानभैरव (६३)

अध्याय-१०
समयमत की साधना-दृष्टि

समयमत के अनुयायियों की साधना एवं पूजा-पद्धति-

समयमतानुवर्ती 'समय' (सादाख्य तत्त्व) की सपर्या सहस्त्रदल में किया करते हैं। वे बाह्याचारात्मक सपर्या— बाह्य पीठादिक में सपर्या-विधान के विरुद्ध हैं।[१]

(क) जो-जो संसारयात्रानुवर्ती, आत्मोपासक, जीवन्मुक्त, योगीश्वर 'समयी' हैं वे सादाख्यतत्त्व का अनुचिन्तन एवं आत्माराधन किया करते हैं और उनकी पूजा की पद्धति रहस्यमयी और तात्त्विक होती है। उनकी पूजा प्रतीकात्मक या परा पूजा होती है। उनकी पूजा की पद्धति इस प्रकार है—

"जपो जल्पशिशल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्य क्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामस्संवेशस्सुखमखिलमात्मार्पण दृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसिताम्॥"[२]

\+ \+ \+ \+

"आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विविधोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥"[३]

(ख) जो-जो योगीश्वर समयी विजन या गुहान्तर में पद्मासनस्थ एवं निगृहीतेन्द्रिय होकर पूजा करते हैं उनकी पूजा का विधान पृथक है।[४]

---

१. आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—
"समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्वस्य सपर्या सहस्त्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।"

२. शङ्कराचार्य (सौन्दर्य लहरी)

३. "ये ये समयिनो योगीश्वरा जीवन्मुक्ताः संसारयात्रामनुवर्तमाना : सादाख्यतत्वमनुचिन्तयतः आत्मैकप्रवणाः वर्तन्ते तेषां 'जपो जल्पशिल्पम्' इत्यादिना सपर्याप्रकारो निरूपितः॥"

४. ये तु समयिनो योगीश्वराः विजने गुहान्तरे वा बद्धपद्मासनाः निगृहीतेन्द्रियाः सादाख्यतत्त्व-ध्यानैकनिष्ठाः वर्तन्ते तेषां वक्ष्यमाणचतुर्विध षड्विधैक्यानुन्धानमेव भगवत्या सपर्येति अर्थादुक्तं भवति। —लक्ष्मीधरा

ये समयीगण भगवती की पूजा चतुर्विध या षड्विध ऐक्यानुसन्धानपूर्वक किया करते हैं।

दोनों प्रकार की समय-पूजा में **बाह्यपूजा स्वीकृत नहीं है-** ''अतश्च पक्षद्वयेऽपि बाह्यपूजायां तत्क्रियाकलापे च तत्सम्पादनायां च क्लेशो नास्ति समयिनामिति रहस्यम् ॥''[१]

(ग) लक्ष्मीधर ने बताया है कि सामयिकों का एक वर्ग है जो कि बाह्यपूजा स्वीकार करता है किन्तु वे एकदेशीय हैं प्रमुख नहीं हैं।[२]

त्रिपुरसुन्दरी की पूजा का स्थान

त्रिपरसुन्दरी की पूजा का स्थान निम्न है—

(१) 'सूर्यमण्डल' में पूजा

''सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत् ॥''

—चन्द्रज्ञान विद्या

(२) 'चन्द्रमण्डल' में पूजा

''पौर्णमास्यां **चन्द्रबिम्बे** ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम्।
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पठेन्नामसहस्रकम् ॥२२॥''
कीर्तयेन्नामसाहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः।

(३) 'सुधा-सागर' के मध्य पूजा

''**सुधासागरमध्यस्थां** ध्यात्वा श्री ललिताम्बिकाम्।
य पठेन्नाम साहस्रं विषं तस्य विनश्यति ॥२६॥''

(४) 'चक्रराज' में पूजा

''रात्रौ **यश्चक्रराजस्था**मर्चयेत् परदेवताम्।
स एव ललितारूपस्तद्रूपा ललिता स्वयम् ॥'' (५६)
महनवम्यां यो भक्त श्री देवीं **चक्रमध्यगाम्**।
अर्चयेन्नामसाहस्रैस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥५८॥

---

१. लक्ष्मीधरा टीका (श्लोक क्र. २७)
२. यत्तु चन्द्रज्ञानविद्यायामुक्तम्— ''सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्। पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्। इति बाह्यपूजाप्रकार कथनं, तत्तु समयैकदेशिमतमिति ॥''
—लक्ष्मीधरा (श्लोक २७)

(५) 'सहस्त्रदल' में पूजा

'समयिनां' मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य ।
सपर्या सहस्त्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ ॥[१]

भगवती की बाह्यवर्ती पूजा

लक्ष्मीधर के मत में 'समय मत' में बाह्य पूजा स्वीकृत नहीं है यही कारण है कि आचार्य लक्ष्मीधर ने यह कहा है कि "समयिनां मते समयस्य— सादाख्य-तत्त्वस्य सपर्या सहस्त्रदलकमल एव **न तु बाह्ये पीठादौ** ॥"[२] किन्तु यह सर्वांशतः सत्य प्रतीत नहीं होता।

(१) प्रथमतः तो स्वयं 'चन्द्रज्ञान विद्या' में ही देवी की पूजा (आन्तर पूजा के स्थान में) **बाह्यवर्ती सूर्यमण्डल में करने का विधान प्रस्तुत** किया गया है—

"सूर्यमण्डल मध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत् ॥"

(२) इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी हैं यथा— 'ललिता सहस्त्रनाम' में कहा गया है कि— **"चक्राधिराज" की भी पूजा करनी चाहिये ।**

(क) **चक्राधिराजमभ्यर्च्य** जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम् ।
जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्त्रकम् ॥२३॥
चक्रराजार्चनं देव्या जपो नाम्नां च कीर्तनम् ॥२५॥

अन्य बाह्य विधान

(ख) **बिल्वपत्रैश्चक्रराजे** योऽर्चयेल्ललताम्बिकाम् ।
पद्मैर्वा तुलसीपुष्पैरेभिर्नामसहस्त्रकैः ।
सद्यः प्रसादं कुरुते तस्य सिंहासनेश्वरी ॥२१-२२)

भगवती की पूजा एवं उनके ध्यानात्मक विभिन्न स्वरूप

चक्रपूजा-

चक्रराजार्चनं देव्या जपो नाम्नां च कीर्तनम् ॥२५॥
श्री चक्रे मां समभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम् ॥४४॥

(ग) चक्रों में देवी का निवास और देवी का विराट रूप

(१) 'मूलाधारैकनिलया' ब्रह्मगन्थिविभेदिनी ।

---

१. आचार्य लक्ष्मीधर— लक्ष्मीधरा-श्लोक (२७)

(२) **'मणिपूरान्तरुदिता' विष्णुग्रन्थि** विभेदिनी ।।३८।।

(३) **'आज्ञाचक्रान्तरालस्था' रुद्रग्रन्थि** विभेदिनी ।।

(४) **'सहस्त्राम्बुजारूढा'** सुधासाराभिवर्षिणी ।।३९।।

(५) **'ओड्याणपीठनिलया' बिन्दुमण्डलवासिनी** ।।८३।।

(६) 'चक्रराजनिकेतना' (६०) **विश्वरूपा** (६२) **तुया** (६३)

अन्य बाह्यवर्ती विधान

(७) **पञ्चप्रेतासनासीना** पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी ।।६१।।

(८) सृष्टिकर्त्री **ब्रह्मरूपा**, गोप्त्री **गोविन्द**रूपिणी ।
संहारिणी **रुद्ररूपा** तिरोधानकरीश्वरी ।।६४।।

(९) **भानुमण्डल** मध्यस्था भैरवी भगमालिनी ।।६५।।

भगवती के अनन्त रूप

(१०) **पद्मासना** भगवती पद्मनाभसहोदरी ।।६५।।
सहस्त्रशीर्षवदना सहस्त्राक्षी सहस्त्रपात् ।।६६।।

(११) नारायणी **नादरूपा नामरूपविवर्जितः** ।।७०।।
ह्लींकारी ह्लीमती हृद्या हेयोपादेयवर्जिता ।।७०।।

'काम्या **कामकलारूपा**' (७३) विन्ध्याचल निवासिनी (७५) विश्वाधिका (७५) **विधात्री वेदजननी विष्णुमाया** विलासिनी (७५) वह्निमण्डलवासिनी (७७)।

(१२) **देवी वाणीरूपा भी हैं–**
परा प्रत्यक्चितीरूपा **पश्यन्ती** पर देवता ।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका ।।८१।।

(१३) **नित्या षोडषिकारूपा श्रीकण्ठार्धशरीरिणी** ।।
'मूलप्रकृतिरव्यक्ता' 'प्रसिद्धा **परमेश्वरी** ' ।।८६।।

(१४) 'विविधाकारा' 'विद्याविद्यास्वरूपिणी' (८७)

(१५) **चिच्छक्तिश्चे**तनारूपा **जडशक्तिर्जडात्मिका गायत्री व्याहृतिः सन्ध्या** (९०) तत्त्वासभा तत्त्वमयी (९१) वज्रेश्वरी (९७) सिद्धेश्वरी सिद्धविद्या सिद्धमाता (९७) **विशुद्धिचक्रनिलयाऽरक्तवर्णा त्रिलोचना** खट्वाङ्गादिप्रहरणा वदनैक-समन्विता ।। (९८)

अनाहताब्जनिलया श्यामाभा वदनद्वया ।

द्रंष्ट्रोज्ज्वलाऽक्षमालादिधरा रुधिरसंस्थिता ।।१००।।

मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता ।

वज्रादिकायुधोपेता डामर्यादिभिरावृता ।।१०२।।

रक्तवर्णा मांसनिष्ठा गुडान्तप्रीतमानसा ।

'लाकिन्यम्बास्वरूपिणी' (१०३)

स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्वक्त्रमनोहरा ।

शूलाद्यायुधसम्पन्ना पीतवर्णातिगर्विता ।।१०४।।

मेदोनिष्ठा मधुप्रीता बन्धिन्यादिसमन्विता ।

दध्यान्तासक्तहृदया **काकिनीरूप**धारिणी ।।

मूलाधाराम्बुजारूढा पञ्चवक्त्राऽस्थिसंस्थिता ।

अङ्कुशादिप्रहरणा वरदादिनिषेविता ।।१०६।।

आज्ञाचक्राब्जनिलया शुक्लवर्णा **षडानना** ।

मज्जासंस्था हंसवतीमुख्य शक्तिसमन्विता ।

हरिद्रानैकरसिका **हाकिनीरूपधारिणी** ।। (१०८)

सहस्त्रदलपद्मस्था[१] सर्ववर्णोपशोभिता ।

सर्वायुधधरा शुक्लसंस्थिता सर्वतोमुखी ।

सर्वोदनप्रीतचित्ता **याकिन्याम्बास्वरूपिणी** ।

स्वाहा स्वधा मतिर्मेधा श्रुतिस्मृतिरनुत्तमा ।।११०।।

विमर्शरूपिणी विद्या वियदादिजगत्प्रसूः ।।११२।।

कात्यायनी (११३) कमलाक्षनिषेविता (११३) निखिलेश्वरी (११५) **पराशक्ति** (११६) महाकैलासनिलया (११७)।

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता ।

श्री **षोडाक्षरीविद्या** त्रिकूटा कामकोटिका ।।११८।।

'हृदयस्था रविप्रख्या', 'दाक्षायणी...दक्षयज्ञविनाशिनी'

'गुरुमूर्ति' 'गोमाता' (१२०-१२१)।

---

१. भगवती के दो-तीन रूप हैं— (१) विशिष्ट देवता रूप (२) विश्वरूप या (३) विराटरूप। (४) मन्त्र, चक्र, पीठ, यंत्र आदि के रूप में स्थित।

दहराकाशरूपिणी (१२२) **आदिशक्ति** अनेककोटिब्रह्माण्डजननी (१२४) क्लींकारी, त्रिपुरा, त्र्यक्षरी, उमा, गौरी शैलेन्द्रतनया (१२५-१२६) **विश्वगर्भा**, वागधीश्वरी लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला (१२७-१२८)।

'इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी। सर्वाधारा....... (१३०) **ब्रह्मात्मक्यैस्वरूपिणी** (१३२) ब्राह्मणी **ब्राह्मी** (१३२) **भाषारूपा** (१३३) राजराजेश्वरी (१३४) **राज्यलक्ष्मी** (१३५) **सावित्री सच्चिदानन्दरूपिणी** (१३६) 'सरस्वती शास्त्रमयी' सदाशिव पतिव्रता, **गुरुमण्डलरूपिणी** (१३७-१३८) **माया** (१३९) **महेश्वरी, महाकाली, अपर्णा, चण्डिका,** चण्डमुण्डासुरनिषूदिनी (१४५) सर्वलोकेशी, **विश्वधारिणी** (१४६) यज्ञरूपा (१४७) **विश्वतोमुखी** प्राणरूपिणी, प्रत्यग्रूपा, **पराकाशा** (१४९) 'परमाणुः परात्परा (१५३) सर्वान्तर्यामिणी (१५४) **ब्रह्माणी ब्रह्मजननी** (१५५) **प्राणेश्वरी प्राणदात्री पञ्चाशत् पीठरूपिणी** (१५६) **मन्त्रसारा, वर्णरूपिणी** (१५८) त्रयी (१६३) त्रिपुरमालिनी (१६३) **सुधास्मृतिः** (१६३) विश्वग्रासा विद्रुमाभा **वैष्णवी विष्णुरूपिणी** (१६६) **नादरूपिणी, बैन्दवासना, तत्त्वाधिका, तत्त्वमयी** तत्त्वमर्थस्वरूपिणी (१६७-१८८) **विश्वमाता, जगद्धात्री** (१७३) **पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी** (१७४) लोकातीता **गुणातीता सर्वातीता** शमात्मिका (१७६) त्रिपुराम्बिका, त्रिपुरा, (१७८-१७९) **ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी** (१७९) योनिमुद्रा (१८०) षडध्वातीतरूपिणी (१८१)

"**श्रीचक्रराजनिलया** श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी।

श्री **शिवा शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका**॥ (१८३)

भगवती **विश्वजननी, विश्वधारिणी, विश्वपालिका, विश्वरूपा** एवं **विश्वसंहर्त्री** हैं। विश्व की सारी सत्तायें, सारे अस्तित्व, सारे रूप, सारे नाम, सारे ऐश्वर्य, सारे ज्ञान, सारे ज्ञेय एवं सारे पदार्थ भगवती राजराजेश्वरी ही हैं। वे ही बन्धन भी हैं और वे ही मुक्ति भी हैं। वे ही उपाय और उपेय दोनों हैं। वे ही बंधन और मोक्ष दोनों हैं।

'ललितात्रिशतीस्तोत्र' (ब्रह्माण्ड पुराण) में भगवती ललिता को जगदीश्वरी (८) **ईकाररूपा** (९) **लकाररूपा** (१३) **ह्लींकाररूपा, ह्लींकारवाच्या, ह्लींकारपूज्या,** ह्लींकारपीठिका **ह्लींकारवेद्या, ह्लीं,** ह्लींशरीरिणी, **हकाररूपा** (१७-२०) **ह्लादिविद्या** (२३) **सकाररूपा** (२४) सर्वकर्त्री, सर्वभर्त्री, सर्वहन्त्री, सर्वसाक्षिणी, **सर्वात्मिका, सर्वाधारा, सर्वगता, सर्वमाता** (२४-२६) **ककारार्था** (२७) **हकारार्था** हाकिनी (३०-३१) **लकाराख्या** (३४) लकारिणी (५१) **त्रिकोणरूपिणी** शक्तिर्बिन्दुरूपशिवस्स्मृतः॥ (७४) **ह्लीङ्कारमन्त्रसर्वस्वा** (५९)

कामेश्वर **ब्रह्मविद्या** (४९) सकला **सच्चिदानन्दा** (४४) **सकराख्या** (४३) आदि ३०० नामों से पुकारा गया है।

भगवती के इस विराटरूप को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि भगवती की पूजा मात्र सहस्रदल पद्म मात्र में ही की जाती है तथा उनकी पूजा मात्र मानसी या परा पूजा है और उसमें बाह्यपूजा सर्वांशत: निषिद्ध है।

लक्ष्मीधरोक्त 'समय-मत' एवं उसका सपर्या-विधान

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि

आचार्य लक्ष्मीधर ने आचार्य शङ्कर-प्रणीत 'सौन्दर्य लहरी' की टीका में 'कौलमत' एवं 'समयमत' की सविस्तार विवेचना की है।

'समयमत' या 'समयाचार' का अर्थ

जिस सिद्धान्त एवं साधना में (सम्प्रदाय या साधना-पद्धति में) **'समय'** (शिव) एवं **'समया'** को परात्पर तत्त्व मानकर उनकी सपर्या की जाती है— उसे 'समय मत' कहते हैं।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'समयाचार' 'आन्तर पूजा' में अनुराग है अर्थात् **'समयाचार'** आन्तरपूजा-निष्ठा है— "समयाचारो नाम आन्तर-पूजारति: ॥"[१]

'समयाचार' एवं 'कुलाचार' में भेद

(१) **'समयाचारो'** नाम आन्तरपूजारति:।

(२) **'कुलाचारो'** नाम बाह्यपूजारतिरिति ॥ — लक्ष्मीधर की दृष्टि

'समयमत' में भगवती 'समया' की पूजा होती है

"'भगवत्पादाचार्या: समयमतपारदृश्वान: समयाचारप्रवणा: **समयरूपां भगवतीं** स्तुवन्ति ॥"

आचार्य शङ्कर की दृष्टि

आचार्य शङ्कर ने उन्हीं राजराजेश्वरी, परम्बिका भगवतीं **'समया'** का ध्यान-स्वरूप एवं उनके भजन (पूजा) का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक)।

"सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥"

(अर्थात् पीयूष-पयोधि के मध्य, कल्पवृक्षों की वाटिका से आच्छादित **'मणिद्वीप'** में, नीप वृक्षों के उपवन के मध्य **'चिन्तामणियों से निर्मित** घर में, त्रिकोणाकृति वाले मञ्च पर, परम शिव के पर्यङ्क पर विराजमान चिदानन्दलहरी-स्वरूपा तेरे कोई अपवादस्वरूप (विरले) ही भक्त तेरा भजन किया करते हैं। वे धन्य हैं।)

यहाँ भगवती को **'चिदानन्दलहरी'** के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वैष्णवशास्त्र भी कहता है कि—

(१) भगवती सीता श्रीराम की— 'आह्लादिनी शक्ति' हैं।

(२) भगवती राधा श्रीकृष्ण की— 'आह्लादिका शक्ति' हैं।

(३) शैव शास्त्र **'शक्ति'** के द्वितीय रूप को **'आनन्द शक्ति'** मानता है।

(४) उपनिषदों में **'आनन्दं ब्रह्म'** कहकर आनन्द को ही ब्रह्म के स्वरूप में स्वीकार किया गया है।

(५) परमात्मा त्रिपादात्मक है। उसके त्रिपादों में **'आनन्द'** भी एक पाद है। वह 'सच्चिदानन्द' **(सत्, चित्, आनन्द)** है।

(६) शङ्कराचार्य की ललिता देवी **'चिदानन्दलहरी'** हैं।

'समयमत' में 'श्रीचक्र' पूज्य हैं- 'श्री चक्र' की अपर आख्या है— 'वियच्चक्र'। इसे 'वियच्चक्र' इसलिए कहते हैं क्योंकि इसकी पूजा 'वियत्' (आकाश) में हुआ करती है— "श्री चक्रस्य वियच्चक्रमिति नामान्तरमस्ति। वियच्चक्रत्वं तु वियत्पूज्यत्वात्॥"[१]

वियत्पूज्यत्व द्विविध है।

'वियत्पूज्यत्व' के भेद

(१) 'दहराकाशज वियत्पूज्यत्व'

(२) 'बाह्याकाशजवियत्पूज्यत्व'

---

१. लक्ष्मीधर-लक्ष्मीधरा (श्लोक ८)।

'वियत्पूज्यत्वं द्विविधं— 'दहराकाशजं' 'बाह्याकाशजं'

(१) **बाह्याकाशज वियत्पूज्यत्व–** बाह्याकाशावकाश अर्थात् पीठादिक, भूर्जपत्र, शुद्धपट, हेम-रजतादि पट्टतल में वियच्चक्र निर्मित करके उसकी पूजा करना ही बाह्याकाशज वियत्पूज्यत्व है।[१] यही चक्रपूजा कौलों की पूजा कही जाती है?

(२) **दहराकाशजपूजा–** 'दहराकाशज पूजा' का अर्थ है हृदयाकाशावकाश में चक्र की पूजा।[२]

'सुधासिन्धु' का तात्पर्य भौगोलिक और भौतिक अमृत का समुद्र नहीं है। नव योनियों में नीचे स्थित शिवात्मक योनि चतुष्क के ऊपर स्थित शक्त्यात्मक योनिपञ्चक के अध:प्रदेश में स्थित **'बैन्दवस्थान'** का नाम ही **'सुधासिन्धु'** है।[३]

सामयिकों की पूजा के स्थान का स्वरूप

'भैरवयामल' एवं 'वामकेश्वरमहातन्त्र' की 'बहुरूपाष्टकविद्या' में कहा गया है कि—

"बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्टपम्॥
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे॥
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता।
कुलयोषितकुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा॥"

---

१. "**बाह्याकाशजं** नाम बाह्यावकाशावकाशे पीठादौ भूर्जपत्र-शुद्ध पट-हेम-रजतादिपट्टतले लिखित्वा समाराधनम्॥"

२. **दहराकाशजं** नाम हृदयाकाशावकाशे चक्रस्य पूजनम्॥
इदमेव समयपूजेत्याहुः समयिनः। — लक्ष्मीधराः, श्लोक ८

३. तत्र नव योनिष्वधस्स्थितशिवात्मकयोनिचतुष्कस्योपरि ऊर्ध्वस्थितशक्त्यात्मकयोनिपञ्चकादधः-प्रदेशस्य बैन्दवस्थानस्य नाम सुधासिन्धुरिति॥
— लक्ष्मीधरा, श्लोक ८

'देव्या मन्दिरमुत्तमम्' का क्या अर्थ है? **'देवी मन्दिर'** का अर्थ है— 'त्रयश्चत्वमारिंशत्त्रिकोणात्मक श्रीचक्र'।।

'शिवाकारमञ्च'– शिवत्रिकोणात्मक मञ्च, त्रिकोणात्मक श्रीचक्र।

'भृतक'= भृत्य अर्थात् द्रुहिणहरिरुद्रईश्वर।

'शिवा'= कुण्डलिनी शक्ति। **'शिवार्कमण्डलं भित्वा'**='अर्कमण्डल' हृदय-कमल के ऊपर स्थित सूर्य। उस सूर्य का भेदन करके, अर्थात् उसे आच्छादित करके, अर्कमण्डल के ऊपर स्थित ब्रह्मद्वार को आच्छादित करके सहस्रदल कमलान्तस्थित इन्दुमण्डल को (कुण्डलिनी) डसती है।

'कुलयोषित'– कुण्डलिनीशक्ति **'कुल'** (सुषुम्ना मार्ग) का त्याग करके वहीं इन्दुमण्डल में स्थित होकर **'पर वर्षण'** करती है— अर्थात् ७२,००० नाड़ियों को अमृत से सींच देती है। **'पुनः आस्थाय'** फिर वही भगवती कुण्डलिनी शक्ति अपने स्थान 'स्वाधिष्ठानचक्र' में आकर सो जाती है। भगवान सदाशिव कहते हैं—

'सुधाब्दौ नन्दनोद्याने रत्नमण्टपमध्यगाम्।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम्।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमाचरेत्।।'

प्रश्न— समयाचारी **तान्त्रिक भगवती की उपासना ''सहस्रार'' में ही क्यों करते हैं?**

उत्तर— सारे शैव-शाक्त तान्त्रिक अन्तिम पुरुषार्थ, अन्तिम शिखर सर्वोच्च उपलब्धि एवं सर्वोच्च आध्यात्मिक स्थिति के रूप में **'सामरस्य'** (शिव शक्ति के सम्मिलन) को ही स्वीकार करते हैं; क्योंकि यह सम्मिलन या यह **'संगम'** (कौलों के शब्द में 'मैथुन') **'सहस्रार'** में ही होता है और वहीं शिव-शिवा या शक्तिमान शक्ति एकाकार होकर विराजते हैं अतः इसी परमधाम मं समयी **'समय' एवं 'समया' की पूजा** किया करते हैं और वे 'सहस्रार' में पूजा करने के बहाने यह सङ्केतित करते हैं कि सहस्रार को छोड़कर अन्य किसी भी 'चक्र' या 'पीठ' में **'समय' एवं 'समया' की पूजा** (उनकी दृष्टि में) अपूर्ण स्थिति, साधना की हेयावस्था या स्थूल साधना है। सहस्रारस्थ **'सामरस्य'** ही यथार्थ साधना एवं यथार्थ सिद्धि है। जहाँ **'साधना' स्वयं 'सिद्धि' बन जाय वही 'साधना'-'सिद्धि'**

के समारस्य की स्थिति; जहाँ जीव स्वयं ब्रह्म बन जाय वही परा दशा और जहाँ जीव-शिव-शक्ति तीनों एकाकार हो जायँ वही चरमावस्था अर्थात् 'सामरस्य' शैव तान्त्रिकों (समयी तान्त्रिकों) की साधना का चरम लक्ष्य है। चूँकि यह **'सहस्त्रार'** में ही सम्भव है अत: 'समयी' वहीं साधना करते हैं।

आचार्य शङ्कर ने भगवती के निम्नतम आवास प्रदेश से लेकर उच्चतम प्रदेश के क्रमिक आरोहण-सोपानों में सर्वोच्च सोपान को **'सहस्त्रार'** में ही स्वीकार किया है। शैव-शाक्त तान्त्रिक शिव-शक्ति के सम्मिलन-स्थान **'सहस्त्रार'** की प्राप्ति को ही अपनी साधना का लक्ष्य मानते हैं अत: यदि **आचार्य लक्ष्मीधर** ने यह कहा है कि— ''समयिनां मते 'समयस्य' सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या **सहस्त्रदलकमल** एव न तु बाह्ये पीठादौ ।।'' —तो ठीक ही कहा है।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि में शक्ति के आरोहण-सोपान

आचार्य शङ्कर ने भी शक्ति की यात्रा के अन्तिम सोपान को **'सहस्त्रार'** ही स्वीकार किया है। वे कहते हैं—

''महीं **मूलाधारे,** कमपि **मणिपूरे** हुतवहं,
स्थितं **स्वाधिष्ठाने** हृदि मरुत**माकाशमुपरि,**
मनोऽपि **भ्रूमध्ये** सकलमपि भित्वा **कुलपथं**
सहस्त्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ।।''[१]

(पद योजना— हे भगवति! **मूलाधारे महीं,** कं **मणिपूरे** हुतवहमपि, **स्वाधिष्ठाने** हुतवहमपि, **हृदि** मरुतं, **आकाशमुपरि,** मनोऽप **भ्रूमध्ये** आकाशमपि— स्थितं,— सकलं कुल पथमपि भित्वा **'सहस्त्रारे'** पद्मे रहसि पत्या सह विहरसे।)

'शक्ति' का अन्तिम सोपान ''सहस्त्रार'' है।

---

१. सौन्दर्यलहरी (९)।

शक्ति की यात्रा के विभिन्न सोपान या पड़ाव

शक्ति का निम्नतम स्थान : 'ब्रह्मद्वार'

(७) **'सहस्त्रार'** चक्र में स्थित 'शक्ति'
(६) **'आज्ञा चक्र'** में स्थित 'शक्ति'
(५) **'विशुद्ध चक्र** में स्थित शक्ति'
(४) **'अनाहत चक्र'** में स्थित 'शक्ति'
(३) **'मणिपूरं'** चक्र में स्थित 'शक्ति'
(२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में स्थित 'शक्ति'
(१) **'मूलाधार'** चक्र के कुलकुण्ड में स्थित **'शक्ति'** (कुण्डलिनी शक्ति)

शक्ति की यात्रा के दो सापानों में (अर्थात् आरोहवरोह के सोपानों में)—

(१) **निम्नतम सोपान : 'ब्रह्मद्वार'** : मूलाधार का **'अग्निचक्र'**, मूलाधारस्थ **'त्रिकोण'** 'स्वयंभूलिङ्ग' की आवेष्टनगत भूमि और (२) **उच्चतम सोपान–** 'सहस्त्रार' है।

सारांश– 'शक्ति' अपने निम्नतम सोपान पर जहाँ से वह यात्रारम्भ करती है और जहाँ वह प्रत्येक जीव के जन्म से मृत्युपर्यन्त रहती है उस मूलाधार स्थान में **'शक्ति' की मूल स्थिति** है और उसकी अन्तिम स्थिति व्योम में है। अपनी यात्रा के सारे सोपानों को अतिक्रान्त करने पर उसे वह स्थिति सहस्त्रार में प्राप्त होती है।

'शक्ति' के अवस्थान के दो शृङ्ग

(१)	(२)
(मूलाधार चक्र) **अवरोहणात्मक** (निम्नतम) शृङ्ग (सोपान) — **'कुमारी शक्ति'** का शृङ्ग	(सहस्त्रार) **आरोहणात्मक** (उच्चतम) शृङ्ग (सोपान) — 'पतिव्रता' शक्ति का शृंग
'मूलाधार-चक्र' (निम्नतम चक्र)	'सहस्त्रार' (उच्चतम चक्र)

शक्ति की दो अवस्थायें

निम्नतम अवस्था	उच्चतम अवस्था
मूलाधार चक्रस्थ 'शक्ति'	**सहस्रारस्थ 'शक्ति'**
(१) सुषुप्त 'शक्ति'।	(१) पूर्ण जाग्रत **'शक्ति'**।
(२) शिव से **वियुक्त 'शक्ति'**।	(२) शिव से सामरस्य प्राप्त **'शक्ति'**।
(३) शिवाश्लिष्ट होकर भी शिव से सामरस्य प्राप्ति हेतु व्याकुल 'शक्ति'।	(३) शिवश्लिष्ट, सामरस्यगत **शक्ति**। (जो कि सामरस्य प्राप्त होने से उसकी प्राप्ति की इच्छा से रहित है।) अव्याकुल अत: पूर्णतृप्त **शक्ति**।
(४) **विरहिणी 'शक्ति'**।	(४) शिव-सम्मिलन-प्राप्त **'शक्ति'**।
(५) स्वत: निपतित **अमृत पीने वाली 'शक्ति'**।	(५) चन्द्रमा को डसकर स्वयं अमृत पीने वाली एवं नाडियों तथा जीव को अमृत पिलाने वाली शक्ति।
(६) जीवों के लिए **बन्धनरूपा 'शक्ति'**।	(६) जीवों को बन्धन से मुक्त करने वाली शक्ति।
(७) अनन्त काल से **निद्रामग्ना 'शक्ति'**।	(७) सहस्रार में पहुँचकर पूर्ण जाग्रत, पूर्णाह्लादित एवं तुरीयातीतावस्था प्राप्त 'शक्ति'।
(८) 'सहस्रार' एवं 'अकुल' के धाम में जाकर सामरस्य की **अभिलाषिणी 'शक्ति'**।	(८) सहस्रारस्थ एवं अकुल के सामरस्य प्राप्त शक्ति।
(९) शिव से वियोग की स्थिति में स्थित शक्ति।	(९) (शिव से संयोग) सम्मिलन की स्थिति।
(१०) जीव से अमृत छीन कर स्वयं अमृत पीने वाली शक्ति। (जीवाहार छीनने वाली शक्ति)।	(१०) चन्दमा से अमृत छीन कर स्वयं अमृत पीने वाली एवं जीव को भी अमृत पिलाने वाली शक्ति।

आचार्य लक्ष्मीधर ने **'समया'** की सहस्रार में स्थिति (अवस्थान) को ही पूज्यावस्था स्वीकार किया है किन्तु वे 'समया' (शिवा) केवल वहीं नहीं प्रत्युत् पिण्ड में अनेक केन्द्रों (चक्रों) में निवास करती हैं यथा—

(१) **'मूलाधारचक्र'** में स्थित 'समया'।

(२) **'स्वाधिष्ठानचक्र'** में स्थित 'समया'।

(३) **'मणिपूरचक्र'** में स्थित 'समया'।

(४) **'अनाहतचक्र'** में स्थित 'समया'।

(५) **'आज्ञाचक्र'** में स्थित 'समया'।

(६) **'सहस्रार'** में स्थित 'समया'।

"महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं।
स्थितं स्वाधिष्ठाने, हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये, सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे, सह रहसि पत्या विहरसे।"

— शङ्कराचार्य, —सौन्दर्यलहरी

हाँ, यह सत्य है कि समयाचारी, भगवती समया की पूजा का सर्वोच्च स्थान **'सहस्रार'** ही मानते हैं।

प्रश्न– यदि 'सहस्रार' ही पूज्य है अन्य चक्र नहीं फिर लक्ष्मीधर ने **'मणिपूरचक्र'** के स्थान में भी देवी की पूजा को स्वीकार क्यों किया? लक्ष्मीधर कहते हैं कि—

"मणिपूरे मणिपूरेचक्रे। यत्र स्थिता भगवती मणिभिः तत्त्रदेशं पूरयति, स देशो 'मणिपूरः' ॥"

"**समयिनां आन्तरपूजावसरे** तृतीयकमले नानाविध मणिगणखचितं भूषणार्पणं देव्याः कर्तव्यमिति।"

देवी को भूषणार्पण करना भी तो पूजोपचार है और वह यदि मणिपूर चक्र में किया जाता है तो स्वीकार करना पड़ेगा कि समयी 'मणिपूर चक्र' में भी भगवती की पूजा कते हैं वे आंशिक पूजा करते हों और चाहे सम्पूर्ण॥

भगवती और उनकी तत्त्वात्मक स्थिति

भगवती की सहस्रारोन्मुखी यात्रा विभिन्न तत्त्वों को पार करते हुए होती है और वे इस यात्रा में—

(१) **'मूलाधार चक्र'** में 'पृथ्वी तत्त्व' को।

(२) **'स्वाधिष्ठान चक्र'** में 'अग्नि तत्त्व' को।

(३) **'मणिपूर चक्र'** में 'जल तत्त्व' एवं 'अग्नि तत्त्व' दोनों को।

(४) **'अनाहत चक्र'** में 'वायु तत्त्व' को।

(५) **'विशुद्ध चक्र'** में 'आकाश तत्त्व' को।

(६) **'आज्ञा चक्र'** में 'मनस्तत्व' को अतिक्रान्त करते हुए 'सहस्रार' में पहुँचती हैं।

षट्चक्रवेधनात्मक साधना– 'महीं मूलाधारे' वाले श्लोक में प्रत्येक चक्र को किसी न किसी विशिष्ट तत्त्व से सम्बद्ध बताया गया है और देवी इन **सभी चक्रों को उनमें स्थित समस्त तत्त्वों के साथ लय** करती हुई अपनी यात्रा पूरी करती हैं।

स्पष्ट है कि 'समयाचार' में **'षट्चक्रवेधन' 'पञ्चतत्त्वविजय'** एवं **'पञ्च-तन्मात्रविजय'** की भी साधना स्वीकृत है। **लक्ष्मीधर** ने इन ५ तत्त्वों को चक्रों में स्थूल रूप में स्थित महाभूतों के रूप में नहीं प्रत्युत उनके 'कारण' (जनक) पञ्च-तन्मात्राओं के रूप में विद्यमान पाया है—

(१) 'मूलाधार स्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्ध्याज्ञात्मकानि **षट्चक्राणि**। एतानि पृथिव्यग्निजलपवनाकाशमनस्तत्त्वात्मकानि ॥'

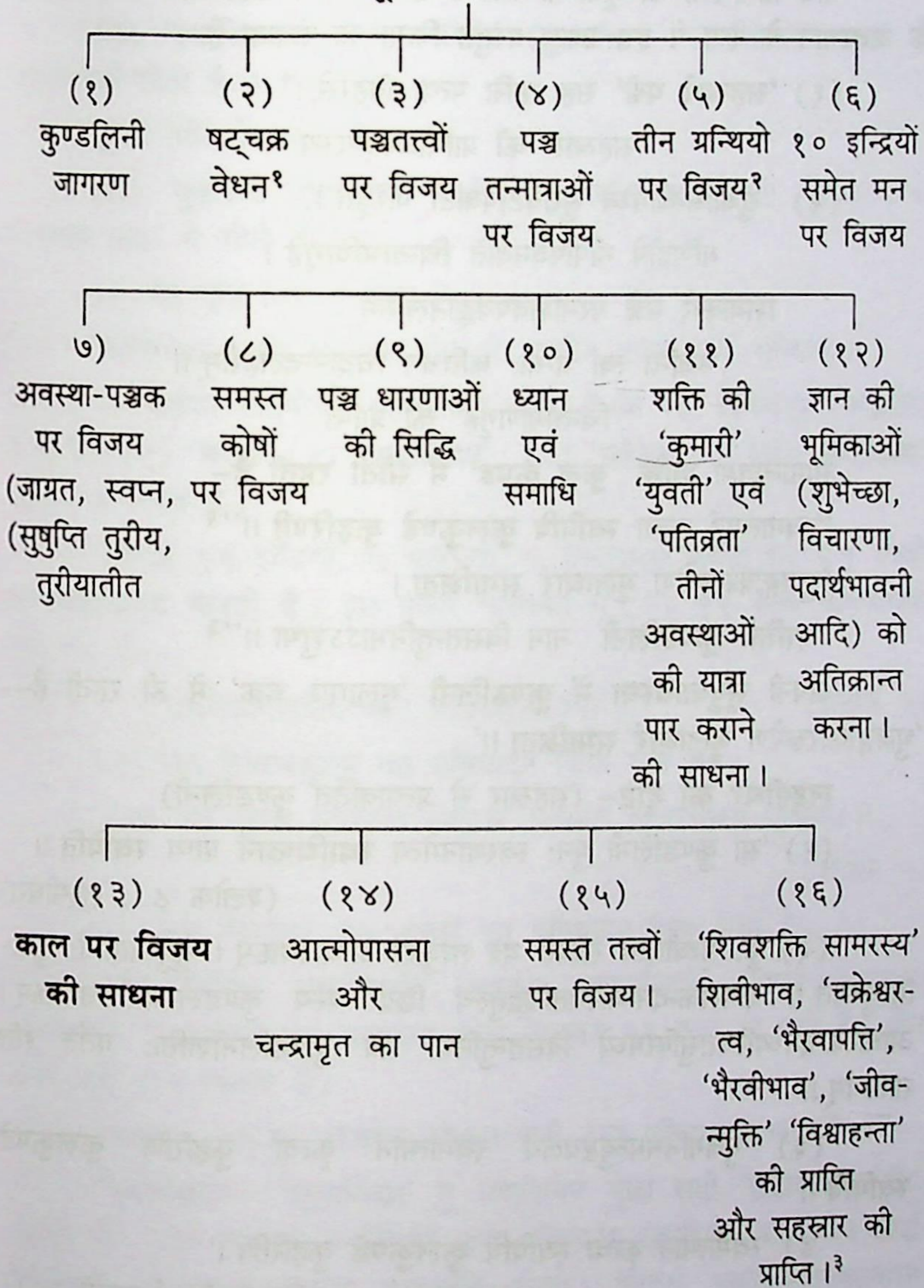
(२) 'तानि तत्त्वानि तेषु चक्रेषु तन्मात्रतयाऽवस्थितानि।
तन्मात्रास्तु गन्धरूपरसस्पर्शशब्दात्मका: ॥

चूँकि इन्द्रियाँ इन्हीं तन्मात्राओं से सम्बद्ध हैं यथा—

(१) शब्द तन्मात्रा– श्रोत्रेन्द्रिय (कान) (२) **स्पर्शतन्मात्रा**— त्वगेन्द्रिय (त्वचा) (३) **रूपतन्मात्रा**— चक्षुरेन्द्रिय (आँख) (४) **रसतन्मात्रा**— रसनेन्द्रिय (जिह्वा) (५) **गन्धतन्मात्रा**— नासिकेन्द्रिय (नाक)।

— तो इसका अर्थ यह निकला कि सामयिक साधक को **पञ्चभूतों, ११ इन्द्रियों, पञ्च तन्मत्राओं, सप्तचक्रों** एवं उन सबमें अवस्थित विभिन्न **देवी-देवताओं** एव तन्निहित **प्राकृतिक-दैवीय शक्तियों पर विजय** प्राप्त करते हुए **'कुण्डलिनी शक्ति'** को सहस्रार में ले जाना पड़ता है। षट् चक्रों को अतिक्रान्त करने की यात्रा में **ग्रन्थित्रय** ('ब्रह्मग्रन्थि' 'विष्णुग्रन्थि' एवं 'रुद्रग्रन्थि') **पर भी विजय** प्राप्त करनी पड़ती है। सारांश यह कि सामयिकों की ५ मूल पूजा यौगिक हैं।

सामयिकों की पूजा के विभिन्न साधना-सोपान



१-२. 'रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्यतः।
ब्रह्मग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥'

३. "सहस्रकमले शक्ति : शिवेन सह मोदते॥"

यदि सामयिकों की पूजा के स्वरूप को संक्षेप में कहा जाय तो इसे शक्ति के अवस्थान के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) **'सहस्रारे पद्मे'** सह रहसि पत्या विहरसे ।[१]

'सहस्रार' की प्राप्ति=सामरस्य

(२) ''सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते ।

मणिद्वीपे नीपोपवनवति **चिन्तामणिगृहे** ।

शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्

भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥''

'चिन्तामणिगृह' की प्राप्ति

सामान्यतया **शक्ति 'कुल कुण्ड' में सोती रहती है–**

''स्वमात्मानं कृत्वा **स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी** ॥''[२]

(भुजङ्गाकाररूपेण **मूलाधारं समाश्रिता** ।

''शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभाऽऽशुभा ॥''[३]

अपनी **सुषुप्तावस्था में कुण्डलिनी** 'मूलाधार चक्र' में ही रहती है— 'भुजङ्गाकाररूपेण **मूलाधारं समाश्रिता** ॥'

लक्ष्मीधर की दृष्टि– (सहस्रार से प्रत्यावर्तित कुण्डलिनी)

(१) 'सा कुण्डलिनी पुनः स्वस्थानमेत्य **स्वाधिष्ठानं** प्राप्य **स्वपिति** ॥

(श्लोक ८ : लक्ष्मीधरा)

(२) कुः पृथ्वीतत्त्वं लीयते यत्र तत्कुलं आधारचक्रम् । सुषुम्नामार्गः कुल-मित्युच्यते ॥ कमलकन्दमध्यस्थितछिद्रतुल्यं छिद्रं यस्य कुण्डलस्य तत्तथोक्तम्। आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा तत्र कुण्डलिनीशक्तिः वर्तत इति तात्पर्यम् ॥

(३) भुजगनिभमध्युष्टवलयं स्वमात्मानं कृत्वा कुहरिणि **कुलकुण्डे स्वपिषि** ॥

४) 'स्वमात्मानं कृत्वा **स्वपिषि कुलकुण्डे** कुहरिणि ।'

(शङ्कराचार्य की दृष्टि) (सौन्दर्य लहरी-१०)।

---

१. सौन्दर्य लहरी (९)

२. सौन्दर्य लहरी (१०)

३. वामकेश्वर महातन्त्र ।

लक्ष्मीधर एक जगह तो कहते हैं कि—

(क) '**स्वाधिष्ठानं** प्राप्य स्वपिति' (कुण्डलिनी '**स्वाधिष्ठान चक्र**' में जाकर वहाँ सोती है।)

दूसरी ओर वे कहते हैं—

(ख) 'कुहरिणी **कुलकुण्डे स्वपिषि**' (अर्थात् कुण्डलिनी 'कुलकुण्ड'= "मूलाधार चक्र' में सोती है।)

— यह दृष्टि-विपर्यय कैसा ?

'पत्या सह रहसि सहस्रपत्रे विहरसे इत्यनेन तत्त्वचतुष्टयं सूचितम् ॥

— कहकर **लक्ष्मीधर** यह बताना चाहते हैं कि यहाँ तत्त्वचतुष्टय सङ्केतित है जो कि (१) '**माया**' (२) '**शुद्धविद्या**' (३) '**महेश्वर**' एवं (४) '**सदाशिव**' के रूप में स्थित है।

भगवती ११ इन्द्रियों, ५ महाभूतों, ५ तन्मात्राओं अर्थात् इन **२१ तत्त्वों को अतिक्रान्त करती हैं**। इस प्रकार समयमत में (१) **२१ तत्त्व प्रतिपादित** किए गए हैं—

'एवमेकविंशतितत्त्वानि प्रतिपादितानि ॥' (श्लोक ९)

(२) फिर **तत्त्वचतुष्टय का प्रतिपादन** किया गया है—

'पत्या सह रहसि सहस्रपत्रे विहरसे' इत्यनेन तत्त्वचतुष्टयं सूचितम् ॥' (श्लोक ९)

(३) सब मिलाकर **२५ तत्त्वों का प्रतिपादन** किया गया है—

"एवं मिलित **पञ्चविंशति तत्त्वानि** मायापर्यन्तानि मायया युक्तत्वात् प्राकृतानि ॥" सदाशिव एवं सादाख्या कला मिलकर २६ तत्त्व हो जाते हैं। शैव दर्शन ३६ तत्त्व मानता है।

'माया'– "**माया** महेश्वरेण संयुक्ता सती तस्य **जीवभाव**मापादयति ॥"

'शुद्धविद्या'– **'शुद्धविद्या'** तु सदाशिवेन युक्ता सती **'सदाख्याकलेति'** व्यवह्रियते। अतो भगवती चतुर्विंशति तत्त्वान्यतिक्रान्ता सदाशिवेन पञ्चविंशेन सार्द्धं विहरमाणा षड्विंशतत्वमापन्ना परमात्मेति गीयते। एतदुक्तं भवति-सादाख्याकला पञ्चविंशेन सदाशिवेन मिलिता **षड्विंशा** भवति।

शैव 'त्रिकदर्शन' ३६ तत्त्व मानता है। (शैव-शाक्त दर्शन यही मानते हैं।)

'श्रीचक्र' की पूजा

समयमतानुवर्ती 'समया' की पूजा के साथ उसके (**'आसन' 'शरीर'** या **ब्रह्माण्ड के प्रतीक, शिव शक्ति दोनों के** एकाकारित **कलेवर, शिव चक्र एवं शक्ति चक्र की एकीभूता रचना** ('शिवयोर्वपु:') के रूप में विद्यमान) **'श्रीचक्र'** की भी पूजा किया करते हैं।

'शिवचक्र', 'शक्तिचक्र' तथा 'श्रीचक्र'-

'श्रीचक्र' क्या है?

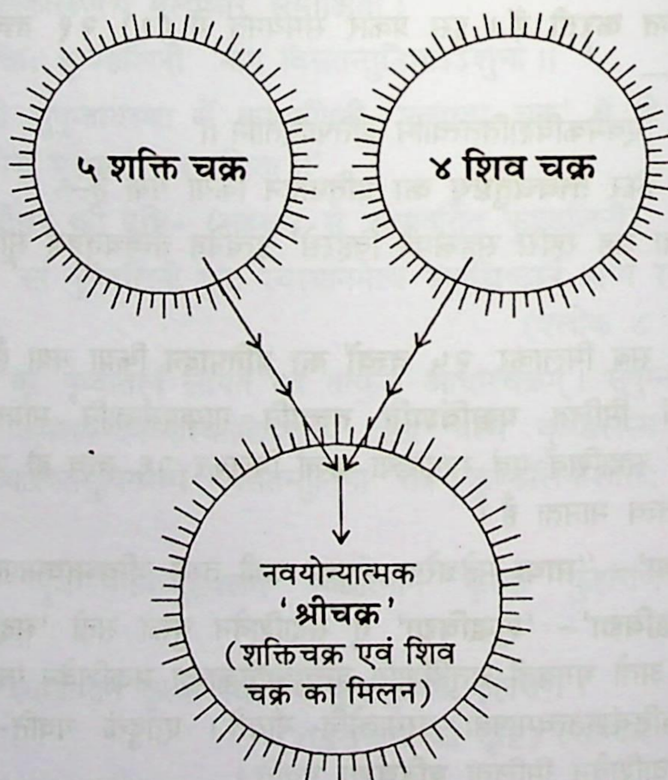
(१) **'शिवचक्र'**– अष्टदल, षोडशदल, मेखलात्रितय एवं पुरत्रय तथा

(२) **'शक्तिचक्र'**– त्रिकोण, अष्टकोण, दशारद्वितय, चतुर्दश कोण॥

— की परस्पर संश्लिष्ट एवं एक रेखाचित्रात्मक रचना ही **'श्रीचक्र'** है।

(१) **'शक्तिचक्र'** के बाहर **'शिवचक्र'** स्थित हैं।

शिव-शक्ति चक्रों का ऐक्यात्मक (उभयैक्यात्मक) स्वरूप ही 'श्रीचक्र' है।



'चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभि: ।
शिवशक्तिमयं ज्ञेयं, श्रीचक्रं शिवयोर्वपु: ॥'

'शिव' की शक्ति 'शिव' से या शक्ति का शिव 'शक्ति' से पृथग्भूत या बाह्यवर्ती तो है ही नहीं अतः लक्ष्मीधर कहते हैं— 'शिवस्य शक्तिः बाह्यत्वायोगात् तानि शिवचक्राणि बिन्दुरूपेणाकृष्य शक्तिचक्रान्तरे स्थापितानि। अतएव **बिन्दुः** शिवचक्रचतुष्टयात्मकः शक्तिचक्रेषु पञ्चसु व्यश्नुवानः समाप्त इति शिवशक्त्योरैक्य-मिति केचित् ॥ — लक्ष्मीधरा (श्लोक ९)

प्रश्न– ये 'शक्तिचक्र' 'शिवचक्र' हैं क्या ? लक्ष्मीधर कहते हैं—

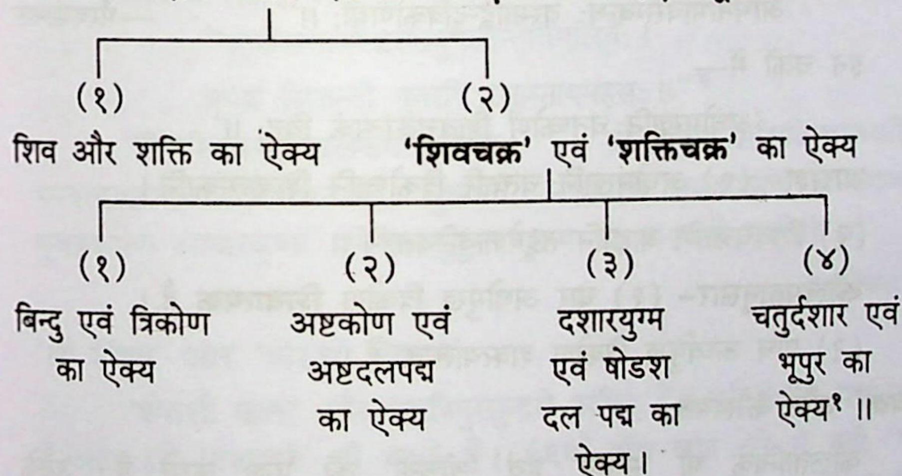
'शक्तिचक्राणि' त्रिकोणाष्टकोणदशारद्वितय चतुर्दशकोणात्मककानि पञ्च चक्राणि ॥ **'शिवचक्राणि'** तु अष्टदलषोडशदल मेखलात्रितय भूपुरत्रयात्मकानीति ॥

(लक्ष्मीधरा : श्लोक ९)

सारांश यह कि **'शिवचक्र'** एवं **'शक्तिचक्र'** दोनों परस्पर संश्लिष्ट हैं।

पूजा-विधान में शिव और शक्ति की एकता

'शिव' और 'शक्ति' का ऐक्यस्वरूप (एकीभूत रूप)



—लक्ष्मीधरा (९)

---

१. चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं **'श्रीचक्रं'** शिवयोर्वपुः।
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च ॥
बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम् ॥
चतुरस्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ॥

'श्रीचक्र' (९ योनियों वाला चक्र)

शिवात्मक चक्र-४ — **शक्त्यात्मक चक्र-५**

कहा भी गया है कि—

"त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टं अष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोष्वोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके ।।
शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित् ।।
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
मनुकोणं चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट्क्रमात् ।।
मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्ध्याख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः ।।
तवाधारस्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपश्शिवस्स्मृतः।
अभिनाभावसम्बन्धः तस्माद्बिन्दुत्रिकोणयोः ।।" —भैरवयामल

इन चक्रों में—

'अधोमुखानि चतुष्कोणं शिवचक्रात्मकं विदुः ।।'

सारांश– (१) अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि।

(२) शिवचक्राणि बाह्यानि तद्रूपेणावस्थितानि ।।

कौलमतानुसार– (१) चार अधोमुख त्रिकोण **शिवात्मक** हैं।

(२) पाँच ऊर्ध्वमुख त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं।

'श्रीचक्र' और कौलमत

कौलतान्त्रिक भी 'समया' एवं 'श्रीचक्र' की पूजा करते हैं। उनके अनुसार— श्री चक्र का लेखन 'संहार क्रम' से ही होना चाहिये— "कौल मते संहारक्रमेण लेखने नवत्रिकोणात्मकं श्रीचक्रम् ।।" कौलों की दृष्टि के अनुसार—

(क) **'शिवात्मक चक्र'–** ये अधोमुख— चार त्रिकोण हैं।

(ख) **'शक्त्यात्मक चक्र'–** ये ऊर्ध्वमुख— पाँच त्रिकोण हैं।[१]

'समयमत' के अनुसार 'श्रीचक्र' का स्वरूप-

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि—

१. लक्ष्मीधर (श्लोक ९)

(१) समयमतावलम्बियों की दृष्टि के अनुसार तो— **'चन्द्रमण्डल'** ही 'श्रीचक्र' हैं— "समयिनां मते श्री चक्रमेव चन्द्रमलम्।" यह षोडशकलात्मक है।

(२) चन्द्रमा षोडशकलायुक्त है और 'श्रीविद्या' प्रतिपदा आदि षोडश दिनों में, कलावृद्धि-कलाक्षय के क्रमानुसार ही पूजा का विविधात्मक विधान प्रस्तुत करता है अत: 'श्रीचक्र' का सम्बन्ध चन्द्रमण्डल से है और चन्द्रमण्डल ही 'श्रीचक्र' है।[१]

(३) चन्द्रमण्डल बाहर स्थित है फिर भी वही 'श्रीचक्र' है—

'बाह्यस्थितमपि चन्द्रमण्डलं श्रीचक्रमेवेति॥'

(४) शिर में स्थित सहस्रदलकमल के अन्तर्गत स्थित श्रीचक्रात्मकशशिबिम्ब के मध्य में रहने वाली भगवती अपने चरणकमल के सुधात्मक निर्णेजन जल के द्वारा साधक के शरीर को संप्लावित करके फिर भुजङ्ग रूप से 'आधार कुण्ड' में प्रविष्ट होकर, सुषुम्ना का अवलम्बन लेकर, वह सोती है।

आचार्य शङ्कर कहते हैं—

"सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तैर्विगलितै:।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहस:॥"[२]

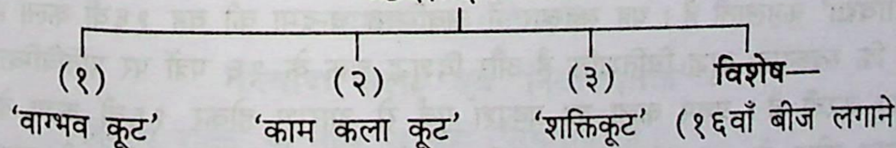
"शिरस्थितसहस्रदलकमलान्तर्गत श्रीचक्रात्मकशशिबिम्बमध्यस्थिताया भगवत्याश्चरणकमलनिर्णेजनजलै: सुधामयै: साधकस्य सकलशरीरं सम्प्लाव्य पुन: भुजङ्गरूपेण आधारकुण्डं प्रविश्य सुषुम्नामष्टभ्य सा **भगवती** स्वपिति॥"

— लक्ष्मीधरा (१०)

'श्री विद्या' और 'षोडशी विज्ञान'

'षोडशी कला' और महात्रिपुरसुन्दरी अभिन्न हैं। 'श्री विद्या' **पञ्चदशाक्षरी** हैं अत: इसे 'पञ्चदशी' भी कहते हैं। १६वाँ बीज लगा देने से वही **'षोडशी विद्या'** बन जाया करती है। **'षोडशी कला'** स्वयं भगवती राजराजेश्वरी हैं।

पञ्चदशाक्षरी विद्या



१. लक्ष्मीधरं (लक्ष्मीधरा-१०)

२. अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि॥ (सौ. ल. १०)

५ अक्षर ६ अक्षर ४ अक्षर पर यही विद्या 'षोडशी' बन जाया करती है।

'कादिविद्या' मूल विद्या है। 'कादिविद्या' के आधार पर **अगस्त्य,** अगस्त्य की पत्नी **लोपामुद्रा, दुर्वासा, कुबेर, चन्द्रमा, नन्दि, मनु, सूर्य, षडानन, शिव, विष्णु, यमराज, इन्द्र** एवं **कामदेव** आदि ने अपने-अपने इष्टदेव के अनुरूप मूलविद्या (कादिविद्या) को भिन्न-भिन्न विद्याओं का स्वरूप प्रदान किया और वे सभी विद्यायें उस-उस देवता एवं ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। कामदेव ने मूल विद्या **'कादिविद्या''** की ही उपासना की थी।[१]

गौड़पादाचार्य की दृष्टि-

आचार्य गौड़पाद कहते हैं— हे भगवती ! तेरी षोडशीकला (सहस्रारस्थ षोडशी कला) तथा उसके प्रतिफलित बिम्ब (अर्थात् आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा) से अमृत का स्राव होता है और फिर अधिक आप्लावित है (बार-बार अमृत टपकता है) जिससे समस्त शरीर भर जाता है और यह शुक्ल पक्ष की समस्त तिथियों में हुआ करता है तथा कृष्णपक्ष में भी समान रूप से इसी प्रकार हुआ करता है किन्तु अमावस्या को नहीं होता अत: अमावस्या में समयाचारवालों का पूजन नहीं हुआ करता—

''कलाया: शोडश्या: प्रतिफलितबिम्बेन सहितं,
तदीयै: पीयूषै: पुनरधिकमाप्लावित तनु: ।
सिते पक्षे सर्वस्तिथय इह कृष्णोऽपि च समा,
यदा चामावास्या भवति न हि पूजा समयिनाम् ॥''[२]

'षोडशीकला स्वयं भगवती राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी हैं जो कि मन्त्र का १६वाँ अक्षर है। इसका स्थान सहस्रार है। इसके प्रकाश से ही समस्त कलायें प्रकाशित हुआ करती हैं, ये १६ अक्षर १६ नित्यायें हैं। अन्तिम एकाक्षरी 'लक्ष्मी बीज' ही नित्या है। यह **'पराकला'** है। उसके कारण ही समस्त 'विद्या' **'श्रीविद्या'** कहलाती है। यह सहस्रार में अवस्थित चन्द्रमा की वह १६वीं कला है जो कि स्वरूपत: शुद्ध चितिशक्ति है और विशुद्ध चक्र के १६ पत्रों पर प्रतिबिम्बित हुआ करती है। प्रथम कला का प्रकाश पूर्व से आरम्भ होकर १६वीं कला के ईशान कोण के पत्र पर समझना चाहिए। सोलहवीं कला के अधीन ही अन्य

१. ''श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तन्त्रकादिर्यथा परा''।
२. सुभगोदय (३२)

कलायें घटती-बढ़ती हैं। वे स्वतन्त्र नहीं हैं। इसलिए इस विद्या का नाम **'श्री विद्या'** है।

शुक्ल और कृष्णपक्ष दोनों पक्षों की १४ तिथियाँ एवं (१) अमावस्या एवं (२) पूर्णिमा को गणना में ले लें तो। १६ चन्द्रकलायें कहलाती हैं।

ये समस्त कलायें शुक्ल पक्ष में सूर्य के योग से उदित होती हैं और कृष्णपक्ष में सूर्य में अस्त हो जाती हैं।

प्रथम कला शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को उदित होकर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा में अस्त हो जाती हैं। द्वितीय कला शुक्ल पक्ष की द्वितीया को उदित होकर कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि में अस्त हो जाती हैं। इसी प्रकार तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी आदि कलाओं की भी स्थिति है।

पूर्णिमा की पूर्ण कला अमावस्या में अस्त होती है। **अमावस्या को पूर्णिमा की कला के अस्त हो जाने पर** जो चन्द्रकला शेष रहती है वही **'षोडशी नित्या कला'** है। चन्द्रमा का वही यथार्थ बिम्ब प्रत्येक कला में सूर्य के प्रकाश से घटती-बढ़ती कलाओं के रूप में दीप्तिमान हुआ करता है।

(क) शुद्ध चितिशक्ति की १५ कलायें।

(ख) पञ्चदशी मन्त्र के १५ अक्षरों से सम्बद्ध हैं।

(शुद्ध चिति एवं पञ्चदशी में एकता)

(ग) १६वीं कला 'शुद्धि चिति शक्ति' है जो कि निर्विकल्प समाधि में चिन्मात्र स्वरूप में अवस्थित **भगवती महात्रिपुरसुन्दरी** हैं।

(घ) अन्य कलायें तो सदैव क्षय-वृद्धि के वशीभूत हैं अत: घटती-बढती रहती हैं किन्तु चन्द्र का बिम्ब सदैव एक समान रहता है। प्रत्येक कला १६वीं कला का अङ्ग है। **प्रत्येक कला का पूजन एवं ध्यान** उस कला से सम्बद्ध तिथि पर १६वीं कला सहित निष्पादित किया जाता है।

अमाकला (षोडशी)

'निर्वाण कला' एवं 'निर्वाणशक्ति'

'निर्वाण शक्ति' के मध्य पर ब्रह्म (परमशिव) है।

(कृपया चित्र आगे देखें।)

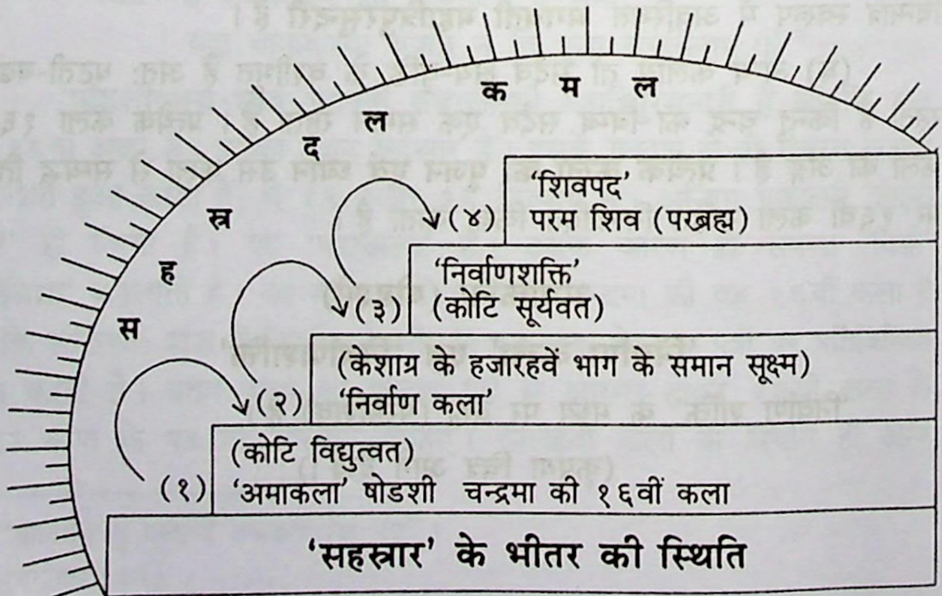
अ मा क ला

नि र्वा ण क ला

नि र्वा ण श क्ति

परम शिव
शिव पद
(ब्रह्म)

अ मा क ला



'सहस्त्रार' के भीतर की स्थिति

प्रश्न= योगशास्त्र तो कहता है कि 'परमशिव' के बाद **'निर्वाणशक्ति'** है। **'निर्वाण शक्ति'** के बाद **'निर्वाणकला'** है। **'निर्वाण कला'** के बाद 'अमाकला' या **'षोडशी'** है।

तन्त्रशास्त्र 'षोडशी' (चन्द्रमा की १६वीं कला) को भगवती महात्रिपुरसुन्दरी मानता है। महात्रिपुरसुन्दरी से सूक्ष्मतर तो कोई है नहीं और न उससे श्रेष्ठतर ही कोई है फिर 'षोडशी' (महात्रिपुरसुन्दरी 'अमाकला') से भी सूक्ष्मतर 'निर्वाणकला' एवं 'निर्वाणशक्ति' को कैसे कहा गया?[१]

(१) **अमा षोडशभागेन** देवि! प्रोक्ता **'महाकला'**।
संस्थिता **परमा माया** देहिनां देहधारिणी॥

(२) अत्रास्ते शिशुसूर्यसोदरकला चन्द्रस्य सा **षोडशी**।
शुद्धा नीरजसूक्ष्मतन्तुशतधा भागैकरूपा परा॥ 'षोडशी'
विद्युत्कोटि समान कोमल तनूर्विद्योतिताऽधोमुखी।
नित्यानन्द-परम्पराऽति**विगलत पीयूषधाराधरा**॥ 'अमाकला'

(३) **निर्वाणाख्यकला** परापरतरा साऽऽस्ते तदन्तर्गता।
केशाग्रस्य सहस्रधाविभजितस्यैकांशरूपा सती॥ 'निर्वाण कला'
भूतानामधिदैवतं भगवती नित्यप्रबोधोदया।
चन्द्रार्द्धाङ्ग समान भंगुरवती सर्वार्कतुल्य प्रभा॥

(४) एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्व**निर्वाण शक्तिः**।
कोट्यादित्यप्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा। 'निर्वाण शक्ति'
सर्वेषां जीवभूता मुनिमनमनसि मुदा तत्त्वबोधं वहन्ती॥४८॥

कुण्डलिनी अपनी सहस्रारोन्मुख यात्रा में आरोहण के समय सहस्रार के चन्द्रमण्डल को डस कर उसमें छिद्र बना देती है अतः उससे अमृत-स्राव होने लगता है और परिणामतः 'आज्ञाचक्र' उससे आर्द्र होकर अमृतमय हो उठता है। अमृत-स्राव के कारण ही वहाँ पर चन्द्रमा की निखिल कलायें नित्य चमकने लगती हैं और उनका नाम 'नित्या' कहा जाता है।

ये सभी कलायें विशुद्ध चक्र पर उतरकर उसकी **१६ पंखुड़ियों पर दीप्तिमान** हो उठती हैं।

सहस्रार दल पद्म के मध्य भाग में अवस्थित चन्द्रमण्डल को **'बैन्दव-स्थान'** कहते हैं। यह शुद्ध चिति शक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है। इसे 'श्री' या महात्रिपुरसुन्दरी कहा जाता है।

---

१. ग्रन्थायाम बढ़ जाने के कारण इसका उत्तर यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

पूर्णानन्द यति की दृष्टि-

योगी पूर्णानन्द कहते हैं कि सहस्रार चक्र में **'षोडशी'** आख्या वाली **'अमा कला'** विद्यमान है। यह चन्द्रमा की १६वीं कला है।

"इसी सहस्रार पद्म में 'अमा' नामक चन्द्रमा की १६वीं कला विद्यमान है। यह प्रातःकालीन सूर्य की कला के समान रक्त वर्णवाली है। यह अत्यन्त शुद्ध (निष्कलुष) है। यह पद्म के **सूक्ष्म तन्तु के १००वें भाग के समान सूक्ष्म रूपवाली है।**

यह उत्तमोत्तम या श्रेष्ठतम है। यह कोटिविद्युतसंघात के समान भास्वर एवं कोमल शरीर वाली, प्रोद्दीप्त, अधोमुखी तथा **नित्यानन्द परम्परा** से क्षरित **अमृत-प्रवाह को धारण करने वाली** है?

"अत्रास्ते शिशुसूर्य सोदरकला **चन्द्रस्य सा षोडशी।**
शुद्धा नीरजसूक्ष्मतन्तुशतधाभागैकरूपा परा।
विद्युत्कोटिसमान कोमल तनूर्विद्योतिताऽधोमुखी।
नित्यानन्दपरम्पराऽतिविगलत् पीयूषधाराधरा ॥"[१]

"अमाकला" के भीतर **'निर्वाणकला'** है जो कि केशाग्रभाग के १००० भागों में एक भाग के समान सूक्ष्म है। यह समस्त प्राणियों के हृदय में **'चैतन्य, ज्ञान**स्वरूपा', अर्द्धचन्द्राकारा, **सर्वसूर्यसमप्रभा** के रूप में विद्यमान है। इस **'निर्वाण कला'** के मध्य **'निर्वाणशक्ति'** है जो कोटिसूर्यसमप्रभा है। ये केशाग्र-कोटि भागसूक्ष्मा है। यह अमृतधरा एवं जीवों की प्राणकला और **त्रिभुवनजननी** है।

भगवती जहाँ रहती हैं उस 'सहस्रार पर भी विचार करें।

'महानाद' के ऊपर **शंखिनी नामक** नाड़ी के शिखर पर **विसर्ग** नामक शक्ति के नीचे पूर्णचन्द्र के समान अत्यन्त शुभ्र प्रकाशरूप **'सहस्रदल कमल'** है। यह निम्नाभिमुखी है। यह अकारादि अक्षरों से युक्त, प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाला एवं केवलानन्दरूप है।

सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य परमामृतसमूह से स्निग्ध दीप्ति-वाला, रश्मिस्फुरित, निष्कलङ्क एवं निर्मल **पूर्णचन्द्रमण्डल** स्थित है। उसके मध्य विद्युतस्वरूपवाला **'त्रिकोण'** है जो निरन्तर स्फुरित हो रहा है। उसके मध्य बिन्दु

---

१. षट्चक्र निरूपणम् (४६)।

रूप **'शून्य'** स्फुरित हो रहा है। वह **बिन्दुरूप शून्य परमानन्दस्वरूप** है। वह **निर्वाणकला** के साथ विद्यमान चन्द्रमा की १६वीं कला के द्वारा प्रकाशित है। यहीं शून्याकार, सर्वात्मा परमशिव रहते हैं—

"इह स्थाने देवः परमशिवसमाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः।
स्वरूपी सर्वात्मा रसविरसमितोऽज्ञानमोहान्ध हंसः॥"[१]

'सारसमुच्चय' में कहा गया है—

'एतस्याः परतः स्थिता भगवती भूताधिदेवाधिपा।
निर्वाणाख्यकलार्द्धचन्द्रकुटिला सा षोडशान्तर्गता।
बालाग्रस्य सहस्रधा विभजितस्यैकेन भागेन या।
सूक्ष्मत्त्वात् सदृशी त्रिलोकजननी या **द्वादशार्कप्रभा**॥'

'स्वच्छन्दसंग्रह' में कहा गया है—

षोडशान्तमिति ख्यातं व्योमस्थानेन्दुमण्डलम्॥

ग्रन्थान्तर में यह भी कहा गया है—

"निर्वाणाभ्यख्यान्तरगता वह्निरूपा निबोधिका।
नादोऽव्यक्तस्तदुपरि कोट्यादित्यसमप्रभा।
निर्वाणशक्तिः परमा सर्वेषां योनिरूपिणी।
अस्यां शक्तौ शिवो ज्ञेयो निर्विकारो निरञ्जनः।
अत्रैव कुण्डली शक्तिर्विहरेत् परमात्मना॥"
'बिन्दुरूपं परब्रह्म सहस्रदलसंस्थितम्॥'

(कुलार्णव तन्त्र)

ग्रन्थिभेदन– ग्रन्थि का भेदन किस प्रकार निष्पन्न होता है ?

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि-

आचार्य गौड़पाद ने तान्त्रिक योग की इस रहस्यमय साधना पर भी प्रकाश डाला है। वे कहते हैं—

"महाव्योम में स्थित चन्द्रमा अपनी अमृत की वर्षा के द्वारा शरीर को आप्लावित करता रहता है किन्तु यह अमृत नाड़ीसमूह के द्वारा सूखता भी रहता है। यदि योगी आज्ञा चक्र में विद्युत् युक्त आभा को स्थिर करके उसे अक्षर से युक्त कर लेता है अर्थात् उसे नष्ट नहीं होने देता तो भगवती विद्युत्लेखारूप हो जाती हैं और तब **'ब्रह्मग्रन्थि'** होता है—

---

१. षट्चक्र निरूपण (४०-४२)।

'महाव्योमस्थेन्दोरमृतलहरी प्लावितततनुः,
प्रशुष्य द्वै नाड़ीप्रकरमनिशं प्लावयति तत्।
यदाज्ञायां विद्युन्नियुतामाक्षरमयी,
स्थिता विद्युल्लेखा भगवति विधिग्रन्थिमभिनत्॥''[१]

जब योगी इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में प्राण के सञ्चरण या प्रवाह को रोक लेता है और प्राण सुषुम्णा नाड़ी में प्रवाहित होने लगता है तब चन्द्रमा से स्त्रवित अमृत को सूर्य सोखकर प्राणी को अमृत से वञ्चित नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में अमृताहार से वञ्चित कुण्डलिनी विद्युल्लेखा की भाँति मणिपूर चक्र में प्रकट होती है—

''तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती।
चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता॥''[२]

जब यह आज्ञा चक्र में आकर अक्षर ब्रह्म में लीन हो जाती है तब **ब्रह्मग्रन्थि का वेध** होता है। या जब मन्त्र के समस्त अक्षरों का अन्तिम अक्षर (१६वीं नित्या कला) में लय हो जाता है तब **ब्रह्म ग्रन्थि** का वेध होता है।

जब मन्त्र के प्रथमाक्षर को **अधःसहस्त्रार से उठाकर** उसका **विषुस्थान** में लय किया जाता है, दूसरे अक्षर को **विषुस्थान से** उठाकर '**मूलाधार** चक्र' में, तीसरे अक्षर को '**मूलाधार चक्र**' से उत्थापित करके '**स्वाधिष्ठान चक्र**' में, चतुर्थाक्षर को '**स्वाधिष्ठान चक्र**' से उत्थापित करके '**मणिपूरचक्र**' में, पञ्चमाक्षर को '**मणिपूरचक्र से** उत्थापित करके '**अनाहत चक्र**' में, षष्ठाक्षर को '**अनाहतचक्र**' से उत्थापित करके '**विशुद्धचक्र**' में, सप्तमाक्षर को उत्थापित करके (विशुख्य चक्र से उठाकर) '**लम्बिका चक्र**' में, अष्टमाक्षर को '**लम्बिका**' से उठाकर '**आज्ञा-चक्र**' में, नवमाक्षर को '**आज्ञाचक्र**' से उत्थापित करके '**बिन्दु**' में, दशमाक्षर को '**बिन्दु**' से उठाकर '**अर्धचन्द्रिका**' में, एकादशाक्षर को अर्धचन्द्रिका से उठाकर '**निरोधिका**' में, द्वादशाक्षर को **निरोधिका** से उत्थापित करके '**नाद**' में, त्रयोदशाक्षर को '**नाद**' से उत्थापित करके '**नादान्त**' में, चतुर्दशाक्षर को उत्थापित करके ('**नादान्त** से उठाकर) '**शक्ति**' में, एवं पञ्च-दशाक्षर को उत्थापित करके ('**शक्ति**' से उठाकर) '**व्यापिका**' और इस प्रकार

१. सुभगोदय० (३४)
२. सुभगोदय० (१४)

पूर्ववर्ती मन्त्राक्षर को उत्तरवर्ती अक्षर में लीन करते हुए पूरे मन्त्र को परा कला **'श्रीकला'** ('उन्मनी') में लय कर दिया जाता है तब समस्त ग्रन्थियों का लय हो जाता है।

गुरु गोरक्षनाथ की दृष्टि

गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि 'शक्तिचालिनी मुद्रा' के अभ्यास से प्राणा-कुञ्चन करके कुण्डली का चालन करना चाहिये। १५ दिनों तक वज्रासनस्थ होकर इसका अभ्यास करणीय है। वायुप्रज्वलित अग्नि कुण्डलिनी को प्रतप्त करती है। इससे कुण्डलिनी सुषुम्णा के मुख में प्रवेश करके वायु-वह्नि के साथ प्रवेश करती हुई यह कुल शक्ति **'ब्रह्मग्रन्थि'** का एवं इसके बाद रुद्रग्रन्थि का भेदन करती है—

(१) 'वायुना ज्वलितो वह्निः कुण्डलीमनिशं दहेत्।
सन्तप्ता साग्निना नाड़ी शक्तिस्त्रैलोक्यमोहिनी।
प्रविशेद् वज्रदण्डे तु सुषुम्णावदनान्तरे।
वायुना वह्निना सार्धं **ब्रह्मग्रन्थिं** भिनत्ति सा।
विष्णुग्रन्थिं ततो भित्वा रुद्रग्रन्थौ च तिष्ठति॥'[१]

(२) वज्रासनस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम्।
कुर्यादनन्तरं भस्त्रां **कुण्डलीमाशु** बोधयेत्॥
भिद्यन्ते **ग्रन्थयो** वंशे तप्तलोहशलाकया।
तथैव पृष्ठवंशे स्याद् ग्रन्थिभेदस्तु वायुना॥[२]

'रुद्रग्रन्थि' का भेदन करने के बाद शिवात्मताप्ति होती है—

'रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा सैव याति शिवात्मकम्॥' (योग बीज)

अमरौघप्रबोधकार की दृष्टि-

योगी गोरक्षनाथ कहते हैं कि ब्रह्मग्रन्थि के भेदन के अनेक लक्षण हैं यथा— (१) आनन्दोत्पत्ति (२) विचित्र क्वणक (३) अनाहत ध्वनि (४) दिव्य देह की प्राप्ति (५) तेजस्विता (६) दिव्य गन्ध (७) आरोग्य (८) हृदयाकाश में शुद्ध प्राणवायु का पूर्ण प्रवाह।[३]

---

१. गोरक्षनाथ (योग बीजम् : ९६-९८)
२. गोरक्षनाथ (योगबीजम् : १२५-१२६)
३. ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद् वेधाननन्दा.....न्यसम्भवम्।
विचित्रक्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः।

योग की की जो चार अवस्थायें हैं— (१) 'आरम्भावस्था' (२) 'घटावस्था' (३) 'परिचयावस्था' (४) 'निष्पत्ति अवस्था'। तृतीयावस्था को **'प्रत्ययावस्था'** भी कहते हैं।

इस प्रथमावस्था में ही (घटावस्था में ही) **''ब्रह्मग्रन्थि''** का भेदन हो जाता है।

'आरम्भावस्था नामक प्रथम योगावस्था'— **''ब्रह्मग्रन्थिभेदन''**।

घटावस्था– योग की **'घटावस्था'** में **'विष्णु ग्रन्थि'** का भेदन होता है—

(१) ''द्वितीयायां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः।
दृढ़ासनो भवेत् योगी ज्ञानी देवसमप्रभः।
विष्णुग्रन्थेस्तथा वेधात् परमानन्दसूचकः।
अति शून्ये विमर्शश्च भेरीशब्दस्तथा भवेत्॥ ('अमरौघ शासन')

(२) द्वितीयायां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः।
दृढ़ासनो भवेद् योगी ज्ञानी देवसमस्तदा।
विष्णुग्रन्थेस्ततो भेदात्परमानन्दसूचकः।
अतिशून्ये विमर्दश्च भेरीशब्दस्तदा भवेत्॥[1] ('हठयोग प्रदीपिका')

विष्णु ग्रन्थि-भेदन– योग की जो दूसरी अवस्था अर्थात् **''घटावस्था''** का सम्बन्ध **'विष्णु ग्रन्थि'** के भेदन से होता है—

(१) इस अवस्था में प्राणवायु, अपान, नाद और बिन्दु से संयुक्त होकर मध्य अर्थात् कण्ठस्थानीय **'विशुद्ध चक्र'** में प्रविष्ट होती है। इससे योगी **आसन में दृढ़** होता है और—

(२) वह रूपलावण्यसम्पन्न होकर **देवतुल्य** बन जाता है।

(३) ब्रह्म ग्रन्थि का भेदन— हृदय में, सम्पन्न होकर कण्ठ स्थानीय विशुद्ध चक्र में विष्णु ग्रन्थि का भेदन होता है और **अतिशून्य** (आकाश) में स्थित

दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगन्धस्त्वरोगवान्।
सम्पूर्णहृदयशूर आरम्भो योगिनो भवेत्॥ (अमरौघ.)

१. ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद् ह्यानन्द शून्यसम्भवः।
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः।
दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगन्धस्त्वरोगवान्।
सम्पूर्णहृदयःशून्यः आरम्भे योगवान् भवेत्॥
— हठयोग प्रदीपिका

कण्ठप्रदेश में परमानन्दात्मक **विमर्द** एवं **भेरी** ध्वनियाँ श्रुतिगोचर होती हैं।

(४) 'घटावस्था' में प्राण, अपान, नाद, बिन्दु, जीवात्मा एवं परमात्मा अभिन्न हो जाते हैं। इस अवस्था में योगी द्वन्द्वातीत होकर परमानन्द में तल्लीन हो जाता है।

(५) **'योगतत्त्वोपनिषद'** (६५-६६) के अनुसार 'घटावस्था' प्राणाभ्यास की अधिक विकसित अवस्था में घटित होती है। इसमें प्राण, अपान, मन, बुद्धि, जीव एवं परमात्मा में अभेदापत्ति होती है। प्राणादिक की समरसता ही **''घटावस्था''** है।

(६) **'वराहोपनिषद'** के अनुसार योगी घटावस्था में प्राण वायु सुषुम्ना से प्राण ग्रहण करके तथा उस प्राण से शरीर को पूर्ण करके ग्रन्थित्रय का भेदन करता है और भेदन करके स्थिर हो जाता है।

'रुद्रग्रन्थि' का भेदन और योग की तृतीयावस्था

'अमरौघ शासनकार' तो कहते हैं कि—

तृतीयायां ततो भित्वा विपाको (विहायो) मर्दलध्वनिः।
महाशून्यं तदा जातं सर्वसन्धि (सिद्धि) समाश्रयम्।
चित्तानन्दं ततो जित्वा सहजानन्दसम्भवः।
दोषमृत्युजरादुःखक्षुधानिद्रा विवर्जितः।
रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा सत्वपीठगतोऽनिलः॥

हठयोग प्रदीपिकाकार ने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

तृतीयायां तु विज्ञेयो विहायो मर्दलध्वनिः।
महाशून्यं तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम्।
चित्तानन्दं तदा जित्वा सहजानन्दसम्भवः।
दोषदुःखजरा व्याधि क्षुधामिद्राविसर्जितः।
रुद्रग्रन्थिं यदा भित्वा शर्वपीठगतोऽनिलः॥

'योगतत्त्वोपनिषद' (८१-८३) के अनुसार इस तृतीयावस्था का **'परिचय'** नाम क्यों पड़ा ? चूँकि प्राण साधना के द्वारा प्राण का अग्नि, कुण्डली, चित्त एवं सुषुम्ना मार्ग के साथ प्रगाढ़ परिचय हो जाता है इसीलिए इस अवस्था को **'परिचय'** कहा गया है। योगी निर्बाध सुषुम्ना के महापथ में मूलाधार चक्र से भ्रूमध्य तक विचरण कर सकता है। योग की चतुर्थ अवस्था **'निष्पत्ति'** तब प्राप्त होती है जब कुण्डलिनी सहित **प्राण ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थिर** हो जाता है,

कुण्डलिनी शिव में लयीभूत हो जाती है और योगी **'सहजसमाधि'** प्राप्त कर लेता है।

"रुद्रग्रन्थिं यदा भित्वा शर्वपीठगतोऽनिलः"— कहकर भ्रूमध्य चक्र को **'शर्वपीठ'** कहा गया है।

भ्रूमध्य में ध्यान अणिमादि योगसिद्धियों की प्राप्ति होती है। सगुण प्रकृति की सीमा भ्रूमध्य तक ही है।

भ्रूमध्य में **अहङ्कारात्मक रुद्रग्रन्थि का स्थान** है। जब कुण्डली, अग्नि एवं चित्त के साथ प्राणवायु रुद्रग्रन्थि का भेदन करता है तब दुःखों के मूल 'अहं' के नष्ट हो जाने के परिणामस्वरूप **त्रिविध दुःखों का भी अवसान** हो जाता है और तब योगी वात, पित्त आदि विकारों से उत्पन्न ज्वरादि रोग एवं उनसे उत्पन्न पीड़ा आदि एवं भूख, पिपासा, निद्रा, वार्धक्य आदि विकारों के दुःखों से भी मुक्त हो जाता है।

नादसहित प्राण के भ्रूमध्य में प्रविष्ट करने पर वहाँ के महाशून्य (आकाश) में मृदङ्ग जैसी अनाहत ध्वनि श्रुतिगोचर होती है। इस **ध्वनि में लीन चित्त को अपूर्व आनन्द की अनुभूति** होती है। जब योगी नादजन्य **चित्तानन्द को जीत** लेता है उस सुख की आसक्ति एवं **नाद के आलम्बन का त्याग** करके **आत्मा का आलम्बन ग्रहण** कर लेता है तब चित्तानन्द के स्थान पर स्वाभाविक **आत्मानन्द का उद्भव** होता है। अहङ्कारोच्छेद होने पर योगी भ्रूमध्य में **आत्मानन्द की अनुभूति** करने में समर्थ हो जाता है।

'निष्पत्ति अवस्था'– 'हठयोग प्रदीपिका' (४/७६) में "निष्पत्तौ वैणवः शब्दः, क्वणाद् वीणा क्वणो भवेत्॥" कहकर 'निष्पत्ति अवस्था' की सूचना दी गई है।

जब प्राण ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है तब **'निष्पत्ति अवस्था'** का उदय होता है। यह योग की पूर्णावस्था है। इसमें वंशी की ध्वनि के समान या बजती हुई वीणा की मधुर ध्वनि के समान नाद ध्वनि श्रुतिगोचर होती है। उस समय एकाग्र चित्त व्यक्ति अपने लक्ष्य के साथ तद्रूप हो जाता है। चित्त का अपने विषय के साथ एकीभूत हो जाना ही **'राजयोग'** है। जिस योगी का चित्त ब्रह्मलीन होकर ब्रह्म रूप हो जाता है वह गुण एवं सामर्थ्य में ईश्वर तुल्य हो जाता है उसमें सृष्टि, संहार करने की सामर्थ्य आ जाती है—

"न नादो न बिन्दुश्च न चेतो नाप्यचेतनः ।
नाभ्यासदुस्तरं किञ्चित् राजयोगो निगद्यते ॥"

पिण्डस्थ चक्र	ग्रन्थित्रय
(१) '**मूलाधारैक** निलया'	'**ब्रह्मग्रन्थि**-विभेदिनी'
(२) '**मणिपूरान्त**रुदिता'	'**विष्णु-ग्रन्थि**-विभेदिनी'
(३) '**आज्ञाचक्रान्तरालस्था**'	'**रुद्र-ग्रन्थि**-विभेदिनी'
(क) 'मूलाधार चक्र'	'ब्रह्मग्रन्थि'
(ख) 'मणिपूरक चक्र'	'विष्णु ग्रन्थि'
(ग) 'आज्ञाचक्र'	'रुद्र ग्रन्थि'

— ब्रह्माण्ड पुराण (ल. सहस्र.)

******

अध्याय-११

कौलमत एवं कौलमत की साधना-पद्धति

(एक विहङ्गमावलोकन)

तन्त्र-मार्ग की एक सुदीर्घ परम्परा प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही है। ये सारे सम्प्रदाय शक्तिवादी थे। तान्त्रिक परम्परा में या सम्पूर्ण साधन परम्परा में मार्गप्रवर्तक के रूप में आदिगुरु **भैरव** या **स्वच्छन्दभैरव** ही माने जाते रहे हैं, किन्तु **कौलपरम्परा** में जो तान्त्रिक धारा प्रवाहित हुई उसमें **आदिगुरु के रूप में भैरवी को ही स्वीकार किया गया है भैरव को नहीं**।[१]

भैरवी-प्रवर्तित यह साधना-परम्परा 'कौलमार्ग' कहलाती है। इसके अनुसार महाज्ञान भैरवी से अवतरित होकर स्वच्छन्दभैरव में प्रवाहित होता है। यह अवरोह-क्रम योगी मत्स्येन्द्रनाथ तक चला आता है। मत्स्येन्द्रनाथ **'कामरूप पीठ'** के अधीश्वर थे और **'तुर्यनाथ'** कहलाते थे (या 'तुरीयनाथ' कहे जाते थे। **'तुरीय सन्तति'** कामरूप पीठ के रूप में मान्य थी। इसी कारण इसके स्वामी मत्स्येन्द्रनाथ को **'तुर्यनाथ'** कहा जाता था।) मत्स्येन्द्रनाथ की कौल-परम्परा में गुरुक्रम इस प्रकार भी है— मत्स्येन्द्रनाथ-सुमतिनाथ-सोमदेव-शम्भुनाथ-अभिनव-गुप्तपादाचार्य।

आचार और कौलमार्ग

'कुलार्णव तन्त्र' में सात प्रकार के आचारों का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि सातों आचारों में— 'कौलाचार' श्रेष्ठतम है—

"सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्॥
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं **कौलात्परतरं न हि**॥"[२]

वेदागम महार्णव को मथकर जो सार ज्ञान निकाला गया वही 'कुलधर्म' है— 'मथित्वा ज्ञानदण्डेन वेदागममहार्णवम्। सारज्ञेन मया देवि! कुलधर्मः समुद्धृतः। "न कौलसमधर्मोऽस्ति।"

---

१. गो. क. (तं. और आ. का दि.) पृ. ४४।
२. कुलार्णव तन्त्र (७,८/२)

विश्वसारतन्त्रकार की दृष्टि

'विश्वसारतन्त्र' के चौबीसवें पटल में भी यही बात पाई जाती है। उसके अनुसार सात आचार तीन भावों के अन्तर्गत है। तदनुसार

(१) प्रथम भाव है— 'पशुभाव'

(२) द्वितीय भाव है— 'वीरभाव'

(३) तृतीय भाव है— 'दिव्य भाव' (सात आचार ३ भावों में स्थित हैं)

भाव और आचार

'पशुभाव'	**'वीरभाव'**	**'दिव्यभाव'**
वेदाचार, वैष्णवाचार	वाम, सिद्धान्त आचार	कौलाचार
शैवाचार, दक्षिणाचार	'भेदाभेद भाव'	अभेद भाव
'भेदभाव'		

(१) **सर्वोच्च गुरु–** कौल गुरु ही श्रेष्ठतम गुरु हैं; क्योंकि वह साक्षात् सदाशिव हैं—

"कौल एव गुरुः साक्षात् कौल एव सदाशिवः।"

(२) **सर्वोच्च मार्ग–** (कौलः पूज्यतमो) लोके कौलात् परतरो नहि॥

(३) **कौलमार्ग और अद्वैत** (समत्वभाव)

"कर्दमे चन्दने देवि! पुत्रे शत्रौ प्रियेऽप्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथैव काञ्चने तृणे॥
न भेदो यस्य देवेशि! स एव कौलिकोत्तमः॥
चिन्तयेदात्मनात्मानं **सर्वत्र समदृष्टिमान्**॥"

(४) कुल धर्म की सर्वोच्चता—

(हाथी के पैर में सारे पैर खो जाते हैं।)

"करिपदे निमज्जन्ति सर्वे प्राणिपदा यथा।
कुलधर्मे निमज्जन्ति सर्वे धर्मास्तथा प्रिये॥"

(५) कौल साधना के प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ–

कुलार्णव, कुल चूड़ामणि, रुद्रयामल, भावचूड़ामणि, देवीयामल, कुलतन्त्र, कुलामृत, तन्त्रचूड़ामणि, कुलानन्द संहिता, कौलतन्त्र, कौलोपनिषद, परशुकल्प०।

(६) **'कुलाचार' क्या है ?**

सेतुबन्धकार भास्कर राय कहते हैं कि— 'परशुराम कल्पसूत्र' में व्यवहार देशास्वात्मात्' आदि से 'परे तु शास्त्रानुशिष्टाः' तक जो आचार वर्णित है, वही **'कुलाचार'** है। काश्मीरी तान्त्रिकों की दृष्टि में वरीयता का क्रम इस प्रकार है— वेदादि-शैव-वाम-कौल-त्रिक।

''वेदादिभ्यः परम शैवं शैवाद् वामं तु दक्षिणम्।
दक्षिणात् परतः कौलं कौलात् परतरं त्रिकम्॥''

यदि भट्टोजी दीक्षित, भास्करराय, अभिनव गुप्त, आचार्य परशुराम, दुर्वासा आदि ने कौलमत की प्रशंसा की है तो आचार्य लक्ष्मीधर, भट्टोजिदीक्षित एवं उनके गुरु अप्पय दीक्षित ने इस मत की प्रशंसा भी की है।

'सनत्कुमार संहिता' में भी कौलमत को वेदबाह्य, एवं बाह्यपूजारत तान्त्रिक कहकर इसे हेय माना गया है।

कौलमत : सिद्धान्त और साधना-

'कौलमत' **अद्वैतवादी** दृष्टि का प्रतिपादक है और इस दृष्टि के कारण वह सामान्य व्यावहारिक स्तर पर भी **समत्ववादी** है— ''कर्दमे चन्दने देवि....तृणे॥''

कौल मत के भेद– आचार्य लक्ष्मीधर ने कौल मत के दो भेद स्वीकार किये हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) **'पूर्व कौल'** (२) **'उत्तर कौल'** (समय मत इससे पृथक है।)[1]

आचार्य लक्ष्मीधर के अनुसार– 'सौन्दर्यलहरी' के ३४वें-३५वें श्लोक में इन दोनों मतों पर प्रकाश डाला गया है— (१) शरीरं त्वं शम्भो........समरस-परानन्दपरयोः। (२) मनस्त्वं............भावेन बिभृषे॥

'कौलमतं द्विविधं पूर्वकौलं उत्तरकौलं चेति॥'[2]

पूर्व कौलमत में **भगवती आनन्दभैरवी** हैं। ये भगवान शिव या **आनन्द-भैरव का शरीर** हैं। सूर्य और चन्द्रमा इनके दो स्तन हैं—

''सूर्यचन्द्रौ स्तनौ देव्याः तावेव नयने स्मृतौ।
उभौ ताटङ्कयुगलमित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥''

---

१. 'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्य होमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम्'' (लक्ष्मीधरा) (श्लोक ३३)

२. लक्ष्मीधर

भैरव 'नवात्मा' हैं। अर्थात् आनन्दभैरव नवव्यूहात्मक हैं— **नवव्यूह** हैं— 'कालव्यूह', 'कुलव्यूह', 'नामव्यूह' आदि।

''नवव्यूहात्मको देवः परानन्दपरात्मकः।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिप्रदायकः।
परानन्द पराशक्तिश्चिद्रूपानन्द भैरवी।
तयोर्यदा सामरस्यं सृष्टिरुत्पद्यते तदा॥'' 'नव व्यूह'

(१) **काल व्यूह=** निमेषादि कलान्त कालधारा।

(२) **कुलव्यूह=** नीलादिरूप।

(३) **नामव्यूह=** संज्ञा स्कन्ध।

(४) **ज्ञानव्यूह=** विज्ञानस्कन्ध। भाग व्यूह। **'सभाग'**=सविकल्प।

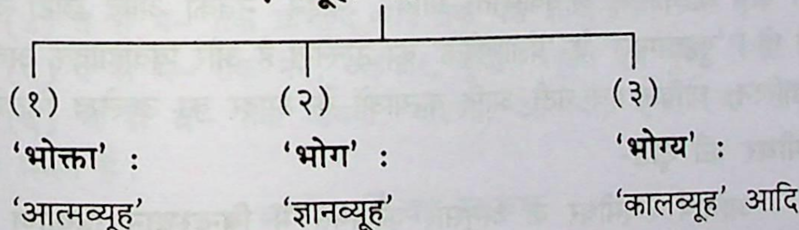
(५) **चित्तव्यूह=** अहङ्कारपञ्चस्कन्ध— अहङ्कार, चित्त, बुद्धि, महत् एवं मन ही चित्त व्यूह है।

(६) **नाद-व्यूह=** मातृका के चार रूप— 'परा', 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' ही नाद व्यूह हैं।

(७) **बिन्दुव्यूह=** षट् चक्रसङ्घ।

(८) **कलाव्यूह=** वर्णात्मक ५० कलाओं का समूह।

(९) **'जीवव्यूह'=** समस्त भोक्ता समूह प्राणिवर्ग ही जीवव्यूह है।



नव व्यूहों में ऐकात्म्य– सारे व्यूह जीवव्यूह में समन्वित हैं। 'बिन्दु व्यूह' एवं 'ज्ञान व्यूह' में भी ऐकात्म्य है। **'कालव्यूह'** अवच्छेद है अतः वहाँ भी ऐक्य है। 'कुल' एवं 'नामव्यूह' निरूपक हैं अतः वहाँ भी ऐक्य है। **'नाद'** एवं **'कला'** एक हैं अतः परमेश्वर नवव्यूहात्मक हैं। **भैरव और भैरवी मैं भी ९ प्रकार का ऐक्य है।** यही **'कौलमत'** है। **आनन्द भैरव एवं आनन्द भैरवी में तादात्म्य है। दोनों ही नवात्मक हैं। भैरवी स्वात्मा हैं।** सृष्टिकाल में भैरव-भैरवी दोनो

का सम्मिलित व्यापार होता है। इस समय (**सृष्टिकाल** में) महाभैरवी का प्राधान्य होने के कारण उन्हें **'प्रधान'** एवं **'प्रकृति'** भी कहते हैं। इस समय भैरवी में **शेषित्व** एवं आनन्द (अप्रधान होने के कारण) **शेषत्व** (गौणत्व) होता है। संहारकाल में प्रकृति **'तन्मात्र'** रूप में स्थित होती है। **संहारकाल में–** भैरव **शेषी** एवं भैरवी **शेष** रहती हैं।

उत्तरकौल कहते हैं कि 'प्रधान' ही जगत् कर्त्री है। प्रधान होने के कारण उनका शेषभाव नहीं होता; क्योंकि इस दृष्टि में शिव नहीं। **'आधार कुण्डलिनी'** शक्ति की वह अवस्था है जिसमें शक्ति कार्यरूप प्रपञ्च को आत्मसंहत करके **कारणरूप में** अवस्थित रहती है।

कुल परम्परा– कौलसम्प्रदाय की एक शाखा सांसारिक कुलाम्नाय कहलाती है। इसके प्रवर्तक अल्लट या भावरक्त थे। **'सिद्धयोगीश्वरी मत'** की धारा **लकुलीश** के माध्यम से अनन्त गहनेश (गहनाधिपति) द्वारा सञ्चालित हुई।

'तन्त्रालोक' (आह्निक १२) के अनुसार– सिद्धयोगीश्वरी मत की आचार्यपरम्परा इस प्रकार है—

भैरव-भैरवी-स्वच्छन्द-नाकुल-अनन्त-गहनेश राजशेखर की 'कर्पूरमञ्जरी' (१/२३) में **कौल-साधना** एवं कौलसाधक भैरवानन्द का उल्लेख आया है। उसमें कौलमत की निन्दा भी नहीं की गयी है। 'भैरव चक्र' में कौलगण शक्ति की उपासना हेतु एकत्रित होते थे। उनमें जातिभेद मान्य नहीं था, प्रत्येक साधक को तत्काल स्थायी विवाह करना पड़ता था। उन्हें कुलाङ्गना के रूप में स्वीकार किया जाता था। ये नारियाँ अधिकांशत: धोबिन, नाइन, नर्तकी आदि छोटी जाति की होती थीं। 'गुह्यसमाज' के 'प्रज्ञाभिषेक' का उल्लेख है और विवाहादिक अवसरों पर चण्डालिन, धोबिन एवं नटी आदि कन्याओं के आदर का उल्लेख मिलता है।

लक्ष्मीधर की दृष्टि-

आचार्य लक्ष्मीधर के अनुसार कौलमत में **बिन्दुस्थान त्रिकोण** (आधार चक्र है। यहीं बिन्दु की आराधना की जानी चाहिए। 'श्रीचक्र' के भीतर यह स्थान नव योनियों के मध्य का **त्रिकोण** है या प्रत्यक्ष स्थूल त्रिकोण भी हो सकता है।

'पूर्वकौल' प्रथमत: भूर्ज, हेमपट्ट, पीठादि में अङ्कित करके उसकी पूजा करते थे, किन्तु **उत्तर कौल** दोनों की पूजा करते थे। कौलों का **आधार चक्र** ही और उस चक्र में स्थित **कुण्डलिनी शक्ति** ही पूजा का विषय है। वही त्रिकोणपूजकों के मुख्य उपास्य हैं।

कुण्डलिनी की पूजा

'कुण्डलिनी शक्ति' बिन्दुस्वरूपा है। इसकी पूजा निद्रावस्था में ही की जाती है। यह स्वभावत: सदैव निद्रामग्न रहती है। इसके जागरण का वह विशिष्ट क्षण ही कौलों की 'मुक्ति' है। इसीलिए कौलों को **'क्षणमुक्त'** कहा जाता है। दिगम्बर, क्षपणक आदि सम्प्रदाय का आराधन-क्रम लगभग इसी के समतुल्य है।

परात्रिंशिकोक्त कौलिक विधि

'परात्रिंशिका' में भी कौलिक विधि का वर्णन है। इसके अनुसार यह विधि भैरव के हृदयाकाश में स्थित है। इस विधि के द्वारा **देहादि भी चिदेकरस** हो जाते हैं। यथा अग्नि लौहपिण्ड को अग्निमय बना देती है उसी प्रकार यह विधि **देह को चिन्मय** बना देती है।

यह कौलिकी विधि है क्या? 'अ' से 'बिन्दु' पर्यन्त (अर्थात् अंकार तक) १५ स्वर वर्ण तिथिस्वरूप हैं।

सर्वप्रथम **संवित् प्राण में परिणत** होता है। चन्द्र एवं सूर्य प्राणापान के ही पर्याय हैं। उन वर्णों के उच्चार काल में **काल की कलना** सूक्ष्म क्रिया शक्ति के सम्बन्ध के कारण **प्राणापान रूप में परिणत होती** है। प्रतिपदा आदि तिथियाँ सूर्य एवं चन्द्र के सन्निकर्ष तथा विप्रकर्ष से एवं काल सम्बन्ध के द्वारा प्रवृत्त होती हैं।

'अ' से विसर्ग तक 'शिवतत्त्व' है।

(१) **क से ङ–** तक पृथ्वी आदि पञ्चभूत हैं।

(२) **च से ञ–** तक गन्धादि पञ्चतन्मात्राएं हैं।

(३) **ट से ण–** तक पादादि वाक् तक पञ्चकर्मेन्द्रियाँ हैं।

(४) **त से न–** तक घ्राणादि श्रोत्र तक पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ स्थित हैं।

(५) **प से म–** तक मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति एवं पुरुष स्थित हैं।

(६) **य से व–** तक वायवी, वारुणी, आग्नेयी, ऐन्द्री (या पार्थिवी) धारणायें स्थित हैं।

धारणाओं का स्वरूप

(१)	(२)	(३)
'पार्थिवी धारणा'= (देहव्यापी सूर्यरूप प्रणव-चिन्तन)।	**'आग्नेयी धारणा'=** पैर के अङ्गुष्ठ से उत्थित अग्निज्वाला से बाह्य और आन्तर जगत **भस्मीभूत** हो गया है यह भावना।	**'वायवीय धारणा'=** चण्ड वायु द्वारा शरीर की भस्मराशि, जो सब ओर बिखर जाती है— ऐसा चिन्तन।

(४)	(५)
'वारुणी धारणा'= द्वादशान्त से पतित शाक्तामृत द्वारा तद्स्थान का प्रक्षालन हुआ है— ऐसी भावना।	**'व्योमवती धारणा'–** कुण्डलिनी के साथ व्योमस्थित जीव की प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा अमृत द्वार को हृदय में उतारना।

अ से क्ष तक वर्णसृष्टि का मूल समवायी कारण है– 'अ'।

'परात्रिंशिका' में कहा गया है कि वह ''सद्यःकौलिक सिद्धिद' उपाय भी है जो कि यदि परिज्ञात हो जाय तो ज्ञात होते ही 'खेचरी समता' प्राप्त हो जाती है। उसी के विषय में देवी ने इस प्रकार प्रश्न किया है—

''अनुत्तरं कथं देव, सद्यः कौलिक सिद्धिदम्।
येन विज्ञातमात्रेण खेचरी समतां व्रजेत्॥''[१]

आगे उपर्युक्त 'हृदयस्था कौलिकी कुल नायिका शक्ति' की जिज्ञासा प्रस्तुत की गयी है—

''हृदयस्था तु या शक्तिः कौलिकी कुलनायिका।
तां मे कथय देवेश! येन तृप्तिं लभाम्यहम्॥''[२]

देवेश भैरव ने उस **'कौलिक विधि'** को अपने हृदय में स्थित बताया— ''कालिकोऽयं विधिर्देवि। मम हृद्वयोम्न्यवस्थितः॥'' और इसे ही ''सद्यः कौलिक-सिद्धिद' कहा। इसी तत्त्वोपदेशक्रम में उन्होंने वर्णमाला एवं तिथियों के समन्वय, सोमसूर्य, पञ्चतत्त्वों की धारणा आदि का वर्णन किया है। वे कहते हैं—

अथाद्यास्तिथयः सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगाः।
तदन्तः कालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ॥
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु।
क्रमात्कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते॥
वाटवग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्।
तदूर्ध्वं शादि विख्यातं पुरस्ताद् ब्रह्मपञ्चकम्॥
अमूला तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता।

---

१. परात्रिंशिका (१)
२. परात्रिंशिका (३)

सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि ॥

इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा ॥[१]

'यजन' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि पराभक्तिपूर्णा पूजा के साथ देवता के श्री चरणों में आत्मसमर्पण ही 'यजन' है—

पूजयेत् परया भक्त्या आत्मानं च निवेदयेत्।

एवं यजनमाख्यातमग्निकार्येऽप्ययं विधिः ॥[२]

'परात्रिंशिका' में ही **'ध्यान'** एवं **'सोमांश'** के नित्याभास का भी उपदेश दिया गया है—

''आद्यन्तरहितं बीजं विकसत्तिथिमध्यगम्।

हृत्पद्मान्तर्गतं ध्यायेत् सोमांशं नित्यमभ्यसेत् ॥३३॥''

'सोमांश' क्या है? **अभिनवगुप्तपादाचार्य** कहते हैं कि **'सोमांश'** षोडशकलात्मक सोम है। **'सप्तदशी कला'** अर्थात् सोम के षोडशात्मक अमृतांश का नित्य हृदय में ध्यान करना चाहिये ॥ इससे समस्त अभीष्टों की प्राप्ति हो जाती है और सर्वज्ञत्व की सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है— ।

''यान्यान्कामयते कामांस्तांस्ताञ्छीघ्रमवाप्नुयात्।

अस्मात्प्रत्यक्षतामेति **सर्वज्ञत्वं न** संशयः ॥''[३]

''एतदभ्यासतः सिद्धिः सर्वज्ञत्वमवाप्यते ॥''[४]

'अकुल' शिव हैं और **'कौलिकी'** शैवी शक्ति हैं।

मत्स्येन्द्रोक्त कौल दृष्टि-

'कौलज्ञान निर्णय' 'कुलानन्द' 'ज्ञानकारिका' 'अकुलवीर तन्त्र' आदि अपनी पुस्तकों में मत्स्येन्द्रनाथ ने अपनी कौलदृष्टि पर प्रकाश डाला है। **''कौलज्ञान निर्णय''** के मत से तो मत्स्येन्द्रनाथ **कौलमार्ग के प्रथम प्रवर्तक** हैं। 'तन्त्रालोक' की टीका में इन्हें सकलकुलशास्त्र का अवतारक कहा गया है।

'कौलज्ञाननिर्णय' के १४हवें पटल में—

(१) **रोमकूपादि कौल** (२) **'वृषणोत्थ कौलिक'** (३) **वह्निकौल** (४)

---

१. परात्रिंशिका

२. परात्रिंशिका (३२)

३. परात्रिंशिका (३४)

४. परात्रिंशिका (३५)

'कौलसद्भाव' एवं **'पदोत्तिष्ठकौल'** सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है।

''कौलज्ञाननिर्णय'' के १६वें पटल में (१) **'कौलज्ञान'** (२) **'महत्कौल'** (३) **'सिद्धामृत'** एवं (४) **'मत्स्योदर कौल'** का उल्लेख किया गया है। मत्स्येन्द्रनाथ सिद्ध या **सिद्धामृतमार्ग** के अनुयायी थे। उन्होंने **'योगिनी कौलमार्ग'** का प्रवर्तन किया था। नाथपंथी अपने को सिद्धमार्गी कहते हैं।

(१) **'आदि युग'** का कौल मार्ग— 'कौलज्ञान'

(२) **'त्रेता युग'** का कौल मार्ग— 'महत्कौल'

(३) **'द्वापर युग'** का कौल मार्ग— 'सिद्धामृत'

(४) **'कलियुग'** का कौलमार्ग— 'मत्स्योदर कौल'

'महाकौल' के अनन्तर 'सिद्धकौल' और 'सिद्धकौल' के बाद **'मत्स्योदर'** का अवतरण हुआ। चार युगों में शिव ने चार अवतार धारण किए।

(१) **प्रथम युग में** शिवोपदिष्ट कौलमार्ग= **'कौल ज्ञान'**।

(२) **द्वितीय युग में** (त्रेता युग में)= **'सिद्ध कौल'**।

(३) **तृतीय युग में** (द्वापर युग में)= **'सिद्धामृत'**।

(४) **चतुर्थ युग में** (कलियुग में)= **'मत्स्योदर'**।

इक्कीसवें पटल में अनेक कौल मार्गों का उल्लेख है। **डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची** के मतानुसार मत्स्येन्द्रनाथ 'सिद्ध' या **'सिद्धामृतमार्ग'** के अनुवर्ती थे। उन्होंने स्वयमेव **'योगिनी कौल मार्ग'** का प्रवर्तन किया था। **'कौलज्ञान निर्णय'** में जिस कौल मत का वर्णन किया गया है वह **'काम रूप'** की योगिनियों के घर-घर में विद्यमान था।

मत्स्येन्द्रनाथ ने इन्हीं योगिनी स्त्रियों के घर से अनायास प्राप्त इस कौल मत का संग्रह किया था—

''तस्य मध्ये इमं नाथ सारभूतं समुद्धृतं।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे ॥''[१]

(क) मत्स्येन्द्रनाथ सिद्ध या **'सिद्धामृत मार्ग'** के अनुवर्ती थे।

(ख) मत्स्येन्द्रनाथ ने **'योगिनी कौलमार्ग'** का प्रवर्तन किया।

(ग) मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप में साधना की थी।

---

१. कौलज्ञान निर्णय (२२/१०)

(घ) (सारांश) मत्स्येन्द्रनाथ पहले **'सिद्ध'** या **'सिद्धामृत मार्ग'** के अनुयायी थे किन्तु बाद में वे कामरूप में वाममार्गी साधना में संलग्न हो गए तथा उन्होंने स्वतन्त्र रूप से कौलज्ञान अवतरित किया।

(ङ) **'मत्स्योदर कौल मत'** (कलियुग का शिवोक्त कौल ज्ञान) से ही **'योगिनीकौल मत'** विनिर्गत हुआ।

(च) मत्स्येन्द्रनाथ ने **'सिद्धामृत कौल मार्ग'** का त्याग करके **'योगिनी कौलमार्ग'** का प्रवर्तन किया।

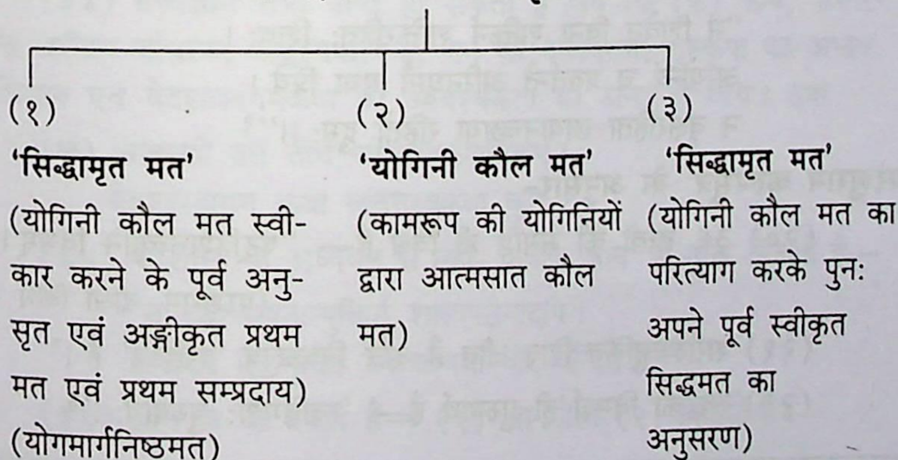
(छ) सिद्धमत (सिद्धामृत) कौलमार्ग ब्रह्मचर्य पर आश्रित था। इसमें नारी एवं नारी-संघ प्रतिषिद्ध था।

(ज) गोरक्षनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ को कामरूप की योगिनियों के कौलमार्ग से मुक्ति दिलाकर मत्स्येन्द्रनाथ को पुन: **'सिद्धमत** या **'सिद्धामृत मार्ग'** में लौटाने का कार्य किया था।

(झ) **'कौलज्ञान निर्णय'** नामक मत्स्येन्द्रनाथोक्त कौल मत का ग्रन्थ **'योगिनी कौलमृत'** (कामरूप की योगिनियों के घर-घर में प्रचलित कौल मत) से सम्बद्ध है।

(ञ) **'अकुलवीर तन्त्र'** नामक मत्स्येन्द्र-प्रणीत ग्रन्थ उनके पूर्व परित्यक्त किन्तु बाद में पुन: स्वीकृत (अङ्गीकृत) **'सिद्धामृतमत'** का ग्रन्थ है।

मत्स्येन्द्रनाथ की कौलदृष्टि की यात्रा



मत्स्येन्द्र के 'कौलज्ञान निर्णय' में प्रतिपादित सिद्धान्त

(१) सहज पर बल (२) बाह्याचार का विरोध (३) कुलक्षेत्र एवं पीठों के

प्रति आस्था (४) वज्रीकरणाभ्यास (५) पञ्चमकार या पञ्च पवित्र (ये बातें तो सहजयानी एवं वज्रयानी बौद्ध भी मानते थे।) (६) योगमार्ग में आस्था (७) शिव में आस्था (८) शक्ति में आस्था (९) (शिवावतारों का तो वर्णन तो अवश्य है किन्तु बुद्धावतारों का नहीं है। ये बौद्धों को मिथ्यावादी मानते थे।) (१०) कौलमार्गी शाक्तमतानुयायी थे। (११) कुल (शक्ति) अकुल (शिव) के सम्बन्ध-स्थापन (सामरस्य) का मार्ग ही **'कौलमार्ग'** है—

"कुलं शक्तिरितिप्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलाकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ॥
शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरं शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्र चन्द्रिकयोरिव ॥"

(१२) कुलाकुल का सामरस्य ही **'कौलज्ञान'** है।

(१३) शिव की विश्व-सिसृक्षा ही **'शक्ति'** है।

(१४) शिव और शक्ति में अभेद है यथा चन्द्र चन्द्रिका में।

(१५) शक्ति ही सृष्टि का मूल है— 'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता'।

(१६) शक्ति ही उपास्य है। शक्ति के उपासक शाक्त ही **'कौल'** है।

(१७) बौद्धों के साधना का लक्ष्य नैरात्म्यभाव कौलों को मान्य नहीं है।

(१८) कौल साधक बुद्ध के स्थान पर शिव को अपना लक्ष्य मानते हैं।

(१९) शिव शक्ति अभिन्न हैं—

"न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
अन्योन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निधूमौ यथा प्रिये।
न वृक्षरहिता छायानच्छाया रहितो द्रुमः ॥"[१]

परशुराम कल्पसूत्र' के अनुसार–

(२०) ३६ तत्त्वों की समष्टि ही विश्व है— "षट्त्रिंशतत्वानि विश्वम् ॥"
(परशुराम. दीक्षा विधि ४)

(२१) शरीरकञ्चुकित शिव जीव है और निष्कलुष 'परशिव' है।[२]

(२२) स्व का विमर्श ही पुरुषार्थ है— 'स्वविमर्शः पुरुषार्थः।'[३]

---

१. कौलज्ञान निर्णय (१७, ८-९)
२. प. क. सू. (५)
३. प. का. सू. (६/१)

(२३) वर्णात्मक शब्द नित्य हैं : 'वर्णात्मका नित्या शब्दाः'।

(२४) मन्त्रों में अचिन्त्य शक्ति विद्यमान है।

(२५) सम्प्रदायानुसरण एवं विश्वास से ही साधना में सिद्धि मिलती है।

(२६) ब्रह्म का स्वरूप आनन्द है— 'आनन्दं ब्रह्मणोरूपम्' (१२)

(२७) किसी भी दर्शन की निन्दा नहीं करनी चाहिये : 'सर्वदर्शनानिन्दा'

(२८) 'शिवतासमावेश' सतत रूप से अभ्यसनीय है।

(२९) काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य-हिंसा-स्तेय एवं लोक-विद्वेष सदैव वर्जनीय हैं।[1]

(३०) निष्काम कर्म करना चाहिये : 'फलं त्यक्त्वा कर्मकरणम्।' (२२/१)

(३१) आत्मलाभ से बड़ा कोई लाभ नहीं है—

'आत्मलाभान्न परं विद्यते ॥' (परशु. २८/१)

(३२) दीक्षायें तीन प्रकार की होती हैं— (१) 'शाक्ती' (२) 'शाम्भवी' और (३) 'मान्त्री' (३२/१)

(३३) भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही आराध्य है—

'य इमां दशखण्डीं महोपनिषदं महात्रैपुरसिद्धान्त सर्वस्वभूतामधीते सः सर्वेषु यज्ञेषु यष्टा भवति ॥'[2]

'कुलार्णवतन्त्र' के अनुसार–

(३४) **तत्त्वज्ञान** तभी प्राप्त हो सकता है जब कि (क) काम, संसार-वासना, इन्द्रिय-चांचल्य, सङ्कल्पकल्पना, मन की अस्थिरता, गुरुकृपा का अभाव, **देहाभिमान** एवं वेदशास्त्रगमकथा की आवश्यकता का अन्त हो जाय। तथा

(ख) 'यावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।
वेदशास्त्रागम कथा तावत्तत्त्वकथा कुतः?'

(३५) वेदशास्त्र के अध्ययन से नहीं, केवल 'ज्ञान' से मुक्ति मिलती है—

''न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि।
ज्ञानादेव हि मुक्तिः स्यान्नान्यथा वीर वन्दिते ॥''[3]

(३६) ज्ञान के दो प्रकार हैं— (१) आगमोत्थ (२) विवेकोत्थ।

१. परशुरामकल्पसूत्र (१९/१)
२. परशुरामकल्पसूत्र (८३/स. सा. क्रम)
३. कुलार्णव तन्त्र

(३७) द्वैताद्वैतविवर्जित तत्त्व ही परमतत्त्व है अद्वैत आदि नहीं।[१]

'अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैतविवर्जितम् ।।'[२]

(३८) **बन्धन एवं मोक्ष** 'ममत्व' एवं 'निर्ममत्व' से सम्बद्ध हैं अर्थात्—

''ममेति बध्यते जन्तुर्नममेति विमुच्यते ।।''

(३९) कुलधर्म के पालन से ही मुक्ति सम्भव है अन्यथा नहीं—

'कुलधर्ममृते मुक्तिर्नास्ति सत्यं न संशयः ।।'

अवस्थाओं के वरीयता का क्रम इस प्रकार है—

'**उत्तमा** सहजावस्था, **मध्यमा** ध्यानधारणा।
जपस्तुतिः **स्यादधमा, होमपूजाधमाधमा**।
उत्तमा तत्त्वचिन्तास्याज्जपचिन्ता तु **मध्यमा**।
शास्त्रचिन्**ताधमा** ज्ञेया लोकचिन्**ताधमाधमा** ।।
उत्तम— सहजावस्था। मध्यम— ध्यान-धारणा।
अधम— जपस्तुति। **अधमाधम**— होमपूजा। आदि ।।

(४०) **'सुभगोदय' के अनुसार कौलमत–** सुभगोदय में कहा गया है कि—(क) कौल त्रिकोण' को 'कुलगृह' कहते हैं किन्तु समयी 'चतुष्कोण' (बैन्दव-स्थान्र को कुलगृह मानते हैं और उसे सुधासिन्धु में स्थित 'मणिगृह' कहते हैं—

''त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति पाहुरपरे।
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ।।''[३]

(४१) सामयिकों की पूजा षोढैक्य है— 'तदेवं षोढैक्यं भवति हि सपर्या **समयिनाम्**।। सामयिकों की पूजा 'सहस्रार चक्र' में होती है किन्तु कौलों की मूलाधार चक्र में।

(४२) कौलों की पूजा 'स्वाधिष्ठान' एवं 'मूलाधार चक्र' में होती है। इनकी पूजा भगादिरूप में होती है किन्तु समय मत में यह निषिद्ध है—

अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने।
अतो बाह्यपूजा भवति भगरूपेण च ततो ।। निषिद्धाचारोऽयं[४]

******

१. कुलार्णव तन्त्र
२. कुलार्णवतन्त्र
३. सुभगोदय (७)
४. सुभगोदय

तृतीय खण्ड
सृष्टि-मीमांसा

अध्याय-१२

सृष्टि-मीमांसा और शब्द सृष्टिवाद

विश्व-सृजन और वर्णमाला (शब्दसृष्टिवाद)

('परात्रिंशिका' शास्त्र में प्रतिपादित दृष्टि)

सृष्टि के मूल संघटक तत्त्व, ज्ञापक शब्द : मूलाधिष्ठान/मूल स्रोत

(१) **'शिवतत्त्व'**— अकारादि विसर्गान्त सारे शब्द।

(२) **भूतपञ्चक** (धरा से नभ)— कादिङ्गान्त सारे शब्द।

(३) **तन्मात्रपञ्चक** (गन्धादि शब्दान्त)— चादि ञान्त सारे शब्द।

(४) **कर्माक्षपञ्चक** (पादादि वागन्त)— टादिणान्त सारे शब्द।

(५) **करणपञ्चक** (घ्राणादि श्रोत्रान्त)— तादिनान्त सारे शब्द।

(६) **पुरुषादि पञ्चक** (मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, पुरुष)— पादिमान्त सारे शब्द।

(७) **राग, विद्या, कला, माया तत्त्व**— य, र, ल, व शब्द।

(८) **महामाया-विद्येश्वर, सदाशिव एवं शक्ति नामक ४ तत्त्व**— शादिक्षान्त सारे शब्द।

वर्णों के दो भेद हैं– (१) 'स्वर' (२) 'व्यञ्जन'

स्वर– (अ से विसर्गान्त से तिथियों का आविर्भाव होता है (स्वरों से १५ तिथियों का निर्माण होता है।) २५ तत्त्वों का निर्माण (पृथ्वी से पुरुष तक के २५ तत्त्वों का आविर्भाव) 'क' से 'म' पर्यन्त पञ्च वर्गों से होता है।

परात्रिंशिकाकार की दृष्टि– 'परात्रिंशिका' (रुद्रयामल के ३० श्लोक) में 'शब्दसृष्टिवाद' को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

"अथाद्यास्तिथय: सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगा:।
तदन्त: कौलयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु।
क्रमात्कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते।
वाय्वग्नि सलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्॥[1]

---

१. परात्रिंशिका (५-७)

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं–

(१) अकारादि विसर्गान्तं **शिवतत्त्वं** (२) कादिङान्तं धरादिनभोऽन्तं **भूतपञ्चकं** (३) चादिञान्तं गन्धादि शब्दान्तं **तन्मात्रपञ्चकं** (४) तादिनान्तं घ्राणादि-श्रोत्रान्तं बुद्धि**करणपञ्चकं** (५) पादिमान्तं मनोऽहंकार-बुद्धि प्रकृति-पुरुषाख्यं **पञ्चकं**, (६) वाय्वादिशब्दावाच्या यादयो वकारान्ता रागविद्याकलामायाख्यानि तत्त्वानि ।। —परात्रिंशिका विवृति[1]

वर्णविज्ञान और नादोत्त्पत्तिवाद

सृष्टि का मूल **'शब्दतत्त्व'** है। भर्तृहरि कहते हैं—

"अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत: ।।"[2]

(१) स्वरपञ्चक एवं व्यञ्जन-समूह में एकत्व

स्वरों से ही व्यञ्जनों का प्रादुर्भाव हुआ है। इनमें अ, इ, उ, ऋ, ऌ— ये वर्ण समस्त वर्णों के जनक हैं।

स्वतन्त्रानन्दनाथ की दृष्टि-

'यद्वर्णपञ्चकमपूर्वकमादि वर्ग्य-
मन्तस्थतां भजति सङ्कुचिते तदीषत्।
तत्कादिवर्गतनु सङ्कुचितं नितान्त-
मूष्मात्मकञ्च दधतेङकुरिताभिपूर्ति ।। (२/४)

जब अकार आदि **'वर्णपञ्चक'** 'ईषत्-विवृति' का विषय बनते हैं तब पूर्णत्व के अङ्कुरित होने पर पाँचों वर्णों के उच्चारण में **'ऊष्मता'** का स्फुरण होता है।

परिणामत: प वर्ग के रूप में सङ्कुचित अकार आदि का **ईषत्-विवृतरूप** 'श' 'स' 'ष' एवं 'ह' **ऊष्माणवर्ण समूह** है।

च वर्ग का— 'शकार' ट वर्ग का **'षकार'**
त वर्ग का— 'सकार' क वर्ग का **'हकार'**
ईषतविवृत रूप हैं।

---

१. अभिनवगुप्तपादाचार्य
२. वाक्यपदीय

'कारणरूप' वर्ण **आदिवर्णपञ्चक वर्ण** हैं।

इसी वर्णपञ्चक से— **'कार्यरूप'** समस्त वर्णसमूह का आविर्भाव हुआ करता है।

जब **'ईषत् स्पृष्ट'** स्वरपञ्चक पूर्ण सङ्कोचावस्था प्राप्त कर लेते हैं तब अकार आदि पाँचों वर्ण— क-वर्ग, च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग तथा प-वर्ग के रूप में परिणत हो जाते हैं।

स्वर वर्ग के प्रथम ५ वर्ण 'अ' 'इ' 'उ' 'ऋ' एवं 'ऌ' के उच्चारण में अवयवों का स्पर्श 'ईषत्' होता है।

(क) अ, इ, उ, ऋ, ऌ— **'ईषत् स्पृष्ट वर्ण'**।

अवयवों के स्पर्श से स्वर सङ्कुचित हो जाते हैं अतः इन्हें **'ईषत् सङ्कुचित'** भी कहते हैं।

ईषत् सङ्कोच के कारण अकार आदि ५ वर्ण अन्तःस्थ वर्णों के रूप में रूपान्तरित हो जाते हैं। यथा इकार—यकार में; उकार—वकार में; ऋकार—रकार में एवं लृकार— लकार में।

स्वर और व्यञ्जनों में सामरस्य

व्यञ्जनों का उत्पत्ति-क्रम

शिवानन्द की दृष्टि

(१) **'इकार'**– 'यकार' में परिवर्तित हो जाता है।

(२) **'उकार'**– 'वकार' में परिवर्तित हो जाता है।

(३) **'ऋकार'**– 'रकार' में परिवर्तित हो जाता है।

(४) **'ऌकार'**– 'लकार' में परिवर्तित हो जाता है।

(१) **'अकार'** का सङ्कुचित रूप **'कवर्ग'** है।

(२) **'इकार'** का सङ्कुचित रूप **'चवर्ग'** है।

(३) **'ऋकार'** का सङ्कुचित रूप **'टवर्ग'** है।

(४) **'ऌकार'** का सङ्कुचित रूप **'तवर्ग'** है।

(५) **'उकार'** का सङ्कुचित रूप **'पवर्ग'** है।

(क) स्वर वर्ग के प्रथम ५ वर्ण 'अ' 'इ' 'उ' 'ऋ' 'ऌ' के उच्चारण में अवयवों का **स्पर्श ईषत्** होता है। पाँचों वर्ण 'ईषत्स्पृष्ट' कहलाते हैं।

अवयवों के स्पर्श से स्वर सङ्कुचित हो जाते हैं।

अतः इन्हें 'ईषत् सङ्कुचित' भी कहते हैं।

ईषत् सङ्कोच के कारण अकार आदि ५ वर्ण— अन्तःस्थ वर्णों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

'अ' 'इ' 'उ' 'ऋ' एवं 'ल'— ये ५ वर्ण अन्य समस्त वर्णों की उत्पत्ति के कारण हैं।[१]

स्वतन्त्रानन्द कहते हैं—

''यद्वर्णपञ्चकमपूर्वकमादिवर्ग्य-
मन्तस्थतां भजति सङ्कुचिते तदीषत्।
तत्कादिवर्ग तनु सङ्कुचितं नितान्त-
मूष्मात्मकञ्च दधतेऽङ्कुरिताभिपूर्ति ॥''[२]

(२) वर्ण एवं इन्द्रियों में एकत्व

विलोमक्रम का स्वरूप–

(१) श्रोत्रादि इन्द्रियाँ— 'त वर्गमय' हैं।

(२) 'श्रोत्र' का द्योतक है— 'नकार'। 'श्रोत्र'— आकाश का अंश है।

(३) 'त्वक्' का द्योतक है— 'धकार'। 'त्वक्ट— वायु का अंश है।

(४) 'चक्षु' का द्योतक है— 'दकार'। 'चक्षु'— तेज का अंश है।

(५) 'जिह्वा' का द्योतक है— 'थकार'। 'जिह्वा'— जल का अंश है।

(६) 'घ्राण' का द्योतक है— 'तकार'। 'घ्राण'— पृथ्वी का अंश है।

(७) 'वागादितत्त्व पञ्चक' का द्योतक है— 'ट वर्ग'।

(८) 'आकाश का अंश है— 'वाक्तत्त्व'। आकाशांश 'ण'।

(९) 'वायु' का अंश है— पैर। **ढकार** वायु का अंश पाद है।

(१०) 'तेज' का अंश— **डकार**— 'पाणितत्त्व' है। (डकार।)

(११) 'जल' का अंश— **ठकार–** 'उपस्थ' है। (ठकार।)

(१२) 'पृथ्वी' का अंश— **टकार–** 'पायु' है। (टकार।)

---

१. मातृका चक्र विवेक व्याख्या

२. मा. च. वि. (२/४)

(३) वर्ण और तत्त्वों में समारस्य

'शब्द' 'स्पर्श' 'रूप' 'रस' 'गन्ध'— 'आकाश', 'वायु', 'तेज', 'जल' एवं 'पृथ्वी'=चवर्ग+कवर्ग के रूप हैं।

अधिष्ठाता	वर्ण का वर्ग	प्रतिपाद्य तत्त्व
(१) 'वायु तत्त्व'—	(अधिष्ठाता) **'त'** वर्ग का	त वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्व वायु के विलास हैं।
(२) 'अग्नि तत्त्व'—	(अधिष्ठाता) **'ट'** वर्ग का	ट वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्व अग्नि के विलास हैं।
(३) 'जल तत्त्व'—	(अधिष्ठाता) **'च'** वर्ग का	च वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्व जल के विलास हैं।
(४) 'पृथ्वी तत्त्व'—	(अधिष्ठाता) **'क'** वर्ग का	क वर्ग प्रतिपाद्य तत्त्व पृथ्वी के विलास हैं।

स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं—

श्रोत्रादिकं खलु तवर्गमयं विलोमा-
द्वागादि पञ्चकमिदञ्च टवर्गरूपम्।
शब्दादि खाद्यपि चवर्ग कवर्गरूप-
मेतानि वायुदहनाम्बुमही विलासा: ॥ (४/४)

(४) वर्ण-वर्गों एवं पञ्चतत्त्वों का आन्तर रूप-

वर्ण एवं तत्त्व	**आन्तर स्वरूप**
(१) देहाभिमानरूपिणी **'प्रकृति'**–	क वर्ग रूपा **पृथ्वी का आन्तर** स्वरूप है।
(२) **चवर्ग** रूप **सलिल** का—	आन्तर रूप **अहङ्कार** है।
(३) **टवर्ग** रूप **अग्नि** का—	आन्तर रूप **बुद्धि** है।
(४) **तवर्ग** रूप **अनिल** का—	आन्तर रूप **मन** है।
(५) पवर्ग	वर्णचतुष्टयरूप प्रकृति से ही संसार का उद्भव हुआ है।

'वर्ण'—	'क'—	'च'—	'ट'—	'त'—	वर्ग
तत्त्व—	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	तत्त्व

(उत्पाद्य)

(१) **'सूक्ष्म प्रकृति' की उत्पत्ति–** पृथ्वी, अहङ्कार, बुद्धि एवं मन।

(२) क च ट त वर्गों द्वारा अवबोधित— पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु तत्त्वों का कारण भी **'सूक्ष्म प्रकृति'** है।

(३) **सूक्ष्म प्रकृति रूप संसार** का स्थूल भाव— **पृथ्वी संसार** है।

(४) प्राकृतिक संसार का पर्याय **'ब्रह्माण्ड'**— पृथ्वी पर्यन्त तत्त्वों का मूल है।

(५) माया का विलास— प्रकृति पर्यन्त है।

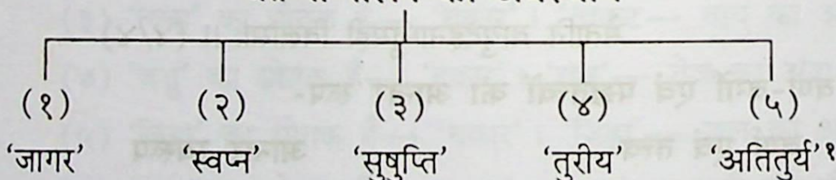
स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं—

देहात्मिका प्रकृतिरान्तर रूपमुर्व्याः।
सूक्ष्मं जलस्य खलु रूपमहंक्रिया स्यात्।
अग्नेस्तु बुद्धिर्निलस्य मनोऽन्तरात्मा,
सर्गः खलु प्रकृतिजः क्षिति सर्गबीजम्॥ (५/४)

तान्त्रिकों ने चेतन तत्त्व की पाँच अवस्थायें स्वीकार की हैं। ये ही चैतन्य के पाँच स्तर भी हैं।

शब्द की भी पाँच अवस्थायें हैं।

चैतन्योन्मीलन की अवस्थायें



तुरीय शब्द ही 'शब्दब्रह्म' है। **'अतितुर्य'** ब्रह्मपद है अर्थात् परब्रह्म परमशिव है।

स्वतन्त्रानन्द आदि तान्त्रिकों ने शब्द की भी चार अवस्थायें स्वीकार की हैं जो कि (१) 'जागर' (२) 'स्वप्न' (३) 'सुषुप्ति' एवं (४) 'तुरीय' हैं। तुरीय शब्द

---

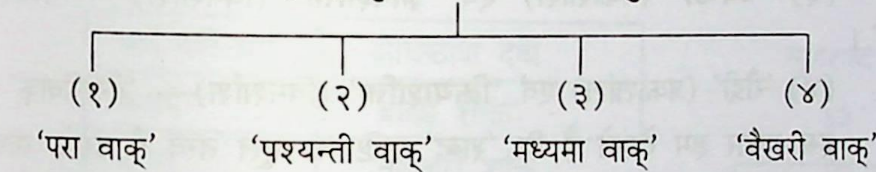
१. (१) इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या **जागरावस्था**।
(२) अन्तःकरणचतुष्कव्यवहारः **स्वाप्निकावस्था**।
(३) आन्तरवृत्तेर्भवतो लीनप्रायस्य जीवस्य। वेदनमेव **सुषुप्तिः**
(४) **तुर्यावस्था चिदभिव्यञ्जकनादस्य** वेदनं प्रोक्तम्।
(५) आनन्दैक**घनत्वं** यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम्।
तुर्यातीतावस्था। —भास्कर राय —'वीरवस्यारहस्यम्'

ही **'शब्दब्रह्म'** है और अतितुरीय 'परब्रह्म'। "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति ॥"

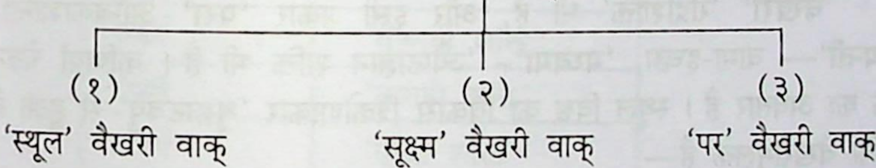
आचार्य पद्मपादाचार्य की दृष्टि

आचार्य पद्मपादाचार्य 'प्रपञ्चसारतन्त्र' की व्याख्या में शब्दों की अवस्थाओं को (१) 'स्थूल' (२) 'सूक्ष्म' (३) 'कारण' (४) 'सामान्य' एवं (५) 'साक्षी' की संज्ञा दी हैं। उन्होंने 'सूक्ष्मा' 'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' 'वैखरी' ('पञ्चपदी') तो माना ही साथ ही साथ उन्होंने (१) 'शून्य' (२) 'संवित्' (३) 'सूक्ष्म' (४) 'परा' (५) 'पश्यन्ती' (६) 'मध्यमा' एवं (७) वैखरी ('सप्तपदी') भी स्वीकार किया।[1]

शब्द-वृत्तियाँ या वाक चतुष्टय



वैखरी वाक्



(१) या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत्।
सा **स्थूला वैखरी** यस्याः कार्यं वाक्यादिभूयसा ॥[2]

(२) विवक्षात्मक अनुसन्धान ही **सूक्ष्म वैखरी** है।

(३) अनुपाधिमान चिदात्मक वैखरी **पर वैखरी** है।

(४) क्रिया शक्ति रूपा ही वैखरी है।

स्फुट वर्णों की अभिव्यक्ति का कारण 'वैखरी वाक्' है। मूल वाक् 'परा' है। 'वामकेश्वर तन्त्र' ('नित्याषोडशिकार्णव') के अनुसार विश्व का आविर्भाव 'शब्द' से होता है। मूल शब्द 'शब्दब्रह्म' या परावाक् है।

विश्व का सङ्घटक एवं जनकरूप शब्द : 'परावाक्'

(१) परमा, चिद्रूपा, अद्वितीया, शिवाभिन्ना 'परावाक्' (त्रिपुरा देवी) जब

---

१. पद्मपादाचार्य (प्र. सा. तन्त्र : द्विपटल : श्लोक ४३)

२. तन्त्रालोक (अ. ३)

स्वनिष्ठ स्फुरत्ता ईक्षण करती है तब विश्व का आविर्भाव हो उठता है—

"यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥"[१]

परमाशक्ति के इस ईक्षण में 'इच्छा शक्ति' 'ज्ञान शक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' भी सन्निहित है—

(१) **'अम्बिका'** (प्रकाशांश) एवं **'शान्ता'** (विमर्शांश)— 'परा वाक्'।

(२) **'वामा'** (प्रकाशांश) एवं **'इच्छाशक्ति'** (विमर्शांश)— 'पश्यन्ती वाक्'।

(३) **'ज्येष्ठा'** (प्रकाशांश) एवं **'ज्ञानशक्ति'** (विमर्शांश)— 'मध्यमा वाक्'।

(४) 'रौद्री' (प्रकाशांश) एवं **'क्रियाशक्ति'** (विमर्शांश)— 'वैखरीवाक्'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'शब्द' सृष्टि का मूल तत्त्व है उसके साथ शैवी शक्तियाँ भी विद्यमान हैं।

'वैखरी' 'रौद्रीशक्ति' भी है, और इसी प्रकार **'परा'** अम्बिकाशान्ता, **'पश्यन्ती'**— वामा-इच्छा, **'मध्यमा'**– 'ज्येष्ठाज्ञान शक्ति भी हैं। वाणियाँ चेतन शक्ति का अवतार हैं। स्थूल विश्व का विकास त्रिकोणाकार 'शृङ्गाटवपु' से हुआ है जो कि वैखरीमूलक है—

"तत्संहतिदशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता।
प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥" (योगिनी हृदय)

सिंघाड़े की आकृति की 'वैखरी वाक्' से ही 'स्फुट विश्व' का सृजन होता है।

'परावाक्' (शब्दब्रह्म) हृदय से मुखपर्यन्त प्रसृत होकर वायु के द्वारा कण्ठ आदि उच्चारण के स्थानों में अभिव्यक्त होकर अकारादि वर्णों का आकार ग्रहण करके श्रोत्रग्राह्य स्थूल वर्ण के रूप में स्फुरित होता है। **'विराट पुरुष'** एवं **'स्थूल वैखरी'** में भी साम्य है—

"वैखर्यात्मकपदानां विराटपुरुषेणैव सह तादात्म्येन शुद्धब्रह्मतादात्म्यं।"[२]

वैखरी का स्वरूप– पद्मपादाचार्य 'वैखरी वाक्' को इस प्रकार निरूपित

१. नित्याषोडशिकार्णव
२. सौभाग्यभास्कर

करते हैं—

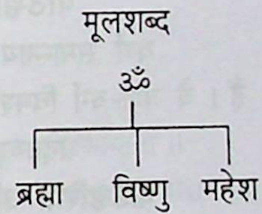
"अथ विराड्रूपिणीं बीजात्मिकां, हृदयास्यान्तं अभिव्यज्यमानां शब्द-सामान्यात्मिकां वैखरीमाह विशेषेण खरत्वात् वैखरी ॥"

'वैखरी' वाणी तो है ही किन्तु अपने मूल में एक शक्ति भी है। **काम-कलाविलास** की टीका में कहा गया है—

"वैखरीनाम अभिलाषरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकलौकिक-शब्दनात्मिका**शक्तिरि**त्युच्यते ॥"

सारी वर्णमाला ही अचिन्त्य शक्तिशालिनी है। प्रत्येक वर्ण किसी न किसी 'शक्ति' के अवतार या रूप हैं—

वर्ण/वर्ण-वर्ग	अधिष्ठात्री देवी
कवर्ग	'ब्राह्मी शक्ति'
चवर्ग	'माहेश्वरी शक्ति'
टवर्ग	'कौमारी शक्ति'
तवर्ग	'वैष्णवी शक्ति'
पवर्ग	'वाराही शक्ति'
यवर्ग	'ऐन्द्री शक्ति'
शवर्ग	'चामुण्डा शक्ति'
अवर्ग	'महालक्ष्मी शक्ति'



वर्णवर्ग	वर्णक्षेत्र	'पीठेश्वरियाँ' 'अधिष्ठात्री शक्ति)
१ 'अवर्ग'—	'अ' से 'अः' तक—	'अमा'
२ 'कवर्ग'—	'क' से 'ङ' तक—	'कामा'
३. 'चवर्ग'—	'च' से 'ञ' तक—	'चार्वङ्गी'
४. 'टवर्ग'—	'ट' से 'ण' तक—	'टङ्कधारिणी'
५. 'तवर्ग'—	'त' से 'न' तक—	'तारा'
६. 'पवर्ग'—	'प' से 'म' तक—	'पार्वती'
७. 'यवर्ग'—	'य' से 'व तक—	'यक्षिणी'

८. 'शवर्ग'—	श से ह तक—	'शारिका'
९. 'क्षवर्ग'[१] क्ष = क + ष = 'कूटबीज'		अनुत्तर एवं अनुत्तर के संघट्ट को व्यक्त करने वाला कूट बीज

विमर्शशक्ति के ८ रूप

(१) 'माहेशी' (२) 'ब्राह्मी' (३) 'कौमारी' (४) 'वैष्णवी' (५) 'ऐन्द्री' (६) 'याम्या' (७) 'चामुण्डा' (८) 'योगेशी'

(इन्हें पीठेश्वरियाँ कहा जाता है।)

पीठेश्वरियाँ, उनका स्वरूप तथा उनके कार्य

वर्ण समाम्नाय के अष्ट वर्गों की नियामिका शक्तियाँ 'पीठेश्वरी' कहलाती हैं। ये वर्ण-वर्ग विमर्शशक्ति के ही अष्टभेद हैं।

"तदेव शक्तिभेदेन माहेश्वर्यादि चाष्टकम् ॥" (मा. वि.)

पीठेश्वरियों की प्रवृत्ति– (१) ये पशुओं को प्रतिक्षण विकल्प परम्परायें प्रदान करती हैं और **भयप्रद** हैं। ये ब्रह्मरन्ध्र में चित् शक्ति की ओट में, नानात्मक अनन्त स्थूल वाणियों के द्वारा संकल्पविकल्पात्मक वाचकों-वाच्यों के निर्देश पर अज्ञानी प्राणियों जीवों को नचाती रहती है—

"करन्ध्रचितिमध्यस्था ब्रह्मपाशावलम्बिका: ।
पीठेश्वर्यो महाघोरा नर्तयन्ति मुहुर्मुहुः ॥"

(२) ये शब्दराशि में अनुस्यूत शाक्तबल की अनुभूति करवाकर **शिवभाव पर पहुँचाने में पथ प्रदर्शन भी करती हैं।**

पीठेश्वरियों के भेद :

पीठेश्वरियाँ– ('मालिनीविजय')

(१) **'घोरतरा (अपरा)'–** 'विषयेष्वेव संलीनानधोऽध पातयन्त्यणून्। रुद्राणून या समालिंड्य, घोरतर्योऽपरा: स्मृता: ॥ (मा. वि. ३.३१)

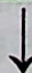
(२) **'घोरा (परापरा)'–** मिश्रकर्मफलासक्तिं पूर्व-वज्जनयन्ति याः। मुक्तिमार्ग-निरोधिन्यास्ताः स्युर्घोराः परा-पराः ॥ (मा. वि. ३.३२)

(३) **'अघोरा (परा)'–** पूर्ववज्जन्तुजातस्य शिवधाम फलप्रदाः। पराः प्रकथिता-स्तज्ज्ञैरघोराः शिवशक्तयः ॥ (मा. वि. ३.३३)

---

१. 'क्ष'=क+ष ॥'कूटबीज'॥

अकार से क्षकार पर्यन्त प्रसृत वर्णसमूह को ही 'स्पन्द कारिका' में **'शब्द-राशि'** कहा गया है। इसको तन्त्र शास्त्र की दृष्टि से **'मातृका'** कहा गया है। 'पराशक्ति' ही मातृका शक्ति के रूप में भी प्रसृत होती है। अआदि क्षान्त वर्ण समुदाय 'चित् शक्ति' का ही बहिर्मुखीन प्रसार है। यह भेद स्तर पर उतरकर शब्दराशि के अष्टवर्गों में विभक्त हो जाता है। अष्ट शक्तियों के परिवार को **'मातृका'** कहते हैं। शक्ति का अवतरण-क्रम देखिये—

'मातृका' विश्वमाता है। 'पराशक्ति' पूर्ण अहन्ता स्वरूपा स्वातन्त्र्य शक्ति है। यही **मातृका** बन जाती है। x x x x	**'चित् शक्ति'** का (बहिर्मुखी प्रसार) 	"अज्ञाता माता **'मातृका'**= विश्वजननी'— (शि.सू.वि.)
(**'मातृका'** ही अभेद स्तर पर स्पन्दमय विमर्श के रूप में 'परा शक्ति' है। यही पूर्णा-हन्ता या स्वातन्त्र्य शक्ति है।) x x x x	(भेद स्तर पर अवतरित) **'शब्दराशि'** (अष्टवर्ग में विभक्त) 	**मातृका**=विश्वमाता ।। 'मातृका' शक्ति का प्रसार→ =अकार से क्षकार पर्यन्त शब्द समूह ही **'शब्दराशि'** है।
'पूर्णाहन्ता'='स्वातन्त्र्य शक्तिरेवास्य सनातनी पूर्णाहन्तारूपा।' (स्पन्द निर्णय) x x x x	**'ब्राह्मी' आदि अष्ट-रूपा शक्तियों** का विकल्प युक्त शक्ति परिवार का रूप धारण करना	(अ से क्ष पर्यन्त वर्ण ही सूक्ष्म-स्थूल वर्णसमुदाय के रूप में प्रसृत होकर अनन्त वाचक-वाच्य रूप में विश्व बनकर प्रसृत हैं।)
(१) **'मालिनी'**– न से फ पर्यन्त प्रसृत वर्ण-माला (मा. वि.) (२) **'मातृका क्रम'** : अ से क्ष तक की वर्ण-माला। x x x x	शब्द राशि के प्रत्येक वर्ग (कवर्ग आदि) की **'अधिष्ठात्री शक्ति'** बन करके उसमें निवास करना।	'प्रकाश' (शिव)+'विमर्श' (शक्ति) का 'सामरस्य' ही विश्वाधार या विश्व का आत्मभूत तत्त्व है। इस सत्ता का स्वरूप **'महामंत्र'** ('अहं विमर्श') है।
		

<table>
<tr>
<td rowspan="2">'बीजयोनि संबंध'
(१) अ से अ: तक के वर्ण=(स्वर समष्टि) 'बीज'।
x x x x
(२) 'क' से 'क्ष' तक के सारी व्यञ्जन समष्टि 'योनि' है।
x x x x
'बीज'=शिवभाग।
'योनि'=शक्तिभाग।
x x x x
'अ'=अनुत्तर तत्त्व।
'ह'=अनाहतशक्ति तत्त्व।
x x x x
विश्वावभासन करने की ओर उन्मुख परा वाणी अहं रूपा विमर्श शक्ति बन जाती हैं।
(बीजयोन्यात्मकादभेदाद्
x x x x
द्विधा बीजं स्वरा मता:
कादिभिश्च स्मृता योनि:
(मा. वि. ३.१०)</td>
<td>अपने यथार्थ चित् स्वरूप को आच्छादित करके उसे गुप्त रखना और विकल्पों को जन्म देना (पशुभूमिका)
</td>
<td>अहंरूपा विमर्शशक्ति 'इच्छा-शक्ति' के रूप में स्वरूप धारण करती है। 'इच्छाशक्ति' से अंकुरों का जन्म
(१) 'ज्ञान शक्ति'
(२) 'क्रिया शक्ति'॥
ये शक्तियाँ ही 'मातृका' बन जाती हैं।</td>
</tr>
<tr>
<td>पशुत्व
(संसरण : बन्धन)
(पशु भूमिका)</td>
<td>मातृका और उसका परिवार 'ब्राह्म्यादि मातृणां मातृत्वं यत्तस्य परिवारभावेन तिष्ठन्ति विकल्पा हि चिद्रूपस्य जीवस्य परितो वारणात् 'परिवार' एव 'मातृशब्दो' ह्यत्र परिवार वाच्येव न जननी वाचक:।
(ई. प्र. २.१.१)</td>
</tr>
</table>

शक्ति वर्ग के तीनों रूप जीवन को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

(१) **घोरतरा (अपरा शक्ति)–** तमोगुण प्रकृतिवाले व्यक्तियों के लिए यह शक्तिवर्ग अत्यधिक भयप्रद है। ये शक्तियाँ इन लोगों को प्रत्येक क्षण सांसारिक विषयोपभागों में आसक्त करके उन्हें निरन्तर अध:पतन के अतल अन्धकार में ढकेलती रहती हैं।

(२) **घोरा (परापरा) शक्ति–** ये शक्तियाँ रजोगुणप्रधान पशुवर्ग को शुभाशुभ फलों वाले विषयों की ओर निरन्तर प्रवृत्त करती रहती हैं। यह 'घोरतरा' शक्तिवर्ग की भाँति भयंकर नहीं है अत: ईश्वरानुग्रह होने पर इनसे प्रभावित पशु

अपना उद्धार भी कर सकता है। सामान्यतया यह शक्तिवर्ग मुक्ति के मार्ग को अवरुद्ध ही रखती हैं।

(३) **अघोरा (परा) शक्तिवर्ग–** सतोगुणमार्ग के यात्री पशुओं के लिए यह शक्तिवर्ग सौम्य एवं कल्याणकारी है। ये पशुओं को शिवभाव पर पहुँचाया करती हैं।

अन्तर्विमर्श एवं बहिर्विमर्श के स्तर पर स्वरों की भूमिकायें भिन्न-भिन्न होती हैं।

(क) **अन्तर्विमर्श की अवस्था में** ५ 'मूलस्वर' (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) (१) 'चित्' (२) 'निर्वृत्ति' (३) 'इच्छा' (४) 'ज्ञान' एवं (५) 'क्रिया'— इन पाँच माहेश्वर शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ख) **बहिर्विमर्श की अवस्था में** ये ५ मूल स्वर कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग एवं पवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ये ककारादि वर्गसमूह ही **'कलासमूह'** कहलाते हैं। ये कलातत्त्व, विद्या तत्त्व आदि मायिक जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं।

केवल स्वर या केवल व्यञ्जन पृथक-पृथक रूप में क्षोभोत्पत्ति नहीं करते प्रत्युत् जब ये परस्पर मिश्रित हो जाते हैं तभी विकल्प परम्पराओं का क्षोभ उत्पन्न होता है। स्वर-व्यञ्जन में पारस्परिक सम्मिश्रण ही **'बीजयोनि संक्षोभ'** कहलाता है।

शब्द जड़ ध्वनि मात्र नहीं हैं प्रत्युत् प्रत्येक ध्वनि एक चेतन शक्ति है।

स्पन्दकारिकाकार की दृष्टि– स्पन्दकारिका में कहा गया है कि—

(१) स्वरूपावरणे चास्य शक्तय: सततोत्थिता:।
यत: शब्दानुवेधेन न बिना प्रत्ययोद्भव: ॥४७॥

(२) सेयं क्रियात्मिका शक्ति: शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका ॥४८॥

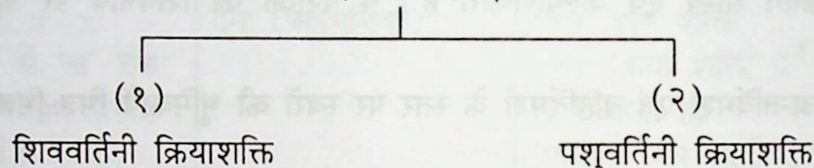
(३) परामृतरसापायस्तस्य य: प्रत्ययोद्भव:।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचर: ॥४६॥

परामृत	प्रत्ययोद्भव : (षट्कञ्चुक)
शिव, शक्ति तत्त्व	माया तत्त्व। कला तत्त्व। विद्या तत्त्व।
सदाशिव, ईश्वर तत्त्व	राग तत्त्व, नियति तत्त्व, काल तत्त्व।

शुद्ध विद्या तत्त्व } (भेदप्रथोत्पादक माया के प्रसाद) }

षट्कञ्चुकों से आच्छादित प्राणी ही **'पशु'** है।

'क्रिया शक्ति' के दो रूप



शिववर्तिनी क्रियाशक्ति पशुवर्तिनी क्रियाशक्ति

पशु का स्वरूप : स्पन्दकारिकाकार कहते हैं—

"शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्त विभवो गतः सन् स पशुः स्मृतः॥"

भट्टकल्लट की दृष्टि-

भट्ट कल्लट कहते हैं—

"शब्दराशिरकादिक्षकारान्तः तत्समुद्भूतस्य कादिवर्गात्मकस्य ब्राह्मयादि शक्तिसमूहस्य भोग्यतां गतः पुरुषो ब्राह्मयादीनां कलाभिः ककाराद्यक्षरैर्विलुप्तविभवः **स्वस्वभावात्** प्रच्यावितः पशुरुच्यते॥

— स्पन्दसर्वस्व (कारिका ४५)

'प्रतिप्रमाता' (शिव) की स्वाभिन्ना एवं **स्पन्दात्मिका विमर्श शक्ति (सर्वस्वतन्त्र संवित् शक्ति)** ही भेदात्मक बहिर्विमर्श के स्तर पर वैखरी वाक् के द्वारा उच्चार्यमाण स्थूल वर्णसमष्टि के रूप में चतुर्दिक व्याप्त हो जाती है।

वर्णसमुदाय शक्तिस्वरूप हैं। ये ही विकल्प-कल्पनाओं का सृजन करने वाली शक्तियाँ हैं। उन्हीं में फँसकर 'पतिप्रमाता' ही 'पशु' बन जाता है। 'कलासमूह' ही आत्मस्वातन्त्र्य को नष्ट कर देता है। **'कलासमूह'** (क से ह तक के सारे वर्ण) पशुप्रमाता को अधःपतन के गर्त में निरन्तर निपतित करता है।

वाक्चतुष्टय और नाद तत्त्व

'नाद' का प्रथम रूप और उसका स्वरूप

'नाद' और 'वाक्' पृथक्-पृथक् होते हुए भी श्रुतियों तक में ही उन्हें एक ही अभिधान दिया गया है अर्थात् 'नादों' को 'वाक्' कहा गया है— "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि॥" **"मध्मया"** से ९ नादों का आविर्भाव हुआ है।

परावाक्— वाणी का प्रथम स्वरूप 'परावाक्' है। इसका प्रथम रूप (परा

वाक्) 'मूलाधार चक्र' से उत्पन्न होता है—

"मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः **पराख्यः**,
पश्चात् **पश्यन्त्यथ हृदयगो** बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।
वक्त्रे **वैखर्यथ** रुरुदिषोररस्य जन्तोः सुषुम्ना,
बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो **वर्णसङ्घः** ॥"[१]

'परावाक्' क्या है–

(१) **'परावाक्'–** (क) मूलाधारात् प्रथममुदितः चैतन्याभासः भावश्च यः जगद्भावयतीति मायाशक्तिर्भावः स **पराख्यः**।

(ख) चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिका माया निष्पन्दा **परावागित्यर्थः**। (सस्पन्दावस्थाः पश्यन्त्याद्याः।)

(२) **'पश्यन्ती वाक्'–** 'सस्पन्दावस्थाः पश्यन्त्याद्याः। तत्र **सामान्यस्पन्द-**प्रकाशरूपिणीं **नादतत्त्वात्मिकाम्** अध्यात्म मूलाधारादिनाभ्यन्तम् अभिव्यज्यमानां **'पश्यन्ती'**माह। **सामान्यज्ञानात्मकत्वात् 'पश्यन्ती'** सा।

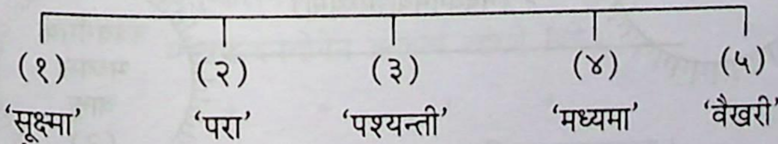
(३) **'मध्यमा वाक्'–** 'अथ बाह्यान्तः**करणाद्यात्मिकां 'हिरण्यगर्भ-रूपिणी' 'बिन्दुतत्त्वमयी' नाभ्यादिहृदयान्ताभिव्यक्तिस्थानां विशेषस्पन्दसङ्क-ल्पादिसतत्वात् मध्यमा** वाचमाह॥ भाव एव विशेष्यः।[२]

(नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्तवाक्= 'मध्यमावाक्')

(४) **'वैखरीवाक्'–** अथ **विराडरूपिणीं बीजात्मिकां हृदयादास्यान्तम्** अभिव्यज्यमानां **शब्दसामान्यात्मिकां वैखरी**माह॥ विशेषेणखरत्वाद्वैखरी।[३]

'सामान्य' से 'विशेष' शब्द की निष्पत्ति–

पञ्चपदी वाणी



---

१. शङ्कराचार्यः 'प्रपञ्चसारतन्त्र'।
२. 'मध्ये मा बुद्धिर्यस्याः सा मध्यमा।'
३. पद्मपादाचार्य— प्रपञ्चसार विवरण।

''सप्तपदी वाणी'' ('शून्य संवित् सूक्ष्मादीनि सप्तपदानि)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
'शून्य'	'संवित्'	सूक्ष्मा	परा	पश्यन्ती	मध्यमा	वैखरी[1]

तत्राऽनुत्पन्ना निष्पन्दा'शून्या' वागुत्पित्सुः 'संवित्' उत्पत्यवस्था 'सूक्ष्मा'[2]

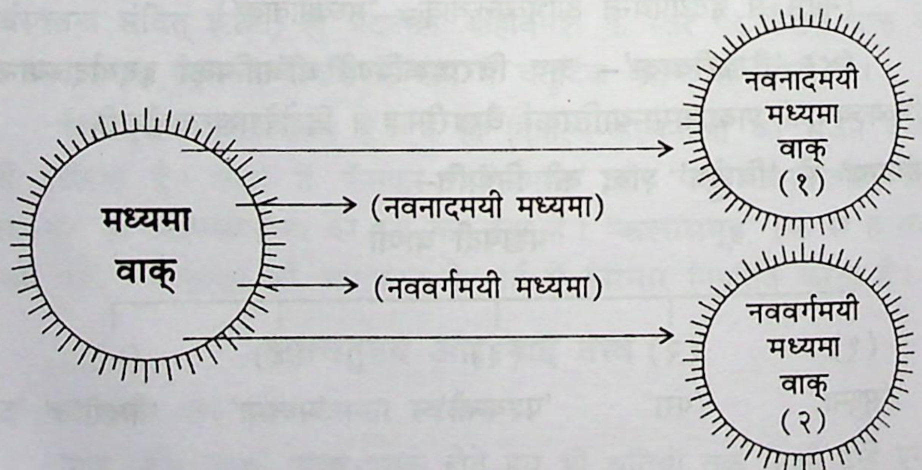
कामकलाविलासकार की दृष्टि-

'मध्यमा' पर विचार करें। ९ नादों की माता तो 'मध्यमा' वाक् ही है। इसके भेद दो हैं—

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मास्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्यात्मा ।।[3]

नटनानन्दनाथ कहते हैं कि— मध्यमा के दो भेद हैं। उनमें सूक्ष्मा, मध्यमा तो समाधि में ही अनुभूयमान हैं—

''सा अन्तर्मुखपरमयोगिभिः दृश्या **'मध्यमा'** नाम शक्तिर्द्विविधा द्विप्रकारा। स्थूलसूक्ष्मभावात्। तत्र **'सूक्ष्मा' समाधिस्थलेन** अनुभूयमाना। **स्थूलाकृत्या** पण्डितपामराभिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना।



---

१. पद्मपादाचार्य : 'विवरण'।

२. विवरण।

३. कामकलाविलास (२७)।

'मातृका' 'कुण्डलिनी' और 'नाद'

श्री तन्त्रसद्भावकार की दृष्टि– 'तन्त्रसद्भाव' नामक तन्त्र-ग्रन्थ में सारे वाक् समुदाय, नाद-समुदाय और भगवती कुण्डलिनी आदि को 'निराकार, परा सूक्ष्मा शक्ति' का ही विकास या रूपान्तर प्रतिपादित किया गया है। इसमें कहा गया है—

"या सा तु **मातृका** लोके परतेजस्समन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम्॥
तत्रस्थश्च यथा नादो व्यापितश्च सुरार्चिते।
अवर्णस्थो यथा वर्णस्थितः सर्वगतः प्रिये।
तथाहं कथयिष्यामि निर्णयार्थं स्फुटं तव॥
या सा **शक्तिः** परा सूक्ष्मा निराकारेति कीर्तिता।
हृद्बिन्दुं वेष्टयित्वा तु **सुषुप्ता भुजगा**कृतिः॥
तत्र सुप्तो महायोगी न किञ्चिन्मन्यते यमी।
चन्द्रार्कानिलनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश॥
व्याप्तोदरे तु सा देवी विषवन्मूढतां गता।
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणी॥
मथिता चोदरस्थेन बन्धनादपि वह्निना।
तावद्द्वैभ्रमयोगेन मन्थनं शक्ति विग्रहे॥

\+ + + +

भेदात्तु प्रथमोत्पन्नात् बिन्दुर्नादत्वमीयते।
समुत्थिता यथा तेन कालसूक्ष्मा तु कुण्डली।
चतुष्कलमयो बिन्दुः शक्तेश्चोत्तरगः प्रभुः।
मध्यमन्थनयोगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये॥

\+ + + +

ज्येष्ठाशक्तिः स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यमा।
बिन्दुनादत्वमायाता रेखयाऽ**मृतकुण्डली**॥
लाकिनीनाम सा ज्ञेया उभौ **बिन्दू**यथागतौ।
त्रिपदा सा समाख्याता **'रौद्री'** नाम्ना तु गीयते॥

रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात्।
शशाङ्कशकलाकारा **अम्बिका** चार्धचन्द्रिका ॥
एकैवेत्थं पराशक्तिः त्रिधा सा तु प्रजायते।
आभ्यो युक्तो विविक्ताभ्यः सञ्जातो **नववर्गकः**।
नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता ॥

\+ \+ \+ \+

'सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ॥'

परोत्तरवर्तिनी वाणियों का स्वरूप

(१)	(२)	(३)
'पश्यन्ती' : **'इच्छाशक्तिस्था वामा पश्यन्ती** वपुषा स्थिता ॥'	**'मध्यमा'** वाक् 'ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता'	**वैखरी** वाक् 'क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥'

अर्थात्- "इच्छा ज्ञानक्रियाशक्तयः एवं पश्यन्त्यदिशक्ति-त्रितयतामापन्नाः॥"

नटनानन्दनाथ 'चिद्वल्ली'

(क) **'पश्यन्ती वाक्'** 'इच्छा शक्ति' 'वामा शक्ति'।
(ख) **'मध्यमा वाक्'** 'ज्ञान शक्ति' 'ज्येष्ठा शक्ति'।
(ग) **'वैखरी वाक्'** 'क्रिया शक्ति' 'रौद्री शक्ति'।

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताश्चैताश्चोत्तरावयवाः।
व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयमिदमेकादशात्म **'पश्यन्ती'** ॥

—(काम कला. वि. २४)

परा भू जन्म **पश्यन्ती वल्ली** गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा **वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ** ॥

—सुभगोदय वासना

वाणीरूपवृक्ष

(१) 'परा वाक्'— वृक्षाधार पृथ्वी (जन्मस्थली)
(२) 'पश्यन्ती वाक्'— वल्ली एवं पुष्पगुच्छ।
(३) 'मध्यमा वाक्' — पुष्पों का सौरभ।
(४) 'वैखरी वाक्'— पुष्पों की माला।

सारे 'वाक्' शब्द ही तो हैं और नाद भी नाथों का 'शब्द' ही तो है—

'सबदहिं ताला सबदहिं कूँची सबदहिं सबद जगाया।'

अनादिनिधनं ब्रह्म **शब्द**मक्षरसंज्ञितम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत: ॥

भगवती स्वयं भी नाद (शब्दब्रह्म) से युक्त हैं—

"शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी ॥"

(१) **'पश्यन्ती वाक्'**

'पश्यति सर्वं स्वात्मनि करणानां सरणिमपि यदुत्तीर्णा।

तेनेयं **पश्यन्ती**त्युत्तीर्णेत्यप्युदीर्यते माते ॥[१]

(२) **'मध्यमा वाक्'**

'पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहि:।

स्फुटतर निखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात् ॥'

(पश्यन्ती की भाँति उत्तीर्ण एवं वैखरी की भाँति पूर्ण बाह्यमुखीन होने के कारण (मध्य भूमि में रहने के कारण) यह वाक् **'मध्यमा'** कहलाता है।

(३) **'वैखरी वाक्'**

विशेषेण 'खर:' कठिनस्तस्येयं **'वैखरी'** सैव रूपं यस्या:। घनभावमापन्नेति यावत्। **'वै'** निश्चयेन 'खं' कर्णविवरं **'राति'** गच्छतीति व्युत्पत्ति: **'सौभाग्यसुधोदये'** कथिता— 'प्राणेन विखराख्येन प्रेरिता वैखरी पुन:' इति योगशास्त्रवचनाद् विखरवायुनुन्नेति वा।[२]

'शब्दब्रह्म' 'परावाक्' तथा 'पश्यन्तीवाक्'

'कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं 'शब्दब्रह्म' स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दं तदेव च **परावाग**ित्युच्यते। अथ तदेव **नाभिपर्यन्तमागच्छता** तेन पवनेना**भिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा** युक्तं **सामान्यस्पन्द** प्रकाशरूप **कार्यबिन्दुमयं सत्पश्यन्तीवागुच्यते**।[३]

---

१. सौभाग्य सुधोदय।

२. सौभाग्य भास्कर (भास्कर राय : १३२)।

३. सौभाग्य भास्कर (भास्कर राय : १३२)।

'मध्यमा वाक्' का स्वरूप

'मध्यमा वाक्'– अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं **निश्चयात्मिकया** बुद्ध्या युक्तं **विशेषस्पन्द**प्रकाशरूप **नादमयं** सन् मध्यमावागित्युच्यते।

'वैखरी वाक्'– अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपपरं श्रोत्र-ग्रहणयोग्यस्पष्टतरप्रकाशरूप**बीजात्मकं सद्वैखरी**वागुच्यते।

नित्यातन्त्र के रचयिता की दृष्टि– 'नित्यातन्त्र' में कहा गया है—

'**मूलाधारे** समुत्पन्नः **पराख्यौ** नादसम्भवः।
स एवोर्ध्वतयानीतः **स्वाधिष्ठाने** विजृम्भितः।
पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः।
अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो **मध्यमाभिधः**।
तथा तयोर्ध्वनन्नः सविन्शुद्धौ **कण्ठदेशतः**।
वैखर्याख्य...... ....॥''

स्कान्दयज्ञवैभवखण्ड के रचयिता की दृष्टि

इस ग्रन्थ में कहा गया है कि सारे 'वाक्' **अपद** से उत्पन्न हुए हैं— ।

'अपदं पदमापन्नं पदं चाप्यपदं भवेत्।
पदापदविभागं च यः पश्यति सः पश्यति॥'

अर्थात् 'अपद' (गतिरहित) **'निस्पन्द शब्दब्रह्म'** परादिचतुष्टयवाक् बन गया। पदचतुष्टय को जान लेने पर योगी अपद (ब्रह्म) ही हो जाता है।

'परावाक्'– त्रिपुरा सिद्धान्त के अनुसार—

'श्री परानन्दनाथस्य प्रसन्नत्वात्**परेति** सा॥'

परानन्दतन्त्र के अनुसार—'प्रसिद्धत्वाच्च सा **परा**'[१] ''परानन्दाभिधे तन्त्रे प्रसिद्धत्वाच्च सा **परा**''

'प्रासादरूपिणी चेति **परा** सा शाम्भवी परे॥''[२]

योगिनीकार की दृष्टि

'योगिनीहृदय' में कहा गया है कि **'परमाकला'** जब अपने भीतर अपने स्फुरण का साक्षात्कार करती है तब **'अम्बिका शक्ति'** से समापन्न होकर वह **'परावाक्'** कहलाती है।

---

१. भास्कर राय : सौभाग्य भास्कर।

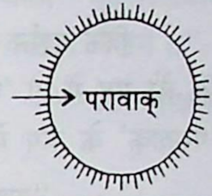
२. सौभाग्य भास्कर (३)

'आत्मन; स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।'

अम्बिकारूपमापन्ना **'परावाक्'** सुदीरिता—

(१) **प्रकाशांश– 'अम्बिका'** दोनों का

(२) **विमर्शांश– 'शान्ता'** सामरस्य



शिव-शक्ति और वाक्चतुष्टय

(१) **प्रकाशांश**

(शिव) दोनों का सामरस्य

(२) **विमर्शांश** (**अम्बिका** और **शान्ता**

(शक्ति) का सामरस्य)।



'अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता'

(१) **प्रकाशांश**

(शिव) दोनों का सामरस्य

(२) **विमर्शांश** (**वामाशक्ति** और **इच्छाशक्ति**

(शक्ति) का सामरस्य)।



'इच्छाशक्तिस्तदा सेयं **पश्यन्ती** वपुषा स्थिता'

(१) **प्रकाशांश**

(शिव) दोनों का सामरस्य

(२) **विमर्शांश** (**ज्येष्ठाशक्ति** और **ज्ञानशक्ति**

(शक्ति) का सामरस्य)।



'ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा **मध्यमा वागुदीरिता**'

(१) **प्रकाशांश**

(शिव) दोनों का सामरस्य

(२) **विमर्शांश** (**रौद्री** और **क्रियाशक्ति**

(शक्ति) का सामरस्य)।



'क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं **वैखरी** विश्वविग्रहा'

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि

त्रिक दर्शन के 'प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय' के दार्शनिक सोमानन्द नाथ ने कहा है कि मेरे मत में तो 'पश्यन्तीवाक्' सदाशिवरूप (ज्ञानशक्ति) है किन्तु वैयाकरण उसे 'परावाक्' के रूप में स्वीकार करते हैं—

"अथास्माकं **ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता** ।
वैयाकरण साधूनां **'पश्यन्ती सा 'परा' स्थितिः** ॥"
इत्याहुस्ते परंब्रह्म यदनादि तथाक्षयम् ।
तदक्षरं शब्दरूपं सा **'पश्यन्ती' 'परा'** हि वाक् ॥[१]

सोमानन्दपाद कहते हैं[२]—

आस्तेविज्ञानरूपत्वे स शब्दोऽर्थविवक्षया ।
मध्यमा कथ्यते सैव बिन्दुनादमरुत्क्रमात् ॥ (मध्यमा वाक्)
सम्प्राप्ता वक्त्रकुहरं कण्ठादिस्थानभागशः ।
वैखरी कथ्यते सैव बहिर्वासनया क्रमात् ॥ (वैखरी वाक्)[३]

नारायणी नादरूपात्मिका है—

वाक्चतुष्टयान्तर्गत (१) **'परावाक्'** (२) **'पश्यन्ती वाक्'** और (३) **'मध्यमा वाक्'** स्थूल वर्ण नहीं प्रत्युत 'नाद' हैं। **'आसीच्छक्तिस्ततो नादः'** कहकर 'नाद' को 'शक्ति' का आदि (प्रथम) विकास कहा गया है और इसे (नाद को) भगवती का स्वरूप भी कहा गया है—

"नारायणी **नादरूपा** नामरूपविवर्जिता ॥"[४]
"वीरगोष्ठी वीरा नैष्कर्म्या **नादरूपिणी** ॥"

सारी वाणियों का आदि केन्द्र भी 'नाद' ही है।

भगवती वाणीस्वरूपा (वाक्चतुष्टयस्वरूपा) है

'वाणी' का बीज **'नाद'** है। "**भास्कर राय** कहते हैं— "तत्र शब्द-

---

१. शिवदृष्टि ।
२. 'अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहतक्रमा ।
ग्राह्यग्राहक विभाग क्रमरहितम् अविभागा तु पश्यन्ती ॥
३. 'शिवदृष्टि' एवं 'शिवदृष्टिवृत्ति' ।
४. ललितासहस्रनाम ।

बह्मरूपस्य बीजस्योच्छूनतावस्था 'परा', स्फुटितावस्था **'पश्यन्ती'** मुकुलिताव्यक्तं दलद्वयं **'मध्यमा'**। सम्यग् विकासेन प्रसृतं मिथः संसृष्टमूलं दलद्वयं वैखरी ॥''

—सौभाग्यभास्कर

भगवती स्वयं वाणी हैं

''परा प्रत्यक्चितीरूपा **पश्यन्ती** परदेवता।

मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका ॥''[१]

(१) शब्दब्रह्मरूप बीज की **उच्छूनावस्था 'परावाक्'** है।

(२) शब्दब्रह्म रूप बीज की **स्फुटितावस्था 'पश्यन्ती वाक्'** है।

(३) इस बीज की मुकुलित, अव्यक्त **दलद्वयावस्था 'मध्यमा वाक्'** है।

(४) इस बीज की व्यक्तावस्था, सम्यक् **विकसितावस्था 'वैखरी वाक्'** है।[२]

सूक्ष्ममातृकायें जो कि चक्रों में स्थित हैं वे **नादस्वरूप** हैं। भगवती **'मातृकावर्णरूपिणी'** कही गयी हैं—

''माध्वीपानलसा मत्ता **मातृकावर्णरूपिणी** ॥''

और वे ही वाणी की अधीश्वरी भी हैं—

'विश्वगर्भा स्वर्णगर्भाऽवरदा **वागधीश्वरी**'। यदि नाद भी वर्ण हैं तो शक्ति को 'वर्ण' भी कहा गया है—

''उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा **वर्णरूपिणी**।''

वर्णों में विद्यमान ध्वनि ही सम्पूर्ण वर्णों का जनक **'नादतत्त्व'** है। 'नाद' सर्वप्रथम परास्वरूप होकर **'मूलाधार** से उठता है। पुनः **'मणिपूर'** एवं अनाहत चक्रों में आकर प्राण एवं मन संयुक्त होकर **'पश्यन्ती वाक्'** और **'मध्यमा वाक्'** के रूप में परिणत हो जाता है। यही कण्ठ में आकर वर्णात्मकता का स्वरूप ग्रहण करता है।

परावाक् का स्वरूप

(१) ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकार की दृष्टि-

'चितिः प्रत्यवमर्शात्मा **परावाक्** स्वरसोदिता।

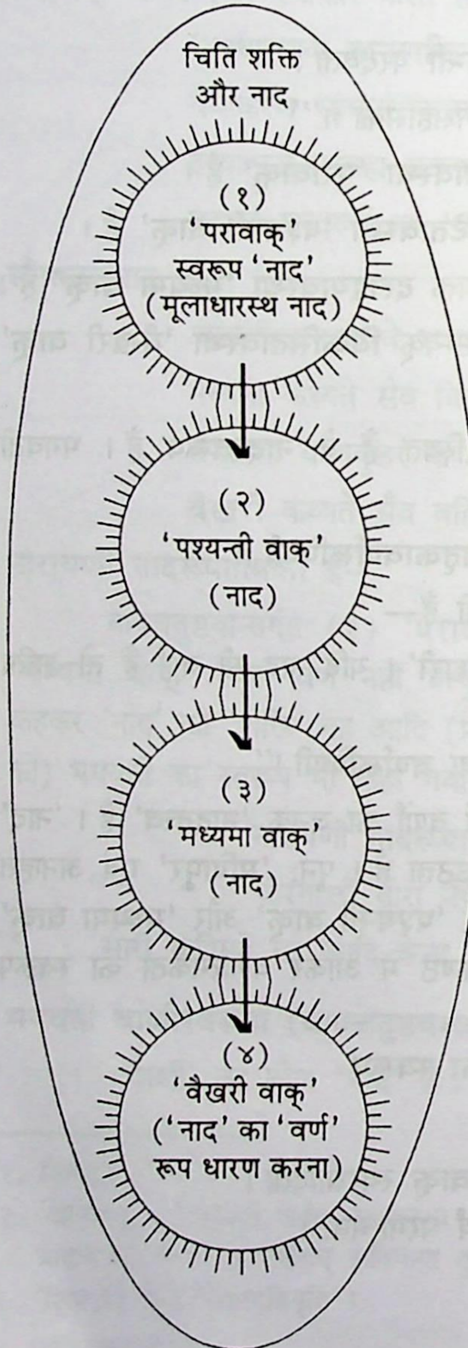
स्वातन्त्र्यमेतन् मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।

१, लतिासहस्त्रनाम (ब्रह्माण्ड पुराण)

२. भास्कर राय।

'सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिन: ॥'

— उत्पलदेव



परावाक् का स्वरूप

(१) मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भाव: **पराख्य:**। —शङ्कराचार्य

(२) 'तदिदं कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दं तदेव च परावागित्युच्यते ॥'

—सौभाग्य भास्कर

आचार्य पद्मपाद की दृष्टि–

'पश्यन्ती वाक्' का स्वरूप

= (१) सामान्यज्ञानात्मिका।

(२) 'सामान्यस्पन्दप्रकाशरूपिणी नादतत्त्वात्मिका' **मूलाधार से नाभि पर्यन्त अवस्थित-**

\+ \+ \+ \+

(१) मध्यमा वाक् का स्वरूप

=बाह्यान्त:करणाद्यात्मिका, हिरण्यगर्भरूपिणी, बिन्दुतत्त्वमयी, विशेषस्पन्दसङ्कल्पादिसतत्वात् मध्यमा।

(२) मध्ये 'मा' बुद्धिर्यस्या: सा **'मध्यमा'**।

(३) नाभि से हृदय पर्यन्त अभिव्यक्त

वैखरी वाक् का स्वरूप

विराडरूपिणी, बीजात्मिका, शब्द सामान्यात्मिका। हृदय से मुखपर्यन्त अभिव्यक्त।

(२) भगवान विरूपाक्ष की दृष्टि–

"प्रत्यवर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परावाग् या ॥"

—विरूपाक्षपञ्चाशिका

(३) शङ्कराचार्य की दृष्टि

आचार्य शङ्कर वाक्चतुष्टय की उत्पत्ति को इस प्रकार निरूपित करते हैं और प्रथम भाव को **'परा'** कहते हैं—

"मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः **पराख्यः** ।
पश्चात् **पश्यन्त्यथ** हृदयगो बुद्धियुङ्**मध्यमाख्यः** ॥
वक्त्रे **वैखर्यथ** रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्ना ।
बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः ॥"[1]

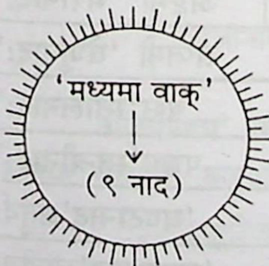
(१) **'परावाक्'**– 'प्रथममुदितः **चैतन्याभासः** भावश्च यः जगद्भावयति इति मायाशक्तिर्भावः स **'पराख्यः** ॥' —(पद्मपादाचार्य)

सस्पन्दावस्थाः पश्यन्त्याद्याः । —(पद्मपादाचार्य)

(२) **'पश्यन्तीवाक्'**– सामान्यस्पन्दप्रकाशरूपिणीं नादतत्त्वात्मिकाम् अध्यात्म**मूलाधारादि**नाभ्यन्तम् अभिव्यज्यमानां **पश्यन्तीमाह** । सामान्यज्ञानात्मकत्वात् **'पश्यन्ती'** सा । —(पद्मपादाचार्य)

(३) **'वैखरी वाक्'**– अथ विराडरूपिणीं बीजात्मिकां हृदयादास्यन्तम् अभि-व्यज्यमानां शब्दसामान्यात्मिकां वैखरीमाह ॥[2]

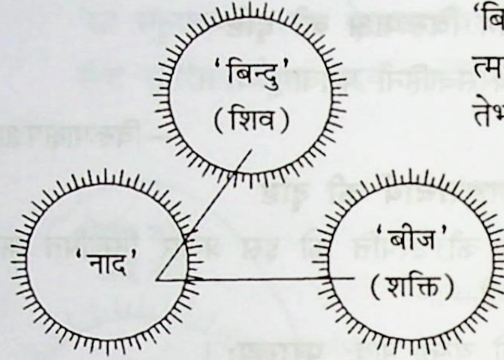
* नाद *



वाणी के चार रूप हैं— (१) **'परा'** (२) **'पश्यन्ती'** (३) **'मध्यमा'** (४) **'वैखरी'** । 'मध्यमा वाक्' के दो रूप हैं— (१) **'स्थूलमध्यमा'**— नववर्गमयी । (२) **'सूक्ष्म मध्यमा'**– नवनादमयी मध्यमा । यही सूक्ष्मा 'मध्यमा' ९ नादों के स्वरूप वाली है । **'मध्यमा वाक्'**– नव नादों का आविर्भाव । (१) **'बिन्दु'** शिवात्मक है । (२) **'बीज'** शक्त्यात्मक है । (३) **'नाद'** उभयात्मक है ।

---

१. प्रपञ्चसारतन्त्र (२/४३) ।
२. प्रपञ्चसारतन्त्र विवरण ।



'बिन्दुः शिवात्मकस्तंत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्। तयोर्योगे **भवेन्नादः** तेभ्यो जातस्त्रिशशक्तयः ॥''

नादों का आविर्भाव– 'मध्यमा' वाक् के सूक्ष्मस्वरूप के अन्तर्गत ९ नाद स्थित हैं। 'हंसोपनिषद्' में 'चिणि' आदि **१० नादों का भी** उल्लेख प्राप्त होता है। 'चिद्वल्ली' में नटनानन्दनाथ ने इनका उल्लेख किया है। **घण्टा, मेघ, भेरी** आदि के नाद भी नाद के ही रूप हैं—

(१) **चिणीति** प्रथमः	(२) **चिणिचिणीति** द्वितीयः
(३) **घण्टानाद**स्तृतीयः	(४) **घण्टानाद**श्चतुर्थः
(५) पञ्चमस्**तन्त्रीनादः**	(६) षष्ठस्**तालनादः**
(७) सप्तमो **वेणुनादः**	(८) अष्टमो **भेरीनादः**
(९) नवमो **मृदङ्गनादः**	(१०) दशमो मेघनादः।

x x x x x x x x

(क) '**नवमं** परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत्।'

(ख) 'तस्मिन् विलीने मनसि गते **सङ्कल्पे-विकल्पे च दग्धे 'सदाशिवोऽहम्'** इति— 'परम हंसोपनिषत्' ॥[1]

'वाणी' के चार रूप हैं। श्रुति कहती है—

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि,
तान् विदुर्ब्राह्मणो ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणिनिहितानेङ्गयन्ति,
चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति ॥''

इन्हीं वाणियों मं 'मध्यमावाक्' से ही 'नाद' का जन्म होता है।

दशमो **'मेघनादः'**
नवमो **'मृदङ्गनादः'**
अष्टमो **'भेरीनादः'**
सप्तमो **'वेणुनादः'**
षष्ठ**'स्तालनादः'**
पञ्चम**'स्तन्त्रीनादः'**
'घण्टानाद'श्चतुर्थः
'घण्टानाद'स्तृतीयः
'चिणिचिणीति' द्वितीयः।
'चिणीति' प्रथमः।

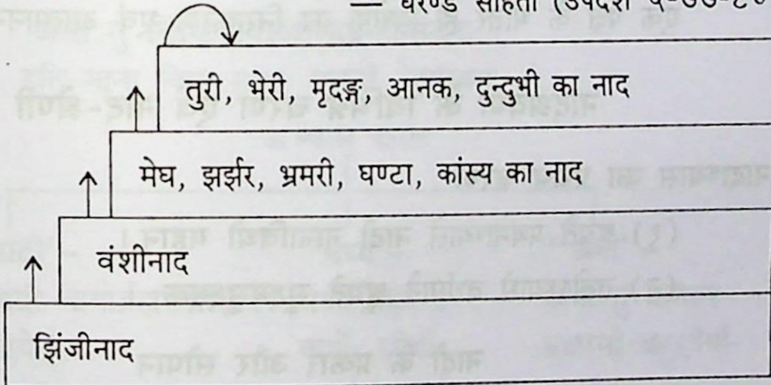
१. कामकला विलास की टीका— 'चिद्वल्ली' (नटनानन्दनाथ)

तान्त्रिक योग में 'नाद' और नाद-साधना-

'नाद' पराशक्ति का ही रूपान्तर है। उसकी साधना शक्ति की साधना है। **महर्षि घेरण्ड** 'भ्रामरी कुम्भक विधि' पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि अर्धरात्रि के समय जब सारे प्राणियों का कोलाहल शान्त हो जाय तब हाथों से कानों को बन्द करके 'पूरक' कुंभक (प्राणायाम) करते हुए निम्न नादों को दक्षिणावर्ती कान से सुनना चाहिये—

'शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे **नाद**मन्तर्गतं शुभम् ॥'
(१) प्रथमं **'झिंजीनादं** च (२) **वंशीनादं** ततः परम्।
(३) **मेघ-झर्झर-भ्रमरी-घण्टा-कांस्यं** ततः परम् ॥
(४) **तुरी भेरी मृदङ्गादि** निनादानक **दुन्दुभिः** ॥
(५) एवं नानाविधं **नादं** जायते नित्यमभ्यसात्।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं **ज्योति**र्ज्योतेरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥''

— घेरण्ड संहिता (उपदेश ५-७७-८०)



'अजपाजप' को भी **'नाद'** के रूप में स्वीकार किया गया है और उसे **'अजपा गायत्री'** कहकर नाथ योगियों ने कहा है कि—

''हङ्कारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।''[१]

इस स्वयम्भू मन्त्र की साधना को भी नाद-साधना के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

---

१. राघवभट्ट : 'पदार्थादर्श'

'शब्दब्रह्म' नादबिन्दुमय है— ''सृष्ट्युन्मुख परमशिव प्रथमोल्लासमात्रम् अखण्डोऽव्यक्तो **नादबिन्दुमय** एवं व्यापको ब्रह्मात्मकः शब्दः **शब्दब्रह्मेत्यर्थः** ॥''

नादों के आविर्भाव के उपाय

नादाविर्भाव के अनेक उपाय हैं यथा— (१) 'मुद्रा-बन्ध' (२) 'प्राणायाम' (३) नादानुसन्धान—

''**नादानुसन्धान**समाधिभाजां योगीश्वराणां हृदिवर्धमानम्।
आनन्दमेकं वचसामगम्यं जानाति तं श्री गुरुनाथ एकः ॥''[१]

विधि— ''कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां यं शृणोति ध्वनिं मुनिः।
तत्र चित्तं स्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिरपदं व्रजेत् ॥ (४/८२)

नादाभ्यास और उसके फल

'अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।
पक्षाद्विक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत् ॥ (४/८३)

नाद-अभ्यास— बाह्यकोलाहल का निरोध।

एक पक्ष के भीतर ही विक्षेपों का निराकरण एवं आत्मानन्द की प्राप्ति।

नादश्रवण के विभिन्न चरण एवं नाद-श्रेणी

नादाभ्यास का प्रथम चरण

(१) श्रूयते प्रथमाभ्यासे **नादो नानाविधो महान्**।
(२) ततोऽभ्यासे वर्धमाने **श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मकः**।

नादों के प्रकार और सोपान

(१) **प्रारम्भिक नाद-साधना**	(२) **परवर्ती नाद-साधना**
नाना प्रकार के अनेक महान नादों का श्रवण होता है।	परवर्ती अभ्यासकाल में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम नाद श्रुतिगोचर होने लगते हैं।

---

१. हठयोगप्रदीपिका (४/८१)

नादों के विभिन्न भेद एवं उनके आविर्भाव के सोपान

नाद साधना के अन्तिम सोपान पर	प्राणों के ब्रह्मरन्ध्र में बहुत देर तक स्थिर रहने पर— किंकिणी, वंशी, वीणा, भ्रमर के नाद ॥
नाद साधना के मध्यकाल में	ब्रह्मरन्ध्र में वायु के स्थिर होने पर='मध्ये' मर्दल, शंख, घण्टा, का हलके समान ध्वनि वाले नाद सुनाई पड़ते हैं ।
प्रारम्भिक नाद साधना	जलधि, जीमूत, भेरी, झर्झर से संजात ध्वनि के समान नाद श्रुतिगोचर होते हैं ।
वायु के ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश के समय नादाविर्भाव ।	

नाद की आरंभिक साधना– प्राणों का ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश—

(१) **आदौ** जलधिजीमूतभेरीझर्झरसंभवाः ।

(२) **नाद की मध्यवर्ती प्रौढ़ साधना–** प्राणों की ब्रह्मरन्ध्र में स्थिरता ।
मध्ये मर्दलशङ्खोत्था घण्टाकाहलजास्तथा।

नाद की परिपक्व साधना - प्राणों की ब्रह्मरन्ध्र में अधिक स्थिरता ।
'अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिस्वनाः ।
इति नाना विधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः ।'

अभ्यास काल

''आदौ'–	''मध्ये'–	''अन्ते''–
''**आदौ** वायोर्ब्रह्मरन्ध्रगमन-समये''	**मध्ये** ब्रह्मरन्ध्रे वायोः स्थैर्या-नन्तरं''	**अन्ते** तु प्राणस्य ब्रह्मरन्ध्रे बहुस्थैर्या-नन्तरं''
(हठयोग प्र. की टीका)	—'ज्योत्स्ना'	— ब्रह्मानन्द गिरि

(१) महति श्रूयमाणेऽपि **मेघभेर्यादिके ध्वनौ** ।
तत्र सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं **नादमेव** परामृशेत् ॥[१] —नाद-श्रवण की पद्धति

(२) काष्ठे प्रवर्तितो वह्निः काष्ठेन सह शाम्यति ।
नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते ॥ —नादाभ्यास की कला

(३) सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ॥ —नादाभ्यास की पद्धति

---

१. हठयोगप्रदीपिका (४/८७)

(४) अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते । नाद और
ध्वनेरन्तर्गतं **ज्ञेयं** ज्ञेयस्यान्तर्गतं **मनः** । —परम पद
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

'नाद' है क्या ? **'शक्ति' ही नाद है–**

"यत्किञ्चन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा ।
यस्तत्त्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः ॥"[१]

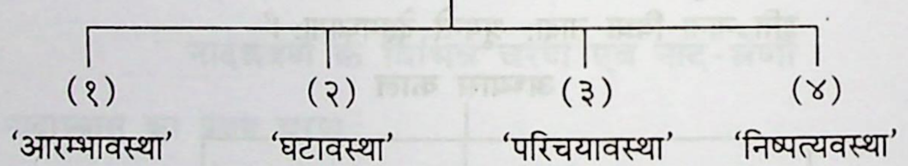
'नाद' के रूप में जो कुछ भी सुना जाता है वह सब कुछ तत्त्वतः 'शक्ति' मात्र है ।

'शिवसंहिता' में उपदिष्ट योगावस्थायें एवं नाद

'शिवसंहिता' नामक नाथ-पंथीय योग ग्रन्थ में **"तृतीय पटल"** विभिन्न **योगावस्थाओं** के रूप में नादों एवं उनकी विभिन्न श्रेणियों पर ही प्रकाश डाला गया है ।

कहा गया है कि समस्त योगों (योग-साधनों/योग साधना-पद्धतियों) में योग की चार अवस्थाओं का ही वर्णन किया गया है ।

योगावस्थायें



"आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयस्तदा ।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु योगावस्था भवन्ति ताः ॥"[२]

'अमरौघ प्रबोध' में नादों की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि—

(१) **'ब्रह्मग्रन्थि' का उद्भेद करने पर** विचित्र अनुभव होते हैं—

"ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद् वेधादानन्दा............न्यसम्भवम् ।
विचित्रक्वणको देहेनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥
दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगन्धस्त्वरोगवान् ।
सम्पूर्णहृदयश्शूर आरम्भो योगिनो भवेत् ॥"

---

१. हठयोगप्रदीपिका (४/१०२)

२. घेरण्ड संहिता (३/३३)

(२) **'विष्णुग्रन्थि' उद्भेद करने पर** भी असामान्य अनुभव होते हैं—

'द्वितीयां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः।

दृढासनो भवेद् योगी ज्ञानी दैवसमप्रभः॥'

'विष्णुग्रन्थेस्तथा वेधात् परमानन्दसूचकः।

अतिशून्ये **विमर्दश्च भेरी** शब्दस्तथा भवेत्॥'

'आरम्भावस्था' में हृदयाकाश में भूषणों की ध्वनि के समान नाद श्रुतिगोचर होता है।

आरम्भावस्था में ब्रह्मग्रन्थि का उद्भेद– हृदय में भूषणध्वनिवत **नाद**॥

'पवने गमनं प्राप्ते **ध्वनिरुत्पद्यते** महान्।

घण्टादीनां प्रवाद्यानां तदा सिद्धिर्न दूरतः॥' —विवेक मार्तण्ड (१२०)

कण्ठ में स्थित 'विष्णुग्रन्थि का भेदन' (घटावस्था में) होने पर **कण्ठाकाश** में विमर्श-भेरी जैसी ध्वनियों के समतुल्य नाद श्रुतिगोचर होते हैं।[१]

तृतीयावस्था 'प्रत्ययावस्था' है—

तृतीयायां ततो भित्वा विपाको मर्दलध्वनिः।

महाशून्यं तदा जातं सर्वसन्धि समाश्रयम्॥

\+ \+ \+ \+

'रुद्रग्रन्थि' का उद्भेद : 'रुद्रग्रन्थि' आज्ञा चक्र में है। यह 'शर्व का पीठ' है।

'रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा सत्वपीठगतोऽनिलः।'

प्राण ही तो ग्रन्थियों का भेदन करता है।

हठयोगप्रदीपिकाकार ने मुक्तासनस्थ होकर 'शाम्भवीमुद्रा' लगाकर दक्षिणवर्ती कान से नाद-श्रवण करने का उपदेश दिया है—

''मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां सन्धाय शाम्भवीम्।

शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे **नादमन्तः**स्थमेकधीः॥''[२]

पराङ्मुखी मुद्रा भी नादानुसन्धान में सहायक है—

श्रवणापुटनयनयुगलघ्राणमुखानां निरोधनं कार्यम्।

---

१. ज्योत्स्ना-ब्रह्मानन्द

२. 'हठयोग प्रदीपिका' : चतुर्थ उपदेश (४/६७)

शुद्धसुषुम्नासरणौ स्फुटममलः श्रूयते **नादः** ॥[१]

'आरम्भावस्था' और उदितनाद का स्वरूप

'ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद्भेदो ह्यानन्दः शून्यसम्भवः ।
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥'

घटावस्था और आविर्भूतनाद का स्वरूप-

'विष्णुग्रन्थेस्ततो भेदात्परमानन्दसूचकः ।
अतिशून्ये **विमर्दश्च भेरी**शब्दस्तदा भवेत् ॥'[२]

'परिचयावस्था' और उससे उत्पन्न नाद

तृतीयायां तु विज्ञेयो विहायो**मर्दलध्वनिः** ।
महाशून्यं तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ॥ (४/७४)

रुद्रग्रन्थि का उद्भेद और तज्जन्य नाद-

रुद्रग्रन्थिं यदा भित्वा शर्वपीठगतोऽनिलः ।
निष्पत्तौ वैष्णवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत् ॥

'निष्पत्ति अवस्था'– वैणव-वीणा का नाद ।
(प्राण के ब्रह्मरन्ध्र में जाने पर निष्पत्ति अवस्था होती है।)
परिचयावस्था में भ्रूमध्य में मर्दलनाद श्रुतिगोचर होता है ।

'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार नाद-सोपान

'परिचयावस्था'– भ्रूमध्याकाश में 'मर्दल' वाद्य की ध्वनि का श्रुतिगोचर होना ॥

'घटावस्था'– विष्णुग्रन्थि का भेदन, विमर्द एवं भेरी नाद का श्रवण ।

''आरम्भावस्था''– ब्रह्मग्रन्थि का उद्भेद — हृदय में अनिवर्चनीय आनन्द ।
''ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद्भेदो''— **'ब्रह्मग्रन्थि' का भेदन ।**
शरीर के भीतर हृत्कोशोत्पन्न **विचित्र आनन्द का अनुभव ।**
'विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ।''
हृदयकोश में नाना प्रकार के 'क्वण' (भूषण-शिंजित । क्वणक । क्वणन । क्वाण । निक्वाण—को) सुनना ॥

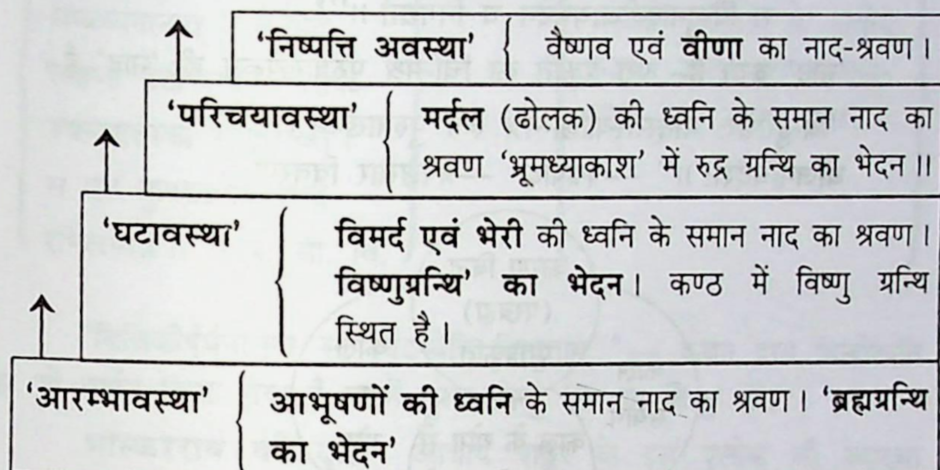
---

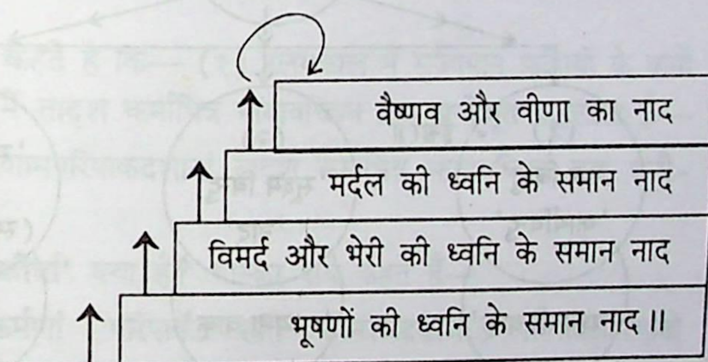
१. 'हठयोग प्रदीपिका' : चतुर्थ उपदेश (४/६८)

२. ह. यो. प्र., (४/७३)

'अन्तिम' नाद-सोपान– 'निष्पत्यवस्था'

'निष्पत्तौ वैणवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत्।'





तान्त्रिक शङ्कराचार्य की दृष्टि-

(१) ब्रह्म **'कारण बिन्दु'** है; क्योंकि वह जगत का अङ्कुर है। 'विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्॥''

'बिन्दु' से क्रमशः **'कार्यबिन्दु' 'नाद'** और **'बीज'**— इस त्रिक् का आविर्भाव होता है। यही त्रिक यथाक्रम **'पर' 'सूक्ष्म'** एवं **'स्थूल'** कहा जाता है। इनका स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है—

(क) चिदंशात्मक

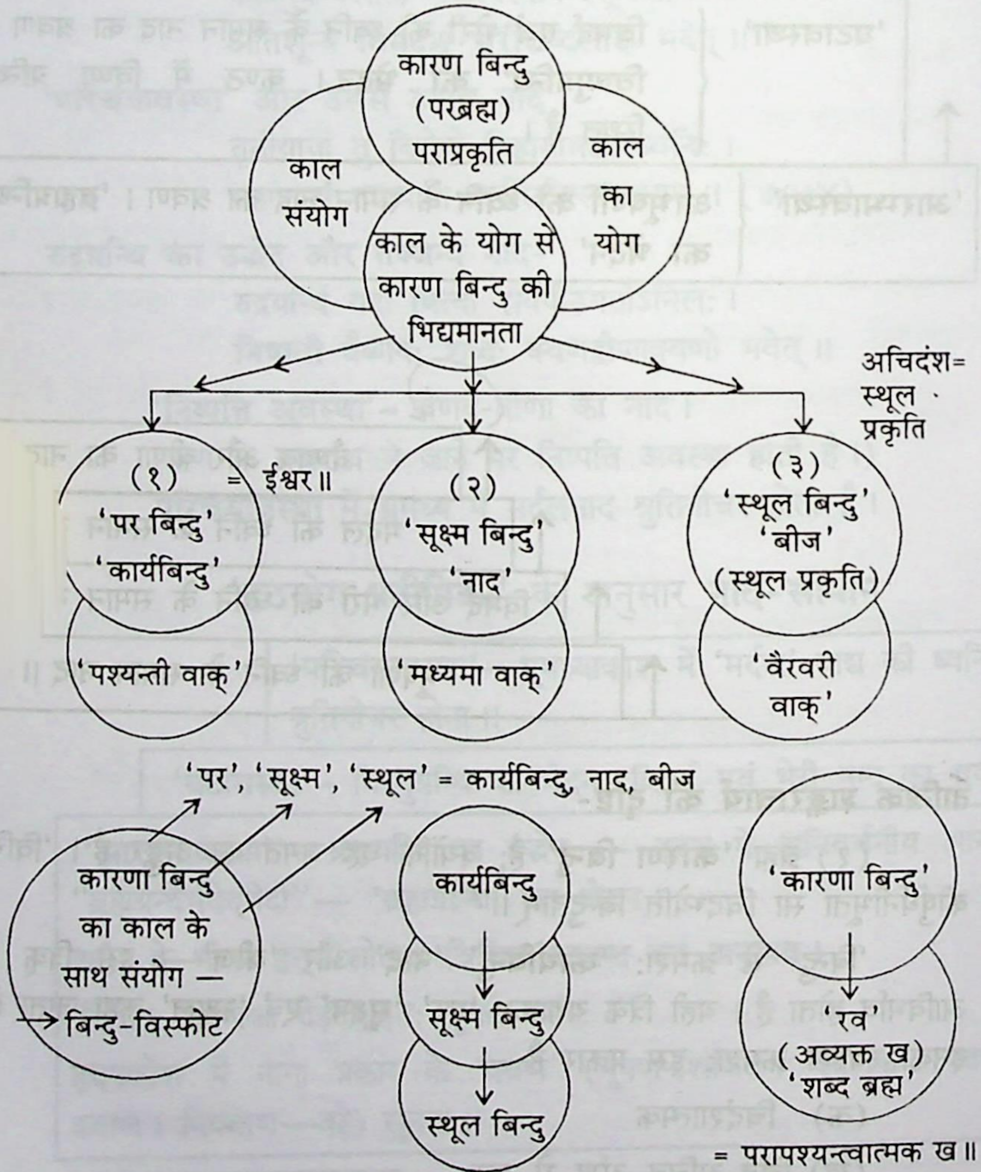
(ख) चित-अचित् अंश से युक्त

(ग) अचित् अंश से युक्त।

"कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा ।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते ।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते ॥"[१]

'नाद' क्या है– परा प्रकृति का चिन्मिश्र पुरुषाख्यरूप ही 'नाद' है ।

"**बिन्दुरीश्वरः नादस्तस्याश्चिन्मिश्रं** रूपं पुरुषाख्यम् ।
बीजमचिदंशः ॥" —पद्मपाद —प्रपञ्चसार विवरण



---

१. प्रपञ्चसारतन्त्र (पटल १)

'बिन्दुरुक्तः परमपुरुष एव तस्माद्बीजरुपयोक्तया प्रकृत्या सम्बध्यमानात् उभयाभेद-लक्षणो देदीप्यमानः पराप-श्यन्त्यात्मको रवोऽभवत्। स एव कुण्डल्यादिशब्दै-रभिलप्यते ॥ —प्र. सा. वि.	**पद्मपादाचार्य** कहते हैं कि 'बिन्दु परमपुरुष है। उसका प्रकृति (बीज) से संयोग हुआ। उससे परापश्यन्त्या-त्मक 'रव' उत्पन्न हुआ॥

'विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्''[१]— कथन द्वारा बिन्द्वोत्पत्ति का जो वर्णन किया गया है उसमें मुख्य बिन्दु **'कारण बिन्दु'** है।

भास्करराय की दृष्टि– आचार्य शङ्कर के इस श्लोक की व्याख्या **पद्मपादाचार्य तथा भास्करराय** दोनों ने ('विवरण' एवं 'सौभाग्य भास्कर' में) की है।

भास्कर राय कहते हैं कि— (१) प्रलयकाल में सृज्यमान प्राणियों के कर्मों की अपरिपाकावस्था में तादृश कर्माभिन्न मायावच्छिन्न ब्रह्म **घनीभूत** कहलाता है—

''प्राणि कर्माणामपरिपाकदशायां तादृश कर्माभिन्न मायावच्छिन्नं ब्रह्म **घनीभूतमित्युच्यते** ॥''

(२) **'विचिकीर्षा'** क्या है? भास्कर राय कहते हैं—

''कालवशात्कर्मणां परिपाके सति विनश्यदवस्थः परिपाकप्रागभावो **विचिकीर्षे**त्युच्यते ॥'' — ''ततः परिपाकक्षणे **मायावृत्ति**रुत्पद्यते। तादृशं परिपक्व कर्माकार परिगणित **मायाविशिष्टं ब्रह्माव्यक्तपदवाच्यम्**। अतएव तस्योत्पत्तिरपि स्मर्यते— ''तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम।'' स व जगतङ्कुरकन्दरूपत्वात्-**'कारणबिन्दु'** पदेन व्यवह्रियते। तदुक्तं प्रपञ्चसारे—

''विचिकीषुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुतामिति ॥''

(३) जगदङ्कुर कन्द स्वरूप होने के कारण (माया विशिष्ट, अव्यक्तपदवाच्य ब्रह्म) वही **'कारणबिन्दु'** कहलाता है।

(४) इसी **'कारणबिन्दु'** से **'कार्यबिन्दु'** और 'कार्यबिन्दु' से 'नाद' एवं 'नाद' से **'बीज'** की उत्पत्ति होती है।

---

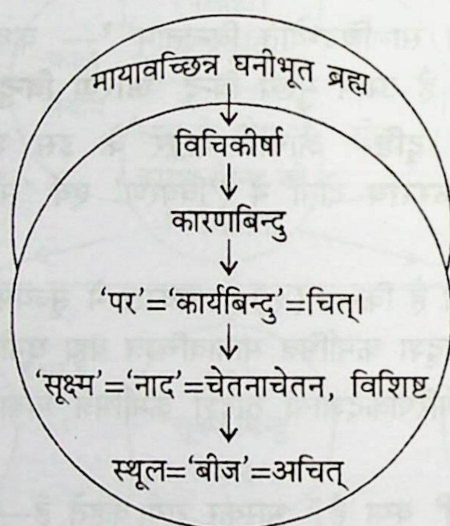
१. शङ्कराचार्य : प्रपञ्चतन्त्रसार।

("अस्माच्च कारणबिन्दोः सकाशात्क्रमेण कार्यबिन्दुस्ततो नादस्ततो बीज-मिति त्रयमुत्पन्नम् ॥")

इन्हें ही ('कार्यबिन्दु', 'नाद' एवं 'बीज' को) 'पर', 'सूक्ष्म' एवं 'स्थूल' कहा गया है। अर्थात् **'पर'**=कार्यबिन्दु। **'सूक्ष्म'**=नाद। **'स्थूल'**='बीज' हैं।

इनमें से ये तीनों क्रमशः (१) 'चिदंश' (२) 'चिद्चिद्मिश्र' (३) 'अचित्' प्रकृतिवाले हैं।[१]

(५) यथासमय (समय आने पर) यह **'कारणबिन्दु'** काल द्वारा तीन रूपों में विभक्त हो गया— 'कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा ॥'



'विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुता ।।'

(१) 'कारण बिन्दु' 'कार्यबिन्दु', 'नाद' एवं 'बीज' के **अधिदैवत** हैं— 'अव्यक्त', 'ईश्वर', 'हिरण्यगर्भ' एवं 'विराट'।

'शान्ता', 'वामा', 'ज्येष्ठा' एवं 'रौद्री'। 'अम्बिका', 'इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया'।

(२) **अधिभूत–** 'कामरूपपीठ'। 'पूर्णगिरिपीठ'। 'जालन्धर पीठ'। 'उड्याण पीठ'।

(३) **अध्यात्म–** पराभक्ति, पिण्ड, मंत्र (प्रणव) एवं कुण्डली।

'अधिभूत', 'अधिदैव' और 'अध्यात्म' रूपों से अविभक्त **कारणबिन्दु** जब कार्य बिन्दु आदि त्रिक को उत्पन्न करने हेतु उन्मुख होकर भिद्यमान होता है तब वहाँ अव्यक्तशब्दब्रह्मात्मक **'रव'** उत्पन्न होता है।

१. प्रपञ्चसारतन्त्र।

(क) 'स्थूल सूक्ष्म परत्वेन तस्य त्रैविध्यमुच्यते।'

(ख) 'स बिन्दुनाद बीजत्वभेदेन च निगद्यत॥'

(१) 'कारण बिन्दु' (२) 'कार्यबिन्दु' (३) 'नाद' (४) 'बीज'।

'एते च कारणबिन्द्वादयश्चत्वारो—

(१) **अधिदैवतमव्यक्तेश्वर–** हिरण्यगर्भ विराटस्वरूपा:,— 'शान्ता'— ''वामा'—'ज्येष्ठा'—'रौद्रीरूपा:' अम्बिकेच्छा ज्ञानक्रियारूपाश्च।

(२) **अधिभूतं–** तु कामरूप-पूर्णगिरि-जालन्धरोड्याणपीठरूपा। ('नित्या-हृदय')।

(३) **'अध्यात्मं'** तु— कारणबिन्दु:। सोऽयमविभागावस्थ: 'कारणबिन्दु:'॥

(४) 'अयमेव च यदा कार्यबिन्द्वादित्रयजननोन्मुखो **भिद्यते** तद्दशायाम-व्यक्त: शब्दब्रह्माभिधेयो रवस्तत्रोत्पद्यते—

''बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानादव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।

स रव: श्रुतिसम्पन्नै: **शब्दब्रह्मेति** गीयते॥''

(५) सोऽयं **'रव:' कारणबिन्दुतादात्म्यापन्नत्वात्** सर्वगतोऽपि व्यञ्जक। यत्न-संस्कृतपवनवशात् प्राणिनां मूलाधारे एवाभिव्यज्यते॥

''देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन्समुदेति समीरण:।

विवक्षोरिच्छयोत्थेन प्रयत्नेन सुसंस्कृत:॥''

स व्यञ्जयति तत्रैव **शब्दब्रह्मापि** सर्वग:॥

(६) तदिदं कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं **'शब्दब्रह्म'** स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दं तदेव च **'परावागित्युच्यते'**॥

(७) तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन वननेनाभिव्यक्तं **विमर्शरूपेण मनसा** युक्तं **सामान्यस्पन्द** प्रकाशरूप **कार्यबिन्दुमयं सत्पश्यन्ती**वागुच्यते॥ तदेव **शब्दब्रह्म** तेनैव वायुना **हृदयपर्यन्त**मभिव्यज्यमानं **निश्चयात्मिकया बुद्ध्या** युक्तं **विशेषस्पन्द-प्रकाशरूप नादमयं सन्मध्यमा** वागित्युच्यते॥

—भासुरानन्द सौभाग्यभास्कर

पद्मपादाचार्य की दृष्टि और उसकी समीक्षा

पद्मपादाचार्य कहते हैं— ''परापश्यन्त्यात्मकोरवोऽभवत्॥''

शङ्कराचार्य कहते हैं—

''बिन्दोस्तस्माद् भिद्यमानादव्यक्तात्मा रवोऽभवत्॥''

स रवः श्रुतिसम्पन्नैः 'शब्दब्रह्मेति' गीयते ।।

प्रश्न– क्या 'शब्दब्रह्म' परापश्यन्ती वाक् से युक्त है?

प्रयोगक्रमदीपिकाकार का प्रश्न है कि 'परा' तो नित्य है अतः उसकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? **'परा'** की सम्भावना मात्र की जाती है उत्पत्ति नहीं। **'पश्यन्ती'** की उत्पत्ति सम्भव है—

''परा वाग्रूपस्य तु नित्यत्वेनोत्पत्ययोगात् इति ।

परायाः सम्भवमात्रं पश्यन्त्यास्तूत्पत्तिरिति ज्ञेयम् ।।''[१]

आचार्य पद्मपाद ने, जिस 'कारणात्मक बिन्दु' से अव्यक्तात्मक **'रव'** के प्रादुर्भाव की बात कही है और जिसे **'शब्दब्रह्म'** कहा गया है, उस बिन्दु को **'परमपुरुष'** कहा है और उससे **बीजरूप** प्रकृति से सम्बन्ध होने पर उभयाभेद-लक्षणात्मक, देदीप्यमान, निरावरण, एवं चिन्मय **परापश्यन्त्यात्मक** 'रव' के उत्पन्न होने की बात कही है। इससे ही **'कुण्डली'** आदि भी कहा है अर्थात् **'रव' शब्दब्रह्म) ही कुण्डली है ।**

इसी विषय प्रयोग क्रमदीपिकाकार कहते हैं कि—

(१) 'मूलबिन्दु' काल के साथ योग होने पर भिद्यमान होता है अतः **भिद्यमानता 'भेद' इङ्गित करती है** । यह भेद 'पश्यन्ती' आदि वाणियों में घटता है किन्तु परावाक् में नहीं—

'कालेन भिद्यमानस्त्विवद्याद्युक्तो **भेदोऽभिप्रेतः** । अवश्यं पश्यन्त्यात्मक एव। परावाग्रूपस्य तु नित्यत्वेनोत्पत्त्ययोगात् ।।''[२] परावाक् तो नित्य है अतः उसकी उत्पत्ति, संभव नहीं है। आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'सा तत्व संज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।

विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।

कालेन भिद्यमानस्तु स **बिन्दुर्भवति** त्रिधा ।।'

'बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत् ।

स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दब्रह्मेति कथ्यते ।।''[३]

इस शङ्करोक्त कथन में 'तत्त्व' कौन है? पद्मपाद कहते हैं कि **'तत्त्व'**

---

१. प्रयोगक्रमदीपिका ।

२. प्रयोगक्रमदीपिका ।

३. प्रपञ्चसारतन्त्र (१/४१-४४)

प्रकृति है। "**सा तत्त्वेति । सा प्रकृतिः ।।**"

प्रश्न– क्या 'प्रकृति' से शब्दब्रह्म का अविर्भाव हुआ?

आचार्य शङ्कर की दृष्टि की व्याख्या

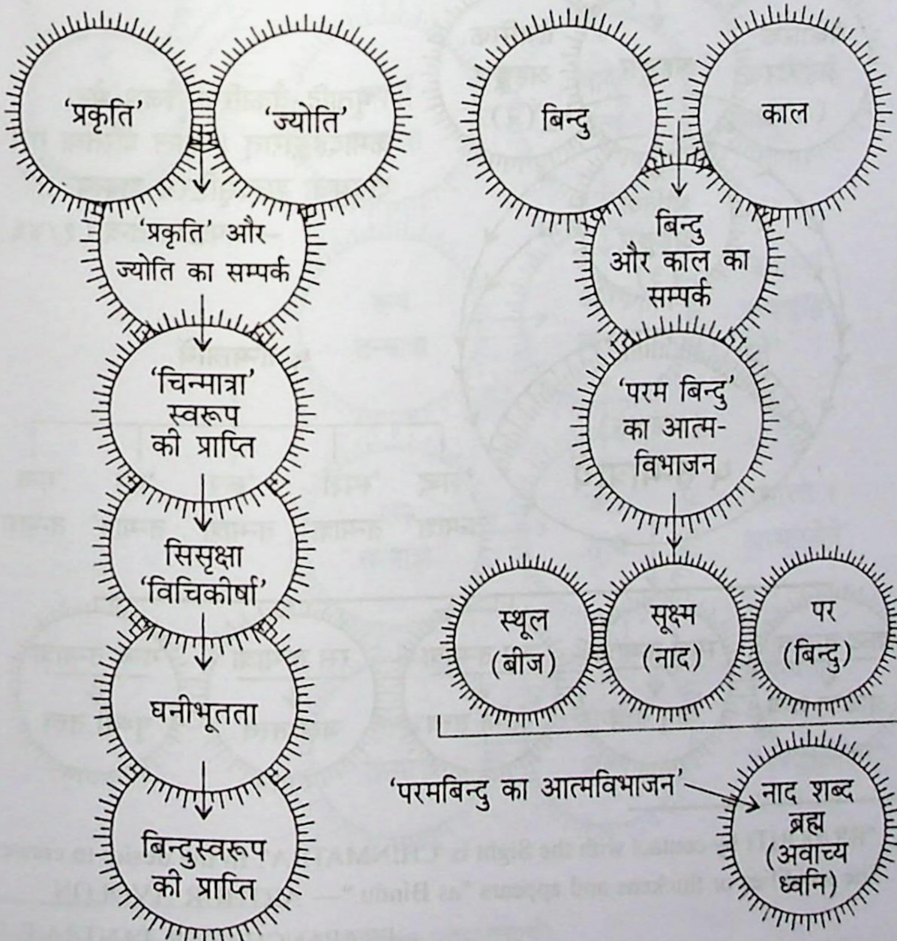
आचार्य शङ्कर कहते हैं कि **'प्रकृति'** अपने अविभक्तस्वरूप में (पारमार्थिक स्वरूप में) अपने तत्त्वात्मक एवं अन्तर्मुखी स्वरूप का बिना त्याग किए हुए (थोड़ा बहिर्मुख होने के कारण) किसी देश में बिन्दुता या स्थूलता प्राप्त कर लेती है। प्रकृति 'ज्योति' का सम्पर्क प्राप्त करके **चिन्मात्रता** प्राप्त कर लेती है—

'**सा तत्त्व संज्ञा चिन्मात्रा** ज्योतिषः सन्निधेस्तदा'

वह सिसृक्षावश **घनीभूत** हो जाती है—

'विचिकीर्षुघनीभूता'।

और फिर **बिन्दु बन जाती है**—'क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्'

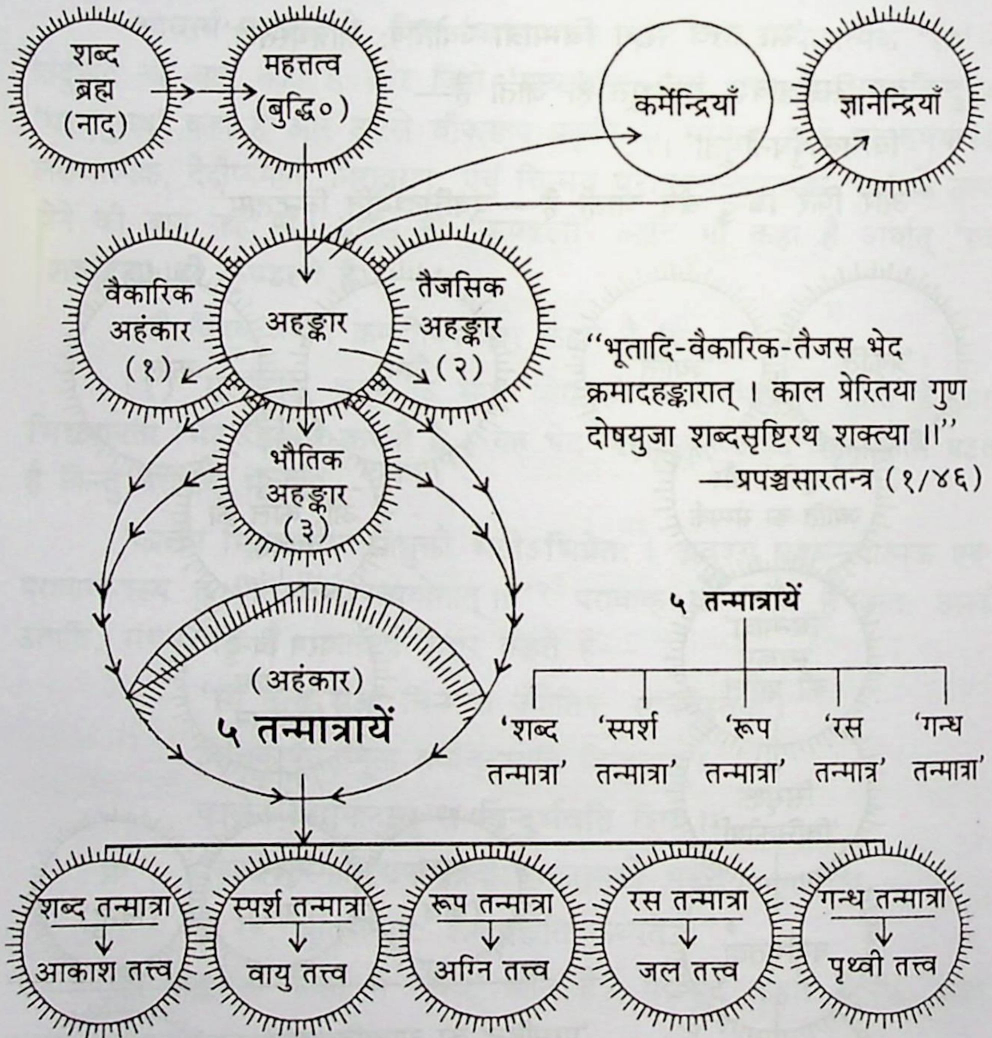


'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ॥'[१] (प्रपञ्च. तन्त्र)

(१) 'कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते ॥'

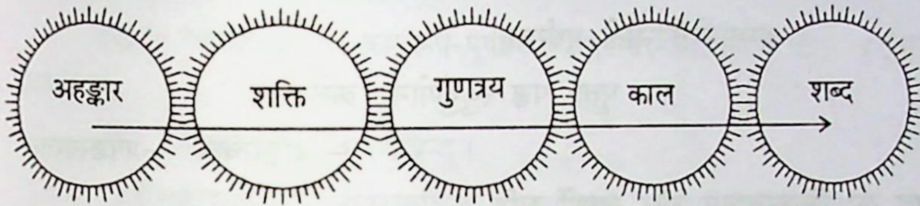
(२) 'स **बिन्दु नाद बीज**त्वभेदेन च निगद्यते।'

(३) 'बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमाना द्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नै **शब्दब्रह्मेति** कथ्यते।'



१. "RRAKRITI by contact with the Sight is 'CHINMATRA'. In the desire to create. She solidifies or thickens and appears "as Bindu."— ARTHUR AVOLON
—PRAPANCHASAR TANTRA P. 6

भौतिक अहङ्कार— वैकारिक अहङ्कार— तैजसिक **अहङ्कार के साथ 'शक्ति'** एवं **'गुणत्रय' का संयोग** होने पर और **'काल' की प्रेरणा**[1] **होने पर**–



नाद-शक्ति और सृष्टि

शब्दब्रह्म (नाद)
महत्तत्व
अहङ्कार

शब्द तन्मात्रा → आकाश तत्त्व — 'शब्दाद् व्योम।'

स्पर्श तन्मात्रा → वायु तत्त्व — 'स्पर्शतस्तेन वायु'-

रूप तन्मात्रा → अग्नि तत्त्व — 'स्ताभ्यां रूपाद्वह्नि-रेतै'

रस तन्मात्रा → जल तत्त्व — 'रसाच्च । अम्भास्येतै'

गन्ध तन्मात्रा → पृथ्वी तत्त्व — ''गन्धतो मूर्धराद्याः भूताः पञ्चस्युर्गुणोनाः क्रमेण ॥''

---

१. 'काल : कर्मापिक्षया प्रेरक एव' (विवरण-पद्मपादाचार्य)

''शब्दाद् व्योम स्पर्शतस्तेन वायु-,
स्ताभ्यां रूपाद्वह्विरेतैरसाच्च ।
अम्भांस्येतैर्गन्धितो मूर्धराद्या,
भूता: पञ्च स्युर्गुणोना: क्रमेण ॥''

— शङ्कराचार्य —प्रपञ्चसारतन्त्र

शिव का बिन्दुस्वरूप और आर्थी सृष्टि

शारदातिलककार की दृष्टि– लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि बिन्द्वात्मक शरीरवाले **परम शिव 'काल'** की सहायता से सृष्टि-स्थिति-संहार, निग्रह-अनुग्रह स्वरूप पञ्च कृत्यों के निष्पादक 'सदाशिव' को, सदाशिव **'ईश्वर'** को, ईश्वर **'रुद्र'** को, 'रुद्र' **'विष्णु'** को एवं विष्णु **'ब्रह्मदेव'** को जन्म देते हैं— अथ बिन्द्वात्मन: शम्भो: कालबन्धो: कलात्मन: ।

सदाशिवात् भवेदीशस्ततो रुद्रसमुद्भव: ।
ततो विष्णुस्ततो ब्रह्मा तेषामेवं समुद्भव: ॥

आचार्य भास्कर राय की दृष्टि-

आचार्य भास्कर राय कहते हैं कि— (१) मायावच्छिन्न ब्रह्म ही **'घनीभूत'** कहलाता है। (२) परिपाक प्रागभाव ही **'विचिकीर्षा'** है।

(३) परिपाक के क्षण में मायावृत्ति का उदय होता है।

(४) जो जगत का अङ्कुरकन्द है वही जगत का कारणबीज **'बिन्दु'** है— ''स एव जगदङ्कुरकन्दरूपत्वात् **'कारणबिन्दु'**पदेन व्यवह्रियते ॥''

(५) इसीलिए 'प्रपञ्चसारतन्त्र' में शङ्कराचार्य ने कहा है—
'विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुता ॥'

(६) इसी **'कारणबिन्दु'** से **'कार्यबिन्दु'** का उदय होता है। उससे **'नाद'** एवं उससे **'बीज'–** इस प्रकार तीन का जन्म होता है। इन्हें ही (१) **'पर'** (२) **'सूक्ष्म'** एवं (३) **'स्थूल'** कहा करते हैं। इनका रूप है—

(१) चिदंश (२) चिदचित् मिश्र (३) अचिदंशा ''कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा'' कहकर आचार्य शङ्कर ने स्थूल, 'सूक्ष्म' एवं 'पर' तीन स्वरूपों का वर्णन किया है। यही है— 'बिन्दु' 'नाद एवं 'बीज' : ''स बिन्दुनादबीजत्व-भेदेन च निगद्यत।''

(४) ये कारणबिन्दु आदि चार हैं—

(क) **'अधिदैवत'** : अव्यक्तेश्वर, हिरण्यगर्भ, विराट, शान्ता-वामा-ज्येष्ठा-रौद्री; अम्बिका-इच्छा-ज्ञान-क्रिया।

(ख) **'अधिभूत'**– कामरूप-पूर्णगिरि-जालन्धर-ओड्याण पीठः ('नित्या हृदय')।

(ग) **'अध्यात्म'**– कारणबिन्दु।

अविभागावस्थ है **'कारणबिन्दु'**। जब यही 'कारणबिन्दु' कार्यबिन्दु आदि तीन रूपों में भिद्यमान होता है तब अव्यक्त 'शब्दब्रह्म' र व उत्पन्न होता है—

"बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद् व्यक्तात्मारवोऽभवत्।
स र वः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते॥"

आचार्य श्री लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि

आचार्य लक्ष्मण देशिकेन्द्र ने नादोत्पत्ति के विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि **'नाद'** शक्ति की परिणति है— शक्ति का रूपान्तर है या शक्ति का उत्तरवर्ती विकास है।

वे कहते हैं कि—

(१) शिव 'निर्गुण' एवं 'सगुण' दो स्वरूपों वाला है। यह सगुण शिव ही **'सकल परमेश्वर'** कहलाता है।

(२) इसी 'सच्चिदानन्दविभव' 'सकल परमेश्वर' से **'शक्ति'** का उन्मेष हुआ और **'शक्ति'** से **'नाद'** का उदय हुआ। सत्-चित-आनन्द रूप ऐश्वर्य वाले सगुणशिव से **'शक्ति'** एवं **'शक्ति'** से **'नाद'** का आविर्भाव हुआ—

सच्चिदानन्दविभवात्, सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दु समुद्भवः॥[१]

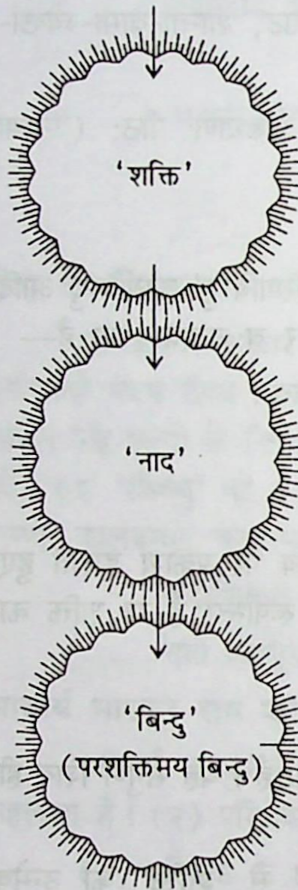


"**वायवीयसंहिता**" में कहा गया है—

शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्त्वैकतां गता।
ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव॥
"अभिव्यक्ता परा शक्तिरविनाभावलक्षणा।
अखण्ड परचिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः॥"

---

१. शारदातिलकम् (१/७)



समस्ततत्त्वभावेन विवर्तेच्छा समन्विता।
प्रयाति बिन्दुभावञ्च क्रियाप्राधान्यलक्षणम् ॥

नादोत्पत्ति–

'**बिन्दुः शिवात्मको** बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः ॥
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः ॥ (शा.ति.)

'**बिन्दु**' शिवात्मक है और '**बीज**' शक्त्यात्मक है। शिव और शक्ति (बिन्दु और बीज) दोनों के अन्तर्सम्बन्ध से '**नाद**' की उत्पत्ति हुई है।

राघव भट्ट '**पदार्थादर्श**' में कहते हैं—

'एतौ नादबिन्दू प्रथमोक्तनादबिन्दुभ्यामन्यौ तत्कार्यरूपौ।'[1]

'बिन्दु' → रौद्री शक्ति 'नाद' → ज्येष्ठा शक्ति 'बीज' → वामा शक्ति

लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि सच्चिदानन्दविभव सकल परमेश्वर से उदित 'शक्ति' से जिस 'नाद' एवं 'बिन्दु' का आविर्भाव हुआ उनसे पृथक पुनः 'बिन्दु' और 'नाद' की उत्पत्ति हुई। वह इस प्रकार है—

(क) '**कारण**' (१) शक्ति' → नाद → बिन्दु = (कारणशक्ति)।
(कार्य) (कार्य) (कार्य)

(ख) '**कार्य**' (२) बिन्दु → बिन्दु → नाद बीज (बिन्दु के परवर्ती विकास)
(कारण) ↓ ↓ ↓ ↓
रौद्री शक्ति ज्येष्ठा शक्ति वामा शक्ति (कार्य शक्ति)

१. ये 'बिन्दु' एवं 'नाद' प्रथमोक्त नाद-बिन्दु से भिन्न है; क्योंकि ये पूर्ववर्ती नाद-बिन्दु नामक 'कारण' के 'कार्य' हैं।

'प्रयोगसार' के ग्रन्थकार का मत

'प्रयोगसार के मतानुसार बिन्द्वादिकं का स्वरूप इस प्रकार है—

'**बिन्दुः** शिवात्मकस्तत्र **बीजं** शक्त्यात्मकं स्मृतम्।
तयोर्योगे भवे**न्नाद**स्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः।
रौद्री बिन्दोः समुद्भूता ज्येष्ठा नादादजायत।
वामा बीजादभूच्छक्तिस्ताभ्यो देवास्त्रयोऽभवन्॥'

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र का मत

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहा है कि—

''**परशक्तिमयः** साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुन;।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः॥
बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः॥''[१]

फिर इस परवर्ती **'कार्यबिन्दु'** 'कार्यनाद' एवं 'बीज' से शक्तियों का जो प्रादुर्भाव हुआ वह इस प्रकार है—

''रौद्री बिन्दोस्ततो नादाज्ज्येष्ठा बीजादजायत।
वामा ताभ्यः समुत्पन्ना रुद्रब्रह्मरमाधिपः॥''[२]

नादोत्पत्ति के सिद्धान्त

शङ्कराचार्य की दृष्टि–	(१) 'तत्त्वसंज्ञा' (तत्वात्मक प्रकृति) का 'ज्योति' के साथ सन्निधि— 'विचिकीर्षा'— 'घनीभूतता'— **बिन्दुरूपता की प्राप्ति**॥
'परमबिन्दु' की भिद्यमानता (Self Divison) से 'नाद' (अव्यक्तात्मक 'रव' या) 'शब्द ब्रह्म का आविर्भाव। **'परमबिन्दु'**→ नादाविर्भाव।	(२) 'बिन्दु' की 'काल' से सन्निधि— 'बिन्दु-विस्फोट (भिद्यमानता) बिन्दु के ३ भागों का उदय— ('बिन्दु'-'नाद'-बीज' ३ भेद)

१. शारदातिलकम् (१/८-९)
२. शारदातिलकम् (१/१०)

(क) 'शक्ति' से नाद का आविर्भाव —लक्ष्मणा देशिकेन्द्र

(ख) बिन्दु-विस्फोट से नादाविर्भाव।[१] —शङ्कराचार्य

शङ्कराचार्य की दृष्टि

(१) 'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा, विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।'

प्रकृति का 'बिन्दु' बनना

(२) ''**कालेन** भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।

स्थूल सूक्ष्म परत्वेन तस्य त्रैविध्य-मिष्यते ॥

(क) बिन्दु का काल से सम्बन्ध।

(ख) बिन्दु-काल-सम्बन्ध से बिन्दु में विस्फोट (भिद्यमानता)

(ग) विस्फोट (Self Divison of Param Bindu) के कारण बिन्दु के ३ भाग हो जाना— 'बिन्दु' 'नाद' 'बीज' के रूप में विभाजित हो जाना।

परमबिन्दु का विभाजन

जब परमबिन्दु में विस्फोट होता है या भिद्यमानता की घटना घटती है तब इस विस्फोट से एक **अव्यक्त 'र व'** का उदय होता है और यही **'र व' 'शब्द ब्रह्म'** कहलताा है।

सारांश– 'परमबिन्दु' के आत्म विभाजन या विस्फोट से ही नाद (**'अव्यक्त रव'** या) अनाहतनादस्वरूप **'शब्द ब्रह्म'** का उन्मेष होता है।

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि

लक्ष्मण देशिकेन्द्र कहते हैं कि **'शक्ति'** से नाद की उत्पत्ति हुई—

'आसीच्छक्तिस्ततोनादः'[२]

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र यह भी कहते हैं कि— 'नाद', 'बिन्दु' (शिव) एवं 'बीज' (शक्ति) के पारस्परिक समवाय (सम्बन्ध) से आविर्भूत हुआ।

''**समवायः** सम्बन्धः क्षोभ्यक्षोभक-रूपः सृष्टिहेतुः ॥''[३]

शिव-शक्ति के समवाय से **'नाद'** का आविर्भाव हुआ।

राघव भट्ट कहते हैं कि—

'परबिन्दु' (शक्त्यवस्था रूप प्रथम बिन्दु) से अव्यक्तात्मा अर्थात् वर्णादि विशेष से रहित **अखण्ड 'नाद' उत्पन्न हुआ–**

''पराद् बिन्दोरित्यनेन शक्त्यवस्था-रूपो यः प्रथमो बिन्दुस्तस्मादव्यक्तात्मा वर्णादिविशेषरहितोऽखण्डो नादमात्र उत्पन्नः ॥''

—राघवभट्टः 'पदार्थादर्श'

प्रयोगसार के रचयिता भी यही कहते हैं कि— 'बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्। तयोर्योगे **भवेन्नाद**स्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः।'

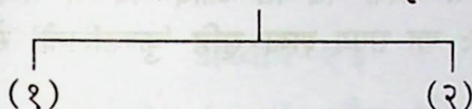
---

१. (क) परम बिन्दु के विस्फोट से नादोत्पत्ति— देशिकेन्द्र
(ख) 'शक्ति' से नाद का आविर्भाव— लक्ष्मणदेशिकेन्द्र
(ग) बिन्दु-विस्फोट से नाद का आविर्भाव— शङ्कराचार्य

२. शारदातिलकम्।

३. राघवभट्ट 'पदार्थादर्श'।

लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि



(१) (२)

'शक्ति'→ नादाविर्भाव परमबिन्दु की भिद्यमानता→ नादाविर्भाव

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र ११वें श्लोक में यह भी कहते हैं कि— 'परमबिन्दु' की भिद्यमानता से नाद (शब्दब्रह्म) का आविर्भाव हुआ—

(१) 'भिद्यमानात् पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मारवोऽभवत् ।।'[1]

(२) शब्द ब्रह्मेति तं प्राहु: सर्वागमविशारदा: ।
शब्दब्रह्मेति शब्दार्थं शब्दमित्यपरे जगु: ।।[2]

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि मत दो हैं— (१) शब्दार्थ को शब्द ब्रह्म कहने का मत (२) अखण्ड स्फोटात्मक शब्द को शब्दब्रह्म कहने का मत। (इनके जड़ होने से इनके सृष्टिकारक न हो सकने के कारण) ये मत मुझे मान्य नहीं हैं—

"शब्दब्रह्मेति शब्दार्थ: शब्दमित्यपरे जगु: ।
न हि तेषां तयो: सिद्धिर्जडत्वादुभयोरपि ।।"[3]

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र का अपना मत

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि मेरे मत में समस्त प्राणियों में अवस्थित जो **चैतन्य है वही 'शब्दब्रह्म** है—

"चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मति: ।।"[4]

'प्रयोगसार' में भी इस मत की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि **अन्तरात्मा नादात्मा है** और यह नाद संस्थानभेद के अनुरूप यह नाद **'वर्ण'** बन जाता है और वायु से प्रेरित होकर पिण्ड द्वारा अभिव्यक्त होता है—

"सोऽन्तरात्मा तदा देवी **नादात्मा** नदते स्वयम्।
यथासंस्थानभेदेन स भूयो **वर्णतां** गत: ।
वायुना प्रेर्यमाणोऽसौ पिण्डाद् व्यक्तिं प्रयास्यति ।।"

प्राणियों के शरीर के मध्य कुण्डली रूप में अवस्थित होकर वही चैतन्य

१. शारदातिलकम् (१/११)
२. शारदातिलकम् (१/१२)
३. शारदातिलकम् (१/१२-१३)
४. शारदातिलकम् (१/१३)

कण्ठादि स्थानों को प्राप्त करके गद्य-पद्य आदि भेद से वर्णात्मक स्वरूप से आविर्भूत होता है। अतः यह समग्र **शब्द-सृष्टि** 'कुण्डलिनी' से ही हुआ करती है—

"तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः ॥"[१]

'चैतन्य' ही 'शब्दब्रह्म' है। शरीर में चैतन्य 'कुण्डलिनी' के रूप में अवस्थित है।[२] शब्द बह्म या चैतन्य पिण्ड में आकर सर्पिणी बन गया॥

******

१. शारदातिलकम्
२. शारदातिलकम्

अध्याय-१३
'कला', 'नाद' और 'बिन्दु'

'कला' शब्द 'शक्ति' का वाचक है। यह परमशिव की स्वसमवेता स्वातन्त्र्य शक्ति है। 'कला' पञ्चकञ्चुकों में से एक कञ्चुक भी है और तत्त्व भी है— 'पृथिव्यादिशिवान्ततत्त्वरूपा: कला तासां संहार: स्वकारणे लयम्'— ''शरीरे संहार: कलानाम् ।।''[१]

कञ्चुक रूप 'कला'

''सम्पूर्णकर्तृताद्या बह्वयः सन्त्यस्य शक्तयस्तस्य।
सङ्कोचात् सङ्कुचिता कलादिरूपेण रूढयन्त्येनम् ।।''
तत् सर्वकर्तृता सा सङ्कुचिता कतिपदार्थमात्रपरा।
किञ्चित्कर्तारममुं कलयन्ती कीर्त्यते **'कला'** नाम ।।[२]

विश्वाधार एवं जगत की उत्पत्ति का मूल 'बिन्दु'-

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि– आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि सहस्त्रार से समुत्पन्न **'मूलाधार'** एवं **'स्वाधिष्ठान'** के **४ एवं ६ दल 'स्वाधिष्ठान चक्र'** के **१० दलों** का निर्माण करते हैं— अनाहत (हृदय में स्थितचक्र) एवं मूलाधार (१२ एवं ४) कमल के दलपुञ्ज अर्थात् १६ दल विशुद्धाख्य के १६ दलों का निर्माण करते हैं और यही **'बिन्दु'** (सहस्त्रार चक्र में) बन जाता है और उसी से समस्त जगत की उत्पत्ति होती है। सारांश यह कि **'बिन्दु'** सृष्टि का कारण है।

'सहस्त्रार' में स्थित यह **'बिन्दु'** ही 'मूलाधार' एवं **'स्वाधिष्ठान'** में (४+६ दल) १० रूपों में विभाजित होकर के ४ एवं ६ दलों के रूप में परिणत हो जाते हैं।

'मूलाधारचक्र' एवं **'स्वाधिष्ठानचक्र'** के १० दल उसी एक बिन्दु के प्रसार हैं जो कि लयक्रम में फिर से सहस्त्रार में एक हो जाते हैं— ('बिन्दु' का दशधा विभाजन)

''अधिष्ठानाधार द्वितयमिदमेव दलदलं,

---

१. शिवसूत्रवार्तिक (क्षेमराज) (३/४)
२. षट्त्रिंशत्तत्वसन्दोह।

सहस्राराज्जात मणिपुरमतोऽभूद्दशदलम्।
हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूत्स्वान्तकमलं,
तदैवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्॥''[१]

+ + + +

''दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्धाधार कमले षोढाऽधिष्ठान पङ्कजे।
उभयाकार रूपत्वात् इतरेषां तदात्मता॥''

संवित् सर्वप्रथम प्राण के रूप में परिणत होता है।

अनन्त प्राणों की एकान्विति की दृष्टि से 'अद्वैतवाद'

'संवत प्राक् प्राणे परिणता' के अनुसार 'संवित् शक्ति' सबसे पहले 'प्राण' के रूप में ही परिणत या आकारित होती है। **'प्राण' और 'नाद'** का अन्तर्सम्बन्ध है। प्राण का स्वाभाविक **धर्म** है **'उच्चार'**। इसकी **वृत्तियाँ** द्विविध हैं— (१) सामान्य वृत्ति (भेद हीन वृत्ति) (२) विशिष्ट वृत्ति— यह 'प्राण', 'अपान', 'व्यान', 'उदान' एवं 'समान' के रूप में पाँच प्रकार की है।

प्राण की सामान्यवृत्ति ही उसकी विशिष्ट वृत्ति का मूलाधार है या मूलाधिष्ठान (भित्ति) है।

प्राण की सामान्यवृत्ति ने पूरे शरीर को अपने वशीभूत करके उसे व्याप्त कर रक्खा है। यही कारण है कि **शरीर अचेतन होकर भी चेतनवत** है। प्राणादिक जड़ और चित् दोनों धर्मों से युक्त है।

प्राण 'इदम्' रूप जड़ पदार्थों में अहन्तात्मक ('यह मैं हूँ' की भावना का प्रवेश) कर्तृत्व को आरोपित कर देता है और उसे ग्राहक (प्रमाता) बना देता है किन्तु वह घट, पट आदि को 'इदम्' रूप में ग्रहण कराकर उन्हें 'ग्राह्य' (प्रमेय या प्रमाता के विषय) के रूप में परिणत कर देता है। जीवन भ्रमवश जड़ प्राणादिक के जड़भाव को आवृत्त करके उसमें **अहन्ताभिमान** ('मैं **यह** हूँ' **'यह** तो मैं ही हूँ' यथा 'यह शरीर मैं ही तो हूँ') प्रारम्भ कर देता है। **'प्राण'** जड़ होते हुए भी, **'चैतन्य के सम्पर्क** एवं उसमें अहन्ताभिमान के कारण, चैतन्याभासयुक्त प्रतीत होने लगता है इसीलिए प्राणादि जड़त्व एवं चिद्रूपत्व दोनों भावों से युक्त हैं। जीव संविन्मात्र में स्फुरित होकर **'पूर्णाहन्ता'** का स्वस्वरूपानुभूति तभी कर पाता है जब वह जड़ पदार्थों (ग्राह्य एवं प्रमेय) से अपने को पृथक रूप में अनुभव करने लगता है। यह होता है **'स्वातन्त्र्यशक्ति'** के उल्लासवश चिद्रस के प्रवाह द्वारा।

---

१. सुभगोदय स्तुतिः (४६)

प्राणात्मक उच्चार और अनाहत नाद

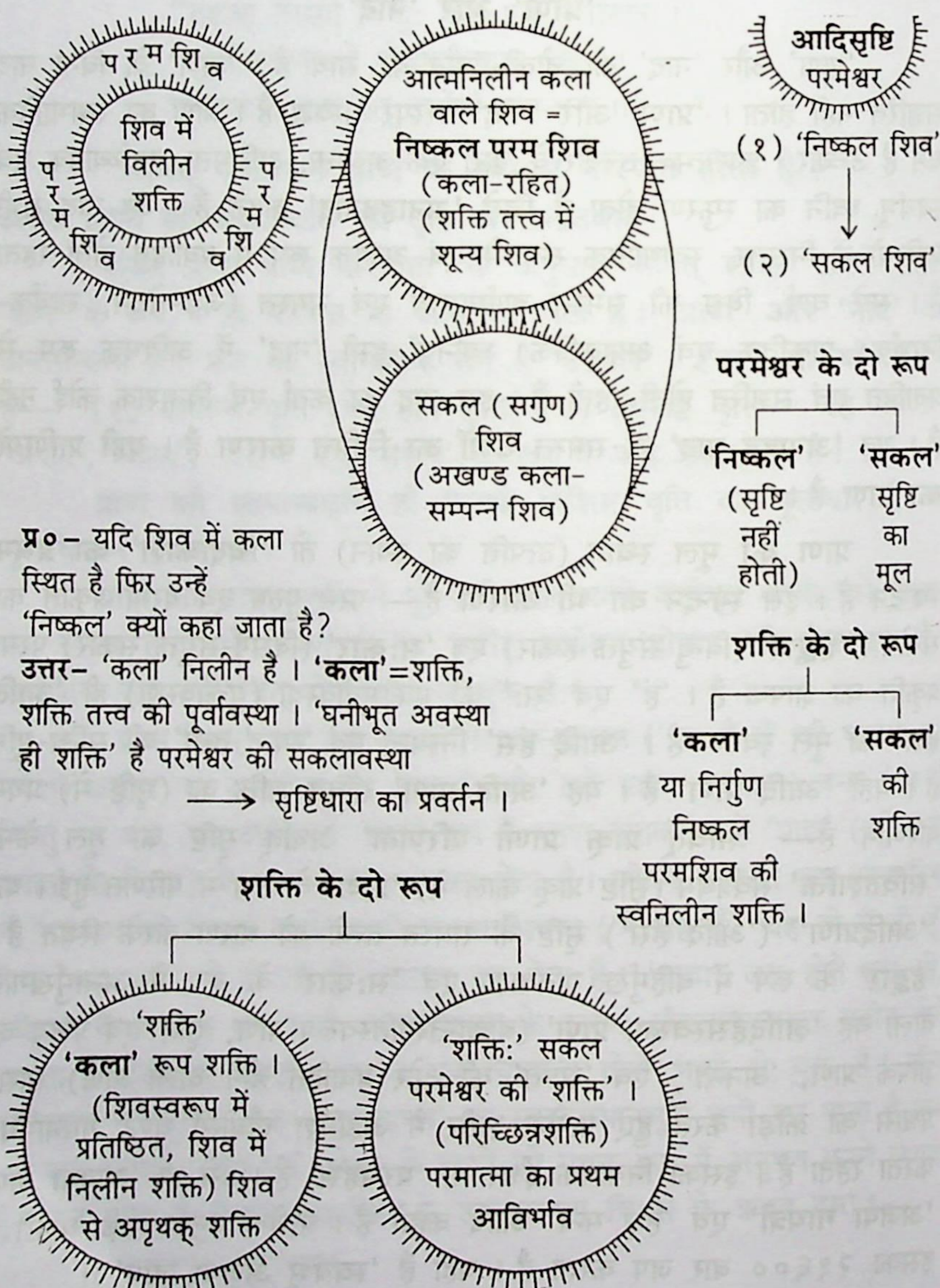
प्राण का स्वाभाविक धर्म है **'उच्चार'**। प्राणात्मक उच्चार से एक अस्फुट (अविभक्त, समस्त वर्णों को अपने में संहत, संलीन या अन्तर्गर्भित करके स्थित) ध्वानि सदैव स्फुरित होती रहती है। इसे **'अनाहतनाद'** कहते हैं।

'प्राण' और 'नाद'

'प्राण' और 'नाद' का चोली-दामन का साथ है। 'प्राण' के बिना नाद सञ्चरित नहीं होता। **'प्राण' और 'नाद'** परस्पर सम्बद्ध हैं। प्राण का स्वाभाविक धर्म है उच्चार। प्राणात्मक उच्चार के द्वारा एक अव्यक्त, अविभक्त, सर्वव्यापक एवं स्वयंभू ध्वनि का स्फुरण होता है जिसे **'अनाहतनाद'** कहते हैं। यह नाद सभी प्राणियों में निरन्तर, स्वाभाविक रूप से एवं अव्यक्त रूप में प्रवाहित होता रहता है। सारे वर्ण, विश्व की समस्त वर्णमालायें एवं समस्त (जड़-चेतन, सार्थक-निरर्थक, प्राकृतिक एवं अप्राकृत्रिक) ध्वनियाँ इसी 'नाद' में अविभक्त रूप से प्रवाहित एवं सञ्चरित होती रहती हैं। इस नाद का कर्ता एवं विनाशक कोई नहीं है। यह **'अनाहत नाद'** ही समस्त **वर्णों का निमित्त कारण** है। **यही प्राणियों का प्राण** है।

प्राण का मूल स्थान (उत्पत्ति का स्थान) तो **'चिदाकाश' का प्रथम स्पन्दन** है। इस **स्पन्दन का भी कारण** है— परम पुरुष एवं परमा प्रकृति का संयोग। **'हङ्कार'** (बिन्दु संयुक्त हकार) एवं **'सःकार'** (विसर्ग-संयुक्त सकार) परमा प्रकृति का ज्ञापक है। 'हं' एवं 'स:' की एकीभूतावस्था (युक्तावस्था) ही **'आदि हंस'** का मूल स्वरूप है। **'आदि हंस'** निस्पन्द एवं 'स्पन्द तत्त्व' की सन्धि-भूमि है। यही **'आदि प्राण'** है। यह **'आदि प्राण'** संवित शक्ति का (सृष्टि में) प्रथम परिणाम है— **'संवित् प्राक् प्राणो परिणता'** अर्थात् सृष्टि का मूल केन्द्र **'संवितशक्ति'** सर्वप्रथम (सृष्टि प्राक् काल में) **'प्राण'** के रूप में परिणत हुई। यह **''आदिप्राण''** ('आदि हंस') सृष्टि के समस्त तत्त्वों को धारण करके स्थित है। **'हङ्कार'** के रूप में बहिर्मुख गतिवाला एवं **'सःकार'** के रूप में अन्तर्मुखगति वाला यह **'आदिहंसस्वरूप प्राण'** (बाह्यान्तरगतिस्वरूप प्राण, सृष्टि एवं प्रलय का ज्ञापक प्राण, 'अनन्त', एवं 'सान्त' की ओर प्रवाहित होने वाला प्राण) श्वास-प्रश्वास की क्रीड़ा करते हुए प्रत्येक शरीर में अहर्निश चौबीसों घण्टे गमनागमन करता रहता है। इसका नियामक ईश्वर या **'परमहंस'** है। इसे ही **'अजपा जप'** **'अजपा गायत्री'** एवं 'हंस मन्त्र' आदि कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य २४ घण्टों में इसका २१६०० बार जप करता है। यही है **'स्वयंभू अजपा जाप'** ॥

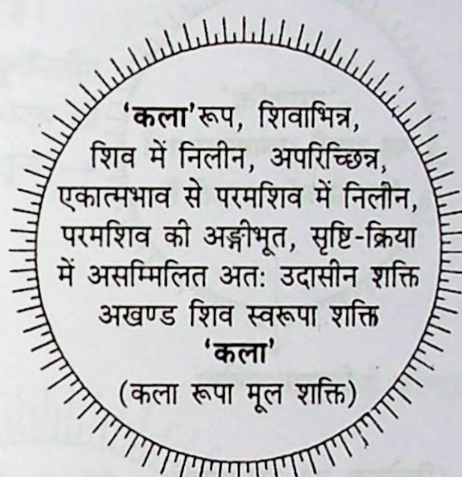
लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि– आचार्य लक्ष्मण देशिकेन्द्र का कथन है कि सृष्टि-प्रक्रिया में निष्कल परमात्मा सबसे प्रथम **'सकल'** (शक्ति से युक्त) बनता है। उस 'सच्चिदानन्दविभव' सकल परमेश्वर से शक्ति' का उदय (उन्मीलन) होता है। उसी 'शक्ति से समस्त सृष्टि का शुभारम्भ होता है।



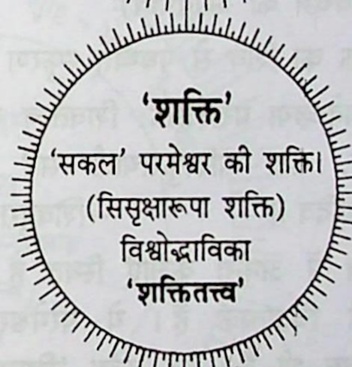
'कला' और 'शक्ति'

(अखण्ड शिवस्वरूप में एकात्मभाव से निलीन, अव्यक्त शक्ति ही 'कला' है। 'कला' मूल शक्ति है।

'कला' (१) **'कलावस्था'** में स्थित शक्ति परमशिव से अपृथक् रहती है।



(२) जब इस **'कला'** में किञ्चित् स्वयंसिद्ध न्यूनता का उदय होता है तब उसे **'कलाशक्ति'** कहते हैं। यह 'शक्ति' शक्तितत्त्व है। यह 'शक्ति' ३६ तत्त्वों में से एक तत्त्व है।



परमतत्त्व के क्षुब्ध होने के साथ-साथ (अनतिरिक्त होते हुए भी) अतिरिक्तवत् भासित शक्तियों की समष्टिरूपा शक्ति

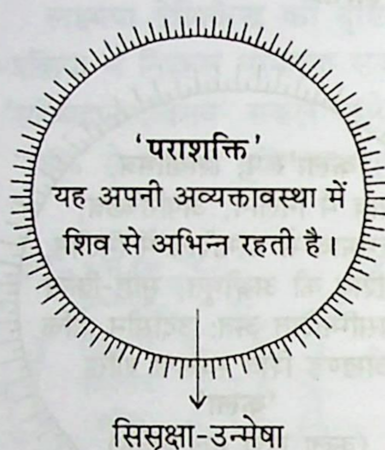
(३) शक्ति की 'क्रियावस्था' शक्ति की 'निष्क्रियावस्था' } 'नाद' है / 'कला' है

'कला' की शक्ति ही है किन्तु 'कला' एवं शक्ति में अवस्थागत भेद है।

''आसीच्छक्तिस्ततो **नादः**'' में कथित **'नाद'** व्यापक नाद है। यही एकाग्रता द्वारा **'बिन्दु** बन जाता है अर्थात् स्थूल बन जाता है।

(क) **सृष्टि का प्राथमिक क्रम=** नाद का 'बिन्दु' रूप ग्रहण करना।

(ख) **सृष्टि का परवर्ती क्रम=** क्षुब्ध बिन्दु का विकास।



(१) (शिवेच्छा का आविर्भाव)
शक्ति का शिव से पृथग्वत् स्फुरण ॥
"शिवेच्छया **पराशक्तिः** शिवतत्त्व कलां गता, ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव ॥" —शिवपुराण ॥

(२) शिव में अनन्त कलाएँ स्थित हैं। ये सभी चिदात्मक हैं। ये परमेश्वर से अभिन्न भी हैं। यह कला **'चित्कला'** का ही अपर पर्याय हैं।

(३) यह **'चित्कला'** परमा कला या आद्या कला नहीं है।

(४) जगत की सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर की **'ईक्षण शक्ति'** जब कार्य हेतु जाग्रत हो उठती है तब वह **'चित्कला'** कहलाती है और अनतिरिक्त रहते हुए भी अतिरिक्तवत अवस्था ग्रहण करती है।

(५) सिसृक्षा ही शक्ति है अतः 'शक्ति' इच्छारूपात्मिका है।

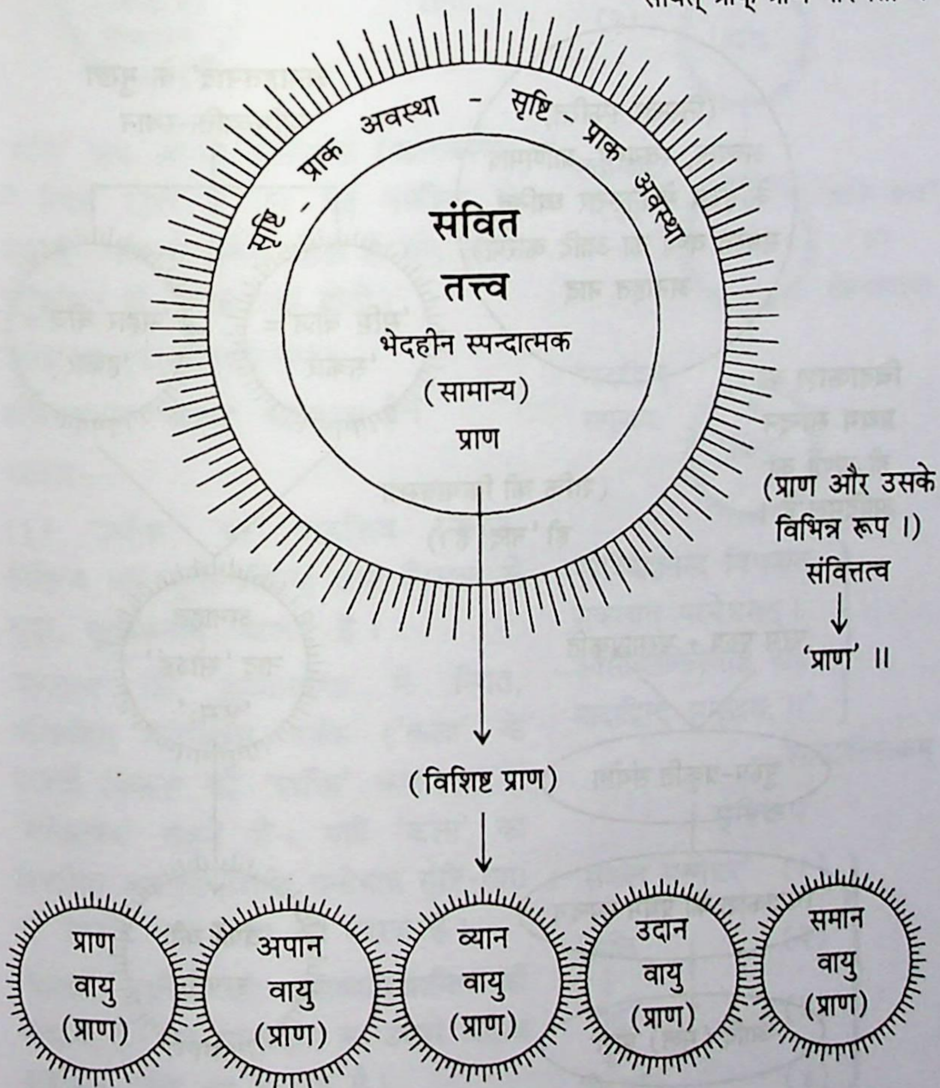
(६) भगवान की ईक्षणशक्ति का जागरण—

'चित्कला' का 'शक्ति' रूप में परिणमन और पृथग्वत् स्वरूप प्राप्त करना ।

(७) **'इच्छा'** का अर्थ है— पूर्वनिलीन (प्रलय में विलीन) सृष्टि के पुनरोदय की आकांक्षा (सिसृक्षा) 'महाशून्य'→ सिसृक्षा ॥

इच्छा→महाशून्य—

'सवित् प्राक् प्राणे परिणता' ।

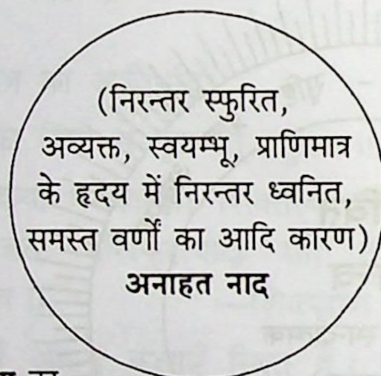


'उच्चार'

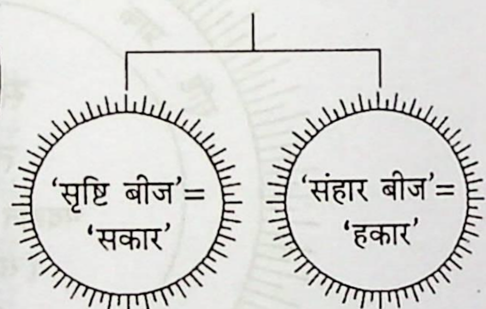


* **'बीज' और नाद** *

अनाहत नाद के उदय के कारक दो बीज हैं—
(१) 'सकार'
(२) 'हकार'।
इन दोनों बीजों का अवलम्बन स्वीकार करके ही **नादोदय** हुआ करता है।

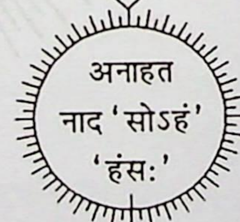


'अनाहतनाद' के मुख्य अभिव्यक्ति-स्थान



चिदाकाश का **प्रथम स्पन्दन** ही प्राणों का आदिमूल है।

(शक्ति की क्रियावस्था ही 'नाद' है।)



परम पुरुष + परमाप्रकृति

पुरुष-प्रकृति संयोग

↓

चिदाकाश का प्रथम स्पन्दन

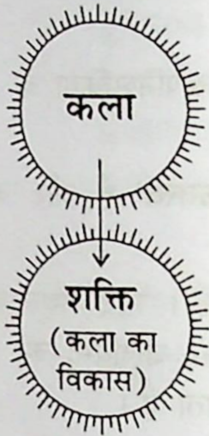
↓

आदि (मूल) प्राण



शक्ति और कला

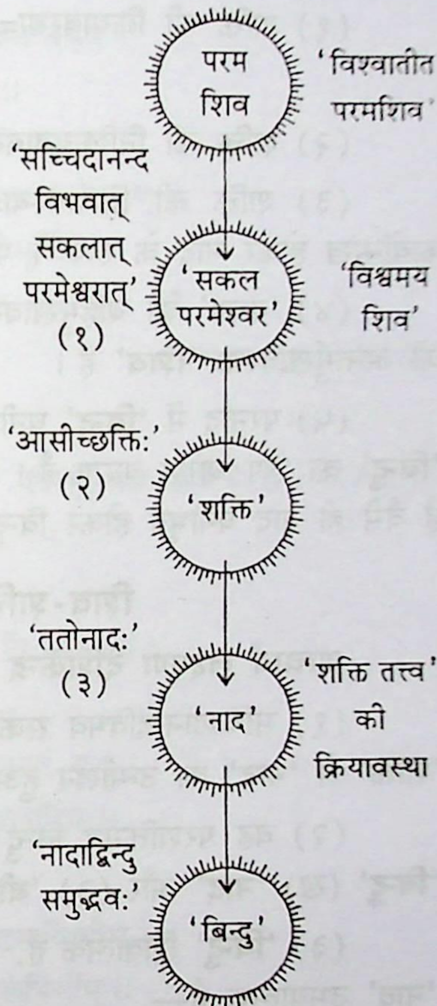
'कला' 'कलाशक्ति' और 'शक्ति'



कला

↓

कला
'शक्ति'



'शक्ति' जब अपनी पूर्वावस्था (कलावस्था) में स्थित रहती है तब यह पमशिव से एकात्म- भाव से स्थित रहती है और उससे यत्किञ्चित भी पृथक नहीं होती।

शक्ति का (परमशिवनिलीन)
यही स्वरूप **'कला'** कहलाता है।

सारांश—

(१) **'शक्ति'** का परमशिव निलीन, निष्क्रिय एवं सृष्टि-प्रक्रिया तथा सिसृक्षा से सुदूर, **पूर्वस्वरूप 'कला' है।**

परमतत्त्व की क्षुब्धावस्था में स्थित, यत्किञ्चित् परिच्छिन्न शक्ति ('कला' के परवर्ती विकास को **'शक्ति'** कलातत्त्व या 'शक्तितत्त्व' कहते हैं। यही 'कला' का विकसित रूप या उसका घनीभाव सृष्टि-धारा का प्रवर्तक एवं जगत का कारण है।

'कला' शक्ति की **आत्मविश्रान्ति** की अवस्था है। यह परमशिव का उससे अभिन्न अङ्गीभूत शक्ति का स्वरूप है।

'सच्चिदानन्द विभवात्,
सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः,
नादाद्बिन्दु समुद्भवः॥'

—शारदातिलकम्

सृष्टिक्रम

'सकल परमेश्वर' (१)
↓
'शक्ति' (२)
↓
'नाद' (३)
↓
'बिन्दु' (४)

(१) शक्ति की क्रियावस्था= **'शक्ति'** 'शक्तितत्त्व' 'कलातत्त्व) (शक्ति के दो रूप)

(२) शक्ति की निष्क्रियतावस्था= **'कला'** ।

(३) शक्ति की क्रियावस्था= **'नाद'**। 'शक्ति स्वरूपनिष्ठक्रिया के द्वारा कार्योन्मुख होकर नाद के रूप में परिणत हो जाती है।

(४) 'कला' की बहिर्मुखावस्था **'शक्ति'** या **'शक्तितत्त्व'** है और 'कला' की अन्तर्मुखावस्था **'शिव'** है।

(५) परनाद में **'बिन्दु'** घनीभूत होकर प्रकट होता है। 'नाद' स्थूल होकर **'बिन्दु'** का रूप धारण करता है। जैसे वाष्प घनीभूत होकर जलबिन्दु बन जाता है वैसे ही नाद घनीभूत होकर बिन्दु (आदि सृष्टि) बन जाता है।

शिव-शक्ति और नाद-बिन्दु

आचार्य लक्ष्मण देशिकेन्द्र कहते हैं कि—

(१) सच्चिदानन्दविभव **सकल परमेश्वर** से **'शक्ति'** का उन्मेष हुआ और 'शक्ति' से **'नाद'** का उन्मीलन हुआ।

(२) वह परशक्तिमय बिन्दु पुनः तीन रूपों में विभक्त हो उठा— (क) **'बिन्दु'** (ख) **'नाद'** और (३) **'बीज'**।

(३) **'बिन्दु'** शिवात्मक है, **'बीज'** शक्त्यात्मक है और दोनों से उन्मिषित **'नाद'** उभयात्मक है—

सारांश– 'निर्गुण' (प्रकृत्यातीत, अवस्थातीत, गुणातीत, निष्क्रिय परमशिव) से **'सगुण'** (सच्चिदानन्द विभव सकल परमेश्वर) शिव एवं सकल शिव से **'शक्ति'** एवं **'शक्ति'** से **'नाद'** का उन्मीलन हुआ।

निष्कल, निर्गुण शिव का स्वरूप-

(१) **निर्गुणः सगुण**श्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः **सगुणः सकलः** स्मृतः ॥

(२) प्रयोगसारकार की दृष्टि-

नित्यः सर्वगतः सूक्ष्मः सदानन्दो निरामयः।
विकाररहितः साक्षी शिवो ज्ञेयः सनातनः।

(३) नारायणीय प्रयोगसार में भी कहा गया है—

'निष्क्रियं निर्गुणं शान्तमानन्दमजमव्ययम्।
अजरामरमव्यक्तमज्ञेयमचलं ध्रुवम्॥
ज्ञानात्मकं परंब्रह्म स्वसंवेद्यं हृदिस्थितम्।
सत्यं बुद्धेः परं नित्यं निर्मलं निष्कलं स्मृतम्॥
तच्छक्तिभूतः सर्वेशो भिन्नो ब्रह्मादिमूर्तिभिः।
कर्ता भोक्ता च संहर्ता सकलः स जगन्मयः॥[१]

—'नारायणीय प्रयोगसार'

'शक्ति' और सृष्टि का स्वरूप-

(१) शङ्कराचार्य की दृष्टि— **'शक्ति' शम्भु का शरीर हैं-** 'शरीरं त्वं शम्भोः॥'

(२) **प्रयोगसारकार की दृष्टि-**

तस्माद् विनिर्गता नित्या सर्वगा विश्वसम्भवा।

(३) **वायवीय संहिताकार की दृष्टि-**

शिवेच्छया **पराशक्तिः** शिवतत्त्वैकतां गता।
ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव॥

(४) **नारदपाञ्चरात्रकार की दृष्टि-**

एवमालोक्य सर्गादौ **सच्चिदानन्दरूपिणीम्।**
समस्ततत्त्वसङ्घात्मस्फुरत्याधिष्ठानरूपिणीम्॥
व्यक्तां करोति नित्यां तां प्रकृतिं परमः पुमान्।
तस्या एव नादबिन्दू सृष्ट्युपयोगावस्थारूपौ॥

प्रयोगसारकार की दृष्टि-

नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी।
शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता॥
सैव सर्गक्षमा तेन॥

आचार्य शङ्कर की दृष्टि (प्र. सा. तं.)-

सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रज्योतिषः सन्निधेस्तदा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्॥

---

१. इन सभी की व्याख्या इसलिए नहीं की जा रही है; क्योंकि अन्यथा इस पुस्तक का कलेवर बढ़ जायेगा।

इसके अतिरिक्त उस **'अभिव्यक्ता, चिद्रूपिणी पराशक्ति** के विषय में यह भी कहा गया है कि—

'अभिव्यक्ता पराशक्तिरविनाभावलक्षणा।
अखण्डपरचिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः।
समस्ततत्त्वभावेन विवर्तेच्छा समन्विता।
प्रयाति बिन्दुभावञ्च क्रियाप्राधान्यलक्षणम्॥'

आचार्य शङ्कर की दृष्टि– (**'शक्ति'** का यात्रा-पथ)—

'महीं **मूलाधारे** कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं **स्वाधिष्ठाने** हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रू**मध्ये** सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या **विहरसे**॥'

— (सौ. ल.)

शक्तिसूत्रकार की दृष्टि–

(१) चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः॥१॥

(२) स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति॥२॥

(३) तन्नाना अनुरूपग्राह्यग्राहकभेदात्॥३॥[1]

आचार्य शङ्कर की दृष्टि– ('शक्ति' की महनीयता)–

(१) ''**शरीरं त्वं शम्भोः** शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं॥'' (सौ. ल. ३४)

(२) शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेनं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥[2]

वामकेश्वरतन्त्रकार की दृष्टि–

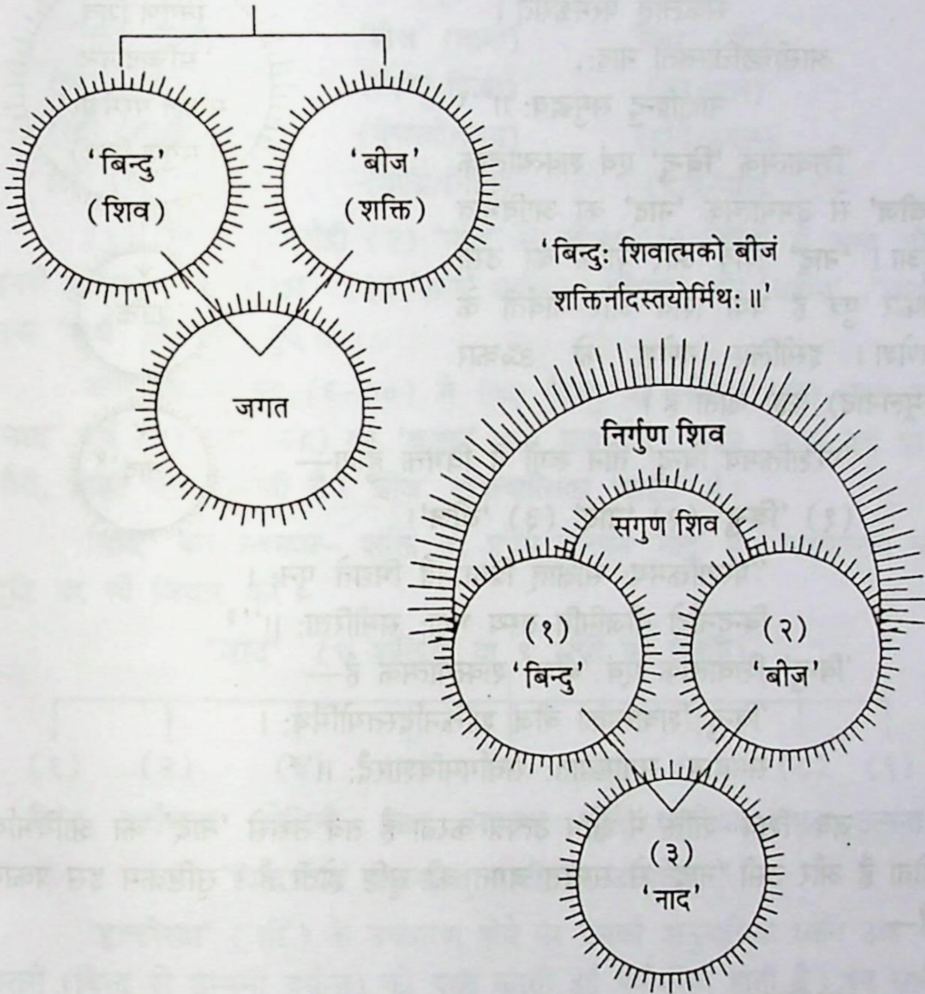
परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि॥

'बिन्दु' शिवात्मक है और **'बीज'** शक्त्यात्मक है।

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (शक्तिसूत्र)।

२. सौन्दर्यलहरी।

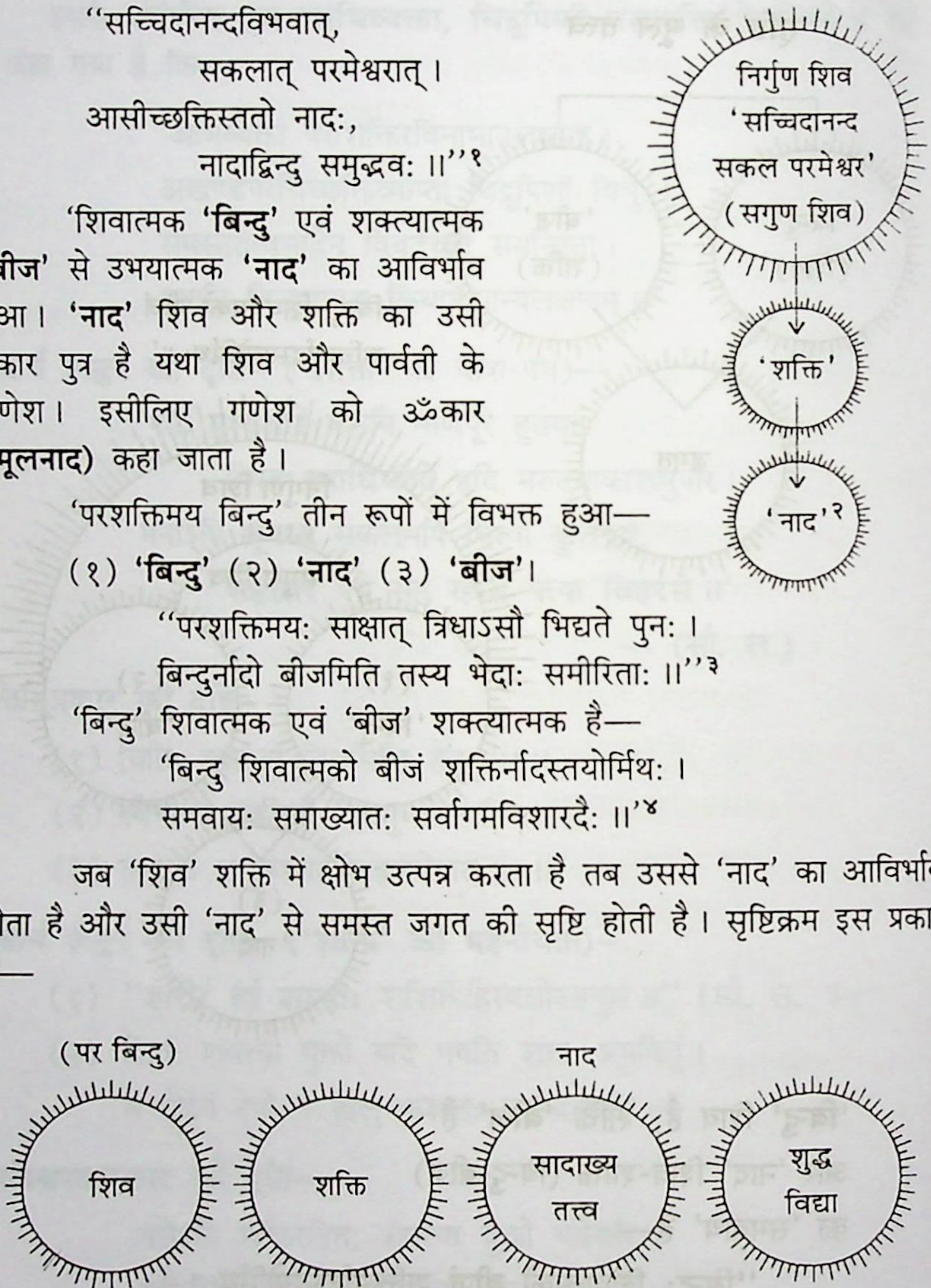


'बिन्दु' शिव है, शक्ति **'बीज'** है
और 'नाद' शिव-शक्ति (बिन्दु-बीज)
का 'समवाय' है—

> "**बिन्दुः** शिवात्मको **बीजं** शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः ।
> समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः ॥"

'सच्चिदानन्दविभवसकल परमेश्वर' से **'शक्ति'** का उन्मीलन हुआ। 'शक्ति' से **'नाद'** का **'उन्मेष'** हुआ।

आचार्य लक्ष्मण देशिक कहते हैं—



"सच्चिदानन्दविभवात्,
सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः,
नादाद्बिन्दु समुद्भवः ॥"[१]

'शिवात्मक **'बिन्दु'** एवं शक्त्यात्मक **'बीज'** से उभयात्मक **'नाद'** का आविर्भाव हुआ। **'नाद'** शिव और शक्ति का उसी प्रकार पुत्र है यथा शिव और पार्वती के गणेश। इसीलिए गणेश को ॐकार **(मूलनाद)** कहा जाता है।

'परशक्तिमय बिन्दु' तीन रूपों में विभक्त हुआ—

(१) **'बिन्दु'** (२) **'नाद'** (३) **'बीज'**।

"परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ॥"[३]

'बिन्दु' शिवात्मक एवं 'बीज' शक्त्यात्मक है—

'बिन्दु शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः ॥'[४]

जब 'शिव' शक्ति में क्षोभ उत्पन्न करता है तब उससे 'नाद' का आविर्भाव होता है और उसी 'नाद' से समस्त जगत की सृष्टि होती है। सृष्टिक्रम इस प्रकार है—

---

१. शारदातिलकम्।
२. शारदातिलकम्।
३. शारदातिलकम् (८/१)।
४. शारदातिलकम् (८/१)।

(१)	(२)	(३)
'नाद' (ज्येष्ठा)	'बीज' (वामा)	'बिन्दु' (रौद्री)
(क) (ब्रह्मा/इच्छा)	(विष्णु/क्रिया)	(रुद्र/ज्ञान)
(ख) (ब्राह्मी/क्रिया)	(वैष्णवी/ज्ञान)	(गौरी/इच्छा)
(ग) (सूर्य/प्राण)	(अग्नि/चिति)	(चन्द्र/मन)

(१) **'बिन्दु'** से रौद्री (२) **'नाद'** से ज्येष्ठा (३) **'बीज'** से वामा और इनसे क्रमशः (१) **'इच्छा'** (२) **'ज्ञान'** एवं (३) **'क्रिया'** और **'अग्नि'**, **'चन्द्र'** तथा **'सूर्य'** उन्मिषित हुए॥

योगशिखोपनिषद (६-७०) में (क) विष्णु को **'बिन्दु'** (ख) ब्रह्मा को **'नाद'** एवं (ग) ईश (रुद्र) को **'कला'** कहा गया है।[1] इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान गौरी, ब्राह्मी एवं वैष्णवी है। 'बीज' शक्त्यात्मिका **'कला'** है।

'नाद' का स्वरूप– शक्ति की प्रथम सन्तान 'नाद' है। भास्करराय की दृष्टि पर भी विचार करें।

'नाद' (९ शक्तियों या ९ स्तरों की समष्टि)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)
बिन्दु	अर्धचन्द्र	रोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिका	समना	उन्मना

'बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते॥'[2]

'हृल्लेखा' ('ह्रीं') के उच्चारण होने पर इसकी अनुनासिक ध्वनि उक्त ९ स्तरों (बिन्दु से उन्मनी पर्यन्त) की यात्रा करती हुई पर्यवसित होती है। इन सभी की (बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी आदि सभी क्रमशः परवर्ती नादावयवों की) मात्रा उत्तरोत्तर अपने पूर्ववर्त्तियों से आधी-आधी होती जाती है और सभी का पूर्ण योग १/२ मात्रा होता है जो कि बिन्दु की आधी मात्रा सहित १ मात्रा बनती है। इस प्रकार इनकी मात्रास्थिति इस प्रकार है— १/२, १/४, १/८, १/१६, १/३२, १/६४, १/१२८, १/२५६, १/२५६=पूर्ण योग १ मात्रा॥

'ब्रह्म' ही **'बिन्दु'** है। 'शक्ति' ही **'कला'** है। **'नाद'** ही 'बिन्दु' और

---

१. "बिन्दुनादकला ब्रह्मन् विष्णुमहेश देवता॥"

—योगशिखोपनिषद् (६-७०)

२. वीरवस्यारहस्यम् (१३/)।

'कला' की सृष्ट्यात्मक सन्तान है।

सृष्टिक्रम के अनुसार तो—

(१) **'बिन्दु'** से रौद्री (२) **'नाद'** से 'ज्येष्ठा' एवं (३) 'बीज' से **'वामा'** का आविर्भाव हुआ।

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि– लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं—

"रौद्रीबिन्दोस्ततो नादाज् ज्येष्ठा बीजादजायत।
वामा ताभ्यः समुत्पन्ना रुद्रब्रह्मरमाधिपाः॥"[१]

प्रयोगसारकार की दृष्टि– प्रयोगसार में कहा गया है—

बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्।
तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः।
रौद्री बिन्दोः समुद्भूता ज्येष्ठा नादादजायत।
वामा बीजाद्भूच्छक्तिस्ताभ्यो देवास्त्रयोऽभवन्॥

रुद्र, ब्रह्मा एवं विष्णु क्रमशः **इच्छा, क्रिया** एवं **ज्ञान** के स्वरूप हैं। ये अग्नि, चन्द्र एवं सूर्यरूप हैं। इच्छाशक्ति **'गौरी'** है। कियाशक्ति' **'ब्राह्मी** है। ज्ञान शक्ति **'वैष्णवी'** है।

परबिन्दु के (शक्त्यवस्थारूप के) प्रथम बिन्दु से ही वर्णविशेष से शून्य **'अखण्डनाद'** का आविर्भाव हुआ।

"संज्ञानेच्छाक्रियात्मनो वह्निद्वर्कस्वरूपिणः।
भिद्यमानात् पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्॥"[२]

इच्छाज्ञानक्रिया की त्रिपुटी और जगत की सृष्टि

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकार की दृष्टि–

'यत इच्छन्ति तज्ज्ञातं, कर्तुं वा स्वेच्छया क्रियाः।
अनन्तरं हि तत् कार्यज्ञानदर्शनशक्तिता।
ज्ञानशक्तिस्तदर्थं हि योऽसौ स्थलः समुद्यमः।
सा **क्रियाशक्ति**रुदिता ततः सर्वं जगत् परम्॥"

---

१. शारदातिलकम् (१०/१)।
२. शारदातिलकम् (१२/१३/१)।

गोरक्षसंहिताकार की दृष्टि

इच्छाक्रिया तथा **ज्ञानं** गौरी ब्राह्मी तु वैष्णवी।
त्रिधा **शक्तिः** स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥

परबिन्दु एवं अखण्डनाद (शब्दब्रह्म)

"भिद्यमानाद् पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्॥"
शब्द ब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागमविशारदाः।
शब्दब्रह्मेति शब्दार्थं शब्दमित्यपरे जगुः।
न हि तेषां तयोः सिद्धिर्जडत्वादुभयोरपि।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः[१]॥ शब्द ब्रह्म = नाद

\+ \+ \+ \+ \+

क्रियाशक्तिप्रधानायाः शब्दः शब्दार्थकारणम्।
प्रकृतेर्विन्दुरूपिण्याः शब्दब्रह्माऽभवत् परम्॥ शब्द ब्रह्म = नाद

भर्तृहरि की दृष्टि

भर्तृहरि कहते हैं—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ नाद

अन्यत्र कहा गया है—

शब्दब्रह्मेति शब्दावगम्यमर्थं विदुर्बुधाः।
स्वतोऽर्थानवबोधत्वात् प्रोक्तो नैतादृशोरवः।
स तु सर्वत्र संस्यूतो जाते भूताकरे पुनः।
आविर्भवति देहेषु प्राणिनामर्थविस्तृतः॥

प्रयोगसारकार की दृष्टि-

"सोऽन्तरात्मा तदा देवी नादात्मा नदते स्वयम्।
यथासंस्थानभेदेन स भूयो वर्णतां गतः।
वायुना प्रेर्यमाणोऽसौ पिण्डाद् व्यक्तिं प्रयास्यति॥

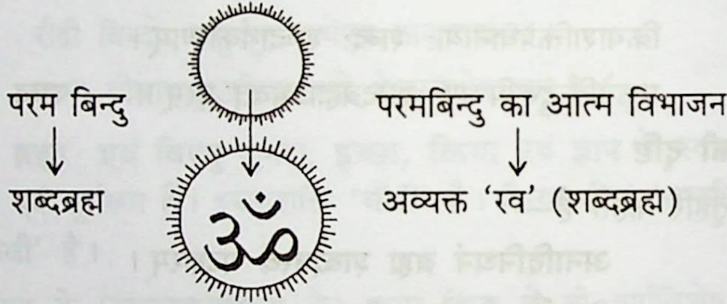
लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि– 'प्राणियों के शरीर के मध्य **कुण्डली रूप ग्रहण करके वही चैतन्य** कण्ठादि स्थानों में गद्यापद्यादि भेदों से वर्णात्मक स्वरूप में आविर्भूत होता है अतः समस्त शाब्दी सृष्टि कुण्डलिनी से ही होती है।"

"तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगाम् ।
वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः ।।"[१]

आचार्य शङ्कर की दृष्टि– अचार्य शङ्कर कहते हैं कि—

(१) वही **'प्रकृति'** जो 'तत्त्व' कही जाती है (वही तत्त्वात्मिका प्रकृति= 'सा तत्त्व संज्ञा') अपनी तत्त्वात्मकता का परित्याग किये बिना ही (अपनी अविभक्तावस्था में ही) अपनी अन्तर्मुख अवस्था में ही किसी देश में बिन्दुतां (किञ्चित् बहिर्मुखता) प्राप्त करके स्थूल हो जाती है ।

प्रकृति **'ज्योति'** के सम्पर्क में आकर **'चिन्मात्रा'** हो जाती है । वह जब सिसृक्षु होती है तब घनीभूत (Solidified) हो जाती है और **'बिन्दु'** के रूप में प्रस्तुत हो उठती है । 'काल' के द्वारा बिन्दु उद्भिन्न होकर (१) **'पर'** (२) **'सूक्ष्म'** एवं (३) **'स्थूल'** तीन भागों में विभक्त हो जाता है—



'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीषुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।।

(PRAKRITI by contact with light (Jyoti) in Chinmatrā. In the desire to create she solidifies or thickens (विचिकिर्षुर्घनीभूता' विचिकीर्षा' desire to create) (घनीभूता=solidified) and appears as Bindu. Through the instrumentality of Kāla the Bindu divides itself into three 'Gross', 'Subtle' and 'Supreme' These are called 'Bīja' 'Nāda' and 'Bindu'. On this selfdivision of the supreme Bindu there arises an inarticulate & sound Avyaktarava (अव्यक्त रव) which is the Shabda Brahman or Sound Brahman."[2]

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा ।

१. शारदातिलकम् (१४/१) ।
२. 'प्रपञ्चसार तन्त्र' (Prapanchsar Tantra)

स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते ॥
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते ।
तद्विस्तारप्रकारोऽयं यथा वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥
बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत् ।
सरवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते ॥
अव्यक्तादन्तरुदितत्रिभेदगहनात्मकम् ।
महन्नाम भवेत्तत्त्वं महतोऽहङ्कृतिस्तथा ॥
शब्दाद् व्योमस्पर्शतस्तेन वायु-
स्ताभ्यां रूपाद्वह्निरेतै रसाच्च ।
अम्भास्येतैर्गन्धतो भूर्धराद्या
भूताः पञ्च स्युर्गुणोनाः क्रमेण ॥

इसी **'शब्दब्रह्म'** रूप **अव्यक्त** 'र व' से 'महत्तत्व' (बुद्धितत्त्व) और उससे **'अहङ्कार'**, अहङ्कार से **पञ्चतन्मात्रायें** और पञ्चतन्मात्राओं से **पञ्चमहाभूतों** का तथा उनसे समस्त **जगत** का आविर्भाव हुआ।

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि

लक्ष्मणदेशिकेन्द्र के अनुसार (१) 'परशक्तिमय बिन्दु' से (१) **बिन्दु** (२) **नाद** एवं (३) **बीज** उत्पन्न हुए।

(२) **'बिन्दु'** से रौद्री (२) **'नाद'** से ज्येष्ठा (३) **'बीज'** से वामा की उत्पत्ति हुई।

(३) उनसे 'रुद्र', 'ब्रह्मा' एवं 'विष्णु' उत्पन्न हुए।

(४) बिन्द्वात्मक शरीर वाले **'परमशिव'** से जगन्निर्माण बीज रूप एवं जगत्साक्षी **'सदाशिव'** उत्पन्न हुए।

(५) सदाशिव से **'ईश्वर'** ईश्वर से 'रुद्र', रुद्र से 'विष्णु' तथा विष्णु से 'ब्रह्मदेव' का आविर्भाव हुआ।

अथ बिन्द्वात्मनः शम्भोः कालबन्धोः कलात्मनः ।
अजायत जगत्साक्षी सर्वव्यापी सदाशिवः ।
सदाशिवाद् भवेदीशस्ततो रुद्रसमुद्भवः ।

---

1. Sam Tantra.

ततो विष्णुस्ततो ब्रह्मा तेषामेवं समुद्भवः ॥[१]

तत्त्व सृष्टिक्रम—

मूलभूतात् ततोऽव्यक्ताद् विकृताद् परवस्तुनः ।
आसीत् किल महत्तत्त्वं गुणान्तः करणात्मकम् ॥
अभूत्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधिः सृष्टिभेदतः ।
वैकारिकादहङ्काराद्देवा वैकारिका दश ॥
दिगवातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ।
तैजसादिन्द्रियाण्यासंस्तन्मात्राक्रमयोगतः ॥
भूतादिकादहङ्कारात् पञ्चभूतानि जज्ञिरे ।
शब्दात् पूर्वं वियत् स्पर्शाद् वायूरूपाद् द्युताशनः ।
रसादम्भः क्षमा गन्धादिति तेषां समुद्भवः ।
स्वच्छं वियन्मरुत कृष्णो रक्तोऽग्निर्विशदं पयः ।
पीताभूमिः पञ्चभूतान्येकैकाधारतो विदुः ।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा भूतगुणाः स्मृताः ॥ आदि[२]
'पञ्चभूतात्मकं सर्वं चराचरमिदं जगत् ॥'

भास्करराय मखिन की दृष्टि

भास्कर राय कहते हैं कि बिन्दु आदि ९ अर्थात् (१) **'बिन्दु'** (२) **'अर्धचन्द्र'** (३) **'रोधिनी'** (४) **'नाद'** (५) **'नादान्त'** (६) **'शक्ति'** (७) **'व्यापिका'** (८) **'समना'** एवं (९) **'उन्मना'**– की समष्टि को **'नाद'** कहते हैं। ये बिन्द्वादि नौ नाद सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम के क्रम में उत्तरोत्तर क्रमाङ्कित हैं—

''बिन्द्वादयो नवापि सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतमकालैरुच्चार्या **ध्वनिविशेषः** वर्णविशेषा वा ॥''

ये ककारादिक वर्णों के समान सुस्पष्टरूप में उच्चार्य नहीं है प्रत्युत ये तन्त्री के स्वरों के तुल्य श्रूयमाण ध्वनियाँ हैं। इनको तन्त्रादि ग्रन्थों में **'ध्वनि'** कहा गया है अत अर्धचन्द्र आदि को **'वर्ण'** नहीं कहा जा सकता— **('नादस्य बिन्द्वादि-नवकस्य' : भास्कर राय)–**

---

१. शारदा तिलकम् (१५-१६/१)।

२. शारदातिलकम् (१७-२२)

(१) "न च ककारादिवत् स्पष्टमनुचार्यत्वात्।"

(२) "तन्त्रीस्वरतुल्यत्वेन श्रूयमाणत्वाच्च।"

(३) "ध्वनिपदेनैव तन्त्रेषु व्यवहाराच्च।"

(४) "न वर्णत्वमर्धचन्द्रादेरिति वाच्यम्। 'नात्र वर्णत्वम्'।"

(५) " न च ताल्वादिपरिगणितस्थानानभिव्यङ्ग्यत्वान्न वर्णत्वम्॥"[१]

(६) "तदनभिव्यङ्ग्यत्वस्य पश्यन्त्यादावव्याप्तेः।"

'चत्वारिवाक्परिमिता पदानि' कहकर श्रुति क्या सङ्केत करती है? ('परा', 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' और 'वैखरी' 'वाक्' हैं।)

परा आदि को (वर्ण) तो कहा गया है— 'चत्वारि वाक्'—

(७) **'ज्ञानार्णव' में इन्हें वर्ण'** कहा गया है—

"भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ।
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च **नवार्णो मेरुरुच्यते**॥
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवाः॥"

(८) **'पञ्चदशाक्षरी विद्या'** में 'हृल्लेखा-हकार-रेफ-एकार-अनुस्वार-को **'नादपञ्चक'** कहा गया है अतः 'नाद' को भी अक्षर के रूप में व्यवहृत पाया जाता है— 'नादेऽक्षरत्वव्यवहारस्यासकृत् यथा योगिनीहृदये— 'भूमिश्चन्द्र.... मेरुसमुद्भवाः॥"[२]

महाबिन्दु
शब्दब्रह्मोपरि,
एवं नादातीत



महाबिन्दु
'तुर्यातीतावस्था
या अवस्थातीत)

अवस्थायें–

(२) **'तुर्यावस्था'**



↑

(१) सुषुप्ति अवस्था— 'बिन्दु'

{ 'नाद'
'रोधिनी'
'अर्धचन्द्र' }

(३). तुर्यातीतावस्था

१. 'महाबिन्दु'
२. 'उन्मनी'
३. 'समना'
४. 'व्यापिका'
५. 'शक्ति'

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (प्रथमोंऽशः)।
२. वरिवस्यारहस्यम् (प्रथमोंऽशः)।

पाणिनीय शिक्षाकार की दृष्टि–

'पाणिनीय शिक्षा' में ''त्रिषष्ठिश्चतुःषष्टिर्वा **वर्णः** शम्भुमते मताः ॥'' कहते हुए— 'अनुस्वारो विसर्गश्च'— भी कहकर इन्हें भी वर्णों में परिगणित कर लिया गया है।

इन प्रमाणों के आधार पर **'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र'** में पहले में १८, मध्य में २२ एवं अन्तिम कूट में १८ अर्थात् **५८ 'वर्ण'** स्वीकार किए गये हैं। इस मन्त्र में जो **'हल्लेखा'** है उसके स्वरूप पर ध्यान दीजिए—

मन्त्र का स्वरूप–

(१) 'क ए ई ल ''ह्रीं''
(२) 'ह स क ह ल ''ह्रीं''
(३) 'स क ल ''ह्रीं''[१]



(१) 'व्योम' (ह)
(२) 'अग्नि' (र)
(३) 'वामलोचना' (ई)
(४) 'बिन्दु' (·)
(५) 'अर्धचन्द्र'
(६) 'रोधिनी'
(७) 'नाद'
(८) 'नादान्त'
(९) 'शक्ति'
(१०) 'व्यापिका'
(११) 'समना'
(१२) 'उन्मना'

सारांश– ''बीजबिन्दुध्वनीनां च त्रिकूटेषु ग्रहात्मिका'' कहकर कूटत्रय में 'बीज-बिन्दु-ध्वनि' का प्रयोग तो किया गया है किन्तु **'वर्ण'** का नहीं। इन सारे तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए **भास्करराय** बिन्द्वादिक को **'ध्वनि विशेष'** एवं **'वर्ण**

---

१. वरिवस्यारहस्यम्।

विशेष' की संज्ञा देते हैं— "बिन्द्वादयो नवापि सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतमकालै-रुच्चार्य ! **"ध्वनि विशेष: वर्ण विशेषावा ।"**[१]

बिन्द्वादिकों की मात्रा (उच्चारण कालावधि)

'मात्रा'=२५६ लव

(१) **'बिन्दु'** का उच्चारण-काल= १२८ लव।

(२) **'अर्धचन्द्र'** का उच्चारण-काल=६४ लव।

(३) **'रोधिनी'** का उच्चारण-काल=३२ लव।

(४) **'नाद'** का उच्चारण-काल=१६ लव।

(५) **'नादान्त'** का उच्चारण-काल= ०८ लव।

(६) **'शक्ति'** का उच्चारण-काल= ०४ लव।

(७) **'व्यापिका'** का उच्चारण-काल= ०२ लव।

(८) **'समना'** का उच्चारण-काल= ०१ लव।

(९) **'उन्मना'** का उच्चारण-काल— कोई भी नहीं। कालातीत।

भास्करराय की दृष्टि– "चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:" के अनुसार तो— ।

"द्वादशोत्तरपञ्चशततमोभाग उन्मनाकाल: ॥"[२]

'उन्मना' का उच्चारण काल : ५१२ लव।

'बिन्दु' का मात्राकाल अर्धमात्राकाल है। उत्तरवर्ती अर्धचन्द्रादिक परवर्ती नादों का उच्चारण काल अपने-अपने पूर्ववर्ती नाद का आधा होना चाहिए। **'उन्मनी'** का मात्रास्वरूप है ५१२ लव। 'देशकालानवच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महत्' भी कहा गया है अत: सिद्ध होता है कि **उन्मना** के बाद ही कालावच्छिन्नत्व समाप्त होता है उन्मना में नहीं।

'चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत: ॥'

इस कथन के अनुसार **उन्मना का काल** ५१२ लव है और मात्रास्वस्व-रूप ५१२ लव वाला है। अत: 'द्विगुणं द्विगुणं तत:' के अनुसार **'शक्ति'** का मात्राभाग हुआ—

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (१ अंश)।
२. वरिवस्यारहस्यम् (प्रथम अंश : १/१६)।

चतु:षष्टितम भाग (६४)। व्यापिका का अष्टाविंशतिउत्तरशततम भाग। और इसी प्रकार ''शक्त्यादीनां च मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी।''

अमृतानन्द की दृष्टि

अमृतानन्द का कथन है कि 'शक्त्यादीनां....तथोन्मनी' कथन में **'मनोन्मनी'** पद **'समना'** का पर्याय है अत: इसका अर्थ हुआ **'समनापर्यन्त'** काल भी है और मात्रात्मक उच्चारणकाल भी किन्तु **'मनोन्मनी'** कालातीता है।

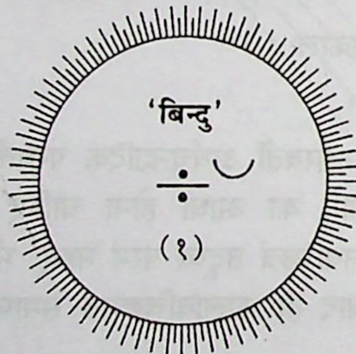
'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' का स्वरूप

(१) **'प्रथम कूट'** **(क ए इ ल ह्रीं)**– मूलाधार से आरम्भ करके प्रलयाग्नि के समान भासित होता है और अनाहत नाद का स्पर्श करता है।

(२) **'द्वितीय कूट'** **(ह स क ह ल ह्रीं)**– कोटिसूर्यवत द्वितीय कूट है जो कि अनाहत से आगे है और आज्ञा चक्र का स्पर्श करता है।

(३) **'तृतीय कूट'** **(स क ल ह्रीं)**– आज्ञा चक्र के आगे ललाट के मध्य में कोटि चन्द्रों के समान आभा वाला तृतीय कूट है।

नाद-तत्त्व



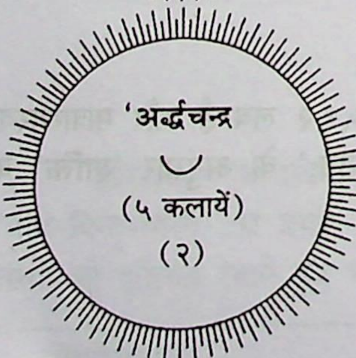
'मध्ये कालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकार: ॥''

(**'बिन्दु'** भाल के मध्य वृत्ताकार रूप में दीप की भाँति देदीप्यमान हो रहा है।

—वरिवस्यारहस्यम् ॥

'बिन्दु' ज्योति स्वरूप है। यह भ्रूमध्य के थोड़ा ऊपर है।

'बिन्दु' में एक मात्रा का अर्धांश है।



कलायें–

(१) 'ज्योत्स्ना कला'।

(२) 'ज्योत्स्नावती कला'।

(३) 'सुप्रभा कला'।

(४) 'विमला कला'।

(५) 'शिवा कला'।

भास्कर राय की दृष्टि–

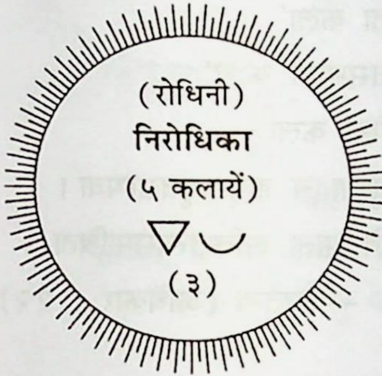
'बिन्दु' से 'उन्मना' तक ९ कलाओं की समुदित रूप में **'नाद'** संज्ञा है।

'बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते ॥''[१]

—वरिवस्यारहस्यम्

'ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती चैव सुप्रभा विमला शिवा।
अर्द्धचन्द्रकला ह्येता: सर्वज्ञपदसंस्थिता ॥'

—नेत्रतन्त्र

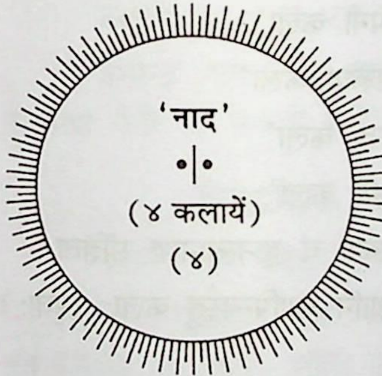


कलायें–

(१) 'रुन्धनी कला'
(२) 'रोधनी कला'
(३) 'रौद्री कला'
(४) 'ज्ञानबोधा कला'
(५) 'तमोपहा कला'

'रुन्धनी रोधनी रौद्री ज्ञानबोधा तमोपहा।
निराधिका कला ह्येता: सर्वदेवनिरोधिका: ॥'

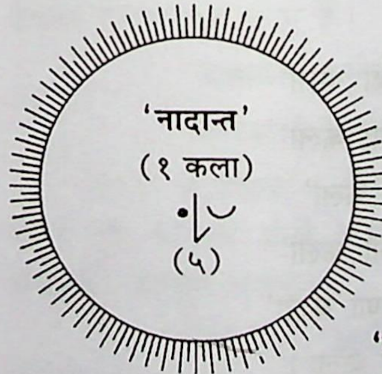
—नेत्रतन्त्र:, अधिकार: २२



कलायें-

(१) 'इन्धिका कला'
(२) 'दीपिका कला'
(३) 'रोचिका कला'
(४) 'मोचिका कला'

'इन्धिका दीपिका चैव रोचिका मोचिका तथा।



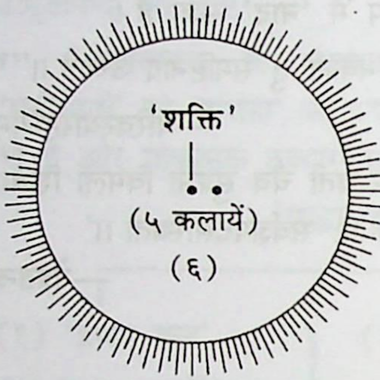
कलाएँ–

(१) ऊर्ध्वगा कला'

९ नाद—। 'नादनवकं मूलाधारादि षट्के **'नादे'** **'नादान्ते'** 'ब्रह्मरन्ध्रे' च स्थितम्। नवभिर्नादैरकचटत

१. यद्यपि बिन्दुविनिर्मुक्तानां अष्टानामेव **नादसंज्ञा** मन्त्र शास्त्रे तथापि व्यवहारसौकर्याय तत्सहिता-नामेव सात्र कृतेति ध्येयम् ॥ — वरिवस्यारहस्यम्

प य श लाख्यवर्गनवकवती वैरवर्याख्या 'मातृका' जाता ॥''१



कलाएँ–

(१) 'सूक्ष्मा कला'
(२) 'सुसूक्ष्मा कला'
(३) 'अमृता कला'
(४) 'अमृतसम्भवा कला'
(५) 'व्यापिनी कला'

सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च ह्यमृतामृतसम्भवा।
व्यापिनी चैव विख्याता शक्तितत्त्वसमाश्रिता॥

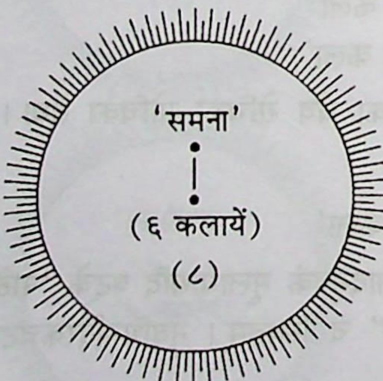
—नेत्रतन्त्र (अधिकार : २२)



कलाएँ–

(१) 'व्यापिनी कला'
(२) 'व्योमरूपा कला'
(३) 'अनन्ता कला'
(४) 'अनाथा कला'

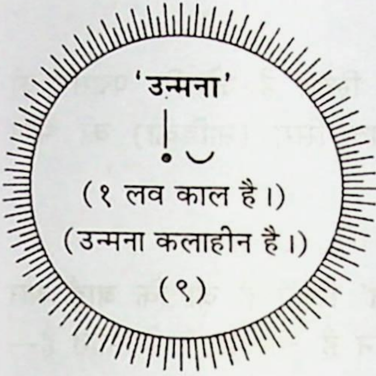
व्यापिनी व्योमरूपा च ह्यनन्तानाथ संज्ञिता।
अनाश्रिता महेशानि व्यापिन्यस्तु कलाः स्मृताः॥



कलाएँ

(१) 'सर्वज्ञा कला'
(२) 'सर्वगा कला'
(३) 'दुर्गा कला'
(४) 'सवना कला'
(५) 'स्पृहणा कला'
(६) 'धृति कला।'

१. प्रकाश (१/२३)।



'सर्वज्ञा सर्वगा दुर्गा सवना स्पृहणा धृतिः ।
समना चेति विख्याता एताः शिवकलाः स्मृताः ॥'
—नेत्र तन्त्र (२२ अधिकार)

'कलायें कहाँ नहीं हैं? काल कहाँ तक है?

'ऊर्ध्वमुन्मनसो यत्र तत्र कालो न विद्यते।'
—स्वच्छन्द तन्त्र (३११/११)

'उन्मन्यन्ते परे योज्यो न कालस्तत्र विद्यते ॥'
(२८६/पटल ४)

योगिनीहृदयकार की दृष्टि

'उन्मना भी कालात्मक है'— योगिनीहृदय—

'शक्त्यादीनां तु मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी।'
—(नित्याषोडषिकार्णव)

'उन्मना का काल एक लवात्मक है'— भास्कर राय

'उन्मना' अमात्र है। मात्रा तो मन की होती है। उन्मना में मन ही नहीं है तो मात्रा कैसे रह सकती है? विशुद्ध चैतन्य की मात्रा नहीं होती।

बिन्द्वादिक नादों का स्वरूप- (१) 'बिन्दु'

भास्कर राय कहते हैं—

(१) 'मूलाधार चक्र' से उठने वाला **'नाद'** वर्णों के मध्य से होता हुआ सूत्र (गुण) की भाँति प्रतीत होता है। **'बिन्दु'** भाल के मध्य वृत्ताकार रूप में दीपवत देदीप्यमान रहता है।

'आधारोत्थितनादो गुण इव परिभाति वर्णमध्यगतः ।
मध्येकालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकारः ॥'[१]

(२) **'अर्धचन्द्र'- 'बिन्दु' के ऊपर 'अर्ध चन्द्र'** नामक नाद है। यह दीप्ति एवं आकृति दोनों दृष्टियों से चन्द्रमा की भाँति है— 'तदुपरि गतोऽर्ध-चन्द्रोऽर्थः कान्त्या तथाकृत्या।

(३) **'रोधिनी'- 'अर्धचन्द्र' के ऊर्ध्वदेश में** त्रिकोणाकार **'रोधिनी'** स्थित है और वह चन्द्रिकावत सुकान्तिसमन्वित है— 'अथ रोधिनी तदूर्ध्वं त्रिकोणरूपा च

१. वरिवस्यारहस्यम् (१/२२)।

चन्द्रिकाकान्तिः ॥

(४) **'नाद'– 'रोधिनी' के ऊपर 'नाद'** स्थित है जो कि पद्मराग की कान्तिवाला है तथा दो अण्डों के मध्य में स्थित सिरा (नाडिका) की भाँति विराजमान रहता है।

'नादस्तु पद्मरागवदण्डद्वयमध्यवर्तिनीव सिरा ॥'

(५) **'नादान्त'– 'नाद' के ऊपर 'नादान्त'** स्थित है जो कि **बाईं ओर स्थित बिन्दु से युक्त है,** विद्युत की भाँति दीप्तिमान है और हल की भाँति है—
''नादान्तस्तडिदाभः, सव्यस्थितबिन्दुयुक्तलाङ्गलवत् ॥''

(६) **'शक्ति'– 'नादान्त' के ऊपर 'शक्ति'** स्थित है। 'शक्ति' दो बिन्दुओं के बाएँ से उदित होने वाली सिरा की आकृति वाली है—

'तिर्यग्बिन्दुद्वितये वामोद्गच्छत्सिराकृतिः शक्तिः ॥'

(७) **'व्यापिका'– 'शक्ति' के ऊर्ध्वदेश में** 'व्यापिका' नामक 'नाद' अवस्थित है। 'व्यापिका' बिन्दु एवं उसके ऊपर त्रिकोण के समान आकृति वाली है—

'बिन्दुद्गच्छत्त्र्यश्राकारधरा **व्यापिका** प्रोक्ता ॥'[१]

(८) **'समना'**– यह अष्टम नाद **'व्यापिका' के ऊर्ध्वदेश में** अवस्थित है। यह एक रेखा के ऊपर-नीचे स्थित दो बिन्दुओं के आकारवाली रचना है—

''सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः ॥''

(९) **'उन्मना'**– 'समना' के ऊर्ध्वदेश में **'उन्मना'** स्थित है और उसके ऊर्ध्व देश में **'महाबिन्दु'** स्थित है। ऊपर वाले बिन्दु के बिना **'समना' ही 'उन्मना'** है—

'सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः ॥'

'शक्ति' आदि का स्वरूप द्वादश रवियों की समुदित कान्ति-पुञ्ज के सदृश है—

''शक्त्यादीनां तु वपुर्द्वादशरविकान्तिपुञ्जाम् ॥''[२]

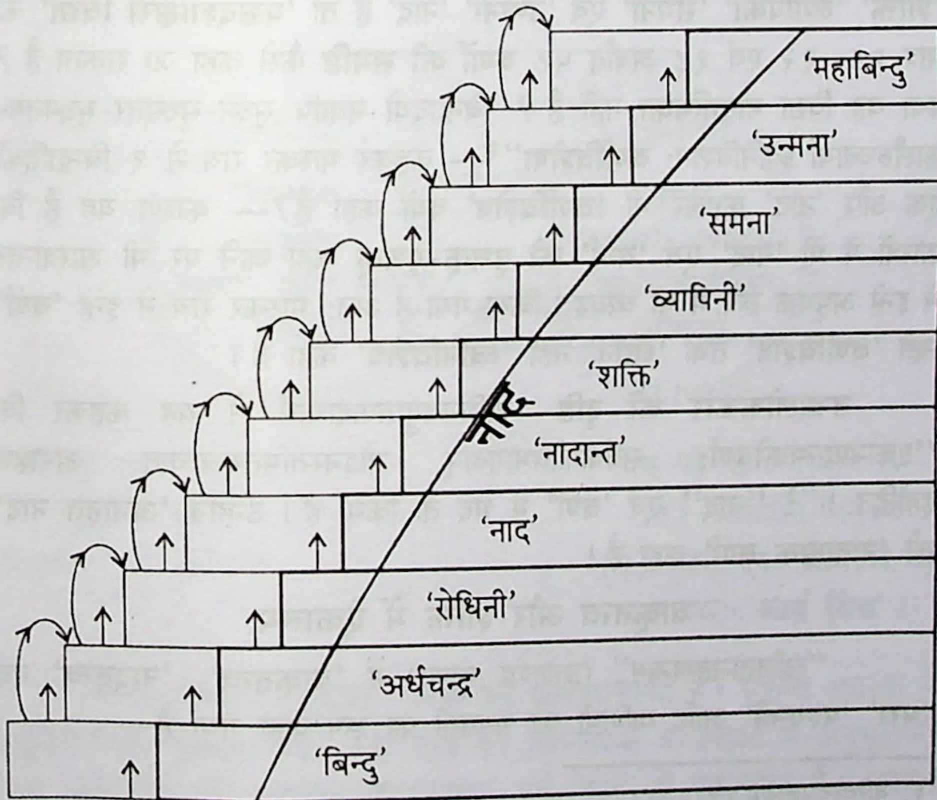
नादों की उत्पत्ति– आचार्य भास्कर कहते हैं कि स्रष्टव्य पदार्थों के आलोचनावसर पर (स्वान्तः संहतविश्व की सिसृक्षा के समय) प्राणियों के 'अदृष्ट'

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (१/२५)।
२. वरिवस्यारहस्यम् (१/२७)।

के कारण परमात्मा में 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' के रूप में जो ईक्षण-प्रवृत्ति हुई उसी के कारण (निमित्त कारण) परमात्मा में ही **'पश्यन्ती'** वाक् का उदय हो जाता है। 'पश्यन्तीमातृका' करण-सरणि से उत्तीर्ण होने के कारण **'उत्तीर्ण'** भी कही जाती है। उसके अवयव हैं— वामादिक अष्ट शक्तियाँ। वही व्यष्टि समष्टि भेद से नवविधा हो जाती हैं। उसी से अविकृत शून्यादि ९ नाद उत्पन्न हो जाते हैं। "अत: सैव व्यष्टिसमष्टिवेषेण नवविधा। ततो **नवनादा** अविकृतशून्यादयो जाता: ॥" उनकी समष्टि जिसे **'नाद'** या **'ध्वनि'** आदि कहा जाता है वे **'परावाक्'** की भाँति न तो अत्यन्त सूक्ष्म ही हैं और न तो **'वैखरीवाक्'** के समान अत्यन्त स्थूल ही हैं— उसे **'मध्यमा वाक्'** कहते हैं। यह भी **'मातृका'** है।[१]

'बिन्दु' से आरम्भ करके क्रमश: **'समना'** में समाप्त होने वाले तृतीय कूट के 'नाद' का उच्चारण करना चाहिये तथा इसे 'उन्मनी' में अन्तर्लीन कर देना चाहिये ॥[२]



१. प्रकाश (१/२३)।
२. वरिवस्या रहस्यम् (१/३०) "उन्मन्यन्तर्लीनं विभावयेदेतदुच्चरणम्" (१/३०)

भास्कर राय की दृष्टि– भास्कर राय एक ओर यह कहते हैं कि **'वर्ण' एवं 'नाद' में अन्तर है**; क्योंकि **'वर्ण' शरीर** है और **'नाद' उसकी आत्मा या प्राण** है; क्योंकि समस्त **वर्णों** में 'नाद' अनुस्यूत है—

''वर्णेषु नादोऽनुस्यूतः ॥'' ''वर्णमध्यगत इत्यस्य द्वयोर्वर्णयोर्मध्यमध्यभागे वर्णशरीरान्तर्भागे च स्थितः ॥'' **''वर्णमध्यगतः''** (भास्कर राय)

'आधारोत्थित**नादो** गुण इव परिभाति **वर्णमध्यगतः** ॥[१]

दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि **नाद भी वर्ण हैं–**

(१) 'प्रथमतृतीयकूटे **अष्टादशवर्णात्मके**।

(२) ''मध्यकूटं तु चतुरधिकम्, संहत्याष्टपञ्चादशद्**वर्णात्मिका विद्यते** ॥''
आगे वे बिन्द्वादिक को **वर्ण न कहकर 'नाद'** कहते हैं।

(३) 'बिन्दु विनिर्मुक्तानामष्टानामेव **नादसंज्ञा मन्त्रशास्त्रे**।'

यदि **'हृल्लेखा'** में निहित **'बिन्दु' 'अर्धचन्द्र' 'रोधिनी' 'नाद' 'नादान्त' 'शक्ति' 'व्यापिका' 'समना'** एवं **'उन्मना'** 'नाद' हैं तो **'पञ्चदशाक्षरी विद्या'** को मात्र १८, २२ एवं १८ अर्थात् ५८ **वर्णों की समष्टि** कैसे कहा जा सकता है ? क्या वह विद्या **नादात्मिका** नहीं है ? 'बिन्द्वादयो नवापि सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम-कालैरुच्चार्या ध्वनिविशेषः **वर्णविशेषा**''[२]— कहकर भास्कर राय ने ९ बिन्द्वादिकों एक ओर 'नाद' कहकर भी **'वर्णविशेष'** क्यों कहा है?— कारण यह है कि शास्त्रों में भी **'नाद' एवं 'वर्ण' को पृथक्-पृथक्** कहा जाने पर भी शास्त्रान्तर में इन्हें अपृथक रूप में भी व्यवहृत किया गया है अतः भास्कर राय ने इन्हें **'वर्ण'** नहीं **'वर्णविशेष'** तथा **'ध्वनि'** नहीं **'ध्वनिविशेष'** कहा है।

तन्त्रालोककार की दृष्टि– अभिनवगुप्तपादाचार्य ने यह कहकर कि ''एको**नादात्मकोवर्णः** सर्ववर्णाविभागवान् सोऽनस्तमितरूपत्वाद् **अनाहत** इहोदितः ॥''[३] **''नाद''** एवं **'वर्ण'** में भेद तो किया है। उन्होंने **'अनाहत नाद'** को **'नादात्मक वर्ण'** कहा है।

वाक्तत्त्व और शक्ति में ऐकात्म्य

''ललितासहस्रनाम'' (ब्रह्माण्ड पुराण) में **'वाक्तत्त्व', 'नादतत्त्व'** एवं **'परा' 'पश्यन्ती'** आदि वाणियों को भगवती का रूप कहा गया है—

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (१/२२)।
२. प्रकाश (१/१३)।
३. तन्त्रालोक (६/२१७)।

"परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका॥"[१]

वह **"मातृका"** भी है और **"वर्णरूपिणी"** भी है—

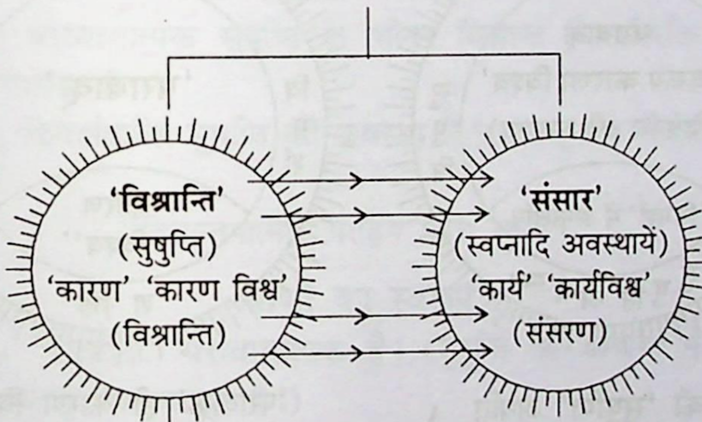
"माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी॥"

'शब्दसृष्टिवाद'– स्वतन्त्रानन्दनाथदर्शन के आलोक में

'शब्दसृष्टिवाद' और 'सर्वशक्तिवाद'– 'कारणविश्व' से 'कार्यविश्व' की उत्पत्ति होती है किन्तु 'कारणविश्व' की उत्पत्ति विमर्शशक्ति से होती है। 'विमर्श शक्ति' में ही विश्व की विश्रान्ति-सृष्टि संहति आदि समस्त अवस्थायें स्थित हैं।

'परावाक्' और 'कारणविश्व'

विश्व की प्रमुख अवस्थायें



'विमर्श शक्ति' की
'सुषुप्ति' या
'विश्रान्ति' की अवस्था

विश्व की दो अवस्थायें हैं—
(१) **'विश्रान्ति** अवस्था
(२) स्वप्न एवं **'जागरण की अवस्था='कार्य विश्व'**।

विश्रान्तिस्वरूपा 'सुषुप्ति' **'विश्व की कारणावस्था** है। सुषुप्ति अवस्था में प्रादुर्भूत विश्व **'कारणविश्व'** कहा गया है। स्वप्नादिक अवस्थाओं में अनुभूतिगत विश्व 'कार्यविश्व' है। तत्त्वतः तो 'कारण' एवं 'कार्य' में एकरूपता है। 'कारण

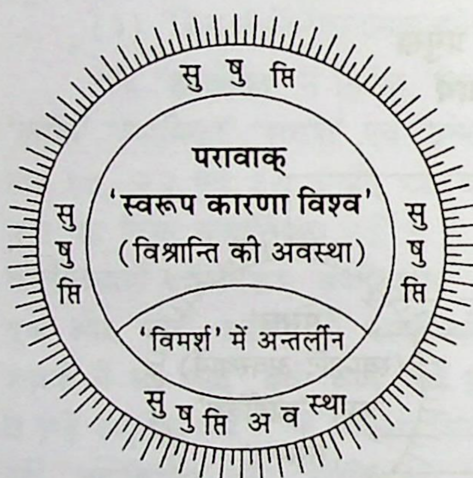
---

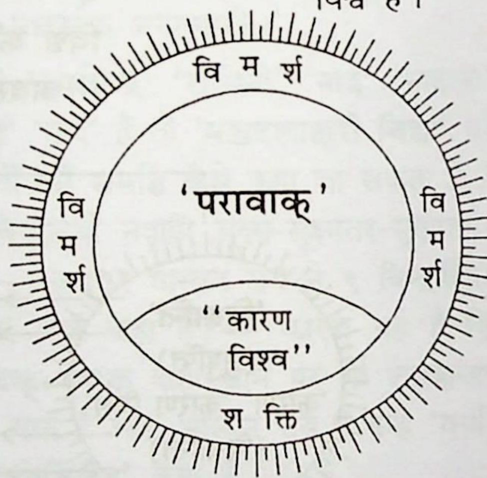
१. ललितासहस्रनाम् (८१)।

विश्व' का विकासक्रम (सुषुप्ति काल में) प्रमेयादिक तीन कक्षाओं में सम्पन्न होता है। इसी प्रकार **'कार्यविश्व'** का विकास-क्रम भी प्रमेय, प्रमाण एवं प्रमातास्वरूप तीन कक्षाओं में होता है। 'कार्यरूप विश्व' का **कारण 'विमर्श'** है। वाक् तत्व (वाणी) के रूप में कार्यविश्व के 'इदम्' 'ईदृक्' एवं 'इति' की अन्वेषण के मूलकेन्द्र के रूप में **'विमर्शशक्ति'** है।

सुप्त्यात्मक 'विश्रान्ति' की अवस्था में **'विमर्श शक्ति'** के अन्तः में **'परावाक्'** लीन रहती है। **'परावाक्'** की अन्तर्लीनावस्था **'विमर्श की विश्रान्ति अवस्था है' 'विमर्श'** के गर्भ में ही विश्व अवस्थित है। 'विश्व' विमर्श शक्ति का विलास है।

'परावाक्' ही कारण विश्व है।





(१) विश्व की **'सुषुप्ति'** अर्थात् **'विश्रान्ति'** की अवस्था।
(२) सुषुप्ति की अवस्था में अवस्थित कारण विश्व।
(३) विश्रान्तावस्थावस्थिता विमर्शशक्ति की कुक्षि में विश्रान्त कारणविश्व ''परावाक्''।
(४) 'मूलाधार चक्र' से आविर्भूत होने के पूर्व तथा विमर्श शक्ति में विश्रान्त 'कारण विश्व'

'परावाक्' ही कारण विश्व है।

विमर्श की विश्रान्ति या सुषुप्ति की अवस्था जिसमें उसकी कुक्षि में कारण विश्वस्वरूप 'परावाक्' स्थित रहता है।

स्वतन्त्रानन्दनाथ की दृष्टि– आचार्य स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं—

''विश्वस्य कारणदशेति विचारतैवम्।
कार्यक्रमो भवति कार्यमिदं विमर्शात्।
विश्रान्तमात्मनि पराह्वय वाचि सुप्तौ।
विश्वं वमत्यथ विबोधपदे विमर्शः।

—'मातृकाचक्र विवेक' (१/३)

सारांश

(१) **'विश्व' विमर्श शक्ति की वमनक्रिया है–**
'विश्वं वमत्यथ विबोधपदे **विमर्शः** ॥''

(२) **'सुषुप्ति' विश्व की कारण-दशा** है—
'विश्वस्य कारण दशेति विचारतैवम् ॥'

(३) **'विमर्श' से 'कार्यविश्व' की उत्पत्ति होती है–**
'कार्यक्रमो भवति कार्यमिदं विमर्शात् ॥'

(४) **परावागात्मक सुषुप्ति के भीतर विश्रान्त विमर्शशक्ति ही कार्य जगत का कारण है ।**

(५) **विमर्शशक्ति सुषुप्ति की अवस्था में परावाग् रूप में विश्राम ग्रहण करती है–**

''विश्रान्तमात्मनि पराह्वय वाचि सुप्तौ।''

वाणी का स्वरूप

(१) **''विमर्श'' परावागात्मक है**। (सुषुप्ति की अवस्था में अवस्थित विमर्श का स्वरूप **'परावाक्'** है।)

(२) 'परावाणी' **ऋकार-ऌकार रूपा** है **'वाणीपरा** खलुच ऋकारऌकार-रूपा ॥' —(स्वतन्त्रानन्दनाथ)

(३) **गगन की सङ्कोचावस्था ही वाणी है–** 'सङ्कोच एव चिदचिद् गगनस्य वाणी ॥'' — (स्वतन्त्रानन्दनाथ : 'मातृकाचक्र विवेक', २/३)

सामरस्यात्मक चिद्चित् गगन के दो रूप हैं—(१) विश्रान्त (२) सङ्कुचित। 'विश्रान्ति' में स्थित **गगन 'शब्द' के आकार में** सङ्कुचित हो जाता है। 'तद् व्योम सङ्कुचति च प्रकृतौ विमर्शौ॥ (२/३) — (मातृकाचक्र विवेक)

विमर्शरूपिणी 'पराशक्ति'– (१) **इदमंश** के समुच्छ्रय द्वारा **'बन्धन' का कारण बनती** है। (वस्तुओं में इदमाकार की प्रतीति होने पर **'अहं की प्रतीति'** देह मात्र में रह जाती है। अर्थात् तब अनात्म देह को ही आत्मा के रूप में स्वीकार

कर लिया जाता है। इस स्थिति में **'इदन्ता का समुच्छ्रय'** 'प्राधान्य' होता है और यह **इदन्ता की प्रतीति ही बन्धन** का कारण है।)

(२) विमर्शस्वरूपा परा शक्ति **'अहमंश' के समुच्छ्रय द्वारा 'मोक्ष' का कारण बनती है।**

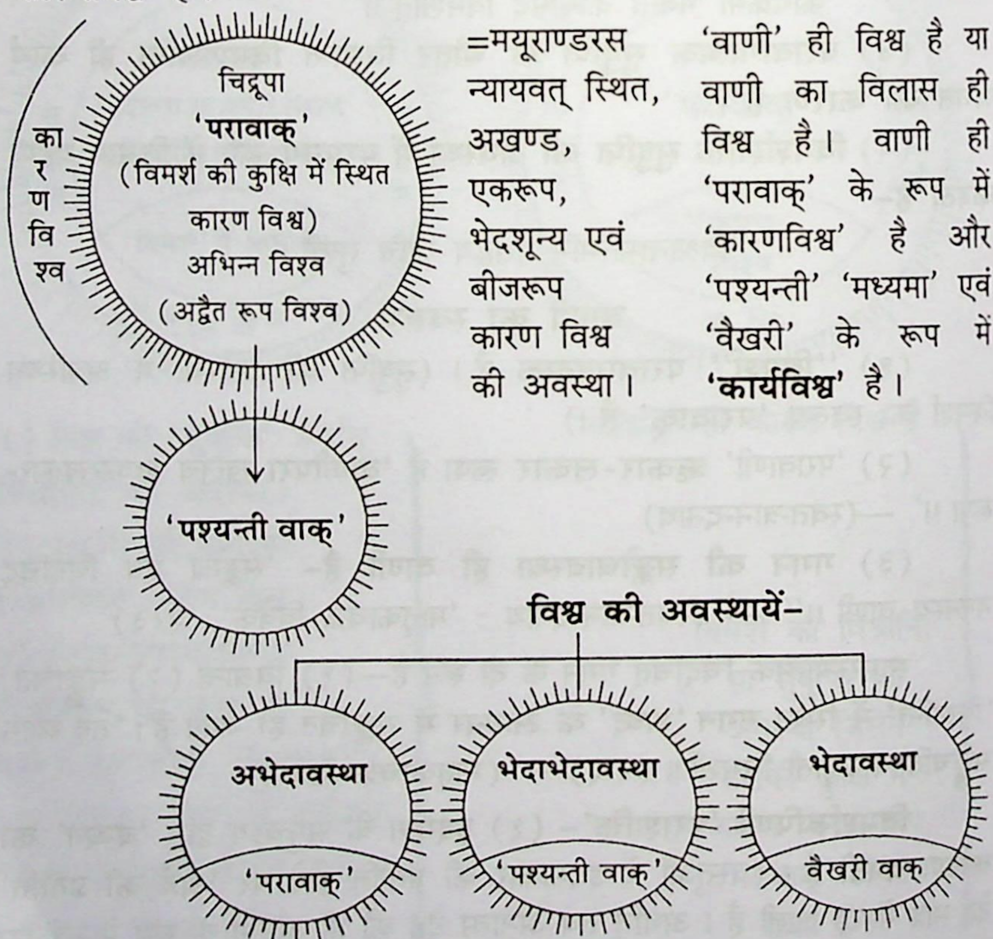
जब **'इदन्ता'** की गौण रूप में एवं **'अहन्ता'** की प्रधान रूप में प्रतीति होती है तब विमर्श शक्ति **'मोक्ष'** का कारण बनती है

(क) 'बध्नाति **चेयमिदमंश**समुच्छ्रयेण 'बन्धन'

(ख) 'जन्तून् विमोचयति चोन्नमिताऽहमंशात् 'मोक्ष'

(क) जिसके हृदय में **इदन्ता अंश का प्राधान्य** एवं **अहन्ता अंश की न्यूनता** होती है वह बन्धनग्रस्त हो जाता है।

'विश्रान्ति की अवस्था में' संलीन **'विमर्शशक्ति'** में अवस्थित **'परावाक्' 'कारणविश्व'** है।







विमर्श शक्ति

(१) सुषुप्त्यात्मक **विश्रान्ति की अवस्था में** विमर्श का स्वरूप **परावागात्मक** है।

(२) **'ऋकार'** और **'लृकार'** ही **'परा-वाक्'** है—

'वाणीपरा खलु ऋकारलृकार रूपा'

स्वतन्त्रानन्दनाथ— 'श्रीमातृकाचक्रविवेक'

'परावागात्मक विश्व' ही कारण विश्व है। (परावागात्मक विमर्श)

(३) **'विमर्श शक्ति'** कारण जगत का भी 'बीज' है— 'भाविचराचरबीजं'

पुण्यानन्द— 'कामकला विलास'।

पराशक्ति **'विमर्श'** परमव्योमसम्बन्ध है। **'परम व्योम' निर्विमर्श** है।

परावाक्' चिद्रूप परम व्योम की चैतन्य कला है। परम व्योम उपास्य है।

'विमश शक्ति' समुपासनीय है

(१) 'परावाक्' उपासनीया है किन्तु 'परावाक्' की जननी तो 'विमर्शशक्ति' है अत: वह समुपासनीया है— 'तस्मात्परैव जननी समुपासनीया'।

(मा. च. वि.—स्वतन्त्रानन्दनाथ)



चिदचित् गगन की सङ्कोचावस्था ही 'वाणी' है।

पराजननी 'परमव्योम' का जाड्यरहित रूप है–

'व्योम्नः परस्यगतजाड्यमियंहरूपम् ॥'

(**'परम व्योम'** एवं 'पराजननी विमर्श शक्ति अभिन्न हैं।)

(ख) जिसके हृदय में **अहमंश की प्रधानता** एवं **इदमंश की गौणता** होती है वह **मुक्ति** प्राप्त करता है—

'तस्मात्परैव जननी समुपासनीया,
व्योम्नः परस्यगतजाड्यमियंहरूपम्।

बध्नाति चेद**मिदमंश**समुच्छ्रयेण,

जन्तून् विमोचयति चोन्नमिताऽ**हमंशात्** ॥' (४/३)

— स्वतन्त्रानन्दनाथ— 'श्रीमातृकाचक्रविवेक'

सारांश– (१) इदमंश-प्राधान्य — 'बन्धन'।

(२) अहमंश-प्राधान्य— 'मोक्ष'।

'स्पन्दशास्त्र' का सिद्धान्त–

(१) 'सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।

बन्धयित्री स्वमार्गस्था, ज्ञाता**सिद्ध्युपपादिका** ॥ (स्पन्द कारिका ४८)

(२) **स्वरूपावरणे** चास्य शक्तयः सततोद्यता।

यतः **शब्दानुवेधेन** न विना **प्रत्ययोद्भवः** ॥ (४७) बन्धन

(३) **परामृतरसापायस्तस्य** यः **प्रत्ययोद्भवः**।

तेनास्वतन्त्रतामेति स च **तन्मात्रगोचरः** ॥ (बन्धन)

(४) **तन्मात्रोदयरूपेण** मनोहम्बुद्धिवर्तिना।

पुर्यष्टकेन संरुद्धस्तदुत्थ**प्रत्ययोद्भवम्**। (बन्धन)

(५) **भुङ्क्ते परवशो भोगः** तद्भावात् **संसरेदतः**।

संसृति प्रलयस्यास्य कारणं संप्रचक्ष्महे ॥ (बन्धन)

(६) यदा त्वेकत्वसंरूढस्तदा तस्य लयोद्भवौ।

नियच्छन् **भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो** भवेत् ॥ (मोक्ष)

—स्पन्दकारिका

(७) **शब्दराशिसमुत्थस्य** शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।

कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स **पशु** स्मृतः ॥ (बन्धन)

(८) दिदृक्षयेव सर्वार्थान् यदा व्याप्यावतिष्ठते।

तदा किं बहुनोक्तेन स्वयमेवावभोत्स्यते ॥ (मोक्ष)

—स्पन्दकारिका

(९) 'तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्ग-संहारकारिनिजसंविद्देवताचक्रेश्वरता प्राप्ति**र्भवतीति** शिवम् ॥

— 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' (शक्तिसूत्र २०)

तान्त्रिक रश्मि-विज्ञान और सृष्टि

(१) पञ्चमहाभूत और उनकी रश्मियाँ

तान्त्रिक आचार्यों ने 'क्षिति', 'जल', 'पावक', 'समीर' एवं 'गगन' में रश्मियों की विद्यमानता का साक्षात्कार किया था।

पञ्चमहाभूतों (तत्त्वों) की रश्मियाँ (३६० रश्मियाँ)

(१) 'पृथ्वी तत्त्व' की रश्मियाँ=५६

(२) 'जल तत्त्व' की रश्मियाँ=५२

(३) 'अग्नि तत्त्व' की रश्मियाँ =६२

(४) 'वायु तत्त्व' की रश्मियाँ =५४

(५) 'आकाश तत्त्व' की =७२

(६) 'मनस्तत्व' की रश्मियाँ=६४

५६+५२+६२+५४+७२+६४=३६०

महायोग=३६०

'मातृकान्यास' में छहों 'चक्रों का न्यास' 'हंस:' के साथ उक्त **किरणों से सम्बद्ध अक्षरों से किया** जाता है। ये रश्मियाँ चक्रों से सम्बद्ध तत्त्वों की रश्मियाँ हैं।

चक्र और तत्त्व

(१) 'मूलाधार चक्र' =पृथ्वी तत्त्व

(२) 'स्वाधिष्ठान चक्र' =जल तत्त्व

(३) 'मणिपूर चक्र' =अग्नि तत्त्व

(४) 'अनाहत चक्र' =वायु तत्त्व

(५) 'विशुद्धाख्य चक्र' =आकाश तत्त्व

(६) 'आज्ञाचक्र' =मनस्तत्त्व

समयाचारी तान्त्रिक आचार्य शङ्कर की दृष्टि[1]

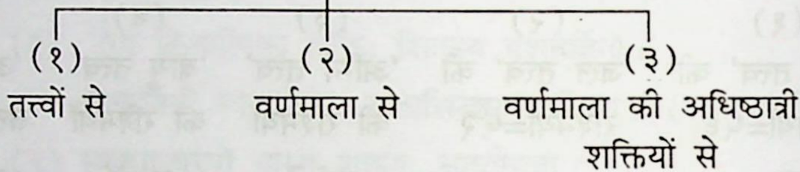
आचार्य शङ्कर ने प्रत्येक तत्त्व की जिन रश्मियों का उल्लेख किया है उनकी

---

१. सौन्दर्यलहरी (१४)।

संख्या इस प्रकार है—

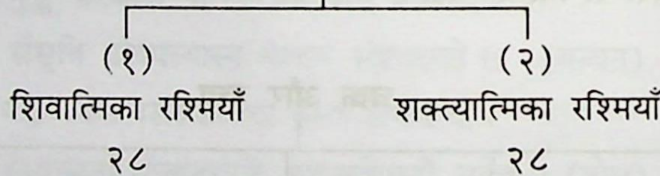
'क्षितौ षट्पञ्चाशद्विसमधिकपञ्चाशदुदके,
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतु:षष्टिरिति ये,
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पदामुजयुगम्॥'[१]



रश्मियों का तत्त्वों से सम्बन्ध

(१) 'पृथ्वी तत्त्व' की ५६ रश्मियाँ-

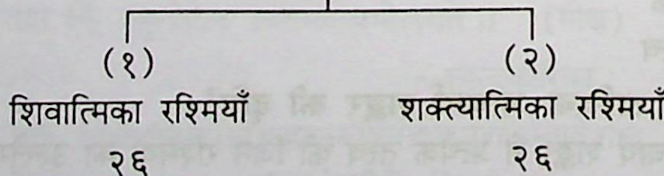
(१) ५ महाभूत (२) ५ तन्मात्रायें (३) ५ कर्मेन्द्रियाँ (४) ५ ज्ञानेन्द्रियाँ (५) ४ अन्त:करण चतुष्टय (६) कला (७) प्रकृति (८) महत्तत्त्व (९) पुरुष। योग=२८



२८+२८=५६ **रश्मियाँ**

(२) 'जल तत्त्व' की ५२ रश्मियाँ-

(१) ५ महाभूत (२) १० इन्द्रियाँ (३) १० ऐन्द्रियकार्य (४) मन =योग— २६



---

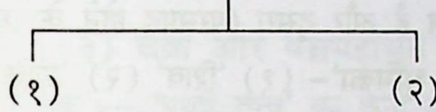
१. सौन्दर्यलहरी।

२६+२६=५२ रश्मियाँ

(३) 'अग्नि तत्त्व' की ६२ रश्मियाँ

(१) ५ महाभूत (२) ५ तन्मात्रायें (३) १० इन्द्रियाँ (४) इन्द्रियों के १० कार्य (५) मन=सभी का योग=३१।

३१ रश्मियों का विभाजन



(१) 'शिवात्मिका रश्मियाँ' (२) 'शक्त्यात्मिका रश्मियाँ'

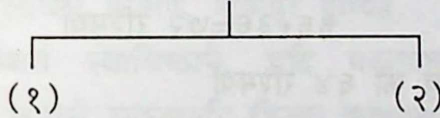
३१+३१=६२ रश्मियाँ

(४) 'वायु तत्त्व' की ५४ रश्मियाँ

(१) ५ महाभूत (२) ५ तन्मात्रायें (३) ५ कर्मेन्द्रियाँ (४) ५ ज्ञानेन्द्रियाँ (५) ४ अन्त:करण चतुष्टय (६) कला (७) प्रकृति (८) पुरुष।

=सभी रश्मियों का योग=२७

२७ रश्मियों का विभाजन



(१) 'शिवात्मिका रश्मियाँ' (२) 'शक्त्यात्मिका रश्मियाँ'

२७+२७=५४ रश्मियाँ

(५) आकाश तत्त्व की ७२ रश्मियाँ

(१) **३६ तत्त्व–** (१) 'शिवतत्त्व' (२) 'शक्ति तत्त्व' (३) 'सदाशिवतत्त्व' (४) 'ईश्वर तत्त्व' (५) 'शुद्ध विद्या तत्त्व' (६) 'माया' (७) 'कला' (८) 'विद्या' (९) 'राग' (१०) 'काल' (११) 'नियति' (१२) 'पुरुष' (१३) 'प्रकृति' (१४) 'बुद्धि' (१५) 'अहङ्कार' (१६) 'मन' (१७) 'श्रोत्र' (१८) 'त्वक्' (१९) 'चक्षु' (२०) 'जिह्वा' (२१) 'घ्राण' (२२) 'वाक्' (२३) 'पाणि' (२४) 'पाद' (२५) 'पायु' (२६) 'उपस्थ' (२७) 'शब्द' (२८) 'स्पर्श' (२९) 'रूप' (३०) 'रस' (३१) 'गन्ध' (३२) 'आकाश' (३३) 'वायु' (३४) 'वह्नि' (३५) 'सलिल' (३६) 'पृथ्वी'।

५- (क) 'शिव तत्त्व'-'शक्ति तत्त्व'
(ख) 'सदाशिव', 'ईश्वर', 'शुद्धविद्या' } ५ शुद्धाध्वा

३१. (ग) **'माया'**– (१) 'पञ्चकञ्चुक' (२) 'पुरुष-प्रकृति' (३) 'महत्तत्व (४) 'अहङ्कार (५) ११ इन्द्रियाँ (६) पञ्चतन्मात्रायें (७) पञ्चमहाभूत ॥

=५+३१=३६ तत्त्व

'परमशिव' तत्त्वातीत होने के कारण ३६ तत्त्वों में नहीं आते यथा 'षट्-चक्रों' में 'सहस्रार' (सहस्रदल कमल) की गणना नहीं है।

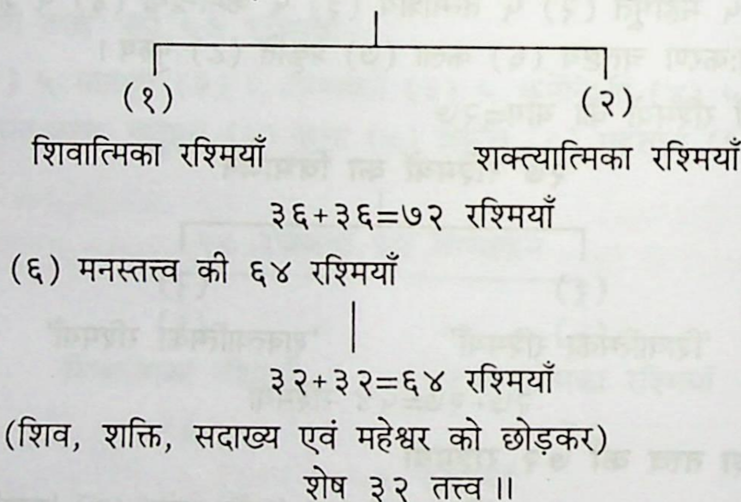
एक **तत्त्वातीत** है और दूसरा (परमपद होने के कारण) **चक्रातीत** है।

(१) **'अभेद-भूमिका'**– (१) 'शिव' (२) 'शक्ति' (२)

(२) **'भेदाभेद-भूमिका'**– (१) 'सदाशिव' (२) 'ईश्वर' (३) 'शुद्धविद्या' (३) 'रेखांकन'

(३) **'भेद-भूमिका'**– मायादिक्षित्यन्त ३१ तत्त्व ॥

३६ किरणों का विभाजन



(२) रश्मियों की अधिष्ठात्री शक्तियाँ

(१) **पृथ्वी तत्त्व–** उड्डीश्वर-उड्डीश्वरी, जलेश्वर-जलेश्वरी, पूर्णेश्वर-पूर्णेश्वरी, कामेश्वर-कामेश्वरी आदि २७+२७ ॥

(२) **जल तत्त्व–** सद्योजात-माया, वामदेव-श्री, अघोर-पद्मा, तत्पुरुष-अम्बिका, अनन्त-निवृत्ति आदि २६+२६ ॥

(३) **अग्नि तत्त्व–** परापर-चण्डेश्वरी, परम-चतुष्मती, तत्पर-गुह्यकाली, अपर-संवर्ता, चिदानन्द-नीलकुब्जा आदि ३१+३१ ॥

(४) **वायु तत्त्व–** खगेश-भद्रा, कूर्म-आधारा, मेष-कोषा, मौन-मल्लिका, ज्ञान-विमला आदि २७+२७ ॥

(५) **आकाश तत्त्व–** हृदय-कौलिनी, घर-कान्ता, भोग-विश्वा, भय-योगिनी, मह-ब्रह्मतारा आदि ३६+३६ ॥

(६) **मनस्तत्व–** पर-परा, भव-भवपरा, चित् चित्परा, महामाया-महामाया परा, इच्छा-इच्छापरा आदि ३२+३२ ॥

(१) **पाँचों तत्त्व** मूलाधार से विशुद्धचक्र तक के सारे चक्रों से सम्बद्ध हैं।

(३) चक्र और पञ्चमहाभूत

(क) 'मूलाधार चक्र'— 'पृथ्वी तत्त्व' का केन्द्र है ॥

(ख) 'स्वाधिष्ठान चक्र'— 'जल तत्त्व' का केन्द्र है ॥

(ग) 'मणिपूर चक्र'— 'अग्नि तत्त्व' का केन्द्र है ॥

(घ) 'अनाहत चक्र'— 'वायु तत्त्व' का केन्द्र है ॥

(ङ) 'विशुद्ध चक्र'— 'आकाश तत्त्व' का केन्द्र है ॥

आचार्य शङ्कर की दृष्टि– (चक्र-तत्त्व-सम्बन्ध)

आचार्य शङ्कर **चक्रों से तत्त्वों का सम्बन्ध** इस प्रकार स्थापित करते हैं—

''महीं मूलाधारे कमपि, मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने, हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ।।''[१]

प्रमाणशास्त्र एवं सृष्टि

ज्ञानशास्त्र एवं प्रमाणशास्त्र– यदि 'प्रमा' 'प्रमेय' 'अप्रमा' 'प्रमाता' आदि पर विचार किया जाय तो भी तान्त्रिकों की त्रिक दृष्टि भिन्न दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार तान्त्रिक शैवों का ज्ञानशास्त्र (Epistemolgy) भी पृथक् है। **''माता'' ''प्रमेय''** एवं **''प्रमाता''** का स्वरूप क्या है?[२]

उत्पलदेव कहते हैं—

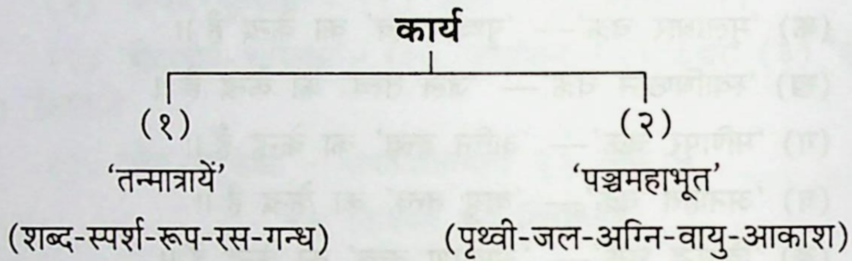
''यश्च **प्रमाता** शून्यादिः **प्रमेये** व्यतिरेकिणि ।
माता स **मेयः** सन्कालादिकपञ्चकवेष्टितः ॥''[३]

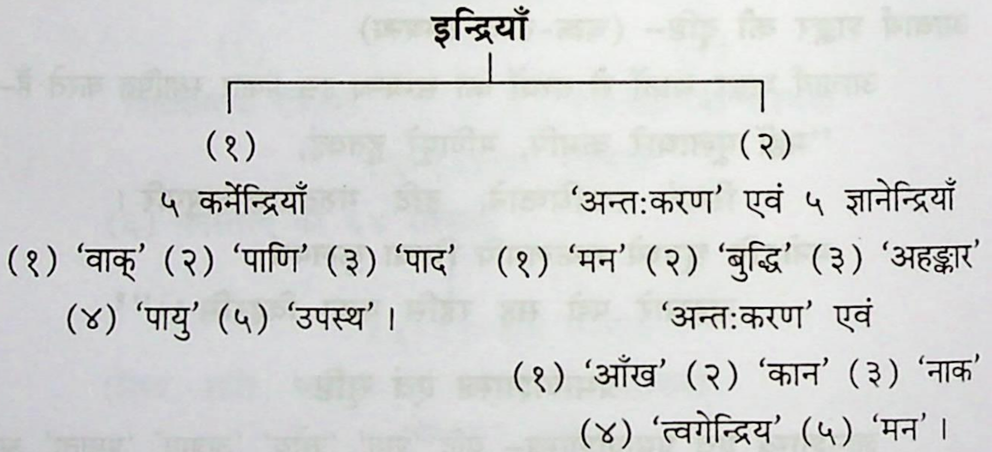
---

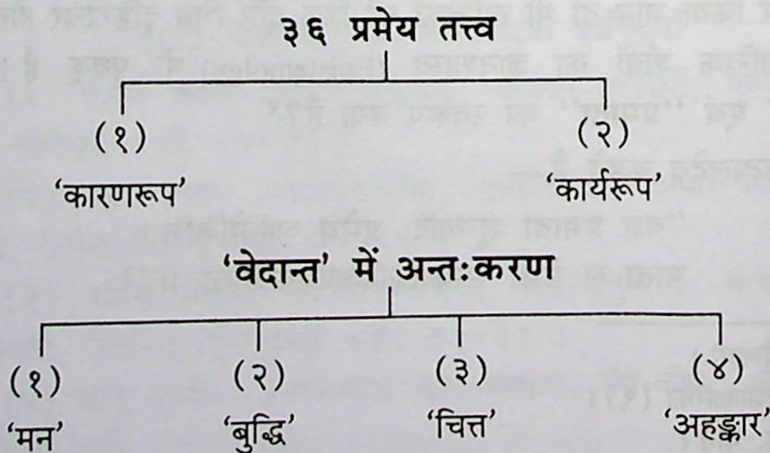
१. सौन्दर्यलहरी।
२. प्रत्यभिज्ञाकारिका (९)।
३. प्र. का. वृत्ति।

'मेय' (प्रमेय) त्रयोविंशतिसंख्याक हैं और ये ही विश्व के मूल कारण भी हैं—

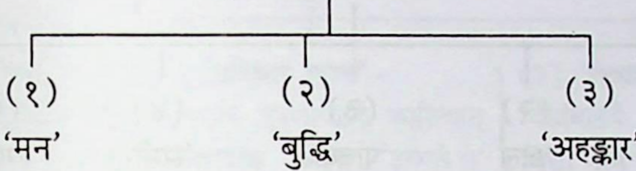
त्रयोविंशतिधा**मेयं**, यत्कार्यकरणात्मकम्।
तस्याविभागरूप्येकं, प्रधानं मूलकारणम् ॥१०॥
त्रयोविधाचाथ बाह्यान्तःकरणावली।
कार्यवर्गश्च दशधा स्थूलसूक्ष्मत्वभेदतः ॥११॥







''त्रिकूदर्शन में अन्तःकरण

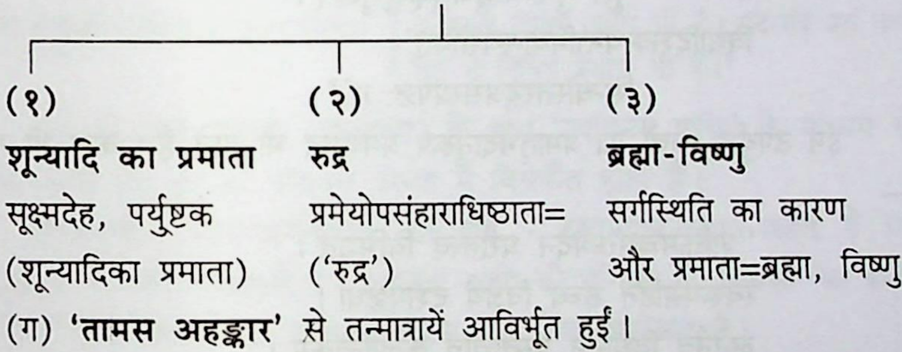


'मनोबुद्ध्यहङ्कारा इति त्रिधान्तः करणमिति ॥'

— प्र. कारिका

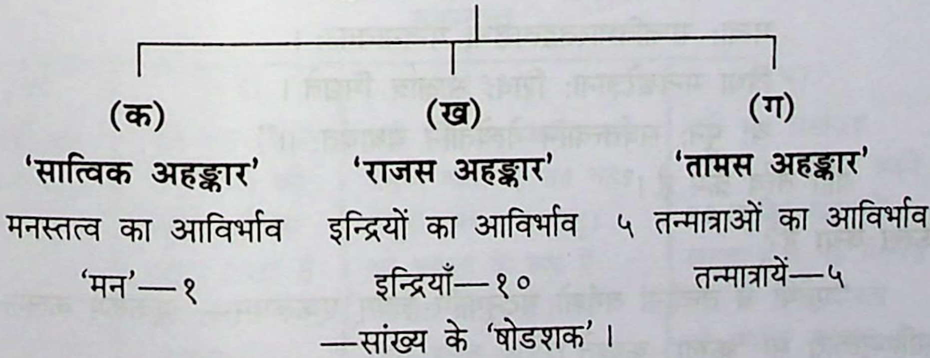
''त्रयोविंशतिभेदस्य कार्यकरणात्मनः 'प्रमेयस्य'
मूलभूतैकाविभागदशा प्रधानाख्या ॥'' इन्हें 'प्रधान' कहते हैं।[१]

प्रमाता[२]



(ग) **'तामस अहङ्कार'** से तन्मात्रायें आविर्भूत हुईं।

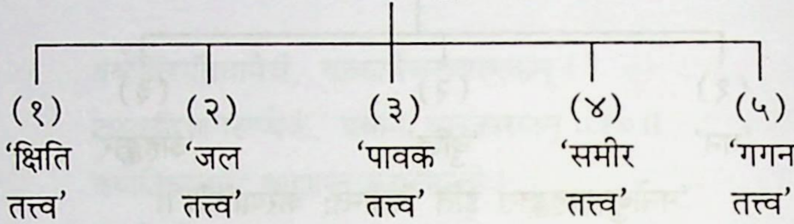
अहङ्कार : (१६ सन्तानें)



—सांख्य के 'षोडशक'।

---

१. प्र. का. वृत्ति।
२. तत्रैतन्मातृतामात्रस्थितौ रुद्रोऽधिदैवतम्।
भिन्नप्रमेयप्रसरे ब्रह्मविष्णू व्यवस्थितौ ॥ (१२/३)



सारांश

"एकस्यैव आदिदेवस्य स्वातन्त्र्यमहिम्ना संसारे संसरतः परिमितप्रमातृताम् अवलम्बमानस्य तत्त्वप्रसरः। उक्तञ्च—

"भूतानि तन्मात्रगणेन्द्रियाणि.
मूलं पुमान्कञ्चुकयुक्सुशुद्धम्।
विद्यादिशक्त्यन्तमियान्स्वसंवित्'
सिन्धोस्तरङ्गप्रसरप्रपञ्चः॥'[१]

इन उपर्युक्त तत्त्वों का प्रमातृभेदानुरूप प्रमेयभेद भी होते हैं। कहा भी गया है—

"शक्तिमच्छक्तिभेदेन धरातत्त्वं विभिद्यते।
स्वरूपसहितं तच्च विज्ञेयं दशपञ्चधा।
अनेनैव विधानेन पुंस्तत्वात्तु कलान्तिकम्।
त्रयोदशविधं ज्ञेयं रुद्रवत्**प्रलयाकलः**।
तद्वन्मायापि विज्ञेया नवधा ज्ञानकेवलः।
मन्त्राः सप्तविधास्तद्वत्पञ्चधा मन्त्रनायकाः।
त्रिधा मन्त्रेश्वरेज्ञानाः शिवः साक्षान्न भिद्यते।
यः पुनः सर्वतत्त्वानि वेत्येतानि यथार्थतः॥"

यही तत्त्व क्रम है।[२]

कला क्या है?

"एतेषां च तत्त्वानां वर्गशो यदनुगामि रूपम् एकरूपम्— एकरूप कलना-सहिष्णुत्वात् सा **'कला'** कथ्यते।

कला के ५ भेद हैं।

---

१. जन्ममरणविचारः।

२. जन्ममरणविचारः।

कलाओं का स्वरूप

(१) **'निवृत्ति कला'**– 'निवर्तन्ते यतस्तत्त्ववर्गा सा **निवृत्तिर्नाम** कला ।।' (सा च पृथिव्यामेव व्यवस्थिता) धरास्थिता ।

(२) **'प्रतिष्ठा कला'**– 'कारणत्वे पूरणाप्याय कारित्वात् **प्रतिष्ठानाम कला** उच्यते ।।' (सा च जलादिमूलान्तं व्याप्य व्यवस्थिता ।)

(३) **'विद्या-कला'**– 'वेद्यविलये संविदाधिक्यात् **विद्या नाम** 'कला' । (सा च पुमादिमायान्तं अध्वानम् अध्यास्ते ।)

(४) **'शान्ता कला'**– 'कञ्चुकतरङ्गो-पशमात् शान्ता नाम कला उच्यते ।' (सा च शुद्धविद्यादिशक्त्यन्ते स्थिता इति ।) एतदेव अण्डचतुष्टयम्-५ **पार्थिव-प्राकृत-मायीय शाक्त**लक्षणम्।।

(५) **शान्त्यतीताकला**– "सर्वातीतत्वात् शिवतत्त्वे शान्त्यतीता ।।" इन्हीं कलाओं में स्व सम्बद्ध एवं तत्त्वानुरूप भूत एवं भुवन भी स्थित हैं । स्थूल, सूक्ष्म, एवं पर के भेद से भुवन, तत्त्व एवं कलारूप त्रिविध प्रमेय भी है । पद-मंत्र एवं वर्ण भेद से त्रिविध प्रमाण भी है ।[१]

एक ही **पूर्ण प्रमाता** (परमात्मा) के द्वारा 'स्वातन्त्र्य शक्ति' के माध्यम से संसरण करते हुए उसकी षड्विध अध्वा में विश्रान्ति होती है ।

मनस्तत्त्व– स्वतन्त्रानन्दनाथ की दृष्टि - स्वतन्त्रानन्दनाथ कहते हैं कि अन्त:करण में **'मन'** सर्वोपरि है । अहङ्कार आदि की भूमिका में **'विमर्श'** का प्रथम रूप **'मन'** है । विमर्श का समस्त विलास एवं वैभव **मनोमय** है ।

जब **मेय-मान-मातृरूप त्रिपुरी** में मन विमर्श की जाड्यभूमिका ग्रहण करता है तब 'अहङ्कार' कहलाने लगता है ।

मनस्तत्त्व

(१) **विमर्श का प्रथम रूप** 'मन' है ।

(२) जब मन त्रिपुरी में **विमर्श की जाड्यभूमिका** ग्रहण करता है तब वह **'अहङ्कार'** कहलाने लगता है ।

(३) वही मन जब **अजड रूप ग्रहण** करता है तब वह त्रिपुरी (मेय-मान-मातृ) को प्रमाता के रूप में भासित करता है । वह चित् प्रमातृ व्याप्ति दिखाता है । वह **प्रमाता के** रूप में व्याप्ति लक्षित करता है ।

(४) वही **मन** जडाजड मध्यम पद ग्रहण करने पर **'बुद्धि'** कहलाने लगता है । यह मिश्रित रूप से प्रमेय-प्रमाता की व्याप्ति अवस्था है । अत: **'बुद्धि'** भी मन है ।

---

१. मातृकाचक्रविवेक ।

स्वतन्त्रानन्दनाथ की दृष्टि

स्वतन्त्रानन्दनाथ उपर्युक्त दृष्टि को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—

"मेयादिका सततयुक्त्रिपुरी मनस्तां,
मेयादि भासयति मूढमङ्क्रियात्म।
मात्रादि भासयति चाथ निजस्वभावाद्,
बुद्धिश्च मध्यमपदे मन एव बोध्यम्॥"[१] (९/४)

........की दृष्टि

कहते हैं कि विमर्श की प्रथम परिणति 'मन' के रूप में नहीं **'प्राण'** के रूप में हुई थी—

"संवित् प्राक् प्राणे परिणता।"

स्वतन्त्रानन्दनाथ 'मन' को सर्वोपरि सिद्ध करते हुए कहते हैं—

"एतच्च मातृपदमिन्द्रियसंसृतञ्च,
तत्संश्रयश्च मन एव तदिन्द्रियं स्यात्।
तद्ग्रामणीन्द्रिय कुलस्य विमर्शशक्ति-
श्चिच्चैत्यमिश्रमखिलं खलु तद्विलासः॥"[२]

वस्तुतः विश्व का आभ्यन्तर एवं बाह्यवर्ती समस्त प्रपञ्च मनोमय ही तो है।

(१) जाग्रतावस्था में इन्द्रियाँ ही प्रमाता हैं और मन भी एक इन्द्रिय ही है। प्रमाता का **'करण' मन एवं बुद्धि के विलास का आश्रय** इन्द्रियाँ हैं।

(२) बाह्य एवं अन्तःकरण रूप इन्द्रियों के समूह का प्रवर्तक भी मन ही है।

(३) विश्व की आदि जननी 'विमर्श शक्ति' द्वारा निष्पादित उन्मेष-निमेष का कारण भी मन ही है।

(४) 'प्रमाण' 'प्रमेय' तथा 'प्रमाता' रूप विश्व का कारण मन ही है।

(५) मन के द्वारा ही इन्द्रियसमूह संसृष्ट जाग्रतावस्था प्रकाशित होती है।

******

---

१. श्रीमातृकाचक्रविवेक, स्वतन्त्रानन्द।
२. श्रीमातृकाचक्रविवेक (११/५)

चतुर्थ खण्ड

******

आनन्दवाद

औपनिषदिक दर्शन तो आनन्दवादी है ही किन्तु तन्त्रदर्शन भी आनन्दवादी है। जब **आत्मा का धर्म ही आनन्द** है और **सारा विश्व आत्मा** से उत्पन्न भी हुआ है— तब 'आनन्दवाद' का सिद्धान्त प्रतिष्ठित क्यों न हो—

"आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं कोप्यर्थयते।
कस्य वा भवति पिपासा गङ्गास्त्रोतसि निमग्नस्य॥"[१]

तब तो जहाँ-जहाँ भी आत्मा एवं विश्व है वहाँ-वहाँ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। उपनिषद् में कहा गया है कि— "आत्मानन्दमयः॥"[२]

परमात्मा के सारे अङ्ग आनन्दमय हैं–

"तस्य **प्रियमेव** शिरः। **मोदो** दक्षिणः पक्षः। **प्रमोदः** उत्तरपक्षः। **आनन्द** आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा॥"[३]

आनन्दमय ब्रह्म को जानने पर कोई भय शेष नहीं रह जाता–

"आनन्दं ब्राह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति॥"

तै. के षष्ठानुवाक में **'भार्गवी-वारुणी विद्या'** पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि **आनन्द ही ब्रह्म है और उसी से प्रपञ्च की सृष्टि हुई है–**

"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति, सैषा भार्गवीवारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता॥"[४]

महेश्वरानन्द की दृष्टि– तन्त्राचार्य **महेश्वरानन्द** कहते हैं कि **'आनन्द'** तो

---

१. महार्थमञ्जरी (३)।
२. तै. उप. (२/५)।
३. तै. उप. (२/५)।
४. तै. उप. (३/६)।

विश्व का इतना बड़ा सत्य एवं तत्त्व है कि उससे बड़ा सत्य एवं तत्त्व कोई है ही नहीं; क्योंकि— **जगत आत्मा से उत्पन्न हुआ है अतः जगत के प्रत्येक पदार्थ में आत्मा का सञ्चार** है और चूँकि **'आत्मा 'आनन्दमय'** ही नहीं प्रत्युत् **'आनन्दस्वरूप' है** अत: **विश्व के प्रत्येक पदार्थ** में, प्रत्येक तत्त्व में, प्रत्येक अणु एवं प्रत्येक परमाणु में **आनन्द प्रवाहित है**। वे कहते हैं—

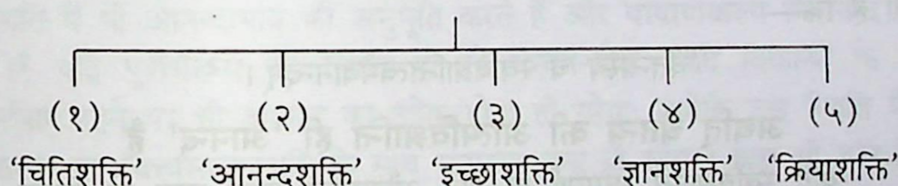
'नन्वात्मन: **प्रियार्थं** सर्वस्य प्रियत्वं भणति श्रुतिः।

तस्मादानन्दस्वभाव आत्मा मुक्तोऽभुक्तो वा॥'[१]

'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' एवं **'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'** का भी यही सिद्धान्त है।

महेश्वरानन्द आनन्द को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि विषय-सुख आनन्द नहीं है। 'आनन्द' तो लोकोत्तर वस्तु है। ठीक भी है कि परमात्मा की ५ शक्तियों में एक शक्ति आनन्द भी है।

परमात्मा की शक्तियाँ



आनन्द क्या है? 'आसमन्तात् नन्दयति इति आनन्दः॥' जो चारों ओर से माधुर्य, प्रमोद, सुखातिशय एवं मनःप्रसाद का महार्णव उत्पन्न कर दे वही आनन्द है।

आनन्द की परिभाषा– चूँकि 'आनन्द' **परमात्मा की द्वितीय शक्ति** है (वैष्णव दर्शन में इसे **'आह्लादिनी शक्ति'** कहा गया है) अत: **'पूर्णानन्द' की शक्ति** 'आनन्द' का भी ऐसा ही पूर्णस्वरूप होना चाहिये।

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं—

'पूर्णाहन्तानुसन्धानात्मकस्वात्मविश्रान्ति सतत्त्वो य **'आनन्दः'** स एवा-साधारणं रूपम्॥

---

१. महार्थमञ्जरी (गाथा ५५)

''चैतन्य की स्वविश्रान्ति ही आनन्द है।''

''चैतन्यस्य च स्वविश्रान्तत्वमे**वानन्द** इत्युक्तम् ॥''

महेश्वरानन्द कहते हैं कि— पूर्ण होने के कारण अहं स्वरूपात्मक अन्तर्ज्ञान ही 'आनन्द' है— 'पूर्णत्वादहमित्यन्त**र्ज्ञानमानन्द उच्यते** ॥''

इस स्थिति में तो 'जो पूर्णाहन्तानुसन्धानात्मकस्वात्मविश्रान्तिसतत्व' है वही **आनन्द** है। महेश्वरानन्द कहते हैं—

''इति स्थित्या पूर्णाहन्ताऽनुसन्धानात्मकस्वात्मविश्रान्तिसतत्त्वो य **'आनन्दः'** स एवासाधारणं रूपम्।''[१]

प्रश्न– यदि आत्मा का स्वभाव ही आनन्द है तो फिर अपत्य और कलत्रादिक या निवृत्तिक्षेत्र में शम-दम आदि भी आनन्द के साधन कहे जाते हैं फिर आत्मा को ही आनन्द का स्रोत क्यों स्वीकार किया जाय ?

महेश्वरानन्द कहते हैं कि यदि आत्मा चैतन्यशून्य होती तो भले ही हजारों अपत्य-कलत्र होते किन्तु वे आकर्षण या आनन्द के केन्द्र न बनते अतः सिद्ध होता है कि—

''चैतन्यस्य च स्वविश्रान्तित्वमेवानन्दम्।''[२]

अर्थात् चैतन्य की आत्मविश्रान्ति ही 'आनन्द' है

यदि स्वविश्रान्ति परामर्श के प्रति औदासीन्य रखा जाय तो निश्चय ही दुःखानुभूति होगी।

आनन्दवाद के दो पक्ष

(१)	(२)
''चैतन्यस्य च स्वविश्रान्तमेवानन्द इत्युक्तम् ॥''	यदा पुनरस्य स्वविश्रान्तिपरामर्श प्रत्यौदासीन्यम् तदानीं दाहच्छेदादि दुःखानुभूतिव्यपदेशः ॥[३]

एक बात और है और वह यह है कि **यदि परामर्श किया ही न जाय**

१. महेश्वरानन्द (परिमल)।

२. परिमल (गाथा ५५)।

३. परिमल (गाथा ५५)।

तब भी **स्वविश्रान्त्यभाव नहीं रहेगा** और दुःखों की अनुभूति नहीं होगी। यदि यह कहा जाय कि यदि आत्मा का धर्म या स्वभाव ही आनन्द है फिर क्रोध होने पर प्राणी शस्त्रप्रहारादि क्लेशानुभूति की ओर उन्मुख क्यों होता है ? तो इसका उत्तर यह है कि प्राणी का अपने क्षेत्र-कलत्र आदि के प्रति जो अनुराग होता है उसके वशीभूत होकर ही शस्त्र प्रहारादिदुःखात्मक कार्यों की ओर उन्मुख होता है अतः वहाँ भी किसी **आनन्दाध्यवसाय के लिए ही प्रवृत्ति है दुःख के लिए नहीं।**[१] **उत्पलदेवाचार्य** ने जो स्तोत्रावली में यह कहा है कि—

'दुःखान्यपि सुखायन्ते' यह कथन भी उक्त तथ्य की पुष्टि करता है। आत्मा में जो काम-इच्छा-औत्सुक्य स्पृहा आदि भाव हैं वे स्वभावतः स्थित हैं। उन आत्मस्थ भावों के उन्मीलनार्थ ही अपत्य-कलत्र आदि वेद्य प्रपञ्च प्रीतिकारक बनते हैं और पुत्रकलात्रादि अपने कारण नहीं प्रत्युत् पति के आनन्दानुभूति की आकांक्षा की पूर्ति का केन्द्र होने के कारण प्रिय बनते हैं। अतः मुख्य तत्त्व है आनन्द और उसकी आकांक्षा। ये दोनों तत्त्व तो आत्मस्थ ही हैं न कि बाहर (पुत्र कलत्रादि में)। **'प्रिय'** शब्द आत्मस्वभावभूत प्रीति ही है और वही बाह्य करणों से अनुभूत होती है अतः आनन्द बाहर नहीं आत्मा में ही है।[२] **नैयायिक** आदि मुक्ति की स्थिति में भी आनन्दाभाव की अनुभूति करते हैं और **पाषाणकल्प निरानन्द रहते** हैं।[३] यदि पूर्णचैतन्य की स्थिति हो तो बन्धन-मोक्ष आदि विकल्पों के क्षोभ वर्तमान रहने पर भी आनन्द का उद्रेक होता ही रहेगा; क्योंकि उस स्थिति में भी आनन्द का चित्त्वसत्वानुभूति के साथ सामरस्य बना ही रहेगा। कहा भी गया है—

'यत्र चित्सत्तयोर्व्याप्तिस्तत्रानन्दो विराजते।
यत्रानन्दो भवेद्भावे तत्र चित्सत्तयोः स्थितिः।।'[४]

इन कारणों से सिद्ध होता है कि—

'णं अप्पणो पिअत्थं सव्वस्सपिअत्तणं भणाइ सुई।
ता आणन्दसहावो आपा मुक्तो अमुक्तो वा।।''[५]

आनन्दोन्मेष के साधन

वैसे आनन्दोन्मेष के अनेक साधन हैं किन्तु आचार्य महेश्वरानन्द ने उनमें

१. परिमल (गाथा ५५)।
२. परिमल (गाथा ५५)।
३. परिमल (गाथा ५५)।
४. महेश्वरानन्द : परिमल (गाथा ५५)।
५. महार्थमञ्जरी (५५)।

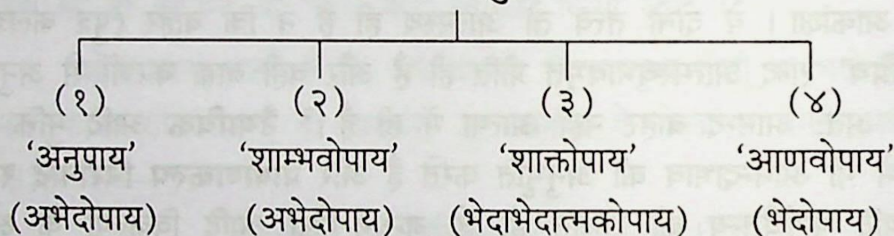
से अन्यतम साधन **आत्मविश्रान्ति और पूर्णाहन्तास्वरूप अहंपरामर्श** को स्वीकार किया है; क्योकि आनन्द को खोजने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नहीं है वह तो अपनी आत्मा में स्वभावतः विद्यमान है—

"तस्मादानन्दस्वभाव आत्मा"— अतः आनन्दाप्ति के लिए केवल उसमें विश्रान्ति की आवश्यकता है। जिस 'अहं' को आनन्द भी अनुसन्धित्सा है वह 'अहं' अपनी 'विश्वाहन्ता' की स्थिति में स्वयं आनन्दकन्द है।

इतना होने पर भी महेश्वरानन्द अन्य साधन भी बताते हुए कहते हैं कि—

'यदि निजहृदयोल्लासं निर्णेतुं नित्यनिष्कलमिच्छा।
मध्यतुटिस्त्रुटित व्यास्त्रंयतोः सोमसूर्ययोः॥'[१]

शैवशाक्त दर्शन में स्वीकृत 'उपायचतुष्टय' भी इसके साधन हैं।



या **'आनन्दोपाय' 'इच्छोपाय' 'ज्ञानोपाय'** एवं **'क्रियोपाय'** इन **उपायों** का स्वरूप क्या है?

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि

'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि—

(१) समस्त विश्व को स्वस्वरूप समझो।

(२) समस्त विश्व एवं अपने शरीर को आनन्दमय समझो।

(३) अमृतात्मक, स्वाभाविक आनन्दमयावस्था में प्रविष्ट हो जाओ।

"सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्।
युगपत् स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत्॥"

विज्ञानभैरवकार ने कुहन-प्रयोग से उत्पन्न आनन्द को भी स्वीकार किया है और उससे महानन्द के उन्मेष की बात कही है—

---

१. महार्थमञ्जरी (गाथा ५६)।

'कुहनेन प्रयोगेण सद्य एव मृगेक्षणे।
समुदेति महानन्दो येन तत्त्वं प्रकाशते॥''

परमसुख प्राप्ति के साधन-

विज्ञानभैरवकार ने **परमसुख के उदय** की प्रक्रिया इस प्रकार प्रस्तुत की है—

''सर्वस्त्रोतोनिबन्धेन प्राणशक्त्योर्ध्वया शनैः।
पिपीलस्पर्शवेलायां प्रथते परमं सुखम्॥''[१]

(१) समस्त स्त्रोतों को बन्द करके

(२) ऊर्ध्वगमन करते हुए प्राण के द्वारा

(३) पिपीलिका-स्पर्श की अनुभूति के समय परम सुख की अनुभूति होती है।

वायु के **'अधः सहस्त्रार पद्म'** में प्रविष्ट होने पर शक्ति के सङ्कोचस्थान **'वह्नि'** एवं वायु के ऊर्ध्ववर्ती सहस्त्रार की ओर (सूक्ष्म प्राणशक्ति के स्वरूप में) यात्रा करता हुआ प्राण जो कि अधोमुख 'सहस्त्रार पद्म' में प्रविष्ट होकर विश्राम करने की अवस्था में **'विष'** कहलाता है—

इन दोनों (**'वह्नि'** एवं **'विष'**) के मध्य में चित्त को संस्थापित करने का अभ्यास करना चाहिये।

''वह्नेर्विषस्य मध्ये तु **सुखमयं क्षिपेत्**॥''[२]

सम्भोगात्मक आनन्द द्वारा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का विधान

विज्ञानभैरवकार ने (धारणा ४५, श्लोक ६८) में आनन्दाप्ति के लिए वैषयिक भौतिक सुख को भी एक साधन माना है।

'विज्ञानभैरव' में विषयानन्द को ब्रह्मानन्द का स्मारक सूत्र बनाने का भी विधान करते हुए कहा है—

''शक्तिसङ्गमसंक्षुब्धशक्त्यावेशावसानिकम्।
यत्सुखं ब्रह्मतत्त्वस्य तत्सुखं स्वाक्यमुच्यते'' ॥६८॥

''लेहनामन्थना कोटैः स्त्रीसुखस्य भरात् स्मृतेः।
शक्त्यभावेऽपि देवेशि! भवेदानन्दसंप्लवः'' ॥६९॥

---

१. विज्ञानभैरव (६६)।
२. विज्ञानभैरव (६७)।

''जग्धिपानकृतोल्लासरसानन्दविजृंभणात्।
भावयेद् भरितावस्थां महानन्दस्ततो भवेत्'' ॥७१॥
''गीतादिविषयास्वादासमसौख्यैकतात्मनः।
योगिनस्तन्मयत्वेन मनोरूढेस्तदात्मता''॥७२॥
— विज्ञान भैरव

वीणावादनतत्त्वज्ञः स्वरशास्त्रविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।
— महेश्वरानन्द-'परिमल' (३/११५)

यत्रयत्र मनस्तुष्टिर्मनस्तत्रैव धारयेत्।
तत्र तत्र परानन्दस्वरूपं संप्रवर्तते॥
— विज्ञानभैरव (७३)

सर्वत्र स्वस्वरूपाभिव्यक्तिवाद (सर्वत्र स्वव्याप्तिवाद)

'विज्ञानभैरव' आदि ग्रन्थों में कहा गया है कि गोचर विश्व में सर्वत्र अपनी ही अभिव्यक्ति हो रही है अर्थात् **''सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूँ–** मेरे अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता ही नहीं है— **मेरा अपना स्वरूप ही सर्वत्र स्पन्दित हो रहा है।''**

सर्वशिववाद

स्वच्छन्दतन्त्रकार कहते हैं—

''यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत्।
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिवमयं यतः॥'' (४/३१३)

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि

आचार्य सोमानन्दपाद भी सर्वशिवाद का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—

(१) इह तद्वन्न विज्ञेयं **तस्मात्सर्वं स्थितः शिवः**। (३/९९)
(२) एक एव स्थितः शक्तः **शिव एव तथा तथा**। (४/५)
(३) यत्सत्तत्परमार्थो हि **परमार्थस्ततः शिवः**। (४/६)
(४) अत एव **शिवः सर्वमिति** योगोऽथ चेतसि॥ (८४)

शिवतासमावेशवाद

साधक का लक्ष्य शिवत्व समावेश है—

(१) **शिवोऽस्मि** साधनाविष्टः शिवोऽहं याजकोऽप्यहम्॥
(२) सुखे दुःखे विमोहे च स्थितोऽहं **परमः शिवः**।

(३) **शिवोऽस्मि** साधनाविष्टः शिवोऽहं याजकोऽप्यहम् ॥

(४) शिवः कर्ता शिवः कर्म शिवोऽस्मि कारणात्मकः ॥

—शिवदृष्टि

'शान्तब्रह्मवाद' का प्रत्याख्यान

ज्ञानमार्गी आचार्य शङ्कर के 'शान्त ब्रह्मवाद' को अद्वैतवादी तान्त्रिक स्वीकार नहीं करते। **उत्पलदेवाचार्य** 'अजडप्रमातृसिद्धि' की व्याख्या के अवसर पर कहते हैं कि— **''एतेन शान्त ब्रह्मवाद निरासः कटाक्षितः ।।''**[१]

वे कहते हैं कि विमर्शक्रिया परमात्मा का अभिन्न अङ्ग है; क्योंकि उसके बिना तो स्वयं 'प्रकाश' (शिव) भी निर्विमर्श होने पर स्फटिक आदि वस्तुओं के समान जड़ हो जायेंगे। स्फटिक में प्रकाश तो है किन्तु वह निर्विमर्श है। परमात्मा भी प्रकाशस्वरूप है किन्तु विमर्शात्मक है। यही दोनों में भेद है। अतः यदि यह विमर्शन क्रिया परमात्मा में न मानी गई तो वेदान्तियों के निष्क्रिय ब्रह्म के समान शिव भी हो जाएगा जो कि त्रिक दर्शन को मान्य नहीं है। **उत्पलदेवाचार्य** वही बात अपने शब्दों में इस प्रकार कहते हैं—

''संविदाप्यपरामर्शरूपा चेत्तदासावपि।
अभावेन जडेनाथ तुल्यैव प्राग्वदात्मनि'' ॥९॥

अर्थात्— ''निर्विमर्शस्य प्रकाशस्यापि स्फटिकादिवद्विश्वावभासनेऽपि अस्वतन्त्रत्वात्स्वात्मन्यसता जडेन च भावेन सादृश्यमेव स्यात् परस्परवृत्तपरिज्ञानेऽनेल मूकप्रायत्वात् एतेन **शान्तब्रह्मवादनिरासः** कटाक्षितः।''

निर्विमर्श संवित् तो स्वयं सत्ताहीन हो जायेगा फिर वह दूसरों को व्यवस्थापित क्या करेगा ? 'गगन कुसुम' क्या सौरभ-प्रसार कर सकता है ?

''निर्विमर्शा संवित्स्वतोऽलब्धसत्ताका परं व्यवस्थापयितुं नालं गगनकुसुममिव सौरभादिजनने ॥''[२]

---

१. अजडप्रमातृसिद्धि (९)।
२. तत्रैव (१०)।

'ईश्वराद्वयवाद' (त्रिकदर्शन)	'शान्तब्रह्मवाद' (शाङ्कर अद्वैत-दर्शन)
(१) ब्रह्म सक्रिय है, पञ्चकृत्यकारी है। (२) विश्व सत्य है और विमर्शरूप या शिवरूप है। (३) शक्ति सत्य चिदात्मक है। वह शैवी शक्ति है। (४) सकल (जीव) भी (जीवदशा में भी) पञ्चकृत्यकारी है— "तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति ॥" (शक्तिसूत्र १०)	(१) ब्रह्म निष्क्रिय है। (२) विश्व मिथ्या है। (३) माया शक्ति अनिर्वचनीय या मिथ्या है। (४) जीवदशा में भी आत्मा निष्क्रिय है। उसमें औपचारिक कर्तृत्व या सुखदु:खादिभोक्तृत्व है।

x x x x x x

स्वस्वरूपगत धर्म हैं न कि आगन्तुक या औपाधिक— **'उन्मेषनिमेष'** शब्दाभ्यां तदुपचरितवृत्तिभ्याम् इच्छामात्रमेकं शङ्करसम्बन्धि प्रतिपाद्यते स च तस्य नित्यो धर्मः स्वभावभूतः तस्य उन्मेष-निमेषशब्दवाच्यत्वं द्वित्वं च उपचारात् ॥"

— (स्पं. वि.)

जगत शङ्कर का कार्य है; क्योंकि वे उसके मूल कर्ता हैं— 'यत्र स्थितमिदं कार्यं' और उसी शिव रूप कारण से जगत निर्गत भी हुआ है— 'यस्माच्च निर्गतम्' 'यत्र स्थितमिदं सर्वं **कार्यं** यस्माच्च निर्गतम् ॥'

'यत्र स्थितम् इदं जगत्, यस्मात् च उत्पन्नम्।' (स्पन्दसर्वस्व)

ज्ञत्व एवं कर्तृत्व शिव का अकृत्रिम धर्म है

स्पन्दकारिकाकार कहते हैं—

"तदास्या**कृत्रिमो धर्मो** ज्ञत्वकर्तृत्वलक्षणः।"

इसी स्वाभाविक धर्म के कारण शिव जो भी चाहता है उसे जान लेता है और जो भी करना चाहता है उसे कर डालता है—

"यतस्तदीप्सितं सर्वं **जानाति च करोति** च" ॥१०

"अकृत्रिमः सहजो ज्ञत्वकर्तृत्वभावरूपो धर्मो।"

"यद यद् ज्ञातुं इच्छति तत तत् जानाति च करोति॥"

(स्पंद सं.)

आत्मतत्त्व की अवस्थायें

(१) 'कार्यता'

(२) 'कर्तृता'

अवस्था युगलं चात्र **कार्यकर्तृत्व**शब्दितम् ।

कार्यता क्षयिणी तत्र **कर्तृत्वं** पुनरक्षयम् ।। (१४)

भोग करने वाले के रूप में भी **'वही'** स्थित है—

'भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः ।। (२९)

'सृष्टिस्तद्धर्मकत्वतः' (का. ३५)

शिव की यह **'क्रियात्मिका शक्ति'** बन्धन और मोक्ष का कारण भी है—

'सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी ।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका' ।।४८।।

सर्वात्मवाद

आचार्य सोमानन्दपाद समस्त विश्व को आत्मप्रसूत, आत्माश्रित, आत्मप्रतिष्ठित एवं आत्मप्रस्फुरित एवं आत्मस्पन्दित मानते हैं—

"आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृतचिद्विभुः ।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरद् हक्क्रियः शिवः ।।"

—शिवदृष्टि

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि

आचार्य क्षेमराज कहते हैं— "इति **श्री मत्स्वच्छन्दादि शासनोक्तनीत्या** सदा पञ्चविधकृत्यकारित्वं चिदात्मनो भगवतः । यथा च भगवान् शुद्धेतराध्वस्कारण-क्रमेण स्वरूपविकाससरूपाणि सृष्ट्यादीनि करोति तथा सङ्कुचितच्छक्तितया संसार-भूमिकायामपि 'पञ्चकृत्यानि' विधत्ते ।।"[१]

क्रीड़ावाद

आचार्य सोमानन्द आदि आचार्यों ने विश्व को एक क्रीडा माना है । जगत् 'प्रमोदात्मा प्रभु' की क्रीड़ा है—

"यथा नृपः सर्वभौमः प्रभावामोदभावितः" ।।३७।।

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (१०) ।

''क्रीडन् करोति पादातधर्मांस्तद्धर्मधर्मतः ।
तथा **प्रभुः प्रमोदात्मा** क्रीडत्येवं तथा तथा ॥''[१]

परम शिव अपनी 'स्वातन्त्र्यशक्ति' द्वारा अपने स्वरूप को आच्छादित करके ही विश्वनाटक का अभिनय करता है अतः वहाँ **'स्वात्मप्रच्छादन क्रीडा'** का अभिनय करता है। शिवदृष्टिकार कहते हैं—

''आत्मप्रच्छादनक्रीडां कुर्वतो वा कथञ्चन ॥''

चित्रवाद

आचार्य उत्पलदेव ने विश्व में सर्वत्र चित्र को ही यथार्थ सत्ता के रूप में देखा है अतः निखिल विश्व को शिव का चित्र माना है।

''चिदाकाशमये स्वाङ्गे **विश्वालेख्य**विधायिने ।
सर्वाद्भुतोद्भवभुवे नमो विषमचक्षुषे ॥''

स्तवचिन्तामणिकार की दृष्टि– 'स्तवचिन्तामणि' के प्रणेता भी जगत को चित्र मानते हैं—

''निरूपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते ।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥''

पुस्तकीय ज्ञान (अनुभवहीन ज्ञान) का खण्डन

तान्त्रिक पुस्तकीय (अप्रत्यक्ष ज्ञान) के विरोधी हैं इसीलिए वे कहते हैं—

'वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति च ।
विडम्बकस्य तस्यापि तत् सर्वं काकभाषितम् ॥'
संसारमात्रनाशाय शाब्दबोधो न हि क्षमः
न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपशिखया ।
अभ्यस्यसर्वशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वा हि बुद्धिमान्
पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्रिं परित्यजेत् ॥

समत्वविज्ञान

'समत्वविज्ञानं अद्वैतनिष्ठ दृष्टि है। मूल तत्त्व समतानिष्ठ है। स्वयं मूलप्रकृति भी समत्वनिष्ठ है; क्योंकि वहाँ तीनों गुणों की साम्यावस्था है—

''सत्वरजस् तमस साम्यावस्था प्रकृतिः ।''

---

१. शिवदृष्टि (प्र. आ. ३७-३८)।

विज्ञानभैरवाकार की समत्व दृष्टि–

वायुद्वयस्य सङ्घट्टादन्तर्वा बहिरन्ततः ।
योगी समत्वविज्ञानसमुद्गमनभाजनम् ॥[१]

आन्तरस्थल **'हृदय'** एवं बाह्यस्थल **'द्वादशान्त'** में 'प्राण' एवं 'अपान' रूप दो वायुओं के संघट्ट से (हृदय एवं द्वादशान्त में इनके अन्तःप्रवेश या बहिर्गमन काल की समाप्ति हो जाने पर) उस शून्यकल्प अवस्था का ध्यान करने पर (जिसमें कि प्राण एवं अपान के संघट्ट की पृथक् रूप से प्रतीति नहीं हो पाती हो) योगी प्रबुद्ध हो जाता है और उसमें समत्व दृष्टि का विकास हो उठता है। वह सभी पदार्थों को अपने से अभिन्न रूप में देखने लगता है और समत्व-दृष्टि के विकास के द्वारा परमसिद्धि प्राप्त कर लेता है। योगी में समत्व-बोध का उदय होने से, प्राणापान की भेद-स्थिति की जिस स्थान में समाप्ति हो जाती है उस साम्यावस्था को जान लेता है और वह सभी पदार्थों को उस रहस्यात्मक परमतत्त्व में विलीन कर लेता है।

तन्त्रालोककार की दृष्टि– 'तन्त्रालोक' में कहा गया है—

"समता सर्वदेवानामोवल्लीमन्त्रवर्णयोः ।
आगमानां गतीनां च सर्वं शिवमयं यतः ॥" (४/२७४-७५)

जगत के सभी भावों, वृत्तियों, दृष्टियों, द्रव्यों, भूमिकाओं, ओवल्लियों और वर्णों में सभी तरह से एक सी दृष्टि रखना ही **'समत्व दृष्टि'** है। 'सब कुछ शिवमय है' अतः इस समतादृष्टि की साधना सभी में समत्व (अद्वयानुभूति) आविर्भूत कर देता है।

महेश्वरानन्द की दृष्टि– महेश्वरानन्द ने **'परिमल'** में समता-दृष्टि की इस प्रकार विवेचना की है— समता समस्त देवों, समस्त वृत्तियों एवं द्रव्यों आदि सभी सत्ताओं में एक साथ रहनी चाहिये—

"समता सर्वभावानां वृत्तीनां चैव सर्वशः ।
समता सर्वदृष्टीनां द्रव्याणां चैव सर्वशः ।
भूमिकानां च सर्वासामोवल्लीनां तथैव च ।
समता सर्वदेवानां वर्णानां चैव सर्वश ॥"[२]

---

१. विज्ञानभैरव (६४)।
२. महार्थमञ्जरी (परिमल) : महेश्वरानन्द ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी समत्ववाद को स्वीकार करते हुए योग का स्वरूप ही समताधृत कह डाला—

"समत्वं योग उच्यते ।।" (श्रीमद्भगवद्गीता)

"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।"

बाह्याचार का प्रत्याख्यान एवं प्रतीकात्मक साधनापरकतावाद

तन्त्र शास्त्र ने **बाह्याचार एवं बाह्यप्रदर्शनात्मक स्थूलोपासना का सर्वत्र प्रतिषेध** किया है और साधना के प्रत्येक अङ्गोपाङ्ग तथा पूजा के प्रत्येक उपचार को प्रतीकात्मक मानकर उनके तत्त्वात्मक मूल स्वरूप को अङ्गीकृत किया है। **सोमानन्द** कहते हैं— **'ध्यान'** वही है जिससे सर्वत्र शिवता का साक्षात्कार होता हो—

(१) "येनेन्द्रिययेणार्थो गृह्यते तत्र तत्र सा।
शिवता लक्षिता सत्या तद्**ध्यानमपि** वर्ण्यते ।।"

(२) "यस्यां यस्यां प्रतीतौ तु शिवोऽस्मीति मनोगमः।
तस्यां तथैव चिन्तायां **तद्ध्यानमपि** जल्पितम् ।।"

(३) "ध्यायतो बालमात्मानं सा जरा संप्रलीयते।
ध्यानं नामात्र यत्सर्वं सर्वाकारेण लक्ष्यते।
भावनाचक्षुषा साध्वी सा चिन्ता सर्वदर्शिनी।"

'योग' का स्वरूप क्या है? सोमानन्दपाद कहते हैं—

(१) 'यस्मिन्नर्थे सदात्यागो गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा।
धावतः खादतो वापि स **योगः** परयोगिनः ।।'

(२) 'शिवोऽस्मीति मदिच्छातः सर्वभावप्रवर्तनम्।
अतएव शिवः सर्वमिति **योगो**ऽथ चेतसि।'

गुरु के प्रति दृष्टि वैलक्षण्य–

'गुरौ मनुष्यबुद्धिश्च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धि कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ।।'[१]

सर्वात्मैक्यवाद

आत्मा ही संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसकी सत्ता बनाकर विद्यमान है।

---

१. कुलार्णवतन्त्र।

सोमानन्द की दृष्टि– आचार्य सोमानन्द कहते हैं कि समस्त भावों में आत्म-स्वरूप शिव ही अवस्थित हैं। वे निवृत्तचित्स्वरूप हैं। वे ही **इच्छा, ज्ञान और रूप में सर्वत्र** भासमान हैं। शिव ही अव्याहत इच्छाप्रसार वाले तथा ज्ञान और क्रिया के प्रसार वाले हैं। **सोमानन्द** कहते हैं—

'आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन् निर्वृतचिद्विभुः।

अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरद् दृक्क्रियः शिवः ।।२।।'

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं–

(१) **सर्वभावेषु स्वात्मैव शिव** इति व्यवहर्त्तव्यमिति **'प्रतिज्ञा'**।

(२) निवृतचिदित्यादि विशेषण्कलापो **हेतुः**।

(३) स्फुरन् इति धमिणो हेतोश्च स्वसंवेदनप्रत्यक्षं **प्रमाणम्**।

—उत्पलदेवाचार्य

चिदाकाशमये स्वाङ्गे विश्वालेख्यविधायिने।
सर्वाद्भुतोद्भवभुवे नमो विषमचक्षुषे ।।

— उत्पलदेवाचार्य

'विश्व' शिव के चिदाकाशात्मक स्वाङ्ग में एक स्वनिर्मित चित्र है।

बन्धन और मोक्ष दोनों ही मलसापेक्ष हैं

आचार्य सोमानन्दपाद ने बन्धन एवं मोक्ष दोनों को तात्त्विक सत्ता की दृष्टि से अस्वीकार किया है और उन्हें मल की दृष्टि से ही विद्यमान माना है। तात्त्विक धरातल पर उनकी सत्ता को ही अस्वीकृत कर दिया है। वे कहते हैं—

(१) 'न मे बन्धो नमे मोक्षस्तौ मलत्वेन संस्थितौ ।।'

(२) बन्धमोक्षौ न भिद्येते सर्वत्रैव शिवत्वतः ।।

(३) प्रतीतिमात्रमेवात्र तावता बन्धमोक्षता ।। (शिव दृष्टि)

जब तक शिव की प्रतीति अन्य वस्तु के रूप में हो तभी तक बन्धन-मोक्ष की सत्ता है किन्तु 'सर्व शिवमयम्' की प्रतीति होते ही बन्धन-मोक्ष दोनों लुप्त हो जाते हैं—

(१) 'विभिन्नशिवपक्षे तु सत्ये दार्ढ्यं परत्र नो।
प्रतीतिमात्रमेवात्र तावता बन्धमोक्षता ।।

(२) यदि सर्वत्र शिव की अनुभूति हो तो 'बन्धन' 'मोक्ष' में अन्तर ही नहीं है।

"बन्धमोक्षौ न भिद्येते सर्वत्रैव शिवत्वतः ॥"

योगभोगसाहचर्यवाद

योग-भोग में अद्वैत तन्त्र अतिवाद का विरोधी है। तन्त्र मध्यममार्ग स्वीकार करता है। वह योग और भोग में भी समन्वय स्थापित करके चलता है। 'कुलार्णव तन्त्र' में कहा गया है कि तन्त्र का 'कौलमार्ग' वह विलक्षण मार्ग है जहाँ— (१) भोग भी योग बन जाते हैं। (२) पाप भी पुण्य बन जाते हैं और (३) बन्धन का मूर्तस्वरूप यह संसार ही मोक्ष बन जाता है—

"भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मः कुलेश्वरि ॥"

यद्यपि कौल मार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्गों में 'योगी' कभी 'भोगी' नहीं बन सकता तथा 'भोगी' कभी 'योगी' नहीं बन सकता किन्तु कौलमार्ग में तो भोग और योग दोनों का मणिकाञ्चन योग है—

"योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्नैव योगवित्।
भोगयोगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिकः प्रिये ॥"

समस्त द्वन्द्वों में भी द्वन्द्वातीत अवस्था

केवल कौलमार्ग ही एक ऐसा साधन-मार्ग है या समत्वयोगात्मक धर्म हैं, जहाँ सारे विरोध मित्रता में, सारे बहुत्व एकता में, सारी भिन्नताएँ अभिन्नता में एवं सारे विरोध अविरोध में परिणत हो जाते हैं—

"अनाचारः सदाचारस्त्वकार्यः कार्यमेव च।
असत्यमपि सत्यं स्यात् लौकिकानां कुलेश्वरि।
अपेयमपि पेयं स्यादभक्ष्यं भक्ष्यमेव च।
अगम्यमपि गम्यं स्यात् लौकिकानां कुलेश्वरि ॥"[१]
न विधिर्न निषेधःस्यान्न पुण्यं न च पातकम्।
न स्वर्गो नैव नरकः लौकिकानां कुलेश्वरि ॥
अनभिज्ञाप्यभिज्ञप्ति दरिद्रा धनवन्ति च।
विनष्टा अपि वर्द्धन्ते कौलिकाः कुलनायिके ॥
'विमुखाः सुमुखाः सर्वे गर्विता प्रणमन्ति च।'

---

१. कुलार्णवतन्त्र।

'मृत्युर्वैद्यायते देवि ! स्वर्गः साक्षाद् गृहायते।
पुण्यायन्तेऽङ्गनाः सर्वाः कौलिकानां कुलेश्वरि ॥'[१]

मोक्ष की दृष्टि में भी भोगयोगसाहचर्यवाद

योग एवं भोग में अद्वैत

तान्त्रिक दर्शन एवं अन्य दर्शनों में दृष्टि-भेद

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं कि तन्त्र-दृष्टि एवं अन्य दृष्टियों में यही भेद है कि अन्य दृष्टियाँ यह स्वीकार करती हैं कि 'भोग' और 'मोक्ष' दोनों उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव हैं जो कि परस्पर कभी मिल नहीं सकते किन्तु तन्त्र दर्शन इस दृष्टि के विरुद्ध यह मानता है कि—

"भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।"

तन्त्र का उद्घोष यह है कि—

"यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो,
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
शिवापदाम्भोजयुगार्चकाणां,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥"

क्योंकि— न मद्य भक्षणे दोषो न मांसे न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

इसीलिए **महेश्वरानन्द** कहते हैं—

"एतदेव ह्यस्य दर्शनान्तरेभ्यो वैशिष्ट्यं यद् भोगमोक्षद्वितयानुभूति सामरस्यं नाम ॥"[२]

रत्नदेव-प्रतिपादित दृष्टि–

भुक्तिर्वाप्यथ मुक्तिश्च नान्यत्रैकपदार्थतः।
भुक्तिमुक्ती उभे देवि ! विशेषे परिकीर्तिते ॥

श्रीसिद्धामत की दृष्टि–

अध्वषट्कं च दीक्षा च शिवशास्त्रमिति स्मृतम्।
दीक्षाध्वा **निर्भयो भोगः** शास्त्रे भैरवसंज्ञके ॥

---

१. कुलार्णवतन्त्र।
२. परिमल (गाथा-५३)।

'जीवन्मुक्ति' सम्बन्धिनी महेश्वरानन्द की दृष्टि-

महेश्वरानन्द कहते हैं कि तन्त्र-दर्शन में प्रतिपादित **'जीवन्मुक्ति'** **'स्वानन्दोत्सवानुभूति'** है किन्तु यह ''जननमरणाद्यनुस्यूत-सर्वावस्थानिर्विशेष है—

''ननु **जीवन्मुक्ति**र्नामात्मनो जननमरणानुस्यूतस्य सर्वावस्थानिर्विशेषं **स्वानन्दोत्सवानुभूतिः** ।''[१]

पञ्चमकारों के सेवन में भी लाक्षणिकता

मद्यपानेन मनुजो सिद्धिं लभेत वै ।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः ॥[२]

इच्छा-ज्ञान-क्रिया में अद्वैत

तान्त्रिक त्रिक् दर्शन में इच्छा-ज्ञान-क्रिया अभिन्न हैं अतः इनमें भी अद्वैत है। इसकी अनुभूति शिव में होती है।

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि– आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि **'ज्ञान'** और **क्रिया** जीवित प्राणियों के जीवन हैं—

''ज्ञानं क्रिया च भूतानां जीवतां जीवनं मतम् ।'' (४)[३]
''जीवतां पुनर्जीवनं जीवत्वं ज्ञान क्रिये एव ॥''[४]

इसमें 'ज्ञान' तो स्वतः सिद्ध है और क्रिया कायाश्रित है—

'तत्र **ज्ञानं** स्वतः सिद्धं **क्रिया** कायाश्रिता सती' ॥५॥[५]

चिद्वपु एवं स्वतन्त्र परमात्मा की विश्वात्मकक्रिया की इच्छा ही उसकी जगत-कारणता है और उसकी यही कर्तृता **'क्रियाशक्ति'** है—

''न चिद्वपुषः स्वतन्त्रस्य विश्वात्मना कर्तुमिच्छैव जगत्प्रति कारणता कर्तृतारूपा सैव क्रियाशक्तिः ॥''

इस प्रकार एक चिद्रूप परमेश्वर को कर्तारूप में देखें तो उस कर्ता परमेश्वर की **'चिकीर्षा'** ही क्रिया है। यह भी सत्य है कि कोई कर्म अकर्तृक तो होता नहीं—

---

१. परिमल (गाथा ५३)।
२. कुलार्णवतन्त्र।
३. प्रत्यभिज्ञाकारिका।
४. प्र. का. वृत्ति (भट्टकल्लट)।
५. प्र. का.।

"एवं चिद्रूपस्यैकस्य कर्तुरिव चिकीर्षाख्या क्रिया मुख्या, नाकर्तृकं कर्मास्ति ।।"[१]

चूँकि 'परामर्श' के बिना क्रिया सम्भव नहीं है अत: **चिकीर्षा या 'क्रिया' 'ज्ञान' के साथ अविनाभाव सम्बन्ध** से अनुस्यूत हैं—

"नचिकीर्षालक्षणैकत्व परामर्शं विना क्रिया।"

"स चिदात्मा तथा **चिकीर्षया** परामृशन् बहिराभासयति ।।"

यहाँ 'चिकीर्षा' **ज्ञानपक्ष** है और आभासन **क्रियापक्ष** है।[२]

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि

आचार्य सोमनानन्दपाद भी इच्छा-ज्ञान-क्रिया के तात्विक स्वरूप में अभेद या एकात्मता ही देखते हैं; क्योंकि 'शुद्धाध्वा' में तीनों अभिन्न हैं। आचार्य सोमानन्दपाद कहते हैं—

'तदिच्छा तावती तावज्ज्ञानं तावत्क्रिया हि सा ।।'[३]

शक्ति एवं शक्तिमान में अभेद

आचार्य **सोमानन्दपाद** शक्ति एवं शिव में तत्त्वत: कोई भेद मानते ही नहीं—

"शक्तिमानेव शक्ति: स्याच्छिववत्करणार्थत: ।
शक्ते: स्वातन्त्र्यकार्यत्वाच्छिवत्वं न क्वचिद्भवेत् ।।"
"न हिमस्य पृथक् शैत्यं नाग्नेरौष्ण्यं पृथग्भवेत् ।।'

क्या हिम से शैत्य एवं अग्नि से ऊष्णता पृथक हो सकती है ? कदापि नहीं। इसी प्रकार शिव से शक्ति एवं शक्ति से शिव पृथक् नहीं हो सकते।

'क्रिया' और तन्त्र

क्रिया पक्ष को लेकर शाङ्कर वेदान्त एवं अद्वैतवादी शैवतन्त्र में यथेष्ट दृष्टिभेद है—

(१) तन्त्र का शिव सक्रिय है और पञ्चकृत्यकारी है[४]—

---

१. तत्रैव (५३)।
२. तत्रैव (५२)।
३. शिवदृष्टि (३/१)।
४. उत्पलदेव (प्रत्यभिज्ञाकाकिा ४)।

स्पन्दशास्त्र की मान्यता और प्रत्यभिज्ञा दर्शन की पुष्टि-

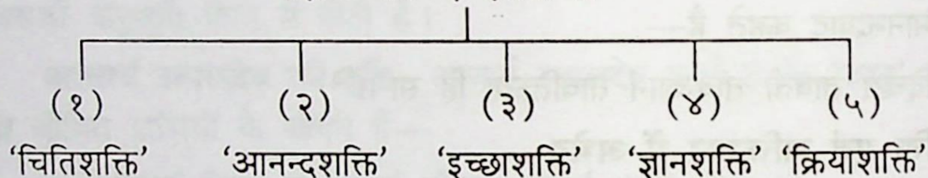
(क) यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ ।
तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः ॥
(स्पन्दकारिका)

(ख) "अनेन स्वस्वभावस्यैव शिवात्मकस्य सङ्कल्पमात्रेण **जगदुत्पत्ति-संहारयोः कारणत्वं** विज्ञानदेहात्मकस्य शक्तिचक्रैश्वर्यस्योत्पत्ति **हेतुत्वं** ॥"[२]

(ग) यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छया **जगदिदं स्रष्टुं** ।
पस्पन्दे स स्पन्दः (ष. त. सं. १)

(घ) शिव में ५ शक्तियाँ समवेत हैं उनमें एक क्रियाशक्ति भी है ।

शिव की ५ शक्तियाँ



'चितिशक्ति' 'आनन्दशक्ति' 'इच्छाशक्ति' 'ज्ञानशक्ति' 'क्रियाशक्ति'

(१) तस्य च स्वातन्त्र्यम्— 'आनन्दशक्तिः'
(२) तच्चमत्कार— 'इच्छाशक्ति'
(३) प्रकाशरूपता— 'चिच्छक्तिः'
(४) आत्मात्मकता— 'ज्ञानशक्तिः'
(५) सर्वाकारयोगित्वं— 'क्रियाशक्तिः'[३]

'सृष्टि और 'प्रलय' नामक क्रियायें (उन्मेष-निमेष) शिव के आत्मा 'इच्छा' 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' तीनों से युक्त एवं स्वातन्त्र्यशक्त्योपपन्न है ।

शाङ्करदर्शन का ब्रह्म या वहाँ प्रतिपादित शुद्ध आत्मा का चिकीर्षा एवं कर्तृत्व दोनों नहीं हैं । अद्वैतवादी शैवदर्शन (ईश्वराद्वयवादी दर्शन) में परमशिव या शुद्ध आत्मा 'सृष्टि', 'स्थिति', 'संहार', 'अनुग्रह' एवं 'तिरोधान' आदि सारे व्यापारों का निष्पादक है—

(१) 'नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्य विधायिने ।

---

१. प्र. का (४) ।
२. भट्टकल्लट—स्पन्द सर्वस्व (१) ।
३. तन्त्र सार ।

चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थावभासिने ॥'

— प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, आचार्य क्षेमराज

'सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थिति कारकम्।
अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्तिविनाशनम् ॥

—स्वच्छन्दतन्त्र (पटल प्रथम)

(२) आभासन, रक्ति, विमर्शन, बीजावस्थापन और विलापन।

— प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

आचार्य क्षेमराज ने इसे ही **'ब्रह्माद्वैतवाद'** एवं **'ईश्वराद्वयवाद'** में भेद माना है— ''ईश्वराद्वयदर्शनस्य ब्रह्मवादिभ्य: अयमेव विशेष: ॥''

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि– आचार्य महेश्वरानन्द ने इस शाङ्कर अद्वैत को 'द्वैत' माना था। 'संविदुल्लास' में भी ब्रह्माद्वैत के विषय में यही दृष्टि प्रस्तुत की गई है।

'सामरस्यवाद'

अद्वयवादी शङ्कराचार्य की दृष्टि में **अद्वैतवाद के लिए** दूसरी सत्ता की विद्यमानता बाधक तत्त्व है। 'अद्वैत' द्वैत-विहीन है। शङ्कर के अद्वैत में 'दूसरे के लिए' कोई स्थान नहीं है। आगमशास्त्रीय अद्वैतनिष्ठ दृष्टि में दो की एकता— (दो तत्त्वों के एक साथ रहने पर भी उनमें अभेदात्मकता) ही अद्वैत है। यह **'द्वयात्मक अद्वयवाद'** है। यहाँ शक्ति एवं शक्तिमान दोनों की (परतत्त्व के रूप में) स्वीकृति है किन्तु ये दो होकर भी एक हैं। ये चन्द्र-चन्द्रिका या धर्म-धर्मी की भाँति एक हैं।

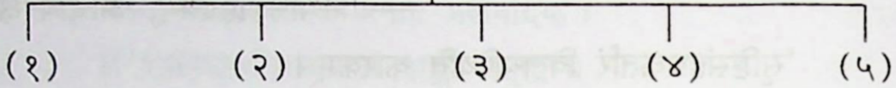
'समय' और 'समया' में अद्वैत (साम्य)

'समय' और 'समया' उसी प्रकार अद्वैत (अभिन्न) हैं यथा चन्द्रमा और चन्द्रिका— अग्नि और दाहकता— शब्द और आकाश— पृथ्वी और गन्ध— वायु और स्पर्श तथा—

'साम्य', समया तथा समय

'समया' का **अर्थ** ही है जो **'समय' के साथ साम्यभावयुक्त** हो— ''**समया** नाम शम्भुना साम्यं पञ्चविधं यातीति **'समया'**। 'समयत्वं' शम्भोरपि पञ्चविधं साम्यं देव्या सह यातीति। अत: उभयो: समप्राधान्येनैव साम्यं विज्ञेयम् ॥''

पञ्चविधसाम्य[१]



'अधिष्ठानसाम्य' 'अवस्थानसाम्य' 'अनुष्ठानसाम्य' 'रूपसाम्य' 'नामसाम्य'

(१) अधिष्ठान साम्य

'तवाधारे मूले सह समयया **लास्य**परया
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम् ।' (४१)

'सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् ॥' (४१)

यहाँ 'अधिष्ठान साम्य' इसलिए है; क्योंकि **'समय'** एवं **'समया'** दोनों का अधिष्ठान **'आधारचक्र'** है।

(२) अनुष्ठान साम्य

'जनकजननीमज्जगदिदम्' (सौ. ल. ४१)

यहाँ अनुष्ठान साम्य है; क्योंकि यहाँ उत्पादनक्रिया में व्याप्रियमाणत्व है।

(३) अवस्था-साम्य

'तावाधारे...............**लास्यपरया** ॥' (४१)

'नवरसमहा**ताण्डव**नटम् ॥' (४१)[२]

(४) रूप साम्य

'जपाकुसुमसङ्काशौ मदघूर्णितलौचनौ ।
जगतः पितरौ वन्दे भैरवी भैरववात्मकौ ॥'

इस श्लोक में 'समय' एवं 'समया' दोनों में जपाकुसुम सङ्काश आरुण्य एवं मदघूर्णितलोचनत्व उभयसम रूप विद्यमान है अतः शिव और शिवा में तीसरे प्रकार का ऐक्य साम्य है।

'नवात्मत्व'

(१) **शक्ति के ९ व्यूह :** (१) 'वामा' (२) 'ज्येष्ठा' (३) 'रौद्री' (४)

---

१. **पञ्चविधसाम्यं तु-** (१) अधिष्ठानसाम्यं (२) अवस्थानसाम्यं (३) अनुष्ठानसाम्यं (४) रूपसाम्यं (५) नामसाम्यं चेति पञ्चविधं समप्रधानयोरेव शिवयोः ।

२. इसी ४१वें श्लोक में पार्वती के 'लास्य' एवं शिव के 'ताण्डव' की चर्चा है। 'लास्य' एवं 'ताण्डव' दोनों नृत्य हैं। अतः नृत्य की दृष्टि से दोनों व्यापारों मे साम्य है।

'अम्बिका' (५) 'इच्छा' (६) 'ज्ञान' (७) 'क्रिया' (८) 'शान्ता' (९) 'परा' ॥

(२) **शिव के ९ व्यूह :** (१) 'काल' (२) 'कुल' (३) 'नाम' (४) 'ज्ञान' (५) 'चित्त' (६) 'नाद' (७) 'बिन्दु' (८) 'कला' (९) 'जीव' ॥

श्रीचक्र के ९ व्यूह : (क) ४ श्रीकण्ठ (ख) ५ शिवयुवतियाँ।

(मूल त्रिकोण)

(५) नामसाम्य

'शिवं सेवे देवीमपि **शिवसमानव्यवसिताम्** ॥३७॥

(तेरे विशुद्ध चक्र में आकाश तत्त्व के जनक, शुद्ध स्फटिकवत स्वच्छ शिव की एवं **शिव के समान** सुव्यवसित (शिव समान व्यापार (प्रयत्न) वाली) देवी की भी मैं सेवा करता हूँ ॥)

आचार्य लक्ष्मीधर 'सौन्दर्य लहरी' में कहते हैं कि **'तटित्वन्तम्'** में तटित्वान् एवं तटित्वती=इस प्रकार **नामरूप साम्य** है। **'मणिपूरैकशरणं'** में **'अधिष्ठानसाम्य'** है। **'तवस्वाधिष्ठाने'** श्लोक में **'अधिष्ठान साम्य'** है। 'महतीं' में महासंवर्तात्मक रूपनाम साम्य प्रतिपादित किया गया है।

स्वाधिष्ठानगताग्नि संश्रयण में **अवस्थान साम्य** है। 'लोकान् दहति' वाक्य में **'अनुष्ठानसाम्य'** है। 'अनाहत चक्र' में अनाहत अधिष्ठान है। यहाँ **'अधिष्ठान साम्य'** है। हुताभुक्वणि में **रूपसाम्य** एवं नामसाम्य है। 'निवातदीपक' में **अवस्थान साम्य** है। 'विशुद्ध चक्र' में **अधिष्ठान साम्य है। 'व्योमजनकं'** में **'अनुष्ठानसाम्य'** है। 'शशिकिरणसारूप्यसरणेः' में **'अवस्थान साम्य'** है। 'तवाज्ञाचक्रस्थं' में **'अधिष्ठान साम्य'** है। 'तपनशशिकोटिद्युतिधरं' में **'रूपसाम्य'** है। 'यमाराध्यन भक्त्या' में **'अवस्थानसाम्य'** है। 'मुक्तिप्रदत्व' में **'अनुष्ठान साम्य'** है— (सौन्दय लहरी : लक्ष्मीधरा)।

नाद और बिन्दु में ऐक्य तथा तदनुगत अद्वैत

'नाद' क्या है? **लक्ष्मीधर** कहते हैं—

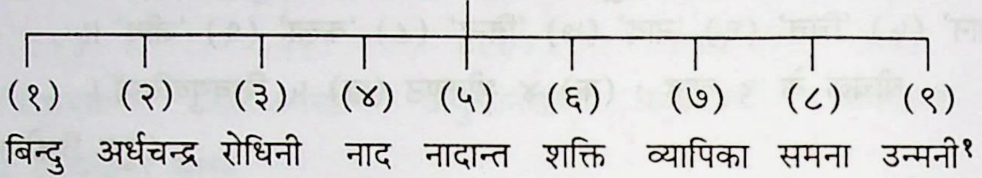
'नादः परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपेण चतुर्विधः ॥'

आचार्य भास्कर राय कहते हैं—

'हल्लेखा' के स्वरूपान्तर्गत (१) **व्योम** (ह) (२) **अग्नि** (र) (३) वामलोचना (ई) (४) **'बिन्दु'** (॰) (५) **'अर्धचन्द्र'** (६) **'रोधिनी'** (७) **'नाद'** (८) **'नादान्त'** (९) **'शक्ति'** (१०) **'व्यापिका'** (११) **'समना'** एवं (१२) **'उन्मनी'** आदि १२ अवयव आते हैं। इनमें ९ के समूह को **'नाद'** कहते हैं।

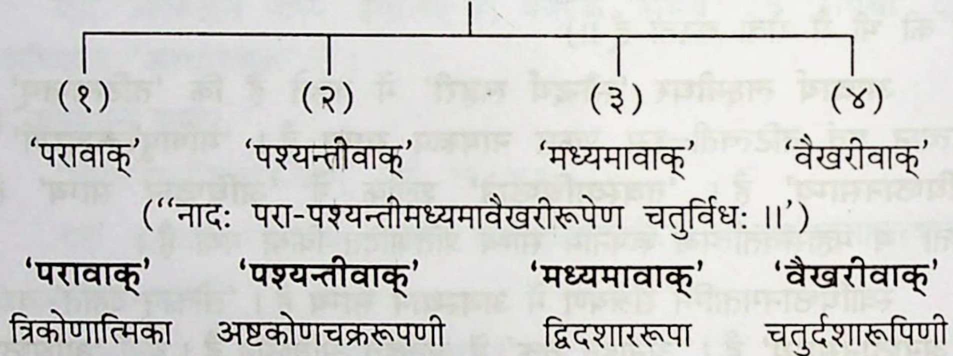
'बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते ।।'

'नाद' (भास्कर राय)



'मन्त्रशास्त्र' में अष्टसमष्टि को ही 'नाद' कहते हैं 'बिन्दु' को मन्त्रान्तर्गत नहीं स्वीकार करते— ''बिन्दुविनिर्मुक्तानामष्टानामेव नाद संज्ञा मन्त्र शास्त्रे ।। तथापि व्यवहारसौकर्याय तत्सहितानामेव सात्र कृतेति ध्येयम् ।।''[2]

'नाद' (अचार्य लक्ष्मीधर)



(''नादः परा-पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपेण चतुर्विधः ।।')

'परावाक्'	**'पश्यन्तीवाक्'**	**'मध्यमावाक्'**	**'वैखरीवाक्'**
त्रिकोणात्मिका	अष्टकोणचक्ररूपणी	द्विदशाररूपा	चतुर्दशारूपिणी

(१) तात्पर्य यह कि 'त्रिकोण' एवं 'परावाक्' में साम्यभाव से स्थिति है।

(२) **'पश्यन्तीवाक्'** एवं 'अष्टकोणचक्र' में साम्यभाव से स्थिति है।

(३) द्विदशारचक्र एवं **'मध्यमावाक्'** में साम्यभाव से स्थिति है।

(४) **'वैखरीवाक्'** एवं 'चतुर्दशार चक्र' में साम्यभाव से स्थिति है।

अतः चक्रों के साथ नादों एवं **वाकों में भी अद्वैत** है। नवयोन्यात्मक 'श्रीचक्र' में जो **'शिवचक्र'** हैं उनका इन्हीं में अन्तर्भाव है 'शिवचक्राणां' अत्रैव अन्तर्भावः ।।''[3]

पञ्चविध ऐक्य (भगवती की पञ्चधा सपर्या)

(१) 'नाद' के साथ 'बिन्दु' का ऐक्य।

(२) 'बिन्दु' के साथ 'कला' का ऐक्य।

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (१/१२-१३)।

२. प्रकाश (१/१२-१३)।

३. लक्ष्मीधरा।

(३) 'कला' का 'नाद' के साथ ऐक्य। (त्रिधा ऐक्य)

(४) 'कला' के साथ 'बिन्दु' का ऐक्य। 'पञ्चधा ऐक्य'

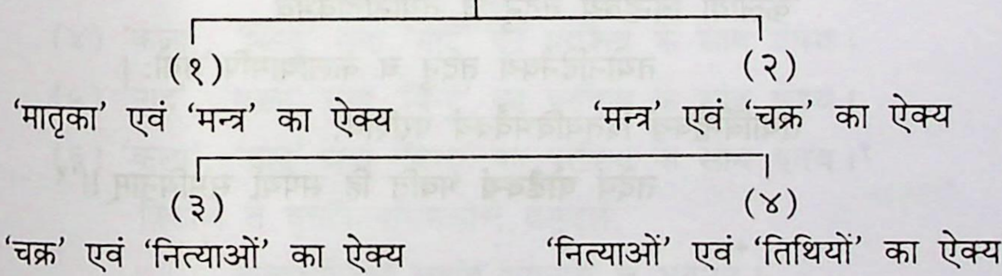
(५) 'कला' के साथ 'नाद' का ऐक्य। (द्विधा ऐक्य)

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि–

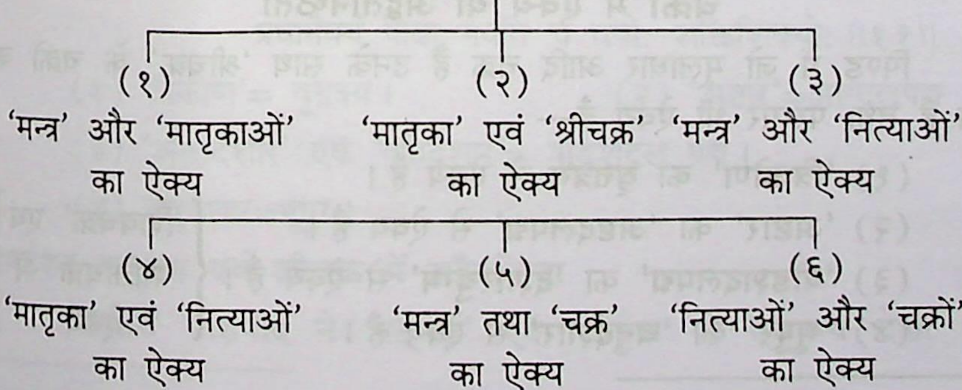
(१) 'षड्विध ऐक्य' के परम रहस्य को परमगुरु से ही जानना चाहिये। भगवती की सपर्या की उत्तम विधि 'षड्विधऐक्य' है। षोढैक्यानुसन्धान के अनन्तर दशभुजा भगवती श्री विद्या **'मणिपूरचक्र'** में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती हैं। **'सपर्या'** का स्वरूप देवी के साथ ऐक्य है।

षोढा ऐक्य– नाद-बिन्दु-कला का परस्परैक्यानुसन्धान 'षोडा ऐक्य' है— "नादबिन्दुकलानां परस्परैक्यानुसन्धानं ढोढा भवतीति षोढा ऐक्यमाहुः ।। एवं भगवती षड्विधैक्येन सम्भाव्य पूजयित्वा सादाख्यायां विलीनो भवति ।।" तदनन्तरं षड्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना गुरुकटाक्षसञ्जातमहावेधमहिम्ना च भगवती मूलाधार-स्वाधिष्ठानात्मकचक्रद्वयं भित्वा मणिपूरे प्रत्यक्षं प्रतिभाति ।।" 'एवं महावेधे जाते भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति। सा समासध्या ।।' (लक्ष्मीधरा : ४१)

चतुर्विध ऐक्य (अद्वैतनिष्ठता)



गौड़पादीय षोढ़ा ऐक्य (अद्वैतनिष्ठता)



आचार्य गौड़पाद की दृष्टि– आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

'कलानादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं,
षडब्जं चाधारप्रभृतिकममीषां च मिलनम्।
तदेवं षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनां,
चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम्॥१३॥

अर्थात् (१) 'कला' (२) 'नाद' एवं 'बिन्दु' क्रमशः (१) 'वर्ण' (२) 'चरण' एवं (३) '६ पद्म' (षट्चक्र) एवं इनका मिलन ही समयाचारी तान्त्रिकों की **षड्विधा समता** एवं **षड्विधा सपर्या** है—

(१) 'कला' में 'बिन्दु' का ऐक्य— (और उसके अनन्तर)
(२) दोनों का नाद के विभव से ऐक्य।
(३) (फिर) उन दोनों का नाम के साथ ऐक्य।
(४) (फिर) दोनों का कला के साथ...
(५) (फिर) दोनों का बिन्दु के साथ ऐक्य।
(६ (फिर) तीनों के विभव का परशिव के साथ ऐक्य।

— इसे ही **'षोढ़ा ऐक्य'** कहते हैं।

'कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे,
तयोर्नादेनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः।
तयोर्बिन्द्वैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे,
तदेवं **षोढैक्यं** भवति हि सपर्या समयिनाम्॥'[१]

\+ + + +

प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः।

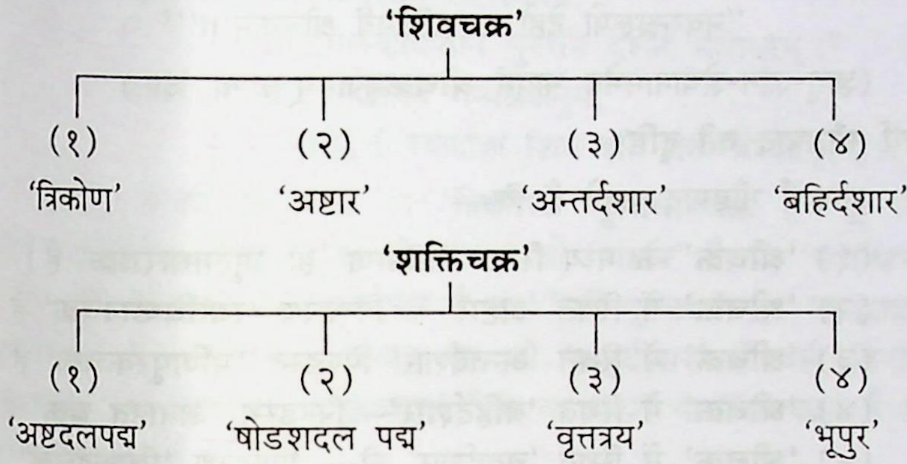
चक्रों में ऐक्य या अद्वैतनिष्ठता

पिण्ड में जो मूलाधार आदि चक्र हैं उनके साथ 'श्रीचक्र' के चक्रों का ऐक्य है तथा परस्पर भी ऐक्य है—

(१) **'त्रिकोण'** का **वृत्तत्रय** से ऐक्य है।
(२) **'अष्टार'** का **'अष्टदलपद्म'** से ऐक्य है।
(३) **'षोडशदलपद्म'** का **'दशारयुग्म'** से ऐक्य है।
(४) **'भूपुर'** का **'चतुर्दशार'** से ऐक्य है।
{ 'शिवचक्र' एवं 'शक्तिचक्र' में ऐक्य }

१. सुभगोदय (१२)।

— इन ४ **शिवचक्रों** में ५ शक्तियोनियाँ निवास किया करती हैं। **'शिवचक्र'** एवं **'शक्तिचक्र'** में भी ऐकात्म्य है।



सारांश

(१) 'कला' का 'बिन्दु' से ऐक्य एवं इन दोनों का नाद-विभव से ऐक्य।

(२) 'नाद' का 'कला' तथा 'बिन्दु' के साथ ऐक्य।

(३) 'कला' का 'नाद' तथा 'बिन्दु' के साथ ऐक्य।

(४) 'कला', 'बिन्दु' तथा 'नाद' का परशिव के साथ ऐक्य।

(५) 'नाद', 'कला' तथा 'बिन्दु' का परशिव के साथ ऐक्य।

(६) 'कला', 'नाद' तथा 'बिन्दु' का परशिव के साथ ऐक्य।[१]

त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयभिमकोणे वसुदलं,
कलाश्रंमिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम्।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्तिकमुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः ॥११॥

(१) 'त्रिकोण'= वृत्तत्रय। (२) 'अष्टार'=अष्टदलपद्म

(३) 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार'= षोडशदल पद्म।

(४) चतुर्दशार=भूपुर।

पिण्डस्थ षट्चक्र एवं श्रीचक्र में अद्वैतष्ठिता

अचार्य गौड़पाद ने 'षट्चक्र' एवं 'श्रीचक्र' में ऐकात्म्य देखा था।

१. सुभगोदय (१२)।

'भावनोपनिषद्' में **'श्रीचक्र'** एवं **'पिण्ड'** को एक ही माना था। तात्पर्य यह कि **भावनोपनिषद् के मत से शरीर ही 'श्रीचक्र'** है—

"नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम् ॥"[१]

(ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयानामभेद भावनं **श्रीचक्रपूजनम्** ॥ मा. उप.)

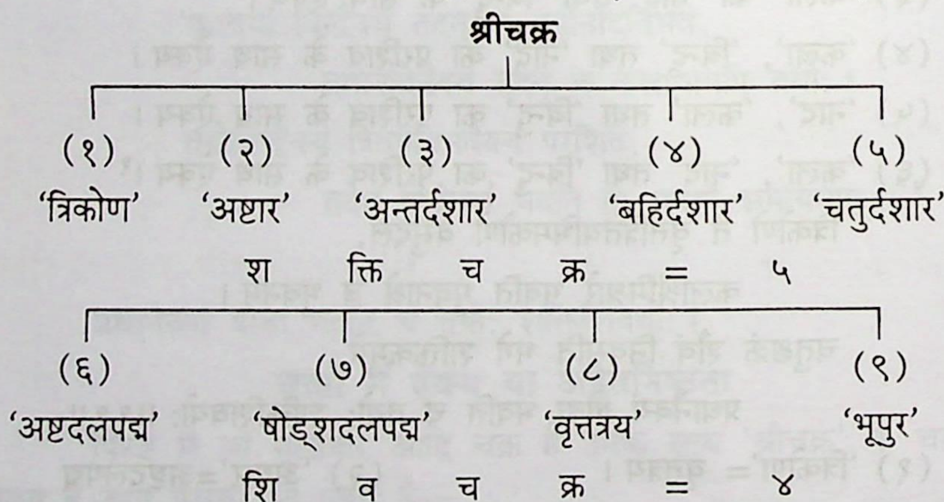
आचार्य गौड़पाद की दृष्टि-

आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि—

(१) **'श्रीचक्र'** के मध्य स्थित **'त्रिकोण'** ही **'मूलाधारचक्र'** है।
(२) **'श्रीचक्र'** में स्थित 'अष्टार'— पिण्डस्थ **'स्वाधिष्ठानचक्र'** है।
(३) **'श्रीचक्र'** में स्थित 'अन्तर्दशार' पिण्डस्थ **'मणिपूरकचक्र'** है।
(४) **'श्रीचक्र'** में स्थित **'बहिर्दशार'**– पिण्डस्थ **'अनाहत चक्र'** है।
(५) **'श्रीचक्र'** में स्थित 'चतुर्दशार' ही— पिण्डस्थ **'विशुद्धचक्र'** है।
(६) **'श्रीचक्र'** में स्थित 'बैन्दवस्थान' ही पिण्डस्थ **'आज्ञाचक्र'** है।
सहस्रार है।

'बैन्दवगृह' शिव (शिवस्थान) है।

श्रीचक्र की ९ योनियाँ (शक्तिचक्र एवं शिवचक्र में ऐक्य)



चतुष्कोण **'भूपुर'** ही **'सहास्रार'** है तथा वृत्तत्रय **'बैन्दव स्थान'** हैं। आचार्य श्री का कथन है कि समयमार्गियों के लिए सुषुम्णामार्ग ही **'श्रीचक्र'** है। सुषुम्णा-मार्ग ही मोक्ष-मार्ग है।

"सुषुम्ना तिसृषु श्रेष्ठा वैष्णवीमुक्तिमार्गदा।"

---

१. भावनोपनिषद् (१)।

गौड़पादाचार्य की दृष्टि– गौड़पाद कहते हैं—

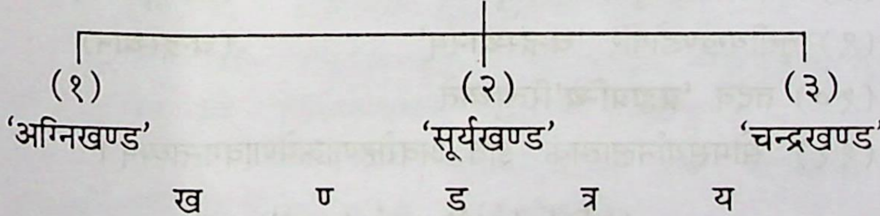
त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने तेष्टारमनघे,
भवेत्स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम्।[१]
दशारं ते संवित्कमलमथ मन्वश्रकमुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दवगृहम्॥[२]

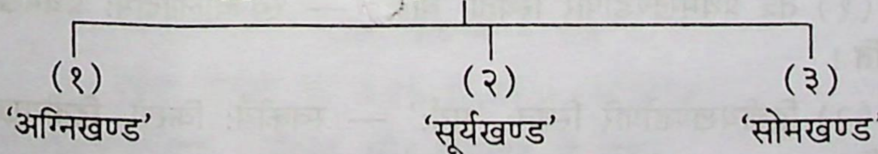
अर्थात् श्रीचक्र के मध्य का **'त्रिकोण' मूलाधारचक्र** है। हे निष्पाप सुन्दरी! महात्रिपुरी! (त्रिपुरशरीरी) श्रीचक्र का जो **'अष्टार'** है वह **'स्वाधिष्ठान-चक्र'** है। जो 'श्रीचक्र' का अन्तर्दशार है वह **'मणिपूरचक्र'** एवं **'बाह्यादशार' 'अनाहतचक्र'** है। हे उमा! श्रीचक्र का जो **'चतुर्दशार'** है वही पिण्ड का **'विशुद्धचक्र'** है। पिण्डस्थ **'आज्ञाचक्र'** शिव का स्थान या 'शिवचक्र' है जिसमें कि **'बैन्दवस्थान'** है।

खण्डत्रय और श्रीचक्र में अद्वैत (ऐक्य)

(१) **'अग्निखण्ड'** (२) **'सूर्यखण्ड'** एवं (३) **'चन्द्रखण्ड'** हैं तो पृथक्-पृथक् किन्तु 'श्रीचक्र' की दृष्टि से (या 'श्रीचक्र' में आकर) तीनों एकीभूत होकर अद्वैतरूप बन गए हैं; क्योंकि—

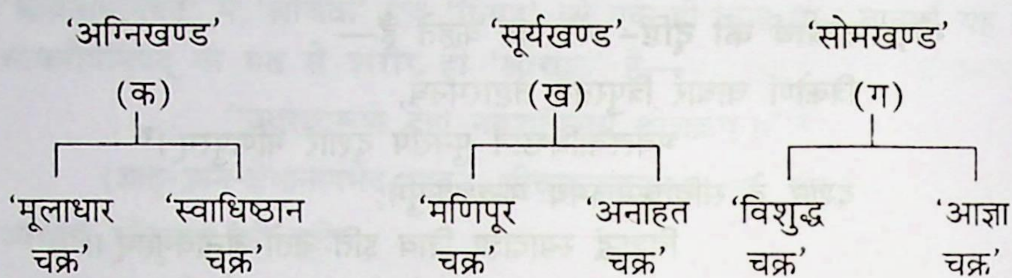
'अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्।
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतं।
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्॥
— रुद्रयामल





---

१. सौन्दर्यलहरी (१०)।
२. सुभगोदय (८)।



तीनों खण्डों को मिलकार सम्पूर्ण किरणों की संख्या=३६० है।

आचार्य गौड़पाद की दृष्टि– आचार्य गौड़पाद कहते हैं— कि हे भगवती ! तेरा 'श्रीचक्र' (या तेरा त्रिखण्डात्मक नगर या पुर) तीन खण्डों वाला है जो इस प्रकार है— (१) **'अग्निखण्ड'** (२) **'सूर्यखण्ड'** (३) **'चन्द्रखण्ड'**।[१]

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि– आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं—

(१) आधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरानाहत-विशुद्ध्याज्ञाचक्रात्मकं **'श्रीचक्रं'** त्रिखण्डं सोमसूर्यानलात्मकम्।

(२) मूलाधारस्वाधिष्ठानचक्रद्वय**मेकं खण्डम्**।

(३) मणिपूरानाहतचक्रद्वय**मेकं खण्डम्**।

(४) विशुद्ध्याज्ञाचक्रद्वय**मेकं खण्डम्**।

(५) अत्र प्रथमखण्डोपरि **'अग्निस्थानम्'** **(अग्निस्थान)**

(६) तदेव **रुद्रग्रन्थि**रित्युच्यते

(७) द्वितीयखण्डोपरि **'सूर्यस्थानम्'** **(सूर्यस्थान)**

(८) तदेव **'विष्णुग्रन्थि'**रित्युच्यते **(विष्णुग्रन्थि)**

(९) तृतीयखण्डोपरि **'चन्द्रस्थानम्'** **(चन्द्रस्थान)**

(१०) तदेव **'ब्रह्मग्रन्थि'**रित्युच्यते

(११) 'सोमसूर्यानलात्मकं' इति अवरोहणाक्रमेणावगन्तव्यम्।

'वह्नि' 'सूर्य' एवं 'चन्द्र'

(१) तत्र प्रथमखण्डोपरि स्थितो 'वह्निः' — स्वज्वालादिभिः **प्रथमखण्डमावृणोति**।

(२) द्वितीयखण्डोपरि स्थितः 'सूर्यः' — स्वकीयैः किरणैः **द्वितीयखण्डमावृणोति**।

---

२. सुभगोदय (८)।

(३) तृतीयखण्डोपरि स्थितः **'चन्द्रः'** — स्वकलाभिः **तृतीयखण्ड-मावृणोति।**

'पृथ्वी तत्त्व'— (क) **'आधार चक्र'**– (**मही**तत्वात्मक प्रथम चक्र) : **वह्नि ज्वाला=५६**

'जल तत्त्व'— (ख) **'मणिपूरक चक्र'**– (**जल**तत्त्वात्मक द्वितीय चक्र) : **ज्वालायें=५२**

इस प्रकार **वह्नि की ज्वालायें** हुईं : ५६+५२=१०८

'अग्नि तत्त्व'— (ग) **'स्वाधिष्ठान चक्र'**– (**अग्नि**तत्त्वात्मक) **सूर्य** की ६२ किरणें।

'वायु तत्त्व'— (घ) **'अनाहत चक्र'**– (**अग्नि**तत्त्वात्मक) वायु की ५४ किरणें।

'आकाश तत्त्व'— (ङ) **'विशुद्धाख्य चक्र'**– आकाश तत्त्वात्मक चक्र।

(१) 'पृथ्वी' की ५६ किरणें
(२) 'जल' की ५२ किरणें
(३) 'अग्नि' की ६२ किरणें
(४) 'वायु' की ५४ किरणें
(५) 'आकाश' की ७२ किरणें

अष्टोत्तरशतं वह्नेः षोडशोत्तरकं रवेः।
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य च विनिर्णयः॥
— भैरवयामल

(१) **सूर्य की**– 'षोडशोत्तर शतं किरणा भवन्ति।'
(२) **चन्द्र की**– 'चन्द्रस्य कलाः वियत्तत्वात्मके विशुद्धिचक्रे द्विसप्ततिः।'
(३) **मन की**– मनस्तत्वात्मके आज्ञाचक्रे चतुष्षष्टिः।
एवं चन्द्रस्य षट्त्रिंशदुत्तरशतं कलाः भवन्ति॥
(क) सूर्य की किरणें ११६ —लक्ष्मीधरा॥
(ख) चन्द्र की किरणें ०७२
(ग) मनस्तत्त्वात्मक आज्ञा चक्र में— ६४

इस प्रकार चन्द्रमा की १३६ किरणें॥ (षट्त्रिंशत्)

पिण्डब्रह्माण्डैक्यवाद : पिण्ड और ब्रह्माण्ड में अद्वैत

भारतीय योगशास्त्र, तान्त्रिक शैव-शाक्त दर्शन एवं तान्त्रिक परम्परायें 'पिण्ड' एवं 'ब्रह्माण्ड' दोनों में ऐकात्म्य (एकता) मानती रही हैं।

आचार्य **लक्ष्मीधर** कहते हैं—

(१) सोमसूर्यानला: पिण्डाण्डब्रह्माण्डे आवृत्य वर्तन्ते।

(२) पिण्डाण्डब्रह्माण्डयोरैक्यात् पिण्डाण्डावृत्तिरेव ब्रह्माण्डावृत्तिरिति रहस्यम्॥''

(१) **'श्रीचक्र' ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप माना जाता है** और शरीर को 'श्रीचक्र' माना जाता है—

''नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं 'श्रीचक्रम्'।
'ज्ञातृज्ञानज्ञेया**नामभेदभावनं** श्रीचक्रपूजनम्॥''[१]

भगवती 'विश्वगर्भा' है **'विश्वरूपा', 'विश्वधारिणी'** एवं **'विश्वमाता'** (ललितासहस्रनाम) हैं।

इच्छासृष्टिवाद– तन्त्रशास्त्र परमाणुओं से सृष्टि नहीं मानता प्रत्युत् उसके अनुसार तो परमात्मा की सिसृक्षा (सृष्टि करने की इच्छा) से विश्व की सृष्टि हो जाती है। उपनिषद भी यही मानता है— 'सोऽकामयत् बहुस्यां प्रजायेय'।

तन्त्रशास्त्र भी यही मानता है—

''योगिनामिच्छया यद्वन्नानारूपोपपत्तिता।
न चास्ति साधनं किञ्चिन्मृदादीच्छां विना प्रभो:।
तथा भगवदिच्छैव तथात्वेन प्रजायते।
दृश्यन्तेऽत्र तदिच्छातो **भावा** भीत्यादियोगत:।
'एवं सर्वेषु **भावेषु** यथा सा शिवरूपता॥''[२]

श्रीचक्र एवं पिण्ड-चक्रों में एकता

पिण्ड के समस्त चक्रों की श्री चक्र के चक्रों के साथ भी एकता है। चूँकि 'श्रीचक्र' शिवशक्तिरूप है (उसमें कुछ चक्र शक्ति चक्र है और कुछ शिवचक्र हैं) और यह समस्त षट्त्रिंशदात्मजगत का एक संक्षिप्त (रेखाचित्रात्मक) स्वरूप है अत: पिण्डस्थ चक्र, श्रीचक्रस्थ चक्र, शिव, शक्ति एवं विश्व तत्त्वत: सभी एक हैं और सभी भिन्न भिन्न मनकों में अद्वैत का एक सूत्र पिरोया हुआ है।

आचार्य गौड़पाद पिण्डस्थ चक्रों एवं श्री चक्रस्थ विभिन्न चक्रों की एकता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक १४)।
२. शिवदृष्टि (प्र. आ., ४४-४६)।

(१) त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुद्भू-,
दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रं समभवत्।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात्त्रिवलय,
चतुर्द्वा प्राकारत्रितयमिदमेवाम्बशरणम् ॥[1]

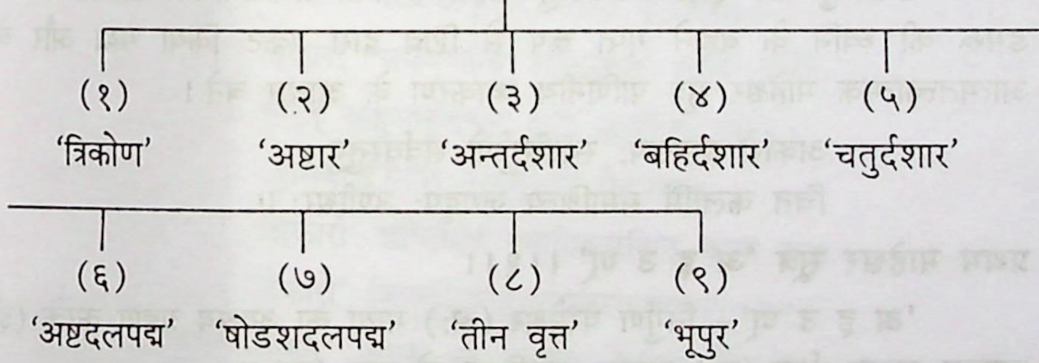
—श्रीचक्र का स्वरूप

(२) त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने तेष्टारमनघे,
भवेत्स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम्।
दशारं ते संवित्कमलमथ मन्वश्रकुसुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दवगृहम् ॥

— श्रीचक्र एवं पिण्डस्थ चक्रों में एकता

(३) त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयमिभकोणे वसुदलं
कलाश्रंमिस्त्रारे भवति भुवनाश्ने च भुवनम्।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे शक्तिकुसुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्ति शिवयो ॥[2]

श्रीचक्र की ९ योनियाँ



'श्रीचक्र' देहस्वरूप भी है, विश्वस्वरूप भी है और विश्व-शक्ति स्वरूप भी है।

'त्रिकोण'– मूलाधार चक्र हैं। **'अष्टार'**– स्वाधिष्ठान चक्र है। **'दशारद्वय'**– मणिपुर एवं अनाहत चक्र हैं। **'चतुर्दशार'** विशुद्ध चक्र है। **'आज्ञाचक्र'**– शिवस्थान या शिवचक्र है। **'त्रिकोण'**– वृत्तत्रय है। **'अष्टार'**– अष्टदलपद्म है। षोडशदलपद्म दशार युग्म है। भूपुर चतुर्दशार है।[3]

---

१. गौड़पादाचार्य : सुभगोदय।
२. सुभगोदय (११)।
३. सुभगोदय।

व्याकरणागम का अद्वैतवाद
(माहेश्वर सूत्रों की दार्शनिक व्याख्या)

'अइउण्। ऋलृक्' आदि चतुर्दश माहेश्वर सूत्रों का पाणिनीय व्याकरण में जो अर्थ है उससे भिन्न अर्थ ग्रहण करके नन्दिकेश्वर ने 'काशिका' में उनकी दार्शनिक व्याख्या की और इनसे सम्बद्ध सत्ताईस कारिकायें लिखीं। उपमन्यु ने 'काशिका' की व्याख्या में 'तत्त्व विमर्शिनी' नामक टीका लिखी।

'काशिका' का प्रारम्भ इस निम्नाङ्कित श्लोक से हुआ है—

''नृत्यावसाने नटराजराजो,
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धा,
नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ।।''

ताण्डवनृत्योपरान्त नटराज ने अपना डमरू बजाया। उस डमरू से चौदह 'माहेश्वरसूत्र' निकले। इन्हें ही चौदह माहेश्वर सूत्र कहते हैं।

उपमन्यु की दृष्टि– उपमन्यु कहते हैं कि वागाद्यगोचर **आत्मतत्त्व** को डमरू की ध्वनि के बहाने गुप्त रूप से शिव द्वारा प्रकट किया गया और वे आत्मतत्त्वात्मक माहेश्वर सूत्र पाणिनीय व्याकरण के आधार बने।

अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणो सर्ववस्तुषु।
चित कलामिं समाश्रित्य जगद्रूपः उणीश्वरः ।।

प्रथम माहेश्वर सूत्र 'अ इ उ ण्' ।।१।।

'अ इ उ ण्'– निर्गुण परमेश्वर (अः) माया का आश्रय ग्रहण करके (इं) व्यापक सगुण ईश्वर (उः) बनकर अवस्थित हो गया (ण्) ।।

'अकार' वर्ण समस्त वर्णो में अग्रणी वर्ण है और यह प्रकाश स्वरूप परमशिव या परमेश्वर है।

'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार यदि आदि वर्ण 'अ' को अन्त्य वर्ण 'ह' के साथ संयुक्त कर दें तो एक प्रत्याहार बन जायेगा। यह होगा— 'अहं'। अतः अकारादिहकारान्त समस्त वर्ण पारमात्मिक या परमशिव रूप ही हैं।[१]

''अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः।
आद्यमन्त्येन संयोगादहमित्येव जायते ।।४।।''

---

१. उपमन्यु।

''अकारो ब्रह्मरूप: स्यान्निर्गुण: सर्ववस्तुषु ।
चितकलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वर: ।।३।।''

ईश्वर ही अनादि जीवरूप उपाधि ग्रहण करके पूर्वकृत कर्मों से उत्प्रेरित **प्राणव्यापार के अनन्तर व्योम** में **'परावाक्'** नामक मायापरिणाम को प्राप्त करके, हृदय में **'पश्यन्तीवाक्'** स्वरूप प्राप्त करके 'विशुद्धचक्र' में **'मध्यमावाक्'** का स्वरूप प्राप्त करके और उसके अनन्तर मुख में **'वैखरीवाक्'** स्वरूप प्राप्त करके वेदादिरूप हो जाता है। श्रुतियों में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि—

''वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे ।।'' इसका अर्थ यह हुआ कि— 'सूक्ष्मा वाक् विश्वाकार धारण करके उस रूप में परिणत या विवर्तित हो जाता है—[1]

'सूक्ष्मा वागेव विश्वाकारेण विपरिणमते विवर्तते वेति बोध्यम् ।।'— उपमन्यु

श्रुतियों में भी कहा गया है कि— ''वाचैव विश्वं बहुरूपं निबद्धं तयैवैकं प्रविभज्योपभुङ्क्ते ।।''

'अकारं' सन्निधीकृत्य जगतां कारणत्वत: ।
'इकार:' सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं गतम् ।।७।।
जगत् स्रष्टुमभूदिच्छा यदा ह्यासीत्तदाभवत् ।
'कामबीज'मिति प्राहुर्मुनयो वेदपारगा: ।
'अकारो' ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित् कला मता ।
'उकारो' विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वर: ।।९।।

चूँकि 'अकार' जगत का मूलभूत कारण है अत: **'अकार'** की सन्निधि प्राप्त करके **'इकार'** समस्त वर्णों की शक्ति होने के कारण समस्त वर्णों की **'शक्ति'** बन गया।

('अकार' जगत का मूल कारण है तो 'इकार' समस्त वर्णों का कारणभूत शक्ति बन गया।)

जब स्रष्टा में विश्व-सिसृक्षा का प्रादुर्भाव या उन्मेष हुआ तब उस विश्व-सृजन **इच्छा** को वेदों में पारङ्गत मुनियों ने **'कामबीज'** की आख्या दी। **'अकार'** ज्ञप्तिमात्र है किन्तु **इकार 'चित्कला'** है। **'उकार'** को विष्णु कहा गया है और सर्वव्यापक होने के कारण **महेश्वर** है।

---

१. उपमन्यु।

उपमन्यु कहते हैं कि **'इकार'** की ही सर्वत्र स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया गया है।

कहा भी गया है—

'स्वप्रकाशपरमात्मवस्तुनो दृश्यमानजगतः सिसृक्षया।
कामतः परशिवप्रकाशितं कामबीजमिदमेव निश्चितम् ॥'
'बीजं बिन्दुद्वयारूढं सार्धयोनिस्वरूपकम्।
महाकामकलारूपमात्मानं चिन्तयेत् प्रिये ॥'

'उ'=व्यापक। **'ण'**=ईश्वर। **'उण'**=व्यापक परमेश्वर ॥

उपमन्यु कहते हैं कि आद्यसूत्र ''अइउण्'' यह ज्ञापित करता है कि समस्त वर्णों एवं समस्त भुवनों का उद्भव आत्मतत्व से हुआ है—

''तत्राद्येन सूत्रेण सर्ववर्णानां समस्त भुवनानाञ्च समुद्भवरूपं स्वात्मतत्त्वमुपदिष्टम् ॥''

'अः' का अर्थ है निर्गुण परमेश्वर। **'इं'** का अर्थ है माया। **'उकार'** का अर्थ है व्यापक। **'णकार'** का अर्थ है सगुण ईश्वर।

(१) समस्त वस्तुओं में एवं 'परा'— 'पश्यन्ती'—'मध्यमा'—'वैखरी' वाग्वृत्तियों में **'इं'** अर्थात् 'चित्कला' और गायत्री अवस्थित हैं। **'ईकार'** इसी रहस्य का ज्ञापक है। यद्यपि इस सूत्र में 'ईकार' नहीं 'इकार' का ही स्पष्टतः प्रयोग किया गया है तथापि अप्रत्यक्षतः इसे 'ईकार' का ही बोधक मानना चाहिये।

(२) सृष्टि के आरम्भ में **''अ, इ, उ, ऋ, ऌ''**– यह (अ इ उ ण्।' 'ऋ ऌ क्' ॥१/२।) वर्णपञ्चक था जो कि एकोनपञ्चाशत (४९) वर्णों का पाँचों महाभूतों एवं पञ्चवर्गों की योनि (मूल कारण) बना— **आचार्य उपमन्यु कहते हैं**–

(१) ''सर्गसम्भव काले अ इ उ ऋ ऌ इति वर्णपञ्चकमेव सर्वेषामेकोनपञ्चाशदक्षराणां भूतपञ्चकानां पञ्चवर्गाणां क्रमेण योनिरिति ॥''

(२) प्रमाण देखिये— 'असद्वा इदमग्र आसीत्ततो वै सद जायत्।' (श्रुति)। तात्पर्य यह कि **असद्** (ब्रह्म) निश्चय ही (वै) सृष्टि के पूर्व (अग्रे) **'इदमक्षरात्मक'** स्वरूप में स्थित था। उस अक्षर से (ततो) 'असत्' से 'सत्' अर्थात् सगुण उत्पन्न हुआ। **गीताकार** भी कहते हैं कि— ''अक्षराणामकारोऽस्मि ॥''

द्वि. सूत्र 'ऋ ऌ क्।।२।।' : (माहेश्वर सूत्र)

नन्दिकेश्वर कहते हैं—

ऋ ऌ क् सर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत् ।

तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत् ॥१०॥

उपमन्यु कहते हैं– सारी वेदान्त-शाखाओं या वेदान्तीय सम्प्रदायों में (या सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र में) यह माना गया है कि परमेश्वर एक है। माया या 'ई' रूप वाली 'चित्कला' का आश्रय ग्रहण करके परमेश्वर जगद्रूप हो उठा। यहाँ अद्वैत की हानि लक्षित होती है अतः 'ऋ ऌ' की अवतारणा की गई। ''**ऋ**'' (परमेश्वर) '**ऌ**' (माया नाम वाली मनोवृत्ति)। तात्पर्य यह कि परमेश्वर (ऋ) ने माया नामक मनोवृत्ति (ऌ) का आश्रय लेकर स्वेच्छया विश्व की रचना की।

प्रश्न– यहाँ 'ऋ' परमात्मा का वाचक कैसे माना जाय?

उत्तर– श्रुति भी कहती है— 'ऋतं सत्यं परब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥' 'ऋत में 'ऋ' परमेश्वर का वाचक है और उसमें प्रयुक्त 'त' का अर्थ है 'तं तत् पदार्थं परं ब्रह्म ऋ सत्यमित्यर्थः ॥'' (उपमन्यु) श्रुति कहती है— 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय ॥''

श्री तन्त्र में भी कहा गया है—

''मत्तो ह्यभून्मनोरूपं ऌकारः परमेश्वरि ॥''

सारांश यह कि— 'ऋ' एवं 'ऌ' वर्ण तादात्म्यापन्न हैं।

काशिकाकार कहते हैं—

''वृत्तिवृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते ।

चन्द्रचन्द्रिकयोर्यद्वद् यथा वागर्थयोरपि ॥११॥

स्वेच्छया स्वस्य चिच्छक्तौ विश्वमुन्मीलयत्यसौ ।

वर्णानां मध्यमं क्लीबमृऌवर्णद्वयं विदुः ॥१२॥

अर्थात् जिस प्रकार वाणी एवं उसके अर्थ तथा चन्द्रमा एवं उसकी चन्द्रिका में कोई भेद नहीं है ठीक उसी प्रकार वृत्ति एवं वृत्तिमान में भी कोई भेद नहीं है।

वह परमेश्वर **अपनी इच्छा** से (दूसरे की प्रेरणा से नहीं) अपनी ही **चिच्छक्ति** में विश्व का उन्मीलन (सृष्टि नहीं प्रत्युत् उन्मीलन) करता है। वर्णों में दो वर्ण नपुंसक हैं और वे वर्ण हैं— 'ऋ' एवं 'ऌ'।

शक्तिसूत्रकार ने भी ''स्वेच्छया स्वस्य चिच्छक्तौ विश्वमुन्मीलयतसौ'' का सिद्धान्त थोड़ा परिवर्तन के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति ॥"[१]

तृतीय माहेश्वर सूत्र : "ए ओ ङ् ।।३।।"

'काशिका'– "ए ओङ्मायेश्वरात्मैक्य विज्ञानं सर्ववस्तुषु ।
साक्षित्वात् सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम् ॥१३॥"

तत्त्वविमर्शिनी– उपमन्यु कहते हैं कि—यदि यह कहा जाय कि "परमेश्वर ने विश्व को **'जन्म दिया'** ('जनयामास') तो 'जन्य' एवं 'जनक' दो सत्तायें माननी पड़ेंगी अतः अद्वैतवाद खण्डित हो जाएगा। इस सन्दर्भ में श्रुति कहती हैं कि—

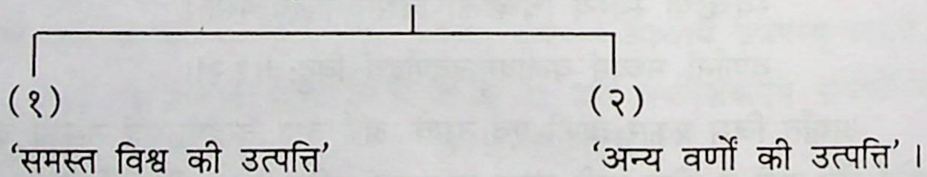
"तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ॥"

काशिकाकार ने "ए ओ ङ्" का यही अर्थ अङ्गीकृत किया है। अतः यहाँ अद्वैत हानि नहीं है; क्योंकि यहं 'जन्य' एवं 'जनक' दोनों में तद्रूपता है; क्योंकि अपने स्वरूप की तद्रूप विद्यमानता है।

यहाँ अकार+ओकर से निष्पन्न प्रणव= 'ॐ' (अ+ओ+म्=ओम्) के द्वारा सगुण+निर्गुण ब्रह्म में ऐक्य बोधित होता है। अतः इस सूत्र से सर्वत्र **ऐक्य दृष्टि का सञ्चार होता है, द्वैत का खण्डन होता है**।[२]

'अ' (अक्षरात्मक) 'इ' (मायायुक्त) बनकर प्रज्ञानस्वरूप या प्रज्ञानात्मा है। समस्त वस्तुओं में एकत्व होने के कारण सर्वत्र **अद्वैतोपपत्ति** है नानात्मक जन्य-जनकत्व रूप द्वैतभाव नहीं है। "**स्वयं प्रविष्ट होकर उसी रूप में स्थित है**।" पूर्व सूत्रद्वय— (१) 'अ इ उ ण्' (२) 'ऋ ऌ क्' 'अ इ उ ऋ एवं ऌ' — इन ५ वर्णों को द्योतित करते हैं। वटबीजन्याय के अनुसार ये **पाँचों वर्ण समस्त जगत के कारण** हैं। उत्तरवर्ती वर्णों की भी इन्हीं ५ वर्णों से सृष्टि होती है।

अ इ उ ऋ ऌ : ५ वर्ण



(१) 'समस्त विश्व की उत्पत्ति'

(२) 'अन्य वर्णों की उत्पत्ति'।

सनकदक्षिणामूर्तिसंवाद में कहा गया है—

"शृणु त्वं सावधानेन चतुर्णामपि साम्यता ।
वेदानां च महाभाग चतुष्काणमिहोच्यते ।

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ।
२. उपमन्यु— तत्त्वविमर्शिनी ।

ब्रह्मशब्देन यद्वस्तुतत्त्वज्ञानमितीरितम् ।
प्रज्ञानं ब्रह्म यस्माद्धि तस्माद् ब्रह्मास्म्यहं ततः ॥
तद् ब्रह्मसर्वसाक्षीति तत्वमस्येव तत्त्वतः ।
अन्यत्ववारणत्वायाऽयमात्मेत्यपि वर्ण्यते ॥''

काशिकाकार कहते हैं कि—

''एओङ् मायेश्वरात्मैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु ॥''

अर्थात् 'ए ओङ्' नामक तृतीय माहेश्वर सूत्र 'माया' एवं 'ईश्वर' में ऐक्य-विज्ञान का प्रतिपादन करता हुआ संसार की प्रत्येक वस्तु में इस ऐक्य की पुष्टि करता है। चूँकि वह परतत्त्व **समस्त प्राणियों का साक्षी** है अतः यह भी सुनिश्चित है कि वह एक है।

चतुर्थ माहेश्वर सूत्र– 'ऐ औ च् ।।४।।'' (माहेश्वर सूत्र)

'काशिका' (नन्दिकेश्वर)—

'ऐ औ च् ब्रह्मस्वरूपः सन् जगत स्वान्तर्गतं ततः ।
इच्छया विस्तरं कर्तुमाविरासीन्महामुनिः ॥१४॥

'तत्त्वविमर्शिनी' (उपमन्यु)– परमेश्वर समस्त जगत की स्वात्मा होने के कारण जगत का मूल कारण है। अतः स्वान्तर्गत जगत के विस्तार की इच्छा करने वाले परमात्मा 'ऐ' (ज्ञानशक्ति) युक्त हो गए। अकार+ईकार के दीर्घयोग से 'ऐकार' बना जो कि एकत्व का वाचक है।**'ऐ'=** सम्प्रज्ञानस्वरूप परमेश्वर।

दीर्घ अकार + दीर्घ अकार के योग से 'औ' बना।

परमात्मा **'ऐ' सम्प्रज्ञानस्वरूप** एवं **'औ'** अर्थात् **प्रज्ञानात्मा मायाशबल** है।

यहाँ प्रकृति पुरुष विवेक की बात कही गई है।

यहाँ ह्रस्वदीर्घप्रभेद से **१४ स्वरों** की चर्चा संकेतित है जो कि **१४ चक्रों** एवं **१४ भुवनों** को संकेतित करता है।

'महामन्त्रतत्त्व प्रकाशिनी' में कहा गया है कि—

'तव मन्त्रं महेशानि मम रूपं त्वमेव हि ।
चतुर्दशात्मकं चक्रं स्वरचक्रमितीरितम् ॥
त्रयोदशात्मकं तुर्यसावयोर्मन्त्रमम्बिके ।
उच्छूनकाले बिन्द्वात्मा तस्मादक्षरसम्भवः ॥

बिन्दुस्फोटनमात्रेण वर्णानां च समुद्भवः ।
तस्मादाकाशमुख्यानि भूतानि समजायत ।
बिन्दुः श्रीचक्रराजस्य परबह्मात्मकस्त्विति ।
चतुर्दशात्मकः पश्चाच्चक्राकारेण सम्भवः
उत्पन्नभुवनान्यत्र चतुर्दश चतुर्दशेति ॥''

माहेश्वर सूत्र ५ : 'ह य व र ट्' ।।५।।

ये संख्या में ५ हैं। 'आत्मा से आकाशादि पञ्च महाभूतों का जन्म हुआ'— यह उपनिषदों में कहा गया है अतः परमेश्वर पञ्चभूतात्मक भी हैं—

'भूतपञ्चक्रमे तस्माद्धय-व-र-ण् महेश्वरात् ।
व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत् स एव हि ॥१५॥

'हकार' व्योम का, **'यकार'**वायु का, **'र'**कार अग्नि का एवं **'वकार'** जल का सूचक है।

''हकाराद्व्योमसंज्ञं च यकाराद्वायुरुच्यते ।
रकाराद्वह्निस्तोयं तु वकारादिति सैव वाक् ॥१६॥

उपनिषदों में कहा गया है— ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी' इति ॥

माहेश्वर सूत्र : ६ 'ल ण्' ।।६।।

आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च कारणम् ।
अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम् ॥१७॥

जो समस्त प्राणियों एवं अन्नादिक का कारण है तथा जिस अन्न से रेतस एवं रेतस् से जीवोत्पत्ति होती है वही मूलभूत कारण एवं सर्वाधार 'ल' पृथ्वी-तत्त्व है।

उपमन्यु कहते हैं कि परमेश्वर से पञ्चमहाभूतों का जन्म होता है जो कि प्रपञ्च के मूलभूत कारण हैं। चूँकि वहाँ आकाशादि चतुष्टय ही कहा गया है किन्तु पृथ्वी नहीं अतः 'आधार' शब्द (पृथ्वी वाचक शब्द) प्रयुक्त किया गया है। पृथिवी (लं) समस्त प्राणियों का (उद्भिज, स्वेदज, जरायुज, अण्डज का) प्रधान आधार है और अन्नपान आदि का भी कारण है अतः सभी 'लण्' है। कारण स्पष्ट है— ''अन्नाद्रेत इति न्यायात् ॥''।

माहेश्वर सूत्र : ७ ।। ञ म ङ ण न म् ।।७।।

'शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाश्च ञ म ङ ण न म् ।

व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात् सर्ववस्तुषु ।।१८।।

(तत्त्व) पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश के जनक हैं—

(तन्मात्रा) गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द

(तन्मात्रायें)	'शब्द'	'स्पर्श'	'रूप'	'रस'	'गन्ध'
	↓	↓	↓	↓	↓
(पञ्चमहाभूत)	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी

यहाँ तन्त्रोक्त प्रकार से वर्णों का अर्थोद्घाटन किया गया है। उपमन्यु कहते हैं कि—

(१) किसी किसी ग्रन्थ में अकारादिक्षकारान्त ३६ (षट्त्रिंशत्तत्वमय) तत्त्वों का तो (२) **किसी ग्रन्थ में** ('तन्त्र राज तन्त्र' आदि ग्रन्थों में) पञ्चभूत क्रम से लिपिप्रकार द्वारा तथा (३) अन्यत्र बीज निर्णय भेद को आधार के रूप में गृहीत किया गया है किन्तु यहाँ तो—

"पञ्चवर्गेष्वन्तिमार्णाः शब्दस्पर्शादयो गुणाः ।।"

कथन के आधार पर अर्थोद्घाटन किया गया है। सर्वजगत के कारणभूत वर्णरूपपुरुष के व्योमादिगुण भी हैं।

माहेश्वर सूत्र : ८ : 'झ भ ञ्' ।।

माहेश्वर सूत्र : ९ 'घ ढ ध ष्' ।।

नन्दिकेश्वर 'काशिका' में कहते हैं—

'वाक्पाणी च झ भ आसीद्विराडरूपचिदात्मनः ।

सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते ।

वर्गाणां तुर्य वर्णा ये कर्मेन्द्रिय मया हि ते ।'

'घ ढ ध ष्' ।।९।।

'घ ढ ध ष् सर्वभूतानां पादपायू उपस्थकः ।

कर्मेन्द्रियगणा ह्येते जाता हि परमार्थतः ।।२०।।'

उपमन्यु कहते हैं कि इन सूत्रों से कर्मेन्द्रिय वर्ग अर्थात् वाक्-पाणि-पायु-उपस्थ आदि को सङ्केतित किया गया है। विराटस्वरूप शिव के प्राणिजात के

झकार + भकार स्थावरादि में विना विराटरूप के ही समझे जाने चाहिये। परमशिव के द्वारा इन कर्मेन्द्रियों की समस्त प्राणियों में उत्पत्ति हुई और **'घ ढ ध'** वर्ण यही अर्थ सङ्केतित करते हैं।

माहेश्वर सूत्र : १० : 'ज ब ग ड द्' ।।१०।।

काशिकाकार कहते हैं—

''श्रोत्रत्वङ्नयन घ्राण जिह्वाधीन्द्रियपञ्चकम्।
सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं ज ब ग ड श्।।२१।।

(वर्ण) 'ज', 'ब', 'ग', 'ड', 'द', 'श'।

(इन्द्रियाँ) श्रोत्र, त्वक्, नयन, घ्राण, जिह्वा, धीन्द्रिय (बुद्धि)= यहाँ **'ज', 'ब' 'ग' 'ड' 'द'** एवं **'श'** के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को सङ्केतित कर रहे हैं।

उपमन्यु कहते हैं कि— ''वर्गाणां मध्यवर्णोत्थो ज्ञानेन्द्रियगण: स्मृत: ।।'' इस वचनशासन के द्वारा 'ज ब ग ड द श' वर्णसमूह ज्ञानेन्द्रियों के वाचक हैं और वे सर्वत्र स्थित हैं। चूँकि ये ज्ञानेन्द्रियगण समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं अत: उन सबमें इन ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त इनके जनक 'ज ब ग ड द श' भी स्थित हैं।

११वाँ सूत्र : माहेश्वर सूत्र : ''ख फ छ ठ थ च ट् त व्।।''

काशिकाकार इस माहेश्वर सूत्र के निहितार्थ पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—

''प्राणादिपञ्चकं चैव मनो बुद्धिरहङ्कृति:।
बभूव कारणत्वेन ख-फ-छ-ठ-थ-च-ट-त-व्।।२२।।
वर्गद्वितीयवर्णोत्था: प्राणाद्या: पञ्चवायव:।
मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्त:करणवृत्तय: ।।२३।।''

ऊपर ११हवें माहेश्वर सूत्र में ८ वर्ण हैं।

इनके द्वारा (१) **प्राणादिपञ्चक** (२) **मन-बुद्धि-अहङ्कार** ८ को सङ्केतित किया गया है— ''तत: प्राणादि पञ्चकमनोबुद्ध्यहङ्कारा: समुन्मील्यते ।।'' (उपमन्यु)

इसका अर्थ क्या है?

उपमन्यु कहते हैं कि **इन ८ अक्षरों के द्वारा** प्राणादिपञ्चक एवं मन-बुद्धि-अहङ्कार से उत्पन्न जो जगत है उसके कारण के रूप में इन अष्टाक्षरों को प्रस्तुत किया गया है।

द्वादश माहेश्वर सूत्र : क प य् ।।१२।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं[१]—

"प्रकृतिं पुरुषञ्चैव सर्वेषामेव सम्मतम्।
सम्भूतमिति विज्ञेयं क-प्-य् स्यादिति निश्चितम् ।।२४।।"

उपमन्यु कहते हैं कि 'क प य्' सूत्र में **'क' एवं 'प' वर्ण** 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' के वाचक हैं।

'ककार'=प्रकृति। 'पकार'=पुरुष।

"ककारपकारजातौ प्रकृतिपुरुषावित्यर्थः ।।" (उपमन्यु)

त्रयोदश माहेश्वर सूत्र : श ष स र् ।।१३।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं[२]—

सत्वंरजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा।
समाश्रित्य महादेवः **श ष स र क्रीडति प्रभुः** ।।२५।।
शकाराद्राजसोद्भूतिः षकारात्तामसोद्भवः।
सकारात् सत्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भवः ।।२६।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं कि **'श'** (रजोगुण) **'ष'** (तमोगुण) एवं **'स'** (सतोगुण) का आश्रय लेकर परमात्मा विश्वरूप क्रीडा किया करता है।

उपमन्यु भी यही कहते हैं— 'पुरा सृष्टेः प्राक् श ष स वर्णसम्भूतान् सत्वरजस्तमोगुणानाश्रित्य परमशिवः सर्वभूतेषु क्रीडति ।।"[३]

चतुर्दश माहेश्वर सूत्र : 'ह ल्' ।।१४।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—

"तत्त्वातीतः परः साक्षी सर्वानग्रुहविग्रहः।
अहमात्मा परो हल् स्यामिति शम्भुस्तिरोदधे ।।२७।।

उपमन्यु कहते हैं कि समस्त तत्त्वों का जो जनक है वह स्वयमेव **'तत्त्वातीत'** है। इसी निहित अर्थ को ज्ञापित करने के उद्देश्य से इस १४वें सूत्र की अवतारणा की गई है।[४]

---

१. काशिका।
२. काशिका।
३. तत्त्वविमर्शिनी।
४. उपमन्यु— तत्त्वविमर्शिनी।

"मैं सर्वानुग्रहकारी, साक्षी एवं तत्त्वातीत 'ह ल' हो ऊँ"— यही 'ह ल' सूत्र का अर्थ है—

'हकारः शिववर्णः स्यादिति शैवागमस्थितिः ॥'

उपमन्यु कहते हैं— "सर्वानुग्रहः साक्षीतत्त्वातीतो हल् स्यामिति ढक्कानिनादव्याजेन सर्वेषां मुनिजनानां तत्वमुपदिशन् तिरोदधे इत्यर्थः ॥"[१]

उपमन्यु प्रारम्भ में कहते हैं—

(१) 'इह खलु सकल लोकनायकः परमेश्वरः परमशिवः सनकसनन्दनसनत्कुमारादीन् श्रोतॄन् नन्दिकेश-पतञ्जलि-व्याघ्रपाद-वसिष्ठादीनुद्धर्तुकामो डमरुनिनादव्याजेन चतुर्दशसूत्रात्मकं तत्त्वमुपदिदेश।'

सारांश– यह कि परमशिव ने सनक-सनन्दन-सनत्कुमार आदि श्रोताओं को तथा नन्दिकेश, पतञ्जलि, व्याघ्रपाद एवं वसिष्ठादि के उद्धार करने की इच्छा से १४ सूत्रों में निहित तत्त्व का उपदेश दिया ॥)

(२) इन सूत्रों का यथार्थ अर्थ तो नन्दिकेश्वर ही जानते हैं अतः मुनियों ने उन्हें प्रणाम करके उनसे इन माहेश्वर सूत्रों का अर्थ पूछा। श्री नन्दिकेश्वर इस प्रश्न के उत्तर में २६ कारिकाओं में (इन सूत्रों में निहित अर्थ को) 'काशिका' नामक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया।

(३) भगवान शिव ने **वागाद्यगोचर आत्मतत्त्व** के ज्ञापनार्थ ढक्कानिनाद (डमरु बजाने की ध्वनि) के बहाने (अपने ताण्डव नृत्य के अन्त में) प्रस्तुत किया—

'नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥'[२]

नन्दिकेश्वर की दृष्टि में १४ माहेश्वर सूत्रों (शङ्कर के १४ बार डमरु बजाये जाने) का अर्थ इस प्रकार है—

"तत्त्वातीतः परसाक्षी सर्वानुग्रहविग्रहः।
अहमात्मा परो हल् स्यामिति शम्भुस्तिरोदधे ॥"

उपमन्यु की दृष्टि में १४ शिवसूत्रों को उद्देश्य है— ।

"सर्वानुग्रहः साक्षी तत्त्वातीतो हल स्याम् ॥" (मैं शिव हो जाऊँ)

---

१. उपमन्यु— तत्त्वविमर्शिनी।
२. काशिका (नन्दिकेश्वर)।

व्याकरणागम और 'शब्दब्रह्माद्वयवाद'

आचार्य भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीयम्' नामक ग्रन्थ लिखकर 'शब्दब्रह्मवाद' नामक सिद्धान्त की स्थापना की। व्याकरणशास्त्र के इतिहास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के बाद सर्वोच्च महावैयाकरण भर्तृहरि ही थे।[१]

व्याकरणागम के सिद्धान्त– योगिराज एवं व्याकरणशास्त्र के पारदृश्वा विद्वान भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में जिन सिद्धान्तों की प्रस्थापना की वे मुख्यतः इस प्रकार हैं—

(१) **'शब्द ब्रह्म ही जगत का मूल कारण** है और **'कालशक्ति'** शब्दब्रह्म की स्वतन्त्र शक्ति है— "अनादि.....यतः ॥"

'अध्याहितकलां यस्य **कालशक्तिमु**पाश्रिताः ।
जन्मादयो विकाराः षड्भावभेदस्य योनयः ॥३॥'

(२) **पश्यन्ती वाक् रूपी शब्दतत्त्व ही ब्रह्म है** और जगत उसी का विवर्त है—

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥

'शब्दब्रह्मवाद' एवं 'शब्दविवर्तवाद'

(३) **'परिणामवाद' :** वेद शब्द से जगत की उत्पत्ति हुई है और जगत शब्द का परिणाम है—

'शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः ।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत ॥ '

(४) **प्राणियों में जो चेतनाशक्ति है वह भी शब्द ही है–**

'सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते ।
तन्मात्रामनतिक्रान्तं **चैतन्यं सर्वजन्तुषु** ॥'

(५) **आत्मा नित्य पदार्थ है–**

'आत्मा वस्तु स्वभावश्चशरीरं तत्वमित्यपि ।
द्रव्यामित्यस्य पर्यायस्तच्च नित्यमिति स्मृतम् ॥'

---

१. व्याकरण-दर्शन का विवेचन पतञ्जलि के **'महाभाष्य'**, भर्तृहरि के **'वाक्यपदीय'** एवं नागेश की **'लघुमञ्जूषा'** में किया गया है। इस दर्शन के अनुसार **'शब्दब्रह्म'** ही पारमार्थिक पदार्थ है और अन्य सभी 'शब्दब्रह्म' के विवर्त मात्र हैं।

(६) **व्याकरण** और स्मृति **ब्रह्मप्राप्ति के साधन हैं–**

'यदेकं प्रक्रियाभेदैर्बहुधा प्रविभज्यते।
तद् व्याकरणमागम्य परं ब्रह्माधिगम्यते ॥१॥२२॥

(७) शब्द ब्रह्म छन्दोमयीतनु है—

अत्रातीतविपर्यासः केवलामनुपश्यति।
छन्दस्यश्छन्दसां योनिमात्माछन्दोमयीं तनुम् ॥

(८) समस्त **आगम** कर्तृक होने से **नश्वर** है किन्तु समस्त आगमों का मूल वेदत्रय अविनश्वर है—

न जात्वकर्तृकं कश्चिदागमं प्रतिपद्यते।
बीजं सर्वागमापाये त्रय्येवातो व्यवस्थिता ॥

(९) 'स्फोटवाद' का प्रतिपादन–

'स्फोट' वह शब्द है जहाँ अन्य शब्द प्रच्छन्न रूप में छिपकर बैठे रहते हैं और जिसकी कृपा के द्वारा शब्द श्रुतिगोचर होते हैं और अर्थावबोध कराते हैं। स्फोट **निमित्त** भी हैं और **अर्थबोधक** भी हैं।

श्रोताओं के लिए **'वैखरीवाक्'** निमित्त है और **'स्फोट'** अर्थबोधक है; क्योंकि पूर्वपूर्व वर्णों के विनष्ट हो जाने से उत्तर-उत्तर वर्ण के एक साथ न रहने के कारण अर्थबोध नहीं हो सकता था अतः **'स्फोट'** ही अर्थबोधक माना गया है। वक्ता की दृष्टि से **'स्फोट'** वैखरी का निमित्त है और वैखरी वाक् ही अर्थबोध (स्फोटप्रकाशन) के लिए उच्चरित होता है। इन दोनों पक्षों में **स्फोट ही अर्थबोधक है।**

यद्यपि स्फोट सक्रम प्रतीत होता है तथापि वह सक्रम नहीं है किन्तु यथा मयूराण्डरस में मयूराङ्ग अक्रम रहते हैं, किन्तु क्रम से ही विकसित होते हैं; उसी प्रकार स्फोट भी अक्रम हैं तथापि ध्वनि के क्रम से उच्चरित होने के कारण स्फोट सक्रम प्रतीत होते हैं। इस प्रकार शब्द में वर्ण, पद, वर्णावयव, जाति, पदावयव, व्यक्ति सखण्ड आदि **प्रतीतियाँ भ्रम हैं।**

यथार्थतः एक सत्य वाक्य ही **स्फोट** है।

(१०) शब्द नित्य चेतन है–

शब्द की नित्यता के विषय में प्रश्न यह उठता है कि यदि उसमें कालकृत भेद हैं तो शब्द को नित्य कैसे मानें? भर्तृहरि इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि—

'स्फोटस्याभिन्नकालस्य ध्वनिकालानुपातिनः ।
ग्रहणोपाधिभेदेन वृत्तिभेदं प्रचक्षते ।।'

(११) विश्व शब्द का विवर्त है

समस्त विश्व (१) 'परा' (२) 'पश्यन्ती' (३) 'मध्यमा' और (४) 'बैखरी' रूप चतुर्विध वाणियों का विलास या प्रसार मात्र है।

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने (१) **'विवर्त'** एवं (२) **'परिणाम'** को समानार्थक रूप में ग्रहण किया है अतः वे विश्व को शब्द का **'विवर्त'** एवं शब्द का **'परिणाम'** दोनों कहते हैं— (१) 'शब्दस्य परिणामोऽयम्' ।।

(२) एतद्विश्वं **'व्यवर्तत'** "**विवर्ततेऽ**र्थभावेन............... ।।"

भवभूति ने भी दोनों शब्दों को एकार्थक माना था—

"आवर्तबुदबुदतरङ्गमयान् विकारान्" 'विकार' और परिणाम तो पर्याय शब्द हैं। 'बुदबुद' पानी का विवर्त है न कि विकार या परिणाम।

गोपालिका टीकाकार की दृष्टि–

(१) जगत **'शब्द'** का **'विवर्त'** भी है और 'विकार' भी।

(२) 'विश्व' स्फोट का विवर्त है।

(३) (किन्तु) यही **विश्व** ध्वनि या **वैखरी वाक् का 'परिणाम'** है।

(१२) शब्दसृष्टिवाद : 'शब्द' से ही विश्वोत्पत्ति होती है

न्याय-वैशेषिक आदि दर्शन भी यह मानते हैं कि आकाश ही विश्व का मूल प्रथम तत्त्व है और उसका गुण शब्द है। सांख्य शब्द को आकाश का गुण एवं तन्मात्रा मानता है। अतः सृष्टि का मूल शब्द तो है ही तथापि सांख्य उसके भी पूर्व प्रकृति-पुरुष के संयोग को मानकर विश्व का मूल प्रकृति को मान लेता है।

भर्तृहरि कहते हैं कि शब्द से ही सृष्टि हुई है और शब्द से पूर्व कोई था ही नहीं यहाँ तक कि प्रकृति भी नहीं। **सृष्टिक्रम की व्याकरणसम्मत दृष्टि** यह है— (१) सृष्टि के आरम्भ में 'पश्यन्ती' वाक्रूप 'शब्द ब्रह्म' था। उसने अपनी अपरिमित शक्ति वाली माया के साथ होकर विभिन्न प्रकार के प्राणियों के कर्मों की सहायता से जगत को बुद्धिस्थ करके **'यह मैं करूँगा'** का सङ्कल्प करता है और तब अपनी स्वतन्त्र शक्ति **'काल शक्ति'** के साथ प्रथमतः आकाशादि पञ्चभूतों की एवं फिर प्राणियों की सृष्टि करता है।

नागेश भट्ट ने सृष्टि का दूसरा क्रम स्वीकार किया है। **'प्रपञ्चसार तन्त्र'** में शङ्कराचार्य ने भी यही मत प्रतिपादित किया है।

नागेश भट्ट शब्दब्रह्म को अनित्य मानते हैं।

शिवदृष्टिकार सोमानन्दपाद 'शब्दब्रह्माद्वयवाद' का एवं पश्यन्ती के ब्रह्मत्व का 'शिवदृष्टि' में खण्डन किया है।

वाक्चतुष्टय

स्थूल से सूक्ष्म की ओर

विश्व
वैखरी वाक्
मध्यमा
पश्यन्ती
(शब्द ब्रह्म)
परावाक्
पश्यन्ती
मध्यमा
वैखरी वाक्
विश्व



= 'शब्दब्रह्म'
= 'शब्दतत्त्व'
= 'प्रणव'
= 'साकार ब्रह्म'

शुद्धाध्व

अशुद्धाध्व

******

शक्तिसंगमतन्त्रम्

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ. सुधाकर मालवीय

भारतदेश में तन्त्रशास्त्र का अद्भुत भण्डार है। तन्त्र एवं यन्त्र पूजन से साधक वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है जिसके लिए वह इस संसार में मनुष्य तन में आया है। साधना से इसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है और आत्मा शुद्ध हो जाती है। आणव मल धुल जाता है।

शक्तिसंगमतन्त्र तान्त्रिक साधकों के लिए अद्वितीय तान्त्रिक ग्रन्थ है। यह मौलिक तन्त्र ग्रन्थ है और शाक्तसम्प्रदाय के सिद्धान्तों का साकल्येन प्रतिपादक है।

शक्तिसंगमतन्त्र **अक्षोभ्य ऋषि** एवं **महोग्रतारा** (शिव-पार्वती) का संवाद रूप है। इसमें चार खण्ड हैं—

१. **कालीखण्ड**— इक्कीस पटलों में पूर्ण है। कालनित्याविधि, अष्टाष्टकनिरूपण, पात्र निर्णय, कादिदीक्षा विवरण, मेरुकथन, वीररात्र्यादिनिर्णय, मधुमती सिद्धिविधि, क्रमदीक्षा, सूत्र निर्णय, उपाकर्म, पवित्रारोपण रक्षाविधि एवं कामधेन्वादि योग वर्णित हैं।

२. **ताराखण्ड**— इकहत्तर पटलों में पूर्ण है। कौलतीर्थ निर्णय, नवरात्र निर्णय, महाचीन क्रम, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरीक्रम, मुद्रासंकेत, पानसंकेत, लतासंकेत, निशापूजा, मुण्डासन, सुन्दरी-साधन और शक्तिपूजा रहस्य आदि वर्णित हैं।

३. **सुन्दरीखण्ड**— इक्कीस पटलों में पूर्ण है। चक्रयोगादि निरूपण, देश व्यवस्था, पञ्चप्रस्थविवेचन, लतासाधन, अज्ञात दुर्निमित्त एवं महाकाल मन्त्र की विधि प्रतिपादित है। काली १५ नित्याओं का प्रतिपादन है।

४. **छिन्नमस्ताखण्ड**— ग्यारह पटलों में पूर्ण है। काली आदि दस महाविद्याओं के अङ्गमन्त्र, विद्यापीठ निर्णय, देशपर्यायादि विवेचन, चक्षुषा शक्तिसमाराधन, पुष्प निर्णय, पर्यायाम्नायादि निर्णय और यन्त्रप्रस्तारादि निर्णय व्याख्यात हैं।

इन चारों खण्डों की इदं प्रथमतया हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। अनेक तन्त्रग्रन्थों के सम्पादक एवं हिन्दी व्याख्याकार डॉ. सुधाकर मालवीय काशी के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् हैं, जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय के संस्कृत विभाग से सम्प्रति सेवानिवृत्त हैं। इनके द्वारा संशोधित एवं हिन्दी में व्याख्यात यह ग्रन्थ तान्त्रिक साधकों के लिए अत्यन्त उपादेय है और दार्शनिक विद्वानों एवं शक्ति के उपासकों हेतु संग्रहणीय है।

₹ 400.00

Also can be had from : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-383-6 ₹ 700.00